# मुग्धवीधं व्यॉकरंगंम्

## महामहोपाध्यायेन श्रीमता वोपदेव-परिहतेन

विरचितम्

योमद्भि दुर्गादासे-राम-गङ्गाधर-तंर्भवागीशैः

प्रणीताभ्यो विद्वतिभ्यः सारमाकलय पाणिन्यादिस्त्रसाम्यमभिप्रदर्श्यं च

# स्रीगिरिशचन्द्र-विद्यारलेन'

हतीयं संस्करणम

#### कलिकाता

शिरिय-विद्यारव-वर्त्तान चतुर्वियति-सञ्जाब-सत्तान शिरिय-विद्यारत-यन्त्रे शीय्यसूषण भद्याषार्थेण सुद्रितं प्रकाशितस्व

१८८१

#### প্রথম শংস্করণের বিজ্ঞাপন।

এতদেশে যে যে ছলে সংস্কৃত ভাষা শিক্ষার রীতি আছে তাহার অধিকাংশেই, অন্নারাদে ও অন্ন দিবনে বৃৎপাদক বলিয়া, মুদ্ধবোধ ব্যাকরণ পাঠনার প্রচলন দেখা যায়। তনিমিত্ত এই ব্যাকরণ অনেকপ্রকার আকারে অনেকবার মৃদ্রিত হইয়াছে। কিন্তু ঐ সকল মৃদ্রিত প্রত্যাকরণ অধানাই অন-প্রমাদে পরিকলিত। তন্তিবন্ধন অধ্যাপক ও অধ্যত্নিপোর পাঠনা ও পঠন কার্য্যের অত্যন্ত অস্থিধা জয়ে, এবং অনেক বালকই অভন্ধ ও অসংলগ্ন পুত্তক অস্থালনবণতঃ প্রায়ই প্রকৃত বৃৎপত্তি লাভ কুরিতে সমর্থ হয় না। আমি ঐ অস্থিধা ও অনিই নিবারণের বাসনায় এই শ্বিত ক্রিলাম।

শীন্ত বাবু ভাষাচবণ দরকার মহাশার, ইতিপুর্পে মুগ্ধবোধ ব্যাকরণ সজ্জিপ্ত টীকার সহিত বাঙ্গালা অক্ষরে মুল্তিক করিতে আবন্ত করিয়ছিলেন, সন্ধ্যার এবং শব্দেরও কিরণংশ প্রাক্তরণের টীকা-সকলেন সমর্থ না হইয়া, নিল প্রণালীতে তাহা প্রস্তুত করিতে, এই অভিসন্ধিপুর্ণকে, আমাকে ভার দেন, যে সময়ে সময়ে উভয়ে এক জিত হইয়া মংসংগৃহীত টীকা পুন্দৃষ্টি করত মুদ্যাকনার্থে প্রস্তুত করিব। কিন্ত তাহা করিতেও তিনি সময় না পাইয়া আমার প্রতিই সম্পূর্ণ ভারাপণি করেন। তদম্সারে আমি ঐ প্রণালীমতে ছুগাদান, রাম ও গঙ্গাধ্ব তর্কবাগীশের টীকা হইতে সার সংগ্রহপ্ত্রক সম্দ্র গ্রন্থ মুদ্তিত করিলাম। সংশোধন ও স্বাবেধ বিষয়ে যথাসাধ্য যত্ব ও পরিশ্রম করিয়াছি।

অধ্যাপক ও ছাত্র-বর্গের বিশেষ স্থবিধার উদ্দেশে, প্রত্যেক স্ক্রের নিম্ভাগে পদচ্ছেদপূর্বক বিভক্তি-নির্দেশ কবিয়াছি। ১া২ ইত্যাদি অঙ্ক, প্রথমা দ্বিতীয়াদি বিভক্তির জ্ঞাপক,
এবং ।, ॥, ॥, এই চিহুগুলি, একবচন, দ্বিচন ও বছ্বচনের স্চক। আর কোন কোন
হলে ১া২ ইত্যাদি অংশব পশ্চাৎভাগে (۱) এক দাঁড়ি চিহু দিয়া লুপু বিভক্তির সংশ্বেত করা হইয়াছে। মূল প্রস্থে সমস্ত স্ত্রের আদি ভাগে একাদিক্রমে আরু বিন্যান করিয়া,
টাকার মধ্যে পদসাধন-স্থলে ঐ সকল অংশব উল্লেখ করিয়াছি, ভাহাতে পদসাধনের উপ্যোগী সম্প্রস্ত্রি আনায়ানেই নিকাশিত হইতে পারিবে। এই প্রণালীতে স্বিদ্ধি, ভিত্ত ও কৃদ্যেব সমস্ত পদই প্রায় নাধিত হইয়াছে।

গ্রন্থকার এই ব্যাকবণে দশটী অধ্যায় এবং প্রত্যেক অধ্যায়ে চারি চারি পাদ নির্দেশ করিয়াছেন; ঐ দশ অধ্যায় ও চল্লিশটা পাদ যে যে পৃষ্ঠে মৃত্রিত হইয়াছে, ঐ ঐ পৃষ্ঠের অন্ধ নির্দাদিশ করিয়াছেন; ঐ দশ অধ্যায় ও চল্লিশটা পাদ যে যে পৃষ্ঠে মৃত্রিত হইয়াছে, ঐ এই গ্রন্থে যতগুলি সংজ্ঞা, শব্দ, ধাত্, সন্মায়ন্ত, ন্ত্রী-প্রত্যায়, তদ্ধিত-প্রত্যায় এবং কুং-প্রত্যায় নির্দিন্ত ইইয়াছে ঐ সমস্তই, অকালাদি বর্ণজন্ম সুচী করিয়া, এই পৃত্তকের যে যে পৃষ্ঠে বা যে যে স্ত্রে ঐ সকল বিষয় নির্দিন্ত আছে, ঐ সূচী সকলে তাহার অন্ধ নির্দাদিশ করিছে আনিবার প্রয়োজন ইইবে, তিনি ঐ সূচী পৃষ্ঠে তংক্ষণাৎ তাহা অক্লেশেই নিঞ্চাশিত করিতে পাবিবেন।

এই গ্রন্থ মূলিত করিতে যেরূপ বায় হইয়াছে, ন্নেকলেও চানি টাকা মূল্য করিলেও চাহার অনুরূপ হয় না, কিন্তু, ভাহা হইলে পাঠকবণের, বিশেষতঃ বালকদিগের, ক্রয় করিতে কট্ট হইতে পাবে, এই বিবেচনায়, বিন্দুমাল অর্থণাভাংশ পরিত্যাগ করিয়া, ইহার মূল্য ২॥ বিশ্বটি টাকা ছুরি করিলাম।

এক্সনে অধ্যাপক মহাশয়দিগের নিকট প্রার্থনা—

্এই পুস্তকে যে সকল দোষ দৃষ্ট হইবে, অথবা কোন বিষয়ের ন্যনতা বা আধিক্য অমূভ্ত হুইবে, অমূএহ করিয়া ঐ ফ্রটি সংশোধনপুর্লক অব্যয়ন কবাইবেন। এবং আমার প্রতি বিশেষ অমূএহ করিয়া ঐ ফ্রটি আমাকে জানাইবেন; তাহা হুইলে, যদি কখন এই পুস্তক পুনুম্বিত করিতে হয়, ঐ ফ্রটি আর ঘটতে পারিবে না। ইতি

জ্যানুয়ারি, ১৮৭১ ্ শ্রীগিরিশচন্দ্র বিদ্যারত্ন সংস্কৃত কলেজ, কলিকাতা।

### দ্বিতীয় সংক্ষরণের বিজ্ঞাপন।

প্রায় মাদশ বংলবের পর মুগ্ধনোধ পুন্ম জিত হইল। গতবার মুলাকর প্রমাদবশতঃ যে 
কুই একটা অম ঘটিয়াছিল, দেওলি এবার সংশোধন কবা গেল। অধিকস্ত এবারে সামাকাদশনার্থ প্রায় প্রত্যেক স্ত্রের টি কায় পাণিনি ব্যাকবণেব স্ত্রের অধ্যায়, পাদ ও সংখ্যা
লিখিত হইল। এবং শেষভাগে বোপদেব-সম্মত একটা লিখানুশানন ও কতকওলি উপাদিপ্রত্যায় সন্ধিবেশিত হইল; আরি স্ত্র, আগম, আদেশ ও ধারব্য়ব সম্বর্গায় সূচী ক্য়েকটাও
সংযোজিত হইল। ইতি

১লা নবেম্বর, ১৮৮২ শ্রীগিরিশচন্দ্র বিদ্যারত্ব সংস্কৃত কলেজ, কলিকাতা।

### তৃতীয় সংস্করণের বিজ্ঞাপন।

শ্রেষ বর্ষ বর্ষরের পর মুদ্ধনোধের তৃতীর সংক্ষরণ মুক্তিত ইইল। এবারে পুত্তকের অবয়ব কিছু সন্ধিত ইইয়াছে। প্রবাবে প্র ও বৃত্তিগুলি কুজাকরে মুক্তিত ইইয়াছিল, পাঠের
স্থাবিধার্থ এবার ঐগুলি ওদপেকা বৃহৎ অক্ষরে মুক্তিত ইইয়াছে। আর প্রবারে কেবল
পাশিন ও কাতাায়নের সুরপ্তলি টাকায় দশিত ইইয়াছিল; এবার প্রয়োজনমতে মহাভাবা,
নিদ্ধান্তকৌমুণী, স্পান, কনাপ ও সংক্রিসাবের সূত্র বা তত্মত লিখিত ইইয়াছে। বে বে
স্থানে বোপদেবের মতের সহিত পাশিজাদির অনৈক; বা মতাপ্রর আছে, তথায় তাহাদিগের সেই
ভিন্ন মত লিখিয়া দেওবা গিয়াছে। এবার শন্ত থাত্র গণগুলি প্রয় সম্প্রকাশ নিবেশিত ইইয়াছে। কলতঃ ব্যাকবণবানির অন্নোঠক সম্পাদনে বিশেষ মুক্তর গিয়াছে।
শারীরিক অনুস্তাবশতঃ মুদ্ধ নমর্থনা হত্মায় এই তৃতীয় সংক্রণ মুক্তিত করিবার ভাব
আমার ক্রেঠ পুত্র কলিকাতা প্রসিডেসী কলেজের সহকাবী সংস্কৃতাধাপক শ্রীমান হরিকচল
ক্রির্ত্বে উপর অর্পিত ইয়। তিনি ব্যাশক্তি পরিশ্রম করিয়া এই কোম্বা সম্পন্ন করিয়া
ছেন। ইতি

১লা অক্টোবর, ১৮৯১

শীগিরিশচন্দ্র বিদ্যারত্ব।

## 'निर्घग्टः।

	3812.	1
मङ्गलाचरणम्	•१-३	
याद्यन्ताधिकार:	8-३८ ७	
१मः । सन्यथायः	8-∌€	Ę
१म पाद:संजा	8-84	
२य पाद भच्मिः	१३-२४	
<b>३</b> य पाद: इस्-सन्धः	ર ક-ક ફ	
४र्घपाद.—वि-सन्धि:	३२ ३६	
२य: । श्रजन्ताध्याय:	३०-८६	
१म पाद: – संज्ञा	88- <i>©</i> §	
२ य पाद: — <b>प</b> जन्तपुंलिङ्गश	द: ४५-७२	
<b>३य पाद: भजन्तस्</b> वीलिङ्ग		•
<b>४ र्थपादः — ऋजल्तक</b> ीवलिङ्ग	भव्द:८१-८६	
३यः । इसन्ताध्यायः		
१म पाद: - इसन्तपृं लिङ्गश्रब्द	: =0.850	_
२य पाद:हमनस्वीलिङ्गश		
३यपाद: — इसन्तक्षीवलिङ्गभ	ब्द:१२३-१२६	
।र्थपादः—मलयश्रदः	१२७-१२८	
र्षः। स्याचन्ताध्यायः १	३५-२८७	
१म पाद — स्त्रोत्यः	१३५-१५६	
२ गपादः — कारक म् (क)	१५६ १८०	
३य पाद. —समानः (म)	059-939	
दृष्ट-ममामः (च)	१६४-१६६	
बहुबीहि-समासः (इ)	१६७-२१०	
कर्माघ⊦रय-समान: (य)	288.580	
तत्पुरुय-समामः (ष)	२१८-२२०	•
दिगु-भम[सः (ग)	२२१-२२३	8
ं भव्यथीभाव-समासः (व)	२२४-२२८	
षट् समासाः	२२८-२३७	
धर्थपादः—तिज्ञतः (त)		
ाद्यनाधिकार्:२८८-५६८		
५मः । खाद्यध्यायः २	दद-३ <b>६</b> ०	
१म पादसंजा	२८८-२६२	

वकादः । । प्रशादः । २य पाद: -- पवत् 3 6 6 - 8 3 6 ३य पाद: -- सवत् 385-355 ४थं पाद: — मित्र: ₹40-₹€• ६ष्ठ:|१म-चतुर्गणाध्याय:३६१-४०४ १म पाद: -- भदादि: ३६१-३८२ हादि: **9**⊏9-3⊏⊑ ै २य पादः--दिवादिः ३८८ १८५ • ३य पाद: — स्वादि: २८५-३६८ ४र्थ पाद: --- तृदाद्दि: 8 08-23 € 9म:∣२य-चतुर्गणाध्यायः ४०४-४१४ १म पाद:-- कथादि: 808.80€ २य पाद:-- तनादि: 80€.80 € ३य पाद: — क्रग्रादि: 598.308 धर्ष पाँद.---चुरादि: -म:।३य-चतुर्गणाध्याय:४१४ ४५२ १म पाद:-- आनः 898-898 २य पाट: — समन्तः इह४-४१इ ३य पाद:--यङन्तः 358-858 यङ्जुगन्तः ४३१-४४२ ४ यं पाद: — लिघु: 889-847 ८म:। त्याद्यन्ताध्याय: ४५३-४८० १म पाद:---पं ४५३-४५४ २य पाद: -- मं . 848-800 ३य पाद: -- ढभावं 308-908 8र्थपाद: — ति: 850-8€0 १०मः। कदन्ताध्यायः ४८१-५६८ १म पाद: -- ल्य: ४८१-५०२ २य पाद: -- तृनादि: · 4 0 5 - 4 5 5 **३य पादः — क्तादिः** प्रदेश प्रह ४ थे पाद:--- इण्यादि: परिशिष्ट-पचम ५६८-५०५ सुचीपत्राणि ५७६-६१८

#### मुग्धबोध-पठन-प्रयोजनम् ।

गीर्वाणवाणीवदनं मुकुन्द-सङ्कीर्त्तनश्चेत्युभयं हि लीके । सुदुर्लभं तश्च न मृंखबीधा-न्न लभ्यतेऽतः पठनीयमेतत्॥

यन्यक्तत्-परिचयः ।

विद्वतिखरच्छात्रो भिषक्षेग्रवनन्दनः। वापदेवस्रकारेदं विग्रो वेदपदास्पदम्॥

वीपदेव प्रशंसा।

द्यौर्वाचस्पतिनेव, पत्रगपुरी प्रेवाहिनेवाभवत् येनेकेन विदुषाती वसुमती मुख्येन सङ्घावताम्। स्रोऽयं व्याकरणार्णवैकतरणि-यातुर्य्यविन्तामणि-जीयात् कोविदगर्व्यपर्वेतपवि: श्रीवीपदेव: कवि: ॥

# संशोधनी प्रवर्डनी च।

ષૃષ્ઠે	पङ्कौ	<b>પ</b> શુર્સ	गुडं
•	٠ و	निरवकाश्यकः ∦	निग्यकाण्यक:॥ (११५) सू)
₹₹	<b>१</b> ३	''वाससाने'' • ,	''वावसाने''
· ३८	39	सुट्प्रत्याद्वागस्वीकारेणः 🕽	सुट्पत्याश्वारस्य
		न पृथक् संज्ञाकता 🥈	सर्वेनामस्थानसंज्ञा
		•	क्तता (१।१।४३) ।
śc	२२।२३	७।१।२० सूत्रे 🚶	
		द्रष्टव्यम्। 🕽 🔭	1 581818
8 0	3	*	<b>t</b> .
8 •	29	१।१।२४-३६	₹18138-3€
४२	१०	<b>द</b> त्ती	इं सी
80	3	षु:	8 :
<b>y</b>	₹	स्थः	स्थै:
8.3	₹ ₹	018100	01810=
१२०	₹8	प्रसिद्ध:।	प्रसिद्धः। इति इकारानाः।
688	*	सीऽक्तवी	तो ऽभी वाँ
१५६	63	नपुंचक किति	नपुंसकमिति
328	१८	<b>भात्</b> पान्त	धात्पाच .
२३३	१	भूम: ।	भूमे: ।
२६५	?	गुचा देखयम् ।	गुषादे हेयस् ।
139	<b>१</b> १	घू: ।	षु:।
939	१६	पाणिनि: १।१।४५।	पाणिनिः शशास्त्र, दाशार०८।
. २६७	₹४	१८, १६, २२, २३, २४।	१८, ११, २२, २३, १४, ३३।
३०२	. 9	(१ <i>०७०</i> ,	(१०७₹,
११२	२२	खम	खन
\$00	3	खुपाजेऽब्राजे	स्रुपानेऽन्वाजे 📍
४२१	¥	2881	988
प्र१€	•	<b>पनड्<del>फ</del>ित</b>	भगड् च्छ्वेत
425	35	• सिञ्चम् ।	सिडम्। ''बहेर्धीवा '' इतिकातनाः
466	१०	तादध्य	तादर्थे
प्रथ	२।३०	विन्ती वा	विन्दी वा



# मुग्धवीधं व्याकरणम्।



#### मङ्गलाचर्राम्।

मुकुन्दं सर्चिदातन्दं प्रणिपत्य प्रणीयते। मुग्धनोधं व्याकरणं परीपक्षतये मया॥

## १। ऋों नम: शिवाय 🚉

(भी ११), नम: ११।, भिवाय ४।) ।

इति नमस्तारस्त्रम्।

<sup>ा</sup> मया वीपदेवन सिवदानस्यं — संयासी विश्वासावानन्दयेति — नित्यज्ञानसुख-स्वरूपं, सुकृष्टं — सुकृम् सुर्तिं ददातीति — सुतिदावारं विश्वासित्यः । "सुकृमस्ययमानश्च निर्वायमीचवाचकम्। यसद्दाति भक्तेश्यो सुकृष्टक्षेन कीर्तितः"॥ इति बद्धवैवर्षपुराचम् । प्रिषपत्य प्रकर्षेण भित्रयञ्जातिययेन नता, सुग्धवीधं माम सुन्दरवीधजनकम् अल्पवृद्धि-वीधकं वा — सुग्धः सुन्दरसूद्यीरिति विष्यः, त्याकरणं — त्याक्रियन्ते व्युत्पादक्षे साध्यस्यः। अर्गनिति यद्व्युत्यादक्षशास्तं, परीपक्षतये परिवां पाठकानासुपकाराय, श्रेष्ठीपकाराय वा, प्रणीयते प्रकर्षेण नीयते बन्तिसद्धितं क्रियते इत्युष्टं ।

<sup>†</sup> विद्यबाहत्त्व्याद्या पुनर्भेङ जमाचरित । शिवाय विश्वणातौताय बद्धाचे घों नमः, "प्रमद्वसि पर्दे निस्तैगुक्षे शिवाय नमी नमः" इति प्रमाणम् । घोंश्रव्हप्रयोगेणापि मङ्गलं स्चितं, —तथाच घोडारयायश्रव्हय हावेतौ बद्धाचः पुरा । कर्ण्यं भिष्का विनियांतौ तेन माङ्गलिकावुभौ इति । घयश शिवाय क्षिटित ग्रयसमाप्तिकप्रमङ्गलाय घों नमः इरिहर्वद्वाक्षिणे नमः, तथाच — घकारो विणुदहिष्ट छकारमु महेश्वरः । मकारेणीचिते बद्धा प्रचवेन वयो मताः ॥ इति ।

<sup>‡</sup> इति, "घों नमः शिवाय" एतत् वाकां, नमस्तारसः सूत्रं तूचकं — सूत्रयति ऋषेँ प्रत्याययतौति सूत्रम्॥ तद्याच —

खल्पाचर मसन्दिग्धं सारवत् विश्वतीम् सम् । श्रक्षीम-मनवदाच सूत्रं स्वविदी विदु: ॥ इति ।

स्वत्याचरं — इस्वदीर्घगणविद्यावा स्वर्णातिक्षेण मंत्राकरणेन, उटीऽन्धं-कसंगीत्यादि (१।३१४) पाणिनिम्त्राणाम् उटीऽन्हें (८००) इत्याटि संचपकरणेग प स्वत्याचरलमेंतद्यस्यसम्वाणाम् । असन्दिग्धं — स्व्याचिद्देनी सुक् पे (५५२) इत्यत्र पाधातुस्थाने पिवनिर्देशात् रचणायैकणीधनार्थकयीनं सन्देष्ठः । सारवत — निष्कृष्टाय-युक्तम् । विश्वतीसुद्धं — गुणविद्यम्वयीः (५४२,५००) भृत्येषाच वषुषु प्रवित्तः । असीमं — निर्थकश्चरवर्षितम् । अनवद्यं — अशीललादिदीषग्त्यम् अनिभिन्नितिविद्यिनवर्षकद्य । तद्य पिष्ठिम् —

> यं ज्ञाच परिभाषाच विधिर्मियम् एव च । चित्रदेशोऽधिकारस षड्जिं स्वलचणम् ॥ इति ।

स्यवद्वारार्थे प्रास्त्र कृतः सर्वतः संज्ञाः। यत्र्यस्य सङ्घेपनिक्वीहार्थे महितविभेषः परिभाषा। अपाप्तप्रापको विधिः, स च हिविधः—वर्षौत्य। दनकपः अभावकप्यः । अभावकप्यः। अभावोऽपि विविधः—नाभो निविध्यः। सामान्यप्राप्तस्य विशेषावधारणं नियमः। अन्यसम्बद्धः अन्यवारीपणमतिदेशः। पूजेम्बस्यपदस्य परम्बेष्ट्पस्थितरिधकारः, स त विविधः—सिंहावलीकिताय्ययं मण्डकस्रुतिरिव च।

गङ्गासीत इत ख्याता चिकारास्त्रयी मताः। चाकाङ्गायान्त सर्वेषामनुत्रतिः परेभवेत्॥ इति ।

कस्यापि अन्दस्य कतिपयस्वपर्धनमनुवृक्तिः सिंहावलीकिताच्या, एतदपेचया चिक्षकं त्यक्त्रम्वावृत्तिः गङ्गासीतः। यया, (३६) इत्यव दाले इत्यस्य पार्द्भव-पर्यान्तमनुवृक्तिः सिंहावलीकिताच्या, (६८) इत्यादौ मस्कूकप्रृतिः, (६५) इत्यव विश्विस्य गंडासीतः।

मृजलच्यां तक्षेदांय निर्दिग्य मम्प्रति स्वे वर्णनीयविषयानुपन्यस्यति — कार्यों कार्या निकित्तव विभिः मृजमुदाष्ट्रतम् । कदाचित् कार्थिकार्याभ्यां किषत् कार्थनिमित्ततः ॥ यस्य निर्दिश्यते कार्यम कार्थीं ग्रिती बुषेः ।

क्रियते{यमुतन् कार्थ-मार्दश्यपत्ययागमम् । यसाक्त परं,परे यक्षिन्,तर्विमित्तं दिधा मतम् ॥

यथा (११५) अरम् अरावि तु इति स्वे जराशब्दः कार्थी, अरम् कार्यम्, अधीति निमित्तम्।

े चन्यञ्च, स्वविवयक-विश्रेषियमाः — विदरङ्गविधिश्वः स्थादसरङ्गविधिवेशौ । प्रथयादितकार्यन्तु विदरङ्गसुद।छतम् ।

# २। शंशक्दैः।

(मं।१।, मब्दै: २॥)।

#### शब्दैर्भक्षतं स्थात्। इति प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धाः। \*

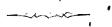
प्रकृत्याधितकाव्ये स्वादनरक्षानिति भुगम्।—(भया ७०२ स्वे ददरिद्र इत्यादौ)।
प्रकृतीः पूर्वपूर्वे स्वादनरक्षतरं तथा॥
सावकाशिविधिश्यः स्वाइ विशे निरयकाशकः।
कस्यचिद्विद्वकार्यस्य प्रव्यमं पहतक्यथा।
सभवत् विषयो यस्य स विधिः स्वावकाशकः॥
भादो हि विषयो यस्य परतो न हि सभवत्।
स पश्चितगर्येकक्षां विधिनिर्वकाशकः॥
तथा—सामान्यस्य विश्वेषस्य स्वाहिशेषविधिभवत्।
सन्ता स्वाहिषयो यस्य स सामान्यविधिभवत्।
सन्ता स्वाहिषयो यस्य स विश्वविधिभवत्।
सामान्यस्य विश्वयः स विश्वविधिभवत्।
सामान्यस्य विश्वयः स विश्वविधिभवत्।
सामान्यस्य स सामान्यविधिभवत्।
सामान्यस्य स स विश्वविधिभवत्।
सामान्यस्य स स स्वाहिष्यस्य स ।
सर्वायं उपघाती सः प्रकृतेः परिकौर्तितः॥
सक्तिभो विधिन्यः स्वाहवली लोपविधिन्तया।
स्विष्यस्य स्वाहिष्यस्य स्वाहवली लोपविधिन्तया।

प्रयोजनाभिषेयसम्बन्धानाइ प्रन्तें इलं स्वादिति । प्रत्नेदेव भङ्गलसुचितं स्वादित्ययंः, ग्रन्टख्यादक्षणास्त्रास्त्रो ग्रन्देदेव मङ्गलं कर्णस्यमिति न्यायात् । स्वाक्तरचस्वादित्ययंः, ग्रन्टख्यादक्षणास्त्रास्त्रो ग्रन्देदेव मङ्गलं कर्णस्यमिति न्यायात् । स्वाक्तरचस्वाद्यस्त्रमञ्ज्ञानाधीनं मास्तान्तरज्ञानं, तदधीना च वेदिकक्रिया, तरफलं स्वादि, चत्रपव

ग्रन्देमंङ्गलम् । इति प्रयोजनाभिधेयस्वस्याः—इतिश्रन्दशास्त्रययंति प्रयोजनपचि सम्बन्धः
पचि च त्रतीयान्तसम्, चिभिधेयपचि प्रथमान्तत्वं विध्यं, तिन 'इति' एभिः ग्रस्ट्वेर्याकरणस्यः
प्रयोजनं—मङ्गलकपम्, 'इति' इमे ग्रन्दाः त्याकरणस्याभिधेयाः—वाच्याः, 'इति' एभिः
ग्रन्देः सङ्गल्यकरणस्य सम्बन्धः स्वाद्यस्याव्यक्तभावः इत्यर्थः ।

## स्याद्यन्ताधिकारः। \*

## १म:। सन्ध्यधार्य:। 🕆



१म पादः-संज्ञा । क

३। ऋइ उच्च लृक, ए चो ङ, ऐ चौ च,— इयवर ल, ञणन ङ म, आ ढ घ घ भ, जड दगह, खफ ऋ ठथ, च ट तक प, शष साद्यन्ताख्या:। §

(म—स ।१॥, भावनाख्याः १॥)।

एषां मध्ये ये वर्णास्ते पादिवर्णान्तवर्णसमाहारसंज्ञाः स्युः। ॥

एकार्थाविकिन्नाध्यायसमृहः प्रिकारः।

<sup>+</sup> एकार्याविकित्रपादसमुद्रः अध्यायः।

<sup>🛨</sup> एतायोविष्ठित्रस्यसमूहः पार्दः।

<sup>§</sup> चादिना संदितोऽनः चादानः स एव चाव्या येषां ते ।

बा एवा मध्ये इति मध्यश्रद्धीः धिकरणवानी, तेन अन सूत्रे ये वर्षां ची चादि-त्रणां न्त्रवर्णां मिलिता चक्-चादिसं जकाः सुः, यथा — चक, चन, चन, चन, चन। इत, इ.ज., इत, इत। स्टका। एङ, एच, एइ। ऐन। इत, इत, इत। यत, यम, यप। वस। इत, अप, अस। चङ, चन, चप। काम, भन, भप, भस। दभ। जन। ख्य, खप, खर। इत। चक, चप। यस।—(४०)। पाचिनिः— धिवस्वाचि, १।१।९१ च।

# ४। इत् कते।

(इ.स् ।१।, कृति ।४।)।

कसीचित् कार्यायीचार्थमाणी वर्ण इसंज्ञः स्यात् । तस्य कार्ये . अनुचारः । यथा अचि क-ुङ-चाः संज्ञार्थाः । इसे अकार-ज्ञारणार्थः । अ

# प्र। चावत् खर्वसु।

(भा।१।, वत्।१।, स्त्र-घं सु।१।)।

श्र श्रा श्र इति वर्णत्रयं क्रमेण ख-र्घ-धु-संज्ञं स्थात् । वित्यव्हात् इ. इ. इ. द्वादिषु च । 🌵 स्व एज् नास्ति'। 🅸

## ६। अपोऽक् समोर्ण ऋक् च।,

(ञप: १।, चक् ११।, सम: १।, र्थ: १।, स्टक् ११।, च ११।) ।

<sup>\*</sup> जते इति एकारासमन्यथं, जते कार्याय इत्। एति गच्छतीति इत्, कार्यकाले न तिष्ठतीति यावत्। द्वानभाइ यथा— चिच चच्छत्याहारमध्ये क-ड-पाँ: संज्ञायाः संज्ञैव षये: प्रयोजनं येवां ते। एवं हसे चकार छश्चारणार्थः, छश्चारणमेव चर्षः प्रयोजनं यथ सः, हसवर्षे चकारस्य प्रयोजनान्तरं नालि। एतेन छेश्वारणार्थोऽपि वर्षः इत्। पाणिनिः १।२।२-३।

<sup>े</sup> चय त्राय त्रय दित समाहारे चा, विदित दर्गाधाँ ऽत्रयय ब्रदः, तत्रय द्वा स्वधं मुन्सं स्थान्, चावन् चन्योऽपि स्वधं मुनंद्वाः स्थादिल्यथः। तेन यथा च चा च, तथा द दंद्र, उ ऊ च, च च च, ल च च। संधेपक्षता यन्यकारेच क्रस्तदीचं मुन- यन्देश्यः संविष्य स्वधं मुनंद्वा कता, एवं सन्तेत्र। एकमात्री भवेत् क्रस्त्ती, दिनात्री दीर्घ उच्चते। विमावस्तु मुतो ज्ञेशी, व्यक्तमधार्यमात्रकाम् ॥ कालेन यावता पाणिः पर्योति नातुमच्छले। स मात्रा कविभिजीयेख्यक्षचामरविदिभिः। दूराह्वाने च गाने च रोदने च मुतो मतः ॥ पृथ्विनः १।२।२०।

<sup>ः</sup> स्व एज् नासीति न स्वं,चा वदिति स्वस्य व्याख्यालगैतमेव। चलाया 'स्व एज् न' इत्येव वर्षस्यम् । एच् ऋससंभी न भवति, किस्तु दौर्धसंग्रः सुतसंग्रय भवतीत्यर्थः।

समानी जपीऽक् च परस्परं गी-संद्रः स्वात्, ऋक च । अ साम्यन्वेत्रस्थान्वम । 🕆

त्रवयम् एइ 🕸 क ख ग घ ङा: कएठा:। दन्यं च छ ज भा अ या ए ऐ या स्तालव्याः। ऋवयं ठठ ड ढ ण र घा मूर्डेन्याः। खनयंत यद धन लसां वो दन्साः। उत्रयंप फ ब भ म वा त्री त्री त्रीष्ठराः । ६ णवां मध्ये यो येन समः स तस्य तच ततः ।श

<sup>\*</sup> अप: चक इति पृथकपट्करणेन सम इत्यस्य प्रत्येकेन सम्बन्धात समीअप: परस्थरं र्णसंज्ञ:, सभीऽक च परस्पर गंमज्ञ: स्थादित्यर्थ:, नतु अपाकी: परस्परं गंभंजीता। भको इन्तर्गतस्यापि में का: पृथगुपादानेन मृदर्ण-स्टबर्ण अनुमानावपि परस्परं र्णसंजी स्तः । एतच साष्टतरसुचाते, एकस्थानीय-वर्णीय-वर्णाः परस्परं र्णसंज्ञाः स्यः । अकस्र्यः एकस्थानीया वर्णाश्च परस्परं र्णसंज्ञाः स्यः। ऋवर्णः खवर्णां च परस्परं र्णसंज्ञी सः। र्षाः सवर्षः। "तुल्यास्यप्रयवं सवर्षम्"--पाणिनिः १।१।६।

<sup>†</sup> समख भाव: साम्यं समानवर्णातम्। एकं स्थानं धेपां ती एकस्थाना: तेषां भाव: एक खानलम्, एक खानी चरितल मित्यर्थः ।

i स्थानकानाधीनं साम्यकाननिति स्थानं निष्पयति अत्रयमित्यादि । एह---ए भी ऐ भी ह।

<sup>§</sup> पूरि भी भी दलीतेषाम् उचारणस्थानं करू मुक्का, ए पे इत्यभयी सालव्यकार्या थे तालव्यमध्ये, भी भी दल्भयोग भोष्ठाकार्यार्थम् भाष्ठामध्ये भिन्नपद पृथक् पठनस् एवम् चनाःस्यवकारस्य वैयाकरणमते उद्यारणस्यानम् चीष्ठमुक्ता दन्यकार्यार्थं इन्यमध्ये भित्रपदे पाइ:।

यु एवां कण्ठा-तालच्य-मूर्जन्य-दन्यीष्ठानां वर्णानां मध्ये यी वर्णी येन वर्णेन सभी भवति सः तस्य स्थाने (१), तिकान परे (२), तकादत्तरे च (३), स्थात, यथा-- चभिवतं (१), श्रान्त: (२), बाग्घरि: (३) । अब ततलस्य तबीति नीक्वा, यहातिक्रमेण निर्देश: तन् इस्थी: चयाणां वा समवार्थे पूर्व्वपूर्वम्य प्रथमप्राप्त्रार्थम् । चन्न वदन्ति — वष्ठी स्वे ततः: स्याने, पश्चमी चतद्त्तरे। सप्तमी चपरे वार्चगर्यं चोपपदे कवित्॥ इति ।

## ७। चपोदिताकानिता गः।

(चपा ३।, उदिता ३।, श्रका ३।, श्रीनता ३।, र्षं: १।)।

उकारेता चपेन \* इट्रहितेनाका 🕆 णीं ग्रह्मते।

## ८। इङोऽरलेङ् णुः।

(इङ: ६।, घर् घल् एङ् ।१।, गः १।)।

इडः स्थाने अर् अल् एङ् एते सा संज्ञाः स्युः । 🕸

## १। अच आरालैज वि:।

(भव: ६।, भा श्रार् भाल् ऐच् ।१।, त्रि: १।)। •

अचः स्थाने आ आर् आल् ऐच् एते विसंज्ञाः स्युः। §

<sup>\*</sup> च ट त क पाः यदा उदितः खुन्दा सवर्षं यक्कति, तेन उदिक्षिः चुटुतु कु पुनिः क्रमेषा च-वर्गटवर्गत-वर्गक-वर्गप-वर्गाषां प्राप्तिः छान्। उदिह्हितेन तु च ट त क प इति वर्षपञ्चकिन केवलं तत्त्त् वर्णमाचं यद्यति ।

<sup>†</sup> भाइ खाइ खारते यदा इद्र हिताः खुक्तदा सवर्षं यक्तित् तेन भनि क्षिः आद खाइ खारते व्यत् । इद्र हिताः खुक्तदा सवर्षं यक्तित् तेन भनि क्षिः आद खाइ खारते क्षित् भाकारादि खानाराना वर्षानां मध्ये इत्युक्तेन येन भीनिषत् वर्षेन कीवल-तन्याववर्षी यहाते, यथा भा न क्ष्यनेन कीवलम् भाइति वर्षमावं यहाते, नतु भाभा भा इति वर्षमावं यहाते, नतु भाषा भा इति वर्षमावं यहाते, नतु भारेणे अत्यये च प्रायशः भनिता अका तक्तसवर्षां न याह्यः । वर्षात् कारतकारी खाइपे राचु छेक इत्यौषादिकस्त्रम् । पाणिनिः १।१।६६-७० ।

ţ च च्छ ए भी वर्षानांस्थाने क्रमेगाः दिष्टाः —

ए ची भर् चल् ए ची वर्णाः (ग्र) गुष्धसंज्ञाः सुः । सनलात् इ-वर्ण-एकारयो-रिकारः, छ-वर्ण-भोकारथोरोकारः । चर् चल् इति द्वयोरेकदेश-रेफ-लक्षुःरास्यां सह ऋ छ इति द्वयोः सनलात् तयोगुंचे कमेण चरलौ स्वातां, ससुदायसास्याभावंऽिष भाशिकसास्यस्य याद्यालात् । ब्रह्मिविधायकस्वैऽप्येवम् । पाणिनिः १।१।२ ।

प्रच कर क्ल ए ऐ भी भी वर्णानां स्थाने क्रभेणादिष्टाः
 पा ऐ भी भार् भाल् ऐ ऐ भी भी वर्णाः (त्रि) इत्तिसंद्राः स्युः ।
 भादेशविज्ञेषसु अञ्चारणस्थानसाम्यात् पूर्श्वेवत् क्रीयः । पाणिनिः ११११ ।

## १०। प्रपरापसंन्यवानुनिर्दृर्व्येषिसूत्यरिप्रत्य-भ्यत्यपुपाङ् गि:।

(म-न्नाङ ।१।, गिः १।)।

एते विंगतिर्गि-संज्ञाः खुः। 🌞

# प्र. परा, भप, सम्, नि, भव, भर्, निर्, दर्, वि, भिष्, मु, उत्, परि, प्रति, भिष्, भिंत, भिष्, उत्, परि, प्रति, भिष्, भिंत, भिष्, उत्, भाङ्, एते विश्वतिः (नि) उपसगे-मंज्ञाः स्यः । विश्वत्यादाः सटैक्ते स्थ्याः संब्येयमं व्ययोशित विश्वतेरेक वचनान्त्रतम् । भव निर् दुर् श्रव्दी रेफानौ निम दुम् इति दन्यमानौ च ।

े क्रियायीगिन: प्रादेशेव उपसर्गभंजा, नितु द्रव्यादियोगिन:। द्रव्यादियोगिनसु प्रक्रटयामावे नर्थति 'प्रेन' इत्यादी उपसर्गभंजाभावात् (२४) गेथीरिति न गः। भादी धातुयोगे प्यात् लिङ्गंजायामुपसर्गलमस्येव।

कियावा चिलमाखातुं प्रसिद्धीऽर्थः प्रदर्शितः । प्रयोगतीऽत्वे विज्ञेया अनेकार्था हि धातवः ॥ इति धातुपाठे वीपदेववचनात् धातूनामनेकार्थलं सिद्धम्, उपसर्गाः पुनसद्धं-चीतकाः, न तु वाकेकाः । उपसर्गस्य धातुलीनार्थचीतकत्वम् आदानसन्दानादावनुसस्वयम् इति माघटीकार्या मिल्लनायः । उक्तभः, निपातायाद्यो ज्ञेया उपसर्गाय प्राद्यः। चीतकत्वात् कियायीगे लोकादवगता इसे ॥ इति ।

प्रादयः उपसर्गः भ्रमंयुक्तावस्थायां न केषास्विदर्थानां योतकाः, क्रियपदात् धातु-मृलक्षभन्दाच प्राक् प्रयुज्यमानाः प्रायभो व्यवज्ञियने । क्रिचिट्पसर्गदयं तस्रयं तस्रयं स्वतुष्टयं वासिजिलां व्यवज्ञियतं — यथा, विद्यारः, स्थवहारः, सृव्यवहारः, समसिव्याद्वारः।

धालये वाधते कथित् कथित् कथित्तम् त्वात्ति । समेव विधिनश्चन्यः उपसर्गगितिस्विधा ॥ प्राद्यः कचित्, सूलपद्भकाधितायं स्व परिवर्णकाः,—यथा, पादने, प्राम्प्कति ; कचित्रा तद्यें लीगको, —यथा, प्रस्ते, प्रवस्थितिः ; कचित्र मृलपद्भकाधितायें विधिषे प्रप्रांकरं योजयन्ति, —यथा, प्रपाति, प्रतृतायः। किल्तु कस्य पदविशेषस्य संयोगे प्राद्यः तद्ये परिवर्णयन्ति, तत्वदार्थे कमये योजयन्ति, कमर्यं न योजयन्ति वा, तत् सर्वंमिनिस्थाम्। पाणिनिः १।४।४९। अ

प्रादीन्। सर्थानाइ पुरुषीत्तमदेव:—
प्र-गत्यारकीत्त्वर्षं सर्व्वतीभाव प्रायम्य ख्यात्युत्वति व्यवहारेषु ।
परा-पराभवानादर प्रत्यावति न्यस्मावेषु ।
प्रप-पनादर भंग साकत्य वैरूष त्याग नत्रयेषु ।
सम्-प्रकर्षं श्रेष नैरन्तर्यौतित्याभिसुक्येषु ।
नि-नित्यय निषेषयी: ।

मनार्चायां खती, नातिक्रमे ऽतिः, पर्यक्षी गतीं। षपिः पदार्थ-सभाव्य-गर्चानुज्ञा-समुच्चे॥ \*

## ११। भ्वादिर्धः।

(भ्वादि. १।, धु: २।)।

#### भू सत्तायामित्यादिर्गणो धुसंज्ञ:.स्यात् । १

चव-- निषय साकल्यानाटरेष ।

भनु--पथात् साहश्य लचण वीक्षेत्रसात् भाग द्वीन सामर्थं सहायं सामीया देर्घा पनरर्थेत्।

निर निम - पत्थर्थ निषेध निषय वहिन्तर्योव।

द्र ट्र-- निर्वेध कप्ट निन्दाव चेप थेषु।

वि — विशेष वैद्या नज्यं गति दान्धु।

श्रधि- उपरिभावे।

स -पूजन श्रोभनानावासः तिश्रवेष ।

च त्— कर्दीत्वार्थप्राक्तका नैककोष्। (च द दति पृथ्यस्य स्था।

परि-- सर्वतीभावातिशय वीशित्यकाव विक्रभाग त्याग नियमेव ।

प्रति — सत्रण व्यावति प्रश्नतीत्यभाव भाग प्रत्यपंत्र साहम्य विरोध वौचा समाधित ।

भि - सननादुभयार्थ लच्च वीसंख्याव धर्वणेषु

पनि - पतिश्यातिकाम' पुजनासन्धावनेष् ।

श्री -- पाइरणाल्य संभावन विन्दानुता समुद्यीष ।

उप— चनुगति पञ्चाद्वानानुक्तम्याधिका भीन सामीस्य प्राथस्येषु ।

चाक-मननाद यहणाप्रसाहत्तीवद्वे सर्याटा व्याप्तित्।

• भव स्वे, स चित प्रश्ने नायां, चित चितिकसे — प्रखीदियेऽपि क्रियाप्रहतीं, परि चिधि नतीं — एतो यदा गत्यवंधात्योगे गति योतयतस्वा, चिप चत्र क्रियायोग्यतावस्व न नित्यानुमितसमुख्येषु गि-संज्ञा न स्यं:। एषु चर्येषु गिसंज्ञाभावात्, सुक्षुता रत्यादी व्यस्य गुक्षारीत (५४८) यत्ने न स्यात्, क्राची यप् च (१९७६) व स्यात्, दित प्रजिम्। किन्तु गिसंज्ञापितस्य निपातत्वित्यस्य वार्षे, निपातत्वे सित चय्यत्यम्, चतोऽतिराजीति धिष्यम्, — चत्र्ययंके व्यं पूर्वमित्यने वर्षे। चतिः प्रश्नेनिपातके। पाचिनिः १।४।८३-८६।

† भूगच्दक धातुर्धभागिरासायाड भू संसाधामिलादिर्गर्धरित । भू द्वादि प्रकृतयः यदा सत्तादि किया नाविकासदैन (५)धातुर्धभाः खुः। आदिगर्धी यथा-स्वाधदादी

### १२। सित्यादिः तिः।

(सिव्यादि: १।, क्ति: १।)।

स्यादिस्यादिय क्तिमंत्रः स्यात्। \*

## १३। क्ष-इ-ब्जान्येक्ष-दि-बक्त व्येक्शः।

(क इ-स्वानि १॥, एक, डि-वड्ड ७ ०॥, एक शः ।१॥)।

क्षेरेकैकं वचनं क्रमात् क्ष-द-ब्व-संज्ञं स्थात्, तानि च क्रमादेकः दि-बहुष्वर्थेषु प्रयुज्यन्ते । 🕆

## १४। त्रान्तान्यौ इली।

(क्यन्तान्यौ १॥, द-सौ १॥)।

क्राम्तग्रब्दो दसंज्ञः स्यात्, अन्यस् लिसंजः। 🕸

जुद्दीलादिः विवादिः स्वादिरेव च, तृदादिष वधादिष तनक्षादिचुरादय इति । "भुवा-द्यो धातवः"--पाणिनिः १।६।१ ।

- \* निश्चतित्र निती, िती चादी यस स नित्यादिः, इत्तालपः पूयमाणः प्रवद्धः प्रस्येकमिनस्यंति इति न्यायात् स्यादिस्थादियेति । प्रस्तेतरं प्रयुक्तमानाः सि घी जसादयः एकविंगतिः, धातृत्तरं प्रयुक्तमानाः तिष्-तनादयः साथौति-मत-संख्यकाश्च (क्ति)विभक्तिसंज्ञाः स्युः । पाणिनिः १।४।१०४।
- † विभक्तिरेक-वचनं कसंज्ञं, वि-वचनं वसंज्ञं, वष्टु-वचनं व्यानं स्थान्। एकवचनम् एकार्थे, विवक्तनं विसंख्यायं, वष्ट्वचनं वैद्वयं प्रयुज्यते। एकस्य क-कारं वचनस्य व-कारं रुष्ट्रीत्वा क—इति सद्वेतितं, वज्यशेरध्यत्भेव। नित्यवष्ट्वचनास्ता चिप प्रस्टाः सन्ति—यणा—दाराः, वर्षाः, निक्ताः, जलीकसः, द्याः (वस्त्रान्तवाविन्यः), वष्ट्वताः, क्रिक्ताः, क्रास्ताः, लानाः, रुर्ष्टाः द्रव्यादि। गौरवे सर्व्येभ्यो वष्ट्रवचनं—भद्टारकपादाः द्रव्यादि। विकल्पेऽपि वष्ट्वचनं क्रिवित्—यथा—सुमनसः सुमनाः, चस्ररसः चस्रराः द्रव्यादि। पाषितः १।४।१०२-२०३।
- ‡ विभक्त्यत्त्रश्रन्थः (द)पदसंग्रः, तद्वित्रश्रन्थः (लि)लिक्षमंत्रः खात् । (१२२) त्यलीपे व्यलचणिति त्यायात् लुप्तविभक्तिकामा पदलन्तुः चातिदेशिकं यथा, जमा,गीरीत्यादि । भाविनिः १।॥१४, १।२ ॥५.॥६ च ; तत्राते वि = मातिपदिकत् ।

## १५। लुपि न सन्ध्याद्यविधी।

. (लुपि ७), न ।१।, सन्याद्यविधी १॥) ।

लुबिति लोपे क्षते यो लुप्तस्तदाद्यन्तयोः सस्थिने स्थात्, तदा-दास्य चयो विधिः स चन.स्थात्। ≉

## १६। चादिर्गिनि: ।

(चादिः १।, शिः १।, तिः १।)।

चारिर्गणो गिथ नि-संग्न: स्यात्। 🌵

## १७। णमितोऽन्याचोऽन्तेऽन्यस्यादी।

(चम-इत: १॥, चल्याच पूर, चली ा, चल्यस्य ६), चादी ७।) ।

<sup>\*</sup> लुप्यब्देन लोपे कते यो लुपसदायन्तयोः सिक्षर्न छ।न्-वैया, (३७) हरएि । तदायस च विवानं यन किसपि तद्म स्वात, तेन राजस्याभित्यादी (१०८) न या। इदन्तु न सर्व्यन, दश्री भक्षीकरण इत्यादिज्ञापकान्, कविन प्रायाकारस्याने विधि-भंवतीति, यहा नजा निर्द्धिसनित्यमिति न्यायान् भस्यीकरण्यित्यन न लुप्यपि प्राया-कारस्याने दंभीवतीति। चन, पादिपदेन सिश्चे अध्य इति प्रवर्णयहणम् प्रवर्णीयत-निवेषायम्: तेन लुप्तस्यादिस्थितावर्णनिमित्तकविधिरपि न स्थान्, यया, — राजभितिस्यन (१०६) न ऐम्। प्रश्नितिक्षन्तु स्थादंव, यथा, प्रक्रवतिषु इत्यादी नस्य लुप्यपि इलान् (१११) षत्यम्। प्रव 'सिक्ष'श्रस्यहण्यप्तर्ण (२३) दामीदर इत्यन ऋर्य लिखितम्। पाणिनि: १।१।६६।

<sup>†</sup> चादिर्गणः — च, वा, इ. इा, हि, ही, हे, ही, रे. भी, तु, तु, ध, वे. भी स, खिब, चइ, एव, एवम, नृनम्, अवन्, भूयस् चेत् निवित्, यत्न, दल, इला, साङ्, नुक्र, यादन्, सावन्, वपट्, वीषट्, खाहा, खधा. खिला, घोम्. खल्, लिला, घथा, सहु, भ, भा, इ, ई, छ, ज, घट, छ, ए. ऐ, भी, भी, यथाः, तथा, यदि, यत्, तन्, किस्, धिख्, इ। हाइ, भाही, छत, भहे, भाही, भथी, नतु, भिस्, पिख्, पिख्, दिख्, तत्, किस्, धिख्, जात्, क्यं, कुतः, कुत्र, भाही खित्, दिख्या, भङ्ग, पट् भ्रष्टे, घरी, उर्दरी, उर्दरी, उर्दरी, उर्दरी, उर्दरी, उर्दरी, उर्दरी, उर्दरी, कर्दरी, तिर्थक्, इथादि; —गिय-प्राद्धी विश्वतिः, एते (नि)निपातसन्नाः खुः। गिश्वदेने हं गिमंन्नापठिता एव एडाने — भतएव खब्यादीनामधीदी गिसंन्नाभाविऽपि निसंन्ना भ्रम्यसंन्ना था। पाणिनः श्रास्क

णित् यसीचिते तस्यान्यादमः परः, निदन्ते, जिदन्यस्य स्थाने, मिदादी, स्थात्। \*

#### १८। परस्य:।

(परः १।, त्यः १। 🚶 ।

प्रकृते: परी यः स त्यसंज्ञः स्थात् । 🕆

## १८। ऋं ऋ: नुवी।

(अ प: ११॥, नुवी १॥) ।

श्रकार उचारणार्थः, विन्दुदिविन्दुमात्री वर्णौ क्रमाझु वि-संज्ञी स्तः । इः

# २०। ्क × पौक मून्यौ ।

वज-गजकुमाकती वर्णी क्रमात मू-नी-संजी स्तः। §

अपन्—पं न ङ म— इत् येथां ते संस्तिः, चन्ते सवस् चन्त्रं मुचन्यद्वात् चिचिति तसात् चन्त्राचः । सूर्वन्यकारिदागमः स्थानिनः चन्त्राचः परे भवति, दन्त्रमकारिदागमः स्थानिनः चन्त्रामः स्थानिनः स्थानिनः स्थानिनः स्थानिनः चन्त्राचे । यस्योचिते इति षष्ठान्तिनद्वेशात् प्रत्ययेषु न प्रसङः । तेन ङकारेतो ङी-चादिविसत्रायः चातिः परा एवं पुर्वन्यकारंतो स्थाद्यः धातीः परा एवं पासिनः शारीष्ठः शारीष्ठः अष्ठान्ति । स्थापिनः शारीष्ठः स्थातिः परा एवं प्रतिनः स्थापिनः शारीष्ठः स्थातिः परा एवं प्राणिनः शारीष्ठः स्थानः स्थाने । स्थापिनः स्य

<sup>†</sup> मक्रतेः परीयः सं(त्य)प्रत्ययस्तः स्थात्। पदस्य सूलभागः प्रकृतिः। "प्रती-यते विधीयते इति प्रत्ययः।" सिङ्कालकौसुदी। पैपणिनिः शशरा

<sup>‡</sup> तुरमुखार:। विविंसर्ग:।

मूर्तिव्रामृतीयः — निव्वामृतीवार्यः । नीवपाभानीयः — उपाधानीयस्थीलानिः
 स्थानम् भोषः, चवारवन्तु सर्पत्रास्वत् । कपाव्यारथार्यौ । (६० स्वं द्रष्टस्यम्) ।
 नु-वि मू-नीनां चलविधी स्वरता, स्वरस्थी न्यसनता, तथान-- नुवी पूर्वेत सम्बद्धी

## ११। हो अस्।

(इ: १।, मास् ।१।)।

इकारो आसंजः स्वात्। \*

इति संजापादै.।

२य पादः—श्रच्सन्धः। गं

## २२। सहर्गे र्घः।

(सह।१।, चें ७।, घं: १।)।

र्णे परे पूर्व्वस्य, र्णैन सच्च घी: स्थात् । 🕸

मृत्यौ तु परगानियौ। चेलारीऽयोगवाडाख्याः खलकर्म्यख्यो नताः। चचः स्वयं विराजने, इससुपरगानियः॥

- भस्मत्याद्वारमध्ये (३) इकारस्याभावान् (५०) व्वंदितिमित्यादिसिद्धार्षे इकारी
   भस्यंत्रायां परिगणितः । पाणिनौतु इल इति पृथक प्रत्याद्वारस्वीकारः ।
- † संयोगशीलथब्दानामसंयोगे तेवासुकारणकाकंछान् चस्याव्यता च सुवित्त, तहीव-निवारणाय ही शब्दी, पूर्वशब्दभेषाचरस्य परशब्दप्रथमाचरस्य वा स्वस्थोदां परिवर्तनेन, संयुक्येते,—प्वंविधसंयांगः सस्विराच्यातः। तस्य सामाव्यनियमः—सस्विरेकप्दे निस्थी निस्थो धातुपसर्गयोः। समासेऽपि च निसः स्थात् स चान्यव विभावितः॥ प्रति ।

सरारि:, लत्सीय:, विष्णुलवः, धातृतिः, मल्रुद्रन्तः, हीत्-कार: । 🕸

## २३। श्रादिगेचोर्णुबी।

(भात् ५।, इ.क.एची: ६॥, खन्नी १॥)।

श्रवर्णात् परयोरिगेचोरवर्णेन सन्द क्रमात् खत्री स्त:। 🕆 **हृ**षीकेशः, दामीदरः । ध सन्धिग्रहणात् सन्धितुष्येव न सन्धिः। § माधवर्डि:, प्रिवल्कारः, कणीकालं, मुकुन्दीकः, कणीकां, भवी-षधम्। १

# २४ | गेधीरनेधिन एड्-ऋको: । (गः ६।, धोः ६।, धन्-एष्-इनः ६।, एङ-ऋको: ६॥) ।

गैरवर्णात् परयोरिधन्विर्जितस्य धोरेङ्ऋकोरवर्णैन सह क्रमात् खवी स्तः। ∥

सुर-मरि: = सुरारि:, लच्ची-द्रेश: = लच्चीग:, विक्-उत्सवः = विक्तावः, घाट-स्टिंड: = धार्गेंड:, मज़-खदनाः = मज़्दनः, हीव-खकारः = हीतृकारः।

<sup>†</sup> अवर्णात् परस्य यथासभावम् इकः अवर्षेन सह गुणः (८) स्थात्, एवस् अवर्षेन सद बिंड: (१) स्थात्। पूर्वतः सहानुवत्तिः। पाणिनिः ६।१।८०-८८।

<sup>🖠</sup> भूगीक-र्र्श: = इशीकेश:, दामन-खदर: = दामीदर:।

<sup>§</sup> लुनि न सम्भावविधी रत्यत्र सन्धिणव्दयद्वणात् सम्यध्यायसूत्रेण लुग्रेव सन्धिनं स्वात, अध्यायान्तरसूत्रेण लुपितुसन्धिः स्थात्. अतोऽत्र दासन् इति ग्रन्दस्य न-कारस्य भध्यायान्तर(भजन्ताध्याय)सूत्रेण (११८) लुपि दासीदर इति सन्धिः।

<sup>¶</sup> साथव-ऋडि:⇒ साधवर्डि:,शिव-ऌकार:⇒ शिवल्का×:,क्षण-एकस्यं≔ क्रचीकालं, सुकुन्द-भीक: = सुकुन्दीक:, कृषा-ऐकां अकर्षीकां, भव-भीषधम् = भवीषधम् ।

<sup>📗</sup> मात् सद्व चेश्यनुवर्भते। खपसर्गाणां मध्ये प्रपराचप मन उप मा(उः) एभाः

प्रेजते, परोखित, श्रपाच्छेति। \* श्रनेधिनः किं—उपैधते, श्रवैति। क

## २५। लिधोर्वा।

(लिघी: ६।, वा (१।)।

लिधोलु पूर्व्वीतां कार्यं वास्यात् , क्ष प्रेकीयति प्रैकीयति, प्रांचीयति प्रौघीयति, प्रार्चीयति प्रर्ची-यति, प्राल्कारीयति प्रस्कारीयति ।§

## २६। लोपोऽस्थोमाङोः।

(लीपः १।, अस्य ६।, श्रीम्-भाडीः ॥) ।

बवर्णस्य क्रोमाङोः परयोत्तीपः स्यात् । ¶ यिवायोत्तमः. थिवैद्धिः ब्रह्मोतं, राजर्षिः । ∥

ारस्य एघ-४न वर्जितस्य घातीः प्रादीनामवर्षेत्रं सह एक्षीगुणः (८), स्वकोडितः (८) स्यात् । घातीर्जृकाराभावात् एङ्स्वतिस्थिनेकापि प्रष्टसित्तै स्वयद्वयं परवानुङ्खयंसीय । गिणिनि ६।२।८८.८१.८४ ।

- प्र-एजते च प्रेजते, परा-भोखित क परीखित, अप ऋष्किति = भपार्क्कात ।
- † उप-एधते (२३) = उपेधते, श्रव-एति (२३) = श्रवैति ।
- ‡ पूर्व्वाक्तिनिमत्तीभृतेन उपसर्गावर्षेन सह नामधातोः एउन्हकीः क्रमैं।त गुण(८) ह्वी (८) वा सः। प्र-घोद्वारीयति इत्यादी पूर्व्वापरयीः परिविधर्वज्ञान इति नायान्। ।रस्वेष (२६) घवर्णस्य लोपे प्रोद्वारीयनि. न तु पौद्वारीयति । पाणिनि: ६।१।१-१,८४।
- ं ६ प्र-एकीयांत = प्रेकीयति (वा २३) प्रेकीयति, प्र-भोषीयति = प्रोघीयति (वा २३) वियति, प्र-स्थीयति = प्राचीयति (वा २३) प्रचीयति, प्र-स्थायति = प्राचीयति, वा २३) प्रस्कारीयति ।
- य इन्ह भवर्णयहणं सह-निवृद्ध्ययंत् । भवर्णस भोद्वारे भादिष्टाङ च परे लोप: यात, भनादिष्ट भाङि परे दीवेंग्येन पदसिक्षे: भवर्णलीपस्य वैयर्कात् । पाणिनि: !११८५ ।

∥ शिवाय-चीम्-नमः (५०,५१) == शिवायीज्ञमः ; चत्र, स्तीपोऽध्यादेश खचते इति शयात् स्थानिवदादेश इति नियमेन चकारस्य स्थानिवस्तेन सर्याग्रीरिति (३०) स्थानिवदादेगः। \* दयोविभाषयोर्भध्ये विधिनित्यः। १

## २७। एवेऽनियोगे।

(एक्के ७। पानियोगे ७।)।

अवर्णस्ट एवे परे लोप: स्थात् अतियोगे। ध भ्रदीव । नियोगे तु— श्रदीवृगच्छ । §

# २८। वौष्ठोत्वोः से।

(बा ।श. चीशीबी: ०५. से ०।) ।

श्रवर्णस्य श्रीष्ठीत्वीः परयोत्तीपः स्थात् वा से सति। श विस्बोष्ठ: विस्बोष्ठः, स्थूलोतुः स्थूलीतुः । । 🕏 विलं—तवीष्ठः । ॐ

यकारस्य न लुप्। शिव मा-इडि (२३) = शिव-एडि = शिवेडि, पा-जतम् (२३) = भीतं, ब्रह्म-भीतः = ब्रह्मीतम्, भा-ऋतिः (२३) = चर्विः, राजा-भविः = राजविः।

- स्थानमस्थासीर्तिस्थानी, भादिग्रातेऽसी भाटेश:। यो वर्षीयस्थ वर्णस्थ स्थाने चादिष्ट: स पूर्वावस्वत भवतीत्ययः । वस्तुतक्षा येषु चनिष्टं तेषु स्थानिवस्तं नासि, चत्रव प्राच:--इष्टमाधनार्थमेव न्याय: स्वीकियते, नत्वनिष्टमाधनार्थमिति । पा.१।१।५६।
- 🛨 पूर्व्यापरयी: स्वयी: विकल्पवाचिमि वाशव्हे प्रयुक्ती तन्त्रध्यवर्त्तिनि सूर्वे सूत्रथी: सुर्वेषु वा वामब्दस्य भानुवृति:, भतस्तिविधिर्नित्य:, यथा--(२५) लिधीर्था, (२८) बौष्ठीलो: से, इत्येतयोर्नर्भ्य (२६) लोपोऽस्यामाङो:, (२०) पर्वेऽनियागे इत्येतयो: बाग्रन्टस्य नान्द्रति:। यच त वाग्रन्ही व्यवस्थावाची, तत्र विभाषाद्वयमध्यवत्तिंन: इष्ट-लात निखलमें भनिष्टलादनिखलं बीध्यम्—तेन (३०) भशांधीरिति, (३८) गांबेंसेतयी-र्मध्ये, (३०) एङीऽत: इत्यस्य नित्यत्वम्। (६६) से तुकास्त प भी वैति, (७१) यवाचि द्रस्थेतयोर्ने थे, (६०) भसि भनिति, (६८) का खप प्रशेर्मन्याविस्थेतयोर्दयार्विकल्पः, (६८) अतीऽब्र्यः, (७०) च भो भगी दखतयोदयोनिस्यलम् ।
  - 🛊 भनियोगे भनियभे भनवधारचे इस्पर्धः। "एवे चानियोगे" इति वार्त्तिकाम्। ६ पर्दा एव = परीव । पदा-एव गच्छ (२३) ⇒ परीव गच्छ ।
- कु ची छे बोती च परे चवर्षस्य लोप: स्वादा समासे। वाशव्हसीह स्वतस्थादा विन त्यात् मंत्रायां निष्यम् भवर्णभीपः स्थात्,तन प्रोष्ठी वषः,प्रीष्ठी नत्यविश्वेषः । वार्तिकम् ।

॥ विम्ब-घोष्ठ: = विम्बोष्ठ:, स्यूल-घोतु: = स्युलोतु:, (वा २३) विम्बोष्ठ:, स्यूलोतु:। विमे रव चीष्ठी यसः, स्यूखयासावीतुचेति समासवाकान्।

क से किंा—से दति कथनुक्तम्, भननासे-तव-भोष्ठ. (२३) = तथौष:।

# २१। बीसे लतो बिं।

्र (ची से ७). तु १११, च्हतः ११, ब्रिं २।) ।

अवर्णात पर ऋतो विमाम्नीति त्रीसे सति। \* श्रीतार्त्तः। के वीसे किं -परमर्त्तः। अ वन्तस्य नानुवृक्तिः। §

३०। ऋण प्रवसन वत्सर वत्सतर दश क्खलस्याः। (स्य-क्रम्बस्य ६।, स्य. १।)।

एषामवर्णात पर ऋणो विमाप्रोति। ऋणाणें, प्राणें। ¶

## ३१। खाचयोरीरोहिन्यौ(ग्यौ)।

(ख-भचयो: ६॥, ईर-अहिन्यौ १॥) ।

<sup>\*</sup> प्रधंवन्नात विभन्नेविपरिणाम इति न्यायात (२६) लीपोऽस्थेभाङोरित्यवर्णस्य विभक्तिं विपरिणमयाह अवर्णात पर इति । वृद्धिविधानदर्भनादेव सहानुवृत्तिः । तृतीयासमासे अवर्णात परस्य अव्यवहितस्य ऋतभव्दऋकारस्य पृत्रीवर्णेन सह वृद्धिः स्थात (८)। पाणि नि दाशप्ट मुत्रस्य वार्त्तिकमः।

<sup>†</sup> भीत-ऋत. – भीतार्भः । भीतेन ऋतः — पीडित इति हतीयात् स्वसमासः । एवं स्रधाः कतः - स्रधार्तं इत्यादि ।

<sup>‡</sup> परम ऋतः ≔परमर्तः। परमश्राधी ऋतर्शत कर्माधारयसमासे ऋतस्य इद्याभावेन (२३) ग्णः (८)।

<sup>§</sup> तुकारान्तस्य पदस्य परमुत्रं चनुवृत्तिर्नास्तौति । चनेन ज्ञापक्षेन लन्तिननपदस्य परसूर्वेऽतुव्वत्तिः स्चिताः, परन्तु ज्ञापकि शिद्धभनित्यनिति न्यायात् कचिदनिष्टे नार्नुवर्त्तते ।

ष सरणापन्यनार्थम् सरणम् सरणाणे, प्रक्षष्टरणं प्रार्णं, वसनार्थरणं वसनाणे, वलरिक देयस्यं वलारार्ण, वलातरार्थस्यं वलातरार्थं, दश ऋगाः पयीदुर्गाणि सन्ति यिक्षन यस्यां वा दशाणीं देश: दशाणीं नदी, कम्बलार्थस्यं कम्बलार्थम् । ऋणीऽस्त्रियां पयोद्भें देशे नीचे दुरात्मनीति पदगोविन्दः। एतदन्यत्र तु (२३) गुणः-स्था, भधन-ऋषः; च भधनर्षः, उत्तर-ऋषः = उत्तर्भर्षः । "प्रवस्तरकस्वलवसनार्षदेशानाः सर्थे इति वार्त्तिकम्। "अँव कालापानुसारियो वसारभव्दमपि पठिला वसारे देयसर्थं विकारार्थिनित्यदाइरिना। अपरेत्वक्ताश्र च्हमपि पठिना। तक्तार्वेभाष्यादिविरुद्धम्'' इति प्रीटमनीरमा ।

भनयोरवर्णात् परावेतौ त्रिमाम्रतः । \* स्वैरम्, भचौहिणी । ф

## ३२। प्रस्रोढ़ोज्युहाः।

्र (प्रस्य ६।, कड-कड़ि-कहाः १॥)।

प्रसादर्शात् परा एते त्रिं यान्ति,। प्रीढ़ः, प्रीढ़ः, प्रीहः । क्ष

(वा ।१।, एष-एथी १॥)।

प्रस्थावर्णात् परावेती विं वा प्राप्नुतः । प्रैषः प्रैष्यः, प्रेषः प्रेषः ।§

३८। मनीषा:। '(१॥)।

#### मनीषाद्या निपालकी । श

- \* स्वाचियी: कससाह—स्वस्य भकारात् ईरः, भचस्य भकारात् किन्ति च, तिन सङ्गिनाग्नीति। सूत्रे ईर इत्यस्य भकार चित्रास्थार्थः. तेन रिकाल ईर् इत्यस्य सङ्गं, तेन ईर-ईरियो: प्राप्तिस्ति—यथा, स्त्रेरं. स्त्रेरी, स्त्रेरियो। स्त्रेरा इत्यत्र न स्वादनिभिधानात । मलादिरिहिते स्त्रेरं स्वच्धन्दमन्दर्योस्त्रियिति शब्दासिः । भचाषा-सृहिनौति वाल्ये "सज्ञायानेव" भचौडियो (यलं)—परिमायविश्वेषविशिष्टा सेना। भवाषासृहस्तर इनि कति तुभवीडियो (नो) स्वय भवति । पूर्वेवत् वार्तिकस्।
  - + ख-ईरं ⇒ खैरम्। भच-किश्नो = भधौहिषौ।
- ‡ प्र-कदः = प्रौदः, प्र-कढिः = प्रौदिः, प्र-कडः = प्रौडः। जडभातीः घर्ष् प्रस्थयेन जडभ्रव्दः साध्यः, वडभातीः जुक्त-क्रि-प्रत्थयाभ्यां कदः किंदः इति पदद्यं शिक्षम् प्रोदी भार ईत्यच प्रपूक्षांदाङ्पूर्वाच वडभातोः क्रप्रत्यये रूपम्। पूर्व्यवत् वार्तिकम् काश्रिकाडिति-कलाप-सुपग्न-सिवासमारमते (प्राचां मते भाष्येऽपि) वार्तिकस्चे जडभ्रव्दस्स स्वक्षेत्वी नास्ति, नव्यानां मते तुभाष्य तदुक्षेत्वी द्यस्ति।
- ु विकल्पन इडिविधानात् पर्च गुणो भवतीत्थवसीयते, इयभेव याशव्दस्र व्यवस्था। प्र-एष: च प्रैष:, प्र-एष: च प्रैष:। दूत इत्थवं:। पुरुषंवत्त्र वीर्तिकस्।
- कृ यत् यत् खर्चणनानुत्यमं तत् स्वं निपातनात् सिञ्जिति भाष्यम्। तस्य सिश्चिः क्वित् वर्षाननेः, कवित् वर्णविषय्यैः, किवत् वर्णविष्यैः, किवित् वर्णनामैः, किवित् वर्णनामैः, किवित् स्वं नामैः, किवित्र सित् वर्णनामैः, किवित्र सित् वर्णनिप्ययम्, की चापरी वर्णविकारनामौ । चातीलदर्णोतम्थेन योगसदुत्रसे प्रविधं निदक्तिनिति पूर्वाचार्योः। पाणिनि ६।१।८४ स्वस्य वार्तिकम्।

प्रनीषा, इतीषा, लाङ्गलीषा, यक्तन्धः, कुलटा, सीमन्तः, पत-इतिः, सारङ्गः । \*

## ३५ । यलायवायावाऽचीचः।

(यल-भय-भाय-भाव: १॥, अभि ६।, इच: ६। — यला ३।, वा) ₹

ह्यः स्थाने य्व्र्ल् श्रय् श्रव् श्राय् श्राव् एते श्रवि परे क्रमात् स्यः पि त्रास्वकः, विष्णुगिते, धात्रचुती, लालतिः, इरये, ग्रमावे, नायकः, पावकः। इ

## ३६। वाव गोर्दान्ते।

(वा ।१।, अव ।१।, गी: ६।, दाले थैं।) ।

मनस्देश = मनीया — वृद्धि:। इल-देशा → इलीया, लाइल-देशा ⇒ लाइलीया, विवास सार्थित सार-सृपद्म-मति देशा गमनम्। धक-प्रसृ: — अकस्य: — कदेशस्थल्पः। कर्ताणां राधामस्य कर्त्तस्थियि वक्तस्यम्। कुल-प्रटा ⇒ कुलटा — विवास । सीम-प्रसः — सीमनः — की बिन्यासः। पतन्-पञ्चलिः = पतञ्चलिः — सुनिवेश्यः। सार-प्रदः = सार्वः — चानकादिः। एक्तस्यादिषु परवर्ष वाचिमिति वार्त्तिकम्। पत्र प्रमुखी चन्तिपित्वादिष्ठिति तृत्वे वहवचनिर्दित्तात् वृत्ती चादिपदस्योपादानाधात्रात्यापि पदानि निपातनात् सिध्यन्ति, इत्यादि वहवचनानाः गणस्य संस्वकाः इति । तथाच — वहस्यतिः, वाचस्यतिः, वनस्यतिः, वलाइकः, गोणदम्, पास्यदं, तौम्तः, तस्त्रः सस्तरी, प्रवी, पायर्थं, प्रयोदः, केशवः, परीय, प्रचाईं, रिसन्दः, सुवर्लोकः, चलोऽवम्, परस्यर, परम्परा, पिशाचः, कपित्यः, निकां, विकारितः। पाणिनिः ६।११९०६।

<sup>+</sup> इ. उ. च्ट ए भी ए. भी एतेषांवर्णानांस्थाने क्रामेण---

यृ व् रृ ल् भय् भव् भाय् भाव् एति क्षमाभ स्य भव्ये एचि भस्मान-ति भ परे। समान-दिक परे तु (२२) दीर्घण्व, यथा— लच्छीयः, सामान्यविभेषयी-वैभ्ये विभेषविधिर्वलवान् दित न्यायात्। स्त्रे यल दित भकारान्तपाठः उच्चारणसीक-यायः (४)। पाणिनिः ६।१।७९-९८ ।

<sup>‡</sup> त्रि-पस्वकः = त्रास्वकः, त्रीथि पस्वकानि चत्ति यसा । विण्-ईशी = विण्वीशी, धाट-पत्यानी -- धात्रच्यती, त्र पाकृतिः -- लाकृतिः, त्रकारश्चेव पाकृतिर्यस्य । इते ए --इरये, सभी ए = शभवे, नै-पकः -- नायकः, पी-पकः -- पावकः ।

गोरिचः स्थाने अवः स्थादा अचि परे हान्ते। \* गवेगः, गवीगः । हान्ते किं, गवे। गवेन्द्र-गवाची नित्यम्।

# ३७। ऋयां योर्जुब्बा।

व प्रयां ६॥, यी: ६॥, लुप् ११।, वा ११)।

दान्ते खितानामयादीनां यवयोर्जुप् स्याद्या । क्ष हरएहि हरयेहि, यभददं यभविद, त्रियाएति त्रियायेति, विष्णाउलाः विष्णावलाः । §

## ३८। एङोऽतः।

(एङ 🚜 ।, श्रत: ६।)।

दान्ते स्थितादेङः परस्य त्रकारस्य लुप् स्थात्। इरेऽव, विश्योऽव। ¶

अ द क्यस्यानुहत्तिः। चव दित प्रयक् विधानात् गांग्रज्यस्य भोकारस्याने चकारात-भवादेशः स्थादा चित्र पदाले। हत्तौ गीरिचः ग्रहणात् विचा गौर्थस्य क्यादौ (३६०) गवावादिरित्यादिना गीराकारस्थाने क्रस्य-चकारादेशे चित्रगु-भाषार्यः - चित्रगवाद्यः द्वयादि सिडम्। गवीश द्वयुदाहरणानन्तरम् च्रयां यौरिति स्वयक्तरणात् नात्र वजीषः, कीवित् समार्म न स्थादित्याहः। पाणिनिः ६।१।१२३।

<sup>†</sup> गी-ईशः (२३) ⇔गवेशः, वा (३५) गवीशः । गी-ए (३५) = गवे । गी-इन्द्रः ⇒ गवेन्द्रः, गी-चवः ⇒गवाचः, उभयव नित्यमवादेशः । पाणिनः ६।१।१२३-१२४।

<sup>‡</sup> भयाम् इति बहुवचननिर्देशो गणार्थः। पदाने स्थितानाम् अय्, भव् भाय्, भाव्, इत्येषां य्वीर्लुप् स्थादा । अत्र वाश्रन्दस्य व्यवस्थया—कि चित्र स्थान्, कचित् वां स्थान्, कचित्रित्यमिति स्थृतम् । भभिषानादुदाहरणानि ज्ञेषानि । पाणिनिः पाश्रश्था

<sup>§</sup> इर्र-एहि (२४) = इरय्-एहि (२०) = इरएहि, सभी-इर्द (३५) = सभाव-इर्द (३०) = सभाइटं, श्रिये-एति (३५) - श्रियाय-एति (३०) - श्रियाएति, विश्वा-उत्तः (३५) - विश्वा उत्तः। वा (३५) इरयेहि, सभाविदं, श्रियायैति, विश्वावतः। (१५) सम्बन्धिः।

<sup>् ¶</sup> चपदार्च यया – श्रे चर्ग (३५) च श्रयमं, भी अपनं (३५) च अथनम् । पाणितिः इं।रार०६ ।

#### ३८। गोवी। (गी: ≰।, वा ∣१।) ।

गीरति वा सन्धिः। \* गवायं गीऽयं गी-त्रयम्। प

# ४०। नाजो त्रान्तोऽनाङ् नि: सुञ्च।

(न ।१।, भच ।१।, भी-भन: १।, भनाङ् ।१।, नि: १।, मु: १।, च ।१।)।

अञमात्र श्रोकारान्तय' निराङ्वर्जः सन्धिं नाप्नोति, प्रुस । 🕸 अञ्चनन्त, दर्दछर, उउमेश, त्रहो-देशान, क्रण-एहि । ग्रनाङ किं--

> मर्खादायामभिविधौ क्रियायोगेषदर्धयोः। य त्राकारः स ङित् प्रोक्तो वाक्यस्मरणयोरङित्॥ §

एतमातं जितं विद्यात् वाक्यसार्णशीर जित् ॥

अर्थवधात् विभक्तेर्विपरिणाम इति न्यायात् अतः इति षष्ठान्तपदं सप्तस्यन्तं भुला चनुवर्त्तते, इत्यत चाइ गीरतीति। प्रकरणवशात् सन्ति:। चत्र पूर्वस्तात् एउटः इ.स.नवर्स्य एङ लस्य गीरिति वक्तव्यम्, तेन (चित्रगु-घग्रम्) वित्रव्यमित्यत्र नास्य सूत्रस्य प्रसर:। पाणिनि: ६।१।१२२।

<sup>+</sup> गी. अयं (३६) = गवायं, वा (३८) = गीऽयं (३८) = गी. अयन्।

<sup>🕆</sup> घचमात्राव्ययस्य, भी कारान्ताव्ययस्य, मृतस्य च, घन्यावयवस्य ब्रव्हानरस्यादाः वयवेन सङ्ग् सिस्:। तेन अनन्त भ, र्द्शान-भड़ी इत्यादी सिस्: स्याटेव। भी भन्त इति पृथकरचात् चच्पदेन तन्त्रात्रं प्रतीयते, चन्यया व्रजनदरल (५०४) इत्यादिवत् भन्ननस्येव प्राप्ति: स्यात्। तीन भ, इ, उ, च, छ ए, ऐ, भी, भी, इस्त्रेक्नेक निपात:, एवसीकारान्तीऽपि निपात:। नजा निर्दिष्टमनिस्यमिति न्यायात् ऋडीऽतिरस्यमिस्यादि-बिक्ति:। पाणिनि: १।१।१४१५।

६ जिल्दन्वस्थयत्वस्य भाकारस्य भाज्यं भेदज्ञानं कथम् इस्यतं त्राष्ट--य प्राकारः---मर्थ्यादायां सीमायाम् (१), चभिविधी चभित्याप्ती (२), क्रियायोगे — क्रियावाचकपदः पूर्व्वतित्ते (३), ईषदर्थे प्रस्पार्थे (४), वर्तते, सं ङित् ग्रीकः, तस्य सन्धिरिति भावः । महाभाष्ये यथा—र्नुषदर्थे क्रियायोगे मर्व्यादाभिविधी च व:।

पासवीधारैकदेशादानोक्यापरतेर्हरिः। पा एवं तत्त्वमर्यादा, पा एवं तत् कतं मया॥ \*

8१ | ब्वद्गेडमीय | (बन्दे का, मनी ई जन्ए च्यू ।१)। व्ये निष्यं तीडमी-प्रव्यो, दे निष्यं दें दृदेदन्तय सन्धिं नाप्रोति।१ प्रमी ईग्राः, हरी-एती, विष्णू-४मी, गङ्गे-इमे। व्यद्धे निम्— प्रमथ्यं, वध्वष्टेः। इ

8२। स्थोद्देती। (वि.भोत - स्थोत्। ११, वा ११, रती ११)। सी जात भीकारः सन्धिं वा नाप्रीति इती परे। §

<sup>#</sup> यदा, पा-पात्मवीधात् ~ पात्मवीधात् — पात्मज्ञानपर्यंत्रम् (१)। पा-एक-देशात् ~ ऐकदेशात् — एकदेशं करचरणादिकं व्याय्य(२)। पा-पालीकि = पालीकि — हष्ट स्त्ययं: (३)। पा-पपरतै: = पीपरतै: — देवदिवरत्तै: (४)। य पाकार: — वाकार्यं (१) पूर्ववाकार्यांतुभवशी: (२) वर्षते, स पिडिल्, पत्रप्व तस्य सिर्धनं स्वादिवयं:, यथा, पा एवं तत्त्वस्य बद्धाणी मर्यादा इति वाकां (१), मया तत् कृतम् पा एवम् इति स्वरूपम् (२)।

<sup>†</sup> वहतवनिष्यतः चमी अव्दः, विवचनिष्यतः ई कारामः ककारानः ए कारान्य स्वस्थिं नाप्रीति । चत्र ईकारादेः सस्थिनिष्धात् तिविमत्तकस्थापि सस्थिनिष्धी बीध्यः —तेन गक्षे-चत्र स्थादौ नाकारखोपः । पाणिनिः १।१।११-१२।

<sup>्</sup>षमी-प्रयम् = प्रस्यस्, प्रमी - रोगी। वध्या प्रयं: (३११) च वध् प्रयं: च वध्यथं: एवं नार्या-प्रयं: च नार्य्यः रखादी जकार ईकार्यः विवचनिष्यव्रताभावात् सिन्धः स्थादिति। वजा निर्दिष्टमनिष्यमिति न्यायात् विवचने प्रदस्य एकारस्य सिन्धः स्थादिति, तेन प्रमुके रह (३५,३०) प्रमुक रह प्रमुक्ति हु प्रमुके प्रच (३८) च प्रमुके रेष, एयं मणीवादिवु दिवचनिष्यव्रस्थापि ईकारस्य इवे परेसिन्धः स्थादिति। यथा, मणी भाष्यां पत्री चैव दस्पती जन्मती तथा। रोदसी वासकी चैव दवे जायापती तथा। प्राचेरपीह प्रसुक्ते पेचुपोप्रस्तान्यपीति मणीवादयः। प्रथम इवायस्य वाश्वस्स्य वाश्वस्स्य का स्वीकादिव ते साध्याः। ईट्नीहीर्वयद्यान प्रभवावद्यावासिस्य व श्रस्त्य सन्धः।

<sup>§</sup> सौ परे जात घोकारः छकारान्तग्रम्ट्स्य सम्मोधने एव सम्भवति, स घोकारः सन्धि वा नाप्रीति इति ग्रन्ट्परे । पाणिनिः ११११६ ।

#### विचारे इति विचा इति विचाविति।

## ४३। उञ्गणपान्विच व वा।

(उज् ।१।, ग्रपात् ५।, तु ।१।, पचि ७।, व ।१।, वा ।१।) ।

उज् सन्धं वा नाम्नोति इस्तौ प्ररे, गणात् परसु वो वा स्यादचि । † उ-इति, विति ।, किम्बुत्तं, किसु-उत्तम् । ‡

# 88। वेक् खश्चार्गेऽसे।

(वा ११।, इ.क् ११।,•स्व: १।, च ११।, भर्षे ७।, भरे ७।)।

इक् सिन्धं वा नाम्नोति, खय वा स्थादणे परे, नतु से, दान्ते। § भाक्षी-मन मार्क्षि-मन मार्क्षव। मने किं—हथेर्मा। ¶

# 84 । मटक्यम् । (स्विं श, पक्।रा)।

<sup>\*</sup> विश्वी दति = विश्वी दति, वा (३५,३०) विश्व दति विश्वविति।

<sup>†</sup> अकारीऽस्य नज्बदव्ययत्त्रज्ञापकः । पूर्वतीऽनुवर्त्तमानन वाश्रस्टेन, एज् सन्धि वा नाम्नोति इती परे, इत्येकीऽर्थः । यापप्रव्याक्षारात् परसु व-कारी वा स्थादि इत्य-परीऽर्थः । पाणिनिः १।१।१७, ८।३।३३ ।

<sup>‡</sup> विधिवलात् सवर्थे परेऽपि उकारस्य वलं (१५), न तु दौर्षः (१९)। उकारस्य स्थानिवर्त्तन चन्नदाविन वा टाली म (५१) इत्यनेन न मस्यानुस्तारः। विकल्पपंच (४०) काको चल इत्यनेन सन्धिनिर्धेषः।

<sup>\$</sup> सखुक्त मुत्या (१६) स्वात् दानी इत्यस्थातृ अति:। इक् प्रत्याकार: सिर्धं वा नाप्नीति, क्रसीऽपि वा स्थात्, धसमाने वर्षे परे, पदानी, धसमासे । सिर्धानिषेधसम्बद्धी वाक्रस्ट: पूर्वादतृ वर्षत एव, इक पुनर्वायक चं क्रस्तसम्बन्धार्थम्, धन्यया सिर्ध्धानिषेधसम्बद्धस्य वाक्रस्टस्य सिर्धानिषेधिनेव चिरतायत्वे क्रस्तस्य नित्यतापित: स्थात् । धम वाक्रस्टस्य स्थवस्थावावितात् क्षिप्टिनित्यसमासेऽपि स्थात्, तेन नदा-पन्न इति समासे नदी-पन्नः नदिक्षमः नदामः इति । पाणिनः (११।१२०।

पृष्ठरि-पर्या (२५) — इय्यंशी। क्रस्तान-प्रत्युदाइरच-क्रापकात् क्रस्तान-स्राधि पची सम्बक्षाव इति स्चितं, तन वारि-पत्र वास्येत्र इत्यपि भविता।

त्रक् सन्धिं वा नाप्नोति ऋकि परे खय वा स्थात्। \* ब्रह्मा ऋषिः, ब्रह्म-ऋषिः, ब्रह्मार्षिः।

इति भच-सन्धि-पादः।

३य पादः---हस्-सन्धः ।

# 8ई। स्तु सुभि: सुगात्।

(स्तु।१।, भ्रमुभि: ३॥, श्र्नु।२।, श्रमात् ५।)।

सकार तवर्गी यकारेण चवर्गेण वा योगे प्रकार चवर्गी क्रमात् प्राप्तुतः, नतु प्रात् परौ । \* सचित्, प्रार्क्षिच्चयः। प्रशातु किं—प्रश्नः। प

<sup>\*</sup> इह वाहयमनुवर्त्तते । स्राकौ प्रत्याहारौ । यत्र इत्यसम्प्रावना नाम्ति तत्र च वा सिविरिति — तेन, दिध सः च्छति दध्युच्छति इत्यादि । अत्र असमासे इति नानुवर्त्तते, तन महांयामौ स्विदिति समासं, महास्रविः सहस्रविः सहर्षिति क्यिदाह । अत्र एव "समासे ऽप्ययं प्रकृतिभावः" इति सिज्ञानकौ सुदी । वस्तुतम् अनित्यसमासे एवायं विधिः, तेन प्रगुष्कितीत्यादौ न स्थात् । पाणिनिः ६।१।१२८ ।

<sup>†</sup> सत्-चित् च सचित, शार्किन्-जय च शार्किञ्चय। प्रश्न-नः च प्रश्नः।

## 80 । ष्ट्रीभः द्वष्यदान्तटोः।

(षट्भि: ३॥, षट् !२।, षषि ७।, षदानाटी: ५।) ।

सकार-तवर्गी वकारेण टवर्गेण वा योगे वकार टवर्गी क्रमात् प्राप्तः, न तुषकारे परे, न च दान्नात् टवर्गात् परो । 🕸 तदीका, चिक्रण्डीकरे। अपि किं—सत् षष्ठः। अदान्तटीः वितं--षट-ते । ф

8८। षसां षसवित षसगर्थः। σते निपात्यन्ते । 🕸

88 । ले लस्तोः । (ले अ, लें: ११, तो: ६१)।

ले परे तो लेकार: स्थात्। है तल्लय:, विदाँ लिखिति। यली दिधारी निरनुनासिकः सानुनासिकः। जमीऽनुनासिकस्तेन तत्स्थाने सानुनासिकः ॥ ¶

पूर्वतः सु दत्यस्यानुवृत्तिः । एभिरिति बहुवचनं पूर्ववत् । मूर्वन्यवकारटवर्गयो-रन्यतरेण सह प्रव्यवधाने स्थितौ दन्यसकारतवर्गी क्रमात् मुईन्यपकारटवर्गे। भवतः, न तु मूर्जन्यवकारे परे. न च पदालटवर्गात् परिकाती। घटत्-सत्त इत्यत्र नगटनङ (५०) इत्य-नेन टस्याने तनकरपादेव, अनेन पुन: तस्याने टकारी न स्थात्। पाणिनिः? पाश्रधर-४३५

<sup>+</sup> तत टोका≔ तहीका, चिक्रन्-टौकसे च चिक्रस्टौकसे; हे चिक्रन् संगच्छ-सीत्यर्थः, ढौक्रङ्गतौ इति कविकल्पद्रुमः ।

<sup>‡</sup> षष् नामे -- षसां, षष्भव्दाटामो नुमागमे (११०) निपातनात् षस्य गलै षसा-मिति । यद तुगीयत्वात् नुभागमी न स्थात् तद न निपातनं, तेन भतिष्वाभिस्योद । षड्धिका नर्वात: षस्पर्वति:। षस्पा नगरी षस्पगरी। नगरीति स्त्रीनिर्हेशात् षड्-नगर्मित्यच न स्थात्। ''चनाम्नवितनगरीणामिति वाच्यम्'' इति वार्त्तिकम्।

<sup>§</sup> ती स्तवर्गस्य । पञ्च दाले स्थितयीसकारनकारयीददाइरणवलात् दाले इति •वीध्य, तेन सुबन्**ल्गि (२४२) इत्यचन नस्य ख:। पाणिनि:** ८।४।**६०** ।

<sup>¶</sup> विदाँ क्रिखतीत्वच भनुनासिकहेतुमाह यखी विवेति । भनुनासिकीऽवैचन्द्राकृतिवर्षे

# प्रा मोर्नु र्भस्यदान्ते।

(भी: ६॥, तु: १।, भासि ०।, धदाने ०।)।

प्रदानी खितयो भीनयो नुः स्थात् भसि परे। रंस्थते, बृंहि-तम् । 🎋

पूर्। अपे अम नो:। (अपे श, जम ।१।, नी: ६)। अदानी स्थितस्य नो जीपे परे जम स्थात । यान्तः, अङ्कितः । 🕆

# पूर्। वा त्वरयपेऽरयम्। (वा ११), त ११), अरवपे २०, परवम् ११)।

दान्ते अदान्ते वा स्थितस्य नी रेफवर्ज-यपे परे रेफवर्ज यम् वा

- \* रंखते इति रमधाती: स्पर्ते विभक्ति:, पदमध्यगलात् मस्यादान्तलं, रम्-स्पर्ते == रंखते । इडिधातीः इटिचेन नृणि क्रमण्यः, चतएव नखादान्तलं, वन्-डितं - इंडितं, को अस् (२१) इत्यनेन इस्य अस्त्वन्। भदान्ते इति किं— राजन् भुङ्खः। असीति **विं--- मन्यसे, रम्यते । पाणिनि: ८।३।२४।**
- 🕇 चदाने स्थितस्य चनुस्वारस्य प्रश्चेकवर्गाचरे परे तदर्गश्चेषाचरः स्थात् । चच पूर्व्यः तीऽनुवर्त्तमानेऽपि नीरिति पुनगंहणं छामान्यानुखारपान्नप्रथम्, पून्यया कीयलमकारनकार-भातानुखारपाती जञ्जन्यते (८२७) इत्याचिसिडिः स्थात् । शान्तः = (५०, ५१) भानाः, • चन कितः च (५०,५१) चिक्रत । शनधाती धन्कधातीच कः । पाचिनि, पाश्र५ ।

कदः, अपिच नामिकामनुलस्योक्तत्य उचार्यते इसी इति व्यताच्या अनुस्वार असे च वर्त्तते। नास्ति री यखिन भीऽर; यल इलास्य विशेषणम्,ततय रिभन्न यलप्रत्याहारी दिधा भवति — निर्तुनाशिक: - पर्डचन्द्राक्ततिवर्णश्यः, सानुनाभिक: - अर्डचन्द्राक्ततिवर्श्वपर्धकय । जमः खभावादनुनाधिकः --नाधिकामन्लद्यौक्तत्व जवार्यमाणः तेन हेतुना तस्य स्थाने जायमानी यतः सातुनानिकः चर्डचन्द्राक्ततिवर्णपृर्व्वक एव स्थात्, कारणगुणाः कार्य-गुणमारभन्ते प्रति न्यायादित्यर्थः । एवम् ऋनुस्वाग्जातो यल् मातुनासिको भवति । विदाँ क्रियतीत्वच नस्थानकातत्वान् चकारस्य कर्द्धचन्द्र।क्रतिवर्णपूर्वकत्वम्, अर्थचन्द्राकृति-वर्षस्य भनुस्वारैयत् पूर्व्वेषेव सम्बन्धः । भर दति किम, भवावशीत्यादौ (२६१) वनी न-स्थानजातीऽपि र: निरनुनासिक एव । पाणिनि: १।१।८ ।

स्थात्। \* यत्नोऽतुनासिकः। पं यय्यस्यते यंयस्यते कः, हरि-भाज हरिंभज। कम्पते § इति पूर्वेण नित्यम्। ऋरे किःं— रंरस्यते।

## पूर्। दान्ते मोऽसमाजो इसे नु:। '

(दान्ते था, स: ६।, घछचाजः ६।, इसे था. तु: १।) ।

दान्ते स्थितस्य मस्य इसे परे नुः स्थात्, न तु सम्बाजः। भिवस्तौति। असम्बाजः किं—सम्बाङ्ति। श

## पूर्व । पुंस: सन् खष्यम्परेऽख्ये।

(पुंन: ६), सन् ।१।, खिप ७।, चम्परे ७।, प्रस्त्रे ७।) ।

अप्रयक्षीमात् चदाने इति नानुवर्णते, तेन दाने चदाने वायं विधि: । तथाच, दाने चदाने वा रियंतस्य चनुस्तारस्य यवले परे यवला वा स्थः; दाने स्थितस्य कु वर्गाचरे परे तदगीनो वा स्थाटिल्यंथः । दाने यवले परे यथा—लैंय्यच्छ लंग्रच्छ, संस्कृत्योमि सवर्णीमि, लंबुन्थः लंजुन्थः । चदाने यवले परे यथा—थैंयस्यते यंग्रस्ते, वंबस्यते लंजुन्यः । चनुम्ति यवले परे यथा—थैंयस्यते यंग्रस्ते, वंबस्यते लंजुन्याते संस्कृत्याते स्वस्थते । रमधाताः द्यानदेण लमधातुसिद्धि, रन्मात् सन्पानत्। पाणिनिः ८।४।४.६।

<sup>†</sup> यलोऽतुनाधिक इति—श्वन जायमानी यलः श्रनुनाधिकः श्रनुनाधिकवानित्ययः, श्रश्चादिलादः ल्याः । यमोऽनुनाधिक इति तु लिपिक्रमाद्याटः, तथाले श्रिक्षञ्च श्रुत्वापि श्रनुनाधिकपुन्नेक जमापभेः ।

<sup>‡</sup> यसधाती यंडिं — यं यस्यते = ययस्यते, (वा) यंयस्यते ।

<sup>\$</sup> कन्-पते (५०.५१) = कस्पते। एवं भवनी, ऋजिश्वष्ट इत्यादि। ऋष चनुस्तारस्य भदाने स्थितत्वान पुर्वमृत्रिणैव नित्यमादेश:।

श शिवम्-स्तीति = शिवंसीति । सम्-राज्-इति च ससाउति, इतिश्रव्देन ससाज-श्रव्दी यसिन्नर्थे इटस्चैक् वर्जनिति वीध्यम् । इदिसु—विनष्टं राजम्येन सस्यसस्ययः यः। शास्ति ययाज्ञया राजः स ससाजिलसभीतेः । तेन संशोधनं राजते इति संराट् चन्द्र इत्यच अनुस्तारः स्वादेव । पाणिनिः पश्शश्चारध्र।

पुंसी मस्य सन् स्थात्, ग्रम्परे खिप परे, नतु स्थे। क्ष पुंस्कीतिज्ञः। ग्रम्परे किं—पुंचीरम्। ग्रस्थे किं— पुंस्थातः। प

### ५५। नोऽप्रशासक्क्रते।

(न: ६।, अप्रधाना ६।, क्ते ७।)।

दान्ते स्थितस्य नस्य सन् स्थात्, श्रमपरे छते परे, न तु प्रमाम: कि मार्डिंग्लिस्य, चृत्रिंस्वाहि । श्रम्परे किं-सन्-सारः । श्रप्रमाम: किं-प्रमान्तनोति । §

## पूर्द। कांस्कान् नृं:पिवा।

. (कांस्तान् । १।, नृं: । १।, पि ७।, वा । १।)।

कांस्कान् कान्कान्, नृःपाहि नॄन्पाहि । ¶्

अपम् परी यस्नात् मोऽम्परसिक्षन्, खपौत्यस्य विशेषणम् । पूर्व्वसात् मकारः
 अपनुवर्णते । मनीन इत् तेन (१७) मस्याने भवति ; मकारे अकार उत्तारवार्षः ।
 पाविनिः ८।३।६,वार्त्तिकच ।

<sup>†</sup> पुर्माथाकी कोकिलयेति विग्रहे (१८३) पुर-कोकिल: =(५०) पृंक्ष्कोकिल:, लुप्त-सकारस्यादिविधित्वात् (१५) सस्य विस्गोमाव: । एवं पुंक्कति:, पुंस्पानं, पुंस्पुत्व:, पुंसातक इत्यादि । पुंस: स्वतास्पदीमृतं चीग्म् = पुंचीरम् । पुंभि: ख्वात: = पुंच्यात: ।

<sup>‡</sup> भ्रम्परे, दानी, सन्, इत्येतियाम् भनुवृत्तिः, सनी न इत् (१७) नस्यान्ते भवति ; स्वकारे भकार उदारणार्थः । अत्र सन्धिनातितरनकारी याद्यः, तेन किन्तव इत्यादौ न नस्य सन् । पाणिनिः ८।३।७।

<sup>ु</sup> ग्राङ्गिन्-किन्सि = ग्राङ्गिन्-म-किस्सि (५०,४६) ग्राङ्गिन्किसः। चिकान्-चाहि च चिकान्-स-वाहि (६०) = चिकास्त्राहि । सादः खड़ादिनुष्टौ स्वादित्यमरः । प्रशाम्-तनोति (९०२) = प्रशान्तनोति ।

<sup>¶</sup> कान् कान् इति पददयस्य स्थाने कांस्कान् इति पदंनिपास्यते वा, प्रकारे परे तु

#### ५७। न गटन ङ ञ्चकन् ग्र ग्रस्स ग्रसि वा।

(न खटन डः ६।, चकन् ।१।, म मस् स मसि ०।, वा ।१।)।

हान्ते स्थितस्य नस्य चन् मे, एस्य टन् मसि, टनयोस्तन् से, हस्य कन् मसि, स्यादा । \* . सञ्क्षः: सञ्चामः: सञ्चामः: प्राग्ट्वष्ठः सगण्वष्ठः, षट्सन्तः ष्रृट्सन्तः, सन्तः सन्सः, । क्ष्रः प्राङ्वष्ठः । क्ष्रे

पूट। चपोऽबे जब्। (चपः ६१, अवं ६१, जब् ११)।

्रान्ते स्थितस्य चपस्य जब्स्थात् अबे परे। वागीमः, चिद्रूपः । 🕸

पूर। जमे जम् वा। (अमे था, जम् ११ा, वा ११ा) r

[इति पदस्य स्थाने नॄं: इति सानुस्वारिवसर्गान्तं नियात्यने वा इत्यर्थः । कान्-कान् कांस्कान्, (वा) कान्कान् । नृन्पाहि ⇒नॄं:पाहि, (वा) नृन्पाहि । पाणिनिः ३।१०।१२।३०।

<sup>\*</sup> टस नस टनं, नय णय टनच खर्चित तस्य । चकात् न् चकन्, चक्ँप्रत्याहारः, ।च चन् टन् तन् कन् इति चलारि । दान्तं इत्यन्वक्ते । वा ग्रहणं परव निहस्त्यर्थम् । ।दीनां न् इत्, तेन चले भवन्ति (१७) । पाणिनिः प्राः। २ प्रस्तः ३१ ।

<sup>†</sup> सन्-श्रमु: (५०.५०.५१.६१), चयो यचैकवर्गीया मध्यमत्तच ल्यते इत्यनेम गिपे = सञ्क्रमु:। (पाणिनिमते सञ्क्रभुरित्यपि पदं स्थान्)। (६१) पन्ने न श्रस्य सञ्च्रमु:। चन भ्रमावपचे (४६) सञ्च्रभु:। सग्य-षष्ठ: च सग्त्यहण्डः (वा) ण्यष्ठ:। षठ्-सन्तः = षठ्त्यनः (वा) षठ्ननः। सन्-सः च सन्त्यः (वा) सन्सः। इषष्ठ: = प्राङ्वष्ठः (वा) प्रृष्ट्षष्ठः।

<sup>‡</sup> दार्न्तद्रश्यनुवर्त्तते । चष्र्याने अव् स्थात्, साम्यात् ययाक्रमं वा । वाक्-द्रेगः वागीभः । चित्-द्रपः = चिद्रुपः । पाणिनिः =।२।३८ ।

दान्ते स्थितस्य चपस्य अमे परे अम् वास्वात्। एतं सुकुन्दः एतद्मुकुन्दः। अ

## **६०। त्ये।** (७) ।

त्ये में परे दान्ते स्थितस्य चपस्य अम् स्थावित्यम्। चिन्मयं, वाक्ययम्। पं

### ६१। गहोश्रपात् वांनि क्रमभौ।

(श्रही: ६॥, चपान् ५, वा ।१।, श्रमि ०।, क्-मभी १॥)।

दान्ते स्थितात् चपात् परयोः य इकारयोः क्रमेणामि परे छ-भाभी वास्तः । अंतिच्छवः तच्यिवः, वाग्वरिः वाग्हरिः । श्रमि किं—वाक्षयोतित । §

<sup>\*</sup> चप इत्यन्यर्त्तते । एतत्-मुक्तन्दः - ः एतन्युक्तन्दः,(वा) (ध्रत्य) एतद्रमुक्तन्दः । पाण्यिनिः स्वाध्यक्षः ।

<sup>†</sup> त्यः प्रत्ययः, त्ये जणान ङ द्रत्येतेषासभाषाटाह से इति । विकत्यद्वयस्त्यवर्षि-त्वादस्य नित्यत्वस् । वित-सर्यः = वित्ययं —(४८६) चिदात्मकम् । वाक्-सर्यः = वाद्ययं — वागात्मकसित्ययः । "तत् प्रकृतवचने" इति पाणिनिस्त्रंग (५।४।२१) खार्षे चित्ययः सिति सिद्वस् । ''एकाचो नित्यम्'' इति भिद्रान्तकौमटीसतेन विकाशवयवयोग्ययोः सयटप्रत्ययेन, "तत् प्राचुर्येण प्रमृतसिति" गोथीचन्द्रव्याख्यानेन च वाद्ययमिति सिद्धस् । पाणिनः ८।४।४५ स्वस्य वार्तिकस् ।

<sup>‡</sup> शहीरित स्थानिनिर्देशात् चपो निहत्तिः, चतएत्र पुनयपो ग्रहणम् । दाले स्थितात् चपात् परस्य नालञ्ज्यसारस्य स्थाने क्कारः स्थातः एवं ताद्यमःचपात् इकारस्य स्थान्, प्रतृप्रत्यादारे परे। अत जन्तरसास्य गान्नां, तेन चान् इस्य भ, टात् इस्य द, तात् इस्य घ, कात् इस्य घ, पान् इस्य भ । पाणिनिः ८।४।६२,६३,५५, वार्तिकञ्च।

<sup>§</sup> तत्-शिव: (६१, ४६) = तक्किव:, वा (४६) = तक्षित: । वाक्षित: (६१. ५८) = वाग्षित: । वाक्षित: वाल्यमकारात् परस्थितः कारस्य प्रमुवाभावात् न प्रस्थ क: ।

#### ६२। खासङोऽचि दिः।

(खात् धा, चङ: १।, ऋचि ७।, दि: १।)।

स्वात् परो दान्ते स्थितो गङो दिः स्थादि परे। अ सुगसीप्रः, सत्रचुतः, प्रत्यङ्ङास्मा । 🕆

# **६**३। क्रोऽचा। (कः री पच. था)।

ग्रच: परम्छकारो दि: स्थात्। 🕸

## **ई** । अप्रासी: खस्अवी अप्जवावन्ते च।

(मिप्स की: ६॥, खस्मावी: ०॥, चप्मीवी १॥, चर्ना ०॥, च।रा)।

भाष् भासयोः स्थाने खम् भावयोः परयोः क्रमात् चष्-जबौ स्तः, विरानेच । ग्रिवच्छाया, श्रच्छा।§

इति इस् सन्धिपादः।

<sup>\*</sup> बिरित (४०५) सुजलसव्ययस्। चन (१८१) घणाणी इति, (१८१) णिननान् चे दित, (६२२) सन्यङ्कां बिरित्यादिज्ञापकात् समासे चाङो दिने स्थादिति बीध्यं, तेन घनलः, सनलः, तिङ्लः, यङ्काः, उचादिः, इलाद्यः सिर्जाः। वस्तुतसु ज्ञापकाजापितविधेर्गनत्यलात् कांचदिप स्थादेन, यथा, "सल्लिङ्गास्ते. सन्नादिक्षचित्रस्यस्मास्त्रेः" दत्यमरः। स्वादिति किं, प्राङ्चासी च्याङोने। दाने स्थित इति किंस, प्रनितीलादीन स्थात्। पाणिनिः पाश्वरः।

<sup>†</sup> सुगय-र्थः = सुगसीय:, सन् अच्तः = सत्रच्तः, प्रवङ्-भावा = प्रवङ्डावा ।

<sup>‡</sup> भन, मा(ङ्), भारङ्) भिन्न दीर्घात पदान्ताच विकल्पनिति वक्तव्यम् । वार्त्तिकमते इन्दिश्च विश्वजनादः परीऽपि विकल्पन, यथा, विश्वजनच्छनं विश्वजनक्त्रमित्यादि । पाषिनि: ६।१।०१-०६ ।

<sup>§</sup> अभयः खिखि चषादेशी आस्त्री अभिकासिया। विरामे तीतयीः स्थानामियर्थः सम्प्रकोक्तितः॥ स्पष्टनाइ — वर्गोदिवनुष्यस्य स्थाने तदर्गस्य प्रथमवर्षः स्थान् स्वसे पर,

#### 8र्ष पाद:--वि-सन्धि: I

# ६५। वे: सोऽग्रसन्ते छते।

(वं: ६।, सः: १।, भ-भ्रमने ७।, कर्त ०।)।

वे: सँकार: स्यात् अ-ससन्ते छते परे। क्रणि खिल्य:, इरि-ष्टीकते, विष्णुस्ताता। ससन्ते तु—क: लारः।

### **६**६६ । सेतुका-ख-प-ंभेवा।

(में ७), तारा, कैंग्बंप फें ७। वा।रा)।

वैः सकारो वा स्थात् क-ख-प-फेषु परेषु, से सित । भास्करः भाःकरः, भास्वरः भाःखरः, भास्पितः भाःपितः, भास्फेरः भाःफेरः । ।

भन्ने परंतु तदर्गस्य त्रतीयवर्णः स्यात्, विरामे नुतदर्णदयं स्यात् । विरामः परवर्णा-भावः । श्रसः स्थाने त साम्यानुसारंणः, यथा (२१३) द्रत्यसकारस्य दः । पाणिनिः दाक्षाप्रसुप्रप्रपृद् । "वाससाने" (८।४।५६) इति पाणिनिमृतेण विरामे परेविकत्यः ।

 <sup>\*</sup> क्त — कटय चटत । मश्रमन्त इति, क्ती विशेषणम् । क्रणः-चिन्त्यः (४६)
 = क्रणाथिन्यः । ६िः-टीकते ४०) -- इरिष्टीकते — इरिगंष्कतीत्थयः । विणा.-चाता
 = विणास्त्रातः । कन्सरः – तकारस्थ सकारान्तवात् न वः सः । पाणिनिः ८।३।२४-२३।

<sup>†</sup> तुकारात् परच समामान् इतिर्गोक्षाः भवापि श्रग्रसन्त दिति विशेषण स्यान् इति :—
सेन च श्रयं वाम दत्यादी न स्थानः। वाश्रव्देऽत व्यवस्थावाची — तेन, कार काम कंस
कुम्भ कृशी (कृश्रा) की ल कर्ष कर्षों कृत्यित कास्छ कृत. करोति क्रस्य काम्यक, पित पाव
पाठ पाश्रेषु — परिषृ नित्यं स्थान प्रथोगतांऽत्यवापि, यथा श्रयस्कारः, पयस्कुभ इत्यादि।
गी.कारः गी:काम इत्यादिवं न स्थान्। भामं करोगोति भामा खरसोच्धाः, भामां
पितः, भासा फेदः प्रगालविशेष इति क्रमेण वाक्यम्। पाणिनिः पाश्रद्भः अप
(विशेषतः प्रश्रेष्ठः) ; एषु स्वेषु कविक्रित्यम्, क्षचिक्रिक्षः।

#### **६७। शसि शसा**ं(बिकि.चा, बस्।१।)।

विः यस् वास्थात् यसि परे। इतिक्षीते इतिः ग्रीते, सन्तर्य-षट् सन्तःषट्, शिवसीयः शिवःसियः।

## ६८। कख-पफयोर्मृन्यौ।

(कख-पप्रयो: ०॥, मृत्यी १॥)।

विर्मून्यी क्रमात् वा स्थातां कंख-पफयोः परयोः 🕆 हरि imes काम्यः हरि:काम्यः, मर्थimes खिनः मर्थःखिनः, क्षण्या $^{n_-}$ पाता क्रज्णः पाता, भितत्र $^n$ फ चिति भित्तः फ चिति ।

**६८ । ऋतोऽह्वव्यः ।** (षतः ४।, षत्-इति ७।, छः १।)। श्रकारात् परस्य वेक्कारः स्थात् श्रकारे हृत्वि च,परे। शिवोऽर्च:, शिवोवन्धः। क्ष

## ७०। ऋ भो भगो ऋद्योखोऽने लुए।

(म भी भगी मधीभ्य: ५॥, मने ७।, लुप् ।१।)।

अ.च.चेषु परेषु विसर्गस्य क्रमेण अ.च.चाचास्थुरित्यर्थः । पाणिनिः ⊏।३।३६ । † मच्छूकमुतगत्या पत्र प्रश्नसन्त इत्यनुवर्त्तते, तेन कः जीय कः साति इत्यादी न मृत्यो । व्याधनतोः परेऽपि न स इति वक्तव्यं, तेन कः स्थातः । पाणिनिः पा ११३०।

<sup>‡</sup> भन भग्रसन इत्यस्य भनुइतिनांकि भनिष्टलात्, तेन रामोऽप्रातीत्यादी स्रादेव । भिवीऽर्चा इत्यादौ, प्रकृते: पूर्वपूर्वं स्थादनरङ्गतरं तथित न्यायेन विसर्वनातात् जकारतोऽत्तरङ्गस्य पूर्व्वाकारस्य सम्बन्धिनः सन्धेर्वलवत्तात् प्रयमतः न जकारस्य वकारः। (६८,२१,३८) = शिवोऽर्चः । शिव:-वन्दाः (६८,२१) = शिवोवन्दाः। भव भकारादमुतादिति भमुते भतीते च वक्तव्यम् । तेन मुत्रोत भव, पय प्रमिदक्त इत्यादी न स्थात्। पाणिनि: ६।१।११३-११४।

चवर्णात् भी भगी चवीश्यस परस्त नेर्जुष् स्वात् चने परे। नद्रा नमस्याः, भी परे, भगी रच, चवी यज। \*

७१ । य वाचि । (य १११, वा १११, विक्रिं)। अवर्षात् भी भगी अवीध्यय परंख वे यी वा खादचि परे। विवयुप: विवरुप:, भीयश्रुत भी अञ्चुत । पं

७२। रिचोऽने। (रारा, रणः था, परे वा)।
इत्तः परस्य वे रेफः स्यादवे परे। इतिरयं, चतुर्भुजः । \$

७३ | रोंऽचः । (रः स्तः भवः भः)। अवः परस्य रेफस्य वेरेफः स्यादवे परे। चातरव, धातर्थेच्छ। §

तः चच भी:-भगी:-चघी:-पदानि भनत् भगवत् चघवत्श्रन्दानां सम्बेधनसाधितानि (२२६), विद्यालकौसदी-गोथीचन्द्रसते सालाव्ययानि च बीध्यानि । भो: इरे—हे इरे. भगी:-रच-भगवन् रच, चघी:-यम-चघवन् (पापिन्) यज-पूजय । चकारात् चवे परे वर्षा-शिव चागच्छति । पाणिनि: पाराश्०, १२।

<sup>†</sup> भी षष्प्रत इत्यादी (१५) लुपि न सन्धीति न सन्धिः । किञ्च नत्रा निर्द्धिमनित्य-भिति न्यायान, सेव दावरणी रामः सैव राना गुधिष्ठिरः. एवेव रणमावज्ञ मणुरां याति साधव द्वयादिः सिद्धिः (पा. ६।१।१६४) । पाणिनिः पा३।१०,१प,२०।

<sup>‡</sup> प्रचः पति सामार्थन । सामान्यनिश्वेषन्यायसभ्याच्याच्याः संस्थि भवति । इति: चर्यः = इतिरयं; चलारी भुना यस स चतुः भुनः = चतुर्भुनः । पाणिनः व्याव्यव्यक्षः व्यव्यक्षः

<sup>§</sup> इसात् परस्य रीफजातिवसर्गस्थासस्थवादेव सुतरासमूगाशी दच्तितस्यये पुनरची-सहस्यम् । चातर् (१०२) च चातः-भव = चातरव, एवं धातः-गच्छ = घातर्गच्छ । पावितिः ⊏।शर्भ, ⊏।श्वर्भ, ⊏।शद्द् ।

#### 1981 खपिवा। (खप्ति al, वा ११)।

भ्रमः परस्य रेफस्य वे रेफः स्याद्या खिप परे। गीपेतिः गीषाति: गी:प्रति: । #

७५। नाक्नो रकंत्रौ। (नाश, बक्रः ६१, रकती छ।)। प्रक्री रेफस्य वे रेफी न'स्थात् रेफे के क्रीच परे। † बहोरातः, बहस्तरः, बहोभिः। धः

## ७६। इस्रेतत्तरांऽनअतः सेर्लेग्यः।

(इस् का. एतद-तद: ५), भनअक. ५।, से: ६।, सीप: १।)।

नजनवर्जारेतरस्तद्य परस्य सेवेंलीपः स्यात् हसि परे। एष-

पर्वतः अचीऽतुश्तिः । मख्कामृतगत्वा (६६) से तु काखपर्षे इत्यतः में इति चानुवर्भते। तेन दर्धं गी: पतिरसी इत्यादी न स्वात्। एवं गिर्धर चड्न एवामेव विसर्गस पतिमल्टे परे एव प्रायी बीध्यं, तेन गी:पाठ: भागी:पतिरिलादी न स्थात्। कवित प्रयोगानुसारात नित्यमपि, तेन चतुर्थमिति (४५५) स्वयसदाहरित्यति । गीर (१०२) गी:-पति:= गीपंति:, (६६,१११) = गीयित:, वा गी:पति:। पाणिनि: ष्पाराद्ध सूर्व "चहरादीनां पत्यादिव वारिफः" दति वार्त्तिकस्। चच "शीचितिरित्य-साधु" इति कमदीचर:। सिद्धान्तकीमुदाख "पर्च विसर्गीपभागीयी" इत्युक्ततात् भी:पति: गीळापति: इत्येव पददयं श्यान् । सुपद्मे तुगीष्पतिपदं द्वस्यते ! कालकी तु सद्रास्ति। गीयतिधिंवणी ग्रारियमरः।

<sup>+</sup> चत्र रेफी इति रावि-कप-रधन्तर-अञ्दानासेव, तेनः चडा-रजन्दी; चडा रवी, इत्यादी रेफ: स्थात । एव कि.पदेन प्राप्तलीपक्तेरिय ग्रहकं, तेन दीर्घाष्ट्री निदास इत्यादी (१४८) इसात् सिलीपेंऽपि रेफनिवेष:। क्रेर्ल्कित् तच रेफ: स्थादेव, तेन गताइ-र्वेलनित्यादी (१६०) सेर्लुकि रेफ: खादिति । पाचिनि: पाराइट, वार्तिकच।

<sup>‡</sup> भद्रम् (२२०) = भहर्, (१०२) भह:-रावः (६८,२३) = भ्रष्टोरावः। भेषः-करः (६६) = पहस्कर: । पह:-भि: (६८,२३) = पहीभि: ।

क्षणः, स-विणाः। धनव्यकः विष्म्—+चन्नः श्रिवः, >एवको इदः।\*

# ७७। द्रोद्धि र्घश्वानुः।

(ढ़ो: ६॥, ढ़ि थ, घं: १।, च ।१।, (भन् ऋ) = भनु: ६।) ।

ठकारस्य ठकारे परे, रेफस्य रेफे परे, लोपः स्थात्, पूर्वस्य च ऋवर्जस्य र्धः। रूढ़ः, इरीरस्यः। अनुः किं—ढढ़ः। पं

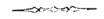
इति वि-संसि-पादः।

#### ' इति सन्यध्यायः।

<sup>#</sup> न विद्येते नञ्जनी यत्त सीऽनञ्जनस्त्यात् । सदपवाचन-सः शब्दस्य इप-धातु-निष्यवस्य एव-शब्दस्य च वारणाय एतत्तदोर्य हण्यः । एवको नद्रद्रति स्वनियमव्यतिकसी-दाइरणदर्श्वनात् एतत्तक्षां सद नञ्जनोर्वकः । पाणिनिः ६ १।१३२ । सीपे सत्येव चित्पादः पूर्यते, तदा चित्र परिसर्थिनति, ७१ स्वस्य टीका द्रष्टव्या ।

<sup>†</sup> न म्हृ चर तस चतुः। भन लीपविधिर्मस्यातात हट इत्यादी महनारस्य द्वीर्घामावेऽपि ढलीपः। यन त लीपी न भवति तत्र दीर्घाऽपि न स्वात् दीर्घविधिरातु-विश्वकातात्। बढ्ढः -- बढः। इति:-रम्यः (७२) -- इतिर्-रम्यः -- इरीरम्यः। पाचिनिः निश्वरिक्षक्षत्रः (।३।१११ ।

#### २यः। चन्ताध्यायः।



#### १म पाद:-संज्ञा।

७८। ले: -ंसि श्री जस, श्रम् श्री गस्, टा भ्याम् भिस्, ङे भ्याम् भ्यस्, ङसि भ्याम् भ्यस्, ङस् श्रोस् श्राम्, ङि श्रोस् सुप्।

(ले. ५१, सि--सुप् ।१॥) ।

स्यादीन्येकविंगतिर्ने: पराणि प्रयुज्यन्ते। क जगट रूपाः सि रूस्योरिकारस्रेतः। पं

## ७८। निग: प्री ही नी ची पी षी प्रयः।

(चिम्रः ।१॥ भी-साः १॥)।

स्यादीनि चीणि नीणि कमात् प्री ही ची पी की प्री-संज्ञानि स्यु:। इ

<sup>#</sup> सिप्रस्तयः एकविंग्रतिर्विभक्तयः लिङ्गान् रामादिप्रकृतिभ्यः परस्थिता एव प्रयुक्यन्ते विभक्तीनां न तुप्रयक् प्रयोगः, रामादिप्रकृतीनामपि केवलानां न प्रयोगः, नापदं श्रास्त्री प्रयुक्तीतिति न्यायान् । पाणिनिः धारार । सुस्थाने सिः, भौट् स्थाने भौ — प्रत्येव भेदः ।

<sup>†</sup> विभक्तीनां ज म ट क पाः इतो भवित, सि क्स्योरिकार्य इत् भववीत्यर्थः ;— जसी ज इत्, मसः म इत्, टा इत्यस ट इत्, के कसि कस् कि एवां क इत्, सुपः प इत्, सि कसि एतयोः इक्षुरय इत् भवतीति स्पष्टन् ।

<sup>‡</sup> सि, भी, लस्,—प्री; जून, भी, ग्रन्,—दो; टा, भ्यान, भिस्,—की; के, भ्यान, भ्यम्,—ची; कसि, भ्यान, भ्यस्,—पी; कस्, भीस्, भान्,—सी; कि,

## ८०। सम्बुङी सिर्धिः।

(सम्बुडी का, सि: १।, धि: १।)।

सम्बोधने विहित: सि: धि संज्ञ: स्थात्। #

### द्र। स्थमीजसं वि:।

(सि चम भी अस्। १॥, वि: १४)।

सि धम् श्री जस् एते घि-संज्ञाः खुः। 🌵

८२। ग्रि: स्तीवे। (बि: १०, कोवे ण)।

नपुंसके थिरेव घि-संग्नः स्थात्। ध

#### ८३ 1. दान्तवत् सिभ । (दानवत् ।१।, सिम ॥)।

भीम्, सुप्,—भी। शयमा दितीया छतीया चतुर्थीं पश्चमी वश्ची सप्तमीनाम् एक देशं यहौता नदादिलादीपि एताः संक्षाः क्षताः । (१२) सूत्रेण स्थादीनां (क्षि) विभक्ति-संक्षा कृता, (पाणिनिः २।४।१०४)। (१३) सूत्रेण च प्रत्येकम् एक वचन-दिवचन-वह-वचनेतु एताः प्रयुज्यन्ते इति बीध्यम्, (पाणिनिः १।४।१०३)।

<sup>\*</sup>सम्बुडि:--सम्बोधनं, चेतनाचेतनशोराशिसुख्येऽशिधानं, तत्र विडितस्य से: धिःसंग्राद्यये:। पाणित्रः २।३।४८।

<sup>†</sup> भव प्यूमी चिरिति कते, सम्बोधने सिर्धिसंज्ञाविधानकप्रविधिवेष प्रथमायाः धिसंज्ञाकप्रधानान्यविधिवांधितः स्थान्, तेन इत्याः (१६०) इति पटंन सिध्यति । भी इत्यस्य भन्तकसीक्यंत्रेये पाठान् भीकारक्षयस्य ग्रहणम्, भन्यया व्युत्कमनिर्देशी व्यर्थः स्थान् । पाणिनी सुट्प्रवाद्वारस्थीकारेण न प्रयक् संज्ञा क्षता । (१।७।०) त्वस्थ-धि-संज्ञादाः भर्षेक्ष भिन्न एव ।

<sup>‡</sup> नपुंसके (१६२) नस्थानी: स्थाने जात: ब्रिटिन विस्तक: स्थात्, नतु स्थादिरित्यर्थ:। तेन नारिची इत्थादी नसन्मक्त्रेति (१६४) न दीर्घ:। पाविनि: (७१।२०) सूर्व इष्टस्यम्।

सभयोः परयोदीन्तवत् कार्यं स्थात्। \*

#### ८१। भौ लिखोईसभसोरने च।

(भौ ७), लिध्यो: ६॥, इन्नमसी: ०॥, चन्ते ०।, चार।)।

भी परे वत् कार्यं वकाते तक्षेत्रीं भी भी से स्थात्, श्रेन्ते प तयोः । गं

ट्यू। इसोऽन्तः फः। (इसः ११, घनः ११, फः १०)। इसो विरामस फ-संज्ञः स्थात्। १३३

दई। सर्व विश्व उभ उभय भवत् त्वत् त्वैक सम सिम नेमाः, श्रन्यान्यतरेतर इतर इतमाः, त्वर् तद् यद् एतिहदमदः किंम् द्यसाद्

असे से चपरे विज्ञती दिश्वलाया जिंदान विज्ञान कार्यं खात, यथा, सृष्टिन्स द्रणादी दालविक्षात् सोनंदित्यनेन (५०) न नियान खारः । एवं प्रभागं पंध्यानित्यादी दालविक्षात् दाली स(५३) द्रव्यनेन सम्थान खारं, वा तर्यप् ५२) द्रव्यनेन चनुस्वारस्थाने सकारी विति। स्व समीति खादेरेव, तेन विद्वास द्रव्यादी चन्छानुस्वारः, प्रभुसारस्य च (५१) मकारः । स्व द्वत् वभीति नीक्षा दालविद्ति क्यनेन, दाललेन विद्वितं यत् कार्यं तदेव खात् नत् विरामविद्वितिति, तेन लिट्सु द्रखादी (६४) क्षप्रभुमेशीरिव्यनेन विराममाश्रित्य न जव् । पाणिनः १।४।१६-१०।

<sup>†</sup> यत कार्यं भी परे बच्चते तत, लिकस्य इसी परे. धाती भंसी परे, एवम् उभयोरिव विरामि परे स्थात् । इस रह स्थादिरेव, तेन दिशि भनं दिश्यमित्यादी सम्क्राजेत्यादिभिः (१५४) वज्यदि ने स्थात् । पाणिनी भिन्संज्ञान हत्यति ।

<sup>‡ (</sup>२०२) धीर्णेन: ऋसीस्यत्र सबयी: प्रयक्ष प्रकार सात् पत्र इस: स्थादेरेव, तेन इष्ट: इष्टिरित्थादी घीड़: फी (१५५) इति न स्थात्। विरामसु स्थादेस्यादेश । असी विराम:, परवर्षोभाव इति यावत्। पाणिनौ फ-संज्ञा न इकाते।

# युष्मदः, पूर्व परावर दिच्छोत्तरापराधराक्तरखाः, स्थि:।

(सर्व-नेना. १॥, षत्य-डतना: १॥, त्यद-युष्पदः १॥, पूर्व-स्वा: १॥, सि: १।)।

द्भेदी गणभेदार्थः । एते पृष्वित्रंग्रत् ग्रव्दाः सिसंज्ञाः स्युः । \*
समीऽतुस्त्रे, व्यवस्थायां,पूर्वायोऽत्रान्तरोऽपुरि ।
विद्योगोपसंव्याने, स्वस्वज्ञातिर्धनाभिधः ॥ पृ

#### ८७। न गौखाख्याचत्रीसासे।

. (न ११ा, गौखाखप्राचचीसासे ७।)।

#### गीणले, संजायां, चे, 'त्याः से असे च, ते स्त्रसंजा न स्युः। \*

# सम्बादिगणः — मर्वे विश्व एम छमय भवत् तत् त् एक सम सिम नेम इति। सन्वादिगणः — सर्वे सन्वत् इतर उत्तर उत्तम इति। त्यदादिगणः — त्यद् तद् यद् एतद् इदम पदस् किम हि भक्षद् युषद् इति। पूर्वादिगणः — पूर्वं पर भवर दिवण छत्तर प्रदम् पदस् किम हि भक्षद् युषद् इति। पूर्वादिगणः — पूर्वं पर भवर दिवण छत्तर प्रपर भवर भन्तर व्य इति। एवा (१६५,१३३,११४ मृचेषु) विभिषकार्यार्थं गणभेदः। सम्बेषां बुिख्यानां नाम — सर्वेनाम, तदेकदेशगण्यान सिदंन्यादिः। छभयभवस्य विवचनं नाक्षीति कैयटः, भक्षीति इरदत्तः। भवत्यन्यो युषद्यः। त्वत् इति ही सन्यार्थे। एकमन्दी यदा सङ्गावाची तदा एकवचनान्तएव, यदा सुद्यादिवाची तदा विवचनवह्वचनान्तीऽपि। विश्वः सिमः एतो सर्वार्थों, नेमः भवार्थः। नेम इत्यर्षे इति विद्यानकृष्टिगे। जतर-उतमी प्रत्ययो (५१०), तं न तदनानां कतरकतमादीनां यहणम्। उत्तरान्तवऽपि भवत्रयहणम् भवतमस्य सिसंग्रानिधेषार्थम्। त्यद्शस्द-स्वदर्थः। पाणिनिः ११११२०।

† भव सममध्दः भतुत्खेऽथे सिसंजः, सनः सर्वसमानथोरित नेदिनी । पूर्वाखः व्यवस्थायां सिसंजः. व्यवस्था कथिता को कैदिंग्देशकालवाचिका । भन्तरः, भपुरि पुर्-भिन्ने, विश्वयोगे विहःस्थितपदार्थे वाचे, उपसंज्याने परिधानवस्त्रे वाचे च सिसंजः । स्वश्रव्स्तु भजातिथनाभिषः — ज्ञातिथ धनच ज्ञातिथने, ते भिन्दधाति सथयतौति ताह्यः, न ज्ञातिधनाभिषोऽज्ञातिधनाभिषः सिसंजः, ज्ञातिधनभिन्ने भाव्यनि भाव्ययि च वाचे सिसंजः स्थादिवर्थः । स्वो ज्ञातावात्यनि स्वं विष्याक्षीके स्वोऽस्त्रियां धन इत्यमरः । पाषिनः १।१।२४-१६, वार्त्तिस्य ।

‡ गौष नप्रधानं तस्य भावी गौस्थम्। ष: इन्हः। स: सनास:। सच पसच सासी

#### ८८। चे जिस वा। (चे श, कि श, वा।१।)।

चे ते सिसंज्ञा वा स्वर्जीस परे। \*

## दर। पूर्वाद्यल्य प्रथम चरम तथायाई कतिपय नेमा:। (१॥)।

एते सप्तद्य यव्दाः सिसंजा मा स्युः जिस परे । पै

#### १०। तीयोक्डित। (तीय: ११, जिति १।)।

तीयान्त: ग्रन्द: स्त्रिसंत्त: स्यादा क्रिति परे । \$

**११। पूर्वोऽन्यादुङ्।** (पूर्वः रा, प्रत्यात् प्रा, वङ्।रा)।

ग्रन्यात् वर्षात् पूर्वी वर्ष उङ्संत्रः स्यात् । §

गाः सासी क्षीसासी ; गौख्य भाष्या च षय बौसासी चेति तिखन्। भग्नाधान्ये, गाव्यायां, इन्हसमामे, ढतीयासमामे, ढतीयासमासयीग्यवाकी च, ते सर्व्वादयः स्तिसंज्ञाः गस्युरित्यर्थः। पाणिनिः १।१।२८-३१,३४।

चे दत्समासे। ते सर्वादय:। पाणिनि: १।१।३१.३२।

<sup>†</sup> पूर्व्वादयो नव, चल्प प्रथम चरम तय चय चर्त कतिपय नेम इत्यशी च सिसंजा: ग खु: निस्ति परें। तथायी प्रलयी (४६०,४६१), तेन वितय वितय वय चय इत्यादि। गांचिनि: १।१।३३ ३४।

<sup>‡</sup> तीय: प्रष्य: (४५०), तेन हितीय-व्रतीयी गास्त्री। तीय इति तन्त्राचप्रस्ययान्तस्य ग्रह्मं, नतु (४८०) जातीयप्रस्ययान्तामपि। तीयान्तस्य प्रस्पादीनाञ्च गौणले न गौणाले न गौणाले त्राप्तिकार्य प्रमित्र क्षेत्र स्वात्, एवमेव जीमरा:। गोणालि: १११३३ स्वस्य वार्तिकम्।

<sup>§</sup> भन्ते भवः भन्यः। भिन्नविधिलात भस्य निस्थलम्। पाणिनिः १।१।६५ ।

# ६२। ग्रन्धानादिष्टिः। (बन्वानादिः १।, टिः १।)।

श्रन्थो यो ऽच्तदादिवर्षष्टि-संज्ञः स्यात्। 🕸

. १३ | लुकि न तम्न । (लुकि वा, न ११), तव वा)। लुक् इति लीपे क्षते यी लुप्तस्तिमन् परे यत् कार्य्यं तन स्थात्। १७

# १८। खरादि-नि-चित्तंत्र व्यम्।

(खरादि नि-चित्वं १।, व्यम् १।)।

## स्तरादिर्भणो नियकारेतस्याय व्यन्संत्राः स्यः । 🌣

\* पत्यश्वासी प्रतिन प्रत्याच्, प्रत्याच प्रादिश स्वतान पुंख्यम् । प्रादिश स्टेग् खचणया पत्त्याजादिवीध्यः । तिन प्रजनग्रन्थाच्याच् टिसंजः, इसन्तानान् प्रत्या जादिवर्षिष्टसञ्चः स्यादित्यर्थः । इती तदादिवर्ष द्रत्यत्र चकारः लिपिकरप्रसादपतितः पाणिनिः १।१।६४ ।

† लुघधाती: किपि लुक्। सर्व्वत लुप्करणेन दृष्टसिद्धिर्न भवति, यतः, पय इत्यत्र (१६८) स्वमोर्लुगिति सेर्लुपि, (१५) चादिविधित्वात् सस्य विसर्गानुपपितः चादिभिन्नत्वात् (१८५) चलसोरिति चकारदीर्घापित्तत्र स्थात्। पाणितिः १।१।६३।

‡ स्वरादिर्गण:—स्वर, अन्तर् प्रातर्, पुनर, लक्षेम, नीचेस् अनेम, विना, ऋरं युगपत, अवांक्, आरात्, असम, प्रथक्, हास्. अम्, दिवा, नक्षम, सायम, विरस् विरीण, विराय, विरात् विरस्य, मनाक्, ईवत्, जोवम्, तृष्णोम्, विद्यस्, समय निकार, विनार, अनरेण. सहसा, सपदि, स्वयम, अथा, अहा, सामि, सावि, साथार वत्, तिरस्, आविम्, प्रारुस्, नाना, अम्, अलम्, कतम्, असि, लपाय, दीव स्वा, सुधा, मिथ्या, सल्या, मब्द्र, मव्या, स्वा, सिय्स्, प्रायस्, सुइस्, अभीष्णः अनिमम्, सद्, अस्ति, अग्रसा, अन्वक्, साकम्, सावेम्, सम्म, सङ्, सना, काम परम्, नमस्, विक्, भूर्, सुवर्, स्थाने, वरम्, इत्यादि आकृतिगणोऽयम्। नि निपा —(१६) वादिर्भणो गिम्न, गिरिति (१०) गिरुणापितत्रश्रदाः। विविभिन्नाः (१०३ कारितः प्रत्ययाः—वि (१४८) वृ (४८५) चृत् (४४०) चमात् (४८८) चमस् (४८ चक्रवस् (४८४) स्व (४८५) कार्म (४६५) वाच् (५२१) धाच् (४१३ धाच् (४४१) वाच् (५२१) वाच् (५२१) कार्म (११६५) चत्रम् (१८८३) एते घोष्प्र स्वरादिपितानां वाचकालं, वादीनां योतकालम्, भतः स्वरादि-चार्यो. प्रथक् यहण्य पाचिनः ११११३०।

#### ८५। इसोऽनन्तर: ख:।

(इस: १।, भगन्तर: १।, स्थः १।)।

अचाननारिती इस: स्य-संत्र: स्यात्। क

# रई। यूत् स्त्रोव ही।

(यूत् ।१।, स्त्री ।१।, एव ।१।, दी ।१।) ?

ईटूरमो नित्यस्त्रीलिङ्गो दी-संज्ञः स्यात्। 🅆

१७। नास्तीयुव:। (न।रा, पस्नी।रा, रयुवः ६१)।

इयुवस्थानावीदूती दीसंज्ञी न स्तः, न तु स्ती । क्ष

१८। वामि। (वा ११।, श्रामि ७)।

इयुव ईट्रच दीसंज्ञो वा स्थादामि परे, न तु स्ती।ं §

### ११। स्त्री युच डिःति।

(स्त्री।१।, युत्।१।, च ।१।, जिस्ति ७।)।

नासि भन्तरं व्यवधानं यस्य सः भनन्तरः । अत्रचा भव्यविहती इस्वर्थः (स्यः) संयोगसंज्ञः स्वात् । पाणिनिः १।१।०।

<sup>†</sup> ई.च जय यू, ताभ्यां त्यूत्। दी—नदी। स्त्री एवेति एवमस्टेन नित्यस्त्रीलिङ्गी नियम्पते। यश्चित्रभैं यदूर्वेच स्त्रीलिङ्गभन्दः तिस्त्रियें तदूर्वेच यदि लिङ्गान्तरं न भन्नति तदानित्यस्त्रीलिङ्गः। यथा, नदी गीरी इत्यादि। पाचिनिः १।४।३।

<sup>‡</sup> **दयुवस्थानी— इ**युवप्राप्तियीम्पी नित्यस्त्रीचिक्की ईकारान्तोकारान्ती नदीसंज्ञी न भवतः, स्त्रीयस्टस्तुनदीसज्ञः । पाणिनिः १।॥॥ ।

नित्यस्त्रीचिक्की प्रयुवस्थानी स्त्रीशन्दिभन्नी देह्दन्ती दीसंक्री वा स्वाताम् चानिः
 परि। पाचिनिः १।४।५।।

स्तीलिक इट्टन्तो निखस्तीलिक इयुव बैट्च दीसंबाः स्याहा ङिति परे, न तुस्ती। #

# १०० । ऋष्यच्ताच्येप् पि: । (भष्यव्ताचीप् ।१।, पि: १।) ।

विवर्ज स्यादेरच् तसंज्ञावच्येकारावीपृ च एते पि संजाः स्युः। १

# १०१। सङ्घ्यावत् डत्यतुबद्धगणा नेपि।

(संख्यावत् ।१।, डित धतु बहु गखाः १॥, न ।२।, द्रीप ७।) ।

डत्यतु बहु गणानां मंख्यावत् कार्यं स्वात्, न त्वीपि । \$

दति संजापादः।

सामागस्त्रीलिङ्गौ द्रखेकारान्तीकारान्तशब्दी, चकारात् नित्यस्त्रीलिङ्गौ द्रयुवस्त्रानौ स्त्रीशस्ट्रिमंत्री देंद्दनी च दीसंत्री वा स्वातां जिति परे। पाणिनि: १।४।६।

<sup>🕂</sup> न वि: अधि: अधिरच् अध्यच्, अब यश अच्छी, तस्य तहितस्य अच्छी ताच्छी, श्राच्य ताची च र्र्प च तेषा समाहार: श्राच्यच्ताच्येष्। भिन्नविषयलादस्य निखलम्। पाणिनि: १।४।१८।

<sup>‡</sup> खित चतु प्रत्यथी, तेन तदनानां कित यति तति यावत् तावत् एतावत् कियत् इयत् ग्रन्दानां, वष्टुमण भ्रन्दयीय मंख्यावाचकग्रन्दवत् कार्थे स्थात्, न तुर्दूपि विद्यये, यत्र दूर्ण कर्त्तव्यंतत्र न संख्यावदित्यर्थः । पाणिनिः १।१।२३,२५ ।

#### २य पाद:-- त्रजमा पंतिङ शब्द:।

राम-स् इति स्थिते \*--

१०२ | स्रो वि: फो । (सी: ६१, वि: १।, फी छा) १,

सकार-रेफयो र्विः स्यात् फेपरे | १० रामः । श्री-जसोः सन्धः । रामौ रामाः । क्षः

१०३। खदीयां ध्यमग्रसादे लें।प:।

(स-दीभ्यां ५॥, धि-त्रम् त्रसादे: ६।, लीप: १।) ।

खात् दीसंज्ञकाच परस्य धेरम्यसादेव लोपः स्थात्। हे राम, रामं रामी। §

रामग्रव्हात् (७८) स्इति स्थिते खनणमाह ।

<sup>†</sup> दानादानसाधारणयी: सकार-रेफयी: विसर्गः स्वात्, स्वाटीय-इसे विरामे ख परे । दानस्य—विरामे राम रत्वाटि, इसे पयीभ्यामित्वाटि । घटानस्य—इसि परे गीतः पूत्त रत्वादि । पयस्वान् मास्वान् इत्वादी स्वादीयइसप्रत्वाभावात् न विसर्गः । माथिवि: ८.३/१४, ८।२।६६ ।

<sup>‡</sup> भी परे जिस परे च सन्धिभवतोत्सनेन प्रकरणान्तरेऽपि स्वातुहत्तिर्भवितिति स्वितव्। राम-भी = (२२) रामी। राम-अस् (७८) = राम-भस् = (२२,१०२) रामाः।

<sup>§</sup> मन् च अस् च मन्यसी तयोरादिः, धिय मन्यसादिय समाहारे तस्य । भन्न दीयहणम् मन्यसोरादिकीपार्यसेव, हे लक्षित, हे वध प्रसादी (१५२) कस्ते कृति कस्तादिव धिषापिसिदः । मन्न धिदातोर्षोप प्रति सन्न क्षतं तत्, मन्तर कुलमित्यन (१६६) सेरिम कृति तस्त्रापि मन्तरकीपार्यम् । हे सम्बोधने, राम-सि (८०,१०२) राम । राम-मन् सम् – रामं सी विष्टुरवसाने वा' इति भीकादिक त्त्रम् । राम-मी (२३) – रामी । पाणिनि: ६।१।६८,१००।

१०४। ग्रस्नामि वै:। (यम्नामि था, र्थः १।)। प्रसिनामि च परे खख र्घः स्थात्। अ

## १०५। पंसित शस्न।

-(पुंचि ७।, तु ।१।, भ्रम् ।१।, नै ।१।) ।

स्नात् परः यस् न स्थात् पुंकिङ्गे। रामान्। 🕆

### १०६। टा भिस् डि इन्सि इन्सोसा-मिनैस-यात ख योसो ऽत:।

(टा - भीसाम ६॥, र्यन - यीस: १॥, भत: ५।) ।

**अकारात् प**रेषामेषां स्थाने एते क्रमात् स्युः । 🕸

<sup>\*</sup> नामीति तुम्सम्बिनकारेण सहिते पानि, तेन ज्ञानिनामित्यादौ न प्रसन्धः । पानो यहणेनैवेष्टिसिदौ नामीति लातम् पागमादिश्योमंध्ये वस्तीयानागमी विविद्तित न्यायस्तीकारार्थं, तेन क्रीष्ट्रनामित्यच पादौ (११०) तृति तनादेशो (१४०) न स्वान्, एवं प्रकृते रामाद् इत्यादौ दौषंस्य स्थानिवस्तेन इस्तपरत्वात् यथा श्रसी नकारिवधानं तथा (११०) तुमागमी न स्थादिति स्पनार्थम्य । पाणिनः ६।१।१०२, ६।४।१।

<sup>‡</sup> प्यकारात परंघा टा, सिम्, के, किस्, कस्, भीम् एवां खाने क्रमेण— इन, ऐस्, भय, भात्, खा, न्योस् एते भविता। एस् भत्न क्रता ऐस् भात् करणं निर्करसैः निर्करसात् (११५) सिख्यथंन्। पाणिनिः कार्धः,१२१। ७।३।१०४।

## १०७ । पुर्णाऽदान्ते ना ऽव्क्षपनारेऽप्यतहास्त-पक्षयुवाक्तः ससेप्सादे नैकाच्कोस्त वा । \*

षु : ४।, णः २।, घदाने ७।, नः ६।, घवकपूनरे ७।, घि ।२।, घतहात् ४।, षु ।२।, घपकयुवाकः ६।, समेप्छादेः ६।, नैकावकोः ६।, तु ।२।, वा ।२।)। । वकारात् रेफात् ऋवणीच परस्य ग्रदानी स्थितस्य नस्य गः स्थात्, श्रव-कावर्ग-पवर्ग-व्यवक्षानिऽपि । पं

यत्र दे न-स्ततोऽन्यत्र गतानु निमित्तात् परस्य, साहिष्टि-तेनेपा स्यादिना च सहितस्य, पक्षादिवर्जितस्य,स्यात्, तस्यैवे-काचः सक्तवर्गाद्यान्यस्य, वास्यात् । रामेष । इ

<sup>#</sup> प च र च स्थातधात् षू ः। भव् च क्य प्य तैरमरं व्यवधानं तिधान्। तस तत् दिस्ति तहं, न तहन् = भतहं तसात्, भतहपदेनाव लचण्या भतहस्थिताः पकाररेण-स्वर्णा उच्चन्ते, भतएवाह यथ टे नसतीऽन्य न गतादिति । पक्षथ्या च अहय पक्ष-युवाहानि, न विद्यन्ते पक्षयुवाहानि यिखान् सः भपक्षयुवाहमस्य । ईत् च स्थादिष ईत्स्यादी, सात् ईत्यादी सेत्स्यादी ताम्यां सह वर्णते थीऽसी ससेत्स्यादिस्य । एकः भच्यस्य स एकाच्, कः कवर्गवान्, एकाच कुष एकाच्कः — एकाच्कवर्गवच्छन्द-सम्बन्धी, न एकाच्कः नैकाच्कास्य ।

<sup>†</sup> अन्द्रहप्रयस्वकारानाः । अपिक्रव्दादव्यवधानेऽपि, यथापुणां चतुर्णानृणां मृणानित्यादि ।

<sup>्</sup>रैनकारवण्दपूर्व्वतिपदिख्यतात् वकार-रेष-स्ववणांत् परस्य, समासीकरविडितथी-रौप्याधीरेकतरेण युजास्य, पक युवन घडन सम्बन्धि नकारभिन्नस्य, नस्य णः स्थात्, तस्यैय—ताहमस्यैव नकारस्य, एकाचम्बस्यस्य कवार्युज्ञमन्दसम्बन्धि भिन्नस्य णो वा स्थात्, एतेन एकाचसम्बन्धिन सक्तवर्गसम्बन्धिनय नकारस्य निस्यं षः स्थात् तिङ्गस्य वा स्थादिल्यर्थः । स्थादिना सहितः — स्थादिजातः स्थादियुक्तो वा। पकादिक्सयव्यापि निषेषः, एवस् मवक्षुप्तरेऽपौति स्थायवापि बीध्यस् । एकाचकी यंषा, ववहषी, रस्यविणाः, शौकानिषी, शौकानेष । एकाचकुभिन्नस्य यथा, इरिभाविषी हरिभाविभी, शौभावेष शौभावेन ; हरिभाविषा, हरिभाविना । समासोक्तरविहितेपोग्रहणान् हरिभाविभी

इरिमानिनी इत्यादी न स्थात्। पकादेशु युरुपक्षेन, चारवृना, दीर्घाज्ञा इत्यादि। पाणिनिः ८।४।१,२,११-१३ ।

धातना सह प्रादे: समासे नेथं व्यवस्था, धातुपकरणे (५४८), क्रत्पकरणे च (८६८) तस्य प्रथक् णत्वविधानात्। एवं -- तुवी पूर्वेण सम्बदी सून्वी तु परगामिणी। चलारी 'धोगवाहां ख्या फलकर्मा खची नता !-- इति नियमेन एवां व्यवधानेऽपि चलं स्थात्, यथा बंदणम्, उर×कायेण, उर ०० पेण इत्यादि । क्रुस्ति रझयतीत्यादी भासपरत्वात (४०) नम्बानुम्बारे, पुन: (५१) भनुस्वारस्य जकारे, सक्रदगती विप्रतिषेधी यद्वाधितं तद्वाधितमेविति न्यायात् गलं न स्यात् । चिषः चुषः समर्थः द्रवादी तु नकारे परं चनुस्वाराभावात् पूर्वनकारस्य णत्वे, (४०) प्रक्षिरित्वनेन परनकारस्यापि णलं, किन्तु निर्भितः प्रसित्र इत्यादी । पूर्विपदस्यनिमिचलात् ससेपसादिभिन्नलेन णालं न स्थात् ।

राम टा = (१०६, २३, १०७) रामेण ।

भव वाग्रव्यस्य व्यवस्थया, केषाचित् णलविधिहेतौ सति भसति वा नित्यं चलं स्थात् (१), कीषाश्चित् वा स्थात् (२), कीषाश्चित् णलविधिहेताविप न स्थात् (३),

१। पूर्विपदस्थनिमित्तात् परस्य नी गः स्थात्, मंजायाम् अव्कपुन्तरेऽपि, यथा---सूर्पेणखा, द्रासः, खरणसः, वाशीलसः, खरणादः, नारायकः, परायणं, पारायणम्, चत्तराथ्यं, रामस्यणं, चान्द्रायणम्, अत्रयणीः, ग्रामणीः, अजीहिणी। संज्ञायां किं, ग्राप्तनस्तः, तास्तनस्तः । चवकपुन्तरे किं, जिलीचनः । पाणिनिः ⊏।४।३ । वार्तिकश्चाः

रेफादियुक्त-वहनीय-वसुवाचक-मञ्दात वाहनमञ्दस निशं चलं स्वात, दर्भवाहच-सित्यादि । भवकुपुलरेकिं, राजवाइनस् । पाणिनिः ८।४।८ I

विचतुर्भ्यं वयसि इायनस्य। यथा, विदायणः, चतुर्द्रायसः। वयसीति कि-विद्यायना भाला, वैद्यायनं स्टब्स् । वयः प्राणिधर्म्यः ५ ति बीयीचन्द्रः ।

प्रपृथ्वीपरप्रस्विन्यः श्रक्रमञ्दस्य निर्वेणलंस्यात् । प्राक्क श्रत्यादि । विरक्षः श्रत्यादौ तुन भवति । पाचिनिः ८।४।०।

प्र निर् दुर् परिभ्यो नसः। यथा, प्रयस इत्यादि। "नसम्र",इति सुपन्ने, "प्रादौ नसः'' इति संचित्रसारे ।

अभ्येकोटरा सिप्रका नियका सारिका पुरगा श्ररास कार्य पीयूचा खदिर प्रनि-रत्तरितु प्रतिथी वनस्य नस्य निलां चलं स्थात्, यथा — चर्यवणं कीटरावणनित्यादि । एभ्यः किं, इन्द्रवनम्। पाणिनिः ८।४।४,५ ।

२। दिवाज्यचनाचकात् विवाजीषधिनाचकाच परस्थितस्य वनस्य नस्य वालं स्थादा, भन्कपुनारेऽपि, न तु द्वरिकादेः परस्य। यथा, खीधवर्ण लीधवर्व, मन्दारवर्ण नन्दारवर्ग,

#### १०८। श्रा ति-मभवि।

·(च।१।, चा।१।, ति सभवि ७।)।

श्रकार आकार: स्थात् की म<sup>2</sup>-भ-वेषु परेषु ।क

तिहितणं बीडियनं, ट्रव्यांवणं ट्रष्टांवनं, इतिहानणं इतिहातनभित्यादि। दित्राचः कं, देवटारुवनम्। प्रवृत्युक्तरेऽपीति किं, पर्कटीवनम्। इतिकाटेलु इतिकावनं नेमिन्दनम्, इत्यादि। ब्रजीयिथियां किं, विदानीवनम्। पाणिनिः पाधा६। गार्तिकाद्यस्यः।

पूर्वंपदस्थित-निमित्तान् पानशब्दस्य भावकः गाथीः प्रयुक्तस्य गावं वा स्थात्। यथा,— शेरपाणं भौरपनिमित्यादि। पाणिषिः ८/४/१०।

गिरिणदी खर्णदी चक्रणदी गिरिण्तस्य चक्रणितस्य गिरिणस्य गिरिणद तृर्थमाथ । प्रोण चार्गथण अस्टानां गत्व दा स्यात् । पर्जे गिरिनदीत्यादि । प्राधार० स्वस्य । पित्तम् ।

३। तथ द घप भ युक्तस्य नस्य गलं न स्थान, यथा, क्रन्ति ग्रेयभं हन्दः दश्वनि ।प्रोति चुक्तांति इत्यादि । पाणिनिः ५ ४।२६,३६।

ज्ञांपदालस्थवकारात परपदस्थनकारस्य कलं न स्थात्, यथा, इविधानन, भायुष्का-न इत्यादि। पाणिनिः ५॥३५॥

भौगिनी कामिनी भामिनी यामिनीनां गखंत्र स्थात्।

खभावती सूर्डन्यणवन्तः शब्दाः ---

वायों त्योर वेयों फाय सिंख खब्यं कीय कच्याय वायाः, गोणी घोषों कषास र्घुत विपिष पर्यस्थास पृख्यं विघायम् । नाणिक्यं शोख प्रायों गुण गय गियका वेय सिंहाय वीया निर्वाषों निक्रपेय क्षयं किया विष्जः कहुयं पास्य तृषों ॥ पिष्णाकमिषि चायाक्यसियाद्याः स्वः स्वाभावतं इति ।

\* भन सकार-वकारी लाहिरेव, स्थादावसभावात्। एवं ध विभक्तेरादावयव-सकारे रे एवार्य विभि:, तेन रात्रम् इत्यादी न भाकारः। भावएव भ 'त्वां सा' इत्यादि साधाय य केंभ्योमंद्रित (११६) सकारे क्रवेडिंप, समेमीव्याक् (११७) इति भाकारविधाने तम। भन सकारभ्यासकारः उदारकार्यः। पाश्चिनी 'यक्ति' इति कथनात् वस्ति स्थातः स्थातः भावता स्थादिभकारका त्यादिसकारवकारवीर्मभ्यपाते सर्थं सुधीभिर्वभावनीयम्। पाश्चितः शश्चार्रः ११०१। रामाध्यां रामैः, रामाय रामाध्याम्। \*

१०६। ब्वे सुर्थः। (व्वे श, म्मि श, ए: १।)।

त्रकार एकारः स्थात् ते र्वे स-भयोः परयोः । † रामिभ्यः, रामात् रामाभ्यां 'रामिभ्यः, रामस्य रामयोः विक

#### ११०। नुमाम: खद्याप्सङ्घ्याष्णी:।

(तुम ।१।, भाम: ६। स्वद्याप्-सङ्गार्गः प्रा)।

स्वात् या त्रापो रवनान्तसङ्गायात्र परस्थाम त्रादी नुम् स्थात्। र्घ-णले । \$ रामाणाम् । रामे रामयोः । ¶

#### १११। क्विलात् क्वतोऽसात् सः घोऽदान्ते नुव्यन्तरेऽपि शास वस वस साढ़ाञ्च।

(जु-दलात् पा, जात: १।, भमात् ।१।, सः १।, घः १।, भदान्ते ७।, जु-वि-भनिरे ७।, भिषा ।१।, शास वस घस घादां ६॥, च ।१।)।

<sup>\*</sup> राम थाम (१०८) = रामाथाम् । राम भिम् (१०६,२३) = रामै: । राम छै (१०६,२२) = रामायः

<sup>†</sup> भद्र भकार: भनुनर्भते । भकारात परयोक्ष्यदिर्वेड्डवचनीय-सभयोरसम्भवात् स्वादिरेव सभयोर्यडणम् । पाणिनि: शहार० ह ।

<sup>‡</sup> राम-ध्यम् (१०६,१०२) = रामेध्यः । राम-खिन (१०६,२२) = रामात् । राम किन (१०६) = रामधः । राम-चीन (१०६,१०२) = रामधोः ।

<sup>§</sup> रच घ च न च र्था, श्रद्धा घोसी र्था चिति श्रद्धार्था, स्वय दी च आप च सक्ष्यार्था च तत् तत्त्वात्। नुमः उमानिती, उकारः पाचीनानुवाद्यंः, मिद्दादी (१०)। धेन विश्वित्तदत्तस्थिति न्यायादाइ रघनान्त इति। रात्तवान्त्रनानाां सुख्यानामेव यहणं, तेन प्रियचत्रां प्रिययपामित्यादी भ स्थात्। धंस चालख ते भवत इति सेषः, एतत्क्यनं (१०४,१००) स्वद्यस्य स्वरणावेस्। पाचिनि. ७।१।४४,४५, १।१।२४।

प राम भाम (११०,१७, १०४, १००) ज रामाणाम् । राम ङि [(७८)क क्त्](२१) क रामे । राम भीम् (१०६,१०२) = रामशी: ।

कावर्गादिलाच परः कतः साद्वर्जी दमध्यगः सकारः प्रासादेखः षः स्थात्, तु-वि-व्यवधानिऽपि। अः एव प्रत्वे। रामेषु। पः एवं सुकुन्दानन्दगीविन्दादयः। ॥

- + एत प्रते दित (१ ८,१११) स्वदय-प्रशीगप्रदर्शनार्थम् । राम-सुप्  $[(&^{-})^{-}$ प इत्] (१०८, १११) = राभेषु ।
  - ‡ विभेविधानवहिर्भूताः यावन्तीऽकारान्तपृत्तिद्वभव्दाः एवं जेयाः।

एतद्ग्रसीकानियमातिरिक्त-ष्वविधानानि ।---

त्रग्नी: स्तृत: त्रज्ञुली: सङ्गस्य, भीरी: स्थानस्य सस्य ष: समामे । स्था, श्रीप्रष्टुत्, श्रङ्गुलिषङ्गः, भीषष्ठानम् । पाणिनि: ८।३।८०-८२ ।

दीर्वालाद्यः सीमस्य सस्य व. समासे । यथा, श्रयोवीसी । पाणिनिः पाश्वादर । ज्योतिरायुर्वाभ्यः सीमस्य समासे । यथा, ज्योतिष्टीमः, श्रायुष्टीनः, श्रविष्टीमः । पाणिनिः पाश्वादर-पश

गवियुधिभ्यां स्थिरस्य समासे । यथा, गविष्ठिरः, युधिक्षिरः । पाणिनः पाः । सातः सातः पतुः पत्य स्वसः सः सः समासे ऋषुक्षमासे तुवा । यथा, माद्यवा, पिट-षसा । भलुक्ममासे तु--- भातः वसः मातः वसः, पितः वसः पितः स्वसः । पाणिनिः पाः । पाणिनिः पाः । । ।

िनदीभ्यां स्नाती: कौशली । यथा, निचा:, निचाताः, नदीचाः ।ेपाचिनि, प्र∣श्ष्टाः

<sup>\*</sup> इस्तः प्रवाहारः (३) । तुष विश्व तृषी ताथामन् येवधानं तिसान्। तिर्हित्ययमादी (१६३) इत्यादिना विहिती तुष्वेव न त्वतुस्तारः, तेन इवेषि धन्षि इत्यादी वलं, भ तु पृंस इत्यादिषु । सर्पि. पृ इत्यादी भन्य क्लादादी रङो विसर्गे (१८०) प्रथात वलं, न तृ रेफान, तथालं भड़ मु इत्यादी प्रलावितः । मादिति चनात्रत्ययः (४८८) यथा अग्रिसात् हरिसादित्यादि । त्वत्व इति प्रत्यादेशायमानामं कतमसम्बन्धीत्यथः, तेन स्वाभावित्तमस्वादवतं धातृनां सस्य घलं तृ स्थान, यथा सेसीयतं इत्यादि । आस वस घसान प्रविक्तत्रधातृनां पृथक्ष च्यात् भ्रवतं । स्वातः तिक्षातः परः यः स्थान, यथा श्रिष्टः उपितः जधन्तित्यादि । सादनु सद्धातीः (१०२८) विण्यत्रस्य दकारान्तस्य यहणान् वित्वापेषा मान्ति, तेन न्राषाट् इत्यादी पलं, नतु न्रामाष्ट- मित्यादिषु । भव, स्वे भदान्ते इत्युक्ता वन्ते दमध्या इति व्याख्यानं, समासे दान्तिस्यतस्य पि क्रवित् दमध्यात्वेन पलं स्थादिति सूचनार्थः, तेन गौष्यतः निक्तृष इत्यादि सिद्धम् । इत्य उदाहरणानि यथा, अग्रिष्ट वायुष्ट पित्वष्ट गोषु नौषु भय्यष्ट व्यव्य वायुष्ट वित्वष्ट गोषु नौषु भय्यष्ट व्यव्य वायुष्ट वायुष्ट वित्वष्ट । सार्वि कर्षे वायुष्ट वायुष्ट वित्वष्ट गोषु नौषु भय्यष्ट व्यव्य वायुष्ट वायुष्ट वायुष्ट वायुष्ट । पाणिनिः पाश्वप्रि- ।

## ११२। से जम् के किस कीना-मिसी सात् सिनोऽतः।

(क्के: ५॥, जभा के उत्सिकी नां ६॥, इ. धी क्यात् किन: १॥, चतः ५॥) ।

प्रादयमें स्थस्य। यथा, प्रष्ठ:। पीणिनि: प्राह्म १८२ ।

वै: स्टर्णातेई वासन्यो: । यथा, विष्टर: । पाणिनि: ८।३।८३।

विकुपरिश्रमिभ्यः स्थलस्य । सर्था, विष्ठलं, कुष्ठलं, करिष्ठलं, श्रमिष्ठलम् । कपिष्ठलः (तन्नामा सर्विः) निपास्यते । पाणिनिः ष्यक्ष ८१। ८६ ।

चम्ब गी भूमि दि विकासु मिं जिप्ता पुछि दिन्यीय विहेश्ये स्थास । यथा, चम्ब्लाहः, गीष्ठः, सूमिष्ठः, दिवष्ठः, चिष्ठः, कुष्ठः, माईष्ठः, पुछिष्ठः, दिविष्ठः, चिष्ठः, विष्ठः, माईष्ठः, पुछिष्ठः, दिविष्ठः, चिष्ठः, विष्ठः, प्रतिष्ठः, प्रतिष्ठः, प्रतिष्ठः, स्थास्य विक्तं, गीस्थितिः । परमेष्ठो सञ्चेष्ठः—निपाल्यो, वाचिनः प्रशिक्षः

द्रलात् सः पः संज्ञायानेकारिभाक्तुवा। यद्या, सृषेणः, इष्षिणः, वायुषेणः। मचचाकुभरणिषेणः,भरणिकेनः। इलात् किं,विष्यवसेनः। एकारेकिं,चिस्रोताः। संज्ञायां किं,पृष्यसैनः। पाणिनिः पाश्राह्यः १००।

सुविनिर्दुर्भ्यः समम्बोः । यथा, सुवमं, विवमं, निःषमं, दुःवमं, सुवृतिः, विवूतिः, निःषतिः दःषतिः । पाणिनिः ८,३।८८ ।

निर्दुर्विद्वितात्रातुत्रत्वरासः (नतु प्रत्ययसः) षः कस्त्रपपेषु । यथा, निष्पन्नः, दुकारः, वहिकारः, भाविकारः, प्रादुक्ततं, चतुभथनित्यादि । पाणिनिः नाहाधशः ।

निसस्तपतावनस्यावनौ । यथा, निष्टपति खणे परीचकः । आवनौ तु क्तिपति खणे खण्डेकारः, पुनः पुनरिप्नं स्पर्धयतीलाथः । पाणिनिः पाशिर० ।

नि:सुदुर्भ्यः साम-संघ सन्धिनां षः । यथा, नि:पामा, सुषामा, दु:पामा, निःपंधः, नि:पन्धिः, सुष्ठ, दुष्ठ, दस्यादि । पाणिनिः पाश्चिष्टः ।

स्ति स्वादः प्रथितक्षद्याः । यथा, यष्टिमष्टम्य प्रासि, तामाप्रित्य तिष्ठतीत्वर्षः ; प्रथण्या गीः निकटे निषदा प्रासि इत्ययः । प्रश्व प्रतिनायस्त्र । पाणिनिः पाः । यथा, परिस्थितः, सुस्थितः, दुःस्थितः, स्वपः , प्रमुनः इत्यादि । "दःस्यादेय" इति कमदीयरः ।

खभावती सूर्व-विकारवन्तः ग्रन्दाः— सञ्जूषेषी प्रदीधी वस वसम ख्यापाट राष्ट्रीष्ट्र कप्टं, बीपोपा द्वेषा भीषा विषय विष विवासानि कुषाख्ड पख्डौ । कच्यापं माप भीषानिष सिष मिद्रपा वेष पाषाध्य योजित्-भीषां मर्षानुषारीषर करुष प्रीवास्त्रीयाः करीयम् ॥ त्रकारान्तात् स्त्रेः परेषानेषां स्थाने एते क्रामात् स्युः। \* सर्व्यो सर्व्यक्षो सर्व्यक्षात् सर्व्यक्किन्। 🕆

१९३ | त्रात् सुमामः । (मल का, सक्ताः, मानः का) प्रवर्णानात् स्नेः परस्य त्राम क्षांदी सुम् स्थात् । एत्वषत् । क्ष सर्वेषाम् । येषं रामवत् । १ एवं विकादयोऽकारान्ताः । उभयव्दी द्दान्तः । उभी उभी उभाभ्याम् उभाभ्याम् उभाग्याम् उभाग्याम् उभाग्याः । स्थाः उभयोः । ॥

पौगूषं विषुषा इत्योक चषकावीषन् प्रयत् कि लिखं, प्रत्यंषषु कवा कवाय कल्लं यूषं भिषक् सर्पयौ । पुष्यं पुकार वाषा श्रष्य ग्रुविसं दुव्यं तुक्कीविधे सुर्व्यं गोष्यद पौक्षे प्रविभित्यते तथा चाफरे॥

- अकारान सर्वनाम-शब्दात् परेशां जस् ङे ङसि ङीनां स्थाने अभात् इ. स्थे स्थात् स्थिन् एते स्यः। पत्र, जम् ङिताम् इ स्ये स्थात् स्थान् एते स्यः। पत्र, जम् ङिताम् इ स्ये स्थात् स्थान् इति क्रिते, ज्ञतिसर्वाय इत्यच सर्वनामलाभावात् स्था स्ये न स्थात् तथा ज्ञतिसर्वस्य इत्यचापि ङमः स्थाने स्थादेशस्थाप्रसङ्गः स्थातः, टाभिस् (१०६) इत्यनेनापि न भवितृमहंति, ज्ञनेनैव विशेषेण निवेधात्। पाणिनिः शरारहरू, ४५,१७।
- † सर्ज-जस् (११२, २१) = सर्जे। सर्ज-र्डे = सर्जे ही। सर्ज-रडि = सर्जे झात्। सर्जे डि = सर्जे थिन्।
- ‡ सिरिध्यत्वर्त्ततं, चात् घवणांत् तेक मर्व्वामानित्वादि । सम छमावितौ, एकारियज्ञार्थः, निक्कादादौ । चामः स्थाने सम्विधानं विभक्तिसम्बन्धितार्थम्. चत-भाइ एतवले इति, एत्वच वत्वचते । सुनः स्थादीयसकारतात् (१०१) व्येन्स्येः स्विनेन एकारः, पद्यात् वत्वं भविष्यतीत्वर्थः । स्मादिस्थाने सर्व्वावयवादेशे तु तिस्त्रम् सरेन एकारः, यथा परस्तादित्वादि । पश्चितिः शरापुर ।
- § सर्व्यक्ष चान (११६. १७. १०८, १११) = सञ्जेषाम् । श्रेषम् छक्षादन्यत् रामवतः गान्यमित्यर्थः, पुंत्रपुसक्षयोः श्रेषैमित्यसरः ।
  - ¶ उभग्रन्दो दाना इति सुख्याभियायेगीक्तं, तेन चिथातौ छभी येन स अध्यक्तः

जिस-नेने नेमाः। \* शेषं सव्येवत्।

## १९४। पूर्वादे: स्नात्-स्मिनौ वा।

्पूर्वादे: ५१, स्नात-सिमी १॥, वा ११।) ।

तौ। पूर्व्यक्षात् पूर्व्वात्, पूर्व्वीक्षान् पूर्व्वे। 🌣 शेषं नेमयत्। एवं पराइयः।

#### समीऽतुखी दलायुंतीः--

नमः समस्रात् पूर्वसा अन्तरसा अमेधसाम् । समेधसामन्तरसी सतां ससी स्वयन्त्वे ॥ ॥

इत्सादि । उभग्रव्हादवयवार्षेऽयट्पत्ययेन साधितात् उभग्रश्चत् दिवचनं न प्रयुक्तके इति सम्प्रदाय: । एक नसङ्गावाचकादिकशब्दात् एकवचनभेव ।

છ नेन-जस् (८೭, ११२, २३) ≔नेने, वा (२२, १०२) नेना:।

<sup>†</sup> तौ द्रित हांचाः। पूर्व्वविदितौ (११२) क्यान् स्थिनौ पूर्व्वादेवो स्थानाम्। अतएव इन्हिक्कोः स्थाने, अतस्वित वक्तव्यं, पूर्व्वायन्येति (८८) सूत्रेण जिन परे वा सिनधा-मक्तता, अत्र पूर्व्वादेरि सात्-िकानो वा इति यक्त क्वतं तत्, पूर्व्वाणव्दात् जमः स्थानं (५११) तस्वि कते, पुत्रत् सेरिति (६२०) पृत्र्वावे, पूर्व्वतः, (वा सिसंधायां ८८) पूर्व्वातः द्रित पददयसिद्धार्यम् । पूर्व्व दिनि चूर्व्वकात्, वा (१०६, २२) पूर्व्वात्। पूर्व्वाक्तः क्विचन्, वा (२३) पूर्व्वे। पाणिनिः शिशाद्द।

<sup>‡</sup> समीऽतृत्वे (८६) इत्यादिकदाइरणान्याइ नमः इति— स्वयम्युवे बद्धाणे नमः, कौडमाय, समस्यात सकलात पूर्वसे पूर्वकालीनाय पूर्वकालवर्त्तने इत्ययं, धन समग्रस्थ पतुल्यार्थवेन पूर्वप्रवृद्ध च कालाधेतया व्यवस्थावाचित्रंन सिसंद्या। पुनः कौडमाय, प्रमेषकां निबंदीनाम पन्तरसे विहः ख्विताय, सुमेषकां सुबुद्धीनाम पन्तरसे सदा संसर्गात् परिधानक्तस्थकपाय, सता साधुनां स्वसे पाक्षीयाय; पन पन्तरमञ्चल सदा संसर्गात् परिधानक्तस्थकपाय, सता साधुनां स्वसे पाक्षीयाय; पन पन्तरमञ्चल विहर्भीगवाचित्रेन उपसंव्यानवाचित्रेन च सिसंद्या। स्वश्रीयस्थ च ज्ञातिधनभिन्नार्थत्वेन सिसंद्या।

समायेष परायेषां सक्तयेऽर्थान्तराय च। यदुष्वाय नमः स्वाय मन्नैर्जुष्टाय प्रार्क्षि ॥ % त्रतिसर्व्वाय सर्वाय साध्वन्यानां सिखदिषे॥ कालावराय कांलेम पूर्वीय जगती नमः॥ 🕆

जिसि-साध्वन्धे साध्वन्धाः। जिस-अन्धे अन्धाः। भीषं रामवत्। एवं प्रथमाद्यः। दितीयस्मे दितीयायः हितीयसात् हितीयात्, हितीयस्मिन् हितीये। एवं खतीय:। निर्जर: । 🕸

<sup>\*</sup> प्रत्युदाइरणान्याइ समायति — ग्रार्क्षणे विकावे नसः। कीटगाय एषु अस्तरस् भगाय तल्याय जगनायलादि थर्थः, अत्र समग्रन्दस्य तल्यायेलीन न सिसंज्ञा। पुनः कीटगाय एवां जगतां मध्ये पराय श्रेष्ठाय नित्यतादित्यर्थः, वच परग्रव्टस्य व्यवस्थानाचि-ल।भावात ने सिसंज्ञा। किमर्थनम इत्याह सुताये भी वाय अर्थाल राय प्रयोजनाला-राय धर्मार्थकामार्थमित्यये. भव भ्रत्तरग्रद्धस्य विद्धीगादिभिन्नार्थलंगन सिर्मन्ना। पुन: भीडभाय यदम्बाय यद्नां भातये, स्वाय धनाय यद्नामिति समस्पदेन सम्बन्तः, समस्याममस्तेन नियाकाङ्चीण यङ्गितिरितिन्यायात, पत्र खश्च्दस्य जातिधनवाचित्वान् न सिमंज्ञा। पुन. कौडगाय सही वीरैं जुष्टाय सेविनाय इति पद्मपूरणार्थस्।

<sup>†</sup> न गौग्याख्येत्यस्य (८०) उटाहर्णान्याह श्रतिसर्व्वायिति, सर्व्वाय शिवाय नसः भव सर्व्यमस्टस्य "सर्व्यः शिवः स्थागुरिति" सहस्रनाममध्ये पाठेन संज्ञावाचित्वात् न सिनंजा। कीट्याय अतिमर्व्वाय सर्वमितिकानाय, अत्र गौणलात न सिमंजा। पुनः की हमाय साध्वन्यानां सिविदिषे, साधवय भन्यं च साध्वन्याक्षेषां, सैवा च दिट च तमी, क्रमात् शाधनां सख्ये, भगाधना दिवे शवते इत्यर्थः, अत्र साध्यन्यानानिति इत्समामिश्यतलात् न सिमंज्ञा. मेमामान्तविधिरनित्यलात् सिखिदिवे इत्यत्र (३२३) चैक्यादित्यनेन न भागत्ययः । पनः कौद्दशाय जगतः कालायराय कालेन कनिष्ठाय भाव काल।वरार्थित त्रतीयाततपुरुषममामस्थितत्वात् न सिसंज्ञा । पुन: कीटशाय जगत: कालिन पूर्वाय, भव दतीयातत्प्रवसमास्याग्यवाक्यस्थितत्वात न सिमंत्रा ।

<sup>‡</sup> साध्वन्यशब्दश्य असि तु(८०) चे असि वैत्यनैन विकल्पेन सिमंजायां माध्वन्ये साध्वन्या: इति पददयम्। चलो चल्या: इति (८८) पृथ्वीद्यलीयनेन जसि परे वा स्तिमजा। एवं प्रथमे प्रथमाः, चरमे चर्माः, दितये दितयाः, चितये चितयाः, दये दयाः, विया:, पर्डी पर्डा., कतियये कतिपया:, नेसे नेसा.। साधकाव्ये तु द्वेषासिति

#### ११५। जरस जराचिता।

(जरम् ।१त, जरा ।१।, भवि ७।, तु ।१त) ।

जराग्रव्हो जरस् वा स्थादिन परे। निर्जर्मो निर्जरमः, निर्जरसं निर्जरमी निर्जरसः, मिर्जरमा। केचिदादाविनाताविक्किन्ति, निर्जरिमन, निर्जरमैः, निर्जरमै, निर्जरमः, निर्जरमादित्यादि । पन्ने न्हमे च रामवत । «

११६ । पाद दन्त यूष निमा पृतना मासासन सान नासिकोदक हृदयास्क् यक्त मक्त भीषे दोष: पहद यूषन्त्रम् पृत्वासासन् सु नसुदन् हृदसन् यकन् मकन् भीषेन् दोषण: भसादि-पौ।

(पाद - दैं।ष: १॥, पद--दीवण: १॥, भ्रमादि भी २।)।

ष्रथेभी दृग्यते, तत सहाकि विभिन्नतात् माध्यत्, द्यमिष्यत्तीति किपि द्येष्णव्येत् वा। जोमरास् उभगभव्यस्ति षयानं मत्वा उभये उभयरः इति वदन्ति । दितीय-र्जः = (६०, ११२) दितीयवी. वा सिन्द्रायां (१०६, २२) दितीयाय द्यादि हतीयभ्रस्टोऽस्येवम् । विकेर-सि (१०२) = निर्जरः । निर्मास्ति जरा यस्येति बहुत्रीहिमसासः ।

प्रंकिङ म्वकरणान विक्रतस्थापि जराश्यन्तस्य ग्रहणं, एकह्शविक्रतममत्यवत् भवतीति त्यायात् तेन जरा जर इत्युभयस्थापि जरस् वा स्यादिव परे। प्रकरणवलान् भवतीत त्यायात् तेन जरा जर इत्युभयस्थापि जरस् वा स्यादिव परे। प्रकरणवलान् भवीति स्यादिदेव, तेन निर्जरस्याचं निर्जराचं इत्यादी न प्रसङ्गः। भव तुःश्रन्दो व्यवस्थापकः, व्यवस्थाप व कीनिटादाविनाताविक्कत्तीति । विद्यक्षिष्यः स्याद्त्तरङ्गः विधिवंतीति त्यायादादी जरसादेशे भम भाहिस्तीपः स्थी नकारस्य न स्थात्, एवं टा छे छनीनाम् इनायातीऽपि न स्यः। किश्व सर्व्यावयगित्रभेन इस्तप्रत्यक्ष्मावान् भामी श्रमागमीऽपि न स्थात् तेन निर्जरसामिति, व प्यादं दतामित्यादशीऽपि । किवित् पिछताः सावकाशविधिभः स्यादवती निरवकाश्यव इति न्यायेन, जरसादेशकरणात् भारी टा-ङस्थोः स्थाने इनाती इक्तिता, तत्यति (टा. १०६) निर्जरसिनः (ङसि, १०६) निर्जरसिति । पर्षे जरसादेशभावपचे, इसे परे स्थाम् भिम् स्थम् मृप् एषु परेषु चित्रयेः। पारिवनिः ७ १११०१ ।

एषांस्थाने एते क्रमात् स्तुर्वायसादी पौच परे। क्ष पदः पदापद्वरामित्वादि । इतः दतादक्वरामित्वादि ।

#### ११७। सदानोऽल्लोपोऽम्बस्थात् पौ वा त्वीङ्गो:।

(सदा ११, भन ६।, भत्-स्रीपः १।, भ-मृथ-स्थात् ५।, पौ थ, वा ।१।, तु ।१।, ई.की. ७।)।

अनोऽकारस्य नित्यं सोपः स्थात् पौ परे, ईड्योसुवा, न तु मस्यात् वस्याच परस्य । 🌵

 पतिवां स्थाने पति चादिशाः क्रमान् भवन्ति, यथा— निशा पाट पृत्तना मास যুদৰ দিয় मास् पद दत् पृत् न।सिका उदक इदय ष सृज ষ্ঠাৰ य ज्ञान **उर**न् ₹ ₹ भ स न् यक न् अव का न षत्र असादिय इणीन पूर्विविभक्तिरिं। सात् कीवे चौकारस्य पिलेऽपितत्र न स्थान्। भव भासनग्रद्याने चासन् इति पदं साधयता वोपदेवेन काश्विकानतसेव भामाणि-कत्वेन रहीतनः; सिडालकौमुटीकारेख तु भास्त्रभ्वस्थाने भासन् इति वदता तकातं प्रामादिकासिति भिद्धान्तितम्। वाशब्दस्य व्यवस्थयाः क्वविद्वास्यात् (१), क चित्रियं (२), काचित्र स्थात् (३), प्रयोगत इ.ति । यथा. (१) ग्रसादौ भिक्तस्यः स्वय-मुदाइतः, एवं मुदतौ मुदनी इत्यादी च । (२) केशार्ये शीर्वण्यः, पूरियतव्यार्थे उदकुमा इत्यादि । (३) पादप्रचालमजलार्थे पाद्यमित्यादि । पाणिनि: ६ ११ । ६३ ।

<sup>†</sup> सदिति पूर्व-वाधिकारिनष्ठस्वयं न । स्वया सदित समयनं सुखाले गौणले विस्थंः, तेन पूजितपूर्णः पौतयूर्णः रत्यादि विज्ञम् । भव वस्ति म्वः (भवानःः) मृत्यासी स्थिति म्वस्यः, न मृत्रसः स्मृतस्यस्यानात्, नवसंयोगात् यथा—कर्म्यः यञ्चनः रत्यादि । ईस्त्रीरिति जि-सारचर्यात् ईरिति विभक्तिस्यस्थीयमेव यास्त्रम्, तेन स्रज्ञी पहनी रत्यादि । वार्तप्तः पौणः धार्त्तरातः एवास् स्वेने विश्वते (४१५) इन् सन् दृति स्त्रमेवं जापयिति—त्रितस्य स्वि ये च न सर्वव स्वीरः तो त्रात्रः स्वादः सुद्रंत्व रत्यादि सिज्ञम् । पाणिनः द्रार्थः १३६१ १३६० ।

यूष्यः यूष्णा । #

## ११८। नो खुप् फेऽघौ।

(न: ६।, खुप्।१।, फी ७, मधी ७)।

नस्य तुप् स्थात् अर्थो फे परे, भं यूषभ्यामित्यादि । ङो—यूचिष यूषिष यूषे । मासः मासा माभ्यामित्यादि । क्ष पचे घो च रामवत् । पदादयः प्रथक्यव्दा द्रत्येके । §

# ११८। सङ्ख्या-वि-सायादाङ्कोऽहन् छौ।

(सङ्ग्रा-वि-सायात् ५), वा ।१।, षङ्गः १।, षङ्ग् ।१।, ङौ ०।)।

सङ्घा-वि-सायेभ्यः परस्याङ्ग इत्यस्य ऋहन् वा स्यात् ङो । ¶

स्व प्रम् (११६) = स्वन् चम् (११७, १०७) = स्चाः । एवं स्व टा = स्चा।

<sup>†</sup> लिङ्गानस्थरा चक्रत-नकारस्य लुप् स्थात् स्थादीय-इसे विरामे चन तुधी। धिवर्जनादेव लिङ्गान्तनकारस्य प्राप्तः, तेन (इनधासी च्यां दिपि) चहन् दत्यादीन प्रसुद्धः। प्रश्नान् भवान् दृत्यादीकातलात् न नस्य लोपः। पाणिनिः पाराश्रुपः।

<sup>‡</sup> यूषः क्षिः (११६, ११७, १०७) = यूषा, वा सास-मस् = मासः। भास-टा = मासा। मास-स्याम् (११६, १०२, ७०) = मास्या।

प्रक्री— केवित पिछताः बद्वभ्रतयः प्रयक्ष्याः सन्तीति बदिना । एतत्
 नोपदेवस्थापि मतम्, चतरव कारके (१००१) चावसतात् स इत इति विशीयैकवचने
 स्वयसुदाञ्चतम् ।

ण सकारवाचक शब्द विशव्द सायश्रव्देश्यः परस्य चक्र इत्यकारा निशव्दस्य चक्र वा स्थात् की परे। वयोरकोर्भवः दाकः, विगतम् चहः स्थकः, चक्रः सायः सायाः। सस्य दोराजः इति (३५२) वप्रत्यये, सर्वे करेशः इति (३५४) चक्रादेशे एवा मदन्तत्वम्। पाणिनिः द।३।११०।

हाडि हाइनि हाडे, व्यक्ति व्यक्ति व्यक्ते, सायाडि सायाइनि सायाडे । \*

विख्वपा: विख्वपी विख्वपा:, विश्वपां विख्वपी । क

#### १२०। घोराखोपोऽख्यवी।

(धी: ६, भा-कोप: १।, भवि ७।, भवी ७।)।

भीराकारस्य लीपः स्यात् अञ्चावि परे।

विश्वपः, विश्वपा विश्वपाभ्यामित्यादि। एवं गङ्कभादयः । 🕸

धीः किं-हाहाः हाहा हाहाम्यामित्यादि । §

शेषं विशवपावत्।

हरि:।

१२१ | युद्भारा-मौ यू । (अक्राम् ४॥, को ११।, यू २॥) ।

<sup>\*</sup> दाह जिल्हा हुन-इ (११०) = दाहि, वा दाहिन, वा दाहे इत्यादि।(इत्यदना: )

<sup>†</sup> विश्वंपाति रचिति यः स विश्वपाः विश्वपाः । विश्वपाः सि (१०२) = विश्वपाः । विश्वपाःची (२३) = विश्वपो । विश्वपाःचम् (२२) = विश्वपाःमः ।

<sup>‡</sup> भालतयवीभृताकारस्य लीपः स्थान विभिन्न स्थादीयाचि परे । तदिताच-यका-रयीः परयीः यथीलीप (२५८) इत्यनेन चाकारलीपस्थावस्थकते भारालीपः पौ इतिः यन्न कृतं तन् गीमायः सायः पायुरित्यादौ (४४७) चाकारस्थित्यर्थम् ४ विचपा सस् — विचपः इत्यादि । याचिनः ६।४।१४० ।

<sup>§</sup> इा इति जुत्सिनं अन्दं जहातीति भीषादिक-ङाप्रत्ययेन, उत्येचीति (६१०) भाकारखीये हाइ। इति भाकारस्य धातवयवताभावात् न भाकारखीप: । किंप्प्रत्यये छुधातवयवतेन भाकारखीप एव — हाइ: । हाइ। गन्यन्ये: । "भातीऽनाप इति बक्तन्यम्" इति वाक्तिबस्—भावत्तिभिन्नागामाकारखीप इत्यर्थः । भव "धातीः किं हाहान्" इति विद्वात्त्रक्षीसुदी । "इाइ। जु वा , हाइ। इाहः हाहान् वा" इति सीपग्ने । "हाइ: इति क्षमदीयर्भ । "भन्युत्यप्रीऽपि गन्यन्यं गचको हाहाभन्दे। सिं तत्त्व हाहान् हा इति क्षमदीयर्भ । इति गीयौष्टाः । (क्ष्यादकाः) ।

#### इकारीकाराभ्यां पर त्री क्रमादिकारीकारी प्राप्नीति । इरी ।

## १२२ । गुर्धिनस्डित्सु । (वः १।, घि नम् वित्त ।।)।

दुतोर्गुः स्वात् धौ जिस ङिति.च परे। इरयः। १ त्यां से त्य

## १२३। टादसञ्चास्त्रियान्त ना।

(टा ।१। चदस: ४।, च ११।, पिकां ०।, तु ।१।, ना ।१।) 1

इदुद्वामदसय परष्टा ना स्थात्, न तु स्त्रियाम् । §

<sup>.</sup> • इञ्च ख्य यू, प्रधान् तकारानुबन्धेन युती ताभ्यां। क्रमच इकारात् ची इ, छकारात् ची च । इत्स्ची -= (१२१,२२) इती । पास्किनि: ६।१।१०२ ।

<sup>†</sup> भन, इट्डां विहितं एव धी परे बीध्यं, तेन हे नदि हे सुभु इत्यादी समूदीति (१५६) इस्ते पदात्न गुष:। ङिति च सावात् परे बीध्यं, भनवा सन्ये दिवाक्ष बा डितामिति (१५६) ऋसि क्रितेऽिष भनेन गुषापित्तः स्थात्। इति-जस् च्रां(१२२, ६५८) इत्यः। पाणिनिः अव।१०८, १०८, १११।

<sup>‡</sup> प्रत्यक्ष्य खोपेसित प्रत्ययस्य सवर्षं विकं स्वीक्रियते क्रत्यं, येन केनापि क्रव्हेन प्रत्ययक्षेपे तत्प्रत्ययसम्बन्धि कार्यं स्पादिति यावन्। (पाणिनः १।१।६२)। यथा, राजा इत्यादौ (१४८) सेलीपे (१६४) दीर्घः। नावामीक्षः वागीक्षः क्रतादौ (११८) विभक्तित्वृति विभक्तत्वर्ति विभक्तित्वर्ति पदमंत्रा सिद्धा। हे हरे इत्यत्र वादौ गुणे क्रते, स्थानिवक्षेतेव धिलीपे सिक्ते, त्यसंपि त्यलवण्यमिति न्यायस्त्रीकारः स्थानिवदादेशः इति न्यायस्य त्यभिचारस्वनार्थः। हे—इरिसि (८०,१०३,१२२) = इरिन क्यायस्य त्यभिचारस्वनार्थः। हे—इरिसि (८०,१०३) = इरिन्।

इरिणा हरिभ्यां हरिभिः, हरये हरिभ्यां हरिभ्यः। अ

#### १२४। इन्सेंडो लोप:।

(डस्य ६।, एडः: ५।, स्तोप: १।)।

एड: परस्य ङिसङिसो ईस्य लोप:'स्यात्। वि इरे: इरिभ्यां इरिभ्य: | इरे: इर्थ्यो: इरीणाम्। क्ष

१२५ । युद्धां छे-डी:। (युक्कां प्रा., के: ६।, डी: १।)। इदुद्धां परस्य केडी: स्यात्, व इत्। §

## १२६। टे-लेंगि डिति, विंगते-स्तेस्वङौ।

(टी: ६।, खीप: १।, डिति था, विश्वती: ६।, ती: ६।, ता ।१।, चडी था) ।

खिति परे पूर्वस्य टेलीप: स्यात्, विंगते-स्तेस्वङो । ¶

इरि-टा (११३, १०७) - इरिया । इरि के (१२२, ३५) = इरवे ।

<sup>†</sup> डः पर: घः डः तस्य कस्य, स च कसिकसीरिव सभवति, घत घाइ ङिसिकसी-र्ङस्थिति । एक इति प्रकृतिविक्ततेरपि, तेन गोः योरित्यादि । पाणिनिः ६।१।११० ।

<sup>‡</sup> इरि-ङिसि (१२२, १२४, १०२) = इरै: । एवं उस् = इरै: ।' इरि फीस (34) = 221: । इरि-याम (११०, १०४, १००) = इरीवाम ।

<sup>§</sup> यद्यपि, युद्धां उत्ते इति इतुद्धां सङ् उति विघाने क्षते परस्ते चाउति विवास करणीय-डिति परे एव विद्यति-वक्तव्यं न स्थात्, तथापि उत्तै-करणं परसूते स्थाद्यध्यायप्रकरणीय-डिति परे एव विद्यति-की-सौंपाये, तेन विद्यतिमाचिष्टे विद्यतयित इत्यत्र (८५५) जिन्नत्यस्य (४६०) डिस्वेऽपि टेरेव स्तोप: नतुते: । पाणिनि: ७।३।११८-११९८ । एतन्प्रते भौत्।

ण जिति परे तत्पूर्वशस्त्रस्य टेलें।प: स्वात्, विंग्रतिशस्त्रस्य तु ति-भागस्य लीप: स्वात्, चर्जी जिसम्बन्धिभिन्ने जिति परे, जिसस्य कि जिति परे तु विंग्रतिशब्दस्य टे-लेंग्प एवेत्यर्थ:। यथा, विंग्रती: पूरण: इत्यर्थे विंग्रतिश्रन्दात् (४५०) उटि क्रतें ति-भागलीपे विंग्रे, जी तु विंग्रती। पाणिनि: ६/४/१४ २ १४ ३।

इरी इर्था: इरिषु। अ एवं श्रीपत्यग्निरव्याद्य:। 🌣

## १२७। सब्यृद्ग्यां सेडीघे:।

(सख्रक्षां ५॥, से: ६।, डा ११।, अधे: ६।) ।

सिख-प्रज्ञात् ऋकारान्ताच परस्य से डीस्थान तुधेः। सिखाः प्रधेः किं, हे सखे। कः

### १२८। वौ ति: र (वी o), तिः १।) ।

सब्य ऋकारस्य च तिः स्थात् श्रधी घी परे। § सखायी सखायः, सखायं सखायी सखीन्। ¶

## १२८। संख्यष्टाङिता-माएउसुसौ।

(सख्यः ५।, टा-डिताम् ६॥, घा ए उस् चस् घौ ।१॥) ।

इरि-ङि (१२५, १२६) = इरौ । इरि-सुप् (१११) = इरिषु ।

<sup>†</sup> श्रीपृतिस अग्निस रिवस ते आदयी येकां ते। आदिपदात् विशेषित्र-यावतीय-प्रिकः-ऋक्षेकारान्तश्रव्दाः एवनित्ययैः।

<sup>‡</sup> सखा च ऋच ताभ्यां, सखाहासम् । सखि-सि = सिख-छ। छ-इत (१२६) = सखा । ई सिख-ित (थि) = (१०३,१२२) सखे । पाणिनी सिखपित मृद्धसाधनप्रकारः सम्यक् विभिन्न एव । अ१८२,८३, अ२।११४, ६११।१११, अ३।११६ ।

<sup>¶</sup> सखि:ची = सखे-ची (१५) = सखायी। एवं जर्भ् पम्ची परे। सखि-शम् (१०४,१०५) = सखीन्।

सख्युः परेषां टाङितां स्थाने द्या ए उस् उस् ची एते क्रमात् स्युः। \*

सख्या सख्ये सख्यः सख्यो । 🕆 शेषं हरिवत्।

## १३०। पत्युरसे। (गलुः प्रा, पर्स ७।)।

पतिग्रब्दात् परेवां टार्डितां स्थाने त्राए उस् उस् ग्री एते क्रमात् स्थुनेतु से। पत्था पत्थे पत्थः पत्थः पत्थी। ग्रसे किं, त्रीपतिनाद्रत्यादि। ग्रेषं हरिवत्। श कातिग्रब्दा ब्यान्तः। §

श्राए उसुधी दल्य स्वतात् न सिन्धः। टा के किस दुंस् कि स्थाने क्रमेण भा ए उस् उस् भी भविना। टादिस्थाने भा चादि करणं ना-भादिनिष्धार्थम्। किन्तः क्र विद्यवाद्विष्येऽध्यक्षारीदिनिविभते दित चथवा भातिदेशिकं कार्थमनित्यमिति न्यायात् सिखना वानरंन्द्रेण दल्यादि सिद्धम्। सल्युद्धारित घी विदिश्त सख्यादि तिर्वेष सिख्यस्था स्वयद्धारित घी विदिश्ति सख्याक्षाति एतेषु सिख्यक्ष्यस्था सुख्यस्थेव स्वभूष्यापि यहणमिति भाष्यकारः, तन्मते जितसखा, जितसखायी, जितसखा दल्यादि एवमतिश्चतः सखा चितसखा दल्यादि च। किञ्च, पुंकिके एव यहणं, स्त्रियान् नित्यभीवन्तवान् (२०४) सखी गौरीवत्, कौवे चास्य न प्रयोगः। पाणिनिः ११४।०, ६१२।२१२, ९।३।११८।

<sup>†</sup> स्राख-टा = स्राख-चा(३५) = सस्ता। एवं के खस्ति खम् डिग्योगे।

<sup>‡</sup> भवापि पूर्वस्ववत् क्रमान्वयः, न्यायस्त्रीकारस्, तेन पतिना नीयमानायाः इति, नटे स्ते प्रविनिते क्षीवे च पतितं पतौ इति, स्रोतायाः पतये नमः इत्यादि च सिद्धं, कान्दसमिति केवित् । पति टा — पति मा (३५) — पत्या । एवं उटे उट सि उट्म डि परे। श्रीपति टा (१२३) — श्रीपतिमा, श्रियाः पतिः श्रीपतिदिति विग्रहः । श्रेषं पतिश्रस्ट-स्रोत्याः । पाणिनः १।४।८ ।

कृतिशब्दः कियत्परिमितव। चकः, चतएव चनिश्चितवह्रतार्थलेन वहुवचनान्त प्रमिति।

### १३१। डितसङ्ख्याच्यो जस्मसो र्जुक्।

(डिति सङ्ग्राष्-्यः ५ , जस्मभीः ६॥, लुक् ।१।)।

डत्यन्तात् षान्त नान्त सङ्घायाय परयो जस्मसो र्जुक् स्यात्। क कित कृति कितिभिः कितिभ्यः कितिभ्यः कितीनां कितिषु। एवं यति तिति ।

डित-त्र्य-ष्णान्तसङ्गास्मद्-युष्प्दः सहमास्मिषु ।ं चगादयः सङ्गागन्दाः ब्वान्ताः । क्ष

१३३ । चेरयङ् नामि । (वै: ६१, पयङ् १११, नामि ०))।

विगन्दस्य अयङ् स्थात् नामि परे, ङिलादन्यस्य स्थाने। §

क ष न च च, सहा चासी चाचेति महागण, उतिय सहागण चेति तथात्। उति: प्रत्ययः, तेन उत्यन्ता. कित यित-तित इति चयः। एषां मुख्यानामेन यहणं, तेन प्रियक्तयः भृतिषयः भितिपञ्चानः इत्यादौ न जुक्। जुक्करणात् कित इत्यादौ (१२२) सुधौत्यादिना न गुणः, पञ्च इत्यादो नान्तलात् (१६८) न दोषः, (८३) जुकि न तज्ञिति निविधात्। पाणिनिः १।१।२४ २५, ७।१।२२।

<sup>†</sup> प च न च णो, णो भनो यथाः सा णाना, णाना चासी सङ्घा चेति णान-सङ्घा, डितिय, व्यच णानमङ्घा च भस्तच युभव तं। डितिप्रव्यान-भव्यय सङ्घा-वाचक पाननान यस्य-युभर-भन्दाः चिषु विक्षेत्र सहमासुत्या एव स्वक्ति इति नियमान एवा विङ्गविदितविभवकाव्यं न भवती व्ययः। एवा सुद्धाना मेव यहणं, युष्यद्-स्वदीस्तृ गौषते सुद्धते च । भवादयुष्यत्सं व्यास्तिषु सुरुषाः इति सिडालको सुद्दी।

<sup>‡</sup> भादिशन्दस्य व्यवस्थायाचकावात् भष्टादमपर्थंना एव, कनविंग्रणादीनान्तु एक-वधनान्तलमेत्र, 'विंग्रलाद्याः सदैकावे सन्वोः सङ्घायसङ्घयो'रित्यमरात्।

<sup>§</sup> विशय्दस्य मुख्यस्थैव यहणं, तेन माप्तचीणानित्यादी न स्वात्। परमास्र ते वथयिति तेषां परमवयाणानित्यादी मुख्यत्वात् स्थादेव । नाम्ययङ् वैरिति तु सुति-दुःखावह्वतात्र क्रतं; क्रावित्र स्थादित्यर्थनिति क्षेचित्, तेन चौणानिव समुद्राणानिति सिखन्। पाचिनिः ९०१।५३।

भगाणां निष्। ः दिमञ्दी दान्तः। १

१३३ । त्यदां टेर: त्रौ । (त्यदां ६॥, टे. ६।, का १।, को ७) ।

त्यदादीनां टेरकार: स्यात् क्षी परे। अ

**दी ही, हाभ्यां हाभ्यां हाभ्यां, हैयो: 'हयो:** । §

वातप्रसीः वातप्रस्थी वातप्रस्यः। ब

## १३४। यूतोऽम्श्रसो-र्कावदीधोः।

(यूत: ५, भन-शर्मी: ६॥, की १॥, भदीधी: ५।)।

### क्षिष्ठवर्जादीदूदन्तात् परयोरम्यसीः स्थाने क्रमात् मनौ स्तः।

वि-चाम् (११०, १६२, १०४, १०७) = चयाकाम् । वि-भुप् (१११) = विषु ।

<sup>†</sup> दिशच्दी सुखें। एव दिवधनानः, तैन प्रियदिः पुरुष दति । येषां श्रष्टानामा-क्रतिरत्ययात्वं ने जायते ते एवादी वक्तत्याः, चतएव दकारान्तश्रष्टानासुदाहंरणे भादी विशष्टसुक्तापक्षात् दिशब्दः कथितः।

<sup>‡</sup> भनुकर्णशब्दस्य सिमं जाभाविन टेरलाभावि त्यदामिति पदं सिडम्। बहुवधमं गणार्थम्। सिसंज्ञानामेव त्यदादीनां टेरकारः स्थान्, तेन भतितदः भतितदः, भितितदः, भितितदः कुलानि, इत्यादी गौष्यं न स्थान् ; युष्तद्यस्योस् गौष्येऽपि, एवं द्वियुष्पदस्यक्षं न तसीति वज्ञत्यम् ; तेन भतियुष्पान् भत्यस्यान् भितिलान् भितान् इत्यादि ; प्ति तु दितः युष्पतः भवतः तत्तः भनः भितियुष्पतः इत्यादि । लिङ्गान् विभज्ञेरावस्यकलेऽपि जियदणं साचान् कौ परं एव श्रेयं, तेन सः एवः इत्यादी इसाद्तरे आदी न सेलें। । स्थां उङ्की इति यज्ञ कतं तन् प्रक्षियालाघवार्थमेवित । पाषिनिः ७।२।१०२ ।

<sup>\$</sup> वि-भी = द-भी (२१) = दी। दि-भ्वाम् (१०८) = दाभ्वाम् । दि चीस् (१०६) च्चिथी:। इति इटना:।

ण वार्तप्रसिमीते प्रमाति वेति वातप्रसी: भीणादिक: ई(किन्)प्रत्यय: । स्यविभेष इस्थर्थ: । वातप्रसी-भी (३५) = वातप्रसी । जस् (३५) = वातप्रस्य: । सम्बुद्धी हे वातप्रसी: । किवन्तवातप्रसीम्भरदेख तु भिम प्रसि खी च विभेष:---वातप्रस्यन्, वातप्रस्यः, धातप्रस्यः।

वातप्रभीं वातप्रस्यो वातप्रमीन्, वातप्रस्या वातप्रमीस्या-मित्यादि। एवम् चतिलच्माादयः। \*
सधीः। पे

१३५ | घोरियुवचि । (भोः ६।, प्रय-खन्।१।, पणि अ)।

धोरीटूतो: स्थाने क्रमादियुवीं स्तोऽचि,परे । क्षं सुधियी सुधिय: इत्यादि । एवं सुश्रीयवक्रगादयः । ह प्रधी: । श्र

## १३६। कव्यादानेकाचोऽस्याददन्पुनर्वर्षा-काराद्यन्यभूसुधियोयुर्ते।

(क्रवायनेकावः ६।, प्रकात ५।, षटन्—सविधोः ६॥, य्वौ १॥)।
कादिर्व्यादेरनेकाचय धोरीहृतोरस्यात् परयोः क्रामात् यवौ

मदीसंज्ञत-घात-भिन्नात् ईट्रन्नात् शस्यात् परस्य चम्स्याने स शस्याने न स्वात्।
 वातप्रसी-चम् = वातप्रसीस्। वातप्रसी-चौ (१५) = वातप्रयौ इत्यादि। चित्रलच्याःदयः
 इति चादिपदेन चित्रतनी वहुप्रेयशी चित्रवध् चित्रस् इह प्रस्तयः। पाणिनिः
 ६।११००।१०६।

<sup>🕇</sup> सु श्रीभना घौर्यखेति सुधी: । ध्वैधाती: क्रिप्प्रत्यत्रे घी: (१०१०)।

<sup>‡</sup> विभक्तिं विपरिषासय ईट्रतीरनृष्ठितः। घालवयवीसृतयोः ईट्रतीः स्थाने क्रमात् इयुवी सः चिष परे। प्राथेण विच् क्रिप्रस्थयान्त्रश्रन्दानानेव ईट्रतीधीलवयवलं सभावित, तथाच — "विच् क्रिवला हि धातुलं न त्यनित कराचन। क्रियि तथनित स्थानितं सुधीनौति-प्रदर्शनादिति॥" चिषीत स्थादेरेव, क्रियित् तिष्ठतस्थापि, शेन धाम् स्वायभुवं ययुरिति सिड्म। विशेषविधिलात् (२२) सह चे चे द्रत्यस्थापि वाधकीऽयं तिन की सुधिय द्रत्येव। पाणिनि: ६।४।००।

९ सुधी-ची = सुधियी इत्वादि। ययलेगां यी: (१०३५), सुषु यीर्यस्य सः सुत्रीः यवेन क्रीचातीति यवकीः। पादिसन्दात् ग्रुद्धी नी सुन् कटमू स्वयभू प्रस्त्रयः।

न प्रक्रष्टा घीर्थस्य सः प्रधीः।

स्तः श्रवि परे, न तु हन्भू-पुनर्भू-वर्षाभू-काराभू-योऽन्यस्य भू-शब्दस्य सुधियस । \*

प्रध्यी प्रध्यः इत्यादि । एवं दीध्यादयः । 🕆

कव्याद्यनिकाचः किं, ग्रुडिधियौ । श्रस्थात् किं, यविक्रियौ । नीः नियौ । क्ष

य्वी इति धिवचनात्तेन क्रमनिक्षा हाथे पूर्वतः यूतोरिति धिवणनात्तं भूला भन्न-वर्तते। ततस—कारकादिरव्ययादेरनेना भय धातोरीदृती यद्यधंयोगात् परी भवत-सदा तथीः क्षमात् य्वी स्थातामचि परी, हन्ध्वादिभिन्नभूषस्यः सूधियय न स्थादि-स्थाः। इयुवोनिविधे (५५) यसायवायेत्वनेन सिद्धाविष यविधाने (२२) दीर्षवाध-नार्थे, तेन कौ प्रष्णि। भव हन्पुनविधेकारादि-भूषस्यः व विधाने तिक्षित्रभूवजैनस्य कष्टगस्यत्या स्पष्टायेभेव तिक्षत्रभूवजैनस्य । भवापि भवीति स्थादेरिव, तेन प्रषीयर हत्यादी न प्रसन्तः। हन् इति हिंसायेमच्ययं तथी भवतीबि हन्भः पन्नगवच्यीः, प्रनर्भः स्थात् दिख्दायां, पुनर्भवायां वर्षाभः स्थितं किञ्चसुके स्रवे, कारासूनिगङ्-स्थाने इति कीषः।

भव भायं विशेष:— स्वायात्मतः पूर्श्यं कारकात्रयाथां कतरमासस्येव भातोशैट्रती-यंवी सः न तु स्वायानस्य समाते, तेन भयनं भीरिति किपि, भ्रैषत् भीयंषा ते भ्रेषितयः, दुःस्थिता भीयंवासिति दुर्धियः इत्यादि । तथाच अधिकभिया पलायमानस्य भाशी-विषसुस्वे विनियात प्रति भाषम् । भव अधिकस्य भीरिति (अधिकसम्बन्धिनी भीः) कारकादिलाभावादिति केचित् । परन्तु सुष्ठु भीः प्रक्रष्टा भौरिति नियस्त्रौते सुधीप्रध्यो भौलक्षीवदिति (१५८) कथनात् स्वसते नेशं स्यवस्था । पाणिनिः ६।॥ पर प्रत्नु । गतिकारकपूर्वस्थेवेष्यते यणादेशः प्रति वार्तिकम् ।

† दीधीर्कं चलुदेवने दीप्ती इति धाती: क्रियि दीधीविति कनेकाचः, पादि-पदात् भयणी सुती लूभी सुखी प्रभृतयः।

‡ ग्रजा घोर्यस स: ग्रजीयी:। ग्रज्ञधी-ची (१३५) = ग्रज्ञियी। एवं यवकियी, नियी।

अ कच व्यच करी, ते पादी यस स कथादिः, स प पनेकाच कथायनेकाच् तस्य। हन् च पुनर् च वर्षाच कारा च ता' पादशी येवां ते हन्पुनवैषिकारादयः, तैभ्योऽन्यः हन्पुनवैषिकाराद्यन्यः, स चासी भृषिति हन्पुनवैषीकाराद्यन्यः,, स च सुधीय तौ हन्पुनवैषीकाराद्यन्यभूस्थियौ, न तौ बहन्पुनवैषीकार्य्यन्यसुधियौ तथीः।

## १३७। न्यापदीस्यो छेराम्।

(भी-चाप्-दीभ्य: ५॥, जिः ६।, चाम् (१।) ।

नीग्रन्दादापो याय परस्य छे-राम् स्थात्। नियाम्। शेषं सुधीवृत्। श्रयणीः श्रयण्यौ। डी-श्रयण्याम्। शेषं प्रधी-वत्। ॥

### १३८ । त-तज-खादीयों ङोवो:।

(स-तज-खात् ५ा, ईग्र. ५।, ङ: १।, वा ११।, ड: १।)।

तात् तस्त्रानजादणीत् खाच परादीकारजात् यकारात् परो इसिङसो ई उ: स्नादा । सत्यु: सत्यः । लून्यः लून्यः । सुस्यु: सुस्यः । पे

ममु हरिवत् साध्यः । 🕸

ग्रमुः ग्रम् ग्रम्वः, ग्रमुं ग्रमू ग्रमून, ग्रमुना ग्रमुखां ग्रमुमिः, ग्रम्बे ग्रमुखां ग्रमुखः, ग्रम्बोः ग्रमुखां ग्रमुखः, ग्रम्बोः ग्रम्बोः

अ अब भैवलनीप्रव्यस्य तरलाभव्यस्य च ग्रहणं, र्तनः नियाम् भगण्यां गामण्या-मित्यादि । त्रीते तु घल्तरङ्गलादादौ इस्ते गुनि घितिनित कुले, पुंत्रावपचे घितिया-भिति । त्री कि = की घाम् (१३५) ⇒ नियाम । घये नयतीति किपि घरणी: नायतः । घग्रणी-घौ, कारकादिलात् (१३६) ⇒ घमण्यो इत्यादि । पाणिनिः ९।३।११६ ।

<sup>†</sup> तकारस्य स्थाने जातः तकः, तत्र तकस्य स्वयं तत्रकारं तथान्, देकारस्य स्थाने यः क्रेयस्यान् । एतेन तकार तकार जातवर्ण-स्वकारेभ्यः परस्थितान् कव्याद्यनं काच इत्यने जात्र कार्यकारान् इसिङ्गोरकार उः स्थाधा इत्यर्थः । सुतिभिष्कति सुतिभिवाक्षरित वा इत्यादि वाक्ये सुतीयतीति सुतीयधातोः किपि (७०५,६४२) सुती श्रव्दः । एवं लून्सिन्कतीति स्विभित्यादि । सुती-किपि (१६६,१६८) = मृत्युः, वा सुत्यः । एवं लूगुः, लूगः, मुख्युः सुख्य इत्यादि । पाविनः ६।१।११२ । इति ईट्ना ।

<sup>🛊</sup> ५रिशव्दे इकारस कार्यन् पत्र त उकारस्थिति विशेषः,साधनम्वाणि तुल्यानीतिः।

यभूनां, यभौ यभीः यभुषु । हि यभो । एवं विणाु-वायु-भान्वादयः ।

## १३८। क्रोष्टोस्तुनसृत्वधौ घौ स्त्रियाञ्च।

(कीष्टी: ६।, तुन: ६।, त्वन ।१।, प्रश्ली २।, घी २।, स्त्रियां २।, च ।१।)।

क्रोष्ट्रगब्दस्य तुनः स्थाने त्वन् स्थात् अधी घी परे स्त्रियाञ्च । न इत्। \*

(१२०) सच्युद्धप्रामिति । क्रीष्टा, हे क्रीष्टी । (१२८) घी विरिति, क्रीष्टारी क्रीष्टार: क्रीष्टारं क्रीष्टारी क्रीष्टून्। १

१४० | बान्यघो । (वारा, भविषा, भवीषा)। कोष्टोसुनस्तृत्वास्थात् प्रवाविष परे। क्रोड्डा । क्र

<sup>\*</sup> कीम्प्नीति कुम्भातीरी पारिकानुन्पत्यये कीष्ट इति लिइं (स्थालवाचकं), तस्कृ तुन: स्थाने टन् भादेश: स्थान । टन् इत्यस्य नकार: (१४३) घावस्तस्रद्धणीनितः सुणनिधेषकतया सायंकः, न तु निस्तादन्ते, तथा सति तुनी ग्रहणं निर्धकं स्थान । गौणस्थापि ग्रहणं तेन बहुकीषा देश: । स्त्रियास्त्रीत स्त्रीलिङ्गवित्तिं सित निक्तिः चान्तरस्य नापेचा, तेन कोष्ट्री बहुकोष्ट्री इत्यच्चिष (२५०) स्टदन्ततादौष् । स्त्रियां नियमिति कमदीसरः । क्रीवेतु सागमविधेवंशवस्त्राद्दी तृष्यि बहुकोष्ट्रीन वनानि इत्यादि । पाणिनिः ०।१।८५ ।

<sup>+</sup> कीष्टु-िंच कोष्टृडा (१२६) = कोष्टा। है कीष्टु-िंच (घि) (१०३,१२२) = कोष्टी। कोष्टु ग्रस् (१०४,१०५) = कोष्ट्रन्।

<sup>‡</sup> पूर्वस्वे चियक्ष्णदेव भव विभिन्नपानी पुकर्षियहणं कदाचिदिप यस्य चित्रं सभवित ताझिवेधार्थम्, भत्तपव शम्बिभन्नी नः त्वन्, यतः क्षीवे शौ (१६२) क्षते शभीः (५२) विवसभवान् । टाद्यभीति पाणिनिकमदीभरप्रस्तयः । भव भभीति स्थादेरेव, तेन कीक्ष्रिदं (भाप्तस्थे) क्रोष्टविति । कीक्षुटा = कीक्ष्रु-भा (३५) == कीक्ष्रा । पाणिकिः धारेट्

# १८१। चटतो डो डु:। (सतः ४१, ७:११, डु:११)।

ऋकारात् परी ङसिङसी ङीं दुः स्थात्, ड इत्। क्रीष्टुः क्रोष्टुः क्रोष्ट्रोः क्रीष्ट्रनाम्। \*

१८२। णुर्डिध्योः। (णः १।, कि-धोः ०॥)। ऋकारस्य णः स्थात् की धींच परे। ,क्रीष्टरि १ की द्रोः। पत्ते हसेच ग्रमुवत्। क्ष

इह: इही इह: द्रत्यादि, वातंप्रमीवत्। एवमतिचम्बादयः। स्मु: सुभवी सुभवः द्रत्यादि, सुधीवत्। एवं कटपूष्वयभ्वादयः। सुनू: सुन्ते सुन्तः द्रत्यादि, प्रधीवत्। एवं हन्भूखन्यवादयः। श्रधाता, त्रनन्तकोष्ट्रवत्। धी हे धातः। एवं नमृहोत्यपीवा-द्यः। श्र

<sup>\*</sup> कीष्टु-किंचि = कीष्टु-चम् (१२६, १०२) = कीष्टु:, एवं ख्स् परि । कीष्टु-चीम् (१४०,३५,१०२) = कीष्ट्री: । कीष्टु-चाम् (११०,१०४) = कीष्ट्रनाम् । चागमादेशयी- र्मध्ये बखीयानागमी विधिरिति न्यायादादौ नुमागमे चत्परलाभावात् न तन् । पाणिनि: ६।१।१११ ।

<sup>†</sup> क्रीष्टु-िङ (१४०,१४२) = क्रीष्टिरिः पाणिनि: ७! इ।११०।

<sup>‡</sup> पचे त्रणोऽभावपचे, इसे भिमादौ परे श्रमुशब्दवत्। इति छदन्ताः।

<sup>§</sup> इह्रबम्दस्य मिन ग्रसि च (१३%) यूत इत्यानि इह्र इह्न । समुची (१३%) = सुसुवी इत्यादि । सुल्ची (१३६) = मुली इत्यादि । इत्यादि । सुल्ची (१३६) = मुली इत्यादि । इति इह्रयेषमाया गर्सकिं खिदशीक सामिति, खलप् स्थावहुक्तर. (खलं चलरं पुनाति मार्जयित) इति चामरः । कटपूः पुंसि राचसे, विद्याधरे महादेवे तथा स्थादचदेवने इति मेदिनो । इति कदलाः ।

ण घाट-चि (१२०,१२६) = घाता । निरवकाश्रतादारी सेर्डाटिखोपय, चतएव (१०२) गुणस्यामसङः। धौ के घाट-चि (१०२,१४२,१०२) = घातः। घाटणस्ट-सास्यात् नशुद्धः (१८०) टनना एव। तथाच — नप्ता च कीता गहितोऽय पीता, चताय

पिता माता नमान्दा ना सव्येष्ट्रस्थातयः। जामाता दुहिता देवा न त्वनन्ता दुमे द्य ॥ \*

१८३ | घावखसृहणोः । (घो ७), प बस्टवणीः ६॥)। घी पर ऋकारस्य णः स्थात् नत् स्वस्टवणीः । १ पितरी पितरः, पितरं पितरी । शेषं धालवत् । पवं जामालस्थात्रादयः।

### १८८। नुर्वा नामि म्न:।

(तु: ६।, वा ।१।, नामि ७।, र्घः १।)।

रुगन्दस्य नामि परतो र्घः स्थात् वा। नॄणां रुणाम्। कं शिषं पित्वत्। §

नेष्टा तरन् प्रमासा । भाषाय प्रसा च तननातुस्थाः, ष्रष्टिति भव्दाः खलु इडिभानः ॥ एते ष्रष्टभ्ष्दाः पौनादिषु रूढाः, नम हु पूचर निग्प-मास मास ग्रंस, एतेथ्यो धातुग्यः तन्भव्ययेन स्वती निपातनाच सिद्धाः । एवं यावतीयतननाः धात्यभ्द्वत् ज्ञेयाः । पारियनिः ﴿।४।११ ।

मात्र अस्ति जननीयाचनः, परिमाणवाचनः वे त्वनः एन, तेन धान्यस्य मातारी पुरुषी। स्व्येष्ट्र प्रवामपार्श्वीस्थातवीरे रुदः टवर्गहितीयवान् । यातृशब्दः स्वामिक्षातृस्तीवाचनः, चन्यत्र तृननः, तेन तीयस्य यातारी पुरुषी। ननान्द्र स्वयेष्ट्र व देवशब्दाः न तृनन्तत् प्रतीयमानाः किन्तु तृनन्तवेन निपातनात् सिद्धाः। चत एते दश शब्दः वस्तुतः तृनन्ता पपि न तृननाः, तृनन्तकार्यो (१२८) घौ त्रिरिव्यनेन विद्धं न मजनी इत्यर्थः, (१४२) घो यायस्य इत्यनेन गुणं जभनी इति यावत्।

<sup>†</sup> पाणिनिः ७।३।११०।

<sup>‡</sup> नामौति सुख्यगौषसाधारणार्यं, तेन पतिनृषाम् पतितृषानिति । दृषाम् --(११०,१०७) नृषां, वा वृषाम् । पाषिनिः ६।४।६ । द्रति ऋदनाः ।

इस्टलस्थ, लटलस्थं, लटलस्थ, एटलस्थ च क्यं वीपदेवेन विरलप्रचारतात् न
 पदिमानाः
 पदि

१८५ । चोरो घो । (भो: ६१, भो १११, घो ०)। श्रीकारस्य श्रीकारः स्थात् घी परे। गीः गावी गावः । ॥

,११६ | या यमग्रसी: । (भारा, भन-भनी: ०)) ।

श्रीकारस्य श्राकारः स्थात् श्रमि श्रमि च परे। पं गां मावी भाः, गवा गोभ्याम् इत्यादि । (१२४) इन्स्टेडो लोप इति, मोः गोः । ॥

१89 । रै रा स्मि। (रै।रा, रा ।रा, स्मि का)।

रैप्रव्हो रा स्थात् से भे च परे । §

राः रायौ रायः, राभ्यामित्यादि । प

ग्ली: ग्लावी ग्लाव: इत्यादि ।

इति भजना पुंजिङ पादः।

क पाणिनि: शशह ।

<sup>†</sup> अन्न चाडेर, भोकारस्य चा स्थात् दिलीयाया चकारे परेद्रशियन कशंसत् स्प्रप्टार्थम्। पाणिकि: ६।१।८३।

<sup>‡</sup> इति भीदनाः।

श्रीणलेऽपि, तेन क्रीवेऽपि सुराध्यां सुरास इति । (१६०) क्रीवे स्तः इति इस्बेऽपि
 एक्रदेशविकतसनस्यत् भवतीति न्वायात् रा अपनेशः । पाणिनिः ७।२।५५।

ण इति ऐदनाः।

<sup>॥</sup> इति भौदनाः।

#### ३य पाद:-- त्रजस्त स्त्रीलिङ्ग ग्रव्हः।

# १8८। माबीब्भसात् सेर्लीपः।

(बाप्-ईप्-इसात् धा, से: ६।, खीप: १।)।

चाप देपो इसाच परस्य मेलींपः स्थात्। उमा। \*

१८१ यौराप: । (ई ।१।, भो: १।, भाष: ४।) । भाषः पर भौरी स्थात् । उमे उमाः । क

१५० | घिटौस्ये: । (धिटा पीसि का, एः शं)। प्राप एः स्वात् धी टीसीय परतः । हे उमे । उमाम् उमामः, उमया उमाभ्याम् उमाभिः । क्र

१५१ | िङ्तां यस् । (कितां सा, वन ११) । भाषः परेषां क्षितां यम् स्थात्, म इत् । जमायै जमास्याम् जमास्यः, जमायाः जमास्याम् जमास्यः, जमायाः जमयोः जमा-

भ भाग् च ईग् च इम् च तखात्, त्वलाददल्लम्। (१८३) स्थानस्रोरादिल्नेन इसात् सेलींप सिन्ने भव इसी यहणं सिलीपानन्तरं तत्पूर्वकार्व्यनिर्वाष्ठार्थे, स्थानस्यारादिल्नेन लुपि तु (१५) लुपि न ससील्नेन पूर्वकार्व्यनिर्वधापतिः स्थादिति। छं भिवं मीयते नपतीति माङ् लि अस्ट इति मा-धातीलंग्रव्य (८६०) छम इति सन्दात् स्थिम भागि छमा इति सम्दात् स्थापि छमा इति सम्दात् स्थापि छमा इति सम्म। पाणिनिः १११६८।

<sup>†</sup> भौष्याने दीर्ष-ईकारकर्ष नरसी इति सिज्यर्थम् । चापी यहणान् ईप्-इसी-निवृत्तिः । उत्ता-भौ - जना-ई (२३) = उत्ते । उत्ता-नस् (२२) = उत्ताः । पाणिनिः शिश्यः।

<sup>‡</sup> विभक्तिविपरिचार्मेन चाप इति वद्यासनतुवर्तते । घौ टौसीय ऋखुक्षयीः विशेषचाय बत्तौ परच इति पदं(५११) तसनत्वेनीक्तम् । हे छना-सि (४४) (१४८,१५०)

नाम्। (१३०) न्याप्दीभ्यो क्डेरामिति। उमायाम्, उमयोः ष्ठमासु। एवं दुर्गामायास्त्रिकादयः। \*

१५२ । स्तः स्यम् स्वयः । (वे:४।, स्वम्।११, स्तः ११, प ।१।)। स्त्रेराथन्तात परेषां कितां स्थम प्यात्, पूर्वस्य च स्तः । 🕆 सर्वस्य सर्वस्याः सर्वस्याः सर्वस्याम् । श्रामि-सर्वासाम्। श्रीषम समावत्। एवं विश्वादय अर्बन्ताः । ह त्रपुरीत्यृत्ती:-श्रन्तरायै नगर्थै । §

दितीयसे दितीयाये, दितीयस्थाः दितीयायाः, दितीयस्थां दितीयायाम्। येषुमुमावत्। एवं हतीया। श

<sup>-</sup> जमे । जमा-चम (२२) = जमाम् । जमा-चौ (१४८,२३) = जमे । जमा-चस (१२) =जनाः । जनाःटा (१५०,६५) = जनया । पाचिनिः शहार०५-१०६ ।

<sup>🛪</sup> चाप पति पश्चम्यतीनान्वतीनम्। चावनामञ्दात परेवां डे-डिस डर-डि एवां स्थाने यम् स्थान् मिस्वादादी। यदति अकारानः । कितिय पति करणे (१०६) टाभिसिखादिना अयाचादेशापत्ति: स्यादिति । उमा-के = उमा-य-ए (२३) = उसायै । एवं ङक्तिङमी: जमा य-चस् (२२) - उमाया:। उमा-चीस् (१५०,३५) = उमगी: | उमा भाम (११०) = उमानाम | उमा हिः (१३०, १५१, २२) = छमा-याम् । विशेषविधिवहिर्भताः दुर्गामःया भन्विकादयः सर्व्वे भावन्तशब्दाः एवभित्यर्थः । पाचिनि: ७।३।११३।

<sup>🕆</sup> पावर्मसर्थनामग्रब्दात् परेवां कितां खाने खन खात, मिखादादी, सम: पूर्व-स्थितस्य दीर्घस्य क्रस्वयः। यदापि उध्यम् इति कृते स्वयति न वक्षस्यं स्थान्, तथापि असी इत्यादि साधने सकारपरताभावे (२०६) मध्य इत्यस्याप्रवृत्तिः स्यात्। पाणिनिः ७।३।११४। ‡ सर्वा-क्षे= सर्व सा-ए (२३) = मर्वसी। मर्वा-क्षि (२२) = सर्वसाः, एवं क्षस परे । सर्व्वा-डि (१३७) सर्व-सान् (२२) = सर्वस्थान् । सर्व्वा-बान् (११३) 🛥 सर्व्यासाम् । एवं विश्वा, चादिपदेन यानतीयावलाः सर्व्यनामश्रस्टाय एवं श्रीयाः ।

६ (८६) समीऽत्ल्ये इत्यव पुरिभन्ने विषयों गे अर्थे अन्तरभव्दस्य सिसंजाविधान।त--भक्तराये (वहिस्थिताये नगर्ये पर्ये जलर्भ) इत्यत न सिमंज्ञा, भत्रपत्र समाभ्रस्यत् ।

<sup>¶</sup> दितीया-के (८०) वा सिसंघायां-- दितीयसे दितीयाये दत्यादि। पाणिनि 0 218 8x 1

## १५३। सुमृ दी द्याजम्बार्थानां घी खः।

(सुभूदी दि मच् अव्वार्थां नां ६॥, धी ६।, खः १।)।

सुभुतो या दाजम्बार्थानाञ्च सः स्थात् धौ परे। हे श्रम्म । शिषमुमावत्। एवमकात्वादयः।

द्याच: विं, हे श्रम्बाले, हे श्रम्बिने । #

जरा । (११५) जरस् ∙जराचि तु । जरसी । केचिदादा-वीत्विभिच्छन्ति । जरसी जरे । पं जरसः जराः द्रत्यादि । (११६) पाददन्तिति, नासिका प्रतेना नियानां नस्-प्रत्-नियः । नसः नसा नोभ्यामित्यादि । प्रतः प्रता प्रद्वरामित्यादि ।

निम: निमा।

<sup>\*</sup> ही चर्ची येवां ते दाचः, बन्चा अनिनी चर्ची येवां ते चालार्थाः, दावस ते चालार्थायित दानकार्याः, सुभू दी व दानलार्थास ते तेवास्। वादिशाहेवर्थात् सुभू- कदः स्वीतित्र एयः, पुंति तु हे सुभूदेंवदत्त इति कमदीवरः। क्रीवे तु (१६७, १२१) हे सुभी सुख इति। सुभू अद्ध्यः नदीसंजकशब्दस्य विस्तरपुक्तमात्रवाचकश्रस्य च चौर परे स्व: स्थात्। सात्रवाचकल् सुख्यएव याद्यः, तेन हे गौरि, हे चन्वा हि। एवस् चक्ता, च्रातः, चार्दशब्दात चन्ना चप्पा प्रस्तयः। हे चन्वाला सि (थि) (१४८, १५०) — चन्वाले इत्यादि। पाणिनः ७।३ १००। हे सुभूः इति सिद्धानकोसुदी कातलायः। हे सुभु इति सीपद्मा जीमरायः।

<sup>+</sup> जरा-भी (१४६, ११५) = जरसी, वा जरा भी (१४८,२३) = जरे।

<sup>្</sup>នុំ अध्य कृच राज च रैं त्यादि दर्जतंशाम् । एषां दशाना षङ्क्षात् भौ (८४) परे — (७इ.पकरणे इम्(वरामधीः, धातुप्रकरणे कम्(वरामधीरित्यर्थः । पाणिनि: ८।२।३६।

१५५। जो ड: में। (क दा, क रा, क वा)।

षस्य ड:स्यात् के परे। निड्म्याम् इत्यादि। पत्ते वी च जमावत्। \*

गोपा, विश्वपावत्। 🕆

मित हैरिवत्, स्त्रीलात् न ग्रम् न, न टा ना। मतीः मला। 🏚

१५६। द्या जितामम्, | (याः ११, जिता ६॥, घन ११)। याः परेषां जितामम् स्थात्, म इत्। मत्ये मतये, मत्याः मतेः, मत्यां मतौ। एवं श्रुति-स्मृति-बुद्यादयः। §

१५७। स्त्रियां चिचतरोस्तिस्चतस् ऋ वत् कौ। (स्त्रियां ७), विषतुरो: ६॥, तिस्र-चतस्र।११, ऋवत्।११, तौ ०।)।

के दित (८५) स्वादीय-इसे विरामे च बीध्यम्। (६४) कपमसोरियनेन षस्थाने साम्यात् डे भवव्यपि, निशाम्ब्य-सुपि निट्मु द्रव्याद्ययं नेतत् मुचक द्रयम्। निशाम्ब्याम् (११६) = निश्-स्थाम् (१५५) = निङ्स्थाम्। निश्च चार्टशस्य विकल्पपचे, घो परे च निशास्त्यः उपमाश्चरत्। पाणिनिः ८।४।५३।

<sup>🕆</sup> गांप्रथियों पातीति किपि (१०३२) गीपाशब्दः विश्वपाशब्दवत् । इत्यादन्ताः।

<sup>‡</sup> मतिर्बुतिः, इरिज्ञव्दवत्, किन्तु स्त्रीलिङस्य विशेषविधिनिषेषी भवत एव । (१०५, १९३) एतत् सूचकार्थवयं [अन्स्याने न, टास्याने नाच] न स्नाहित्यर्थः। नित्यस् (१०इ, १०४) = मतीः। मतिन्टा (३५) = मत्या।

<sup>§</sup> जितां स्थाने विकानात् भमः विभिक्तिसम्बन्धित्वम्, भतएव स्तियै इत्यादौ सादौ-याचि परे (१६५) घीरियुवचीति इथारेशः । मित-र्ङ = (१८, नदौसंभायां) मित-भ-ए (१५, २१) = मत्ये । नदौसंभाया विकत्ये मित-ए (१२२, १६) = मतये । मित-रूसिः (वा क्स) = मित-भ-भम् (१५,२२,१०२) = मत्याः, वा नदौसंभायां (१२५,१२४,१०२)ः = मितः। मित-ङि (११०,१५) = मत्योः, वा नदौसंभायां (१२५,१२४,१०२)ः यावतीयिक्तिप्रत्ययात्ताः (११४०) भिष्ये च इकारानस्त्रीविक्रशस्दाः एवं भ्रेयाः । पाणिनिः श्राहरूर, १।४।६।

त्रिचत्रोः स्त्रीलिक्ने क्रमात् तिस्चतस्त्री स्तः क्ती परे । ती च ऋवत्, तेन न एविर्घाः । तिस्रः तिस्रः तिस्रभिः तिस्रभ्यः तिस्रभ्यः तिस्रणां तिस्रषु । \*

टेरले सत्याप्। है हे हाभ्यां हाभ्यां हाभ्यां हयी: मुर्गः

गौरी गौर्यों गौर्यः, हे गौरि,,गौरीं गौर्यों गौरीः, गौर्या गौरीभ्यां गौरीभिः।

(१५६) बाङितामम्। गौर्ये गौरीभ्यां गौरीभ्यः, गौर्याः

भव प्रकरणवलात् स्त्रियां प्राप्ती स्त्रियां मिति यहणं, यच विचतुरोर्न स्त्रियां इतिः ततः क्रतस्मासे स्त्रियां इत्तावित न न तिस्वतसी भवतः इत्यमिशायायं, तेन वियास्त्रयो यसाः सा प्रियचिरिति मितवत्। प्राक् स्त्रियां इत्तो पथात् क्रतसमासे सम्बेखिङ्ग-वित्तेनिरित निर्मात्त्रयो भवत एव, तेन प्रियासिसी यस्त्र सः (१२०) प्रियतिस्, तथा क्रोवेडिपि प्रियतिस् कुलिनत्यादि, सिहालकौमुद्यान्तु प्रिथिच प्रियतिस् इति पद्वयं खिखितम्। प्रियचौषामिति विश्वयः" इति भद्दीपद्याय, प्रियचयाचामिति वृक्षमः वैत्र सः । "यामि अप्रयवस्त्रामिति विश्वयः" इति भद्दीजितः। विभिन्नकुकि तु न भादेशः, तेन तिस्त्रभः कतं विक्रतम्। किस्त घावस्त्रस्त्र इति त्वविद्वित्रित्री गृणः स्वादेव, तेन हे प्रियतिस्वद्वेवदत्त, (१४२) प्रियतिस्व कुलानि। क्रिस्व स्ति। नान्ततान् प्राप्तद्वीवाद्वीत् (१६४) न निवार्यः, तेन प्रियतिसृचि कुलानि। क्रिस्व स्त्रीः प्रियतिस्वः स्त्र चक्तारकार्यात्तात् (१४१) बुरिप न स्वादिति। तिस इत्यादी, दन्यादेशकरणात् न यत्र । पाणिनिः ०१९।८८,१००। ६।४।४।

<sup>\*</sup> तिस्वतस् रित समाहारः । स्त्रीलकं वर्षानः विश्वस्य तिस् स्वात्, चतुर-श्रव्यस्य चतस्य स्वात् कौ परे । तौ चादेशौ दीर्धक्षदन्ततुल्यौ, दीर्धतुल्यकयमात् इस्व-स्वानं नायमानाः एतियोः [(१४३) घावसस्तृत्यो।दिति गुणः, (१२८) घौ विदिति हन्धिः, (१०४) श्रम्नाभि र्घं रित दीर्धः] न स्यु, प्रत्यम् स्वादेव, तेन तिस्यणाभिति इस्वात् तुम् । (१०३) श्रमीऽकारलोपाभावनु—एथ विश्व र्षय प्रय रित विग्रहे एविघाः रस्वनेन प्रकारकार्यस्वापि निवेधात् त्रेय रित ।

<sup>† (</sup>१६६) त्यदां टेर: जो इति टेरकार व इति ककारानात् (१४८) स्त्रियामतः इति काप् भवति, ततः द्वा इति ग्रब्टस्य जमायन्दवत् रूपम्। दा-कौ (१४८,२६) -- देः दा-को स्(१५०,२५) -- द्वीः । इति इदनाः।

गीरीभ्यां गौरीभ्यः, गीर्य्याः गीर्थ्याः गीरीणां, गीर्थां गीर्थाः गीरीषु । एवं वाणी-काली-नद्यादयः । अ

सद्ध्यीः। श्रनीवन्तत्वात् न सिस्तीपः। ग्रेषं गौरीवत्। एवं अप्वी-तन्त्यादयः। १० ,स्त्री,∙हेस्ति। ३३

१५८। स्ती मुर्धः। (स्वी । रा, मृ रा, ४: १।) । स्तीयब्दी सूयब्दय धुसंज्ञः स्थात्। §
(१३५) धीरियुवचि । स्तियी स्तियः।

१५८ | स्ती वाम् श्रमो: | (स्ती ।रा, वा रा, प्रम मसी: आ)। स्तीयव्ही धुमंत्री वा स्थात् अभि श्रमि च परे। श्र स्तियं स्तीं स्तियी स्तियः स्ती:, स्तिया स्तीभ्यां स्तीभि:, स्तियै

<sup>ः</sup> गीरी-सि(१४८) = गीरी । गीरी-भी(१५) = गीर्थो द्रष्णादि । हे गीरी-सि (पि) (८६) यूत् स्थेवदीत नदीसंज्ञार्था (१४८,१५२) = गीरि । गीरी भन् (१०२) = गीरीम् । एवं ब्रस्तिकको गीरीः । भादिना विशेषिमज्ञा यावतीया द्रैवन्तज्ञस्यः एवं क्षेयाः ।

<sup>+</sup> खफीरित परंखन कर्ष्य् दर्शने इति धाती: घौषादिक सीम्रव्ययेन सिद्धं, नत्सीः धन्तम्। धनप्व (१४८) न सिक्षोपः। एवं, घर तत्त्व द्ध धातुम्यः घौषादिक ई. प्रत्ययेन घनीः तत्तीः तत्तीरित तत्त्वीसकारमध्यः, आदिपदेन यो क्री घो भी प्रभृतीनां क्षित्रलागामपि ग्रहणम्। तथाच — चनी तली तती खची त्री क्री घो भादि शब्दतः, घनीवलतथा सेनं कोषी गोर्थन क्रस्तता इति। जीमरासु प्रियपपीः वहुयजीरित्यु भयश्चाच पठिला।

<sup>‡</sup> स्त्री-सि(१४८) = स्त्री। हे स्त्री सि(घि)(१४८.[(८६) नदीसंशायां]१५१) = स्त्रि

<sup>§</sup> स्त्री भू श्रन्दयोरीट्रतो-धांलवयवलाभावान्, (१३५) इयुवार्थे धुसंज्ञाविधःनन् पाचिनि: (।४।७६ ।

ष स्त्रीयहणं स्निवस्थर्थस्।

स्तीभ्यां स्त्रीभ्यः, स्त्रियाः स्त्रीभ्यां स्त्रीभ्यः, स्त्रियाः स्त्रियोः स्त्रीणां, स्त्रियां स्त्रियोः स्त्रीषु । \*

सी: त्रियी त्रिय: । हे त्री: । डिल्यामि च भेद: । त्रिये त्रिये, त्रिया: त्रिय: त्रिय: त्रिय: त्रिय: त्रियं त्रियं

सुध्यादयः पुंवत्। सुष्ठु धीः, प्रंक्षष्टा धीरिति नित्यस्तीत्वे सुधीप्रध्यी स्वीचस्त्रीवत्। क्षं

धेनुर्मतिवत् साध्यः। धेनुः धेनृ धेनवः द्रत्यादि। §

अ स्तीश्रन्दात् भिन शिक्ष च सियं सियं: इति, भनेन स्त्रेण धातुमंत्रायाम् भादी (१३४) इयादेशे पयादीवल्लाभावात् (१०१) भन्मभी रादिलापी न स्वात् ; धुसंज्ञानिकलपचे तु (१०१) स्त्रों स्त्रीरिति । भे उति इस् कि विभक्तितृ स्त्रिशे सिया: सियाः एतेषु (८६) स्त्रीयुष्ठ कितोस्यत्र स्त्रीश्रन्दवर्जनात् (८६) निखनदीसंज्ञायाम् भादी (१५६) द्याजितामम्, (१३०) केराम च, प्रयात् इयादेशः । भागविभन्नो स्त्रीणानिस्या (८६) वामीति स्त्रे स्त्रीशस्यत्रज्ञाता (८६) निखनदीसंज्ञायाम्, भागमविभन्ने स्त्रीयाद्यादी (११०) नुम्, भतपत्र भच्परत्वाभागान् न इयादेशः । "स्त्रियमतिकालः भितस्तिः । हे भतिस्तं ।" इति सिद्धालकौनुदी । पाणिनिः ६।४।८० ।

<sup>+</sup> ई श्रीरित (८०) नास्त्रीयुव इति नदीसंज्ञानिवेधात् (१५३) न क्रस्तः । ङिति भामि च भेदः स्त्रीयव्दात् विभेव इत्ययं, (८८) स्त्रीयुच ङितौति (८८) वामौति सूचाभ्यां नदीसंज्ञाविकत्यनात् रूपदयभिति यावत् । श्री-क्डे (८८, १५६, १३५, '२३) = श्रियै, वा (१३५) श्रियं। श्री भाम (८८, ११०, १००) = श्रीषां, वा (१३५) श्रियाम् । श्री-क्डिं (८८, १३०, १३५) = श्रियां, वा (१३५) श्रिया।

<sup>‡</sup> सु भोभना धीर्यस्याः यस्य वा इति बहुवोहौ सुधीशब्दस्य स्वीलिङ्गपुंलिङ्गयोरेका-६ पतया नित्यस्वीताभावेन नदीमं ज्ञाभावात् स्वीलिङ्गविहितकार्याभाव पुंवदित्ययः. भादिशब्दात् सुर्यो-यवकी प्रध्यादयः। शोभना चासौ धीर्यति सुधीः, प्रक्रष्टा चासौ धीर्यति प्रधीरिति कस्यंधारयसमासे तु नित्यस्वीत्वाबदीमं ज्ञायां सुधी-प्रध्यो कमात् शौ-धचीवत्। सुधीशब्दः इयस्यानित्वेन ङिति भामि च (८६, ६८) वा नदीसं ज्ञायां शौ-धन्दवत्, प्रधीशब्दस् नित्यस्वीत्वेन (८६) नित्यं नदीस ज्ञायां लच्चीशब्दवदित्यर्थः। इतीदन्ताः।

<sup>§</sup> इति उदलाः ।

वधू गौरीवत्। वधूः वध्वी वध्वः इत्यादि । एवं चमूतन्वादयः। क्ष्मूः श्रीवत् । स्यूः सुवी सुवः इत्यादि । सुभूः हे सुनु । पं प्रमर्भः सुन्वत् । क्षः सुभूः पंवत् । क्ष् खसा धात्वत् । माता पित्वत् । प द्यी-गीवत् । ॥ सुराः पंवत् । क्षः

इति चनन स्तीलिङ पाद:।

तन्त्रस्टः (२०६) जवन्तपचे वधूवत्, चनूबन्तपचे धेनुविद्यर्थः ।

<sup>†</sup> भूषी (१५८, १३५) = भुवी कलादि। ई सभूधि (१५३, १०३) = सभु।
स्विपातलचणी विधिरनिभित्तं तिब्बातस्थिति न्यायेन धिसन्निपातनिती क्रस्वविधि-धिस्त्रीपनिभित्तं न भवतीत्यतः सुभुवित पदं विसर्गानिभित्तं केषित्। ई सुभूविति तु पाणिनीयाः (१५३ स्वस्त टीका द्रष्टस्या)।

<sup>‡</sup> पुनर्भूमव्दस्य (१३६) कव्यादीति वकारप्राप्ताा सुल्यास्टेन साम्यंन तुसर्वेक्षैः, तेनास्य नित्यस्त्रीलात् दीतंत्रायां सर्व्यत्र वधूमव्दवदेव । एवं टन्भूवर्षाभूकाराभूषां कपम्।

<sup>§</sup> सुभूमन्दस्य नित्यस्त्रीताभावेन दीसंज्ञाभावादिवर्थः । इति कदनाः ।

<sup>¶</sup> घाटवदिति (१२८) बिजियामा, पिटवदिति (१४३) गुणपाताा, साम्यं, न तु सम्बेदपै:, तेन मसि सम्: मात्रिति च । इति ऋदना:।

<sup>∥</sup> इति घोदनाः।

मुश्रीसभी रा: घनं यस्ता इति विश्वहे सुरैशक्दी रैशक्दविद्यर्थः। इति ऐदलाः।
 इति भीदलाः।

#### ४ घे पादः — प्रजन्त क्षीव लिक्न ग्रन्दः ।

### १६०। स्तीवात् खमोऽधेमीऽतः।

(क्रीवात् ५।, सि चम: ६।, चधे: ६।, म: १।, चब: ५।)।

चकारान्तात् नपुंसकात् परस्याधेः सेरमस मः स्थात्। \* जानं, हे जान।

१६१ | स्तीवाद्यौ: । (क्षीवान् ४), ई ११।, भीः १।)। स्तिवात् पर भीरी स्थात्। ज्ञाने। 🕆 .

१६२। जस्मसो: ग्रि:। (जस्मसो: ६॥, ग्रि: १॥)। क्षीवात् परस्य जसः ससय ग्रिः स्थात्, स्र इत्। क्षः

### १६३। नुस्यमादी असम्तरलादी तुवा।

(तुण्।१।, भग्रमादी अ, भग्रनरलादी अ, तु।१।, वा।१।)।

<sup># (</sup>१०६) स्वदीध्यानित्यनेन घन आदिलोपे कते सिक्केडिप घमः स्थाने मित्रधानं (१६८) स्थमीर्जुगित्यनेन स्वदीध्यानित्यस्य वाधितत्वात् लुगापितवार्णार्थम् । ज्ञानितित्यन्य नकारस्य विभक्तवायवयविभक्ततात् (१०८) चा क्रिमभवीत्यनेन न घाः पाणिनिः ७।१।२४।

<sup>†</sup> चच पुन: क्रीवादित्युपादानं सामान्यार्थम्, तेन सर्वेद्यात् क्रीवात् चौकार ई. स्यादित्यर्थ:। ज्ञान-चौ = ज्ञान-ई. (२३) = ज्ञाने। पाणिनि: ७।१।१९।

<sup>‡</sup> शित्करणं विशेषचापनार्थम्, इ इति क्रते सप्तस्येकवचनभ्रमी जायते, (१८८)
मधौ सौ मं इत्यादिषु विशेषकरणं कष्टकरश्च स्थात्। कृति पश्च चष्ट फलानि
इत्यादिषु (१३१) लिङ्गविङ्गिकार्यनिवेधात् न शि:। गौर्णतु चितकतौनि चितपस्थानि
स्वादी स्थादेव। पाणिनि: ७११२०।

क्लीवस्य भी परे तुष् स्वात्, ने तु यमादी, सासन्तरसयीरादी तु

# १६४। नसबमङ्क्तोऽघो घोँऽघो घोँ।

(नस् चप्-सइत-न: १।, चधी: ६।, र्घ: १।, चधी ७।, घी ०।)।

नसन्तस्य त्रापो महतो नान्तस्य च धुवर्जस्य घः स्थात् त्रधी घी परे। ज्ञानानि । दी प्रीवत् । ,ग्रेषं रामवत् । एवं वन-धन-फसादयः । पं

# १६५। तोऽन्यादेमीऽनेकातरात्।

(तः १।, अन्यादेः ५।, मः ६।, अनेकतरात् ५।) ।

भन्यादेः परस्य स्थमोर्भस्य तः स्थात् न लेकतरात् परस्य ।

<sup>\*</sup> यज्ञ प्रवाहारः, यमखादिः यमादिः, न यमादि-स्यमादिस्धिन् । कम् चने ययोसी भसनी, भसनी च ती रली चेति भसन्तर्खी तथीरादिस्धिन् । तुणी ण इत् चर्चणां परः (१७) । उकारैत् चित्रार्थः, न तु [नृ] विन्दुमाविति वच्यति (२४२) । तुणः प्रकृतिभानितात् ज्ञानानि रुखादी नान्ततात् (१६४) दीर्घः । चलारि, प्रशामि इत्यादी यमादी वर्षाय्वेन न नृण् । चव नृष्यमः इति यमन्तस्येव निष्धे कृते स्वभ् श्रन्दस्य क्रसि स्विभू जलानि इत्यादी यमन्ततात् नृणोऽप्रसङः स्यात् । पाणिनिः १।१।४२, ७।१।०२।

<sup>†</sup> नस् च घप् च सहाय न च समाहारे तस्य । न्स्भागान्तस घप्रव्यस महत् शब्दस्य नान्तस्य च क्रन्यस्वरस्य दीवाँ भवित धिभिन्ने घो परे, न तृ धातीः नस्-भागान्तस्य नान्तस्य च इत्यदेः । यथा—विहान् चापः महान् । न इति नान्तिस्त्रस्य यंहणं, यथा राजा इत्यादि । ज्ञांनानीत्यादी नृषो लिङ्गभाजिलात् नान्तलम् । पचन् इत्यादी तु नकारस्य लिङ्गभाजिलेऽपि लिङ्गभध्यविहितलात् न नान्तलम् । चंधी किं, हे विहन् इत्यादि । पूर्वतः श्रेरतृत्ताविष घौ-क्रयनं सर्वे लिङ्गेषु दौर्घाषम् । ज्ञान अस् (१६९,१६३,१६४) = ज्ञानानि । हितौया प्रथमावत् । श्रेषं प्रथमादिकीया-भिन्नं रामश्रस्यवत् । यावतीय कौवलिङ्ग-चन्नारान्त्रस्याः एविनत्यवः । पादिनिः ६ ४।८,१०,१९।

षन्यत् प्रन्ये प्रन्यानि । हे प्रन्य । प्रमृद्धादत् । प्रेषं संवत् । क एवमन्यतराद्यः । प्रनेकतरात् किम्—एकतरम् ।

१६६। जरातोऽम् वा । (जरातः ॥, वन् ।१।, वा ।१।)।

जराग्रव्हात् परस्य स्थमोर्मस्य त्रम् स्थात् वा। त्रजरसम् त्रजरम्, त्रजरसी त्रजरे, त्रजरांसि त्रजराणि । पुन-स्तदत्। शिषं पुवत्। १

(११६) पाददन्तिति शीर्षहृदयोदकासनानां शीर्षनृहृदुद्-नासनः। शीर्षाण शीर्षा शीर्षभ्यामित्यादि। के हृन्दि हृदा हृद्गामित्यादि। उदानि उद्गा उद्स्थामित्यादि। आसानि श्रास्ना शासभ्यामित्यादि। पन्ने शेषे च श्रामवत्।

अः प्रकरणयलात् स्यमी: स्याने जातस्य मकारस्य तकारी भवतीति, तेन पुंखिङ्के व्यक्ति घन्यमिति । व्यन्यतमस्य व्यन्यादिलाभावात् व्यन्यममित्येव । व्यन्य-सि (१६०, १६५) च व्यन्यत् । पाणिनि: ०।१।२५ । एकतरात् प्रतिषेधी वक्कस्य दक्षि वार्तिकङ्काः।

<sup>†</sup> क्रीवेऽपि जरायहणात् श्रव्हानरेण प्राप्तसमासात् जराश्रव्हादिव्यथैः। नार्सि जरा यस्य तत् भनरम्। भनर-सि (१६०, १६६, ११५) = भनरसम्। जरसादेशाभाव-पर्व (१०३) स्वदीस्यामित्यनेन भम भादिलीपे भनरम्। भमीऽभावपचि च भनरमिति। भभ भमी नित्यत्वेऽपीएसिडौ वायहणं व्यवस्थाये, व्यवस्था च — हितीयैकवभने भमि भनरङ्खाद-वलवतीऽपि नरसादेशात् पूर्वम् भमः स्थाने (१६०) सकारः स्थान्, पर्यादनेन भमि भमः स्थितिरिति ; भन्यथा भादौ नरसादेशे (१६०) सकारः स्थान्, पर्यादनेन भमि भमः स्थितिरिति ; भन्यथा भादौ नरसादेशे (१६०) सकारः स्थान्। पर्यात्माणानः स्थादिति । भनर-भौ (१६१, ११५) = भनरसी, पर्च (१६) = भनरे । भनर-नम् (१६२,११५, १६३, १६४, ५०) = भनरसी, पर्च भवरसी, पर्च भवरसी। पाणिनस्रते सिवावविरिभाषया न नरस्, भनरम् ; परलात् नरसि क्रते सिववावपरिभाषया न (भर्मा) लुक् भनरसम्।

<sup>‡</sup> भीर्थ-सस् (१६२,११६,१६४,१००) = भीर्थाण । भीर्थ-टा (११६, ११०, १००) = भीर्था, भीर्थ-स्थान (११६,११८) = भीर्थसा । इत्यदन्ताः ।

### ः १६७। क्रीवे ख:। (क्रीवे a), सः ए)।

क्रीवि र्घसः स्थात्। श्रीपं, शानवत्। अ

१६८। स्त्रमोर्जुक्। (चि-मनी: ६॥, जुक्।रा)। कीवात् परयोः स्त्रमोर्जुक् स्थातः। वं वादि।

### १६८। नुसिकोऽचानाम।

(तुष ।१।, इत् : ६।, भवि अ, भनामि अ)।

इगन्तस्य क्रीवस्य नुण् स्थात् श्रचि परे, न त्वामि । वारिणी वारीणि । क्षः

१७० । सुर्धी वा । (सः ११, घी २०, वा ११) । इंगनास्य क्रीवस्य सुर्वास्थात् धी परे । हे वारे हे वारि । §

<sup>#</sup> येन विधिसदलकोति न्यायात् क्रीविजिङ्गधन्दस्य चनदीर्घसः इन्सः स्थात्, निमित्ता-निरापेषा नासीसर्थः । स्थियं पातीति श्रीषा, क्षीविजिङ्गविज्ञितात् इन्स्ते श्रीपनिति । पाणिनिः ११२।४० । इत्यादन्ताः ।

<sup>† (</sup>१६०) चकारान्तकीवान् स्थमी सं-विधानन स्थन सकारान्तिभन्नान् क्रीवाव्हित कीध्यम्। सुक्करपीन (८१) सुकि न तत्रेति निर्वेधान् तिस्ति न्येति किस्रसादी न (१३१) टेरः। विरास्तिविक्तन्सुसादेव, यथा पयः इतिः इत्यादि। पाणिनिः छ।र।२६।

<sup>‡</sup> भव शेन केनापि प्रकारेष इगलस्थापि यह थं, तेन प्रयानी सुननी सुरिवी इसादि सिवस्। तथी पिस्कात् (१०) भन्यापः परः । स्थाने जातस्य प्रकृतिभानि- लात् वारीवि इत्यादी नाललात् (१६४) दीर्घः । भनामीति भाम्भिन्ने स्थादीये भवि परे इत्यर्थः, तेन वारीदिनित्यादी न स्थात् । वारिभी (१६१, १६८, १००) = वारिषी । वारि- जम् (१६२, १६८, १६४, १००) = वारीवि । पाणिनिः ०।१।०६।

हु है कारे इत्यादी स्थमीर्जुगित सेर्जुशि (८२) ज्ञांक न तनिति निवेधान (१२२) स्थिति स्थित स्थानम् । इंडापि येन केनापि इशनस्य स्टब्रे तेन हे प्रयो हे प्रयु इत्यादि।

वारिणी वारीचि, वारिणा वारिणे वारिचः वारिणः वारिणोः वारीणाम् । \*

वारिणि वारिणोः। इसे इरिवत्।

## १७१। पुंबदार्थीतापुंस्कं टाद्यचि।

(पुंबत्। १।, वा। १।, भृथीं त्रापुस्तं १।, टार्याच ७।)।

इगन्तं स्नीवम् ऋर्षेन प्रोक्तं पुंवत् वा स्थात् टाद्यचि । अपनादये अपनादिने इत्यादि । भेषं वारिवत् । अर्थेन किं, पीलुने फलाव । 🕆

### १७२। दध्यस्यिसक्ष्यच्लोऽनङ्।

(दिधि चस्थि-सक्थि-पक्षाः ६।, चनङ् ।१।)।

एषामनङ् स्थात् टाद्यचि, श्रङावितौ ।

(११७) अनीऽक्षोपः। दभादभेदभः दभः दभोः दभादिभि दभनिदभोः। भेषं वारिवत्। एवम् अस्यि सक्यि अस्ति। क्ष

<sup>\*</sup> वारि-मान् (११०,१०४, १००) = वारीणान्।

<sup>†</sup> पुनानित्र पुंतत्। भ्रायेन एकार्येन उक्तः पुनान् येन तत् भ्यांकपुंक्तम्। तदुक्तम्—
एक एव हि यः श्रन्दः पुंति क्रांवे च वर्षते । एक नेत्रायेना व्याति उक्तपुंक्तः स उच्यते ॥
यथा, नालि भादिर्थस्य तत् भनादि कृत्वम् भादिरहितमित्ययेः, एवं भनादिः पृष्वः
भादिरहित इत्ययेः, भतएव भनादिशब्दः एक। योक्तपुंक्तः। एकार्येन कि पौजुने
फलाय, पौजुशब्दः फलव। चिले क्रीविलिङ्गः, इच्चयाविले पुंतिङ्गः इति न एकार्येन
उभयिकङ्गता। भनादि छे (पुंतहावे, १२९,३५) = भनाद्य। पुंतहाविक क्रयपि (१६८) = भनादिन। एवं कटवे कट्ने इत्यादि। पाणिनिः ९।१।०४।

<sup>‡</sup> दिध च ऋस्य च सक्ष्य च षाति च समाहारी तस्य । (१०) कि खादन्यस्य स्थानी । गौषेऽप्ययमादेशः, तेन पौतदक्षा पुरुषेण, धृतास्य । श्रिवेन, पौतदर्भ स्ति । ष्य दस्यो दिशि षच दस्यादीनां कढ़ानामेव यहणं, तेन दधातीति (१११८) दिथः, श्रस्य दस्ये दिशिने श्रानाय द्रस्य चनक् न स्थात् । दिशिटा = दस्न-्षा (११०) च दशा द्रसादि । दशा-निस्यच चनरङ्कादनक्, न षामः स्थाने तुम् । पाणिनिः ०।१।०५ । इति इदनाः ।

सुधि सुधिनी सुधीनि । इन्से हे सुधि । दी प्रीवत्। सुधिया सुधिना द्रत्यादि । एवं प्रध्यादयः । \*

मधु मधुनी मधूनि। है मधी है मधु। ही प्रीवत्। मधुनु मधुभ्यामित्यादि। एवम् ग्रम्बु-सान्वादयः। (११६) पाददन्तेति सुवा। स्तृनि सानूनि इत्यादि भेदः। पं

घात्र धात्रणी धातृणिं। भी—चे घातः हे घातः ही प्रातः। ही प्रीवत्। धात्राधात्रणा इत्यादिं। एवं ज्ञात्र-कात्रीद्यः। ध

१९३। एची युत् खम्। (एकः १॥, अत्।१।, खंश)। १ प्रद्युनी प्रयूनि । हे प्रयो हे प्रद्यु। ही प्रीवत्। प्रद्यवाः प्रद्युना इत्यादि। श स्ति सुरिणी सुरीणि। हे सुरे हे सुरि। सुराया सुरिणा सुराभ्यामित्यादि। ॥ सुनु सुनुनी सुनूनि। हे सुनी हे सुनु। सुनावा सुनुना इत्यादि। ३००

ति क्रीवलिक पादः ।
 द्वित ग्रजन्ताध्यायः ।

<sup>ः</sup> सुग्रीभना धीर्यस्थेति सुधि कुलाम् इत्यादीनामस्यकार्थेन उक्तयुंकालम् । एवं प्रध्यादयः । इति ईदिनाः ।

<sup>†</sup> इति चदनाः।

<sup>‡</sup> द्यातौति धाट क्लम् ऋषायेकार्धेन चक्तपंस्तलम्। एवं जानातौति काट कुमम्, करोतौति कर्नृ कुलिस्यादि । सुधि, सध्, धाट -श्रौ (१६९,१६८) - सुधिनौ, सधुनौ, धातृषौ । सुधि, सध्, धातृ--जम (१६२,१६८,१६४) - सुधीनि, सधुनि, धातृषि । सम्बोधने (१९०) वा गुणः। टाप्रस्तिविभक्तौ पुंवदाविकल्पः। इति स्टट्लाः

<sup>ैं (</sup>१६०) स्तीवे स्व इत्यादिभिः स्वं प्राप्तुक्त एकी युदेव (इत्, छत्) अवन्तीत्यर्थः एकारस्य क्रसः काउप्रतिन साम्यात् वकार एव जायकः, व्यतः एतत्स्वकरणम् । पाणिनिः १।१।४८।

<sup>¶</sup> प्रक्रष्टाची: स्वर्गीयस्थात् तत् प्रद्युपण्यम् । श्रस्य युंवहृवि गीशस्त्वत् । इति स्पीदनः ∥ श्रीभभी गः धनं यस्य तत् सुरि खलम् । श्रस्य युंवहृवि देशस्त्वत् । इति ऐदन्ताः । अक्ष श्रीभनानीर्यस्य तत् सतु श्रासम् । श्रस्य युंवहृवि स्वीशस्त्वत् । इति सीदन्ताः ।

#### ३य:। इसन्ताध्याय:।

१म पाद:--इसन्त पुंतिक शब्दः।

### १७४। दिस्ताजचादी दि:।

(दिरता-नचारी १॥, दिः १।)।

क्ति दिल्य ब्हो जचा दिस दिसं ज: स्थात्। अ

१७५। हो हो भी। (इ: ६।, इ: १।, भी ०।)।

इख ढः खात् भी परे। 🕆

(१४८) म्राबीब्भसात् सेर्लोप:।(६४) भ्राप्भसोरिति चप्जबी वा। लिट् लिड् लिडी लिडः, लिडं लिडी लिडः, लिहा लिड्भ्या-मित्यादि।

१७६ । दादेव: । (दादे: ६।, घ: १।)।

इकारादेईस्य घः स्यात् भी परे । क्ष

<sup>\*</sup> पूर्वे प्रयोजनाभावादनुकां संज्ञानाङ विकक्तितः विः (४८५) छक्तं यस्य स विकक्तः, सच जवादिय सौ विकक्तजवादी । जवादिय — जवितय दरिद्राति-यकान्तिः श्रास्तिरेव च । दीधौ वेशो च नागर्तिं-जंबादिः सप्तधातुभिः ॥ विसंज्ञाफलन्तु (१८२, २४३,५६३,६६०) एतेषु स्वेषु द्रष्टव्यम् । पाणिनिः ६।१।५,६ ।

<sup>†</sup> विज्ञस्य धातीय इस ढः स्वात् भी पर इत्यर्थः । पाणिनिः पाश्वश्वः

<sup>‡</sup> द भादिर्वेख स दादिलसः। दादिशिति मन्दस्य धातीर्वा विश्वेषणं, वस्त्रैव मन्दस्य धातीर्वा भनस्थिती इकारः तस्त्रैव भादिस्थिती दकार इत्यमिप्रायः, तेन धुक् धुग्, धाक् धाग् इत्यादी स्थात्, दिधिलट् इत्यादी न कादित्ययः। पाणिनिः पाश्वरः।

### १७७। सभान्तस्यादिजनां सभा: मे, घोस्तु सध्वेऽन्ते च।

(क्षमानस्य ६। प्रादिजवां ६॥ क्षभाः १॥ के २०, चीः ६। त । १। , सखे २०, प्रते २०, प्राते १। )। स्मभान्तस्यादी स्थितानां जुवानां स्मभाः स्युः के परे, घीसु सध्वे ग्रस्ते च।

धुक् धुग् दुही दुहः, दुहं दुही दुहः, दुहा धुग्भ्यामित्यादि । क्ष

# १७८ । मुहां चुङ्वाभौ।

(सुइं ६॥, घङ्।१।, वा।१।, भी ०।)।

मुहादीनां घड् वा स्थात् भी परे।
सुक् सृग् सृट् सृड् सृही सृहः, सृहा सृग्भ्यां
सृड्भ्यामित्यंदि।

एवं द्रह-खुह-नग्र-सिह:। १

<sup>\*</sup> भभः भने यस्य स भभानः तस्य भादी स्थिताः जवः तेषास्। तद्यसयं: — यस्य भव्यस्य धातीर्वा भने भभः, तस्यैव भादिस्थितानां ज उदगव इत्येतेषां स्थाने भभेष — — — भ ढ घ घ भ इत्येते भवनि, भवस्य — भे (८५, इसि विरामे च) परे, धातीसु — सभ्ये विरामे च परे इत्ययं:। अव विश्वेषः — भादी जब् भने भभ्य भध्ये इस् वर्षस्य एकस्यरस्य च व्यवधानेऽपि भविष्यति न तु वहुस्वरस्यवधाने, तेन गर्द्यभाचिष्ट इति जौ किपि गर्द्यम् इत्यादौ न स्थात्। व्यध्यौ तार्इ इति धातीर्द्रन्यवकारत्वात् स्थाविन इत्यादाविष न प्रसङ्कः। जकारस्य भकारी न स्थादिनि जौभराः, तेन जभग्रन्दस्य जप्, जेह् अस्टस्य नेट् इति पटं भविष्यति (सीचतसारे सुवन्तवादस्य १४६ सूत्रं द्रष्टव्यम्)। दुइ-सि (१४८, १०६, १००, ६४) — धुक् धुग् इत्यादि। पाणिनः ८, २। १०।

<sup>†</sup> सुहासिति वहवचनं गणार्थस् । गणाय सुह दुह स्नृह नग्न स्निह इति। दुहग्रस्टस्य सुहादिपाउवलात् पत्ते घी दो भावित्यनेन दः, न तु दादेर्घ गत्यनेन घः, तेन भुक् भुग् भुट्भुड् इति । सुह-सि (१४८, १७८, ६४) — सुक् सुग्। पत्ते (१७५, ६४) — सुट सुड्। पाणिनिः ८, १।३३,६३ ।

## १७८। वाहो वौ पौ खेतात्तु वा।

(वाइ: ६।, वा ११।, भी ११।, भी ७।, श्वेतात ५।, तु ११।, वा ११।) ।

वाही वा-गब्दस्य ग्री: स्थात् पी परे, खेतवाहसु वा। विश्वीह: विश्वीहा दत्यादि। , श्रेषं विड्वत्। \*

१८०। त्रनादू:। (मनात् ४१, कः ११)।

भ्रानवर्णात् परी वाही वा कः स्थात् पौ परे। भृहः भृहा इत्यादि। पं

# १८१। ऋनडुचतुरोऽणाणौ धिघ्यो:।

(भनडुह्-चतुर: ६), त्रण-त्राणी १॥, धिव्यो: ०॥)।

मन बुह सतुरस भी परे अण्घी परे आण् स्थात, ण इत्। 🕸

१८२। हो न: सौ। (इ: ६।, न: १।, सो ०।)।

श्रनडुही इस्य नः स्थात् सी परे। श्रनड्वान्। हे श्रनड्वन्।

बाह् इति वडधाती: (१०६८) विक्षप्रत्ययेन भिज्ञम्। श्री-करणेऽपि सिर्छे
 भौ-करणं इसात् परस्थापि प्राप्तार्थे, तेन वार्वाह् शब्दस्य सभादी वारीड: इत्यादि। विश्व-वाह्-सस्च विश्व-भौड्-सस् (२३) == विश्वीड: इत्यादि। पाणिनि: ६।४।१३२,६।१।८८।

<sup>†</sup> भ: भवर्षः, न भ: भनसमात् भनात् । याहग्नातीयस्य विश्वतिषेषी विधिर्मिताहग्नातीयस्यिति न्यायात् भवर्षसमातिथीऽजेव याद्यः, न तु इस् । ततस— पृद्यस्यम् भवर्षविषयं इस्विषयं एतत् स्त्रम् इवर्षायं य्-विषयमिति । भ्वाइः अस् = मृ-कङ्शस् (१२) = भूइः । एवं शाखिवाइ-शस् (१८०, २५) = शाख्युः इत्यादि । भकारानीपपद एव वाइः साधुरिति नौयटाद्यः, तेन तन्मते भृवाट् शाखिवाट् इत्यादि पदानि भसाधूनि । पाणिनिः ६।४।१२२।

<sup>‡</sup> ऋनजुकतुर: इति एकवचनं क्रमनिरासार्थम् । ऋगायौ धिष्योरित्युभयच दिव-घनान्तत्वात् क्रमोद्रियये । (१०) घिलादिव्याच: परी भवत: । पाणिनिः शिराटम्,८८ ।

भनडाही समदाहः। समदुष्टः समदुष्टा । अ

## १८३। सम्ध्यस्वस्वन्डहां दङ् फे।

(सन्-ध्वम्-वसु-भगडुहां ६॥, दङ् ।१।, फी ७।)।

एवं दिङ् स्थात् फे परे, चिङाविती। अनडुइरामित्यादि। 🅆

### १८४। खेतवाच्चयाजुक्षशासुपरोडाशां

**इसङ् ।** (वितवाह—पुरीडामां ६॥, डम्ङ् ।१।)।

एषामन्तस्य इस्ङ्स्यात् फेपरे, डङावितौ । 🕸

### १८५। ऋत्वसोऽघोः सौ घें।ऽघौ।

(भतु-भस: ६, भभी: ६।, सी ७, र्घः १।, भभी ०।)।

श्रतनास्थासन्तस्य च र्घः स्थात् श्रधी सी परे, न तु धीः। स्वेतवाः। §

<sup>\*</sup> असयोरनृहत्ताविष चतुरो इकाराभावात चनलुइ एवेल्थ्यः । चनडुस्-सि (१४८, १८१) = चनडु-चा-स्(२५,१८२) = चनडुन् । धो चनडुन् इत्यादि । पाणिनि: ७।२।८२।

<sup>†</sup> सन्स ध्वन्स धातुभां किप्प्रथये सम् धान् ग्रव्हा, वसुनिति (१०८६)कसु-प्रस्ययान्तः विद्वस्प्रभृतिः । (१७) दङी ङिच्चादन्यस्य स्थाने । क्षप्कसीरित्यनेन (६४) सस्य दे सिद्वेऽपि, सीर्विः पे (१०२) इत्यस्य वस्त्रचन वाधितत्वादनेन दङ्विधानम् । सुवः इत्यत्र सुपूर्वक वस धातोः क्रिपि वसुग्रत्ययान्तवाभावात्र दङ्ग्पाणिनि ८।२।७२।

<sup>‡</sup> डिस्तादत्यस्य स्थाने, (१२६) डिस्तात् टिसीपः, भम् इत्यस्य स्थितिः । श्विता इ भवयान् उक्षयमम् पुरांडाम् एतेन्यो उम्बिधानेन सिक्षावित, एतेषां स्थाने उम्बद्धः कर्या उम्ब्ही लिङ्गमानिताये, तेन श्वेतवाद्वादीनामसन्तवात् भवसीऽधीरिति दौर्यः स्थात् । भवसीऽधीरित्य भसन्तिलिङ्सीन यहणं, तेन दत्त्यसासी सचेति दत्त्यस् इत्यम् न दीर्थः । पाषिनिः इ।२।०१,०२।

६ मत्य यस् च तस्य । चतुम्रस्ययेन चत्भागानस्य (४४१,४४२) धालवयविभिन्नास्-भागानस्य च (२४२,३४३,४६६,१०३२,१०६६,११०३) दौर्षः स्थात् धिभिन्ने सी परी

१८६। **डस्डो भो वा।** (डन्डः १, भी ०), ना ११)। इस्डो भी परे भी वा स्थात्। हे खेतवाः हे खेतवः। खेतवाही खेतवाहः, खेतवाहं खेतवाही खेतीहः खेतवाहः, खेतवाहं खेतवाहा खेतवाहा खेतवाहः,

(१११) किलादिति षः । तुराषाट् तुराषाड् तुरासाडी तुरासाडः, तुरासाडं तुरासाडी तुरासाडः, तुरासाडा तुरा-षाड्भ्यामित्यादि । १ चलारः चतुरः, ३ चतुर्भिः चतुर्भ्यः चतुर्भ्यः । (११०) नुमाम-इति चतुर्णाम् ।

• १८० | रङो वि: सुिप | (रङ: ६।, वि: १।, सिव ७)। रङो वि: स्थात् सुिप परे, न लन्य-रेफस्य । चतुर्धुं । §

इत्यर्थः । चलन्तस्य यथाः श्रीमान् मधवान् युग्नदर्धे भवान् इत्यादि । चलन्तस्य किं, भवन् कुर्व्वन् इत्यादी (११००) श्रवन्तस्य न स्थात् । घधीः किं, सुवः इति । कीतवाइ-सिः (१४८,१८४,१८५,१०२) ⇔कीतवाः (इन्द्रः) । पाचिनिः ६।४।१४ ।

<sup>\*</sup> (१८४) त्रितवाहित्यनेन क्रतष्ठम्खीऽकारस्य दीर्घः स्वादा घी पर इत्ययः: । हित्रत्याह-सि [ध]ः १८४) = त्रितदम्, सनेभ दीघें, (१०२) = त्रितवाः, वा त्रितवः: । त्रितवाहः स्वाद् । त्रितवाहः भ्याम् (१८४; १०२, ६८) = त्रितवीध्याम् । पाणिनिः पाराह् ।

<sup>†</sup> तुरा वेगं सक्ते इति (१०२८) तुरासाह् सि (१४८८, १७५, १११, ६४) च तुरान् षाट् तुराषाड् (इन्द्रः) इत्यादि । "तुरं सक्ते इत्यर्थे कन्दसि सक्तः इति (१।२।६३) खि:। सोके तुसाहयतेः किए" इति सिखानकौमुदी । इति इकारान्ताः।

<sup>‡</sup> चतुर्-जस् (१८२,३५,१०२) = चलारः, शसि चतुरः।

प्रियचलाः, हे प्रियचलः, प्रियचलारौ प्रियचलारः, प्रियचलारं प्रियचलारौ प्रियचतुरः, प्रियचतुरा प्रियचतुर्श्यामित्यादि । \*

(१६४) नसब्मञ्चन इति र्घले, (११८) नो सुप्। राजा, हे राजन्, राजानी राजानः, राजानं राजानी। (११७) अनी-ऽक्षीपः। राजः, राजां राजभ्यामित्यादि। ङी—राजि राजनि। ११

(११७) श्रम्वस्यादित्युक्तेः ब्रह्मणः यज्यनः इत्यादि । श्रेषं राजवत् ।

१८८। इनपूषार्थ्यमेनोऽधौ सौ शौ र्घः । (इन-इनः ६।, षधौ था, सौ था, धौ था, धौ था, धौ था, धौ था,

एषां र्घ: स्थात् अधी सी परे, भी च। वनहा, हे वनहन्, वनहणी वनहणः, वनहणं वनहणी। \$

### १८८। इनो हो हो न गः।

(इन: ६१, इ: ६१, घ: ११, न १११, ख: ११) ।

<sup>#</sup> प्रियचला इति प्रियाश्वारी यस्य सः इति गौग्ये सर्व्विङ्गभाजिलम्। प्रियचतुर्-सि (१४८, १८१, १०२) = प्रियचलाः इत्यादि । इति क्लारान्ताः ।

<sup>†</sup> राजा इत्यव भारी नस्य लुपि (१५) तदायविधिनिधेषात दीर्घो न स्यादत भाक्ष मसबस्व इति र्घतं नो सुप् इति । अक्षते: पूर्वपूर्व स्थादन्तरङ्गतरं तथिति न्यायात् भन्तरङ्गतारो भक्षार-दोर्घ इत्याभिप्राय: । सिलीपसु सर्वादिवेव, सर्वविधिन्यी सीपविधिकंसवानिति न्यायादिति भाव: । राजन्-सि (१४८, धैले नो सुप्) = राजा।

<sup>‡</sup> इनधातिष्यत-इन् इत्यस्य, पूषन् भर्यमन् इति अव्द्र्यस्य, इन्भागानास्य च दीर्थः साद्व्यथः। नान्तवात् (१६४) प्राप्तदीर्धस्य नियमोऽयं, तेन एषां सौ शी च परे एव दीर्धी नात्यस्यन् घी परे इति। सी इन् दीर्धाइन् भूत्याइन् इत्यादीनां इनधातुः। नियम्नवाभावात् नम्यम्बद्धः इत्यनेनेव दीर्धः। इतं इतवान् इति इवडा इन्द्रः। पाणिनि ६।४१२,९३।

ष्टनस्थाने जातस्य क्रस्य न्नः स्थात्, तस्य च नस्य यो न स्थात्। वनन्नः वनन्ना वनस्थामित्यादि। एवं पूषन् त्रर्थमन् यार्ङ्गि ययस्विन् प्रस्तयः। \*

# १८०। पूष्णो डिःर्डिकी।

(पूचा: प्रा, ङि: १।, डि: १।, वर ।१।)।

पूषि पूषि पूषि । 🌵 🐪

### १८१। मदोनस्तुङ् जा क्रिप्योः।

(मचोन: ६।, तुङ् ।१।, वा ।१।, क्ति-प्यो: ७॥) । ः

मघवन् ग्रब्स्य तुङ्वास्थात् त्ती पी च परं, उङाविती । 🕸

### १८२। त्रिदचोऽद्वे र्नुण्धौ।

(उ-मर-इत्-षण: ६।, भद्दे: ६।, तुण् ।१।, घी ७।) ।

चनारेत ऋकारेतोऽचय नुण् स्थात् घी परे, न तु है:। §

इन इति इनधातुसस्यसिनी ऋथैवेश्वर्थः, तेन इत्थातुनियन्ने चिन्न पूर्विक्षः
 इत्यादौ चादेशी न खात्। यत्निविधसु सित सम्भवे। वचइन्-सस् (१९७ = वचङः,
 चिन म्ने) = वचन्नः इत्यादि। पूपा अर्थमा च स्यः। पाणिनिः ७।२।४४, ८,४।४२२।

<sup>†</sup> पूषन्मस्रात् परो ङि-र्जि: स्वादा । डिस्वात् (१२६) टिलीपे पूजि, एतत् पदै पाचिनीयादिभिनं मन्यते ; सारस्रतानुसारेचाच लिखितम् । पर्चे (११०) चनाऽस्त्रोपो वाद्यति पूचि पूचि ।

<sup>‡</sup> तुक्तः जकारित् (१८२) तुगर्धे, जकारित् (१०) भान्यवर्ष-स्थाने जननार्थम्। भौ परि यथा, माधवतं माधवत्यं माधवती। मधवकितिरिति पदं (८३) लुक्ति न तवित्यच न ज्ञा निर्द्धित्मनित्यानिति न्यायात् सिज्ञनिति केषित्। मध्यश्च्यात् यतुप्रत्ययेन सिज्ञीः मधवभक्तच्योऽप्यन्ति, तुङ्करणन्तु प्राचीनातुवादार्थम्। भानुवत्तावित वान्यस्यं परच निक्ष्यर्थम्। पाणिनिः ६।४।१२८।

इस क्ष क्ष क्ष क्ष क इत यस च वित्, त्रिष भव तस्य । भच् इति किवल-गलयोधोः
 यह्षं, तेन वहवीऽचः (स्तराः) यिकान स बहुच इत्यादौ न स्थात् । भव, 'भदेरिकि

## १८३। सान्तसाराह्मप् फे।

(स्वान्तस्य ६।, अरात् ५।, खुष् ।१।, फी ७।)।

ख्यान्तस्य तुप् स्थात् फे परे, न तुरात् परस्य । \*
मघवुान् मघवा, हे मघवृन्, मघवन्ती मघवानी, मघवन्तः
मघवानः, मघवन्तं मघवानं, मघवन्ती मघवानी । 🕆

### १८४। खयुवमद्योनामुर्वे।ऽते पौ।

(य-युव-मधीनाम् ६॥, उः १।, कः ६।, अते ७।, पौ ७।)।

एषां वशब्दस्य ए: स्थात् पौ परे, न त ते । क्ष

निषेधीऽयं मत्रेद न चान्यत' इति विद्यानिवासः, तेन क्रमुप्रत्यये नमन्तान पेचिवान् इत्यादो स्थादेव। विकीर्धन् इत्यादौ त सनन्तादौनां (६३१) पृथक् घातुमं प्राविधानात् डिकक्तिनिवन्तनी तृष्निर्धि न स्थादिति। यङ्कुगन्तस्य त न पृथक् घातुमं प्राक्षका क्षता (६२१ सुचस्य टीकार्था ज्यादिगये यङ्कुगन्तस्य वर्ज्यनात्)। त्रतएव पापचित्त्युदाइरता क्षमदौष्यरेय यन्तुगन्तात्र तुम इत्युक्तम्। तेन परिक्षिकिइदित्येव। पाणिनिः ०।१।००।

- स्थय प्रतः स्थानसस्य । सिकातिभिन्नः संथोगानस्य लुप् स्थात् फे परे, पूर्ववर्तिः रिफ संयोगस्य न स्थात् । लुप्करणात् (१५) प्राधिविर्व स्थात्, सम्यद्यायिविद्यत्ति स्थात् स्थादेव तेन थिपच् भव्यस्य प्रतेन प्रत्यल्याक्ति स्थान् स्थादेव तेन थिपच् भव्यस्य प्रतेन प्रतः । प्रादिति किं कर्क्, प्रमार्ट् इत्यादी न संयोगानस्य सोपः । पाणिनिः प्रारश्रेष ।
- † मघवन्-सि (१८८,१८२,१८२,१८६,१८५) = मघवान् इन्द्र: । तुङो विकल्पपचे (१६४,१९८) = मघवा । हे मघवन्-सि [धि] (१४८,१८१,१८२,१८३) = मघवन्, तुङो विकल्पपचेऽिय सम्बन् इति । मघवन्-चौ (१८१) = मघवनौ, तुङो विकल्पपचे (१६४) = मघवानौ, इत्यादि ।
- ्रत्य च युवन च मधवन च ते तेवाम । मधीनामिति निर्देशात् नान्तपचे एवार्यं विधिः, तेन मधवतः इत्यादौ न स्थान । चते तिश्वितिमित्रं पौ परे । तश्विते तु श्रीवनं भौवनं साधवनमिति । गौणेऽस्ययं विधिः, तेन धतग्रनः वहुयूनः स्टमधोनः इति । पाणिनिः इशिश्रह ।

मघवतः मघोनः, मघवता मघीना, भघवद्वां मघवश्या-मित्यादि। \*

श्रुनः श्रुना। यूनः यूना द्रत्यादि।

### १८५। ऋर्षणोऽनञसुङ् त्येऽसौ तु।

(पर्व्याः ६।, भनञः ६।, तुङ् ।१।, खे ०।, पसौ ०।, तु ।१।)।

नज्वर्जस्यार्वणो नस्य तुङ् स्थात् श्रमौ त्ये परे। १ श्रम्बन्ती श्रम्बन्तः, श्रम्बन्तम् श्रम्बन्तः, श्रम्बन्ता श्रम्बद्धाम् इत्यादि। श्रन्तः किम् श्रनर्वा, हे श्रनर्वन्, श्रनर्वाणौ श्रन-र्वाणः, इत्यादि। श्रेषं यज्ववत्। इ

## १८६। पथिमप्यृमुचां थितो नमी वौ।

(पथि-मथि ऋभुवां ६॥, थ-इतो: ६॥, नमी १॥, घी ०।)।

पधिन् मधिन् ऋभृत्तिन् एषां यस्य नम् स्थात् इकारस्य चाकारः घौपरे। §

मघवन् ग्रस् (१८१) = मघवतः । तुङो विकल्पे—(१८४,२३) = मघोनः दूलादि ।

<sup>†</sup> नासि मञ्चा सांडनञ्तस्य । सिभिन्नेषु सर्व्येषु प्रव्येषु प्रव्येषमुङ्स्यात् । धन्नारेत् (१६२) तृष्ये, जिस्तादन्यस्य (१७) स्थाने । गौणेऽध्ययं विधिः, तेन प्रसर्व्यनी प्रत्यादि । प्रव्यंतां कुलम् प्रव्यंत्कृतसम् प्रत्यादी (३१८) क्रिल्क्याप्ति, नजा निर्दिष्टमनित्य-मिति न्यायात् (६३) लुकि न तनित्यनेन न निषेधः । प्रव्यंत द्रदम् प्रार्थ्यतम् प्रस्थादी प्रस्थेय परे भवति । पाणिनिः ६।४।१२७ ।

<sup>‡</sup> पर्वन-पी = पर्वन-पी (१८२) - पर्वनी प्रवादि। पर्वा घोटन:। नज् पहितद्यायां निवर्जनात् नज्युकद्यायां भी परे स्थादिलायद्व्याइ पनर्वा इति, पनापि नस्यादिलाभियाय:।

<sup>§</sup> पत्याय मत्याय चरभुवाय तं तेवाम् । य च इत्र यिती तथीः । नम् च घाय निर्मी। यस्य नम् दति सभ्यवैतः पथिमधीरेव, इत्कारस्य चाकार इति सब्बेंबामेव । (१०) मिस्तादादी । पाणिनी ०।१।८६ इति स्वेण इतः चत्, ०।१।८० स्वेण तु यस्य त्यादेशः चतीन चात्करणम् । संवितसारे प्रक्रियोनाधवात् चानिति क्रतम् ।

## १६७। टेरा सौ। (टे: ६१, भा।१।, सी का)।

पथादीनां टेरा स्थात् सौ परे। पत्थाः पत्थानौ पत्थानः, पत्थानं पत्थानौ । \*

१८८। लोपोंऽच्येषी। (बीपः रा, षचि का, षषी का)।

पथादीनां टेर्लीपः स्थात् अघाविच धरे।

पष्ठः पष्ठा पिष्ठभ्यामित्यादि । एवं मन्याः, ऋभुत्ताः । 🕆 (१३१) डतिसङ्काणा दति । पञ्च पञ्च पञ्चभिः पञ्चभ्यः पञ्चभ्यः ।

१८६। जो नामि घ:। (म: ६।, नामि ७।, र्ष: १।)।

नान्तस्य नामि परे घी स्यात्। पञ्चानां, पञ्चस्। ह

- \* सी परे पूर्वम्वेण षस्य निम इकारस्य च भाकारे पत्यान् इति स्थिते राजा इति वत् भादी सिलीपे (१४८) पत्रावलीपे (११८) पत्या इति निर्विसर्गमेव रूपं स्थान् एवं सस्योधने नलीपाभावे हे पत्यान् इत्यनिष्टमपि स्थान्, भतः एतन् मृतकरणम् । इदानीन् भाटी टेराकारे इस्परत्वाभावान् सेर्लेष्णभावे सस्य विसर्गे पत्याः हे पत्या इति । गीर्णेऽप्ययं विधिः, तेन भाग्याः इति । पथिन्-भी (१८६) = पत्यानौ इत्यादि । पाणिनः ०११८५ ।
- + लीपोऽचीति क्रते पथिमण्यभुचामिति विशेषविधिना वाधिततारघेरच एव प्राप्ती प्रधाविति पुन: क्रथनं याहग्नातीयस्थिति न्यायेन स्थादेरचएव प्राप्ताये, तेन पथोऽन पथन द्रस्यादो न प्रसङ्गः। लीपः पो इति क्रतेऽपि स्थियां नानत्वादीपि प्रतिमधिन प्रसृति श्रीविधी द्रस्यादी टिलीपानिष्टापत्तिः स्थात्। क्रीवितु प्रतिमधी प्रसृत्यी कुर्ष इत्यादी टिलीपः स्थादेव, जस्मधीन प्रतिमत्यानि प्रसृत्याचार्षा कुर्णान। मत्याः सत्यन द्रस्यः, स्थादाः इन्द्रः। भद्दोजिदीचितन्यु—"स्थियाद्यान्त्रस्य छीपि भत्यादिलीपः सुप्यी नगरी, प्रसृत्यो सेना" इति लिखितवान्। एवभेव कीमराः। पाणिनि श्रीप्रद्रा
- ‡ तुम्सन्य सिन्नकारेण सहित जाम = नाम तिखिन नामि, तेन यज्यनां दिखनार इत्यादी न प्रसत्तः । पश्चानामिति जामी (११०) तमागमे जनरज्ञतादभेन दीवें (११८ नो सुष् फेडपाविति नस्म सुष्। मुख्ये एकायं विधिः, गौणले तु प्रियपश्चामिति पाणिनिः ६।४।७।

### २००। वाष्ट्रनो जसमसोडी:।

(वा ।१।, षष्टमः ५।, जस्मधोः ६॥, डौः १।) ।

भ्रष्टनः परयो र्जस्यसो डींः स्थात् वा, ड इत्। भ्रष्टी भ्रष्ट, भ्रष्टी भ्रष्ट। \*

### २०१। ङा त्रौ वा। ' (ङास, को अ, वास)।

यष्टनो ङा स्थात् वा की परे, ङ इत्। यष्टाभिः यष्टभिः, यष्टाभ्यः यष्टभ्यः, यष्टाभ्यः यष्टभ्यः, यष्टानाम्, यष्टासु यष्टसु ।१

### २०२ । धोर्मान: फिन्न।

(धी: ६।, म: ६।, म: १।, प्रस्वि ७।)।

धीर्मस्य नः स्थात् फिने वे च परे। प्रयान् प्रयामी प्रशासः,
प्रयामं प्रयामी, प्रयान्ध्यानित्यादि। इः

<sup>\*</sup> मुख्ये एवायं विधिः, तेन भियाष्टानः इत्यादी न स्थात् । डी इत्यस्य विकल्पपचे श्रष्ट इत्यव वलवन्त्वादादी (१६१) जस्मसीर्लृकि (८३) लुकि न तर्वति निविधात् (२०१) न ङा । पालिनिः ७।१।२१ ।

<sup>†</sup> उड इत् (१७) भ्रत्यस्य स्थाने । भनुबत्ताविष वा-ग्रहणं परव निबच्चर्यम् । भ्रष्टाना-मिति भादौ (११०) नुसागमे पद्यात् भनेन उडादेशः, विकल्पपचे (११०) नुसागमे, (१८८) दौर्षे, (११८) नकारलुप्, एकाकृति पददयम् । परिणिनः अ। १।८४ । इति नकारालाः ।

<sup>‡</sup> स्वादीय-इससीव असंज्ञकति वसयीरप्राप्ती पृथग्वचनम्। तत्रत्र भावनयवीसृत-मकारस्य फीपरेन स्वात्, तिङ्नाङ्गदन्त्रयो मंकारस्य च वसयी: परयी: न स्वाद्त्यर्थः। प्र-प्र-श्रमधाती: क्विपि (१०३८) प्रशाम् शब्दः, प्रशाम्-सि (१४८) भनेन मस्य नः स्वाम् । प्रशाम् स्थाम्, भनेन सस्य नः स्वान्त्यां, (८१) दानावन्तात् न नस्य (५०) भनुस्वारः। वया स्थानिशन्तात् नस्य नं नुप् (११८)। वसयी: परयी: यथा, जङ्काम् जङ्कमः: जङ्कमः, जगन्तान् इत्थादि। पाणिनि ८।२।६४।

# २०३। इदमोऽयमियं पुंस्तियोः सौ।

(इदम: ६।, श्रयम्-४यम् ।१॥, पुंस्त्रियो: ०॥, सौ ०।) ।

इष्ट्रमः पुंलिङ्ग-स्त्रीलिङ्गयोः क्रमेणायमियमौ स्तः सौ परे। स्रयम्। \*

# ५०४। दीमोऽदसस्य कौ।

(द: ६।, म: १।, श्रदम:०६।, च।१।, त्रौ ७।)।

दंदर्मोऽदसय दस्य मः स्थात् ह्वी परें। इ.मी इ.मे, इ.म.म् इ.मी इ.मान्। 🕆

#### २०५। टौसीदमोऽनकोऽनः।

(टा-चीसि ७।, इदम: ६।, चनक: ६।, चन: १।)।

भंनक प्रदमः टीसीः परयोरनः स्थात्। अनेन । ह

२०६१ स्यः। (मिंभ ण, पः १)।

श्रनक इदम: श्र: स्थात् से भे च परे । §

<sup>\*</sup> भयभियम् इति लुप्तप्रयमादिवचनानं पुंस्तिथीरियनेन यथासङ्गार्थम् । इदनु सुख्यते एव, गौखे तु भनौदम् भनौदमौ इत्यादि । पाणिनि: ७।२।१०८,१११ ।

<sup>+</sup> साकात क्री परे इत्यर्थः । अस्य पुत्रः — इटस्पृत्रः, असुष्य कन्या — अदःकाला, अभीभिः क्रतम् — अदःकृतम्, इत्यादी क्रीर्लुकि न दस्य मः । इदम्-भौ (१३३, २०४, २३) ∞ इसी । इदम्-जम् (१३३,२०४,११२,२३) — इसे इत्यादि । पाणिनिः ७।२।१०८।

<sup>‡</sup> नासि चक् यस सोऽनक् तस्य। इदमी ग्रहणम् चर्सी निव्रक्षयंम्। इदम्-टा

□ चन-टा (१०६,२३) = चनेन। पाणिनि: ७।२।११२ (इद स्थाने चन्)।

<sup>\$</sup> स च भ च तक्षिन् म्भि । घनक दरम इत्यनुवृत्तते । विभक्त्यवयय-सभधीः परवीरित्वर्थः । तेश वस्य सिद्धः इ.दंनिर्द्धारत्यादौ न प्रसन्तः । यत्तु चनृक्तो— इतन्त्रसे धनंदिहि, व्यय वस्यो भूमि देहि, इमनास्या वेदीऽधीतः चय वास्या बास्त्रमधीतम्, इति

(१०८) ग्रातिसमिवि। ग्राभ्याम्।

### २०७। भिस भिसीऽदसञ्च।

(भिस् ।१।, भिस ६।, घटम: ५।, च ।१।) ।

त्रनक इट्मोऽदसय परस्य भिसी शिसेव स्थात्, न लैस्। क्षः (१०८) व्यस्थे: । एभिः। (१३२) टेरले, (२०४) दस्य मले, (११२) के स्मे, पथात् (२०६) यः। यसी याभ्याम् एभ्यः, यसात् प्राभ्याम् एभ्यः, प्रास्तान् यनयोः एषाम्, पः यस्तिन् यनयोः एषा

अनकः किम्--

#### २०८। त्यादिव्यासभोस्तिसिसे वीक् प्राक् टेर्व्यक दस्।

(लादि—से: हा, वा ११). पक् ११). प्राक् ११). दे: धा, व्यक्त ११). दः ११, च ११) । त्याद्यन्तस्य व्यस्य स-भ-भ्रोस्-वर्जन्यन्तः स्तेः स्त्रेष्ठ टेः पूर्व्वीऽक् स्यादा, व्यकस्य दश्व । ध

प्रथोग:— तत् नजा निर्दिष्टमनित्यमिति न्यायात् समाधानीयम् । अत्र त्र्ते इदम् इत्यत्र "गातिपदिकागढणे लिङ्गविशिष्टस्यैत ग्रहणम्" इति न्यायात् असम्ब्यवधानेऽपि स्यादितिः वक्तव्यम् (इसन्तस्त्रीलिङ्गपादो द्रष्टव्यः) । पाणिनि ७।२।११३, १।१।२१।

अत्र अनक इति विधिषणम् अट्सीऽपि, अनग्याम् इट्सदीयां परस्य क्रिसी भिन् एव स्थान् तद्वृपेचैव स्थितिरित्यथं:। तेन असकैरिति सिञ्जम्। नैसदस्यिति क्रिते सिञ्जेऽपि गौरवं कटाचिदैस्पाप्तायं, तेन इसैर्ग्णेरित्यादि सिञ्जम्। क्रासदीयरेच तुर्'इसैं-विधक्तिति तु इट्सयेंमधब्दस्य रूपम्'' इति लिखितम्। पाणिनिः ७।१।११।

<sup>†</sup> इदम-भाम् (१३३,२०४,११३,२०६,१०८,१११) = एवाम्।

<sup>‡</sup> ति पादिर्यस्य स्वयद्धिः। सच भच भीस् व तं सभीसः, न विद्यत्ते सभीसोः सच सा प्रसभीस्, प्रसभीस् किर्यस्थात् सीऽसभीस्किः, स चासी सिवेति प्रसभीस्-किसिः। त्यादिय व्यव्याचास्मासाम्बासिय सिवर्यत् तस्य।

#### इमकेन इमकाभ्याम् इमकेरित्यादि।

# २०८। द्वीटौसीदैतयोरेनोऽनक्तौ।

(दी-टा भी खि ७।, इद-एतयी: ६॥, एन: १।, अनुत्ती ७।) ।

इगंग्टीसीय परत इदमेतसीरिहैतयोरेनः स्वात् उक्तस्य पद्या-दुन्ती। 🌣

> इमं विदि हरेभेतां विद्ययेनं शिवार्चनम । इमाविमान् वित्त ग्रैवान् एनावेनांसु वैशावान् ॥ श्रनेन प्रजितः क्षणोऽयैनेन गिरियोऽर्चितः। अन्यो: केग्रव: खामी ग्रिव: खामी अधैनयो: ॥ 🕸

त्याचनस्य भवति पचतीत्यादे, व्यस्य प्रपरा धिक इत्यादेः, स-भ-श्रीम् भिन्न विभन् क्रायल-सर्वनामग्रव्हराः कीवलसर्व्वनामग्रव्हराः च टे: (६२) पूर्वम् अक स्यात् वा, प्रिक स्रति चव्ययान्त-कस्य दय स्यादित्यर्थ:।

यया-भवतिक भवतकः इत्यादि। प्रकापरका उचकै: धिकत् इत्यादि। सामि प्रसाव्ययस्य टे: पूर्वम् प्रक्नन स्कादिति वक्तव्यम् । पूर्वणक युगाककिकासित्यादि । सभीम्-क्यन्तसेल् असे पासाम् पाभ्याम् भनयीरित्यादिषुन स्यात्, भसकौ युप्तकत् द्रत्यादिषु समग्रीरभावे सादेव। केवलसंल् सर्वकेण सर्वकात द्रवादि। विभन्नयुत्पत्ते: पूर्व्वनिक क्कते पुनर्व्विक्तस्य सक्त स्थान, लेन सर्विकी एक इत्यादयः प्रयोगान स्थः। पाणिकिः 1 50, 90151H

इम्बीन इत्यादिषु विभक्तगृत्पत्ती: प्राक् चिक क्रते (२०५, चन) (२०६, च) (२०७, अस्त) एते भादेशान सुरिति।

<sup>🕆</sup> दी चटा च भीस् च तिस्त्र न्। इतय एतय तौ तथीरिदैतयी:। ऋतु प्यात् **डिति: चन्त्रिपास्याम् । चन्**त्रिरिच यसुद्दिस्य पूर्वसृत्रि: तसुद्दिस्य यदि पश्चाद्रितिः स्थादिति बोध्यं, तेन इसं भीजय, इसं प्रेरय, इत्यत्र एकस्य भीजनसपरस्य प्रेरणसती न स्थात । इदेतयोरिति निर्देशात् मकारदकारौ हिला भवतीति, तेन क्रीके एनदिति (२४२) स्त्रसंवस्यति। एन इति प्रक्रत्यन्तरमप्यन्ति। पार्णिनः २।४।३४।

t है साधी, इसं जनं हरेर्भतां विखि जानी हि इति उत्तिः, मय, एनं (तसेव) भिया-र्खकं विश्वि इति प्रश्वादुतिः। एवं सर्व्यत्र । हे साधवः, इसी इसान् ग्रैवान् कित, एनी

(१३३) त्यदां टेर: क्तौ। क: की के इत्यादि। \* (१९००) भाभान्तस्येति बस्य भः। भृत् भुद् बुधी बुधः, बुधाः भुद्ग्गामित्यादि। †

# २१०। युजिरोऽसे नुणु घौ।

(युजिन: इ।, असे ७।, तुष् ।१।, घौ ७ ) ।

युजिरो युज्यब्दस्य नुण् स्यात् घी परे, नतु से । ६

# २११। चुङ्क्राङ्युङ्सग् दिगसग्रात्विक् दथक् दक्स्पृक् सगुष्णिहां कुङ्भौ।

(चुङ्—उधिहां ६॥ कुङ्।१।, भौ ७।)।

#### **च**वर्गान्तानामञ्चादीनाञ्च कुङ्स्यात् भौ परे। § .

एनान् वैष्णवान् वित्त, यूरमिति ग्रेजः । अत्र इसी इसान् इत्युभयीर्विशेषणं श्रेबान् इति, तथा एनी एनान् इत्युभगीर्विशेषणं वेणवानिति उत्तवता भावार्थेण नागालिङ्गानां नानावचनान्तानां विशेषाणास् एकं विशेषणं परस्वैव लिङ्ग सङ्गास्त्र भनतीति स्चितम् । भनेन क्रणः पूजितः, स्रय एनेन (तेनैव) गिरिशोऽस्तितः । अत्रयोः स्वामो क्रेशवः, भण्ण एनथीः स्वामी शिवः इत्थर्थः । भन्न कितीयायाः एक विवष्ठुषु वचनेषु टा-भोस्-विभक्तशोश्व यथाकमसुदाइतिसिति ।

- क ता: इति किम् िं , लीपस्त्र रादेशयो नुस्तर दिश्विषिय तीति त्यायात् चादौ
   (१३३) टेरले, से विंसर्गः। किम्-जस् (१३३, ११२, २३) च के इत्यादि। इति
   मकारानाः।
- † बुध्यते रति बुधधानी: बिपि, बुध्-मि (१४८,१००,६४) = भुन भुद रत्यादि । रित धकारान्ताः।
- ‡ युजिर प्रति कथनात् "युजिर् योगे" प्रति घातोः क्रियनस्य युज्यस्स्सेत्यर्थः, नेषु युज् समाधावित्यस्य । पाणिनिः ७।१।७१ ।
- § तुष अन्य्व कृन्य्कथनज्य सज्ब दिश्य अस्ज्य ऋतिज्य दध्यच दश्य स्म्य स्मि स्मिष्ट उपिण्ड्य ते तिथाम् । तुष्यमं, सच धालवयवरव बीध्यः, तेन बह्व् यड्ने अद्स्थादो न स्थात्। युन्न्द्रतियुज्यादस्य (२१०) तृषि कृते इत्यम्। अन्यः

(५०) स्रोर्नुर्भरयदानी । (५१) अपे अम् नीः। (१८३) स्वान्त-स्यारात् तुप्फी। युङ् युक्ती युक्तः, युक्तं युक्ती युकाः, युजा युग्भ्यामित्यादि । #

भ्रमे कि — सुयुक्त सुयुको सुयुक्तः इत्यादि । युक्तिरः कि — युक् समाधिमान्। अन्च क्रुन्च युजामेव प्राक् कुङ् प्रथक्-यहणात्, तेन खन् खर्ज्जी खज्जः इत्यादि । 🕆

(१५४) प्रक्राजीति षङ्। (१५५) घीड़: फें। राट्राड्राजी राज:। एवं विभाट् देवेट् परिव्राट् विश्वस्ट् परिस्ट् । 🕸

क्रमुच युन्ज एषां चवर्गान्तलेनैव प्राप्ती पृथकग्रहणं नियमार्थ, नियमय एषां चयाणासेव (१८३) संयोगान्तर्लापात् पूर्वं कुङ् स्थात, प्रन्यपा संयुक्त चवर्गान्तानान्तु भादी सयोगान्तन्प्। • सन् यस्न ्चस्ति च्रां चवर्गान्तिऽपि, (१५४) शक्रुनिर्धित पड-बाधनार्थ ग्रहणम्। अर्द्धे सिल्लातीनि क्रिमि लिण्डि, अन्य (१७८) सल्लादिविहितघडी विकालपपर्च (१९०५) क्रीटीमावित्यस्य वाधनार्थं ग्रहणाम् । क्रांड इति क्: केवर्गः, कु इत्। **च**र्वासध्ये क्वारम्य (१५४) शक्निति गाधितत्वेन, घालवयव जकारासमावेन च च ज भ इस्वेषांच्याने क्रमेण काग घडस्येतं स्थ्रिययं:। जवर्गसाटचर्यात अर्व्यक्षामधि अपत्र गरहीत शब्दानां का गघ एषा मेकात स एवं स्थान. पश्चान आत्र भागभा सी विश्वनेन यथा थी ग्यं कारी स्थाताभित्ययः । रूज भुज धातुन्यां क्षप्रत्ये रूग्यः भूगः इत्यादी व्यक्तग्रङ्गलाहादी विनेत जस्य गकारे पथात् तकारस्य नकारः । गमानन्दः काशीव्रगैत् ऋव कङ्क्रलाः, कश्यः सुमादिसाधनाय मुतालर कल्पयतः । भी परे इति चवर्गालार्थभेव तेन चवर्गालधातूनाः मपि स्थात्, भन्ययां कीवलशस्टानासेव ग्रहणात् इसे विरामे चंस्ययं.। विश्वस्तर् अन्दरा सिदालकौमुदीमते विश्वसृट् इति, क्रमदीश्वरमते तु विश्वसृक् इति ६५म्। पाणिनि: श्रापट, पाराइ०.६२।

<sup>\*</sup> युज-सि (१४८,२१०,२११,५०,५१,१८३) - युज् । युज्-श्री (२१०,५०,५१) = युद्धी। इत्यादि।

<sup>†</sup> खिजि पाङ्गल्ये इति खन्ज घाती: विच्मल्ये, खन्ज-सि (१४८,१६३) = खन्।

<sup>‡</sup> राजने दति राजधातोः क्विपि राट् राड् 🏿 एवं क्यांजते द्वति विसाट् । देवात् वनतीति देवेन ्यन्दः। परिवनतीति, विश्वं स्ननतीति, परिस्तनतीति-परिवाट् भिष्ठः, विश्वस्टट् (वा विश्वस्क्) विधिः, परिवट् मार्जकः ।

#### २१२ । विश्वराजोऽदा । (विषरात्रः ६), भत्।स, भा।स)।

विखराजीऽकारस्य ग्रा स्थात् भी परे। विखाराट् विखाराड विखराजी विखराजः। \*

#### २१३। खादे: सो लीपं: कोऽषढ्न्यरच्च: [ (खादे: इ., मृ: इ., लापं: ११, कः इ., पषढवरचः इ.)।

स्वादी स्थितस्य सस्य लोपः स्थात् भी परे, कस्य च—न तु षड़ाभ्यामन्यस्य स्थाने जांतस्य रचया। १० भट्ट भड़ा (६९) भूषभूमोदिति सस्य टः (९६) स्वयभिष्यपा-

स्ट् स्ड्। (६४) भाषभासीरिति सस्य दः, (४६) सुधुभिष्वधा-दिति, स्रज्जी स्रज्जः इत्यादि। जर्क् जर्ग् जर्ज्जी जर्जः इत्यादि। ऋत्विक् ऋत्विग् ऋत्विजी ऋत्विजः इत्यादि। अवयाः हे अवयाः हे अवयः अवयाजी अवयाजः, अवयोभ्यामित्यादि।

विश्वराज्यन्दस्य विश्वस्थैव श्रकारः सम्धयित श्रतम्बस्थैव ,श्रात्ं, तेनास्य धातृत्वासभ्यवात् भा इत्यस्यानुब्रताविष तदन्तः पाति-फंपरे एव बीध्यम् । विश्वराज्-िख (१४८,१५५,१६५,२९२) = विश्वाराट् विश्वाराड् । पाणिनिः ६।३।१२८ ।

<sup>†</sup> स्यः मयोगः, स्टास्यादः स्यादिनस्य । षय दय घढौ तास्यामन्य घढन्यः, ततः (४३३) इत्मर्थे पाप्रत्यये घढन्यः घढन्यनात इत्यर्थः । रच इति उपचारात् रचधातु-सन्यसीत्ययः, पढ्न्यय रच च इति समाहारे घढ्न्यरच, न घढ्न्यरच षघढ्न्यरच तस्य, कः इत्यस्य विशेषणम् । संयोगादेः सस्य लीपः स्यात्, एवं घढ्नातिभिन्नककारं रचधातुककारच वर्षायला प्रत्यक्षकारस्य लीपः स्यात्, ततस्य नात्ककारसम्ये घढनातककारस्य रचभिन्नधात्-ककारस्य च (संयोगादिःस्थितस्य) लीपः स्यात् भौ परे इत्यर्थः । तेन, विविद् लिखिट पाषीत् इत्यादौ स्थात्, नत् पिपक् गोरक् इत्यादौ । कस्नाता इत्यादौ संयोगस्याद।न्तलान स्थात् । पाणिनः प्राः। १८८।

<sup>‡</sup> सम्ज-धाती: क्रिपि, (६६१) स्मृज-सि (१४८,२१२,१४४,१४४,६४) = स्ट स्ड । जजभाती: क्रिपि, कर्ज्-सि (१४८,२११,६४) = कर्क् कर्ज् ग्रां। स्टती यजतीति स्तृत्य अभाती: क्रिपि स्टिक् प्रोहित:। भव्य जतीति निपातनात् विधि भव्य ग्राज्-सि (१४८,१८४,१८४,१०२) = भव्या:। मन्नोधने (१८६) = भव्या: भव्यः। भव्याज्भाम् (१८४,१०२,६६,२३) = भव्योभ्याम्। इति जकारान्ताः।

# २१४। त्यदां तदोः सः सौ।

(त्यदां ६॥, तदो: ६॥, सः १।, सी ७।)।

त्वदादीनां तदयोः सः स्थात् सौ परे। स्यः त्वौ त्वे इत्वादि सर्व्वत्। एवं तद्। एषः एती एते इत्वादि। \* (२०८) दीटौसीदैतयोरेनोऽनृक्षाविति प्रयोगसु इदम्वत्। पं

२१५ 1 युप्तदसादो-स्वा हो युवावो युववयो त्वसादो तुथ्यमद्भो तवममो सि-द्व-जस्-क्ष-ङे-इससु । (युप्तद पक्षदो: ६॥, ल-पहो १५, युव-पावो १॥, यूव वयो १॥, लद-महो १॥, तथ-मन्नो १॥, सि-द-जम्क कं-जम्म ०॥)।

भनयोः क्रमादेते भादेषाः एषु परेषु क्रमात् स्यः । 🕸

२१६। डिघोर्म: । (ई घी: ६॥, म: १।)।

स्थटामित वहत्वचनं गणायं स्थटाटीनामिस्थयं: । सौ परे स्थटाटीनां (१३३)
 टेन्कारे घत्रशिष्टी यौ तकारदकारौ तथी: स्थानि सः स्थादि यथं: । तेन स्थटन्यद-एतदां तकारस्य घटसी दकारस्थेति यात्रत्। घत खिसंश्रकानां स्थटाटीनां ग्रहणात् घतिस्यदा-दीनां न स्थात् । पाणिनि: ०२।१०६।

<sup>†</sup> इदम्बदिति --- एतं विद्धि हरेभेतं विद्ययेनं शिवार्षकमित्यादि ।

<sup>†</sup> तक भ्रष्टय लाडी क्लादि इन्हः। निकाक्ष च नम्च कच छेय रूम्च ते तेष्। इंदियचनं, क्राम एक यचनम्। मुख्यले गीयले चार्य विभिः, यद्या लाम् भाइम्, भातिलम् भाष्टम्।

क्टिस परे द्विवचने असि परे ङेपरे क्रमय-——भीपरे एकदचने युषाद: स्थाने तव युव यू य रहे हैं तुभ्य सम चसद:स्थाने चड भाव वय सर मश्च यापिनि: ७।२।६४,६२,६५,६७,८५,६६ ।

युष्मदस्मद्भगां परस्य के इत्यस्य घेश्वमः स्थात्। त्वं ऋहं। 🌸

२१७। सममोष्ट्राङ् । (स-म-अम्-भीष २॥, आङ् ११)।

युष्पदस्मदीराङ् स्थात् से भे श्वमि श्रीकारे च परे। युवां श्वावां, यूयं वयं, त्वां मां, युवां श्वावां। 🕆

२१८ । शस्-ध्यस्-ङसि-ध्यस्-ङस्-सामां न-डभ्यम्-त-त-डाकमः । (शस्-मामां ६॥, न-भाकमः १॥)।

युषादसाङ्गां परेषामिषां स्थाने न डभ्यम् तै-त ड शाकम् एते क्रमात्स्यः, ड इत्। युषान् श्रसान् । क्ष

 <sup>\*</sup> एतटादिध चतुर्ध सुनेष विधानं मुख्यगौष्यमाधारणम् आचार्यमस्थातम् । युग्यद्,
 श्रस्यद्रसि (२१५,२१६) ⇔लं श्रहः । पाणिनिः ७।१।२८ ।

<sup>†</sup> चाडी उत्दर्भन्यवणेखाने । भेषरे भाङ्करणं भिस्स्याने ऐस्वारणार्थम् । भेभे माचादेव, तेन लंयुयात् इत्यादी न भाङ् । युपाद, चस्यद-भी (२१५,२१०,२१६) च्युवां, भावां ।युपाद, भस्यद-भम् (२१५,२१०,२१६) ≕ लां मा ।पाणिनि: ०।२।८८ ।

<sup>‡</sup> स्त्रसम्बन्धि-सकारेण सिंदत चाम् च साम्, धम् च स्थम् च द्रव्याद्विद्ये तेषाम् । न च उथ्यम् च द्रव्यादिद्यवे ते । अत्र नकारे तकारद्ये च चकार उद्यारणार्थः। (१६१) डितिव्यणान्तेलादिना लिङ्गविद्वित-कार्य्यनिष्ठेषात् (१०५) पृति तु धम् न द्रत्यस्य चप्राप्तौ विधु लिङ्गेषुः धनी न विधानम् । स्थमी स्थम् न कला उथ्यम्करणम् (२१७) चार्ज्वनारणार्थम् । उत्सी उक्तरणं (१०६) स्थवारणार्थम् । चामः सुम् (११३) सुक्षे एव भवति, चच्चामा चाकम्विधानात् गौर्यो चामः (२१८) एङ् एव ।

भागभ्य——

श्रम् ४ भ्यम् इत्त्वः प्रथम् इत्त्वः साम् एवा स्थाने—
न् उभ्यम् त्, त् उ भाकम् एते क्षमात् स्यः ।

युभादः, भास्यदः श्रम् (१३, ५१८, १०४)  $\Rightarrow$  युभान्, श्रस्यान् । पाणिनिः श्रारहः ३०, ३२,

रैरे, २०, ३३।

### २१८। एङ् टाङ्ग्रामि । (एड्।२१, टाःङि कामि का)।

युषादस्रादोरेङ स्थात् टार्ड्याः परयोरामि च, ङ इत्। 🏶 त्वया नया युवाभ्यां जावाभ्यां युषाभिः जावाभिः, तुभ्यं मह्यं युवाभ्यां ग्रावाभ्यां युषास्यं अकास्यं, लत् मत् युवास्यां अवान्यां युषात् अस्तत्, तव मम युवयी: आवर्याः युषाकां ऋसाकां। 🕆

श्रतित्वयां श्रतिमयां श्रतियुवयां श्रत्यावयां श्रतियुषयां ऋत्यसायां । 🕸

(२१५) क्त-द्वारधस्यापि ग्रहणात्। एवं सर्वेत्र। 🦠

<sup>-</sup> ण्डीड इत् श्रन्त्यस्य स्थाने । मुध्यत्वं (२१८) साम भाकस्विधानात् अत्रत श्राभीति गौगार्थभव । पाणिनि, शराब्हा

<sup>†</sup> युपाट, श्रमाट्-टा (२१४, १३३, २१८, ३५) - ल्या, मया । युपाद, श्रमाद स्याम् (२१५.२१०) युवाध्या, आत्राध्यां। युषाद असाद्धिसः ।२१७) = युषाधिः, अस्माभिः । युषाद, चनाद हे (२१५,२१६) च तुभ्यं, मर्स्या। युपाद, चनाद-४ भ्यम् (२१८,१२६) - ० पार्यं, अकार्यं । युवादं, अकाद-ङिन (२१५.२१८) - लत्, भत् । युवादं, अकाद्-५ भ्यम (१३३,२१८) = युषात अस्मत ा सुपाद, असाट्-डम् (२१५. २१८ १२६) = तव, मम । युभाद, असाद-आंम् (२९५,१०६,१०२) = युवर्यो., भावधी: । युभाद, असाद् भाम् (१३३, २१३, २१८) — गुपाल, अस्तालां ।

<sup>🕇</sup> लामतिकान्तानामिति वाक्यं ऋतियुष्पदशब्दस्य श्राम्विभक्तौ, व्यासवाक्यान्तर्गत-लानिति एकवचनस्य अर्थे ग्रहीला (२१५) खंद आदेशे. (१३३,२१६,३५) अतिलया-मिति, एवं मामतिकान्तानाम श्रतिमयां। ययामतिकान्तानामिति वाक्ये युवामिति द्विवचनस्य वर्षः रहतेला युवभादेशं ऋतियुवया, एवम् श्रावामितिकान्तानाम् अन्यावयां। युपान् अतिकान्तानामिति वाक्ये बहुले आर्दशाभावात् अतियुपादशब्दस्य श्राम्विभक्तौ (१३३,२१८,३५) श्रतिय्षया, एवम् श्रत्यकायामिति ।

अतिलयामित्यादो वहवचने लटाद्यादेशः कथमित्याभद्याह कदयोरिति। ततयायमर्थ.---य्मद्सादी भेष्यत्वे गीणते च, (११५) । सि-जम्-डे-डमा स्वर्षण ग्रहणात् तेष परीष ला भ्राह युग यय तुभ्य मद्या सव मम एते ऋदिका:स्युरिव। सिजमादिरत्यत्र मुप्तदसादीभृष्यत्वं एकावचनं परि लनादी, दिवचने परि युवाबी, बहुवचने

त्विय मिय युवयोः श्रावयोः युषास श्रमास । \*

#### २२०। दीचीषीणां केर्दें के स्ते-मे वां-नी वस-नसी वाऽपादवाकादा-वचवाहाहै वाहगृहश्यर्थे स्वा-मा त्वमा।

(दो-ची-घोँगा ६॥, कै. ३॥ दें: ३॥, वंते. '३॥, तं में ११॥, वां-नी १८॥, वम् नमी १॥, वा ११।, अपादवाक्यादी ७।, अ च बा ह अहं एवं अहगृहक्तें: ३॥, लामा १२॥, तु ११।, अमा ३।)।

षरे स्वरूपेणावस्थानम्। गौण्लं तु परिविभक्तिमनाडल्य क्वेबलयुपाटसाटारेकलं त्वचाटौ बित्य युवाबी, बहुर्त्व भ्वरूपेणावस्थानमिति चटाहुँ•णं स्था - त्वामितिकान्त: लामतिकान्ती लामतिकान्ता: इत्यादि वाक्यप - ऋतिल ऋतिलां ऋतिययं, ऋतिलां अतिलां अतिलान, अस्तिलया अतिलाभ्या अतिलाभिः, अतिलभ्यं अतिलाभ्या अतिलभ्यं, श्रतिलात श्रतिलाभ्या श्रतिलात, श्रतिताव श्रतिलायी: श्रतिलायां, श्रीतलाय श्रतिलायां: षतित्वास् । युगमतिकान्त. युगमतिकान्तौ युवामतिकान्ताः इत्याद्दि वार्क्यप्र—श्रतित्वं अपतिथ्यां अपतिथ्यं, अपतिथ्यां अपतिथ्या अपतिथ्यान, अपतिथ्यया अपतिथ्यास्या अपत युवाभि: अतिवृश्यं अतियुवाश्यां अविवृत्रभ्यं, अतियुवत् अतियुवाश्यां अतियुवतः, अविव भतियुवयी: भतियुवया, भतियुविध चतियुवया: मतियुवास् । यमानतिकान्तौ युमानांतकान्ताः इत्यादि वार्क्ययु-मितलं भातयुमा ऋतिययं, भातयम श्रांतयुषां श्रांतयुषान्, श्रातयुषाया श्रातयुषाभ्यां श्रातियुषान्नः, श्राततुभ्यं श्रातयुषान्नः श्रतियुप्तस्यं, अतियुप्तत अतियुप्तास्यां अतियुप्तत्, अतिकाव अतियुप्तयां आगतयुप्तय चतिय्चायि चिियुक्तर्या: चितियुक्तासु। एवं मानतिकालः द्रव्यादि∢ चावार्मातकालः द्यादिर् प्रसानतिकाल. इत्यादिप्च युषादत् प्रशेग: : लया कर्तं लत्कतम्, सः धनं सहन्तर, त्वासिक्कति त्वद्यति, त्वामाचर्ष्टत्वदयित, त्वदीषद्रनं त्वतकत्यं इत्याद विभक्तिलिक अपि एकवचनस्य अर्थे ग्रहीत्वा त्वनाद्रादेश स्थादंव।

डिबचनस्यार्थं क्राचिदादेणा न स्यृतिति वक्तव्य च्यथा, युवयीरयं युप्पदीयं, युवयीर्थः पुष्पद्धनम्, चात्रयीर्यकः चन्नाद्युकः: चावान्यां कृतं चन्नातृत्वतन् । युवानिच्छति युवानि वाचरति वा युष्पद्यति, युवामाचष्टे युष्पयति, इत्याद्यविष दिवचनार्थं चादेशी न स्थात् .

अ युवाद, वातादिङ (२१५, १३३, २१८, ३५) क्लायि, मिया युवाद, वालाद्मार (२१७) व्यावास, वालामा । वालाद "जिङ्कावनायीय लगायामादी" इत्यादिम लगदी वालादी युवादिम लगदी वालावी युवादिक देवादरणान तेन प्रदर्भितानि । यथा, युवाद युवासि वालावास्। युवासि वालावास्।, युवासि युवासि वालावास्।, युवासि युवासि वालावास्।, युवासि वालावास्।

यबाटसाटी: दीचीषीणां की: सिहतयी स्ते-मे, है वीं-नी, व्वे वीस-नसी, क्रमादा स्थाताम, श्रमा-युक्तयोसु त्वा-मा, न तु पादस्य वाकास्य चादी स्थितयोः. न चवादी-रदर्भनार्षदृश्यर्थ-भ्रमिश्व योगे। \*

> दामीदरस्वावतु मापि मित्र, ददात् ते मेऽपि सुदं मुजन्दः। निहन्त ते विशारघानि मेऽपि. रचलसी वामंपि नी मरारि:॥ ददातु वां नाविष ग्रमी क्रणः. करोत वां श्रीदियतो दयां नी।

पादच वाकास पादवाको, तथीरादि: पाटवाक्यादि: न पाटवाक्यादि स्पाद-वाक्यादिस्तिमानं पाद: पद्यचतुर्भागैकभागः, "पादशब्दैनात ऋकपादः स्रीकपाद**य** ग्टश्चते" इति पाणिनिटीका । वाका परस्परमाकाङचपदसमूहः । "साख्यातं साव्ययं सकारकं सविभेषणं वाकासिहासिभेतस्, न तुलौकिकापदसङ्घातः सम्बन्धार्थौ वाका मिति'' इति क्रमदीखरः। • इक दर्शनम्, न इक अडक, द्रशिर्दर्शनमधी येषांते हत्त्रथी:, बहार बदर्शने हत्त्रयी: बहगहत्त्रयी: ; च च वा च इ च सह च एव च भहगहम्खर्णाय ते चवाहाहैवाहगहम्खर्णाः, पथात् नञ्यीगे तै:।

दितीया-चतुर्थी पत्रीनाम एक बचनै: सह युषादसादी सी मी, दिवचनै: सह वां मी, बहुवचनै: सह वस-नसी, भासा सहितयील ला-मा, क्रमात् वा स्थातास्। भासा सहित्यो स्वा-मा इति विशेषाभिधानन चतुर्यीषष्ठारिकवचनेन ते-से, दितीयैकवचनेन त्वा-मादतिनिकार्षः । पादस्य वाकास्य वा भादौ स्थितयोः युमादकादोरिते चादेशा नस्य:। चवाहमह एव इति पञ्चभिरव्यवैद्यौगेऽपि एते मादेशा न स्य:। मन इ सह स्थाने इ। इ इति व्याख्यानमय्क्तं पाणिनिः सर्ववर्याः चन्द्र-पद्मनाभः क्रमदीयरादि-सतिविरीधात । एवं स्वभावात दर्शनार्था ये धातवर्श यदि धातनामनेकार्थलात् दर्भनिभन्ने ऋषें वर्त्तर्न, तटा तैथींगेऽपि एते ऋादेशा न स्पृरिक्षर्थ:। पाणिनिः 511177,70,71,75,74,7X,7X

पुणात वो नोऽपि इरिर्धनं वो ददात नी. इन्बग्रभानि वी नः ॥ \* ग्रपादवाक्यादी किं--

युषानवत्वविरतं क्रणोऽस्नान् पातु ग्रङ्गरः । 🕆

अ-चादियोगीः किं,— तुभ्यं महाञ्च दद्यात् स्वं गोविन्दो महामेव ग्रम। यीकारो मामपेच्य ला-मालोकवति पूजकम्॥ §

दीचोषीणामित्यस्य एतानि ययाक्रमसुटाहर्णानि ।

#### † प्रत्यदाहरणनु —

क्रणः ऋषिरतं निरन्तरं युषान् चवत्, इत्यत्र युषान् इति पाटादिस्थितत्वात् न व इति भादेश:। अन्यान् गङ्गरः पातु इति वाक्यादिश्यितलात् न न इति भादेश:।

† योगे इति क्रयनात् साचाद्योगेऽयं निर्षधः, परम्पद्वासम्बन्धे तुत्रादेशः स्यादेवः यथा इरी इरिय में खानों। इति निहान्तकौ मदो। यव चादिभि न युपादमादी योंगः भवित भर्यान्तरस्य तचापि लाइयः स्यः। इति कमदीश्वरः।

§ गीविन्द: तथ्यं मद्यञ्च स्व धनंदयात, शंकल्याणं मद्यमेव द्यादिति श्रेष:। भव तुम्यभिति पादादिस्थितलात् महात्रेति महामैवति च चादियौगात् न मादेश:। अव युष्पद्चाइप्रामिव चादियोगे निषेध:, तेन रामी धनमेव द्यात ते इत्यादी स्यादेव। शीकाणः: मामपेच्या स्वज्ञात्वां पूनकम् अलोकयित विचारयतीत्यर्थः, अत्र ईचधातुः लोकधातुम दर्भनार्योऽपि इह पुनल्यागार्थी विचारार्थय प्रयुक्तः, ऋतीऽदर्भनार्थ-टम्यर्थभातुयोगे न भादेश इति।—ते ने इत्यादिकम् अव्ययनप्यक्ति, तेन श्रीक्ते सासामित्यादि प्रयोग:। प्रथमात्रतीययोरप्यादेशा इति वामन:, तेन "गेये कीन विभीतौ थां," वां युवाभिति प्रयमायृज्ञस्यादेश:। एव "कारितासी यतोऽतस्वां," अव ते ल्या इति हतीयाय्त्रस्थादेश इति ।

हे सिच, टामीदर: श्रीक्रण: ला (ला) सा (मां) श्रिप अवत रचत । सकल्ट: ते (तुभ्य) में (मह्य) अपि मृदं इर्षें ददातु । विणा; ते (तृव) में (मन) अपि अधानि पापानि निहन्त । अभौ सुरारि: वां (युवां) नौ (भावा) अपि रचत् । क्रणः वां (यवाभ्यां) नी (त्रावाभ्यां) ऋषि भक्ता सुखं ददातु । श्रीद्यितः श्रोपितः वां (युवर्याः) नी (श्रावयी:) दर्था करोतु। इरि: वः (युषान्) नः (श्रक्यान्) भवि पुणातु। (यथभ्य) न: (श्रमाभ्यं) धर्न ददात् । व. (यथाकं) न: (श्रमाकं) श्रमानं श्रमानि इन्तु ।

# २२१ | सदानुको ऽसादिप्रताः । (सदा ।१।, अनुको २०, प्रमादिप्रताः ५।)।

अनयोरेते अन्वादेशे नित्यं स्यः, न तु सपूर्व्वात् प्रान्तात् परयोः।

्र यूयं वयं विनीतास्त्रत् प्रातु वो नो महेश्वरः ।

यूयं वयं हितास्तेन, सं। स्मान् पातु स वः श्रिवः ॥ \*

# २२२ । नाविशेष्यान्याद्यामन्त्रात्।

(न । १।, अर्वि औष्यान्याद्यामन्त्रप्रात् ५।) ।

विशेष्यपूर्वमनामन्त्रापूर्वेच हिला अन्यमादामन्त्राहिते त्रादेशा न स्यः। <sup>१</sup>

शक्षीऽसान् रत्त, लत्तीश मेव्य नीऽवाव सर्व्व नः । 🕸

<sup>🌣</sup> अपन पथादताम अनुतांतिसान । अपाटिना पूर्वस्थपदान्तरेण सह वर्त्तरे यासा सादि, सादिशासी भी चेति सादिशी, पशान्न अशीर्ग तस्या.। अन्वादिर्भ छक्तास्य पथादक्ती युपादसादी: स्थाने पते अर्थादणा निर्थं स्थु किन्तु पुर्श्वस्थितपदालर्गा सहितात प्रथमान्तपदात परशी श्रीफद्धादो रण्जाविष एते चाहिणा निर्धन स्थ:, पूर्वम्बिणैन विभाषया स्युल्लियी.। यूय वया विनीता. इति उक्ति: तत्तसमात् महे-अदर: वी युपान् नोऽकान पातृ र्इत पथादक्तौ निल्यमादेश:। सपूर्वीत् प्रयमान्तान्, युगंबर्गहिता, तेन म जिन: ऋकान् पातु, म वी युगान् पातु इति श्रष्टः। अप्र विकल्पेनादेश:। पाणिनि. ८।१।२६।

<sup>+</sup> विश्रयञ्च अन्यस्त ते विश्रयान्ये, अन्यदिति आमन्त्राभिन्नपदिमत्यये: । तं आदी यस्य तत् विशेषान्यादि, तच तत् आसन्तार्चिति विशेषान्यायासन्त्रं, पश्चात् नत्रयीर्ग तस्मात । चामन्त्रां सस्वाधनविहित-प्रथमान्तपदम् । विशेष्टामन्त्रापूर्वे यदामन्त्रां भानन्ताभिन्नपदपूर्वच यदाभन्ताम् एतद्भयभिन्नादामन्त्रात् परयो ग्रीमटकाटीरेते त्रादिशान स्य:, ततथ पूर्वपद ग्हितान् विशेषनापूर्वाच भागन्द्रशत् परयो न<sup>‡</sup>स्युरिति निष्कर्ष:। पाणिनि: ८।१।०२,०३।

<sup>‡</sup> ग्रमीऽभान् रच दात उदाह्वय, प्रत्युदाहरति हे लचीग्र सेव्य नीऽकान् भव, हें सर्व नीऽक्यान् अव, लच्चीशेति निशेष्यपूर्वात् सेव्य दूर्यामनदागत् परत्या

सुपात् सुपादी सुपादः, सुपादं सुपादी। \*

# २२३। पात् पत् पौ । (पान ।रा, पन ।रा, पौ छा)।

पादः पत् स्थात् पौ परे। सुपदः सुपदा सुपाइरामित्थादि। वि (२११) चुिङ्गि कुङ्। (५०) नस्य नः। (५१) नोर्ङः। (१८३) स्थान्तस्य लुप्। प्राङ्ग्पाञ्चो प्राञ्चः, प्राञ्चं प्राञ्चौ। एवं क्रञ्जतिर्थाञ्चोदञ्चादयः। ॥ ं

### २२४। अचोऽह्वोपो ध्या

(अव: ६१, अस्त्रोप: १।, र्घ: १।, च ११।)।

धर्चोऽकारस्य लोपः स्यात् पौ परे, पूर्वस्य च र्घः।

प्रतीचः प्रतीचा प्रत्यग्भ्यामित्यादि । §

निषेधी नाभृत्, एवम् ऋव इत्यनासन्त्रापूर्श्वात् भव्वे इत्यासन्त्रात् प्रश्तया निषेधी नाभूदिति।

- असमी पादी यस्थित निग्रंड (३४७) पादस्थाने पादः अपदिश:। सुपात् भुपाइ इति च सिंडान्तकौसुदी।
- † (६४%) पादस्थाने पादिष्टपाइणव्दस्य पद्स्यान् पौ परं इत्यर्थः । स्त्रियां सुपदी, विपदीत्यादि । क्रीवे विपदी वसुनी इति । योगविभागान् विपदा इत्यपि । पाणिनिः ६।४।१२० । इति दकारानाः ।
- ‡ अन्तु शांतपूजनर्थावित्यस्य किपि (५६८) पूजायंत्राज्ञकीपाभावे प्रान्च् इति विज्ञम् ; गत्ययेस्य तृननीपेप्राच् इति विज्ञम् तचापि (१८२) विद्वदर्शत तृणि क्षते प्राञ् पाची प्राच् इति विद्वदर्शत तृणि क्षते प्राञ्च प्राची प्राच्च इति स्वादिष्यके उभयोदि समानं रूपं, ग्रसादी तृप्जायंश्य— प्राचः प्राचा प्राञ्च्यां प्राञ्च इति भेटः। क्षुष्रतीति कुङ्, तिरः वक्षम् अधतीति उदङ्, स्वीति कुङ्, तिरः वक्षम् अधतीति विर्थेङ्, उत् ज्ञद्देम् अधतीति उदङ्, स्वीव किपि रूपम्।

# २२५ । तिर्थ्यगमुम्यगदम्यगुद्रचां तिरञ्चा-मुमुईचादमुईचोदीच:।

(तिथंक — उद्वां ६॥, तिर्थ — उदीच: १॥) |

एकामेते क्रमात् स्यु: पौत्परेत

तिरयः तिरया तिर्थयम्यामिलाहि।

असुसुद्देचः असुसुदेचा असुसुयग्भग्नामित्वादि । एवसदसुयङ् । उदीचः उदीचा उदग्भ्यामित्वादि । श्रेषं पूर्ववत् । \*

(१५४) मक्राजिति चस्य वले, तिविभित्तस्य मस्य सले, : (२१३) स्थादे: सो जोप:। सुबट् सुबड् सुबची सुबच: इत्यादि। पै

(१६४) नसब्महत्त इति घी: । (१८३) स्थान्तस्य लीप: । महान् महीन्ती महान्तः, महान्तं महान्ती महतः, महता महद्रामित्यादि ।

इस्साभावात दीर्षः, पत्तीपस्य विशेषात (३१) गीर्बेलस्य च न विषयः। दिवं प्रस्नतीति दिवच्गक्टस्य शनि धनेन पत्तीपे (२४०) वस्य उत्ते, प्रनेन दीर्वे सूब् इत्यादि। यत्र प्रत्नोपो पंचिति कतेऽपौष्टिति च चो यहणं पूर्वे पदान्तरिस्थिते रावस्यकलं ज्ञापयति, तेन क्वलस्य प्रचः— प्रचः, प्रचा इत्यादो न प्रसर्कः। प्रति प्रस्नोति प्रस्यव्हित लिङ्गम्। पाणिनिः ६।४।१३८, ६।३।१३८।

 तिथंच अम्मयच् घटम्थच् उत्च् द्रव्येषां स्थानि तिथ्य अमुमुईच अत्मुईच उत्तीच् द्रव्येते आदिणाः क्रमात् स्यः। अमुमुईच अत्मुईच द्रति सम्यभाविन्द्रेणात् न सित्यः। तिरः अञ्चतीति तिर्थेङ्। अमुमञ्जतीति अमुमुयङ्, अद्मुयङ्। उत् अञ्चतीति उदङ्। सञ्जेच अन्चधातोः क्रिप्। प्रयं पूज्येवत् पान्च-प्रव्दवित्ययः। पाणिनिः ६।४।१३८, ६।३।८४, पाराप्तः।

† सब्द्र इति, त्रम्च् श्र् केटे इति त्रम्च धात्र्यसम्ब्रः, प्यात् चकारयोगात् (४६) तालव्यसम्ब्रः। नकारजावनुस्वारपञ्चमी किलिधात्पः। सकारजः ग्रकारय षाद्द्वर्गेन्तवर्गजः॥ सब्द्यतीति किपि (६६१) सुब्धः इति रूपं, सुब्धः सि (१४८, १५४, चस्त्राने व, ततः निमित्तस्यापायं नैनिन्तिकस्याष्यपायं इति न्यायात् श्रस्ताने स्, ततः २११,१५५,६४) - सुब्द् सुबद्धः। इति चकारानाः। भवन् भवन्ती भवन्तः, भवन्तं भवन्ती भवतः, भवता भवद्गा-मिलादि। शेषं महदत।

(१८५) ग्रलसोऽघोरिति—श्रीमान्, ग्रेषं भवदत्, एवं यगख-दादयः। 🕸

२२६। भगवद्ववद्भवतां भगोऽवोभो वा (भगवत्-श्रघवत्-भवतां ६॥, भगी-श्रघी-भो ।१॥, वा ।१।, घौ ७।) । एषामिते क्रमात् स्युर्वा धौ परे। ही भगीः ही भगवन्, ही अघीः हे अधवन्, हे भी: हे भवन्। शेषं श्रीमदत्। 🌵 (१८२) श्रद्वेदित्युक्ते-र्न नुण्—ददत् ददती ददत: इत्यादि । एवं जचत-जायदादयः । 🕸

महामिति, महत्क पूजे इति धातीरी वादिकोऽनुपत्ययः। (१६४) नसब्सहन्न इत्थव सहती ग्रहणात् स्थादिपञ्चके दीर्घः। भवनिति भृषातीः श्रष्टप्रलाये भवत् इति रूपं, महिस्सात् (१८२) ब्रिटच इति तृष्, (१८३) स्त्रानस्य सर्जनासस् भवत् प्रव्हस्य भाधाती डंवनुप्रत्ययेन रूपम्, तत्र सि-विभन्नी श्रक्षन्तलेन (१८५) दीर्घ:। श्रीर्वियतेऽस्य श्रीमान, एवं यश्री वियतेऽस्य यश्रस्तानित्याद्यः।

<sup>†</sup> भगवद्यवतीर्वतन्त्री: भवत्र डयतन्त्र ग्रहणम्। भगवद्यवद्यतीवत् उस् इति क्षते उसन्तत्वात् रङ्भवितुमर्दति, तथा स्ति विसर्गस्य रेफजातत्वात् भी:पते इत्यादी (०४) स्तर्शिवत्यस्य विषयः स्थात्। एषां टेडीम् प्रस्थकरणन्तु स्पष्टार्धम्। हे भगी: इत्यादी हसात् सिखीपस्य प्राथमिकलेऽपि सर्व्वावयवादेशस्य वलवत्वात् प्रागीवा-र्देशे इस्परत्नाभावात् सिर्खापाभावे विसर्गः। श्रेषं त्रोमददिति—(१६५) चलसी-Sघोरित्यनेन दीर्घी भनिश्वनौत्यर्थ:। निदान्तकौसुदीमते भगोस् अघोस् भोस् एते सकाराला निपाता:। इत्तिकार-भाष्यक्रन्यते तुभी: शब्द एवाव्ययम्।

<sup>‡</sup> ददहिति दाधाती: ग्रेटप्रलयेन रूपं, दिस्ततवात् न तृण्। एवं जचत् जागत् भासत् चकासत् विभ्यत् जदत् प्रस्तयः। पाणिनिः ७।१।७८,६।१।६ । इति तकारान्ताः।

(१५४) म्रक्राजिति षङ्—विट् विड् विमी विमः, विमं विमी विमः, विमा विज्ञः, विमा विज्ञः

(१७८) मुहां घङ्द्रति—नक् नग् नट् नड् नशौ नग्नः, नग्नं नग्गो नग्नः, नग्ना नग्भ्यां नृड्भ्यामित्यादि ।

(१८४) खेतवाहेति डस्ङ्—पुरोडाः, हे पुरोडाः हे पुरोडः, पुरोडामौ पुरोडामः, पुरोडोभ्यामिल्यादि ।

(२११) चुङिति कुङ्—स्टक् स्टग् स्ट्रगी स्ट्रगः, स्ट्रगा स्टग्न्या-मित्यादि । \*

दधक् दधग् दधषौ दधषः, दधग्भ्यामित्यादि । षट् षड्, षड्भिः षड्भ्यः षसां षट्सु । 🕆

# २२७। सषेसुस्सजुषङ्गां रङ् फेऽचः।

(सष इस् उस् सजुष् श्रज्ञां ६॥, रङ् ११।, फी ७।, श्रजः ६।)।

सस्य स्थाने जातस्य षस्य दसुसः सजुषोऽक्रय रङ् स्थात् फे परे, न तु चान्तस्य । क्ष

क विश्व नम्म स्थम धाती: किपि क्रमेण विश्व नम्म स्थम मन्दाः। पाणिनिः सारा६३,३।२।५८। (१०२८) पुनः अर्थ दाम्यतेऽसी पुरोडाः इतिः, दामधातीः विख्यम्ययेन निपातनान् सिदः। सम्बोधने (१८६) उस्को धी विति विकल्पः। पाणिनिः ३।२।०१। इति स्रकारान्ताः।

<sup>†</sup> ध्रष्थाती: क्रिपि निपातनात् दध्रष्यस्दः सिखः । प्रचानिति (४८) निपातनात् सिदम् ।

<sup>‡</sup> दन्यसस्य स्थाने जातो मूर्जन्यः सवः, सवय दुस्च छस्च सजुव्च घडन् च तेवाम्। विपठिष् चिकीर्ष् बुभूषांदीनां किपः प्राक् वले सस्थाने जात-यः। (१०३२) द्रसुसी दन्यान्ती, यथा पिस्ट गत्यां (पिस गती प्रति सिद्वान्तकोस्रुदी) सुपीः,

# २२८ । र्व्यनचतयीको धोद्यीऽकुर्वे हुए।

(र्वि ७), अनचत्रि ७), इक: ६), घी: ६), घी: १), अनुरक्तर: ६), अखे: ६)) । धीरिको र्घ: स्यात वि रेफे च, न तु कुरकुरी:, न च खे:, नाचि तये च। 🎄

पिपठी: पिपठिषी पिपठिष:, पिपठीम्थीं पिपठी:ष । चिकीर्षादयः । 🎌

तुस ध्वाने (तुस खण्डने इति सिद्धान्तकौसुदी) सुतू:, एवम् इति: धनुरित्यादि। सज्वी सूईन्यानतादपाती पृथगृतिः, जुषी प्रीतिसेवनयीः, जीवणं नुट्, सह जुषा वर्तत या सा सज:। चानस्य तु, लिझी ज ल स्वादे लिलिचतीति किपि लिलिट, भाव (१७५) इस्य ढले (६०२) षढ़ी: का: से द्रति ढस्य काले, (१११) कि चारित्यनेन सन: सस्य पतिऽपि चान्तवात न रङ । पिपठीमावः, आशीर्वादः, भहनिश्रम् इत्यादी विभक्तेर्लिक विरामे रङ स्थादेव। पाणिनिः पारा६६,६८ (कः)।

🌞 र चव चर्वतस्थिन र्वि, रेफसाइ चर्यात् वकारीऽत्र दल्यः तेन उत्जतीत्यत्र न दीर्घ:। तसाद्वित:, तथासी य चेति तय, श्रम तय च अच्तयी, न विद्येते अच्तयी यस्नात सीऽनचतय तिस्निन्, अनच्तथीति विंदलस्य विशेषणम्। कुर्च कुर्च कुर्कुर, न कुर्कुर भक्षर्कुर तस्य । (५३८) न खिरखिमस्य । घातुसन्वसीयस्य कुरक्र-भिन्नस्य इकी घं: भ्यात्, नालि अच तयस यसात ताडमेरेफी वकारे च परे, न'तु खेरित्यर्थ:। ऋच सूचे विंदति अपदी रफस्य पश्चात् वकाग्स्य ग्रहणम्, बसीत् वि रेफी इति वैपरीत्यं ऋनचतयीत्यनेन क्रमान्वयनिगमार्थम्। उदाइरणम् यथा, रेफी परं--गी: घ: पिपठी रिल्यादि । वकारे परे--दी व्यति सोव्यतीलादि । अन च्तयौति नि - गिरी दिवी, धर्यः दिव्यमिलादि । तयसाहचर्यादव घच प्रत्यस्थैव, तेन गीर्यः पागीरारमः दलादौ दीर्घः स्यादेव । घीः कि - इविः धनुरित्यादि । प्रकृरक्रः किं — कुर्यात् कुर्यादित्यादि । अस्ते: किं — रीधाती. ठी-विभक्ती रिर्थे, ब्रीडधाती: वित्रीड, व्येधाती: संविव्यतु: इत्वादि । चनेन दीर्घे क्वतिऽपि (५५०) समस्वयद्वेत्वनेन पुनर्फ्रस्वेनैवेष्टसिद्धौ भव कथं खिवर्जनमिति चेत् – श्रस्य विश्रेषविधिलातः सभस्यधिलानेनः पुनक्रीखासमावात्। पाणिनिः पाराण्य-ण्यः, वार्त्तिकदयच ।

† पठधाती: सनि पिपठिष इति धातीः क्रिपि (৩০५) इसाल्लोप इति ऋकारलोपि षिपठिष् इतिः लिङ्गम्। पियठिष्-सिः (१४८,२२०,२२८,१०२) = पिपठीः।

हो: दोषी दोष:। (१९६) पाददन्तित दोषन् वा। दोणाः दोष:, दोणा दोषा दोषभ्यां दोर्भ्यामित्यादि।

(२१३) स्थादेः सो लोपः। विविट् विविड् विविज्ञौ विविज्ञः, विविड्भ्यामित्यादि। , ,

पिपक् पिपग् पिपची पिपचः, पिपग्भ्यामित्यादि। एवं गोरक्दिधचादयः। \*

सुपी: सुपिसी सुपिसः, सुपीभ्यीं सुपी:षु । एवं सुतू: । विद्वान्, हे विद्वन्, विद्वांसी विद्वांस:, विद्वांसं विद्वांसी । १

### २२८। वसो वः सेमणुर्मतुष्योः।

(वसी' ६।, व: १।, सेन् ।१।, अपि ।१।, उ: १।, मतुष्यी: ०॥)।

वसो विश्वव्यं इम्मिक्तिरेषि उ: स्थात् मतौ पौ च परे। विदुष: विदुषा।(१८३)स्रम्धस्वस्विति दङ्,विदद्भग्रामित्यादि।

चिक्कीर्घारति, एवमिति रङ्पाप्तार्थे, न तु सर्वे रूपसायाये, तेन विकीर्घ गब्दस्य सुपि, षस्य रङि, (१८३) स्थानस्थारादित्यत्र स्थानस्थित भिन्नपदज्ञापकात् रादिष रङो लीपे. (१८०) रङो वि: सुपीति निथमात् रेफस्य विसर्गाभावे (१११) किलादिति पत्ने चिक्कीर्धुद्रति पदम् । एवं बुवूर्ष् प्रस्ति शब्दस्थापि ।

३ दीरिति दभेडोंसिरियौगादिकम्त्रेण दीष् इति लिक्कं बाह्याचकस्। टोष्-ग्रम् (११६,११७,१११,१०२) = दोण्:। विविट् इति विग्रधातोः सनि क्षिपि च विविच् इति लिक्कम्, विविच्-सि (१४८,२१६,१५५,६४) = विविट् विविच् । पचधातोः सिनि क्षिपि च पिपच्ग्रव्ह्स्य चकारजात-ककारस्य (२१३) खोपामावं, (१८३) स्थानस्य लुपि पिपक् पिपग् इति । गां रचतौति गोरच्यव्ह्स्य (२१३) रचवर्जनात् ककारः खोपामावः। दहधातोः सनि क्षिपि च दिधक् दिधग् इत्यादि । इति प्रकारानाः।

<sup>†</sup> सुपौरिति सुत्रिति च सुपूर्वकात् पिसधातोः तुन्नधातीय किपि, इसन्तलार उसन्तलाञ्च रङ्। विद्यानिति विद्यातोः ग्रहप्रत्यये (११०३) शतुः कस्तादेशे, विद्यस्-सि (१४८,१६४,१६४,१६३) = विद्यान्। पाणिनिः ६।४।१३१, वार्सिकच।

पेचिवान पेचिवांसी पेचिवांसः, पेचिवांसं पेचिवांसी पेचुषः, पेच्या पेचिवद्वरामित्यादि । जगन्वान जगन्वांसी जगन्वांस:, जगलां मं जगलां सी। वस्योले तिविभित्तस्य नस्य मले --- \*

# २३०। इनगमजनखनद्यसामुङलोपोऽङेऽच्युणौ ।

(इन गम जन-खन-घसां ६॥, उङ्-लोप: १।, घङे ७।, घि ७।, घर्षी ७।) ।

एषामुङ्लोप: स्यादणाविच, न तु ङे।

जग्मुष: जग्मुषा जगन्वद्वरामित्यादि । एवं जग्मिवान् । 🕆 (१६४) अधीरित्युक्ते:, सुहिन् सुहिंसी सुहिंस:, सुहिन्भ्याम्। ध्वत् ध्वसौ ध्वसः, ध्वद्भाम्। एवं स्नत्।

उक्षयमा:, हे उक्षयमा: हे उक्षय:, उक्षयमासी उक्षमास:, जन्यग्रोभ्यामितग्रादि । 🕸

<sup>\*</sup> म्चे वद्रति श्रदन्तग्रहणात् श्रकारमहितसीत छः, इम्महितीऽपीति सित समावे। वस्वन्तात् (४४२) मतो: प्रमङ्गाभावेऽपि, मतौ परे वसीर्वस्य उविधानं भाषयति "वस्वन्तात् (४४१) मत्रेय भविष्यतीति", विद्यस्यव्दात् मतौ विदुमान्। पेचिवान् इति पचधाती: वसु: पेचिवस्-सि (१४८,१६२,१६४,१८३) -- पेचिवान्। पेचिवस् भी (१६२ १६४,५०) = पेचिवांसी। गमधातीः कसी, वकारे परे (२०२) मस्य नकारे लगन्तम् इति लिङ्गम्। वस्रीले इति—शिम परे लगन्तम् शब्दस्य वस्य जले, सएव वकारी निमत्तं यस स तिमित्तनादृशस्य नस्य, निमित्तसाभावे नैमित्तिक-स्याप्यभाव इति न्यायात्, मले, जगमृष् इति स्थिते इत्यर्थः। पाणिनिः ''वसीः सम्प्रसारणम्" इति (६।४।१३१)। अत्र अन्तरक्वोऽपि इड्रागम: सम्प्रसारणविषये न मधर्तते, ''त्रकतव्यहाः पाणिनीयाः'' इति परिभाषया ।

<sup>†</sup> यिखान् परे गुणी निविद्यसाद्दर्भ चिच परे (५६५) ङ भिन्ने, एतेवां पञ्चानां धात्नां घडीऽकारस्य लीपः स्यादित्ययेः, भयमच् भाष्यातक्रतीरीव सभावति। ऋज्ञीप इति कते सिक्षेऽपि चक्रलीपकरणं (१११८) दिसादुङ्लीपिन इति स्वे एवां प्राप्तायंन्। जगम्-उष् इति गम् इत्यस्य चनिन उङ्लीपे जन्मष इति। गमधातीः क्रसी (१०६८) निसिवान् इति च। पाणिनि: ६।४।८८।

<sup>🙏 (</sup>१६४) नम्बन्धन इत्यन धातवयनवर्जनात्, सु हिनसीति किपि सुहिन्स्

# २३१ | पुंसोऽसुङ् द्वौ | (पंतः ६।, असङ् ११<sup>-</sup>, घो ०)।

पुंसीऽसुङ् स्थात् घी परे, उङाविती । पुमान् पुमांसी पुमांस:, पुम्भ्यां पुंभ्यामित्यादि । \*

# २३२। से डींग्रनस्पुरुदंगोऽने इसोऽधे:।

(से: ६।, डा ११।, उशनम्पुरुदंशम्-अनेहसः ५।, प्रधे: ६।)।

एभ्यः परस्य सेर्डास्थात्, नतुधेः। उग्रना। १

# २३३ । भेर्डडनो वोशनस: । (थि: ६१, ख-खनी १॥, वा १११, उमनस: ५१) ।

उगन्मः परस्य धे डी-डनी वा स्तः, ड इत । ही उगन ही चयनन् हे उपनः, उपनसी उपनीभ्याम् । \$

इत्यस न दीर्घः, (१८२) स्थानस्य लुप् सुद्दिन् इति । व्यन्स घातीः किपि, व्यस्-सि (१८३) ध्वत् इति । उक्षानि मामाद्वानि शंसतीति (१०२८) विणि निपातनात्, जन्यग्रास्-सि (१४८,१८५,१०२) = जन्यग्रा: । ८।२।६० पाणिनिम्न चकारादुन्यग्रा: ।

असुङ उदिस्तात (१६२) नृग्, डिस्तादन्यस्य स्थाने । पुम्स्-िम, असुङ्⇒ पुनस् चि (१४८,१६२,१६४,१६३) - पुनान् । पुनस्-स्थाम् (१८३,५३,५२) = पुन्स्यां, वा पूंथ्यां। पाषिनिः ७।१।८८।

<sup>🕇</sup> उग्रना दैत्यगुरुः। पुरुदंशा इन्द्रः, भयं शब्दः उकारबद्रेफवान्। भनेहा काल:। अपनेन सेर्डाक्षते (१२६) टेर्लीप इति टिलीप:। पाणिनि: ०।१।८४।

<sup>‡</sup> ख-डनीर्ड इत्, च चन् स्थिति:। छन्ननः: सम्बोधने रूपचयम्—- चटनं नानं सान्तच । सान्तपचे (१८५) धिवर्जनात्र दीर्घः । "वशेः कनिरः' इत्यीचादिकस्त्रेष सम्मसारपाम उमनस्-धि (२३३,१२६) = उमन दलाहि। ''बस सम्बुती वानङ् नलीपय वा बाच्यः" इति वार्शिकन्। काशिकावृत्तीच "सम्बोधने नूमनसस्त्रिक्षं सान्तं तथा नान्तमयाप्यदन्तम्'' इत्युक्तम् ।

अनेष्ठा, हे अनेष्ठः, अनेष्ठसी अनेष्ठसः, एवं पुरुदंशा । विधाः, हे विधः, विधसी विधसः इत्यादि । (१८५) अधोरित्युत्तेः, सुवः सुवसी । \*

२३४ । ऋदस: सेरों: । (भदतः ५१, के: ६१, को: १।) । भदसः परस्य से-रोः स्थात्। असी । 🌵

२३५ । मात् खर्घावुऊ । (मात् पा, खर्घा रा।, उन्जारा) । भदसो मात् परौ स्वर्घावुदूतावाप्रुतः । श्रम् । क्ष

<sup>\*</sup> भनेडम्-िस (२३२,१२६) च अनेडा कालः, ''निज इन एइ घ'' इति औषादिकस्त्रेण श्रसिः। ''विधाओं वेध च" इत्यौषादिकस्त्रेण श्रसिः, यद्दा विधवातोः भस्प्रत्यये वेधस्-िस (१४८,१८५,१०२) च वेधाः विधाता। सृपूर्व्यक-वसधातोः किप्-प्रत्यये सुवस् इत्यत्र श्रकारस्य धात्ववयवत्वात् (१८५) न दौर्घः।

<sup>†</sup> अव, पूर्वतः वाश्रव्दः कीवलं व्यवस्थावाची भूला भागवर्तते। व्यवस्था च—
भक्युक्ताददसः से-रीव्वा, भगकम् नित्यमिति ; तेन भसकौ भमकः पुमान्, भसकौ
भसका स्त्रो । भमुकः भसुका क्रत्याकाराणि पदानि त्याणिनीयार्गन "सौ भौत्यप्रतिषेधः साकच्कादा वक्तव्यः सादृत्वघ" इति वार्त्तिकात् ; "भसुक क्रत्यागित्वम्" इति कास-दीवरः । सुपद्मे तु "भसकौ भसुको वा, भसुकयेश्येके" क्रति । क्रीवे तु सेर्लुकि क्रते, (८३) लुकि न तविति निषेधात् (२१४) त्यदां तदीरित्यस्य (२०४) दीमीऽदसयेत्यस्य च भशासौ भदकः कुलिनित । भदम्-सि (२३४,१३३,२१४) = भसौ । पाणिनिः शराहै ००, वार्त्तिकाच ।

<sup>‡</sup> अदस्यव्हस्य मकारात् परिस्थातस्य इस्त्रस्य स्थाने छ, दीर्धस्य स्थाने छ भवत इत्यर्थः। मान् किं, असुध्य प्रिष्यः अद्याद्यः स्थादे विभित्तालुकि (८३) लुकि न तचेति निषेधात् (२०४) दस्य मकाराभावे मपरत्याभावात् न छ। अच छ-यहयोनैव छत्वभागी छ ऊ इत्युमययहृषं प्रत्यादेश्योः इद्रहितेनाका सवर्षो न यद्यते (७) इति ज्ञापनार्थम्। अदस्-भौ (१३३,२०४,२६,२३५) = असू। पाथिनिः ⊏।२।८०।

#### २३६ । • एरी ब्वे । (ए: १।, ई ।१।, ब्वे ७।)।

श्रदसो मात् परो ब्वे निष्यत्न एकार ई स्थात्। श्रमी। श्रमुं श्रमू श्रमून्। (१२३) टादसवास्त्रियान्तु ना। श्रमुना श्रमूभ्यां श्रमीभिः, श्रमुषौ श्रमूभ्यां श्रमीभ्यः, श्रमुषात् श्रमूभ्यां श्रमीभ्यः, श्रमुष्य श्रमुयोः श्रमीषां, श्रमुष्यिन् श्रमुयोः श्रमीषु । क्ष

प्रति इसन्त पुंलिङ पाद:।

#### २य पादः -- इसन्त स्तीलिङ गव्दः।

### २३७ । नही धङ् भौ। (नहः ६१, धङ् ११), भौ ०)। नही हस्य धङ् स्यात् भी परे। उपानत् उपानद् उपानही उपानहः, उपानद्वाां। १ (२११) चुङिति कुङ्। उण्णिक् उण्णिही, उण्णिग्भ्यामित्यादि । क्ष

क पूर्वती मादित्यनवर्षते। बहुवधनस्थानजात एकार दे स्थादित्यनेन भमू स्त्रियी, असू फले इत्यादी न स्थात्। भदम्-जम् (१३३,२०४,११२,२३,२३६) = भमी । भदम्-भम् (१२३,२०४,१०३,२३६) = भमी । भदम्-भम् (१०५,१०४,२३६) = भमी । भम-भम् (१०५,१०४,२३६) = भमी मा । भम-भम् (१०५,२३६) = भमी मा । भम-भम् इत्यादी (१३३,२०४,११२,२३६,१११) एवं पदि । इत्यादी (१३३,२०४,११२,२३५,१११) एवं पदि । प्राणिनः प्राणिनः (१०६) स्य योम् भवतः, भाम्स्थाने (११३) साम् भवति । पाणिनः प्राराप्तः। इति सकारान्ताः।

<sup>†</sup> डिस्तादत्यस्य स्थाने, भाती व्याक्यायां इत्य घङ् इत्युक्तम् । भी (८४) इति कयनात् लिङ्कस्य घातीय यहणाम् । उपानद्यतिऽनयेति क्विपि उपानत्, पादुकेल्थरैः । घीनुभनातसीत् अनञ्ज इत्यादि । पाणिनिः ८१२।३४।

<sup>‡</sup> जर्दे सिद्यातौति (उदःसिदः किप्) उपिक्, छन्दीविभेषः वेदे असिदः।

२३८। दिव ऋौङ् सौ। (रिवः ६।, भीक्।१।, सो थ)। दिव भीक् स्थात् सी परे। बी: दिवी दिव: । क्ष

२३८ । वास्याङ् । (वा ११), पिन ११)। दिव प्राङ् स्थात् वा श्रमि परे। यां दिवं दिवी दिवः, दिवा। १

२४० | उह्रस्युङ् । (जहिंस का, जह ।१।)। दिव जङ्स्यात् जवर्षे इसि च परे । युभ्यां । क्ष गी: गिरी गिर: । एवं पू: । §

श्रीति स्वरदिश्वादादी वस्य त्रीकार मेविंग्रं:। गौणले चायं विधिः, तेन त्रित्योरित्यित्। यौ: स्वर्गः, त्राकाशच । "यौ: स्वर्गमुरवर्त्वानीः" इति विद्यः। पाणिनः ७११८४।

<sup>†</sup> अयमिप सुख्यते गौषते च, दिश्यन्त्सः चिम यां दिवं, चितिद्व्यन्त्सः चित्यां चितिद्वं गन्त यीगन्तस्य यामिति, दिव्यन्त्सः दिवमिति उभयपदिनिज्ञौ वाम्याङिति व्यवंभिति चेन्न, (१४६) चा चम्यकोरित्यच सुख्यसैव यहचेन चित्या-मिस्यस्यानुपपत्ते:। पाथिनीयाः (पाणिनिपद्मनाभक्तमदीचरादयः) दिव्यन्दात् यामिति पदं न मन्यते। कातन्ते तु "वाम्या" इति सुवेष पद्वयं स्यादेव।

<sup>‡</sup> भात विति नानुवर्त्तते भनिष्टलात्। इक्कया हि व्यवहितमप्यनुवर्त्तते भव्यव-हितमपि नानुवर्त्तते इति तालिकाः। स्थादिमध्ये सभाभ्यां विना भन्यहसीऽसभ्यात् सभि इति न कला इसि-बङ्गं सामान्यहस्मात्राये, तेन दिवः पतिः युपतिरित्यादि । भन्न दिवो वकारः दान्ते स्थितो वक्तव्यः, तेन दिविमक्किति दिव्यति, दिवि भवो दिव्य-इत्यादौ न स्थात् । (१६८) स्यमोर्जुकापि भवतौति च वक्तव्यं, तेन सुग्रुकुलिन्यादि । पाणिनिः ६।१११६१ । इति वकारान्ताः।

<sup>§</sup> निरतौति गृथातीः किपि, निर्-िष (१४८,२२८,१०२) = गीः, वाकाम । निरौ इत्यादिष रेफस अच्परलात् न दीर्घः।

(१५०) स्त्रियां चिचतुर इति चतस्य । चतस्तः चतस्यः चतस्यभः चतस्यभ्यः चतस्यः चतस्यां चतस्य । \*

(१३३,२४८) टेरत्वे सत्याप्। का ने काः द्रत्यादि, सर्व्वी-वत्। एवं यदु। 🕆 ੵ ့

(२०१) इट्मोऽयमितीयं। इयं इमे इमाः, इमां इमे इमाः, अनया श्राभ्यां श्राभिः, श्रस्यै श्राभ्यां श्राभ्यः, श्रस्याः श्राभ्यां श्राभ्यः, श्रस्याः श्रनयोः श्रासां, श्रस्यां श्रनयोः श्रास् । क्ष

स्रक् स्रजी स्रजः, संग्भ्यां। §

(१३३,२४८) टेरले श्राप्। स्था खेत्याः इत्यादि सर्वी-वत्। एवं तद् एतद्। ¶

वाक् वाची वाचः, वाग्भ्यां। ॥

त्रप्यब्दो ब्वान्तः । (१६४)नसब्महत्रद्रिति घी: । श्रापः,श्रपः । \*\* **२४१ । स्यपो दङ**् । (भिर्का, श्रपः ६), दङ् ।१।)।

# अपो दङ्स्यात् भि परे । अद्भिः, अद्भगः अद्भगः, अपां असु। 🌵

चतुरश्रव्दः स्त्रीलिङ्गविश्रव्दवत्। दति रकारान्ताः।

<sup>†</sup> किम्-सि (१३३ २४६ १४८) = का इत्यादि।

 $<sup>\</sup>ddagger$  इदन-घी (१३३,२०४,२४८,१४८,२३) = इ.से । इसा-टा (२०५.१५०,३५) = अन्या। इ.सा-स्यां (२०६) = घान्यां, इत्यादि सर्व्यावत् साध्यम् । इति सकारान्याः ।

६ स्रज्ञात इति स्रज्ञधातीः किपि, सज्सि (२११,१४८) = सक्माला। इति जकारानाः।

<sup>¶</sup> त्यदः सि = त्या सि (२१४) = स्था। इति दकारान्ताः।

<sup>∥</sup> जचातेऽसाविति वनभातोः क्रिपि, वाच्सि (२११ १४८) = वाक् वाक्यम् । इति चकारानाः।

<sup>\*\*</sup> व्यान्त इति भव्दमिस्सभावादुक्तम्। भाषी कलानीत्वर्थः।

<sup>† ।</sup> चन याशब्दस्य नानृहत्तिः । चन प्रकरणवलात् भ इति स्यादेरैय, तेन चन्धस्य नित्यादौ न प्रसङ्कः । गौ.णेऽस्ययं, तेन स्वद्गानित्यादि । पाणिनिः ७।४।४८ । इति पकारान्ताः ।

दिन् दिगौ दिगः, दिग्धामित्यादि । एवं दृक् । \* विट् विषौ विषः, विड्धामित्यादि । † सजूः सजुषौ सजुषः, सजूर्धां सजूःष । एवं ग्रागीः । ‡

(२३४) श्रदसः सेरीः। असी श्रम् श्रम्, श्रम् श्रम् श्रम्, श्रम्य, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्य, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्य, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्, श्रम्य, श्रम्, श्रम्, श्रम्य, श्रम्य, श्रम्, श्रम्य, श्रम्य, श्रम्य, श्रम्य, श्रम्य, श्रम्य

इति इसन्तस्वीलिङ्गपादः।

#### ३य पाद:—इसन्त क्षीवलिङ्ग ग्रन्दः।

(१६८) स्त्रमोर्जुगिति। (१८३) स्नम् ध्वम् विश्विति दङ्। स्वनडुत् स्वनडुद्यो। (१८१) श्रनडुचतुरोऽणाणाविति। स्वन-डुांहि। पुनस्तदत्। श्रेषं पुंवत्। श चलारि। ॥ ब्रह्म।

इति श्वार्।नः: ।

<sup>🕆</sup> दिश्ह्य लिष्घातुभ्य: किपि दिक् हक् लिट्डति पदानि ।

<sup>‡</sup> नुश्वधातो. कियि जुट् प्रीति', सह जुपा वर्तते इति सजुष्-सिन्रश्च-,२२०,२२८, १०३) — सजूः। शा-कास धाती कियि भागीरिति. इसन्तलात् रङ्, विश्वी च वैधा' स्त्री लागीहिताशंसाहिदद्वयीरित्यसरसिंहेन दन्यान्तसध्य पठितलात् । इति पकारान्ताः।

<sup>§</sup> असी असू असू इत्यादिषु भदन्याच्दस्य सि-भादि-विभक्तिष् — (१३३,२४८,२१४, २३४,२०४,१४८,१६०,१५२,१३०,११३,२३५) इत्यादीनि स्वाणि यथायथं प्रवर्त्तन्ते ! इति सकारान्ताः ।

ण भोभनोऽनङ्गान् यिधान् गोष्ठे तत् स्वनडुन्। स्वनडुङ्भौ (१६१) = स्वनडुङी। स्वनडुङ्-जम् (१६२,१६३,१८१,३५,५०) = स्वनडुंहि। इति इतारान्ताः।

<sup>|</sup> चतुर्जम् (१६२,१८८,३४) -- चलारि । इति रकाराना ।

# २४२। स्तीवे नो लुब्बा घौ।

(क्रीवे ७), न: ६।, लुप्।१।, वा।१।, घो ७।)।

नपुंसके नस्य लुप् स्थात् वा धी परे। हे ब्रह्म हे ब्रह्मन्, ब्रह्मणी ब्रह्माणि। अहः अङ्गी अहनी अहानि, अहीस्थां। \*

किं के कानि। इदं इमे इमानि। पं

असक् असजी अस्चि, असानि अस्चि, असा अस्जा असभ्यां अस्पागामित्यादि । 🌣 जर्क जर्जी जन्जिं जर्जि ।

सुवल् सुवली सुवन्ति सुविला। (१६३) नुस्त्यमेस्यत्रं भसन्तरस्त्योराही तुवानुण्। उकारितो नुर्विन्दुमात्रस्य नास्या। §

<sup>\*</sup> (११८) नी लुप् फेऽधाविति धौ निवेधादप्राप्ते विभाषेयम्। लुप्करणात् तदा दिविधेर्निवेधे हे धनि इत्यादौ (१००) सधौं विति ग्रुणो न स्थात्। ''सम्बुदौ नपुंसकानः न वा वाच्यः'' इति वार्तिकम्। षड्न-सि (१४८,२२०,१०२) = श्रष्ठः। षड्न-प्रै (१६१ ११०) = श्रष्ठो, वा श्रष्ठभी। षड्न-सम् (१६२,१६४) = श्रष्ठानि । श्रष्ठन् स्याम् (२२०,१०२,६८) = श्रष्ठोध्यां। इति नकारान्ताः।

<sup>+</sup> किम्-सि (१६८) - किम् । किम्-सी (१३३,१६१,२३) = की। किम्-सि (१३३,१६१,१६३,१६३) = कानि । इट्स्थन्दः किम्-श्रन्दवत्, (२०४) दी म इति किश्चरः । इति सकारान्ताः ।

<sup>‡</sup> मस्रज्ञि (१६८,२११) = मस्रक् [रक्तम्] । मस्रज्ञस् (११६,१६२,१६४) = प्रसानि, यसादी निषेधात् (१६३) न तृष् । वा भसनादेशे मस्रज्ञस् (१६२,१६१ ५०,५१) = मस्रक्षि । सस्रा (११७) । भसन्यां (११८) ।

<sup>§</sup> जर्जधातीः सु-वल्गधातीय किपि जर्ज-सुवल्ग ग्रन्दी । जर्ज सि (१६८,१११ = जर्मा । कर्ज भी (१६१) = जर्मी । कर्ज म (१६२,१६३) = जर्न्ज, वा कर्जि इति नकारान्ताः । सुवल्ग-सि (१६८,१९३) = सुवल् । यंग्यते इत्यादी (८१०) जम नपत्रभेत्यादिना यथा नुरित्यनुद्धारागमः भियते, (१६३) नुष्यमेत्यच न तथा, भः छकारिता नु नेकारः न तु विन्दुमा उत्य श्रनुष्धारस्य संज्ञ यथे: । भनुस्वारागमधन्दे स्वारण्य इद्मुक्तम् । इति गकारान्ताः ।

त्यत्त्ये त्यानि । एवं यत् तत् एतत्।(२०८) अनूक्ती तु एनत्।
गवाक् गोची गवािच्च । तिर्थक् तिरची तिर्थचि । एवं परे।
यक्तत् यक्तती यकन्ति, यक्तानि यकन्ति, यकभ्यां यक्तद्वाः।
मित्यादि । एवं यक्तत्। ददत् ददती । %

# २४३। हे: शतनृत् भौ।

(दे: ५), भ्रतुः ६।, तुचा । १।, भ्री अ)।

है: परस्य गतुर्नुण्स्यात् वा भी परे।
ददन्ति ददति। एवं यचत्-जाग्रदादयः। तुदत्। पे

२८८ | स्रादीपो: | (भात था, ई ईपी: ०॥)।
स्रवर्णात् परस्य सतुर्वुण् स्थादा ईकारे ईपि च परे ।
तुदन्ती तुदती तुदन्ति । भात् भान्ती भाती भान्ति । 
ध्र

<sup>«</sup> एनदिति (१६८) भनी सुकि कते, (८३) सुकि न तर्नित निषेधेऽपि (२०८) इदैत्योरेनादेशिक्षानसाफल्यार्थम् एतभागस्य एनादेशः स्थादेन, (१३३) टिरलाभाने दकारस्थितः। (''एनदिति नपुंसकेकश्चने'' इति वार्त्तिकम्)। इति दकारान्ताः। गामस्रतीति किपि गवाक्। गवाच्-भौ (१६१,२२४) = गोची। सिद्धान्तकौसुद्याम् भन्धातीः गतिपूजनार्थभेदेन विविधानि पदानि प्रदर्शितानि, यथा—गवाक् गवाग्, गोभक् गोभग्, गोक् गोग्; गवाङ् गोभङ् गोङ; गोची, गवास्रौ गोभधी गोभी; गवास्ति गोभिस्र गोभिस्र गोभिक् गोभिक्ष गोभिस्र गोभिस्र गोभिक्ष गोभिस्र गोभिक्ष गोभिस्र गोभिक्ष गोभिस्र गोभिक्ष गोभिक्ष गोभिक्ष गोभिक्ष गोभिस्र गोभिक्ष ग

<sup>† (</sup>१८२) ब्रिट्च इति वैकिंधेधादमाप्ते विभाषेयम् । दहत्-जस् (१६२,२४३) == ददन्ति, वा ददति । तुदधातो: श्रतरि तुदत् । पाणिनि: ७।१।७६।

<sup>‡</sup> ईप: प्रथम्य इषात् ई इति (१६१) कीवादी इत्यनेन मादिएस ईकारस ग्रहणं,

**२८५ । अप्यनी नित्यं।** (अप्यनः ४।, नित्यं १)। अपीयनस्य परस्य मतुनित्यं नुण् स्थात् ई ईपीः परयीः। पचन्ती पचन्ति । दीव्यत् दीव्यन्ती दीव्यन्ति । \*

स्वप् स्वपी। (१६४) नसब्महनोऽधो र्घः । स्वाम्पि, स्वपा। (२४१) भ्यपो दङ्। स्वद्धिः । 🕆

(२२०) सषिति रङ्। धनुः धनुषी धनूषि। एवं इति:।
पयः पयसी पयांसि, पयसा पयोभ्यां। अदः असू असूनि।
दी प्रीवत्। क्ष

ुद्रति इसन्त क्षीवलिङ्गपादः।

तेन तुरत र इंदुद्दतीय निष्यादी न प्रस्कः । भी विभन्नी तुर्ती तृदती दित भनेन वा तुष्। जिसि पूर्श्वेष (१६३) निष्यम् । भाषाती. भ्रष्टप्रथये भात् । एवं या, वा, स्ना, श्रा, द्रा, पा, रा, ला. ख्या, मा, प्ता, धातभ्यः भ्रष्टप्रथये ६ पम् । क्रादिराकाः लोपेऽपि स्थानि च्लात् क्रीणनी क्रीणिती क्रियादि । लुनतीस्थन तु प्रथमनाकार लुकि कते तुम् न भवति इति गीथीचन्द्रः । भन स्क्षत्रप्रययशापि वानुष् वक्तर्यं, तेन यास्यती यास्यती भविष्यनी भविष्यती इत्यादि । पाणिनिः ७।१। ८०।

धातोर्विहतात् पपः यमय परस्य वर्धः, गच्छती गमयनी पुत्रकास्यनी जानोधनी इत्यादयः। मालिशाचरनी मालानी, वीणेवाचरनी वीणानी इत्यपि दुर्गासंहः। विच्छथातीः (६३०) विच्छा मृतिपणी वाय इति चायपचे ग्रापि विच्छायनी इति नित्यं, विक्तापचे तुद्दिलात् में (२४४) विच्छनी विच्छती इति । कृष्यं नीति धातृपागयणे, तइ इतामस्यातमिति गीयीचन्द्रः। पाणिनिः ०।१।८१ इति तकागनाः।

<sup>†</sup> श्रीभना चापीय प्रसस्ति तत्स्वप्, (४०४) नार्चीयां स्वतिरित्यादिना समा-सान्तिनिषेषः । स्वप्-जर्स् (१६२,१६३,१६४,५४१) = स्वान्यि । इति प्रकाशन्ताः ।

<sup>‡</sup> धनधातोकम् धतु:। इधातोरिम् इति:। पत्र इति (१६८०) सेर्लुकि. (८३) लुकिन तत्रेति निवेधात् (१८५०) न दौर्धः। एवम् घटः इत्यवापि (२१४) द:सीन स्थात्। अमृतिभक्तौ च (२०४) दो मीन स्थात्। इति सकारान्ताः।

#### ४र्थः पादः—-म्रव्यय-ग्रब्दः ।

# २४६ । व्यास्त्रक्तः । (व्यात् ४।, लुक् ।१।, तीः ६।)।

व्यात् परस्याः तीर्जुक् स्थात्। स्वः प्रातः, चवा हा है उचैः उचकैः धिक् धिक्तित्, प्रपरा, हरिव्रत कला। \*

#### २४७। उदः सः खास्तकोः।

(उद: ५ा, सः ६ा, स्थासाभी: ६॥) ।

उदः परवीरनयीः सस्य लुक् स्थात्। ज्यानं उत्तमाः। 🌵

अध्ययानां लिङ्गकार्याभावात् पूंलिङ। दियादेष्वतृक्वा पृथ्यगुपन्यामः क्षतः । तथाच — सद्दर्शं विष् लिङ्गेषु सर्व्वासुच विभक्तिषु, वचनेषुच सञ्जेषु यद्ग व्येति तदव्यय- मिति प्राचः । अलिङानामव्ययानां विशेषण्यात् न नपुंसकत्मेव सामान्यतानपुंसक- मिति नचनात् यथा शीभनं प्रातिगित । पाचिनिः २।४।८२।

विभक्ते ज्वरणात विभक्तिनिमित्तकावाये न छात्, तेन यः नम इत्यादी से जुंकि (१८५) भलसीऽघोरित दीवाँ न स्थात्। विसमं सु विराममाधिय स्थादेव। एवं, खलु नतु इत्यादी (१२२) ग्राधिं भिस्यादिना गुणी न स्थात्। भ्रम्ययात् विभक्ष्यपत्तिः प्रयोजनन्तु पदलं, तेन छद्गक्ति छत्याज्ञतीत्यादी तकारस्य १५८,५१) दकार-नकारी स्थाताम। एवं, विभक्तिजुक्यि विभक्ष्ययं विद्यमानलात स्वगंक्कित स्वः पततीत्थादी स्वगंस्य कामातादि प्रतीतिः स्थादेव। गौन्छेत् न विभक्तिजीपः, तंन प्राप्तं स्वः यैसी प्राप्तस्यः इति । अव (१४) संज्ञाम्बोक-चत्र्विधाव्यथानां क्रमेणीदाइग्णं दर्णयति स्वः क्रयादि। छच्कैः धिकत् (२०८) टेः पूर्वे अक् . व्यकस्य दय। इरिरिव इरिवत्, च्यत्ययान्तः। क्रधातोः क्राच् क्रवा इति। भत्र पाणिनिना "तद्वित्यास्वेविभित्तः" (१।१।६८) इति स्वेण तस्यसासान्तपदानामि भव्ययत्वं स्वीक्रतम्।

† पाणिनिः प्ाध ६१। भन कः स्थाता कः सम्भः इत्यादी विधर्भस्य वा लीपी वक्तव्यः । यथा कस्थाता कसाभः इत्यादि । "खस्था भविन मिय जीवित घार्णराष्ट्राः" इति विणीसंद्वारे । "खर्परे क्रिर वा विधर्मसीपी वक्तव्यः" इति वार्तिकम् ; "वा शरि खर्परे" इति पद्मनाभः ; "कादियुक्ते अषसे लुग्वा" इति क्रमदीवरः ; "श्रपसेष्य-घोषपरेषु विसर्ज्ञांनीयस्य" इति श्रीपतिदक्तस्य ।

### २८८ । वातोऽवाष्यो:।

(वा ।१।, भतः ६।, भवाष्यीः ६॥)।

त्रवाप्योरकारस्य तुक् स्थात् वा । वगाइः त्रवगाइः, पिधानं त्रपिधानम् । अ

इति व्यपादः।

#### द्रति इसन्ताध्यायः।

<sup>\*</sup> भवायो विंकल्पेन भकारलीपस्य इह सामान्यती विधानं केवित्तु वतरित वती पं वतंसः वगाइः, पिनञ्चति पिनतः पिदधाति पिधानं केवलसेतानि पदानि विकल्पेन भवन्तीति वदन्ति । भव भपेक्पसर्गस्यैव ग्रहणम् । "विष्ट भागुरिरक्षीपमवायोक्ष्य सर्गयोः" इति भागुरिमतम् ; "भपेरक्षुन्धादी वा'' इति कमदीश्वरः ; "भवस्य।याज्ञुव कविदिति वक्तव्यम्" इति गीयी चन्द्रः ; "धाञनद्वयीरपेक्षसर्गस्यादैः", "भवस्य तंसे' इति च शीपतिदत्तः ।

#### प्रचलिताव्ययग्रद्संग्रहः।

	শ্ব	चनार <u>ा</u>	ব্যতিরেকে। মধ্যে।
<b>4</b>	•	अन्तरेष	বিনা। মধ্যে।
•	অভাব, ভেদ, অপ্রাশস্ত্য, ঈষৎ, সাদৃশু, বিরোধ#।	भन्यत्	অম্বপ্রকাব।
श्रुक स्थात्	স্বৰ্ণ, বাণুভ, বিজ্ঞাবন্ধ। অকারণ, হঠাৎ।	<b>भन्यतरे</b> शुस्	হুয়ের এক দিনে।
जगाना <i>न्</i> <b>जगत</b> स	প্রথমে। সন্মুখে।	भग्यतस्	অন্তত্ত। অন্য হইতে।
प्रधीस्	সংখাধন—পাপিন্।	भग्यत्र	অন্ত স্থানে। বিনা।
च दुः च दुः	मत्यायम् । भूनः।	चर्चथा	অভ্যপ্রকার।
पविरात्	भोष्ठ ।	चन्यदा	অন্ত সময়ে।
अच्छ अच्छ	"ব' আভিমুখ্য।	अभातरेद्युम, अ	विद्युम्, अधरेद्युम्,
श्वसा	শীদ্র। যথার্থ।	चपरेद्युस्	
श्रहष्ट	উচ্চ শক্ষা	व्यपि	সমূচ্চয়। প্রশ্ন। সন্তা-
<b>प्रतस्</b>	অভএব।		वना । निम्हा । मङ्गा
भति	श्रक्षं। नुड्यन्।	श्र भितस्	সর্ববি দিকে। উভয়
ऋतीव	অতিশয়, অধিক।	1	দিকে। অভিমুখে।
<b>%</b>	वरे, वरे शान।		সাকল্য'। শীঘ্ৰতা।
चथ, अथो	•	अभी चणम्	পুনঃ পুনঃ।
,	আরম্ভ। সাকল্য।	<b>प</b> सा	সহিত। সমীপা
<b>भय</b> ितम्	আর কি, ইা।	अभुव	পরলোকে।
भद्रा `	সত্য, যথার্থ।	श्रम्	সম্বোধন। প্রশ্ন। অনুনয়।
ষ্বয	আজি, একণে।	प्रये	ওহো, শ্বরণ। সম্বোধন।
अधरात्, अ	धरंग नीटि।	चरे, चरेरे	मस्योधन ।
	स्तान नीरह।	अर्थ्वाक्,अर्थ्वाच्	পূর্বের, পশ্চাং। বক্র।
अधुना	हेमानीः ।	त्रलम्	ব্যৰ্থ। সমৰ্থ।ভূষণ।
भनु	পশ্চাং। সাদৃশ্য।		•পর্য্যাপ্তি। বারণ।
<b>प</b> नुपदम्	ञन छत्।	श्रवश्यम्	নিশ্চয়।
<b>प</b> नतस्	(শংষ, न्।नकः।	श्रवाक्	দক্ষিণ দিক্,দেশ,কাল।
<b>प</b> नार्	मस्या,त्मस्या अञ्चःकत्रन ।	व्यस्कृत्	পूनः পूनः।

অথের মধ্যে যে বংলে বিশেষ্য বিশেষণাদি শব্দ ব্যবহৃত হইল, সেই সেই পলে তথাচক ব্রিতে ছইবে।

<b>प्र</b> श्तम्	অদর্শন, নাশ।	उत्तरतम्, उत्तर	োদ, ভদাইৰ উত্তৰে।
प्रस्ति	থাকা।	<b>उ</b> त्तरेद्युस्	পর দিনে।
त्रसु	অস্যাপূর্বাক স্বীকার।	<b>उदक्</b>	উত্তর দিক্,দেশ,কাল
घहइ, यहहा	অদ্ভুত,আহা।থেদ,উহু।	उपजीषम्, उपयीषम् जानन्तः।	
<b>श्र</b> हे	मस्त्राधन ।	<b>उ</b> पांग्र	निर्जन ।
श्रहो	আশ্চর্য্য।	<b>उभ</b> यतस्	উভয় দিকে।
ऋडी वत	করুণা, আহা।	उभयद्यम्, उभ	येद्युम् উভয় দিনে।
<b>प</b> क्राय	শীঘ্র।	<b>उम्</b>	ক্রোধ। প্রতিজ্ঞা।
•	ग	उररी, उरी, ह	उदरी স্বীকার।
স্থা	স্মরণ, ও-ও।	<del>उ</del> षा	নিশা-শেষ।
<b>पा</b> ङ्	সীমা। ব্যাপ্তি। ঈষঁৎ।	•	জ
<b>अ</b> ।म्	স্বীকার।	ज	ছঃখ।
<b>भा</b> :	বির <b>ক্তি,</b> কোপ। পীড়া।	<b>ज</b> म्	গৰ্ব্ব। ক্ৰোধ । প্ৰশ্ন।
<b>ञारात्</b>	দূর। সমীপা।	कररी, करी,	<b>कवरी श्रीकां</b> त्र। वि <mark>खां</mark> त्र
चाविस्	প্রাকাশ্য।		<b></b>
षाही, पाही	<b>ब</b> त् मत्मर। अम्।	<b>~</b> ≎	<b>1</b> ट বিনা।
	•	ऋते	1941 1
	द्		
ę	<b>ছ</b> থেদ। কোপ।		ए
<b>द्र</b> इतरेयुम्	-1	Ų	<b>ए</b> স্থরণ। সংখাধন।
	থেদ। কোপ।	ए एकडा	
द्रतरेद्युस्	্থেদ। কোপ। অন্ত দিনে।	ए	স্থারণ। সংস্থাধন। এক সময়ে। এক্ষণে।
इतरेयुम् इति	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেতু।	ए एकडा	শ্বরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক্ষণে। অবধারণ।
द्रतरेयुस् द्रति द्रतिष्ठ	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইছেত্। পরম্পরা।	ए एकदा एतर्हि	শ্বরণ। সংখাধন। এক সময়ে। একণে। অবধারণ। এইপ্রকার। সংঘতি।
इतरेग्रुस् इति इतिह इतिह	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার।	ए एकटा एतर्हि एव एवम्	ন্মরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক্ষণে। অবধারণ। এইপ্রকার। সম্মতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।
इतरेग्रुम् इति इति इतिह इत्यम् इदानीम्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইছেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এক্ষপে।	ए एकटा एतर्हि एव एवम्	শ্বরণ। সংখাধন। এক সময়ে। একণে। অবধারণ। এইপ্রকার। সংঘতি।
इतरेगुम् इति इति इतिह इत्यम् इदानीम् इष	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এইপ্রকার। এম্পনা। সদৃশ।বাক্যালস্কার।	ए एकटा एतर्हि एव एवभ्	শ্বরণ। সংখ্যধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একণে। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।
इतरे ग्रुम् इति इति इ इत्यम् इटानीम् इष इस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এইপ্রকার। এফণে। সদৃশ।বাক্যালক্ষার। থেদ। বিশ্বয়।	ए एकटा एतर्हि एव एदभ्	শ্বরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক্ষণে। অবধারণ। এইপ্রকার ৷ সম্মতি। সাদৃশ্য ৷ অবধারণ।  থী
इतरेगुम् इति इति इतिह इत्यम् इदानीम् इष	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইছেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এফগো। সদৃশ।বাক্যালম্কার। থেদ। বিশ্বয়। ই	ए एकदा एतर्हि एव ए <b>वम्</b> ऐ	শ্বরণ। সংখ্যধন। এক সময়ে। একপে। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।
दतरेगुम् इति इति इ दिस् देखम् इदानीम् इष इस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এফণে। সদৃশ।বাক্যালঙ্কার। থেদ। বিশ্বয়। ই অন্ত।	ए एकदा एतर्हि एव ए <b>वम्</b> ऐ	শ্বরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একণে। অবধারণ। এইপ্রকার । সম্মতি। সাদৃশ্য । অবধারণ।
इतरे ग्रुम् इति इति इ इत्यम् इटानीम् इष इस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইছেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এফপে। সদৃশ। বাক্যালঙ্কার। থেদ। বিশ্বয়। ই অয়। ব	ए एकदा एतर्हि एव ए <b>वम्</b> ऐ	শ্বরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। একপে। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।  ই  শ্বরণ। সম্বোধন। বর্ত্তমান বৎসর।  সা সম্বোধন। শ্বরণ। সম্বোধন।
इतरे ग्रुम् इति इति इत्यम् इतामीम् इस इस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এফপো সদৃশ।বাক্যালন্ধার। থেদ। বিশ্বয়। ই অন্ত। বিত্তর্ক। পাদপূরণ। ক্রোধাক্তি।	ए एकटा एतर्हि एव एवम् ऐ ऐपमस्	শ্বরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একণে। অবধারণ। এইপ্রকার । সম্মতি। সাদৃশ্য । অবধারণ।
इतरेगुम् इति इतिइ इत्यम् इदानीम् इष इस् ईषत् उ	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই। শেষ। এইছেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এফণে। সদৃশ। বাক্যালম্বার। থেদ। বিশ্বয়। ই অয়। বত্রক। পাদপূরণ। কোধোক্তি। ইউচ্চ। অবিক।	ए एकटा एतर्डि एव एदम् ऐ ऐवमस् चो भो	শ্বরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একণে। অবধারণ। এইপ্রকার। সম্মতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।  ই  শ্বরণ। সম্বোধন। বর্ত্তমান বৎসর।  মী সম্বোধন। শ্বরণ। প্রণবা সম্মতি।
इतरेगुम् इति इतिइ इत्यम् इदानीम् इष इस् इपत् उच्चतेस्, उपैस् उत्त	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এফপো সদৃশ।বাক্যালন্ধার। থেদ। বিশ্বয়। ই অন্ত। বিত্তর্ক। পাদপূরণ। ক্রোধাক্তি।	ए एकटा एतर्डि एव एदम् ऐ ऐवमस् चो भो	শ্বরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। একপে। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।  ই  শ্বরণ। সম্বোধন। বর্ত্তমান বৎসর।  সা সম্বোধন। শ্বরণ। সম্বোধন।

	_	2	C 1C
· C	का And Andread Andrea	चतुर्द्धा	চারিপ্রকার। চারিবার।
कचित्	প্রশ্ন। ইচ্ছাপ্রকাশ।	चिरम, चिरेण, चिराय, चिररावाय,	
क्रणे	তৃপ্তার্থ।	चिरात्,	चिरस, विरे हित्रकान,
कति	কত, কিয়ৎ।		বহুকাল।
कथम्	কিরপে।	चेत्	यिन ।
	तदाचन, कदाचित्, कर्डि,	,	<b>ज</b>
वाहि		नातु	কদাচিৎ, কখন।
कम्	জল। মন্তক।	जीषम	নীরব। হংখ।
कामम्	যথেষ্ট। অকামান্ত্ৰ্যতি।		₹
कारिका	মৰ্য্যাদা। যত্ন। পীড়া।	भटिति	नीय।
कि <del>घ</del>	কিছু, আরো।	गाटाव	
	किश्वित् অञ्च, কিয়দংশ। '		<b>त</b>
किन्तु	পরন্ত ।	तत्	তন্নিমিত্ত, তবে।
<b>किन्नु</b>	সংশয়।	ततस्	। তদনস্তর। তরিমিত্ত।
किम्	কুৎসিত। প্রশ্ন। বিতর্ক।	तच	তথায়।
किसुत	অতিশয়। বিকল্প।	तथा	সেইপ্রকার। সাদৃশ্য।
किसु, किं	<b>खित</b> ् ৰিতৰ্ক, সম্ভাবনা।	तदा, तदानी	দ তৎকালে, তথন।
किंवा	অথবা।	तावत्	পৰিমাণ। সাকল্য।
किल	নিশ্চয়। অলীক। সম্ভাবনা।		পর্য্যন্ত। অবধারণ।
	প্রসিদ্ধি। ঐতিহ্।		বাক্যালস্কার।
	অনুনয়। হেতু।	तिरस्	বক্র। অপ্রকাশ।
<b>\$</b> T	কুৎসিত। পাপ। ঈষং।		অন্তর্ধান।
কুল ভ্কি টে	হতু। কোথাহইতে। কোথায়	तिर्थक्	বক্ত। পার্শ্ব।
कुच	কোথায়।	র	কিন্তু। নিশ্চয়। ভেদ।
জুचित्	কোন স্থলে।		পাদপূবণ।
के भाके भि	চুলাচুলি।		<b>ाम (भोनी, श्रिव ।</b>
क	কোথায়।	वेधा, वैधम्	তিনপ্রকার।
क्षचन, क्रा			द
	• स्व	दिविषतस, द	লি <b>আন, হবি</b> খীন ডানি
खबु	নিশ্চয়। বাক্যালঙ্কার।	~	<b>फि</b> रक ।
	নিষেধ। প্রশ্ন। অমুনয়।	दखादिख	नार्भानार्थि ।
	₹	दिवा	<b>फि</b> र्न ।
₹	সমূত্র্য। সমাহার। অস্বাচয়।	दिध्या	ভাগ্যক্রমে। হর্ষ।
	ইতরেতর। পাদপূরণ।	दुष्टु	কু, নিন্দিত।
		2.2	A) 1 11 1 - 1

दीषा	तकनी ।	परमम्	সন্মতি।
द्राक्	শীঘ।	परवस्,पर:वस्	্আগামি তৃতীয় দিনে।
दिधा, देधा	দ্বিবার। হৃ <b>ইপ্রকা</b> র।	पराक्	বক্ত, কুটিল।
	ষ	परारि	পূর্ববিতর বংসর।
धिक	निका। निर्रं मन।	परितस्	চারি দিকে।
।वभ्		परुत्	পূৰ্ব্ব বৎসর।
	म	परैद्यकि, परैद्युर	র্পরদিনে।
न, नञ्	ना, निरवध। त	पश्चात्	পরে। পশ্চিমে।
नक्तम्	রাত্রি।	पुन:पु <b>नर्</b>	বারংবার ।
ननु	প্রশ্ন। অনুজ্ঞা। অনুনয়।	पुनप्	অপ্রথম,ভূয়ঃ। ভেদ।
	আমন্ত্রণ। অবধারণ।	पुरतस्	मन्नूरथ ।
	বিরোধোক্তি। '	पुरंस्, पुरसात्	পূর্ব দিকে। প্রথমে।
नमस्	নমস্কাব, প্রণাম।	`	সন্মুখে। অতীত কালে।
नवतिधा	নব্ব ইপ্রকার।	पुरा	চিরাতীত। ভবিষ্যৎ।
<b>न</b> वतिश् <b>स</b> ्	নব্বু ইবার।		निकर्छ।
नवधाः	নয়প্ৰকার। নয়বার।	पूर्वेष	পূর্ব্ব দিকে। পূর্ব্বে।
	'ন্যুনয়টী।	पू वें यस	शृर्ख फिरन ।
नहिं, ना	निरम्ध ।	पृथक	ভিন্ন। নীচ।
नाना	বহুবিধ। উভয়। বিনা।	पृष्ठनसः	পশ্চাৎভাগে।
नाम	'সন্তাবনা। প্রসিদ্ধি।	प्रकासम्	যথেষ্ট। স্বেচ্ছাক্রমে।
	ক্রোধ। স্বীকার।	प्रगे	প্রাতঃকালে।
	निका।	प्रति	প্রতিনিধি। প্রত্যেক।
नासि	নাই, নহে।	प्रत्यक	পশ্চিম দিক্, দেশ,
निक्षाः	निकटि ।		কাল। পশ্চাৎ।
नितराम्	অবশ্ব। অত্যন্ত।	प्रत्य इ.म्.	প্রতিদিন।
नित्यदा	मर्का।	प्रत्युत	বৈপরীত্য ।
भीचवैस्,भीचै	`	प्रसन्ध	হঠাৎ। বলপূর্বাক।
<b>T</b>	প্রশ্ন বিকল্প।	प्राक्	शृंदा निक्, तिम, कान।
न्नम्	নিশ্চয়। বিতর্ক।	प्रातर्	প্রভাত।
<b>નો</b>	निरुष्ध, ना ।	प्रादुस्	প্রাকাশ্য। নাম।
ৰ ভ্	নীচ, ঘুণ্য।	प्राध्वस्	আমুক্ল্য।
	प	प्रायश्वस्	বাছল্যরূপে।
पञ्चधा	পাঁচপ্রকার। পাঁচবার।	प्रायस्	বাহুল্য।
परस्	(कवल। अनुअत्।	प्राक्ते	প্রভাতে।
<b>बरव्</b>	८४४४३ चन्छ।	-11 87	-1 A(0 A B

प्रेत्य	পরলোকে।	यया	যেপ্রকার। সত্য।
फ			অনতিক্রম । সাদৃশ্য ।
फट्	মন্ত্রাংশবিশেষ। অন্ত্-		ायथम्, यथाईम्, यथावत्,
	কার শব্দ।	यथास्वम्	
_		यथामिति	শক্ত্যস্পারে।
व		, यथं फ़ितन्	ইচ্ছাতুরপ।
बलव <b>त्</b>	অতিশয়।	यदा	যথন। যেহেতু।
<b>बह्य स</b> ्	বাহুল্যরূপে।	यदि'	সম্ভাবনা। পক্ষান্তরে।
મ	•	यावत्	পরিমাণ। সাকল্য।
भगीस्	Western metani		পর্য্যন্ত । অবধারণ।
•	সংখ্যান—ভগবন্।	युग्प इ	এককালে।
भ्यम् भृरि	ৰাহুল্য। বারংবার।	र	
भूरिश्रम्	ৰহু। ৰহুবার।	रहम्	. निर्कान ।
मूर्यम् संग्रम्	ৰছবার। অতিশয়। বহুবাব।	140	, रगणप्य र
प्टर्स् मी, भीष्	আওলগ়। ৰছবাব। সংসাধন—ভবন্।	व	
गा, भार्	ગહવાયન— હવન્ 1	ধ	माष्ट्रभा । ,
म		वत्	म <b>ृ</b> क्षा ∙
मं चु	শীঘ্ৰ। অতিশয়।	वत	থেদ। হর্ষাবিশায়।
<b>म</b> त्	भनीय ।		অনুকম্পা। আমন্ত্র।
<b>म</b> नस <sub>्</sub>	তৃপ্তার্থ।	वरम्	উৎকৃষ্ট।
<b>मनाक्</b>	ঈষৎ। আস্তে আস্ত্রে।	वषट्, वौषट्	হবিদান-মন্ত্র।
मन	মুমতা, মায়া।	वहिंस्	বাহির।
मा, माधा	निन्ता। निष्यम, ना।	वा	বিকল। বিতর্ক।
<b>मिथ</b> च्	পরস্পর। নির্জনে।		সমুচ্চয়। উপমা।
मिष्या, सुधा	রুথা। নিক্ষল।		বাক্যপূরণ।
मुष्टामुष्टि, मुष्टीमु	ছি কীলাকীলি।	विधिवत्	यथाविषि ।
सुइस्	বারংবার ।	विना	ব্যতিরেকে।
<b>स्</b> षा	मिथा।	विश्वक्,विश्वक	স্ক্রত। স্ক্রাপী।
य		<b>ब</b> था	নিরর্থক। অবিধি।
यम्	যেহেতু। যেমন।	वै	পাদপূরণ।
	যাহাতে।	ম	
यतस्	যেহেতু। যথন।	મ	
`	(यमन।	<b>ज्ञ</b> नेस्	ক্রমশঃ, অরে অরে।
ग्रन	(यथारन ।	भयत्	নিরগুর। সহিত।

शान्तम्	নিবৃত্ত, বারিত ।	<b>ग</b> न्ध	অতিশয় স্থন্দর।
<b>य</b> त्	শ্ৰদা।	स्थाने	উচিত।
<b>श्वस</b> ्	আগামি দিনে।	स्म	অতীত। পাদপূরণ।
`	स	खतम्	নিজ হইতে।
संवत्	বৎসর। বিক্রমান্দ।	स्बंधा	পিতৃদান-মন্ত্রবিশেষ।
सक्तत्	একবার। সহিত।	स्वयम्	নিজে।
सना	সহিত।	खर	স্বর্গ। প্রলোক।
सदा, सना	मर्का। ,	खसि	শুভ। আশীর্কাদ।
<b>स</b> यस्	তৎক্ষণে, তথনি।	c	পুণ্য।
सपदि	শীঘ্ৰ, তৎক্ষণে।	खाहा	হবিদান-মন্ত্রবিশেষ।
समन्ततस्, स	मनात् प्रकल पिरक।	खित्	প্রশ্ন। বিতর্ক, সংশয়।
समम्	সহিত। যুগপং।	, `	
समया	मगीरर्थ। मरधा।	ह	
समुपयोषम्	ভাগ্যবশুতঃ। হর্ষ।		
सम्प्रति	এক্ষণে।	£	সম্বোধন। পাদপূরণ।
सम्यक्	সত্য। স্থন্দর। সম্দয়।	हंडी	मृत्याथन ।
सर्वतस्	• मकल मिटक ।	इञ्जे	ভৃত্যার প্রতি সম্বোধন।
सर्वन	সকল স্থানে।	इर्ग्ड	নীচার প্রতি সম্বোধন।
सर्खया	সকলপ্রকারে।	<b>इ</b> ल	থেদ। হৰ্ষ। অন্ত্ৰুকম্পা।
सर्वदा	• সকল সময়ে।		বাক্যারম্ভ।
सहसा	হঠাৎ, অতর্কিত ।	इसा	স্থীব প্রতি সম্বোধন।
साकम	সহিত ।	हा	বিষাদ। শোক। পীড়া।
साचात्	প্রতাক। তুগা।	हि	হেতু। অবধারণ।
साचि	বক্র, <b>ন</b> ত।		পাদপূরণ।
सामि	অর্দ। নিশিত।	हिरक्	ভিন্ন। মধ্যে। নিকটে।
साम्प्रतम्	সম্প্রতি। উচিত।	हिहि, श्री ही	আহলাদ। হাস্য।
सायम	সন্ধ্যাকাল।	ही	বিশ্বয়।
सार्डम	সহিত।	इन, इन	স্বীকার। পরিপ্রশ্ন।
सुचिर <b>म्</b>	ৰহুক ল।		বিতক ।
सुतराम्	অত্যন্ত। অবশ্য।	हे, हेहे, है, ह	ী সম্বোধন।
	অগত্যা।	•ह्यस्	গত দিনে।

प्र-परादयी विश्वतिकपसर्गाचाव्ययशब्दाः ।—१०म-सूत्रं द्रष्टव्यम् । एतक्रिता भपि अव्ययशब्दाः वहतः सन्ति ।

#### **४**ष:। खाद्यन्ताध्याय:।

---

१म पादः-स्त्रीत्यः।

#### २८१। स्तियामत त्राप्।

(स्तियाम् ७।, चतः ५।, चाप्।१।)।

स्त्रीलिक्ने खितादकारान्तादाप् स्थात्। मेथा, सर्वा। अ

२५०। इसादा। (इसात् ४।, वा ११)।

स्त्रियां इसन्तादाप् स्थादा। वाचा वाक्, दिया दिक्। 🕆

<sup>\*</sup> लिङ्गमाधनयोग्यानिप भावादीन् काठिन्यभयात् स्त्रीलिङ्गपादे नीका पृथक् वदित स्त्रियामित्यादि । लिङ्गामां स्त्रोलियववायां स्वायुत्पत्तेः प्रागेव यथासभ्यवमाबादयः स्यः, त्यदादेनु स्यायुत्पत्तेः पश्चात् (१३३) टेर्त्ते भदत्तलादाप् स्यादिति, भतपव त्यदादेप्रेर्त्ते सत्याप् (१५०,२४०) इति स्त्रयमुक्तम् । भावीपीः पकारन् (१४८) भावीव्भसादित्यादिषु गीपा-भीपा-भधनीनामप्राप्तये विशेषणार्थः । जपन्नु पकारः (४६३)
भपत्यते चेवूप् इत्यादौ इस्तादेः प्राप्तये विशेषणार्थः । मेधा सेधधातोः (११५४)
भप्रत्यये, सेध इति नित्यस्त्रीलिङ्गादाप् । पाचिकस्त्रीलिङ्गन्तु—सर्व्या । पाणिनः ४।१।४।
स्वा भासकतपूर्वा इति वार्त्तिकम् ।

<sup>†</sup> शिष्टमथोगातुसारियैव स्थादा न तु सर्व्यक्षात् इसनादिति। यथा— च्रधा वाचा दिशा कुचा विपाशा च कजा कना । गिरोचिष्ठा देवितशा, पचे चुष्-वाग्-दिगादयः॥ (भागृदिमतम्)। "गिरादेवों" इति प्रश्नाभः। "चिष्ठादेखिकें" इति कमदीवरः। पवं वाश्रव्दस्य व्यवस्थ्या, दिपात् चिपात् चतुष्पादित्यादौ न स्थात्, दिपदा चिपदा चतुष्पादित्यादौ न स्थात्, दिपदा चिपदा चतुष्पाद स्थक् इत्यादौ तु स्थात् (पाणिनिः ४।१।४)। स्विचिकं, दिपदी स्त्री।

#### २५१। मनो डाप्। <sup>(सनः ५१, डाव्।१।)</sup>।

स्त्रियां मनन्तात् डाप् स्थाद्याः सीमे सीमानी, पामे पामानी।

२५२। हेऽन:। (हे धा, अनः ५।)।

स्त्रियां हे स्थितादनन्तात् छाष् स्यादा। बहुयज्वे बहुयज्वानी। 🕆

२५३। ईप् चाम्वस्यात् (ईप्।रा, च।रा, भन्वस्यात् ४।)।

मस्यवस्थान्यपरानन्तात् हे स्थितात् स्तियामीप् डाप् च स्थादा। बहुराज्ञी बहुराजे वहुराजानी । क्ष

मन्भागानात् उाप् वा स्थात्, उपावितो । सीमे इति सिधातीः, इमिन, पामे इति पाधातो मैनि, सीमन् पामन् इति जिङ्गम्, आस्यां उपि श्रीविभक्तौ सीमे पामे इति । पवे सीमानौ पामानौ । सीममीमे स्विथाम्मे, पामपामा विचर्तिका (रीग-विश्वः) इत्यमरः । सिविभक्तौ विकल्पपचे रूपमास्यात् नीदाह्वतम् । एवं द्दातीति सामा, अवापि दामे दानानौ इति । श्रिपच सुधस्ये सुधर्माणौ, बहुपिटमे बहुपिटमानौ । 'मन इति नेदं प्रत्थयग्रुणं किन्तु वर्णयहण्, क्षेन श्रतिमहिमानौ श्रतिमिक्मे" इति गीयीचन्द्रः । पाणिनः ४।१११ — १३ ।

<sup>†</sup> समंयोग-वसंयोग-परिश्वताननादेवायं विधि:, तदन्यत्र परस्वेश वाधितत्वात् । बद्धवो यज्ञानी यथीः समयोक्षे सभे इति विग्रहे बहुयज्ञे, पर्चे (१६४) बहुयज्ञानी । एवं बहुबह्माणी, सुधर्मो सुधर्माणी इत्यादि । पाणिनि: ४।१।१२ ।

<sup>‡</sup> मच वच व्य स्व तत् स्व वेति स्वसः, न स्वसः चन्यसः चान्यस्व ति । सव इत्य नेन सवान उचिते । व्याख्याया मस्यवस्थान्यपरान्न सिति, मस्य वस्य तो ताम्यानयः सस्यवस्थान्यः, तद्यात् परीऽन् सस्यवस्थान्यपरान्, सीऽने यस्य तस्यादिति विय इः । सस्योग-वसंयोगाभित्रवर्णात् परी योऽन् केत्नादीप् चन्नारात् डाप् च स्थादा । वहराद्यौ इति वहवी राजानी ययोः समयोनी इति विय हे वहराजन्यस्थात् चनि हेपि (११०,४६) वहराजी-सन्दात् चो । पत्तं डापि (१२६) वहराजा-सन्दात् चौ (१४८,२३) = वहराजी । उसयोग्प्रातिपत्ते नान्तस्थितः । एवं डष्टपूचीगा डष्टपूपे डष्टपूषाणी, सुदास्यौ सुदाम सुदासानौ स्त्रियौ इत्यादि । (२०६) न मन्संस्थीयनेन ईप्निषेधन्तु वहन्नीहरन्यन् चेत्रः। तत्र वहयुवा पूः डष्टमचवा स्त्री इत्युस्यव ईप् न स्थात् डाप् तु स्थादिति चक्रस्यम् । पाणिनः ४।१।२८०, ६।४।१२०।

#### २५४। काष्यनागीरकेऽदिदयत्ततित्तपादेः।

(कापि ७), श्रनाभीरके ७), श्रत्।१।, श्रत्।१।, श्रयत्तिपादीः ६।) ।

श्रामीरर्धाकवर्जे कापि परे चकार दकारः स्थात्, न तु यत्-तत-चिपारे: ।

सर्व्विकाकारिका। ग्रागीरकेतुजीवका। यदादेसु यका सका, चिपक्का धुवका चटका। 🕸

२५५। देवसूतपुत्रवृत्रदारखन्नाजभस्तुाधृत्य-. (द्वेत्र—धुत्यक्ती: ६॥, वा ११।)। क्यो वी।

दादे र्धुत्यवर्जयोः कययोद्याकार दकारः स्थादा काणि।

<sup>\*</sup> कयुक्त चाप् काप् तिस्मिन्। चाशिषि चकः चाशीरकः, नास्ति चाशीरको यत्र मीऽनाशीरकसासिन् कापीत्यस्य विशेषणम् । याद्यग्जातीयस्य विश्रतिषेधी विधिरपि साहग्नातीयस्थेति न्यायात् पाथीरकवर्जनात् क्रतककारस्य ग्रहणं न तु प्रकृतेः, तेन तक-धाती: (१९३) पवादिबादनि तका, शक्षाती: शका दूखादी न इकार: स्यात्। मधेय-मित्यचतुमामिकादिति चादिभवात् क्रतककार एव । (मामकमस्कर्योद्दपसंख्यानमिति यार्तिकम् ।) सर्व्विकीति सर्व्वा इत्यस्य (२०८०) टे: पूर्वे अक्ष्रक्⇔ सर्वका इति कापि परे सर्वस्य पकार इकारः। कारिकेति कारीति या इति वाक्ये क्रधातीः (८८०) णकप्रत्यये चापि कारका इति कापि चकार इकार:। जीवकेति जीवतादिति वार्क्ये (१००६) अर्थिषि चक्, पश्चात स्त्रियां कीवका इति, आर्थीरथैभिन्ने जीविका इत्येव । यका मका इतियासा इति पददयस्य (२०८) टी: पूर्वे श्रकि रूपम्। "चिपका घुक्ताचैक करका धारकंष्टका । एड़काचटकाद्याच पितृणामष्टका भवैत् । उपयकाधित्यका च तारका भट्टगंशयोः। वर्णका वस्त्रभंदं स्थान श्कृती वात् ्द्रष्टकेति द्रवधाती:, अप्टर्कति यश्रधातीरीयादिकसक: ''द्रष्यशिश्यां तकन्''। चप्टका-तारका-वर्षकानाम् चन्यस्मित्रर्थे पप्टिकत्यादयः। चप्टिका खारी । वर्णिका नटाटौनाम् । दीपदगायाम् वर्त्तिक्षेव । पाणिनि: ७।३।४४,४५, वार्त्तिकानि घ। ''स चाप्सप: परी यदिन भवति'' इति किं, ''बहुपरिवाजका नगरी'' इत्यत्र ''बह्रवः परित्राज्ञका ऋस्यामिति विग्यन्त सुबन्ताद्यं टाप्'' इति पाणिनिटीका ।

दिने दके, चटकिका चटकका, मार्यिका मार्यका। धुत्ययोस्य—नायिका क्षत्यिका। \*

#### २५६। वाचापोऽनुत्तापुंस्त्रस्य।

(वा ।१।, चात् ।१।, च ।१।, चापः ६।, चनुक्तपुंस्कस्य ६।)।

श्रापः स्थाने जातोऽकार द्रदीच स्थादा कापि न तूक्तपुंस्कस्य। गङ्गिका गङ्गाका गङ्गका। उक्तपुंस्कस्य तु श्रुस्त्रिका। १

इति दिश्रन्दस्य टेर्न्त रूपम् । एष इति एतदः सौ रूपम् । त्यः ति नच प्रत्ययस्य संज्ञा किना (५२५) त्यंत्रयंनन क्रतस्य त्यप्रत्ययस्य ग्रहणामः। पथ त्यस धत्यौ, न धत्यौ प्रधियो । काच यच का प्रधृत्ययो:का प्रधृत्यका । इ.स. एषस सृतस पुत्रस विन्दारस स्त्र ज्ञास अजय भस्ता च एपां भसाहार: हैपस्तप्ववन्दारस्त्रजाजभस्तं, तच अधुत्यका च तौ तथी: । द्वादीनां नवानां चकारस्य धकारः स्थादा कापि, धातोः ककारयकारौ हिला त्यस्वरूपस्य चयकारं हिला अन्योयौ ककान्यकारी तयीरकारस्य च इकारः स्थादा कापीत्यर्थ:। दिक्ते दर्क दिन दिशब्दात् श्री कर्ते (१३३) टेग्ले, (२०८) टे: पूर्वे पिक, (२४८) भाषि दका दति स्थिते अनेन वा अकाग्स्य द:। एवं एषिका एषका, सूतिका मृतका, पुनिकापुनका, बन्दारिका बन्दारका दलादि । भस्तिका भस्तर्काति, भस्ता चर्माप्रसीविका इत्यमर:। भस्ता एव (४३३) स्वार्थे ककारे. (४३०) इस्ते, भस्त्रका इति स्थिते चनेन वादकारः । भस्त दुलकारान्त इति वार्धिकम् । एप्रांगौगर्लऽपि वहस्तिका बहुखका इत्यादि। चटिककीति चटधाती गैणाटिकी ऽक:, तत: चटकामञ्दात (४३३) खार्चे जाकारादि। आर्थिकीत ऋधाता: (६०१) व्यक्ति आर्थामध्यामध्यान खार्थे जाका-रादि। उभयत्र वा धकारस्य इ: । नाथिकीति नीधाती: (१६०) सनप्रत्यये नायक-शब्दात आप, धात्सम्बन्धियकारत्वादस्याप्राप्ती पूर्व्यंग नित्यम इकार: । धाती: कका-रस्य यथा— चकथानी: णकप्रत्ययं चाकिर्कात्याद पूर्व्वेण नित्यम्। कृत्यिर्कति क्राभवा इति वाक्ये (५२५) क्रत्या, तत. स्वार्थे (४३३) काकारे कत्यका इति स्थिते पूर्वेण मिल-मिकार:। एवं तत्रत्यिका दाचिणात्यिका भमात्यिका प्रत्यादि। त्यस्वरूपनिषेधात् भारु थिका भारुयका इति । पाणिणि: ७। ३।४६,४७, वार्त्तिकचा

<sup>†</sup> अ.क. एमान् र्यन्यत् उक्तपृंस्तं, न उक्तपृंस्त् मन्क्रतपृंस्तं (लिङ्गं) तस्य। भाषः स्थानं (४३०) केऽकः स्व इत्यमिन जाती यीऽकारसास्य स्थाने इतार भाकारय स्थात् वाकापि, पचऽकार्यस्थातः, न तु उक्तपृंस्त्रशब्दस्य। गङ्गाएव इति वाक्ये (४३३,४३०)

#### २५७। द्विनुञ्चाचनदादेरीए।

(ष-ट-ज-स-इत् न् ऋ ऋञ् वाह नदादे: ५।, ईप् ११) ।

षकारित-ष्टकारित उकारित च्टकारितो नान्ता-दृदन्ता-दृञ्जो वाही नदादेश ईप स्थात स्तियाम । \*•

#### २५८। ययोलीपोऽयुक्तौ पौ।

(ययी: ६॥, लीप: १।, अ-मु-त्त्ती ७।, पी ०।)।

गङ्गका इति स्थिते घनेन अकारस्य इकारः घाकारय, पचे घकारस्थितिः । एवं दुर्गिका दुर्गका दुर्गका इत्यादि । ग्रिक्षिकिति पूर्विष नित्यमिक्त/रः । ग्रमः पुमान् इति च भवतीत्ययसुक्तपुंस्कः ग्र≂ः । पाणिनिः ७.३,४८,४८ ।

\* ष च ट च च स स्य हर. ते इती येषां ते हित:, तेच नव स्य प्रञ्च च बाह् च नदादिश्चेति तकात्। नकार-स्वतारयोः केवलयोरमभवात् तदन्तर्यार्यहणम्। ध्वन् स स्वस् इत्यादौ धातां ककारितस् नाव ग्रहणं ''धातोक्षितः प्रतिषेधः'' इति वार्त्तिकात्। प्रज्ञ पकारेत्-टकारेत्-नदादीनां सुख्यानामव ग्रहणं, तेन बहुवैणवा, वहुं मूषणा, बहुनदा इत्यादौ न स्थात्। प्रत्येषां गौणानामित् तेन अतिविद्षौ, अतिपचन्ती, अतिदिख्नी, अतिकाती, प्रतिमतीची, प्रतिभाल्यूही इत्यादि स्थादेव। नदादिय (गौरादिगित प्राणिनः)—

नदी सद खर बौरी गौर चल भप प्रवाः। दर कन्दर तर्कारा-सक्षणः कप-काकिणौ। वदरामलकौ स्द-इरीतक-विभीतकाः। गवी देवी धातकय मातामइ-पितामधौ। द्रोणः स्यूणादकौ पाच-कोवातक-पुटामटः। [अयःस्यूण इति पाणिनिः, चायस्यूण इति कमदीवरः।] कवाउमावटो नाटो नटो भीट-पटौ बदः। वराटः श्र्जुलः स्वः श्रवी मण्डल-कुण्डलौ। सोइताण्डाऽय कुषाण्ड मठ प्रक्ल पिप्पलाः।

कदल: कन्दल: पिण्ड-काकली ग्रह्मको हप:।

दवर्णावर्णयोलीप: स्यात् श्रयावत्ती पी परे। घ-वैषावी वराकी। \*

## २५६। काङ्यची चानात्यपत्यव्यायस्य । (का-छा-चो श, च ।१।, अनाति श, भपत्यचास ६।)।

अपलार्थ-णास्य लीप: स्यात् अयावती पी परे, का-छा-ची च, गार्गी। 🕆 नलाकारे।

> षन्डुत् सूर्यं-कोली च पिणक्षातस-वेतसाः। मालतः ग्रम-सूर्यो च विल्व मख्डप कंकयाः । मडुली मह-मण्डौ च सुषव: पृथिव: पृथु: । च्छ्यो मनुष्यी मतस्य य सुकायी गव्यी हयः। महत् बहत् तरः एकः एतदाचा नदादयः ।'प्रः। (एतद्विद्वा छानेकेऽपि मौरादौ पठिता: पुन:।)

पुचग्रब्दोऽपि नदादाविति क्रमदीश्वरः । पाणिनिः ४।१।५,६,१५,४१,६१,"अञ्चेषीपः संख्यान"मिति वार्त्तिकञ्च।

मच ८३ मंख्यको नदादिः पठितः, मंचिप्तसारे तु ११० संख्यकः। पाणिनीयी भौरादिस् १५० संख्यकः।

- इस भव ली थी, तथी: ययी:। युच किय युक्ती, न विद्येते युक्ती यच पौ सी-ऽयुक्तिस्तिसन्। अत्र अयुद्ध दित समासे एलें।प दित कर्ते एकारलीपश्रमी जायते त्रत: ययोरिति । (४००) प्रेष्ठ: श्रेष्ठ इत्यादी प्रश्न इत्याद्यादेशस्य त्रकारान्तनिहेंगान् न श्रकारलीप: । पारस्त्रीर्णय इत्यच तु (४१६) दिपदबिद्विधानात् न र्द्रकारलीप:। अधुक्तौ किं ऊर्णायु: रामेण इत्यादि। घ--इति षकारेत्प्रव्यस्य उदाहरणज्ञापकम्। वैचावी, विचार्देवता यस्याः इत्यर्थे विचाशब्दात् (४३३) विकारमञ्जेति चाप्रत्यये वैचाव श्रव्हादीप्। वराकी च बधातीः (११११) भिजनत्वेति वाकप्रत्यये वराकश्रव्हादीप्। पाणिनि: ६।४।१४८।
- † काथ उपय चित्रेति काद्यचित्रतिधान्। न चात् चनात् तिधान्। चपत्ये गार चपत्यच्यातस्य। चकारात् युक्तिवर्जे पो च। गार्गी इति गर्गस्य स्व्यपस्यम् इति चप-व्यार्थे (४१५) भीत्र कर्ते, नार्ग्यशब्दात् (१५०) वकारेच्वादीपि, अर्नन पी परे चात्रलीप:।

#### २६०। सूर्यागस्त्रस्य तिष्यपुष्यस्य व्यात्रमतस्य-स्येयेपो भेष्यो ईपि यः।

(स्थांगस्यस्।, तिष्युष्यस् ६।, णामस्यस्य ६।, ईविपोः ७॥, भणे ७, ईपि ७।, यः ६।)ः।
एषां यस्य लोपः स्यात् ईयेपोः पर्योः, नचत्रणो ईपि च ।
सौरी त्रागस्ती चातुरी । कः

ट—नयी भूषणी। उ—विदुषी श्रीमती भवती। (२४५) श्रप्यनो नित्यम्, ऋ—पचन्ती । (२४४) श्रादीपीः, तुदन्ती तुदती, भान्ती भाती। न—दण्डिनी श्रव्यंती राज्ञी श्रनी, मघवती मघोनी। ऋ—कर्नी क्रोष्ट्री। श्रन्च-प्रतीची प्रत्यञ्ची, तिरश्ची तिर्थ्यची, श्रमुमुद्देची श्रदमुद्देची, उदीची। वाह—भारौही, खेतौही खेतवाही, श्राब्यूही। नदी मस्तीं गौरी। १

को — गार्ग्यमिक्कति (८४३) गार्गीयति । छो — गार्ग्य इवाचरति (८४८) गार्गायते । चौ — चगार्ग्यो गार्ग्यो भवति (४८५) गार्गीभवति । विभक्तौ — गार्गे इत्यादि । चाकारे तु गार्ग्याययः । चपत्य चार्ग्यति किं, सुभगस्य भावः सौभार्ग्यं, सौभाग्यमिक्कति (८४३) सौभार्ग्योयति । पाणिनः ६ । ४।१५० — १५२ ।

<sup>\*</sup> म्र्यांगस्ययो शेये द्रैपि च परे, तिष्यपुष्ययो नैवना वैविहिते ची परे, चार-मस्ययोौपि परे यस लोप: सादिल्थं:। चार इति चपला थे भिन्नस्य यह चं, पूर्व्व मृत्रे तस्य यह चात् । सौरीति मूर्यं स्यो (४३३) ची सौर्यं इति स्थिते (२५०) वित्तादीपि चनेन यलोप:। एवं चानसी। चातुरीति चतुरस्य भावः इत्ययें (४३३) ची प्रचित्त स्थिते (२५०) देपि चनेन यलोप:, एवन् चौचिती मैनी सामगी। पाणिनि: ६।४।१४८, वार्तंकन्यस्य।

<sup>†</sup> ट इति टकारेन् उदाक्रियते इत्यर्थः। चयी चयाणां पूरणीलर्थे (४६१) जि-मन्दान् चयट्। सूचतेऽनर्थति सूचधातीः करणवाचे (११३४) चनट्, टिच्लादीप्।

#### २६१। गाच्यसादनो रङीप्वा तु हे।

(णच्खसात् थ्रा, वन: थ्रा, रङ् ।११, ईप् ।११, वा ।११, तु ।११, हे ०।)।

णादच: खसाच विहितात् वन ईप् स्थात्, वनी रङ् च स्तियां, हे तु वा !

श्रवावरी धीवरी हरिट्रखरी, बहुधीवरी बहुधीवा। \*

च इति चकारित चदान्नियते इत्यर्थः। विद्वीति विद्धातीः भतः, (११०३) भतस्याने क्कसः, विद्यसभव्दात् उदिक्लादीपि, (२२८) वस्थाने उ:। श्रीमतीति श्रीरस्यस्या इति वाक्ये (४४१) योगव्दात् नतः, उदिलादीप्। भवतीति भाषातीरीणादिकी डवतः,भवत् भ्रब्दादीप । फ्राइति ऋकारित छदाहरणम् । पचन्तीति पचधातो: (११००) भ्रतः। तुद्धातो: भाधातोय प्रत्यस्यये विकल्पेन नृण्। न दृति नान्तर्स्यर्थः। दण्डिनौति दर्छोऽत्यस्या इति वाक्यं (४४४) इन्, अर्ज्ञतौति अर्ज्ञन्भव्दात् नान्तलादीपि (१८५) तुङ्। राजन्शव्दाटीपि (११०,४६) राजीति। सनीति यन्सव्दादीपि (१८४) वस्य छ:। सद्यवनभ्रव्हादोपि (१८१) तुडी विकल्पः, विकल्पपचे (१८४) वस्य छ:। म्ह इति म्हदन स्रोत्यर्थः। कर्नोति करोतियासा इति क्रधातीः (६६०) हन्, तती क्टदन्तलादीप। क्रीप्टीति क्रीष्ट्रणव्दस्य स्त्रियां (१३६) तुन: स्थाने तन, तत: ईप। अनच इति अनचधाती: किवन्तस्यैत्यर्थ. । प्रतिपूर्वकात् अन्चधाती: (१०३२) किपि (५६७) नलोप, प्रत्यच्श्रव्दात् र्द्गीय (२२४) प्रतीची । पूजार्थे (५६८) नलीपासावी प्रत्यचग्रन्दादीपि प्रत्यची। तिर्य्यचग्रन्दादीपि (२२५) तिरयी। तिर्यचग्रन्दादीपि तियंशी। असुसुयच अदमुयच उटच मब्देश्य ईपि (२२५) असुसुईची अदसुईची छदीची। वाह दति विणना-वहधातीरित्यथै:। भारं वहतीति (१०२८) विण्-प्रत्यये भारवाहग्रन्दादीपि (१९८) वा स्थाने भी। श्वेतवाहग्रन्दादीपि, वा भी। शालिवाइश्रव्हादीपि(१८०)वा-स्थाने ऊ:। नदादेवटाहरणमाइ नदी, सस्प्रायव्हादीपि, (२६०) भनेन यलीप:। (१६३) जातेरत इत्यत्र यकारीङवर्जनादपाधी नदादिलादीप। गौरमञ्चादीपि गौरीति।

अ णानात् प्रजनात् खमनाच धातोः परः (१०६२) चामुसि कित्यनेन विदिती यो वन्प्रत्ययत्तमात् ईप्स्थात् स्त्रियाम्, ईपि सित वनी रङ्च स्थात्, बहुनी ही त २ डीपी वाल इत्ययः । प्रवावशीति श्रीणधातोः (१०६२) वनिषि, (१०६१) णकारस्य भाकारे (३५) भोकारस्य अवि घवावन् इति स्थिते भनेन ईप्ष्रङ्च । धीवशीते

#### २६२। सञ्चोध:संख्यादिदामवयोऽर्घचायनाहे।

(स् ।१।, नः १।, च ।१।, कधम्-मङ्गादि-दाम वयोऽर्यं हायनात् ५।, हे ७।) ।

जधमः सङ्गापूर्वात् दानी वयोऽर्थ-हायनाच ईप् स्थात् हे, सस्य च नः स्थात्। पीनीभ्री हिदानी हिहायनी।

२६३। जातरतो ऽस्ती-युङ्-सत्काग्डप्राक्-प्रान्तग्रतैकादिपुष्प-संभस्ताजिनैकग्रणिग्डादिफल-नादिमुलात्। (जाते: प्रा, प्रका: प्रा, प्रस्ती – म्लात् प्रा)।

धाधातीः (१०३२) कानिय (६१२) जी, घीवन दलसान ईप्रङ्च, एवं विभावशैल्यादि। हारेह्यरौति इरि पग्रति या इति वाक्ये हिन्द्य घातोः कानिय हिर्ह्यन,
विनियो वक्षागस्य दल्यलेन कम्प्यत्वाभावात् (१५८) न षङ्। तस्रादीप्रङ्च।
वहधीवरौति वहवी घीवानः (कैवनोः) यस्यां नद्यानिति वहवीही ईप्रङ्च, ईपीऽप्रातिपचे रङीऽप्यभायः, एक्योगनिर्द्दिष्टानां सह वा प्रश्नतः सह वा निश्नतिर्वित्वस्यात्। पचे—बहुधीवन-सि (१४८,१६४,११८) वहुधीवा। णम्लस्ति क्यायात्। पचे—बहुधीवन-सि (१४८,१६४,११८)

\* वयः अर्था यस्य भ वयोऽर्थः भवाभी हायनंत्रित वयाऽर्थहायनः, दाम च वयीऽर्थहायनस्र तौ, सङ्गा भादियंगांभी सङ्गादी, ता च तौ दामवयोऽर्थहायनौ चिति
सङ्गादिदामवयोऽर्थहायनौ, जधम च सङ्गादिदामवयोऽर्थहायनो चिति तसात्। जधमः
सङ्गापूर्व्वदानः सङ्गापूर्व्ववयोऽर्थहायनास स्त्रियामीप्, बहुवाहौ सस्य नः स्यादिति
सभवादूधस एव। हे इत्यस्य पुनस्पादानं परमूच निश्च्ययं । पीनीधिति पीनम् जधा
यस्याः सा गौः, पीनीधसभव्दादीप् सस्य च नः। इ दामनी (रज्यौ) यस्याः सा
दिहासी गौः। असङ्गादेसु सुदामे सुदामानौ इति (२५३) पूर्व्येण वा स्थात्।
दौ हायनौ वया यस्याः सा विहायनौ, दिवभी गौः। अमङ्गादिसु गतदायना ।
वयोऽर्थः तिं, विहायना शाला। वयसु प्राणिनी गतपरमायः । हे इति विं- जभीऽतिकात्ना भव्यूधाः। पाणिनिः ५।४।१३१, ४।१०२५ —२०। अव "संख्याव्ययादं द्वीप्"
इति पाणिनिम्नेष जधसम्बद्धांऽपि संख्यादि व्यादिय यद्याते, तेन हु।भी, अस्थूभा,
दिविधीधी द्वि। अत्रव्व वीपदेवन सामान्यत् एव जधस्यस्यः प्रथमं प्रथुकः।

जातिवाचिनोऽकारान्तात् स्तियामीप् स्यात् न तु स्तीयुङादेः।
मृगी हंसी ग्रीतपाकी। स्तीयुङादेसु—मिचका वैग्या सत्पृष्पा संफला श्रमूला। जातेः किं—मन्दा। \*

> श्राक्ततिग्रहणा जातिर्लिङ्गानाञ्चन सर्वभाक्। सक्तदाख्यातनिर्गाह्यागीत्रञ्च चरणैः सह॥ १०

स्ती निलस्त्रीलिङ:। य उङ्यस्य स युङ्। सच का ख्रच प्राक्च प्राक्य शसच एक शते भादयी यस्य तत् सत्काण्डप्राक्षप्रान्तशतैकादि, तच तत् पुण्यचेति तत्। सम च भस्ताच अजिनञ्च एकथ भणय पिल्ड य ति अ। दयी यस्य तत् संभस्ताजिनैकभण-पिण्डादि, तच तत् फलचेति तत्। नञ्चादिर्यस तत् नादि नादि च तत् मूल-र्चिति नादिमुलम्। ततः स्त्रो च युङ् च सत्काख्याकप्रान्तप्रतैकादिपुणयः संभस्नाजिनैक-श्रणपिग्डादिभागञ्च नादिसूलचेति । पथात् नञ्चमासे चस्त्रीयुङसतकाण्डपाक्प्रानः श्रतैकादिपुष्यसंभस्ताजिनैकाशणिष्डादिफलनादिमूलं तथात्। संगजातिः स्त्री सगौ, इसजाति: स्वौ इंसी। शौते पाकी यस्या: सा भोतपाकी, श्रीविधिविभेषः। नाति-वाचिनी सुख्यादेव दूप , तेन वहस्था भूमि: श्रवाह्मणा पुरीत्यादी न स्थात्। श्रीतपाकी-त्यादिष्तु गौणदशायामेव जातित्वम्, अतीऽत जातेर्मुख्यत्वमेव। नित्यस्तीलिङ्गानु मिविका बलाका इत्यादि । युङ्कु वैद्या चित्रया । ऋष्यहयगवयादीनां युङ्खादपाधी गहादी पाठादीप । पुष्पात्तु सत्पुष्पा काग्छपुष्पा द्रश्यादि । एथ्यः किं, श्रह्मपुष्पी चौरपुषी। अज्ञातीन् बहुपृषालता। फलान् संफलाभस्ताफला, भस्त्र इत्यकारानीsfu वार्श्विके, तेन भस्त्रफला। एवं विफला श्वेतफला। एथ्यः किं, रक्तफली। **भ**जातीस बहुफला। नादिमुलात् अमुला। नञ्पूर्व्वनिषेघात् भतम् खीत्यादि भवति। भजातील् दृढ्मूला। मन्दा इति मन्दगुष्पथृकास्त्री जातिलाभावात्र ईप्। पाणिनिः ४।१।६३,६४, वार्त्तिकदयञ्च। अञ सूर्व कलापसुपद्ममतानुभारेण प्राक्षुणा द्रथेव धतं बीपदेवेन ; वार्चिको तु भामान्यत: अच् (भन्च इति क्रमदीश्वरः) इत्युक्तम् ; चन्तर्व प्राकृपृष्पा प्रत्यकृपृष्पा इति भट्टीजिदीचितः, ऋवाक्पृष्पा इत्यपि क्रमदीयरः । संभस्त्रत्यत्र च एकाग्रन्द: भिषक इव प्रतीयते ''संभस्त्राजिनगणिपिक्छेभ्य: फलान् प्रतिषेधी वक्तव्यः" इति वार्तिके श्रदृष्टलात्, सुपग्ने संचिप्तसारे कातलपरिश्रिष्टे च **घ**नुक्लेखात ।

<sup>†</sup> भय जातिवाचकग्रन्दज्ञापनार्थे जातिलचणमाह भाक्तियइणियादि — भाक्तियते व्यञ्गतं चनयेति भाक्तितित्वयवसंस्थानं, भाक्तवा ग्रह्णं जानं यस्याः सा भाक्तियहणा जातिः, जातिराक्तियहणा भाक्तिव्यक्या भवतीत्यपैः। अथना

#### गार्गी कठी कीयमी। %

'राश्चति इनेनेति यहणं करणसामान्यसिङ्गलाङ्गास्य स्त्रीलिङ्गलम'. 'शात्वतिर्यहणं यस्याः मा प्राकृतिबहुता संस्थानव्यकेति यावतं द्रांत गीथीचन्द्रः, 'पनुगतसंस्थानव्यक्रेत्यवंः' इति विज्ञान भी भदी। तेन नगुष्यगीस्म श्रीनाम श्राक्तत्वा व्यव्यमाना मनष्यत-गोलासगलाईसलाटि जीति:। एवं लाचणे सति, ब्राह्मणचित्रयेशसग्रद्राणां प्रयक भाकतेरभावात ब्राह्मण्यादे जीतिल नाथातिभिति लचणान्तरमाह लिङ्गानामिति. ग्राचलिंडार्गन सर्वभाका—सर्वाणि लिङ्गानिन सजति. साचजातिस्तिर्थः । तेन बाह्मणादीनां दिनिङ्गमात्रभातिलोन बाह्मणलादिनांतिरिति। एवस मति इंस हष्टवतीऽपि अज्ञातइंसस्य जनस्य तटाक्रथी इंसल व्यक्तितं न शकाते असी इंग्लब्ध न नातित्वमिति प्रथमल्याणदीषः, एवं दवदत्तादि-संज्ञाणन्दस्थापि सर्व-लिडाभाजित्वेन जातित्वापत्तेर्दितीयल्चणदीष्य, दृति दीषश्यमपाकर्तं ह्योर्लचणयी-विशेषणमाइ सक्तदिति । सक्तदेववारम आख्यातेन छपदेशेन निर्योक्ता निश्योन यहीत् शक्या जातिरित्यर्थ. । तेन प्राक ईंडभी इंस इत्युपदेशं, पश्चात इसं हटवतसदाक्रत्या इंसं व्यक्षितं भक्तत एवेति प्रथमल जगस्य न दोष:, एवं देवदत्ताहिसंग्रामन्दस्य एक-व्यक्तावपर्दशे व्यक्तयन्तरे ज्ञानाभावात न जातिलमिति दितीयलचणस्वापि न दीषः। ''ण्तेन जातीक लांनिस लांप्रस्थेकं परिसमाधिश स्वरूपंदर्शितवान'' इति गोथी चन्दः। एवं सुचगुर्वेऽपि सति. गार्ग्यादीनां कठादीनाञ्च चाक्रतिव्यङ्गालाभावात् सर्व्यालङ्ग भाजित्साच न जातित्वसायातसतः पारिभाषिकं जातिलवणमाइ गीवचेति प्रव-पौचादिकमपत्थं गीमं, चरणं वेदैकदंशः, एतद्भयञ्च जातिरित्यर्थः। ''श्रपत्यप्रत्ययानः भारवाध्येत्रवाची च शब्दी जातिकार्ये सभत इत्यर्थः'' इति सिद्धालकीमुदी। भव नातेर्भवणान्तराणि प्रदर्श्यने — "अमर्विलिङ्खे सति एकस्यां व्यक्तौ कथनाहाकान्तरे कथनं विनापि सगदा जाति:" इति सिद्धान्तको मदी। "था द्रव्यस्थीनपत्तः ब्रन्नपद्यते नाभे च नम्यति युगपदम्पैः सम्बन्धते न सर्व्वालङ्गं सजते बह्ननर्थातुपैति सा जाति-रिमिधीयते। यदुर्ता, प्रादुर्भाविविनामास्यां सत्त्वस्य युगपटगुर्थै:। ऋसर्व्वतिङ्गां बहर्था तां जाति कवयी विदु: ॥ एतियान दर्भने युवलकुमारलब्बलादीनामजातिलम्' इति क्रसटी श्रव∙ा

 गर्मस्यापत्यं स्ती इति वाक्ये (४१५) श्वाप्रत्यये गार्ग्यश्रक्टादनेन ईपि (२६०) यलीप:। युङ्क्तादीप निषेधेऽपि विश्रेषती विधानात् गार्ग्यादीनां न निषेध:। विस्तःत् पुर्वेष (२५०) ईपसमावनायामपि गाम्यांदीनां जातिसंजाफलन् - गार्गी भार्या यसाभी गागींभार्थ इत्यादी (३२८) पंतक्षावनिषेध: । गागीं चाभी भार्था चेति कर्माधारथे गार्ग्यभार्था इत्यादी तु (३५०) प्वद्वाव:, गार्गीलम् इत्यादी पुन: (३५०) पुंबहाव-गिषेधया कठशाखाध्ययनकत्तां कठः तस्य स्तियाम् भनेन ईपः, एवं कौयुमीत्यादि ।

#### २६४। गुणादोतोऽखन्खोङः।

(गुणात् ५।, वा ।१।, उत: ५।, घ-व्यक-स्योडः ५।)।

गुणवाचकादुकारान्तात् स्त्रियामीप् स्थादाः, न तु खराः स्थोङय।
सदी सदः। खकस्योङस्तु खकः पाण्डः। गुणात् किम्—
सत्त्वे निविमतेऽपैति प्रथम्जातिषु दृश्यते।
श्राधेयसाक्रियाजस्य सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः॥

धेन:। अ

\* स्य: संयांग छक् यस स स्थांक् खिक् स्थार्क् चेति खक्सीक्, न खक्सीक् प्रखक्सीक तस्तान । गुणवाभकादिति गुणं वक्षीत कर्त्तरि णकः । प्रभिदीपचारात् गृणविधिष्टद्रव्यवाचकादुकारानादित्यर्थः । भाईवगुणविधिष्टा स्त्री स्ट्डी,वा स्ट्डा एवं पद्वी पट्ठा, लच्ची लच्चा, गुव्वी गृकिरियादि । खक्शव्यस्य ग्रक्षगुणवाचकत्वात् प्राप्ती निषेषः । "खकः पतिवरा कन्या" इति भद्दीजिदीचितः । "खकः तीच्यः" इति गोयीचन्द्रः । 'गुणकाइ —

सत्त्वे इति । य: सत्त्वे द्रव्ये निविभते तदाययति, ऋषेति तस्रादपगच्छतीत्यर्थः । यया म्यामता भासादिफले निविधते पद्मात पक्षदभागं तसादपैति । एवं पृथग्कातिपु द्रज्यानारेषु दृष्यते चासादिवत कदल्यादिषु दृष्यते, संगुणः स्यादिल्यथः। "पृथगः लातिष दृश्यते नानाजातिष्यक्लोकाते इत्यर्थः।--तथाहि ग्यामता आसे त्यो गर्वि च दृश्यते, एतेन नातेर्गणलं निरस्त, अतः सत्ता द्रव्ये गुणे नर्माण च वर्त्तते नासी नातिर्देखादपैति ननान प्रमुखा विनाभपर्यातमाधारद्रव्यापरित्यागात् न च नाति:।--नहि गोलमक्त्रजाती दृष्यते नाष्यक्षलं गीजाती।'' इति गोयीचन्द्रः। एवंसित गमनाहिकर्माणी गुणलापत्तिः द्रव्ये प्रवेशनिर्गमयीगात् द्रव्यान्तरिषु च दर्शनात, श्रतश्राह अर्धियद्येति, यः पार्धियः उत्पादाः, पक्षियाजां न कियाजन्यत्रः, अनिल्यो निल्यसः भव-तीत्पर्थः, पक्कघटादिरक्रतागुण उत्पादाः पाकामादिमहत्त्वादिगुणी नित्य पति, कर्ति-पये गुणा अनित्याः कतिपये च नित्या इति तातपर्य्यम् । कर्म्मणसु मर्व्ववैवानित्यलमिति वित्रासः। "'खलादनीयी नित्यस्" इति तृतीयपादस्य पाठान्तरं विक्ति कमदीस्ररः। एक्खेत तर्हि द्रव्यमपि गुणोऽल्— अवयवि द्रव्यं हि आरमाकावयवे निविधते अवयवविनाशात्तवाहपैति च, द्रव्यानरिधु च एवं दृग्यते, द्रव्याणि च कतिचिदनिवानि नित्यानि च कतिचित् सन्ति, चत उक्तम् अभन्तः /कतिरिति, सन्तं प्रकृतिः खरूपं यस स सच्चप्रकृति , न सच्चप्रकृतिर्भच्चप्रकृति: द्रच्यभिन्न इत्यर्थः । धेनुरिति गुणन्वणायोगात् न ईप्। एतरगुणलवणकारिका तृ सिडालकौमुद्यां न दृश्यते, भाष्यशता एतसा श्रयाखानात्। पाणिनिः ४।१।४४, वात्तिंकश्च।

#### २६५। पाच्छोणादिखाङ्गेतोऽक्तर्वा।

(पाद-- खाङ्गेत: ५१, भन्ने: ५१, वा ११।)।

षादः स्रोगादेः खाङ्गादिकारान्ताच स्तियामीप् स्यादान तु केः। तिपदी विषात्, स्रोगी स्रोगा चण्डी चण्डा, विस्बोष्ठी विस्बोष्टा। \*

खाङ्गात् किम्—

खाङ्गं स्थादद्रवं मूर्त्तं प्राणिस्थमविकारजम्। दृष्टं तत्रातत्स्थमपि तदत्तादृशि च स्थितम्॥ क

<sup>•</sup> पाद च शीगादिय खाङ्गच इच तमात्। न ति: पितसस्या:। (३४०) सङ्गा-मुपमानादित्यनेनादिष्टात् पादः ग्रन्दात् शीषादेः स्वाङ्गवाचकात् ग्रन्दात् क्तिभिन्नेकारान्ताच स्तियामोप स्थादा इत्यर्थः । भाषादिशः—श्रीषः क्षपण-कल्याषौ पुराणः कसलस्रथा । विकटोदारचण्डाय साधारणविश्रद्धटी । सहायारालभरूका विश्रालादासया परे इति । भव भीषादिगणीन इकागलेन च पाणिनीशी बह्वादि: (४।२।४५) खच्यते, परन्तु तव महायसाधारणभव्दौ न दृश्येते, भाक्रतिगण।ऽयमिति लिखनात् तुभवस्थेव । कटि-शोषिप्रस्तिस्वाङ्गानामिकारान्तवेन प्राप्तः सुखनखादीनाञ्च स्त्रीलाभावात् स्वाङ्गिसह गौणर्भवेति, तेन विस्वीशी दीर्घनखीत्यादि। श्रतएव पाणिनौ उपसर्जनादिति (४।१।५४), मंचित्रमारे च अपधानार्थादिति, सुप्रश्ने अप्रधानादिति, कातन्त्रपरिभिष्टे च बहुत्री ही दति लिखनम्। चिपदीति चयः पादाः यस्याः इति बहुत्रीही (३४०) पादस्य पाद-त्रादंशे विपादशब्दादनेन दूपि, (२२३) पादः पदादेशः। भङाधारपात्री। पत्ते त्रिपात। श्रीणवर्णास्त्री श्रीणी, वाशीणा। चल्डी चल्डा इति भोगादिलात् वार्द्रप, पत्थनतकीपना स्त्रीत्यर्थः। विक्वेदव क्रोष्टौ यस्याः दति विस्वीष्ठी विस्वीष्ठास्त्री, स्वाङवाधकलात् वा द्वेष, अत्र स्वाङगढुपसर्जनाददन्तादिति मिडान्तकौ सुदी लिखनात शोभना शिखा सुश्रिखा दल्यत न ईप। पाणिनि: ४ १ ८ ४३,४५,५४, ''क्रांदिकारादिकानः'' इति यार्त्तिकञ्चा

<sup>†</sup> स्वाङ्गल चणमाइ — स्वाङ्गं स्वादिति। ऋद्रवंद्रविभन्नं, मुर्चे साकारं (काटिन्या-दिस्पर्भविश्वेषी म्किरिति गोयौचन्द्रः), प्राणिस्थं प्राणिनि स्थितं (सुखनासिकाभ्यां यो वायुः निष्कामति स्रप्राणः साऽस्थाक्षीति प्राच्यो तत्र यत् तिष्ठति तत् प्राणिस्थामिति सोथौचन्द्रः), भविकारजं घातुवैषस्थादिक पविकारात् न जातम् — एवभ्यतं यदक्त तत्

बहुखेदा द्रवलात्। सुन्नाना अमूर्त्तलात्। सुमुखा याला ग्रप्राणिस्थलात् । सुभोफा विकारजलात । 🐲 सुनेशी सुनेशा रथा, अप्राणिखस्यापि प्राणिनि दृष्टलात्। सुम्तनी सुम्तना प्रतिमा, प्राणिवत् प्राणिसदृशे खितलात् 🕆 राजी राजि:, क्रीसु बुद्धिः मृति:। 🕸

स्वाङं स्थादिल्ययः । यथा विम्बोधी विन्बीष्ठा। दितीयल वणमा इष्टरं तवातन्स्य-मपीति -तत्र प्राणिनि दृष्टम् चननरम् अतत्र्यम् अप्राणिस्थमपि चद्रवसूर्त्ताविकारजं यदल् तदपि स्वाइं स्वादिलर्थः। यथा सुकेशी सुकेशा रथा। ततीयं लचगमा ह— तदत्ताडग्रिचि श्रियतभिलि — तदत् प्राणिस्थवत्, ताडग्रि प्राचितुल्ये स्थितच अप्रव-मूर्तीविकारजं यत् तचापि खाङ्गं स्थादिव्यथं । यथा सुसनी सुमना प्रतिमा। जन-कारिकाया: पाठान्तरमपि टब्बर्ति यथा सिद्धानकौमुद्याम्—"च्रद्रवं सूर्तिमत्स्वाङं प्राणिस्थमविकांरजम्। अततस्यंतच दृष्टचतेन चेत्तत्तयायुतम्॥'' "तस्य चेत्तत तया युतम्' इति क्रमदी वरः।

- \* चद्रवाद्पिद-व्यावित्ताह—वहव: स्वेदा (घम्माः) यस्याः सा वहस्वेदा, स्वेदस्य द्रवलात् न स्वाङ्गलमित्यर्थः । सुषु ज्ञानं यस्याः सा सुज्ञाना, ज्ञानस्य ऋमूर्जलात । सुष्ठ मुखं यस्या: सा सुमुखा भावा, अत्र भावामुखस्य अप्राणिनि स्थितलात्। सुष्ठ शीफ: (शीथ:) यस्याः सा सुश्रीफा, श्रीफस्य विकारजलात्, न स्वाङ्गलिनिति सर्वेजान्वय ।
- † सुष्ठ केशीयस्थाः सासुकेशी सुकेशा ग्यादित दितीयलच्चीदादरकम् । सुष्ठ सनौ यस्याः सा सुननौ सुसना प्रतिमा इति वृतीयस्वक्षीदाइरणम् ।
- 🛊 राजी राजिरिति राजधातो: इप्रत्ययः, एवं गीगी श्रमी मणी वनी श्रेणी रजनी मावनीत्यादि, पचे गीणिरित्यादय:। यी: यी, लच्ची: लच्ची इति दुर्घटरचितक्रमदी-अरी। निषेधी यञ्जातीयसा विधिरपि तज्जातीयस्थिति न्यायात्, ऋवर्जनात् क्षदिः कारादेवायं विधि:, तेन सुगन्धि: युवजानिरित्यादी न स्थात्। उपसचिषात् कारिः (११५८), चकरणि: (११६०) चनीवनिरित्यादौ न स्थात्।

खाइत्वाचके विशेष:---

बष्टचां स्वाङानां मध्ये नासिकोदराभ्यामेव ईप्वा स्थात्। तुङ्गनासिकौ तुङ्ग बासिका, जीगोदरी चीगोदरा। आध्यां किं, प्रयुज्ञघना, चारवदना, दीर्घलीचना इत्यादि। पाणिनिः शश्रम्।

संबीगीङ्खाङ्गानां मध्ये जङ्गीष्ठकुरुक्षचंयङ्गाङ्गदलगामाकपुष्केथ एव द्रेष् वा

### २६६। धात् क्रीतात्। (धात् प्र., क्रीतात् प्रा)। धनेन क्रीयते सा—धनक्रीती। क्र

२६७। त्तादत्ये। (कात् पा. मन्ये ७)।

धादिलोव। अभीण लिप्यते सा—अभी लिप्ती। १

२६८। खाङ्गाडे। (खाङान् प्रा, के oi)।

स्वाङ्गात् परो हे स्थितो यः कास्त्रस्रांदीप् स्थात्। ग्रङ्गभित्री । \$

स्थात्। दीर्घनद्वी दीर्घनद्वा इत्थादि। एभ्यः किं, सुनेचा सुगुल्का इत्यादि। पाणिनिः शृश्यूषु, वार्तिकानि च।

प्रोही क्यलास्त्री निर्धं संज्ञासाम | प्रोही श्राफ्यी, क्यलास्त्री ऋरोधिविश्रेष: । ऋर कवर विष सणिस्य: पुच्छात निल्यम । श्रयुच्छील्यादि । वार्तिकम् ।

उपमानपूर्वात् पुच्छपचाभ्यां नित्यम् । अपुच्छी काकपची इत्यादिः । उपमानात् किं सितपना इंसीत्यादि । वार्त्तिकम् ।

क्षीड ख़र वाल ऋफ गृद भीष घोषा गल भग यौवादे ने ईप्। पाणिनि: ४।१।५६। सह विद्यमान नञ: परात खाङ्गात् न ईप्। सक्षेशा इत्यादि। पाणिनि: ४।१।५०। नख-मुखाभ्यां संज्ञायां न ईप्। श्पंणस्वा कालमुखा। पाणिनि: ४।१।५८। मन्वार्षे पाद इत्यस्नात् न ईप्। चतुष्णदा ऋक्। पाणिनि: ४।१।६।।

- क्ष करणपूर्व्वात् क्षीतादीप् स्थान स्त्रियाम् । स्थायुनपत्तेः प्रागेव समासे एतदि-धानं, ऋती धनेन क्षीयते स्प्रदृति वाक्यम् । धनेन क्षीता धनकीता इत्यत्र न स्थात् । धान् किं, राज्ञा क्षीयते स्प्रराजकीता इति । पाणिनिः ४।२।५०।
- † करणपूर्व्वात् क्रान्तादीप् स्थात् स्त्रियां करणस्य चन्पले सति । इडापि स्यायु-त्यत्ते: प्राक् समासः, चत भाड चर्भण लियर्तसंति वाक्यम् । चले किं, जलपूर्णा घटी, चन्दमानुलिप्ता चङ्गभैत्यादि । पार्णिनि: ४ । १ । ५१ १ ।
- ‡ पृथग्यीगात धादिति चलो इति चनातुवर्त्तते, कीवलं क्रादिकतुवर्त्तते । स्नाकः-वाचकक्रव्दात् परो वहुनोहिसमासे स्थितो यः क्रान्तशस्त्रसायादीप् स्थात् । शक्को (खलाटास्थि) भिन्नीयया इति शक्कभिन्नी । शक्को निधौ खलाटास्थ्रीत्यमरः । हे इति

#### २६८। वाच्छनाजाते:।

(वा । १।, भ चक द्वात् ५।, जाते: ५।)।

श्राच्छादनजातिवर्ज्ञात् जातिवाचिनः परात् हे स्थितात् क्रादीप् स्थादा।

दसुभचिती दसुभचिता। हनासुवस्त्रच्छता। अ

#### २७०। पत्रामपालकान्तात्।

(पत्राम् भ्, श्रपालकानात् ५।)।

पुंबाचकादपालकान्तादीष् स्थात् भार्य्यायाम् । गोपी । पालकान्तात्तु गोपालिका । 🕆

किं पाद्पतिता। उपमां व्यवधानेऽपि कि नित् स्थात्, यथा चौष्ठि विती। अत्र (पाणिनि: ६।२११७०) क्षत्रमित जात्य पिर्वस्थों न स्थादिति, यथा दन्त जाता, माम जाता, स्रवजाता, द्रव्यजाता, वह्नता, क्षत्रता, स्कता, कृष्डमिता, कृष्डमिता, कृष्डमिता, कृष्डमिता, कृष्डमिता, कृष्डमिता स्थादि। विवाह पाणिगृहोतो यथा सा पाणिग्टहोती प्रवी, चन्यत्र पाणिग्टहोता इति च वक्तव्यम्। पाणिनि: ४।१।४२, नानिकदथस्य ।

कह्नं वस्त्रमाति, नालि कन्नं यत्र मीऽक्तन्नस्त्रमात्। इत्तर्भनितो यया सा इत्तरभितिती इत्तरभितितो यया सा इत्तरभितिती इत्तरभितितो यया सा वस्त्रक्षन्ना, एवं वसनप्राप्ता इत्यादी न स्थात्, र्तन इक्तन्ना इत्यादि । पाणिनिः ४।१।५३, वार्तिकस्, ६।२।१०० च।

<sup>†</sup> पालकोऽली यस्य स पालकालः, पथाव्रज्योगे तसातः। पालकालवर्णनात् अकारालादेवायं विधिरिति । किय पालकप्रदर्णनेवेष्टसिद्धौ भन्तग्रहणं—पालकपर्यंनस्य ज्येष्ठादिगणस्य (कातलपरिश्रिष्टीश्लिखितस्य) प्राप्तायंत्रम् । तेन, ज्येष्ठ किनिष्ठ सध्यसंत्रम् सोपालक पद्मपालक वर्जात् प्रवाचकाटकारालादीप् स्थात् 'पत्नोवाच्ये इत्ययं: । प्रंवाचकादिति कि देवदत्ता । गोपस्य पत्नौ—गोपौ, एव पितासक्षौ सातासक्षौत्यादि । गोपालकस्य पत्नौ—गोपालिका (२४८,२५४), एवं ज्येष्ठा किनिष्ठा सध्यना उत्तर्भा प्रप्रपालिका । गोपौत्यादिय जातित्वादीि सिन्ने इह उदाहरणं निषिष्ठानासिक प्राप्तायंत्रे, तेन चित्रयस्य पत्नौ खिवयो, वैद्यस्य पत्नौ वैद्यौत्यादि । पर्गणिनि: ४।१।४८०, 'गापालिकादीना प्रात्येष्ठ '' इति वार्तिकास ।

#### २७१ । ब्रह्मरूमवसर्वस्टड्नेन्द्रवरुणादानङ् च।

•स्तीत्यः।

(बह्म---वर्षणात् ५), भानङ् ।१।, भा ।१।)।

एभ्यः पत्न्यामीप् स्थात्, तेषामानङ्च । ब्रह्माणी कद्राणी । 🕸

#### २७२। मातुलोपाध्यायच्चियाचार्य्यसूर्या-र्यादा। (मानुल-प्रयोत् प्रा, वं ११)।

मातुलानी मातुली। चन्चे लीपमिप विकल्पयन्ति, तदा मातुलेत्यादि। तद्दाग्रब्दोग्व्यवस्थाप्यः। क्राचार्य्यानी, अत्र न णलं। पं

#### २७३ । द्रषाकप्यग्नि मनु पूतक्रतु कुसित कुसिदादेङ् च। (अपाकपि - किपदात् ४।, ऐङ्.।रे।, च।रा)।

अब्बाच कट्ट भवश्व सर्व्य स्वयं स्वयं स्वयं इन्द्य वक्षयं तसात्। प्रधानस्य ईप्-प्रत्ययस्थानुरोधात् पञ्चस्यन्तलम् । भानडी डिल्लादन्यस्य स्थाने । बद्धाणः पत्नी बद्धाणी, पर्वे कट्ठाणी भवानीत्यादि । भाव वार्णिकसते बद्धाणमानयतीति बद्धाणी, न तु ब्रह्म-श्चन्दादानङ् । एवं श्रकाणी शिवानीत्यादि । पाणिनः ४।१।४८ ।

<sup>†</sup> मातुलय उपाध्यायय चित्रय त्राचाय्य स्थ्य प्रथ्य प्रथ्य तसात्। ईप् भानड् इल्प्रभागरत्त्ति। एथः पत्रामीप् स्थात् तेशमानङ्च वा स्यादियथे । मातुलस्य पत्री मात्नानी मात्नी, अन्यशं मत ईपोऽपि विकल्पः, तेन मातृना इत्याद्यपि । स्वभंत तु वाण्वस्थ व्यवस्थ्या ज्ञियम्, अभिधानान्यमितानि पदानि भविष्यनीति भावः, रुषा—उपाध्यायात् पत्रामानद् वा स्थात्, तेन उपाध्यायानी उपाध्यायी । स्थं चित्रयास्य ध्याव्याद्यत् केवलम ईप् वा स्थात्, तेन उपाध्यायी उपाध्याया। भर्यं चित्रयास्य ध्याव्याद्यत् केवलम ईप् वा स्थात्, तेन उपाध्यायी उपाध्याया। भर्यं चित्रयास्य ध्याव्याद्यत् भर्यां चित्रयां, जातौ भर्यां, चित्रयां चित्रया। आवार्थात् पत्राम् भावार्थानी, स्वयं व्याव्याद्यत् भावार्था। स्थनामकस्य कस्यवित् पत्री स्था (१६०), देवतायान् सूर्था। महाग्रहात् पत्रां जातौ च ईवेव—महाग्रही (वार्त्वक्म)। भावार्थानीयच रेकात् चलसभावनायानपि वाग्रस्यवस्थया न चलमिति। (४।१।४८) पाणिनिस्वस्य वार्त्वकानि।

एभ्यः पत्न्यामीप् स्थात् तेषामैङ्च। द्वषाकापायी अग्नायी मनायी। \*

२७४। नारी सखी यवानी यवनानी हिमान्यरण्यानी मनावी पतिवल्प्यन्त्रवेली पत्नी भाजी गोणी नागी स्थली क्षणी काली क्षणी कामुकी घटी कवरी नील्यशिख्य:। (नारी-भाज्याः १॥)।

एते निपात्यन्ते । 🅆

नरजातिस्तियां नारी, वयस्यायां सस्वी सता।
यवनानी लिपेभेंटे, यवानी गर्हिते यवे।
हिमानी हिमसंहत्याम्, भरण्यांनी महावने।
सनावी च कनी: पत्री, पतिवती सभर्मुका।
भर्मात्रेवी च गर्भाग्यां, पत्री पाणिग्रहोतिका।
भागी कित्रान् व्यञ्जने च, गांणी भान्यादिपात्रके।
नागी स्त्रियां स्थान् स्थूलायां, कालायाद्याहिद् लिनी:।
स्थली भक्तिमा भूमि:, कुण्डी पात्रविश्वेषके।
काली च क्रणवर्णायां, कुश्री लीहिक्तारकं।
कामुकी मदमायत्ता, घटी चुद्रघटी सता।
कान्यी केशविन्यासे, नीकी प्राणिनि चौषधी।
पश्चिती श्रास्टास द्वीप निपातनम्।
भव नारीति नशस्टात् नरशस्दास द्वीप निपात्यम्। सखीति इदलातान् (२६५) विकल्य

<sup>\*</sup> व्याकिषय प्रियम नय पूनकत्य किसित्य किसित्य (किसिट इति पाणिनी, क्षेत्रीट इति संविधसारे, किसिट्शब्दा इत्यास्था न त दीर्धमध्य इति सिजानकी मुद्यास्। तसात्। प्रजापि प्रधानस्य ईपीऽनुरोधात् प्रध्यन्तसम्। उत्तरच वायहणेन सध्य-तिंत्रादस्य निव्यतम्। ऐङ् इत्यस्य श्विचादन्यस्य स्थाने। व्याकपे: पवी व्याकपायी, हर्विष् व्याकपी इत्यसमः। पुनकत्रिन्दः। पाणिनिः ४।१।३६ — ३०। 'सनीरी वा' (४।१।३८) इति सुवेण सनावी सन्य। परसूवे सनावीति पदं प्रदत्तम्।

<sup>†</sup> निपाती द्यर्थिविभीषे भवतीत्यतः ---

## २७५। पद्धती शक्ती युवत्यन डाही खेन्येनी हिरणी भरिणी रोहिणी लोहिन्यसिक्री पिलक्रो वा। (पद्धती-पिलक्राः १॥, वा।१।)।

, स्त्रीत्यः ।

पचे — पदितः यतिः यूनी अनिड्ही खेता एता हरिता भरिता रोहिता लोहिता असिता पिलता / असिक्री अवदा, पिलक्री वडा । «

भूषि प्राप्ते, निलाधों निपातः । यवननातिस्त्रीत्थ्यं यवनी । सनीः प्रवील्थं सनायील्याप पूर्वेण (२०३)। पितवतील्य पितिवितास्कानां, तेन पितस्त्री सेना । भन्यत्विवकायां प्रायमो लिङ्गसाभात्वादीप्, तेन सठी पटी इनी वंशी खणालील्याटि, भन्यी इनः
हतक इत्यादी न स्थात् । भव वक्तस्य — (पाणिनिः ४।१।३५) एकः पितरस्था इल्प्ये
एकपत्नी, समानः पितरस्थाः सपत्री, एवं अपत्री बीरपत्री साहपत्री सद्भवी पृष्ठपत्री
पिष्ठपत्नीति नित्यस् ; "विभाषा सपूर्यस्थ" (पाणिनिः ४।१।३४) दित स्वंण त्
विकत्यः, यथा, वहपतिः वहपत्रो, रहपतिः रहपत्री, वष्ठपत्री, वष्ठपत्रीलादि ततपुरुषे वहत्रीही च । एवं जानपदी । "कद्यायां वा" इति वार्त्तिकेव नीली नीला ।
पाणिनः ४।१।३२,१३,१५,१५,४८,६२ । "घटकृष्ठात् पाचे" इति कातन्तपरिश्रिष्टे
भौपतिहनः । सुपद्रो घटोशस्टा गौरादी पितः । "वनरयीवृत्तिय" इति शार्क्तरवादिशयपाठस्वस् (पाणिनः ४।१।९३)।

अ पज्ञ ती इत्यादयी निपात्यने वा। पादस्य इति: पज्ञती, सक्षभाती: कि: सक्षी सस्त्रभेद:. (बर्ल त सक्तिदेव), कान्तवेन (२६५) चप्राप्ती ईपी विभाषा। सुवन्धस्यात् तिप्रत्ययं क्रवा वा निपात्यते—सुवतौ सुवितितित च। चमजुङ्गस्टीत् (२५०) ईपि, चाण्या निपात्यते। श्वित एत इति भरित रीडित लीडित सस्टिमी वर्णवाचनेश्वः वा ईप् तकारस्य निषात्यते, नचने भिष्णी रीडिणीति नित्यम्। चित-सस्याद्वज्ञाया पिलतथन्दात् वज्ञायान् ईप् तकारस्य क्रम निपात्यते। पच्चे—पञ्चति-मांक्रभ्या (२६५)ईप्निथेः। यूनी चमजुडी (२५०)ईप्। पाणिनिः धाराइट. धर, ४५,००, वार्त्तिक्यः। "युवतीति तृ यौते: सम्बनात् खौपि बोध्यन्" दति सिज्ञानकौष्ठदी।

भन वक्तव्यम् — ईचरश्रव्दादीष् वा, ईचरी ईचरा। "व्यवस्थावाचिलात् ईचरा ईचरीति भौषादिकां वरट्" इति सुषद्यो।

केवल (केरल प्रति पद्मनाभक्रमदीखरी, केरली ज्योतिर्विशेषस्य नामेति गीयीकन्द्रः)

#### २७६। न मन्संख्याखसजादेः।

(म ११), मन सङ्गा-खस्य-चजादे: ५१) ।

एभ्य ईप्न स्थात्। सीमा, पञ्च, स्वसा माता, त्रजा बाला। (१०१) नेपोत्युक्ते: - यावती बह्वी। \*

सुमङ्गल मामक (सामकी देवताविधेषः) भागधेय भेषन सुमान (सुमानी कृन्दोिशीषः) पाप फार्य्यक्रत दीर्घिनिह चपर (अवर इति क्रम्डीयरः) रेचक देवक केकय भिच्नका-देरीपृनास्त्रि। केवलीत्यादि । नास्त्रीति किं कीवला दृत्यादि । पाणिनि: ४।१।३०।

घोड़।दि(चजादिस्ति पाणिनिः)भिन्नादवार्डको ययसि वर्त्तनानात् ग्रव्दादीप स्थानम्ल्ये। कुमारी किशोरी कन्भी तकणील्यौदि। गीग्ये तु—वहक्सारा पुरी। वार्डकी वयसि-स्थिविरा ब्रह्माः भीडादेश-- भोडा बाला बत्सा कन्या द्रत्यादि भाकृति-गण:। चयाणां फलानां समाहार: चिफला, अच स्त्रोत्वं आप च निपात्यते । पाणिनि: धार ४,२०। ''खनादिलात चिफला'' दित सिद्धान्तकौ सुदी।

\* खसा च चनच खसनी, ती चादी गयीसी खसनादी, मन च सङ्गाच ससजादी चेति तथात्। मन्प्रयथानात् सङ्गावाचकात् स्तसादः प्रजादेश्व र्देप न स्यादित्यर्थः । सीमन्शन्दात् (२५१) डापीऽप्राप्तिपची नानावात् प्राप्तस्य (२५०) ईपी निषेध:। एवम् धितपटिमा इत्यादि। धव मन ईपवर्जनं नाकत्वात् प्राप्तस्य (२५०) ईप एव निवेधार्थ, तेन लब्बसीमारी लब्बसीम लब्बसीमानी इत्यादिए (२५३)ईप चान्यस्यादित्यनेन द्रेप् स्थादेव । सङ्गावाचकानां मध्ये एक विषड् बह्ननामी पीऽसमाव:, तिस्चतसी' खसादिपाठादेव र्रपनिषेष: ततम पचादाष्टादशपर्यनानां मुख्यते (१३१) विष लिङ्गेषु समलविधानेनैव लिङ्गकार्य्यानिषेधे सिङ्गे, भव सङ्गावर्जनं नान्तसङ्घाभ्यो गौषलं र्रूप्निवेधार्थे, तेन प्रियपक्षा द्रौपदी रत्यादी. घपन्ना रत्यादी च (२५३) ईप चान्वस्थादिकनेन ईप्न स्थात्, एवम् चितपञ्चा स्त्रीत्यादी (२५०) हिन्नुञ्चा-ष्टें थ नेन र्रूप्न स्थात्। किञ्चाच नजीऽत्यार्थतात् विंग्रतिषध्यादेः (२६५)पा श्लोगादी स्पनेन र्द्रप वास्थादेव। पञ्च इत्युदाइरणं लिपिकरप्रमादः। पञ्चिति छदाइरणात् नाल-सङ्घाया एव द्रैप्निषेध पति केथित । सामान्यती निषेधात् एकस्य पत्नी एका इत्यादी ईप् न स्थादिवपरे। खसादिय—स्वस् माह याह दुहिह ननान्दृतिस् चतस्य कति यति तति, इति दश । माता चत्र जनमी, याता खानिसाहपत्नी, तेन धान्यस्य मात्री, तीर्थस्य यात्री इत्यादी ईप् स्थादेव । तिसः चतसः इत्येतयी: सङ्गावाच-कालाबिषेधे प्रव गौणले ग्रहणं, तेने प्रियतिसा प्रियचतसा द्रस्यादि । कति यतिततीनां मुख्यते (१६१) विङ्कार्य्यमिषंधान गौषाते प्रियकतिरित्यादी ईप न स्यात । अजादिय 

#### २७७। उतोऽयुङ्र ज्वादे न्प्राणिजाते रूप्।

(उत. ४।, अयुङ्रज्वाहै: ५।, नृशांशिजाते: ५।, जप् ।१।) ।

स्त्रियामुकारान्सात् तृजातेरप्राणिजातेश्व जप् स्थात् न तु युङो रज्ज्वादेशः। कुरुः कर्कन्धृः। प्राणिजातेसु, धेनुः। युङ्-'रज्ज्वादेसु, ग्रध्वर्युः, रज्जुः इनुः। ॥,

२७८। वामलं चणग्रफसहसहितसंहितोप-मानादूरोः। (वान सवण-गफ सह-सिंहत-सहित-उपनानात् था, करीः था)।

वामोरू: रमोरू: । १

बर्सक पिपी लिकादि: । भयमजादि: पाणिनीयाक्वियते, तच परस्तांदयी न हम्प्रत्ते एवं खाङ्गजातिस्यां पराः क्षतिमतजातप्रतिपद्मास्य, कंश्रक्तता इलामिता इत्यादि । (१०१) अंपी स्थाति ईपि कर्पत्रे उत्तवहुगणानां सक्ष्यावहाविषिधान यावती स्था उदित्तात् (२६०) ईप्। बङ्गोत्यत्र (२६१) सुणशामकादोप्। पाणिनीः 'ध।१।४,१०,११। पाणिनीयं स्वसादिगणे कति यति ततीनां निविधी न हम्पते ।

<sup>\*</sup> य उड्यस्य स युड्, रज्युरादिर्यस्य स रज्यादिः, युड् च रज्यादिय तत् युड् रज्यादि, नामि युड्रज्यादि यसां सा अयुङ्रज्यादिस्याः। ना च अप्राणी च तत् नृप्राणि, तम्र तत् नातिश्वित नृप्राणिजातिलस्याः। सनुष्यजातेः अप्राणिजातय उका-रानान् अन्दात् स्वियासूप् स्थात्, न तु यकारांडी रज्यादेय । द्वातिः—कर्षाति, कृतसन्द कुद्रिमस्यनत्यजातिवाची, एवं कादः। अप्राणिजातेः—कर्मम् ति कर्तम् अन्दः वदरीजातिवाची, एवं अलावः। धंत्रिति दिभन्नप्राणिजातिलात् न जप् एवं क्रक्ताकः भातः। "नतु सत्तनूमनुपालयानुयानीं वरतन् सप्रवदिन कृष्णुटा इत्यव दोषांनस्तन् अर्द्रन ससासः" इति क्रमदीयरः। अध्यर्थुरिति चरणलं न जातिलात् प्राप्ती युड्लाद्विषेषः अध्यर्थुनांक्वाणी। रज्यादिश्व—रज्युः इतः कडुः प्रयङ्गः सायुरि-त्यादि। पाणिनः ४।१।६६, वार्षिक्व।

<sup>†</sup> वामय सचणस भाष्य सहय सहितय संहितय उपमान्य तसात्। वामादिस्यः षड्स्य. उपमानवाचकाश्च परी य करणव्यसमादृष् स्थात् स्त्रियाम्। वामी सन्दरी कर यस्याः सा वामीरु.। एवः लक्षणाव्यात् (४४६) अर्थ आदित्वात् अप्रत्ययेग लचणौ

#### **२७८। तन्वादेवी।** (तत्वादः ४:, वा ११।)।

तन्ः तनुः, चञ्चः चञ्चः । \*

इति स्त्रीत्यपादः।

२य पादः — कारकम् (क)।

#### २८०। त्यर्थसम्बद्धातार्थे प्री।

(ल्यर्थ सम्बुडि जन्नार्थे था, भी ।१।)।

लेरवें सम्बोधने त्यैकतार्थे के सति च प्री स्थात्।

क्षण: यी: ज्ञानं। हे विश्लो। 🕆

सुल चणानिती जक यसा: सा लचणोक:; अफी सुरी दव संशिष्टी खक यसा: सा अफीक:; सहेती देति सही खक यसा: सा सहीक:, विल चणीक सहिता वा; दितेन सहिती जक यसा: सा सहितीक:, (३८८) संदित अच्हस्य विकली सहिती संदिती संशिष्टी जक यसा: सा सहितीक: संदितीक:; जपमानाम्, रफी दव जक यसा: सा रफीक:, एवं करभीक:। एम्य: कि, उनीक: पीनोक रिलादि। पाणिनि: ४।१।६८,००; सहित सहाम्याचिति वत्र व्यामिति वार्षिक सा

अति तत्रादिर्थस्य तस्यात्। तत्वादेवां कप् स्थादिस्पर्थः। तत्वादिर्थया— तत्रयञ्च-क्रमींकः कङ्गपङ्गप्रियङ्गवः। गस्तुः कुष्ट्रिति श्रीक्तास्त्वाती सरयुस्तया ॥ तत्रथस्यात् गौस्येऽपि वरतत्ः स्ततनृरित्यादि। भव—वाङ्गत-कद्वकमस्थल्यो नित्यस्प् स्थात् संज्ञायामिति वक्तव्यम्, भद्रवाङ्गरित्यादि (पाणिनिः ४।१।६०,०२)। अध्यर्य पत्नी सर्थृदिति निपाल्यम् "अध्यस्थोकार।कारलीपस्य" इति वार्मिकस्।

चर्चीर्राभधेय:--तथाच 'मन्देनीचार्यमाचेन यहसु प्रतिपादते, तस मन्दस्य तहसु

<sup>+</sup> स्थादिभिर्तिङ्गानां कपाणि निकष्ण स्थादीनामर्थान् विरुपयित रूप्येत्यादि।— चिर्तिङ्गं, नेरथीं रूपये:, सम्बुद्धिः सम्बोधनं, उक्तोऽधौं यस नत् उक्तायै कारकं — रूपयेश्व सम्बुद्धि उक्तायेश्व एतेशां समाद्यारस्थिन्।

#### सर्वोऽची जीवनः पाता दानीयः प्रभवी लयः । \*

जायतामर्थसं ज्ञियति' पाच: । एवचः, "चन्यात् ग्रब्दाद्यमर्थी वीडव्यः" इती श्वरेच्छायिकि-रिभिषां, तथा, प्रतिपादाः चिभिषेय इति । यिक्त जान्य व्याकः गादिभ्याः भवति, यथाः — मित्रवह व्याकः गोपमान-कीषाप्तवाक्यात् व्यवहारतयः । साज्ञित्रवः सिद्धपद्य लिद्धाः वाक्यस्य ग्रेषात् निव्दिवदिन्ति ॥ व्ययंच पच्छा विधा वा, तद्कं — स्वार्थो द्रव्यच लिद्धाः सक्यां किया विधा वा, तद्कं — स्वार्थो द्रव्यच लिद्धाः सक्यां दिर्वि च . चमी पचैव लिङ्गाष्टांस्त्रयः केषान्त्रिः विभा इति । स्वार्थो विभीषणं, द्रव्यं विशेषां, लिङ्गं पुंस्तादि, भैक्षा एकलादि, कर्मादिद्विदिनित ।

लिङ्गस्य चर्चे, मन्त्रीधने, प्रत्यये: कथितार्थे कारके च सित, प्रथमा स्वादित्यर्थः। किञ्च यदा लिङ्गायां निरिक्तकसाद्ययां न विवच्यते तद्देव लिङ्गात् प्रथमा स्वात्, अन्यथा क्ष्यां स्वात् प्रथमापतिः। लिङ्गायं स्व एकत्विस्तवहृत्वेषु क्षमादेकवचन-हिवचनवहृत्वचनानि प्रयोज्यानि (१३)। यथा—घटः घटौ घटाः। एकौ हौ वह्नद्वातिषु सङ्गा एव लिङ्गायः, विभिक्तिप्रयोगसु— "मापदं शास्त्रे प्रयुच्चीतः" इति नियमात् पदलार्थं, कस्त्रेलादिवृत्तीत्ययं । चत्यव प्रक्रवर्थान्तितस्वाक्षेत्रीधकत् प्रत्ययानामिति प्राञ्चः। पृस्तादिक्रमिप लिङ्गायं इति ज्ञापयद्वाह क्षणः यौ. ज्ञानमिति। पाचिनिः राष्ट्राधह, ४०।

निह क्रियारहित वाक्समलीति न्यायात् स्कंतिन कियाच्याहारिण जक्तायंतात् प्रथमापाति क्यं ल्यायंग्रहणमिति ? जन्मते, यत्र ससमापकिकियापटं क्रियोदिपद्युक्तं तन्तेव कियाच्याहारः, यत्र तु केवली कृद्भान्यः प्रयुक्तते तत्र तद्यायावसरी नास्तीति । एवम् एकादिभान्यः यदा संख्येयवाची तटा घटादिना समानाधिकरणः स्थात्, तत्र लिङार्षे प्रथमा—यद्या, एका घटः, प्रशो जीठिरियादि ।

भाभिसुख्यविधानं सम्बुद्धिः । इच. लते, इत्यादावचितनेषु तृपघारः । "सम्बोधनम्ब प्रवर्त्तनाविषयवीधनादिफलकाभिसुख्यः" इति सिङ्डालकोसुदौटीका । "सिङ्ख्याभिस् सुखौभावमाचं सम्बोधनं विदुः । प्राप्ताभिसुख्यः पुरुषः क्रियासु विविधुच्यते ॥" इति इरिकारिका ।

#### २८१। कर्माक्रियाविशेषणाभिनिविशाधि-शीङ् स्थासन्वध्यपावस-डं ढं द्वी। (कर्म-डं श. वं श. की श)। कार्यो क्रियाविशेषणम् श्रभि-नि-विशादेर्डश्च ढसंग्नं स्थात्, तत्र च दी। क

'श्विभिष्ठिते प्रयसा" "तिङ्ग्समानाधिकरणे प्रयमा" इति वार्तिकृत्ये च । तिङ्ग यथा—रामी वनं ययौ, अव कर्त्ताः उक्तः, रामेण रावणो नन्ने, अव कर्त्यं उक्तम् । क्रता तु— सब्बेंड्चं इत्यादि स्वयमुदाश्वतम् । तिद्वतिन यथा—वाचा क्रतं थाधिकम्, अव कर्त्यं उक्तं, तके वेत्यधीते वा ताकिकः, अव कर्ता उक्तः । समासेः यथा— आक्टो वानरीयं स चाढदवानि इतः, क्रियक्तागी येन स क्रियक्तागः खद्रः, क्रता पृता येन स क्रतपृत्री भक्तः, दत्ता भूसिर्यस्यै स दत्तभूसिर्विष्ठः, निर्गताः पविष्यो यसात् म निर्गतपत्री बतः, सष्ठ तारा यखिन् तत् स्तरारमाकाम् — एषु क्रमेण कर्त्यं करण कर्त्रं सम्प्रदानापादानाधिकरणानि उक्तानि । अव्ययेनायुक्तार्थे प्रयमा—यथा विषवविद्याद्यः वर्णमावाभिष्ठाकृत्वेन न विभक्तुत्यतिः इतिश्रन्दस्यैव विभक्तिकार्य्यं कारितम् । पीतमस्यरं सस्यासौ पीतास्यरो इरिस्त्यादी सन्वसन्। युक्ताथं व प्रथमित वक्तव्यम् ।

\* कियाया विशेषणं कियाविशेषणम्। चर्भिनिः चिनिः, चिनिः चनिनः, चिनिः चनिनः, मीड् चर्याय पानम् गोड्स्याम्, चर्धः ग्रीङ्स्याम् चिष्योङ्स्याम्, चनुः चर्याय पानम् गोड्स्याम्, चर्धः ग्रीङ्स्याम् चिष्योङ्स्याम्, चनुः चर्यायः पानम् विशेषः चन्तः चर्यायः चर

कियते यत् तन् कम्मं, करोते नििखल कियावाच कलात् कर्मुव्यांपारैयंत् साध्यते तत् कम्मं इति यावत्। ''कर्मुरी सिततमं कम्मं'' इति पाणिनः (१।४।४८)। कियाव्यायं अर्थेति पद्मनाभः। कर्मृसमुद्धिं कम्मेति कमदी यरः। यत् कियते तत् कम्मेति सर्वे-बम्मांवार्यः। तच्च कम्मं विविधं – निर्वेच्ये विकार्ये प्रायचिति। निर्वेच्यते उत्पायते अत्तत् निर्वेच्ये, यथा घटं करोति, पुत्रं प्रस्थते इत्यादि। विक्रियते विद्यानानं वस्तु

#### रामं नमित सानन्दं धर्मानिभिनिविष्य सन्। क्ष यीगोऽधिग्रेतेऽहिमधिष्ठितोऽस्थि-मध्यास्य घोषं मध्रामन्छ।

भवस्थानर नीयते यत् तत् विकार्यं, तदिप दिविधं प्रक्रते क्कंद्रकं प्रक्रते गृंगानराधाय-क्षञ्च, यथा काष्ठं दक्षति, स्वयं कृष्ठ लं करोति रैंग्यादि । निर्व्वर्षेविकायां स्थानगर्म प्राप्यं, यथा गामं गक्कतीत्यादि । तद्मचं क्षे दिया --यदसक्त्रायते सद्दा जन्मना यत् प्रकायते तिव्वर्षे, विकार्यं च क्षे देधा व्यवस्थितम् । प्रक्रवृक्केदसभूतं कि चित् का छादिभध्यत्, कि चित् गृंगानरीत्पत्या स्वग्रीदिविकाग्वत् । कियाक्षतिवर्ष्याणां सिद्धितं न विद्यते, दर्शनादतुमानाद्दा तैत् प्राप्यमिष्ठ क्षयते । परे त भनीसितमिष्य प्रितिक् लमनुकृत्वञ्च कम्प्रोत्तर वदन्ति, यथा चोदनं वुभुच्विषं भच्यतीत्यादि । स्वमते प्राप्यानगर्तस्व तत्।

किया धालयं सम्य विशेषणं कियाविशेषणमः। तच्च समामाधिकरणसेवः असमामाधिक करणविश्रीषणे (२८८) हतीयाविधानात् । क्रियाविश्रीवणस्य कारकलं कीसिटेवसङ्गीकियते यथा "सद पचतीत किथाविशेषणवात दितीयान्तम । धातुपान्तमावनां प्रति हि फलांशः कमीं भूत: । तथःच फलसामानाधिकर्णये दितीया." "कियाया: क्रांचमकर्मालविवचायां तिहमप्रात्वात हितीया" इति मनारमा। "हितीयिति तियातिमीषणादिति भावः" इति अन्दरसम् । "सामान्ये नपंभक्षांकिति — अने नैय क्रियाविश्वेषणानां नपंसकत्वे सिद्धे 'क्रियाविभ्रेषणानां क्रीवत्वं द्वितीयान्तत्वच्च' इति न । पूर्व्वधातूपान्तभावनां प्रति फर्लाः भस कर्मतया तत कमानाधिक रणे क्रियाविशेषणे दितीयान्तलस्यापि निही:, तस्य क्रिया-जनकत्वमपि सञ्चानहारा बोध्यम्'' इति शब्देन्द्शेखर्य। अनदीश्वरेण च "बपृथगरूप-कियाया विभेषणस्य कर्माल क्षीवलञ्च' इति मूर्च क्षतम् । चतः पृथगकपिकयाविभेषणस्य कर्मां वादिकंन स्थात, तेन माधः पाकः साधु पाकौ इत्थादि, कदिभिक्तिो भावो द्रव्यक्त प्रकाशते इति न्यायेन द्रव्यत्वातिदेशोन् पाकस्य पृथग्रूपत्वम्। विभेषणस्य कर्मालेऽपि भक्तर्माक्षधातृगामकर्म्मकलमेव, कर्म्भीनवस्पनकार्थे, किमपि न सादिति यावत्। कर्मानं ज्ञापलन्तु साकं विभेतीति सीकभी शब्दस्य (१३६) कव्याधने-काच इत्यनेन कारकादिलात यकारप्राप्तिरित्यादि। पाणिनि: २।३।२,१।४।४६--४८, वार्त्तिकचा

 रामं नमतीत्यादि । सन् साधुः धम्मांन् प्रभिनिविद्य सामन्दं यथा स्थान्तथा रामं नमतीत्यन्त्यः । रामस् इति नमनितयाच्यायं कर्षः । सामन्दिनिति कियाविशेषणं, प्रामन्देन सह वर्णते यत् तत्, प्रामन्दसिहताभित्री नमस्तार इत्थयः । धम्मांनिति प्रभिनिविद्यधातीरिधकरणे कर्षांत्म । यो दारकामध्युषिती विकुष्टः सुपावसचावसतात् स द्वतः॥ \*

#### २८२। देशाध्वकालभावं वाहै:।

(देश-चश्चन् काल-भाव १।, वा ।१।, चटै: ३॥) ।

भद्रैर्धुभियोगि एते ढसंज्ञा'वा स्युः।

नदीर्वनेषु चांवित्वा क्रोगार्तस्थेष्व इनिशि। चंक्रमित्वा प्रियानीतिं रामी रचोवधे स्थितः ॥ †

<sup>\*</sup> सौध इति । यः सौधः चिक्तमधिष्ठितः सन् चिक्तमधिष्रेते, घोषमध्यास्य सणुरा-लग्ध्य द्वारकामध्यपिनः सन् विकृष्णस्पानसञ्च स नीऽधाकं इत् इत्यम् चायसतादित्य-ल्यः । चिक्ति चिक्षण्रेतः, चिक्षमिति चिवित्यतः, घोषमिति चध्यानः, सणुरा-सिति चनुवसतः, द्वारकामिति चिवित्यतः, विकृष्णमित उपवसतः, इत् इति चावसतः, चिक्तर्ये क्यांत्म । इत् इति इद्यश्टस्य छपम् ११६) । चावसतादिति तृषः स्थाने (१५१) तातङ् । क्योपि वाच्येऽपि एतेषा क्यांत्नं, यथा नक्तनाधिष्ठितो हयः, वलैष्य-चितामस्य मल्याद्विष्याकाः इत्यादि । यहे चिष्ठान क्त्याये चिक्ति ह्यः इत्यादि-प्रयोगस्य चातिद्याकामनित्यामिति न्यायात् समाधानीयः । चन चिष्ठा इत्यासमकर्यन्याधानव वहर्षं, तेन वने राजानमधितिष्ठति चिव्यत्व इत्यादि ।

<sup>†</sup> देशस चध्या च कालस भावस तैयां समाहारकत्। नास्ति ढं लक्षं येयां ते चढ़ाः तै: । देशः पृथगेकैकदेशः नदीवनपर्वतादिः। चध्या चध्यपिनाणं क्षीशमलादिः। यथा—किर्जुक्ते वितसी च नन्तः किष्कुचतुः अतम्। चतुर्हसी धनुसस्य सहस्यं क्षीश्र- चछते । क्षीश्रहयन् गव्यृतिसदृहयं योजनं विदुरिति । कालः चणद्वसमुह्रसंप्रहर्षे दिनराचिपध्यसास्वत्यरादिः। भावो धाल्यः। अकर्षं कथातुर्थोगं देशादीनां कर्षां संस्ता वा स्वादिव्यवः। चक्सं क्षीश्र —सत्तालाः स्थितिशागरणं हित्तचयभयशीवितमरणं। श्र ययनकी इत्रविदित्यार्थां नैते कर्ष्यं व धातव उन्नाः हित्य । विश्वरस्य (८३२) स्वै प्रष्ट्यः। नदीरिल्यादि —राभः नदीः वनेषु च छित्रता, चहः दिवसं निश्चि राचौ क्षीश्रान् क्षीश्र परिमतान् प्रथः नन्त्येषु नल्वपरिमितेषु प्रष्यिषु चंक्षसिला इतस्ततो समिलाः प्रियानीति प्रियायाः सीताया चानयनं रचीवचे च स्थित रस्यन्यः। च्या छित्रवित स्वधात्योगे नदीरित कर्ष्यंलं, पचे वनेषु इति (२०४) सप्तमी । चंक्षसिला वर्षे क्षित्या इति यक्षि चंक्रस्यधातीः क्षाच् वक्षमनार्थेलादकर्मक्रते तद्देयोगात् कीश्रानिति

#### २८३। सदाध्वादि व्याप्ती सर्वे: सिंहे तु घं।

(सदा १२), प्रधादि १२), याती ७), सबैं: २॥, सिशे ७), तु १२।, घं २।) १ सर्वेर्षुभियोंने श्रस्त्रन्तसंयोगे श्रध्यादयो नित्यं उसंग्राः स्युः, श्रर्थ-सिद्धी तु धसंज्ञाः ।

> स्रत्येः क्षणोऽन्वितः क्रीयं मासी गुरुष्टहे स्थितः । गुरूपदेगं निस्तो माभ्यामध्यैष्ट वाद्मयम्॥ \*

#### २८४। घोऽञौ,ञ: ग्रन्दाग्रनगितत्तार्थाढ़-ग्रन्ददग्रयो-रखादनीक्रन्दायग्रन्दायत्त्वादासूतववहा-

भाइरिति च कम्पैलं. पर्च कल्लेलिति निशीति च सतनी। स्थित इति स्थाधानुयोगे भियानीतिमिति कर्मैलं, पर्च रचीवधे दृति सप्तनी। पाणिनिः २।३।४, वार्त्तिकच ; "देशकालाध्वगन्त्र्या. कर्म्यसमा द्यकर्मधाम्'' इति कारिकाच। भव वक्तव्यम्— "भक्तम्भैकधानुप्रयोगेऽक्रियानरान्तर्भावे देशभावाध्याख्य' इति क्रमदीयरस्पम्। तेन क्रियानरान्तर्भावे—सास भास्वते इत्थादि, म्राभिवाधित्यः ।

\* सदा निव्यम् । व्याप्तिः साकाल्येनाप्तिसम्बन्धः चिवच्छेद इति यावत् । चत्रव्यः स्वाचाध्यस्यामिवच्छेदे'' इति कमरीचरस्यम्, ''कालाष्यस्यामितसंयीगे'' इति पद्म-नामस्य । सर्व्यः सक्तसंकैरक्षंकैय धातृप्तियोंगं कियाविच्छेदाभावे गय्यमाने चष्य-कालभावाः निव्यं कम्प्रमंत्राः स्युः, चर्यसिदौ प्रयोजनसिदौ (चपवगें इति पाणितः; चपवगेः फलप्राप्तिरिति सिज्ञानकौसुदौ, फलप्राप्तौ कियापरिसमाप्तिरवर्ग इति पद्मनाभः) सत्यां तु करणसंत्राः स्युरित्ययः । सत्यैरित्यादि—कृष्यः क्रीः व्याप्य सत्येदः नितः चनुगतः सन्, मासौ व्याप्य ग्रव्यदे स्थितः सन्, गृष्ठपदेशं व्याप्य निस्तः चन्तास्तः सन्, मासौ व्याप्य वाद्ययं सक्तमं श्राह्मन् चन्त्रयः । चन्त्रयः स्वन्त्यः स्वन्ति इति सक्त्यं व्याप्य वाद्ययं सक्तमं श्राह्मन् चन्त्रयः स्वन्त्रयः स्वन्ति इति सक्त्यं व्याप्य वाद्ययं सक्तमं श्राह्मन् चन्त्रयः स्वन्ति इति सक्त्यं व्याप्य वाद्ययं सक्तमं श्राह्मन्तियायिच्छंदाभावात् कम्प्रत्यम् । प्रवेस्ति इत्यस्य योगे मासौ इति, निभृत इत्यस्य योगे गृष्ठपदेशमिति च कम्प्रत्यम् । प्रवेस्तिदस्य कङ्न मासौ यत्योऽपीत इत्यत्र किमपि न चार्तासव्यवः । पाषितिः स्वार्थिदेदस्य कङ्न मासौ यत्योऽपीत इत्यत्र किमपि न चार्तासव्यवः । पाषितिः स्वार्थिदः । वार्त्यिकः ।

हिंसामची हक्ष्मामिवादिदृश्स्त वा | (वः ११, षणी ७), जे: ६१, षव्द-भी: ६१, षवाद-भणः ६१, इन्त मामिवादि हवः ६१, व ११, वा ११) । प्रजान्तानां प्रव्हार्धादीनां यो घः स आक्रानां ढं स्वात्, न तु खादादेः, द्वादेस्तु वा । #

\* यशनं भीजनं पाणस्त्रा जानम्। यन्य यथनस्य गरिय जाय थन्यागनगित्राः ते यथां विषां ते यन्यागनगित्राः । मासि ढं कथं विषां ते यढाः । यन्यागनगित्राः । मासि ढं कथं विषां ते यढाः । यन्यागनगित्राः । मासि ढं कथं विषां ते यढाः । यन्यागनगित्राः । मासि ढं कथं विषां ते यढाः । यन्यागनगित्राः । मासि ढं कथं । स्तः सारि । यादिनियना च सः कथां यस्य सम्बद्धः । महस्यागित्राः, स्वाद्य भावत्र प्रयस्य यन्याय्य हात्र यद्य यम्त्राच वस्य यहिंसाभच्य तिषां समाहारः, प्रयात्र अयोगे यादाः नीकन्यायश्रद्धादहादाम्त्राव हाहंसाभच्याः । यभीवादः यभिवादः, यभिवाद्यः व्यव्य यमिवादिष्ट्यौ । इयक्षय समिवादिष्ट्यौ निति समाहारे तस्य ।

श्रव्हार्थाः उद्यारणार्थाः, श्रव्हकर्मांका धातव इति यावत् । अश्रनार्थाः भचगार्थाः । गत्यर्थाः गमनार्थाः प्रवेशारीक्षणतरणप्रापणार्था व्यपि । वार्थाः वानार्थाः । वाराः सत्तादार्थाः । भजान्तकाले श्रव्हार्थाटीना धातुनां यः कर्त्ता, स तेषा आग्तकाले कर्मा स्वात्, खादादेर्भ स्थात्, प्रादेल् वा स्यादिव्ययः। , यत्र दशय्वालीक्रीनायंतेऽपि पुन-र्यं इचं क्रिबिट्यार्थक लेऽपि सादिति ज्ञापनार्थम् । खाद चढ भव — एपानमनार्थलात्, नी अथ वह-एवां गत्यथंलात. अन्द द्वा (क्व) - एतयी: अञ्दार्थलात प्राप्ती निर्वध:। श्रव्हाव प्रति नासधातुः, प्रव्हं करीतीत्यर्थे (८५१) छित्रः, प्रस्य अव्हार्थल। दक्षमं कलाहा माप्ती निषेध:। अनुस्तियाच्याप्यतेनैव अअन्तकर्त्तः कर्याते सिद्धेऽपि एतत् सूर्वं नियमा-र्थम्, अन्वेषान स्वादिव्यर्थः । अत्र च अन्दार्थादौनान् एकवारञ्जलानानेव यक्ष्णं, तन पिता पुत्रेण शिष्यं वेटं पाठयति इत्यादी पुत्रादोनां न कर्मालन । अत्र अकर्माकधातीः (२८२) देशाहै: कर्मालेऽपि. (२८१) एवमधिशीकाहेरधिकरणस कर्मालेऽपि, मन्नान-काकीनकर्भरिय कर्यांतं छादिति वक्तव्यन्, चतएव (८३२) चनलेव गीपी रजनि-मजागरीति खयं वस्त्रति । निमर्गपारीणमसौ भवन्तमध्यामयज्ञासनमेकसिन्दः रित सिट्ट:। एवं मक्सीक्धातनामक्सीकृति सित अञासकर्तः क्सीतं स्थात, यथा अव्राहरी पौड़िती भवति, ग्र: ग्रचमाघाशयति । पविचान्यवापि कम्बलं भवति, यथा फर्ल व्याजितै: व्यैदिति रघः। पाणिनि: (। अधूर, ५३, वार्त्तिकानि च।

गयमध्याययद् गोपान् याज्ञिकाक्रमभोजयत्। स्वधामागमयच्छक्त् भक्कांस्तत्वमकोधयत्॥ धक्षमस्थापयद् विषाविदानयाद्यद् विधिम्। देत्यानद्शयच्छक्तिं वेश्वमत्रावयच गाः॥ ॥ खादादेसु—रचांस्यखादयदनाययद्र्ष्ट्रसोक्कः— माकन्दयत् कप्रिभराययदाश्च रामः। यव्दाययन् रिप्रमजूहवदादयच शैलानवाद्यदमचयदिष्टंभस्यम्॥ पं

<sup>\*</sup> क्षमेण उदाइरणं दर्शयति — विणः गोपान् गेयं (गानं) प्रध्यापयत्, प्रधीङ्ख्याययने रत्यसान् जिः, प्रजान्तकानीमकत्ंणां गोपानां कर्मातम्, एवं सर्कतः । विणः गोपान् याजिकान्नम् प्रभोजयत्, मुन धी नाणे मने जिः। विणः शनून् स्वधामं वैद्यास्य प्रमायत्, इत्वैति श्रेषः, त्री गम् छ गत्यां जिः। विणः फ्रक्तान् तत्त्वं यायाय्ये प्रवीधयत्, वृध्यी ङ प्रवामने जिः। विणः धर्मामस्यापयत्, जिः हा स्थाने जिः। विणः विधि वेदान् प्रवाहयत्। यह ज गादाने जिः। विणः दैत्यान् प्रक्तिम् पदर्शयत्, हिण्यौ प्रेत्ते जिः। विणः गाः विणः गाः विणः गाः विणः गाः विणः गाः विणः विश्व जिः। (एतेषां प्रजानावस्या क्रमेण प्रदर्शते—गोपा गयम् प्रध्येयत्, गोपा याजिकान्नममुञ्जतः प्रवाः स्वधाम प्रग-प्रकृत्, भक्तासत्तमबुध्यत्, धर्मोऽतिष्ठत्, विधिवेदानग्रक्षात्, देत्याः प्रक्रिमपण्यन्, गावो विणमप्रस्त्।)

<sup>†</sup> स्वादादेवदाइरणं —राजः कपिकिः रखांति चातादयत्, खाद भवणे जि., चव चातावाजीवकातृ णां कपीकां जानावस्थायां कच्छेत्वामाव चनुक्रकाकृत्वात्(रूप्य व्हित्येषः, एवं सर्व्य । रामः कपिकिः रचांति जर्वकोकम् भनाययत् को ज पापणे जिः । रामः कपिकिः रचांति चाक्र वीम्रक् चायस्त् यात्रसदित्ययः, चाक्र्यवेक्ष-कदि तु रीदिने चाक्रांते जिः । रामः कपिकिः रचांति चाक्र बीम्रम् चायस्त् प्रापस्तिस्त्रयः । चय क् गतौ जिः । रामः काविकिः रचांति शब्दायधन् सन् रिप्मः चान्नुक्वतः, स्व्याययदित्ययः । चन्द्रायधन् सन् रिप्मः चान्द्रस्ति विः । रामः कपिकिः रिप्मः चादयच्, चद वी स्वाद्रस्यः । रामः कपिकिः । रामः कपिकिः । रामः कपिकिः स्वाद्रस्यः । सन् कपिकिः । सनः कपिकिः स्वाद्रस्यः । सनः कपिकिः स्वाद्रस्यः । सनः कपिकिः स्वाद्रस्यः । सन्दर्शस्यः । सनः कपिकिः स्वाद्रस्यः । रामः कपिकिः स्वाद्रस्य । रामः स्वाद्रस्वाद्रस्य । रामः स्वाद्रस्य । रामः स्वाद्रस्य । रामः स्वाद्रस्य । रामः स्वाद

#### सार्विघ हिंसार्घयोतु-

वाष्ट्रानवाष्ट्रयत् पार्थमरीं बाभक्यवहरिः । क इारेस्य — ग्रेसानष्ट्रारयत् कीयान् ऋ वैर्वृं वानजीष्टरत् । कपीनकारयत् चेतुं वानरेरिप राघवः ॥ स्माभिवादयते हृद्दान् जानकीं लक्ष्मणेन च । सीतां रामेण चालानमदर्भयत सक्सणः ॥ न

#### २८५। याच्झार्धदुह चि प्रच्छ रुष् ब्रू शास जिनी वहः।

यथा—कपयः रचांसि चाखादन्, कपयः रचांनि कर्वं लोकमनयन्, कपयः रचांनि चालन्दन्, कपयः रचांसि चायन्त, कपयः अन्दायमानाः रिपुम् चाहन्, कपयः श्रेलान् चवहन्, कपयः इष्टमचम् चक्षचन् इति ।)

<sup>#</sup> स्तववर हिंशावंभ चयो बटा इरणं — इरि: वाडान घोटकान पार्थम ज्ञुनम् अवाह-यत् भारिय भूँता इत्ययं:, इरि: वाडान् घरीन् अभ चयत् घडिं स्यवः घवाडयदित्यव सारियक मृँकतात्, घभ चयदित्यव च डिंसायंतात् घञानका खीनक भूँ यां वाडानां कर्मातम्। (वाडा: पार्थमवडन्, वाडा करीनभयन् इत्यञान्तावस्या।)

<sup>+</sup> इतिव्हाइरणम्—राववः कोशान् वानरान् श्रेलानृहारयत्, पचे— स्वीभंत्र्कः विज्ञाननीहरत्। राघवः कपौन् सेतुमकारयत्,पचे—वानरेरिए सेतुमकारयदिति श्रेषः। राघवी नानकौ व्रज्ञानिनादयतं का पचे— खचाणेन च, व्रडानिभवादयते केति श्रेषः, धिनादयते इति पश्चिपूर्व्वो वदधातुः नान्नो नमस्तारि वर्त्तते, पुनः नौ नते, (६४१) पूर्व्वनेलीपि, (८१८) प्रख्वत्वर्त्तां व्यव्यातः न्यान्तिनिप्तम्। स्कार्यार्वन्तात् श्रिष्यो नुक्मिनादयतीलादौ (२०१) निष्यनेव कर्ण्यतम्। स्वाप्तः सीताम् धालानम् धर्वयत्, धचे—रामेष च, धालानमद्वयतित श्रेषः। धर्ववयविति, धनानकालीन-कर्णयो खद्याय नान्तालीनकर्णृतात् (८८८) नेति स्वाप्तमिनिपत्म्। पिता पुषं चन्द्रं दर्भयतीलादौ धनानकालीनकर्णः पुष्तः निस्तिव कर्ण्यत्वम्। (कीशाः श्रेलानकरन्, स्वाः व्यान् धवादौ धनानकालीनकर्णः, पुष्तः निस्तिव कर्ण्यत्वम्। (कीशाः श्रेलानकरन्, स्वाः व्यान् धवादौ स्वाप्तम्याद्वानक्ष्त्रम्, वानरा धित्, जानकौ व्यान्तिमादयति स्व, स्वाप्त्यस्य स्वाप्ति स्वाप्त्यस्य स्वाप्त्यस्य स्वाप्ताः।

#### ह्र दिग्डि ग्रन्त क्षय मन्य मृष् पचाद्या भवी दिदा:॥ \*

(याच्ञार्थ-वष्टः १॥, क-पचाद्याः १॥, घवः १॥, बिढ़ाः १॥) ।

तमधेयेऽहं मीचं, यो गोपैर्डुग्धमदुख गाः ।
फलान्यवाचिनीद वचान्, वार्त्ताः पप्रच्छ वल्लवान् ॥
करीध गोजुलं गोपीरअवीच मनोहरम् ।
गोपालानन्वपात् केलींस्त्रचाज्यं जिगाय तान् ॥
वृन्दावनमनेषीद् गा-स्तंच्छिश्नवहद् व्रजम् ।
जहारारण्यमाभीरी-देंत्यान् प्राणानदण्डयत् ॥
जगाच यज्यनो भोज्य-मकर्षत् पूतनां बलम् ।
ममत्यास्तमस्त्रीधं मुमोष दितिजांध तत् ।
योऽसी पचित लोकानां पुष्प्रपापं सुखासुखम् ॥ १

<sup>\*</sup> याच्या भर्षा येवां ते याच्यांगाः याच भर्य माय स्वी इ प्रश्तयः । पद्मान् दक्षे व इपर्यंत्तम् एकं पदं, श्लीकार्कविरामाये प्रथक्षपदकरणम् । पच भावो येवां ते पचादाः, पद्मात् इत्य दिख्यः इत्यादि दक्षः । दे दे येवां ते विद्राः । एते भातवः स्वभावात् दिक्षमं का भवलीत्ययः । कर्षः क्रियाच्याय्यतात् सुख्यस्य कर्मातं विद्रम्, भनेन तु गौणस्य कर्मातं विधीयते । साचात् क्रियाच्याय्यत्वं सुख्यत्वं, परम्पर्या क्रियान्यय्वतं गौणत्विति । पाणिनौये वार्त्तिके धृतस्य दुद्दादिगचस्य मध्ये गद्दधातोः पाटाभावात् "पित्रवक्षमं कनको धृत्यत्" इत्यादिकमसाधु इति भृत्यासवाभटी (कमदीवरः) । पाणिनः १।४।५१।

<sup>†</sup> तसर्थये इत्यादि। चाइं तं श्रीक्षणां मीचम् चार्ये याचे, यः गोपैः सह गाः दुन्धम् चाद्यः। यो वच्चान् फलानि चवाचिनीत्। यो वद्यवान् वार्ताः पपच्च, गोपान् व्यानं तिज्ञासितवानित्यांः। यो गोकुलं गोपौः वरीष्ठ, गोपौरनः स्थापयन् गोकुलमाव्योदित्यांः। यो गोपौः मनोहरं (वच इति श्रेषः) चनवीय। यो गोपालान् भेलीन् चन्वयान् शिलितवान्। यस्तव केलिविवये तान् गोपालान् चन्यां जेतुमञ्जयं निगाय। यो बन्दावनं गा चनैषीन् प्रापथामासः। यस्तिक्यम्

# २८६। विक्समयानिकषा हान्तरान्तरेगैनातियेनतेनास्युभयपरिसर्वतोविनतेऽभिपरिप्रत्य नूपद्युपर्यधोऽधिभि:। (विक्-पविभि: २॥)। एभियोगि ही स्थात।

वीपेयक्षाविचिक्नेऽभिस्तेषु भागे परिप्रती । श्रनुस्तेषु सहार्थे च हीनेऽनूपी मताविष्ठ ॥ \*

गीनकान् ज्ञनम् भनक्षत् नीतवान् । यः भाभीशीररण्यं अकार निनाय । यो देथान् प्राणान् भद्रख्यत्, प्राणान् स्टकीता भ्रमानं त्ययः । वो यञ्चनी भोज्यं अग्राह । यः प्रतना वलम् भक्षेत्, प्रतनां विक्राय वल स्टकीतवानित्ययः । योऽभीधिन् भस्तं सस्य, ससुद्रमुत्यस्य भस्तत्सुत्यापितवानित्ययः । यक्षत् श्रस्तं दितिनान् सुमीव खिष्डत-वान् । योऽभीक्ष्यः क्षितानां पुष्यपापं सुखासुखं प्रवति—पुष्यं सुखं, पापम् भस्यं, प्रवति परिणान्यतो स्थः ।

श्रव पचाया इत्यादि-पहंत गुरु शिष्यं यामं प्रष्ठिभी तीत्यादि। ब्रू इत्यनित बुव्यं याहणं, तेन गद्ध कथ मन्स प्रस्तीनां संग्रहः। व्यं नीकां कारीति, स्वर्णे कृष्यं करोतीत्यादी प्रकृतिविक्रतिभाविन एक नेव कस्यं, तेन वनी नीका कियते इत्याव ह्यारिव एक त्वात् न गौषसुष्यव्यव हारः, किन्तु प्रकृतेः सङ्गानुसारेणैव कियाप्रयोगः, यदुक्तं — प्रकृतिविक्रतिवीपि यचीकात्वं ह्योरिप। वाषकः प्रकृतः सङ्गां स्वष्ठाति विक्रतिने तु इति। प्रचादिस — पच वय वय वद चल पत नद अध चर गाइ देव सद चप स्व संघ इत्यादि श्वातिनगः।

क भिश्व जभयस परिय सर्वय तेथ्यसम् । उपरिक्ष भध्य अधिय ते, दयय ते उपयंधीऽधयंथित ते उपयंपिर भधाऽधः भध्यि दित दिक्ताः, पसान् इन्तः । दुग्यरीति तिं, गख्यंपिर विष्कोटन दृश्यरीय विष्ठी खादेव, मृत् दित्या । धिक्— निर्भर्त्यानित्यारित्यमरः । समया— मनिक्तभध्ययंगित्यमरः । निक्षा— भनिक्तिः दृश्यमरः । भन्तरे मध्ये दृश्यमरः । भन्तरे स्त्यमरः स्त्यमरः । परितः, स्त्येतः स्त्यमरः । स्त्यतः स्त्यमरः । परितः, स्त्येतः स्त्यमरः । स्त्यतः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्तयस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तयः स्त्यस्तय

भव भभिपरिमत्वनूपानामधैनिश्रेषएव ग्रहणमित्याह वीसिति। इह हितीधानिकाने,

धिग्लोकभीखराभक्तं, समया माधवं रमा।
निकषा गिरियं गौरी. हा लोकं केयविष्यम् ॥
कष्णोऽन्तरा ब्रह्मयभू, नान्तरेणाच्यृतं सुखम्।
दिच्छिन हरि रहो. गौविन्दमित नेखरः ॥
येनेयं हरिरीयसं तेनेयमभितोऽर्च्चेकाः।
रामक्षणावुभयतो गोपेशं, परितः परे ॥
प्रमथाः सब्वेतः सब्वें, यभी नेयार्चनं विना।
मुक्तिर्नेत्तेऽच्युतोपास्ति, सूतं भृतमभि प्रभुः ॥
भक्तो विभुमभि, प्राज्ञो गोविन्दमभि तिष्ठति।
हरिं पर्यभवज्ञच्यी-हरं प्रति हलाहलम् ॥
विष्युमन्वर्चाते भर्गः, यक्ताद्य उपाच्युतम्।
लोकानुपर्य्यपर्यास्तेऽधोऽधोऽध्यधि च माधवः॥ ॥

भिः: वीभीत्यभाविक मतः, परिप्रती तेष वीभीत्यभाविक प्रभागे च मतौ, भनः तेषु वीभीत्यभाविक भागेष सहार्थे च मतः, चनूपौ होने मतावित्यन्वयः । द्रव्यनुणिक याभि-युगपत्र व्याप्ति स्वतः वीभा । कस्यचित् प्रकारकापितिरत्यभावः । चिक्रं लचणम्, भन्यत् स्वष्टम् । भन्यादिरिह भनुपसर्गएव । चिक्षप्रश्रंतिभियोगे दितीया स्थादिति स्वार्थः, योगस्ति ह भयेनैन, न तु श्रन्देव । पाणिविः १।४।८६ — ८०,८९,८५,२।३।८,भाष्यच । चपान्वस्याङ्वसः (१।४।४८) इति पाणिविस्त्वसास्थाचनारं धिक्सनयेत्यादियोगादुपपद-विभक्तिमाइ भदीनिदीचितः ।

<sup>\*</sup> पूंचरामकं लोकं धिक् स निन्ध इत्यर्थः । रमा लच्छीः नाघवं समगा, नाधवस्य सभीपे । सीरी निरिधं निकला, निरिध्य सभीपे । केथविद्यं लीकं हा, स विषादाईः शोका हैं। वा । हा राम ! हा तात ! इत्यादी हा-अव्दस्य वक्षु शोकाित-स्थक्कातात रामादी न दिवीया, सन्तिभे प्रथमेव । कच्चा नक्षप्रभू चन्तरा, नक्षप्रभू नेध्ये । घच्युतं तच्चा चन्तरेण विना सुखं न भवतीति भेषः । वद्री हिर्दे दिविषे न, हेर्दे विषे स्थितः । नीविन्दस् चित ईयरी न, गीविन्दस् चितकनिता ईयरो नस्कीस्थ्यं । हरिरी अंथे व ईश्व सं हिर्दे तेन, हरिरी अस्य बाह्यः ईश्वो हरेसाह्य-

२८७। दिवो घंवा। (दिशः ६), घंरा, बाररा)। दिवो घंढं स्थादा। अज्ञै-रचान्वा दीव्यतीय:। क

२८८ | साधनकृतिविशेषसभेदकं धं कर्ता वस्ती | (साधन-भेदकं १४, घं १४, कर्ता १४, घः १४, चो ११)।

नेते: पुर्खेन सूषाभि नीना दृष्ट: ग्रिवो जनै: । 🌣

इत्यर्थः, इरीभी चिभिन्नाविति यावत्। चर्चकाः ईममिनितः समीपे। रामक्रणी गीपेशं नन्दम् उभयतः, गीपेशस्य उभयाः पार्यथो ; परे चर्चे गीपवालकाः गीपेशं परितः गीपेशस्य समन्तात्। प्रमथाः प्रिवगणाः सन्यं शिवं मन्यंतः, शिवस्य सन्यां परितः. गीपेशस्य समन्तात्। प्रमथाः प्रिवगणाः सन्यं शिवं मन्यंतः, शिवस्य सन्यां परितः। ईशाईनं विना यद्यं मस्यादत्यथंः। चच्चेतीपासिं विण्यासनाम् कृते सृतिनं स्यात्रित्यथंः। प्रमुरीयरः भृतं भृतम् चिभ, सन्यापाषाः, विभ्वविषये भित्तभावापत्र इत्यथंः। प्रात्तः गीविन्दम् चिभ, चिभल्योक्षत्य तिष्ठतीत्यथंः, चव विष्ठायंः। सन्यीः इरिं परि चभवत्, समुद्रेष्टं मिर्यते लच्चीः इर्रागिः प्रमितः स्वयः। इत्याप्तः विष्णम् चतु विच्वा सइ चईते। प्रमितः सम्यां चभवदित्ययंः। भगः श्रिवः विच्वा चतु विच्वा सइ चईते। प्रमादं विकान् उपरि समीपे विवान् स्वयः समीपे चासः एवं चीकान् चघीऽपः समीपे, चध्यि इतस्ततः सभीपं चासे इत्ययंः, चव सामीपे दित्यम्। उपर्युपरिबुद्धीनां चरनीयरवृत्ययः स्वव उपरिवृत्तीनां येश्ववृत्वयः स्वव उपरिवृत्तीनां येश्ववृत्तीनाम् उपरीत्यथंः, तिन न वि-उपरि-योगः। चव व्याप्तर्ये यावत्यव्यथीयं वितीया वक्षभः ; नदीं यावदर्य्यानोत्यादि।

- श्र क्रीड़ार्थस्य दिवधाती: करणं कर्म्यसंग्रं स्थादा। चव वाम्रव्दी स्थवस्थावाची, बेन दीव्यते: करणं निव्यं कर्म्यमंत्रं स्थात्, दितीया तुवा स्थादित्यर्थ:। चतएव दिवः सदैव सकर्म्यकलात् चवा दीव्यनं इति कर्म्यण प्रत्ययः, चवाणां दैविता इति (३०५) क्रदीये कर्माण वशीत्यादि। पाणिनि: १।४।४३।
- + साध्यते कर्मा नियायतेऽनेनेति साधनं करणम्। तथाच क्रियायां साध्यायां वक्षनां कारणानां सध्ये यद वसु मध्यवधानन क्रियानिम्पत्तिकारणं विविधितं तदेव साधनं भवति, मत०व "साधकतमं करणन्" इति पाणिनि: (१।४।४२)। तथाच → कारणाव्यवधाने तुक्षियानिम्पत्तिकारणान्। यदै विश्वितं तेतु करणंतत् प्रकौतिंत-

#### २८१ सङ्वार्णसमोनार्धार्थिवनापृथङ्-नानादी:। (सङ्क्लानार्थः २॥)।

एभियोंगे ची स्यात्।

सहियाचीं (च्युतो. भेरेनालं: तेन समोऽस्ति कः। विकारे रिहतः यभुः, सतामर्थः यिवार्चया॥ स्रीनेंग्रेन विना, यभुः पृथक् विखेन, तत् पुनः। न नाना यभुना, रामात् वर्षेषाधोद्यजोऽवरः॥ \*

मिति । यहा "कियायाः परिनिथितियदां ग्रापाराटनन्तरम् । विवचते यहा तत्र करणलं तदा सृतम् ॥ वन्तसदिविद्धा न हि वसु व्यवस्थितम् । स्थाल्या पच्यत इत्येषा विवचा द्वयते यतः ॥ इति इरिकारिका । कार्यन मनसा वाचा इत्यादी—वक्षणामित्र करण्यस् । फलभाधनयीग्यः पदार्थी हेतुः. यथा—विद्यया यशः, धनेन कुश्लेमित्यादि । फर्चथीनं साधनं, यदधीना कर्तुः प्रवृत्तः स हेतुरिति साधनहेलांभेदः । "ह्व्यादि-साधारणं निर्वापारसाधारणञ्च हेतुत्वम्, करणवन्तु कियामात्रविषयं व्यापारिगयतत्र' इति सिद्धान्तकीसुदौ । विश्रेष्यतेऽनेनिति विश्रेषणं, जटामिन्तापस इत्यादि । भेदयति सामान्यावगमे इतरिस्यो व्यवच्छितित यत् तत् भेदकं व्यवच्छिदकं, नामा श्रिष इत्यादि । विश्रेषण विद्यमानं, भेदकल्विद्यमानित्यनयीभेदः । प्रक्रल्या पटः, जाल्या ब्राह्मणः, जन्मना पन्थः, स्वभावेनोदारः, सुत्वेन याति, साक्तल्वेनादन्ते, प्रार्थेण वैच्यतः, दशाहेन पर्ध्यतः चल्या काणः इत्यादी पटुलभवनादीनां प्रक्रत्यादि साधनत्वविवच्या करणे त्रतीयित दर्गसिष्ठः । प्रक्रत्यादिश्वभवनादिनंत वार्त्तकम् । यः करोति स कत्तां, क्ष्यास्थः कत्ते इति तार्किकाः । "स्वतन्तः कत्ती' इति पाणिनिः (१।४।५७) । "कियासप्यप्राणकी कत्ती कत्तां इति तार्किकाः । "स्वतन्तः कत्ती' इति पाणिनिः (१।४।५७) । "कियासप्यप्राणकी कत्ती कत्तां इति तार्किकाः ।

साधन इंतृ विश्रेषणभेदकम् इति समाहारदन्दः । धं करणं, घः कर्ता । साधनादीनि धः संज्ञानि स्युः, कर्ता घमंज्ञः स्थात्, उभयव च स्थादित्यणः । नेत्रैरिति । नेत्रैः करणैः, पुण्येन हेतुना, भूषाभिर्विश्विष्टः, नामा भेदकीन, श्रिवः, अभैः कर्त्तृभि-दंष्टः इत्यन्त्रतः । पाणिनिः २।३।१८,२१,२३ ।

 भयं: प्रयोजनम्; सद्य च वारणख समय जन्य भयंय ते भर्याः भिभिषेयाः वैषां ते सद्दवारणसमीनावां वां:। नाना भादां येवां ते नानावाः। ततः, सद्दवारण-समीनार्थावांच विनाच पृथक्च नानादाय ते तैः। एमियों ने ततीया स्थादिलार्थः।

## २८०। कालभाड्डे वा।

(कालभात् ५ कुं ।, वा ।१।)।

कालवाचिनो नचवात डे त्री स्थादा।

रोहिष्यामभवत् कणो रोहिष्यासीच चिष्डका। \*

# २८१। मानाद्वीपुसायां है।

(मानात् प्रा, वीप्तायां ७।, दि ७।)।

यतं यतं पयोऽपीप्यत् वकान् विशाः प्रतेन गाः ।

अप अर्थिनेव योगे, न तु अन्देन, तेन सहागतः पिता इत्यादी व्यवधानेऽपि स्थातः एवं सहार्थ।दिभिगंस्यनानैर्पि स्वात्। सहेत्वादि-श्रचातः दूंशा शिवेन सह श्रची र्देशित र्दश्यातीः किपि र्दश्यन्दः, एवं साकं साहै समामियादिभिः। अध्यतिश्यीः भेदेन अर्ल भेदी व्यर्थ इत्यर्थ: एव साम्रा सा इत्यादिभिर्वारणार्थ:। तेन अच्यतेन समः कीऽस्ति. एवं समान तृल्य इत्यादिभिः, इवशब्दस्य त साहश्ययीतकत्वेन वाचक-त्वाभावात तेन योगे न स्थात ; एवं तृजीपमाश्रव्हयीगेऽपि न स्थात. यथा क्रायास तुला नास्ति इत्यादि । अत्र समार्थैः षष्ठापीति (३०२) सूचे बच्चति । अभार्विकारै: कामजीघादिभिः गडितः चीन इत्यर्थः, एवमत्यादिभिः। सतां साधनां शिवार्मया ष्यं: प्रयोजनमः। ईग्रेन विनायो: चिवर्गसम्पत्ति-नेस्यादित्यंयः। ग्रम्भवियेन पृथकः विश्वस्य नश्वरत्वादिवार्थः। तत् विश्वं प्रनः प्राधुना न नाना न भिन्नं, विश्वस्य प्राधुमार-लात्। पृथमिवनानानाभिस्तृतीया विशीया पश्चमी चेति पाणिनिः (२।३।३२)। अव यस्ये पृथेखः नानाभ्रद्राभ्यान्तु हतीयैव । अन्यार्थेन त् पश्चमी । आदाभ्रद्रात्— घषी तत्रः क्षण: रामात् वलदेवात वर्षेण अवर: कानिष्ठ इत्यर्थ:, अव अवरमध्दयीगे वर्षेणीति हतीया। एवं मासेन पूर्वः, अस्तेण कलहः, गुड़ेन सित्र इत्यादि । अत्र प्रसिती-क्सकाभ्यां योगे तृतीयासप्तम्यौ स्थातानिति (पाणिनि: २३।४४) वक्तव्यम । पाणिनि: ·२।३।१८,३२.७२, वार्सिकञ्च।

अन्वचवावका ऋतियादयः प्रव्दाः, चन्द्रपतीय तसत्रचवित्रिष्टका लेयु च वर्तनी । अव च,काले वर्त्तमानादिश्वचादिशब्दादिश्वकाये वृतीया वा स्थादित्यथः । क्रचाः रीहिस्सां रीहिस्पीनचवयुक्तकाले स्थमन अन्तरार, चिल्डका च रीहिस्सा ताहके काले साधी-दवतीयां। अव रीहिस्सामिति कथिकरणे रीहिस्सा इति वृतीया वा। एवं प्रये प्रयेपिया गर्कास्ति कालि कों, रीहिस्सा प्रतिवृत्तस्त । पाणिनिः राश्यधः ।

दिन्रोपेन कीणाति, पश्चनेन क्रीमाति, दिन्नोणं पश्चनं।

# २८२। सं**ज्ञोऽस्**गृतौ। (संशः ६।, प्रसृतौ ७।)।

स्मरणादन्यस्मित्रधे वर्त्तमानस्य संपूर्वस्य जानाते हे वी स्थाहा। संजानीस्य स्ब-मीया च संजानीहि ततः शिवम्। पे

# २८३। संदानो भेऽधर्मो नित्यम्।

(संदान: ६। भे ७।, ऋधर्में ७।, निखं १।) ।

संपूर्वदानसम्बन्धिनि अधर्मो भे त्री स्यातित्यम्। संयच्छते सागोधिष्टं त्रीमः संयच्छति त्रियै। ‡

<sup>\*</sup> ढे कसंबि प्रयुज्यकानात् मानवायकात्. कम्यणं विशेषणीभृतादिति यावत्, वीसायां वाच्यायां हतीया वा स्यादिव्यथं:। मानम् द्यत्तापरिक्षेदकं, तेनात परिमाणवाचकस्य मञ्जावाचकस्य च ग्रहणमिति । विणः प्रतं प्रतं वत्वान् प्योऽपीष्यत्, प्रतेन
गाथ पयोऽपीष्यदिति प्रेथः। प्रव धर्तं धतमिति कर्माण प्रतेन दति हतीया वा। प्रतं
प्रतमिति पन्तवीप्रायां दिलं, प्रतेन दति हतीयया वीपाया उक्तवान् न दिलम्।
(शतं ध्रतं वत्याः गावय प्रयः प्रपुः इति ख्रञान्तवाकां, वत्यान् इति गा इति च प्रञानकर्मः कर्मः कर्मालम्।) विद्रोणेन कीषाति दिह्रोणं कोणाति, विद्रोणपरिमितं द्रव्यं कीणातीस्थयः। पञ्चकंन कीणाति पञ्चकं कोणाति, पञ्च पञ्च प्रग् कीणातीव्यथः। दिद्रोणेनिति
पञ्चकेनिति च क्षम्यणि हतीया वा। हौ हौ द्रोणौ परिमाणमस्य इति समासिन,
पञ्च पञ्च परिमाणमस्य इत्यर्थे विह्नित-तित्तितप्रयथेन च उक्तवात् न दिलम्। प्रव "गस्यम।नापि किया विभक्ती प्रयोजिका इति, प्रतेन प्रतेन वत्वान् पाययित प्रयः,
प्रतेन परिष्क्रियोव्यर्थः।'' द्रति सिद्धान्तकौमुदी। "दिद्रोणेन धान्यं कीणातीति"
प्रक्रवादिश्य उपसंख्यानमित्यस्थीदाहरणमिति सवैव।

<sup>†</sup> समी का: संज्ञानस्य, न स्वृतिरस्वृतिस्वयाम्। हे माधी लं स्वमात्मानम् ईशा शिवेन च संज्ञानीष्य सम्यक् जानीहि, (८८८) संप्रतेरस्वृतौ इत्यात्मनेपदम्! चन ईशा इति कसंगी वतीया, स्वमिति विकल्पपयः। स्वृतौ तु — ततस्वदनकरं थिवं सजानीहि स्वर इल्लर्थः। पाणिनि: २ । ३ । २२।

<sup>‡</sup> संपूर्वस्य दा-न 'दाने' इत्यस्य प्रयोगे अधर्मे धर्माविकडं भे सम्प्रदाने नित्यं इतीया स्मादित्ययः | श्रीमः श्रीपतिः गोस्मा पर्शस्त्रस्य दृष्टं वाञ्कितं संयक्षकिः स्माद

# २८८। यसौ दित्सासूयाक्रोधेर्ष्यार्क्तचद्री इ-**खाङ्ग**ञ्चावस्प हिश्रप्राघीचाप्रतियुप्रत्यनुगृघार्य्य घी मं ची तादर्थे च।

(यसी ४।, दिल्ला — धार्थीर्था: १॥, भं १।, ची ।१।, तादर्थे ०।, च ।१।)। यसी दातुमिच्छा, श्रम्यादयः स्थादेरर्घम यसी, तद् भ संतं स्थात, तत्र ची, तादर्थे च ।

वान ! चत्र गीव्या इति चवर्म्मसम्प्रदाने स्तीया । (८०८) दान: सा चेम्रार्थे इत्यात्मने-पटम । अधि कों - श्रीशः श्रियै निजयबै। संयक्ति इष्टमिति श्रेषः । "अश्रिष्टव्यवहारे टाण: प्रयोगे चतुर्थार्थे हतीया" इति वार्त्तिकम् ।

\* भाषतिभ्यां यः भाषतियः, प्रत्यनुभ्यां गृः प्रत्यनुगृः, स्थाय क्रुय साध्य सृहिय भ्रष च राध च द्रंच च भावतियुष प्रवातृगृथ धारिय ते, तंवामर्थाः स्वाङ्ग्याचस्य दिश्रपाधी-चाप्रतित्रप्रत्यतुष्ट्धार्थयाः । ततः, दित्सा च भन्या च क्षीधय ईष्णां च विचय द्रीहस स्थाङ्क्षावस्रुहिम्पाधीचाप्रतिसुपरानुगृष्धार्थयांच ते। दानस्य पार्वं सम्प्रदानम्। "कर्माणा यमिमप्रैति स सम्प्रदानम्" इति पाणिनिः १।४।३२। "कियया यसिमप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्" इति वार्त्तिकम्। "प्रदानाभिसम्बय्यमानं सम्प्रदानम्" इति पद्मनाभः ।

दात्मिका दिल्या, काशीस्थविषाय गां ददातीत्यादि-सिडार्थम् इक्छापर्यंन्तग्रहणम्। दानन् खखवधंसाननर परखलीत्पत्थनुकृत्यापारः, चतएव रनकस्य वस्तं ददाती स्वादी न सन्प्रदानलम्। श्रवि भयं ददातीत्वादिप्रयोगस्तपचारात्। एवच "ददात्वर्थस्य गौणलेऽपि सम्प्रदानं भवत्येव, खिल्किकोपाध्यायः ग्रिष्याय चपेटं ददातौति भाष्यप्रयी-गात''। सिद्धान्तकौसुदीटीका। मममग्राद्याचे दानमित्यादिषु तु निबचावशान् न सम्प्रदानम्। विविधं हि सम्प्रदानम् — "प्रनिराकरणात् कर्त्तस्यागाञ्चकर्भणेपितम्। ग्रेरचानुसतिभ्याञ्च लभते सम्प्रदानताम् ॥" दति इरिकारिका। तच पनिराकर्तु सम्प्रदानं यथा, देवाय वस्त्रं ददाति ; प्रेरकं सम्प्रदानं यथा, याचकाय धनं ददाति ; भनुमन्त सम्प्रदानं यथा, गुरवे गांददाति । भन्या गुणेषु दीवारीप:, क्रीघिश्वत्तविकारः विशेष:, ईर्ष्या अवसा. विधरनुराग:, द्रीष्ठीऽनिष्टाचरणमः। अस्यायर्थानां धात्नां कत्त्रं प्रति चत्त्रादिकं तत् सम्प्रदानमिति। "मुधदूदी वपस्ट्यी: कर्मा' रति पार्चिनिस्वेच (१।४।३८) देवदर्श संकुष्यति राजाननभिदुद्यतौत्यत्र कर्माचि दितीयैन, ददातु सङ्ग्रः स सुखं हरिः, स्नरात् गोपीगणोऽस्यित कुप्यतीर्थित । स्न रोचते दुद्यति तिष्ठते हुते-ऽस्नाविष्ट यस्ने स्टह्मय्यमत च ॥ \*

गर्गी राध्यति रामाय क्वच्लाय सोचते वृजे। श्रभाश्रमं पर्यालोचयदित्यर्थः ।

न तु चतुर्थी। स्याधालयं रह स्थिया स्वाभिगयज्ञापने च्छा, एवं क्र-साघ अप-धातृनां यथाक्रमं क्रवन साघन-अपनै: स्वाभिगयज्ञापने च्छा अर्थः। भत्यप्व "साघादे यं ज्ञिष्मा" इति कमदोश्वरः। "साघृहुङ्ख्यायपा प्रयोगे यत् जपयितृमिक्षा तत् सम्प्रदानं स्थान्" इति गीथीनन्दः। स्थादीनां प्रयोगे यं प्रति स्वाभिगयज्ञापने च्छा तत् सम्प्रदानं स्थान्" इति गीथीनन्दः। स्थादीनां प्रयोगे यं प्रति स्वाभिगयज्ञापने च्छा तत् सम्प्रदानमित्यः। स्थि इति ह्योरच यभागमप्र्यालोचनम्यः, यस्य ग्रभाग्रभप्र्यालोचनं तत् सम्प्रदानमिति। भाषितपूर्वप्रयाति इज्ञीकारोऽषः, स च यस्य सम्प्रयो कियते तत् सम्प्रदानम्। प्रत्यतुपूर्वप्रयाति (नत् गिरतेः) पूर्ववक्तः प्रोग्चाचनमयः, तत्र पृथ्वयक्ता सम्प्रदानम्। प्राति घ्षातृजीनःः, तस्य ग्रहोतापरिजीचनमयः, तत्र यस्य धनं ग्रहोत तत् सम्प्रदानम्। धारोति घ्षातृजीनःः, तस्य गर्वानां यो विषयः स सम्प्रदानसंगः स्थात्, तत्र च चतुर्थी स्वादित्यवः। ताद्यवे इति—स चासौ भवेषित तद्यः तस्य भावस्वादयः, एवच तस्याये। निवित्तस्यः। ताद्यवे इति स्वाद्ये, तत्य, ताद्येष्ठ ताद्येष्ठ द्विकावेषि तस्यः। यथा मित्रति तस्य त्याप्रयोगमे तस्यात्, यस्य निवित्तस्यादि चतुर्थीत्यः। यथा — ज्ञानाय पाठः, समकाय धूम इत्यादि। पाणिनः २।३।१२,१।४।३१—४१, वानिकाच।

विभीषणायाश्याव राज्यं प्रत्यश्रणोद्ययः। प्रतिज्ञातवानित्यर्थः।

रामः प्रत्यस्यात्तसौ लक्षायोऽन्वस्यात् किपः । रामं वदन्तं प्रोत्साहयामास इत्यर्थः।

सर्वी धारयते सर्वे सङ्ग्रस्तं भज सुक्तये।

# २८५। श्रुतार्थ वषड्टिंत सुख खाहा खधा

खित नमोभि:। (मकार्थ-नन्नि: ३॥)।

एभियोगि ची स्थात।

दैलेभ्योऽलं हरिः, पूणे वषट्, सङ्गो हितं सुखम् । स्वाहामये, स्वधा पित्रे, स्वस्ति धात्रे, नमः सते ॥ 🅆

<sup>\*</sup> गर्गों सुनि: त्रजे गोष्ठे रामाय बलदेवाय राध्यति सा, कणाय ईवते सा, रामस्य क्रणस्य च यभागमं पर्याली वयदिश्यं: (पर्याली वयदिति, भिक्ति वा चुरादय इति ज्ञापकात् लीचृ कीचे इति भौवादिकात् स्वार्थे किः)। रामः विभीपणाय राज्यम् भाग्याव यगस्य प्रत्यप्रणीत् दातं प्रतिज्ञातवानित्ययं। लच्चणस्यौ रामाय प्रत्यप्रणात्, किंपः सुर्योवः (तसौ रामाय) भन्वस्यणात्, विभीपणाय राज्यं यगस्य दास्यामीति वदलं रामं साधवादेः प्रीत्याच्यामासित्ययं। सर्वः विवार सङ्घी भाकेस्यः सभ्वे (वाक्तितं) धारस्यते, द्यालुत्या शिवस्य भभमणेत्वेन निर्देशः, भारस्यते इति प्रत्यत्वकर्ति (८१८) भारस्यते, द्यालुत्या शिवस्य भक्तियं सुक्तये सं सर्वे भन, भव सृत्तये इति तादस्ये चतुर्यों। यस निमित्तस्य कस्यंकारकेण सह योगो वर्त्तते तत्व (३११) सप्तस्येव, यथा वस्त्रपु रजक सवधीदिति। भव सु सर्वेण सह सुक्तिनं योगः।

<sup>†</sup> मक्तः भर्यो येशां ते स्रक्तार्थाः भर्लमक्षप्रसुप्तमध्ययात्रप्रस्तयः, ते च वष्ट् च हितस सुख्य खाडा च ख्रधा च ख्रक्ति च नमय तैः। भव हित सुख इत्यन् न हितार्थ-सुखार्थशीय इत्यम् । वष्ट् खाडा ख्रधा ख्रक्ति नमः इत्येतेषां त्यागार्थानां सन्तार्थानः स्व स्वयं मा च "अर्थमञ्चेन प्रयोजनार्थानां सहस्तम् ; हितस्र ब्हेन क्ल्यायपर्याय-परितानां सद्रश्रोसन्धिवादीनां साध्रमध्येतिनाय यहस्यम् ; सुख्यस्टेन, सुत्रीत्यादीनां स्व

# २८€। हेनाशिषि वा।

(डेन श, [भयवा दे अ, न । १।], भागिषि अ, ना । १।)।

सङ्गाः सतां वा शं भूयात्। \*

# २८७। परिक्रियो घेवा।

(परिक्रिय: ६, र्घ ०।, वा ।१।)।

भक्त्ये सुतिः परिक्रीता सङ्गिविणो क्षारिभिः। 🕆

ग्रहणम्'' इति भरतः। नारायणं नमस्त्रत्य द्रव्याँटी छपपदिविभक्तीः कारकविभिक्तिर्गरी-यसीति (वलीथसीति वा) न्यायात् कर्म्यत्वम् । पाणिनिः २।३।१६, वार्त्तिकञ्च ।

दैशेश्व इति — इर्दिलंश्वां इल समर्थ । पूर्ण मूर्याय वषट, पूर्ण यहातव्यं तत् वषट इत्यचार्यं दातव्य मिल्यं : । सहाः मापृश्वो हितं सुख्य भवतोति श्रेषः । अग्नयं स्वाहा, पित्रे स्वधा, धात्रे स्वस्ति, मते विषात्रं नमः, अग्नयादिश्या यत् दातव्य तत् क्रमेण स्वाहा इत्यादि उचार्यं दातव्य मिल्यं :। भत्र भक्तार्थे हित्सस्वैष यांगे षष्ठापीति (२०२) वक्तव्यम् ; "भक्तार्थे: पष्ठापीयत" इति क्रमदीषरः । तेन प्रसुर्वभूष्भुवनवयस्य, नापीयी-दस्य क्षयनेत्यादि साषु ।

- ट-प्रव्हेन कर्मा किया घोचाते, टशब्दश्य क्रियावाचकलं घे चाहिट काः (१०६२) इत्यच माहिट माहिकियायानिलार्थेन स्वय बत्यति । तत्य प्रयुक्त्यमानेन क्रियावाचक-पदेन योगं माशिष (इष्टार्थाविष्करणे) गस्यमानाया चत्यौं वा स्याहित्यथः । भयवा माशिष गस्यमानायां चत्यौं वा स्थाति त्र कर्माण प्रयुक्त्यमाने इत्यथः । कर्माण तु द कर्माण प्रयुक्त्यमाने इत्यथः । कर्माण तु क्ष्याः भतां भं करीतु इत्यादौ न स्थात् । माशिषि क्षिं, तेषां कुश्वं जातम्, भायुष्यं प्राणिमां मृतमिलाहि । सहाः मतां वा इति पचे षष्ठीविधानात् षष्ठायं एवायं विधिर्वति, तेन याने कुशलं स्थादित्यादो न स्थात् । भव स्वस्तिवजंकुश्वायुष्यप्रयोजननमद्रमद्रहितसुख्वपथ्यशंभनार्थेरव योगं ज्ञयम् । पाणिनः र।३।०१।
- † परिपूर्वस्य क्रीणार्तः प्रयोगे धे करणे चतुर्घो स्वादा इत्यथः। भक्त्यै इति सिक्षः साधिक्षः विकास स्वादान् भक्त्यै सिक्तः परिक्रीता, चिरिक्षः धव्यक्षः द्वापाय द्वीचेन वा परिक्रीतिति श्रेषः। चटा इरण्डेन वा परिक्रीति श्रेषः। परेः किं, प्रतंन क्रीताऽत्यः। वेतने एवार्यं विधिरिति क्रमदीत्रः। परिक्रीतो वसनादौ करणें ''इति तत् सूचम्। ट्रमीया सिक्षैव, चत्र्येश्यं विधानिति गीयो चिक्षैव, चत्र्येश्यं विधानिति गीयो चिक्षैव, चत्र्येश्यं विधानिति गीयो चन्द्रः। व्यवस्थायं परस्वे वाक्ष्यः दिक्षानिति गीयो चन्द्रः। व्यवस्थायं परस्वे वाक्षच्रेऽवस्त्रः वक्त्ये वाक्ष्यमध्यः तित्वेनास्य निव्यवस्थानै, विक्रस्थायं वाग्रइणम्। पाथिनिः शक्षाव्यः ।

# २८८। गत्यर्धमन्यढे चेष्टावच्चेऽनध्वाकाक-भ्रक्षमुगालनावन्त्रे वा।

(गत्यर्थमन्यते ७।, चेष्टावज्ञे ७।, चनध्या—भन्ने ७।, वा ।१।) ।

गत्यर्धमन्यत्यो दें क्रमान्मार्गकाकादिवर्जे चेष्टावज्ञयोसी स्याहा।

वजाय द्रजिति श्रीमो वजं वजिति नेमवः । न ला तृणाय मन्येऽहं न ला मन्ये तृणं खल ॥ चेष्टावज्ञे किं—मनसा दारकामिति; लां मन्येऽहं जनाईनम्। श्रध्वादी तु-—गच्छत्यनन्तः पत्यानं, न ला काकंस मन्यते। \*

गतिर्थीयस्थ म गत्यर्थः सच सन्ययंतत तस्य ढंतिसान । चेष्टाच प्रविज्ञाच सत्तिसन्। न अध्या अनध्या, काक्य श्क्य श्रालय नीय अवस्य तत, न तत अकाक-श्क्यस्थालनावनं, भन्ध्वाच भकाकश्क्रस्थालनावत्रच दशे: समाहारमस्मिन्। यथा-क्रमदर्शनार्थे नञ्जदययीगः । चेष्टा कायक्षतच्यापारः, अवज्ञा अपक्षष्टतेन ज्ञानम् । ततम - गत्थर्थपातीरध्ववर्जित कर्माण चेष्टायां गम्यमानाथां, मन्यते. काकादिवर्जिते कर्माण अवक्षाया गस्यमानायां, चतुर्थी वा स्थादित्यर्थः। मन्य इत्यव स्थना निर्हेगात् मन भावबंधिने इति तनाहिपठिती न रुद्धते: यथानलां हर्षं मन्वे। भातः त्यगायन गणयतीत्यादि चमाधु। ब्रजायेति---यौग्रः ब्रजाय ब्रजति, केमवः ब्रजं व्रज्ञति, पाद वारेणा गच्छतीत्यर्थ:। हे खल चाइंत्वात्वां तृषाय न सन्ये, त्वात्वां तृषां न मन्ये, त्रणाद्व्यपत्तरं मन्य दूल्यर्थः। मनधातीर्येन कर्मणा भवजा गम्यते तचैव चतर्थौ वा स्थात् भातएव त्वा दत्यत्र न चतुर्थीः; इदमेव क्रामदीयरेण "युष्पद। दरनिभाधानाव स्यात्" इति सूर्वेण स्पृष्टीक्रतम्। मनसा द्वारकाभेतीत्यच चेष्टाभावात्, त्वां मन्पिऽइं कनाईनिस्तियत च भवज्ञाभावात न चतुर्थी। भननः पत्थानं गच्छतीत्यत्र मध्यक्तसंकः त्वात्, स त्वात्वां काकं न सन्धर्त इत्यव काककर्मक लाग्न न चतुर्थी। एवं श्कादि-कर्माग्यपिन चतुर्थीस्थात् । को वित्त् ग्र्कत्यच ग्रकत्य इति वा पठन्ति । एवं, तादर्थे चतुर्धीसिज्ञाविष, गामाय सङ्गच्छतीत्यादिषु (८०५) समी गसच्छित्यादिमा घढलादात्मनी-पदप्राप्तिनिरासार्थनिदनियाहः। पाणिनिः २।३।१२,१०; वार्त्तिस्ताः।

# २८८। यतीऽपायभी जुगुपापराजयप्रमादा-दानभू चाणविरामान्तर्द्विवारणं जंपी।

(यतः ५।, भपाय-वारणं १।, अं १।, पौ ।१।) ।

यत एते तत् जसंद्रं स्थात्, तच पी। \*

विभीषणः पदाद्वष्टो, भातुर्भीतो, जुगुपितः । पापात्, पराजितो दुःखा-दममत्तो विधेः, सतः ॥ श्रात्तविद्यो, सुनेर्जातो, स्वातुष्त्वातो निजै-भैवात् । विरतोऽन्तर्ष्टितो दुष्टात्, शोकात् रामेण वारितः ॥ १

<sup>•</sup> घपायस भीस जुगुसा च पराजयस प्रमादस घादानस भूस घायास विरामस घलाईस वारणसित समाहार: । एते यस्नात् भवित्त तदपादानसं संस्थात्, तद पश्चमी स्थादिलयं: । घपायस्वनं, भीभंगं, जुगुसा निन्दया मनीनिवृत्तिः, पराजयः सीदुनमक्त्या निवृत्तिः, प्रमादः भास्त्रविहितकः सांकरणम्, भादानं ग्रहणं, भूरुत्पतिः पादुर्भावस्, चाणं रचणं, विरामी विरितः, चन्तिर्वरं तद्या । चपितित्रयसित विधापादानिम्यते ॥" "निर्दृष्टविषयं किसिद्यानविषयं तथा । चपितित्रयसित विधापादानिम्यते ॥" इति प्रसारिका । "भूवमपायेऽपादानम्" इति पायिनः ११८१२ । तच पश्चमी २११२ । भीः चाणम् ११८१२ । पराजयः ११८१२ । वारणम् ११८१२ । चन्तिः १८८१ । सर्विदि । स्वाप्तनं, प्रवर्णं, ज्ञानमध्ययन-वित्ति । स्वाप्तिः ११८१२ । स्वाप्तिः १८८१ । स्वाप्तिः । स्

<sup>†</sup> विभीषण इत्यादि—विभीषणः पदात् स्थानात् सष्टचिततः, सातुः रावणात् भीतः, पापात् जुगुस्तिः पापं निन्दन् तसात् निवच इत्ययः, दुःखात् पराजितः दुःखं सोटुमयक्या निवचः, विधेः बास्त्रविद्वितकक्षंणः चप्रमत्तः चिनवचः, सतः पिष्ठतात् चात्तविद्यः चाना गर्डोता विद्या येन ताह्यः, सुनैविद्ययवसी जातः ज्यानः, सात् राव-णात् (विधोयतात्) निजैराकौरैस्त्रातो रिवतः, भवात् संसारव्यापारात् विरतो निवचः, दुष्टात् (रावणात्) चन्तर्हितो लुक्कायितः, रामेण श्रोकात् वारितः लामहं लङ्काराजं करिष्यामौत्यादि प्रयवचनसुक्ता श्रोकात् निवारित इत्यथः। एवं यवेभो गां वारयित, कृपाद्भं वारयतीत्यादि ।

# ३००। श्वन्यारस्यार्थारात्विहिर्वनर्तेप्रति-पर्यापाङ्दिक्तारुदेर्हेतुयवर्षे च।

(भन्य-शब्दै: ३॥, हेतुयबर्थे ७), च ११।)।

एभियोंगे हेती यवन्तस्यार्थे च पी स्थात्। \*

श्राक् व्याप्तिसीकी-स्थागेऽन्यी, प्रतिदाननिधी प्रति । व नेतरो विशारीयानात्, भवात् प्रश्वति सोऽर्च्यते । सोऽस्मदारात् विष्कृत्वत्, यं विना नार्थी ववादते ॥ भक्तेः प्रत्यस्तं यस्थोः, प्रद्युक्तः कीयवात् प्रति । पर्य्यनन्तात् त्रयस्तापाः, श्रासत्योः सेव्यतां हरिः ॥ ब्रह्मास्यासकतात्, पूर्वः क्षश्वाद्रामीऽवरो गदः। श्वानन्दादीखरः ग्रैलादासनादीचतेऽलकाम् ॥

ग्रैसमार्ह्य श्रासने उपविष्येत्यर्थः । क्ष

<sup>\*</sup> प्रत्य चारस्य घरारस्यो, ती घर्षों येवां ते प्रत्यारस्यार्थाः । दिशि वर्त्तमानाः प्रव्याः दिक् ग्रन्तः, प्रत्यारस्यार्थाय घाराञ्च विदय विना च चरते च प्रति च परि च पप च पाङ् च दिक् श्रन्दाय ते तैः । यप् प्रति क्षाच् स्थाने यवादेशः, तस्य केवलस्यासम्यवात् तत्तस्य यद्यम्, तस्यार्थां यवर्थः, हेतुष यवर्थयेति हेतुयवर्थे तस्यिन् । दिक् ग्रन्दा प्रति दिस्देशकालवाचकानां निर्देशः, ते च पूर्वपरादयः प्रागुदक् प्रत्याद्यथः । किञ्चाच दिस्देशकालवानां च्याचानिव ये वाचकासीवानिव यद्यं, तेन कालनाववाचकस्य नासादेनं प्रसन्तः । प्रत्यार्थेरारस्थार्थेरागदादौरष्टिभः दिग्याचकश्रस्थे योगे, हेतौ प्रयुज्यमानात् किञ्चात्, यवसस्यार्थे गर्ममाने च, पद्मनी स्थादिल्प्यः ।

<sup>†</sup> प्रति परि चप चाङ् चतुर्णामधिविभेवेष्व यष्टणसिखाष्ट चाङ् व्यासीत्यादि— चच चाङ् व्यासिचीचोरयेयोवं चंते, व्यासिरिमिविधः, चौमा चवधः । प्रति प्रतिदान-निषो वचते, दानच निधिचेति चमाडारे दाननिधिः, स्वतान् पृंस्तं, प्रतेदानिधिः प्रतिदाननिधिक्तास्यन्, प्रतिदाने प्रतिनिधौ चेत्यर्थः । प्रतिदानं विनिमयः, प्रतिनिधिः सत्त्यः । चनौ पर्यंपौ त्यागे वजने वचेते । पाणिनः १।४। प्रदूप्ट, ८२ ।

<sup>‡</sup> नेतर इ.सि—विश्वः ईशानात् श्रियात् न इ.तरः न सिन्नः, न भीच इ.ति केथित । सु विश्वाः सवात प्रस्ति जन्मन चारस्य चर्चाते । प्रातःकालं समारस्य इत्यादिकन्तु, चप-

# ३०१। वारादधै:। (बारा, बारादवैं: २॥)।

दूरान्तिकार्थैः पी स्यादा ।

रामाद्रदस्य यो दूरं पापादुः खस्य सोऽन्तिकम्। #

# ३०२। समाधैनार्थस्त्रसाद्वितसुखैर्निर्दारे सम्बन्धे ढेच षी।

(समार्थ—सुद्धै: २॥, निदांरे अ, सम्बन्धे अ, दे अ, च ११।, घो ११।)। एभियोंगे एषु च घी स्थात्।,

पद्विभक्ती: कारकविभक्तिर्गरीयसीति न्यायात् कर्याणि दितीया। स विक्यु: अस्मत् भारात भाषाकं निकटे इत्यर्थ: : लात् विहः तव विहिरिव्यर्थ: । हपात् धर्मात विना ऋते च प्रां सुखन अर्थय न सवतोत्पर्थ:। विना ऋते इति द्वाभ्यां यीगे (२८६) दितीया च, विना प्रच्देन यीगे (२८८) स्तीया च भवतीति बाध्यम्। प्रभी: भक्ते: प्रैति प्रतिदानम् श्रमृतं सीच , य: श्रमी भित्तां करोति श्रभुक्तसा सुतित ददातीलार्थः । प्रयुक्तः कामदेवः कंग्रवात् प्रति ¦क्यश्य तुल्य इत्यर्थः । चयस्तापाः चाध्यान्मिकाधिदैविकाधिभौतिक-संज्ञकाः भागनात् परि भागनेन वर्जिता इत्यर्थः । एवं भाषानैनात् चयसापा इत्यपि। भासत्यीः सत्यपर्यनं इरिः धेन्यताम्। भासकतात् सकर्वं जगत् व्याप्य बद्धापरसियर: ऋसि । रासी बलराम: क्रम्यात् पूर्वः पूर्वकालीन: ज्येष्ठ: इत्यर्थः। गदी !गदनामको बालक: कचात् भवर: पश्चिमकासीन; कनिष्ठ: इत्थर्थ:। ईश्वर: शिव: भानन्दात् हेती. ग्रैलात् ग्रैलम।कश्च आसन।त् आसने उपविद्या अलकां कुवेर-पुरीम ईचते प्रस्ति ; भन भारुद्यति यननसार्थे शैलादिति कर्माण पश्वनी, उपविद्यंति यवलसार्थे पासनादिति पिथकर्णे पश्चनौ । कर्माधिकरणाभ्यामन्यव यवर्षे पश्चमी न स्यादिति प्रास्तः। पाणिनिः राशाश्वः,११,२५,२६,३२ ; वार्त्तिस्य। भव वक्तव्यम् "करणे च सीकाल्पक्तच्छुकतिययस्यासःचिषयस्य" (पाणिनि: २।१।३३) इति सूत्रेण "सीकान्यक्रमुदन्वता" इत्यादी पञ्चमी ढतीया च। एवमेव "सीकादि-र्धर्भवाचिन: करणात्'' इति क्रमदीवरः।

\* भारात् इत्यव्ययस्य भयं इव भयं यिषां ते भारादर्यां ते: । भारात् ट्रसभी-पयोरित्यमरः, भत भाइ ट्रान्तिकार्थेरिति । यः रामात् बद्धस्य च द्रं रामस्य बद्धस्य च ट्रेरे तिष्ठतीति शेषः, स पापात् दुःखस्य च मन्तिकं पापस्य दुःखस्य च मन्तिकं तिष्ठती-सर्थः । भव ट्रं मन्तिकस्य सप्तस्यये सितीया । पाणिनि: २।३।३।४।। यः सर्वस्य समी यस दिचिपेनीत्तरा स्थितः। उपर्येष: पूर्वितय पयात्, यस्याखिलं हितम्। मुखञ्च, तस्य देवानां वर्यस्य, पदयीर्भेजे ॥ \*

३०३ | ज्ञोऽज्ञाने धे । (जः ६१, अभाने ७), धे ७।)। ।

शक्तीर्म्मुकुन्दे जानीते भक्त्या जानाति शङ्करम।

समोऽणी विषां ते समार्थाः, समानसमतुल्यसहमादयः। समार्थाय एनय भाष रियमम् च तस् चतात् चहितञ्च सुख चतानि तै:। एन चारि मस्तस्तात् षडेते तिज्ञताः, तेषाच क्षेत्रलानामसभावात् शदन्तानां ग्रहणम्। एन इति (५१८) वैनीऽपीत्वनेन, चा इति (५२०) दिविणीत्तरादाष्टीत्वनेन, रि इति (५२४) निपातनात्, च सुद्रति (५२२) चतएव च सु, तसुद्रति (५११) तसु क्रीरित्यनेन, सात् दति (५१८) दिकशब्दादित्यनेन। जातिगुणिकियाणासुल्कवेंगापकर्षेण वा सजातीयात प्रयक्तकरणं निर्द्धार: । सम्बन्धय प्रवयवावयविभाव-जन्यजनकलादि-रनेकविध: । समार्थै:, एनादि-घटतां ज्ञाने कितसुखाभ्याच योगे, निजारणे, सन्वर्भ, कर्माण च, षष्ठी स्यादिस्यं:। हिष्ठी यद्यपि सम्बन्धः षष्ठात्यतिन् भंदकादिति जीयम् । यः सर्वस्थेत्यादि -- तस्य पदयी-र्भजे इत्यन्वयः, यः सब्बेख नगतः समल्ल्यः, यत्र सर्व्यय दिचिषेन स्थितः, स्थित इति वर्तमाने तः, दिविषे तिष्ठतीत्यर्थः ; एवं उत्तरा उत्तरस्यां दिशि, उपरि जर्बभागे, भर्धः निसदेशे, पूर्वतः पूर्वकाले, पदादत्तरकालेच, सर्वस इत्यनेन स्थित इत्यनेन च सर्वेतालय:। यस चित्रलं जगत् हितं मित्रं, सुखं सुखजनकञ्च, तस्य देवानां वर्धस श्रेष्ठस्य र्द्यरस्य पदयीर्भजे घहिनति ग्रेष:। घत यथात्रमं लवणसङ्गमी काध्य:। सामान्यतः कर्माण विदिशापि षष्ठी धातुविभेषाणामिति बीध्यम्, भ्रन्यया सर्व्य ुकर्माण पष्ठापत्ते:। तथाच, ''मधीगथंदयेशां कर्माण'' (पा २।३।५२), "क्रजः प्रतियवें "(पा. २।३।५३), "दनार्थाना भाववचनानामच्चरे:" (पा. २।३।५४), "कथिषि नायः" (पा. २।३।५५), "नाविनिप्रइणनाटकायिषां हिंसायाम्" (पा. २।३।५६), "व्यवद्वपणी: समर्थयां:" (पा. २।३।५०), "दिवस्तदर्थस" (पा. २।३।५८), इत्यादि। अतएव कमदीश्वर:— "कर्मादिविषयेऽव्यविविचित कर्मादौ सम्बन्धविवचायां षक्षेत्रव"-- इति स्चम् । "नाषाणानश्रीयादिति भाष्यम् । न च विद्यति कस्यविदिति भहि:। सा लच्ची बप कुरते यथा परेवानिति किरातः। नारायणस्यानुकरीतीत्यादि।" मुले पद्यीभीने इत्यादी तु विंकल्पः । पाणिनिः २।३।३०,३१,४१,५०,७२ ।

<sup>†</sup> कानादशक्तिवर्षे वर्तनानस्य जानाते धें करणे पष्ठीस्थादिल्यः;। पाचिनिः र्।३।५१।

यभुना साधनेन मुकुन्दे प्रवर्त्तते इत्यर्थः, प्रवृत्त्यर्थेय जानातिः। \*

३०४। त्यायानां वा। (तृष्ठायांनां ६॥, वा।१।)।

युङ्गारस्य हरिस्तृप्तः, पूर्णः शान्तेन शङ्करः। 🕆

३०५ । दवे द्यात्यव्यक्तुक्रक्तवतुखलधक्तोच्छ-चानवसुग्रीलाधित्न भध्यणीधेणिनि । (दवे धा, क्रित धा, भ-व्य कि चक्र कवत खन्यं क चत्र मृत्यान वसु भीनार्थतृत् भव्य-स्वपायं-विकि धा। व्यादिवर्जे क्रति प्रयुज्यमाने दे वे च बी स्यात् । \$

अध्मिति । यभीः प्रभुना सुकुन्दे विण्यौ नानीते प्रवर्त्तते भक्त इति भेषः, प्रभी तुष्टे सित सुकुन्दे प्रवित्तर्भवतीति प्रभी. साधनत्वम् । धातूनामनेकार्थताम् ज्ञाधातुरच प्रवर्त्यः । (८००) चटादित्यात्मनेपदम् । चज्ञाने किं, भक्त्या ग्रहर कानाति, स्वरेष पुत्रं कानातीत्यादौ न करणे षष्ठौ ।

<sup>†</sup> तृतिरथीं येषां ते तृत्रायाः तेषां, तृत्रायंषात्नां करणे षष्ठीं स्वाहा प्रत्यर्थः। प्रतिः स्वद्यारस्य तृतः स्वद्यारेष सन्तृष्ट प्रत्यर्थः, तृतः प्रति कर्मरिकः। पर्चे प्रदरः प्रासंन प्रान्या पूर्णः, पूरधातोः कर्मरिकः, पृत्तिरिङ प्राप्यायनम् प्रतप्त तृतिविधेषः। (नाप्रिस्टप्यति काष्ठानां नापगानां मद्रोदिषः। नान्तकः सर्व्यभूतानां न पंसां वामस्वीचना॥) "क्रये पूसृत्रार्थयोः" द्रति कातन्त्रपरिशिष्टम्। "तृत्रार्थस्य प्र" दिति कासस्वीयरः।

<sup>देख घश्व दवं तिधान्। वं — चतुम् काव् चणम्। खलः सर्वं दव सघी यस्य स खल्यः, (११६१) ईवह् सीरित्यनेन खल्, (११६२) भातीऽन रत्यनेन भनः रित द्यं खल्यः। उत् उकारान्तमत्ययः— णुक् रण् मु क्रृ मालु भाव रृष्टु स्थादि। सतृ रत्यनेन उपल्यस्य व्यत्रिप यहचम्। एवं भान रत्यनेन भान कान स्थमान रत्येवा ग्रहणम्। शीलमधी यस्य स भीलायः, स चामौ तृन् चिति भौलाधं नृन् स भाविध्वलालः, ऋणं प्रतिदेशतया ग्रहीतं, भञ्चस ऋणस भञ्चणें, ते भर्यो यस्य स भव्याधं स्थानस्य वित भञ्चणांर्थान् त तः व्यत्व किस चक्स कावत्रस खल्यं स सम च च स पृष्ट भानस्य वसुय भीलायंतृन् च भञ्चणांर्थान् च ते, न विदानति यन कृति सः भञ्चक्रक्षवतुख्वस्य क्षानस्य वसुय भीलायंतृन् च भञ्चणांर्थान् च ते, न विदानति यन कृति सः भञ्चक्षक्षक्षवतुख्वस्य क्षानस्य स्थानस्य स्य स्थानस्य स्यानस्य स्थानस्य स्थानस्य</sup> 

जगतां कारकः कषाः कितिसुरिरिपोरियम्।
व्यादौ तु— सृष्टा दिधं प्राक्तमेतदर्भकान्
उन्नीतवन्तं, यितिभः सुदर्भनम्।
प्रातं, प्रदिं, जिण्णरघानि संसुवन्
सुदं द्धानोऽर्थितमीयिवान् न कः॥
यं दाता हृत् कदागामी द्यी मोचस्णं प्रिवः। \*

क्रति प्रयुक्त्यमाने भन्ते कर्याणि कर्त्तरे च षष्ठी भ्यात् न तु उत्ते, उत्ते तु (२८०) प्रयमा स्वादेव । पाणिनि: २।३।६५,∢१,००, वार्तिकञ्च।

\* कृषः जगतां कारकः, करोतीति क्रधातोः (೭೭०) तृन्-पकौ चे पति यकः, प्रस्थ कर्माण जगतामिति पष्ठौ । इयं जगदित्वयः (विधियप्राधान्यात् स्त्रीलिङ्गता) सुरिरपी: क्रति:, कियते या सा इति (११४०) कर्माण क्रि:, क्रते लर्थ:, अस्य कर्त्तर सुरिपी-रिति पत्नी। व्यादीनासदाहरणानि सहेत्यादि -- एतत् जगत् सहा निर्माय दिधं धारयनं शावकं हिंससञ्च, अर्चकान् छन्नीतवन्तम् ऊर्डे प्रापितयनं, यतिभियौँगिभिः सुदर्भनम भनायामहत्त्वमानं जातञ्च, इरि संस्तवन, भवानि पापानि निष्यः, सुदं द्धान: को जन: चर्थितं वाञ्कितं न ईशिवान् न प्राप्तवान् चिप तु सब्बेण्य ईशिवानि-त्यर्थ:। भन (११६६) स्टहा रत्यव्ययस्य कर्माण एतत् नगदित्यन न षष्ठी, एवं क्रचं द्रष्टं याति, क्षणां स्वारं स्वारं नमति। (१११६) दिधं प्रति किप्रत्ययान्तस्य कर्म जगत् भव न पष्टी। (१९१०) बाक्कमिलस्य कर्मा जगत्, भव न पष्टी। (१०५०) छन्नीसवन्तनित्यस्य कर्माण पर्मकानित्यच न षष्ठी। (१९६३) सुदर्भनिन्यस्य, (१०५०) ज्ञातमित्यस्य च कत्तंरि यतिभिरित्यन न षष्ठी। (११००) जिणुरित्यस्य कर्माण षघानीस्यत्र न षष्ठी। एवं दु:खं महिन्यु: धनं यह्यालु:, चन्द्रं हिंहत्तिस्यादि। (११००) संस्वन् इत्यस्य कर्माण इतिमित्यचन पत्नी। (१०८६,११००) दधान इत्यस्य कार्मीय सुदिसित्यच न वही, एवं इदिं सीव्यमाण इति । (१०८६) देशियान् दृत्यस कर्माण प्रर्थितमित्वच न षष्ठी। ग्रंकत्याणं दाता कत्याणदानग्रील: भीचं चरणं दायी भृष्वददयस्यदेयसोचं दायौ शिवः कदा इत् इदयम् भागासी भागमिष्यतीसर्थः। भग श्रीलार्थदनलस्य दाता इत्यस्य श्रीमित कर्माणि न पष्ठी, दाशी इत्यस्य स्टणार्थणिननस् भोचिमिति कर्माण न वष्ठी, भव्यार्थणिननस्य त्रागामीत्यस्य द्वदिति कर्माण न वष्ठी।

दिकसंग्रानु द्योरित कर्मणी: पष्ठी, विष्णीमौतिस्य यावकी भक्त इत्यादि । केचित् गौषकमंखेव, यथा विशोमींचं याचकी भक्त इत्यादि । जौनरासुकर्त्तरि क्रति दिक

# ३०६। कामुकसङ्डाघकोन। (कासक सत्डायं क्षेत्र हा)।

कामुक्त प्रवेश वर्तमान डयोर्वि हितेन क्रेन च योगे टे चे च की स्थात ।

यो लक्षााः कामुको जातः सतां तस्येदमासितम्। %

## ३०७। त्यभावतास्यणनसङ्घे व वा।

(ल्य-सदे ७।, घे ७।, वा ११।)।

ल्ये भावार्थ-के स्त्रीविहितं युंणकच्च हिला घन्यत्र सड़े घेषी स्थादा।

लया मम च क्वणोऽर्चः स्नातं ह्यत्र, स यस्य तु। स्टे: क्वति-र्हृति-र्येन, चिकीर्षा यस्य मेदिका ॥ १

मां णां मुख्ये एव पक्षीं बदन्ति, यथा गांदुन्धस्त्र दोन्धा गोप इत्यादि, चव क्रमदीच्यर-स्वस्—'कर्म्यद्यं दुद्दादीनामनुक्तं स्थात कृता यदि। कश्वित्तव समावष्टे पक्षीं प्रधानकर्म्याण ॥'' चव वक्तव्यं — क्वचिद्व्ययादिकत्प्रयोगेऽपि प्रयोगानुसारेण कर्त्तृकर्मणोः षष्ठीस्त्रादिति । परसूर्वे द्रष्ट्वी ।

<sup>•</sup> पूर्वमृते उक्तककतीः दे चे च षष्ठी निषंधान् प्रतिप्रस्वनाष्ट परस्वद्येग । सन् वर्त्तमानकावः, उस् प्रिक्षितरणं, संस उद्य सङ्दे, ते प्रयोँ यस्य स सङ्घाषः, स चासौ त्राचित सङ्घाष्ट्रतः, कासुकाय सङ्घाष्ट्रतस्य तर्त्तन । यः शीक्षणः लच्छाः कासुकः लच्छों कामयते, यः सतां ज्ञातः सिक्षज्ञायते, तस्य द्रदम् पासितं तेनाच उपविष्टम् । पत्र कासुक द्रित कस्थातोः (१११०) कर्त्तरि जुकः, प्रस्य कर्त्राणि लच्छा । द्रित षष्ठी । प्रात द्रित (१०८५) वर्त्तमाने क्तः, प्रस्य कर्त्तरि स्वामिति षष्ठी । प्रास्तिनिति (१०८४) प्रविक्षरणे कः, प्रस्य कर्त्तरि तस्यिति षष्ठी । द्रह सङ्द्रतेन दृष्यनेनेविष्टसित्ती प्रयंगव्यवद्यक्षं ज्ञापयति शौखितादवेर्त्तमाने क्तान्तस्यापि (१०८५) कर्त्तरि पष्ठी न स्थात्, तेन शौखितोऽयमनेन, रिचितोऽयमनेन दृष्यदि । एतदेव क्रमदौत्ररेण ''क्षविक्र स्वात्' द्रित सूर्व प्रकटौक्तसम् । पाणिनिः २। ११६९०,६८, वार्त्तकस्य ।

<sup>†</sup> त्व्यस्तव्यादिः, भावि ताः भावताः। भय णक्य भणकी, स्वियामणकी त्व्यणकी म विद्येते त्व्यणकी यम घोऽत्व्यणकः। दिन सङ वर्णते थोऽसी सदः, भ्रत्यणकयासी सद्यति भ्रत्यणकसदः। त्वय भावताय भ्रत्यणकसद्येति तक्षिन्। त्वे प्रयुक्तमाने

## ३०८ । खामीखराधिपतिदायादसाचिप्रतिमू-प्रसृतक्क्ष्यजायुक्कनिपुणसाधुसुजर्धेनीदरे प्री च।

(खानि —सुनर्धे: ३॥, नादरे ७।, प्ती ।१।, च ।१।)।

भावार्य-के प्रयस्त्रमाने स्ती-विहिती च-चकी हिला चलकिन स्तीविहिते सकर्मके कित प्रयुक्तयमाने चक्तर्भरिषष्ठी स्थादा इत्यर्थः । लग्नेत्यादि । हे साधो इत्यद्वां,लया सम च स क्राचीऽर्च्यः, चर्चभातीः कर्माणि वाच्य (८०१) प्यण, कर्त्ति त्येति स्तीया, पचे ममेति षष्टी । इि यसात पत्र तीर्थे लया मन अ सातं, साधाती-भावे का:, लया मन च दतीया-वहाँ। यस्य क्रणस्य स्टिश कृतिः करणं, येन स्टिश हृतिः हरणं, कृतिः इतिय क्रह्मात्भ्यां भावे (११४०) क्रिः, पस्य कर्त्तरि यस्येति वशी, पर्चे येनेति हतीया। छभयत्र सृष्टेरिति कर्माण (३०५) पत्री। एवै (११४८) हानि: सुखानां दरिद्रस्य दरिदेश, (११५०) परिचर्था गुरी: शिष्यस्य शिष्येण, (११५८) वर्णना विणी: भक्तस्य भक्तंन इत्थादि। सद इति किं. साधीर्वजित्यादी कर्त्तरि पर्वेण (३०५) नित्यं घष्टी। चस्यणक इति किं. यस्य क्रचण्य सृष्टेशिकीर्षाकर्ति चर्लास्य भेदिनाच भेदनं नाग्र इति चिक्रीवेति सनन्तकधाती: (११५३) स्त्रीविहित: चप्रत्यय:। (८८०) स्त्रीविक्रिती चकप्रययः। उभयत यस्येति कत्तंरि (३०५) नित्यं षष्ठी। एवं (११५५) इ.च्छा सुक्रोस्तपश्चिन:, (११५६) कथा क्रणस्य भक्तानानित्यादि। पाणिनि: २।३।७१, वातिनंबदयञ्च। अन अस्त्राणकसटे इत्यस्य व्याव्यानारे तते (स्त्री विहिती प-पकौ दिला प्रत्यिम स्त्रीविहिते पस्त्रीविहिते वा सकर्मको क्रति प्रयुक्तमाने) ''ब्रेषे विभाषा'' इति वार्त्तिकानुसारेण शब्दानामनुशासनमाचार्थेण पाचार्थस्य वा इति बिध्यति ।

कर्माण कर्त्तरि च षष्ठीविधाने वक्तव्यसेतत्---

भक्को विदित-क्रिक्षनु शीगे षष्ठो नियम्यते (कर्मणीति ग्रेपः)। एकदा तूभयप्राप्ती कर्माण्येन न कर्नार (पाणिनिः २।३।६६)। तन्यादीनां प्रयोगे तु दयोरैव दि नेष्यत्॥ कर्मुविभाषया केषिन (पाणिनिः २।३।७१) कर्माणीऽपि तथेष्यते। प्रधाने नियता षष्ठी गुणे तुभयया भवेत्॥

यथा वेदस्य पाठ म्हाविष, यामस्य गमनं पास्य न इत्यादि। कर्म्मणीऽध्याहारिऽपि न कर्मार, यथा भी न न मने न इत्यादि। तत्यादी तुया वितन्यः क्राची भी तं भक्तीन (भक्तास्य वा) इत्यादि । दिक्सी कस्यावी तुयव क्राता है कर्माणी भानकी तव हयो राष्ट्र पष्टी, के चित् सुद्धी पत् के विवास गीणी पत्र, भतः प्रयोगानुभारे चैव क्री मिति निकार्यः।

कां दिशंवान गन्तव्यं, सभांवान प्रवेष्टव्यं, इत्यादी कर्माणि विद्यमानेऽपि भावे अन्यत्ययः स्वादिति भाष्यादीनां मतम् । खामी मुकुन्दः सर्वेषां, साची सर्वेषधीचजः। निम्बद्गस्त्रिरगुर्गीयोऽपस्त्रे मात्रदस्यजम्॥ \*

## . ३०८। कालभावाधारं डंप्ती<sub>।</sub>

(काल-भाव चाधारं १।, डं१।, प्रौ ।२।)।

एते डसंज्ञाः स्युः, तत्र प्ती । 🌵

सुचीऽयी वार:, सुचीऽर्थ इत अर्थी यस्य स सुनार्थ: । वारार्थेनैवेष्टसिद्धौ सुजर्थ-ग्रहणं सुज्ञर्यप्रत्ययान्तानां प्राप्तार्यम् । चन्यया वारादिमञ्दैरिप वशीसप्तस्यापत्ते: । सूज्यं-प्रत्ययम चक्रतम् सुच (४८४,४८५) इति इयम्। ''धाच्प्रत्ययीऽपि क्रत्यसर्थं." इति गोयी-वन्द्रः । स्वामी च ई्यास्य चिषपितय दायादय साजी च प्रतिभूष प्रमूत्य कुञ्चल्य चाय-क्ष निपुणय साध्य सुजयंय ते तै:। न पादरी नाहरस्राधान खायादिभिरिकाटशिक्षः मन्दै: चक्रलस्-सुजनाध्याच योगे, षष्ठी-सप्तस्यौ स्थातां, चनादरे गस्यमाने च षष्ठी-सप्तस्यौ स्रातामित्यर्थः। सुकुन्दः सर्वेषां खामी, सर्वेषिति च। प्रधीयजः (प्रधीगतम षच जिमित्रिय जन्यं चानं यद्यात् सः) सर्वें गुसाची, सर्वें गमिति च। एवं क्राचः सर्वेषां सब्बेषु च ईश्वरः, सब्बेषां सर्वेषु च पिषपतिः। खामीश्वराधिपतीनामैकार्थलेऽपि रयगग्रहणात् तत्पर्यायभूतशब्दान्तरेण योगेन स्थात्, तेन क्रणः सर्वेवां पतिरित्यादी सम्बन्धे षष्ठेत्रव, न तु सप्तमी । एवं, क्रचाः यादवेषु यादवानां वा दायादः चातिरित्ययः । चैत्रो भैत्रे भैत्रस्थ वाप्रतिभू लंग्नक इत्थर्थः । क्रणायादवेयादवस्य वाप्रमृतः ज्ञात इत्यर्थं:। कुमलायुक्ताभ्यां योगं तत्परत्वे एव, (मासेवायामिति पाणिनि:, तात्पर्ये इति महीजिदीवित-क्रमदीयरौ) यथा काच: पाठे पाठस्य वा कुमल: त्रायुक्ती वा तत्वर इत्यर्थ:। अन्यत्र कलास कुप्रल: सुकिवित इत्यर्थ:, रघे आयुत्त: वह इत्यर्थ:, इत्यादिष् षप्तस्येव । एवं निपुणसाध्यां प्रश्नंसायानेव । अत्र ''अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यस्' --तेन साधुनिंपुणी वा मातरं प्रति, परि, अनुवा। सुनर्थे: कालाधिकरणादेव. (अतएव ''क्रल सर्थें: कालाद धिकरणात्'' इति क्रमदीश्वरसूत्रम्)। यथा ---गोप्यः, अपन्ये ब्दिति, मातुः बदलाय, बदन् पपणं बदतौ मातरञ्ज अनाहलेति श्रेषः, निश्चि विः मक्र: चि: विवारामित्यर्थ:, भनं क्रणं भगु: प्रापु:। विरिति (४८५) सुच्यत्ययः। षगुरिति इनधाती: আ অনু (६८२,६৩५)। एवं दिने दिनस्य वा पश्चक्रल: पठती-यादि। कालाधिकरणात् किं, ग्रष्टे दिर्भुङ्क्षे। पाणिनिः २।३।३८—४०,४३, भाष्यचा

<sup>†</sup> कालय भावय पाधारय तेवां सनाहार:। उन् प्रधिकरणं, ती सप्तनी। काल:

सामीप्यास्त्रेषिषये व्याध्याधारसतुर्विधः । रेमे प्ररदि गोविन्हो गोपीभिषदिते विधी । कालिन्द्यां, कानने, केली कुगलः, सकले स्थितः ॥ \*

# ३१०। ऋधिकेशायीपाधिस्यास्।

(अधिक-ई्र्य-अर्थ-उप-अधिभ्यां ३॥)।

मिधिकार्थेंनोपेन स्वास्यर्थेनाधिना च योगे प्ती स्यात्। गुणा उप परार्डे,स्युर्विणोरिध इरी सुराः। 🌵

चषरण्डमुहर्तादि:। भागी धालर्थः, यस क्रियाननरं क्रियाननरं लत्त्यते स इह भावः। "तहैपरीये च" रित वार्त्तं कम्। पाणिनिः २।३।० ३६,२०।

- \* पाप्तियते पदार्थौऽसिन् इति पाधारः, (वाधियनंऽधिन् कियाः इति पाधारः इति कार्थिका)। यदुकं—क नृकसंय्यविद्यासमाचान् धारयन् कियास् । उपकुर्वत् कियासिन्दी यस्तिऽधिकरणं स्तृतम् ॥ इति इरिकारिका। स तु चतुर्व्विधः, यथा—साभीयिति। सभीपस्य भावः साभीय्यम्, पाय्रेष एक देशसम्बन्धः, विषयः प्रतिपाद्यादिः, स्थातिः सम्बन्धः। (सिज्ञानकोस्यान् "घौपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापक्षये-त्याधारित्व्यां "दौ विखितम्।) कमेणोदाइरित रेने इति—गीविन्दः सरिद् अरत्वास्ते, विषौ चन्द्रे उदिते सित विधीकद्यिकयानन्तरसित्यर्थः, विधौ इति भावे सप्तमी, उदिते इति ति विधीकद्यिकयानन्तरसित्यर्थः, विधौ इति भावे सप्तमी, उदिते इति ति विधीकप्यान् सप्तमी। यदकं—विश्रेष्यस्य हि यित्विद्रं विभिक्तित्वन् । ये। तानि सर्व्याण्य योज्यानि विश्रेषणपदेऽपि चेति॥ कालिन्दां कालिन्दां समीपे खचणया तौरे इत्यर्थः, कावने काननेकदेशे, गोपीभिः (स्हं) रेने कौड़ितवान्। गोविन्दः कोहशः—केली कौड़ाविषये कुश्वः समर्थः, सक्ले जगित स्थितः सक्तं व्याप्य स्थितः इत्थरः।
- † प्रधिक्ष प्रश्निय ती पर्धी यथी: ती पिथकिशार्थी, छपय पिथ ती उपाधी, प्रथिकिशार्थी च ती उपाधी पित ताथाम् । खाव्यर्थेनेत्रस्य उभयार्थतं खखामिलसन्न-स्य उभयित्वत्तं,—तयाच पिश्वा यंगे यस्य पित्वास्त्रसात् यस्य खामी तथाश्च सप्तमी स्यादित्यर्थ: युषा इति विष्णीगुंषा: पराई छप स्यु: पराई दिक्षिका प्रस्तुः। इत्यर्थः। पराई परमक्ष्या,—तयाचीकम्, एकं दश शतचैव सम्बस्त्रगृतं तथा। लघ्य नियुत्तचैव कीटिरब्बंदिनेव च ॥ हन्दः खर्ब्यो निख्नेष श्राप्ती च सागरः। प्रत्यं पराईच दशहद्या यथीत्रसिति ॥ सुरा देवा: इरी पिष इरे: परिवारा इत्यर्थः, एवम् पिथ सुरेषु हरिरियपि, हरि: सुराणां खानीत्यर्थः। पाविनः १।३१८ ।

# ३११। ढेनार्थात्। (हेन श, पर्यात् श)।

टैन योगे निमित्तात् प्ती स्थात्। वस्त्रेषु रजनामवधीत् कृष्णः। \*

३१२। तोना ढे। (केना श, डे ७)।

क्ताहि चितेन इना योगे है भी स्थात्। वैदेऽधीती। क्

३१३। निर्दारेऽधिकेन क्रियान्त:काला-ध्वनोश्व पी च। (निर्दार ७), पिकेन २।, क्रियान.कालाध्वनी: ०॥, पारा, पीररा, पारा)।

येष्ठं क्षपालुचर्कारेः बद्रैकार्यकिऽधिकम्।
मूर्च्यष्टकात्, भिवंध्यायन्, भुज्जीया दाष्ट्रिवा नप्रहात्॥
भूस्थो योजनलचेऽकं पश्चेक्षचदयात् विधुम्। क्ष

अ घर्षी निभित्तम् । कियाया निमित्तं यदि कर्षणा संयुक्तं स्थात् तदा तिसात् निमित्तात् मप्तमी स्थादित्ययः । अवधादिति कियाया निमित्तस्य वस्त्रस्य इननिक्षया-कर्षणा रजकीन सह संयोगात् वस्त्रेषु इति सप्तमी । एवं, चर्षाण हीपिनं इत्ति, दत्त्यीई ति कुञ्चरम् । केश्रेषु चनरी ईति, सीम् पुष्यवकी इतः ॥ इति महानाटके । (सीमा भाष्यकीयः, पुष्यवकी गत्मस्यः) । कीर्त्तये हीपिनं इत्ति इत्यादी कर्षणा संयोगाभावात् न सप्तमी । सुक्ताफ्वाय करिण्यतिस्यादी तु, ताद्र्ष्ये चतुर्थी (२८४)। "निमित्तात् कर्ष्ययोगे" इति वात्तिकम् ।

<sup>†</sup> क्वादिन क्वेन तेन क्वेना। अधीतीति अधीतमध्ययनम् अस्यासीति अधीती, अस्य योगे विदे इति कस्येषि सप्तमी। एव क्वती युतो अवस्तिषु धौमानिति भटिः। क्वाद्यव-इतिन इना योगं एवायं विधिः, तेन क्वतश्च तत् पूर्वश्चेति क्वतपूर्व्वे तदस्यासीति क्वत-पूर्वी, कटं क्वतपूर्वी, वेदमधौतपृत्वी इत्यादौ न स्यात्। किश्च सुर्ख्ये कस्यास्थितायं विधिः, तेन मासमधौतीत्यादौ न स्वात्। "क्वसेन् विषयस्य कस्यास्थ्यपसंख्यानम्" इति वार्श्विका

<sup>‡</sup> क्रिययोरतः क्रियात्तः (मध्यं), कालय पध्याचतौ कालाध्यानी, क्रियात्तय ती कालाध्यानी चेति तयोः। जातिगुणक्रियाणासुट्कर्षेणापकर्षेण वा समारोगात् प्रथक

# ३१८। सीमान्तमार्गात प्री चान्ते।

(सीमान्तर-मार्गात् ५।, प्री ।१।, च ।१।, चनी ७।)।

सोमनायाच्छतं क्रीयाः क्षणः क्रीयेषु चायते। गङ्गायम्नयोभाध्ये कति क्रोगाय जाइवी ॥ %

करणं निर्दार:। काल: चणदण्डसङ्कर्त्तप्रदादि:। पध्यपरिमाणं नलक्रीशादि: निर्दारे गस्यमाने. एवम अधिकाश्देन योगे, तथा क्रियादयमध्यवर्त्तन काले अध्वनि च पञ्चमी सप्तस्यो स्थातामित्यर्थः। छटाइरणं — क्रपालव अर्कादेय येष्ठं. कट्रैकादशर्व मुर्च्यटकाच मधिकं मिवं ध्यायन दांहि नाहाका सुद्धीयाः, हे साधी पति भेषः। प्रः मिर्डारे क्रपालय प्रकांदेय इति सप्तमी-पञ्चस्यौ, (३०२) षष्ठी च भविता । काकाः को किल: क्षणा: इत्यादि निर्दारणे पचस्येव, नतु पष्ठी-सप्तस्यौ इति वत्रव्यम्। कट्रैका दशकी सुर्खाष्टकाच इति पिधिकाशन्देन योगे सप्तमी-पद्यस्यो, दाहि चाहादा इति ध्यान क्तिया भी अनिकायधी मेध्यवर्त्तिनः कालात् सप्तभी पद्यस्यौ । जन. भूस्यः सन् थी जनल त्रकी पर्स्यत्, लाच दयात् विसुंपर्स्सिटिति, त्राच भूस्थिति किया दर्भनिकायया र्भध्यवित्ती श्रुष्ट्वि योजनस्त्रचे स्वतद्यादिति च सप्तभी-पञ्चस्यो । (एकाद्यानां समृह: एकाद्यः बद्राणामे कादम्ब बद्रैकादम्ब तिखन । अष्टानां समुद्रीऽष्टकं मूत्तीनामष्टकं मुर्ख्यप्टः तकात्। दयीरक्रीभंव: काल इति तद्वितार्थदिगी दाक्र:, ततः सप्तभी विभक्ती (११८ हाकि । चयाणामक्रां क्माहार: चाइलकात् । भृति तिष्ठतीति भृष्य:।) पाणि ि २।३।७,२।३।४१,४२ ।

 श्रीसीरतः, स चासी मार्गथित सीमान्तमांगंत्रसमातः। मार्गे।ऽध्वपरिमा क्षीश्रायीजनादि:। सीमादयमध्यवर्त्तिमार्गपरिमाणवाचकात ग्रन्दात भन्ते गस्यमा प्रथमा चकारात सप्तभी च स्यादित्यर्थः। चन्तगस्यमानाभावे त केवलं प्रथमा स्थारि स्पर्यं वत्तस्य:। सीमनायात् ग्रतं क्रीगाः क्रणः, ग्रतके। ग्राने वर्त्तते इत्थर्थः ; ए अप्यति क्रीशिषुच, अप्यत-क्रीशानीच वर्षते इत्थर्यः। अव सीमनायक्रणायीः सीसं र्मध्यवर्तिमार्गात् ग्रतं क्रीगाः इत्यस्नात् भन्ते गस्यमाने प्रथमा, भयुते क्रीग्रेषु च इत्यसा सप्तभी च । शतनिति चयुते इति च वहुवचनविश्रेषणेऽपि श्रमिधानादेकलं, विः त्याद्याः सदैकलं सर्व्वाः सङ्कीयसङ्कायोरित्यमरातः। अन्ते किं--गङ्गायसमयीर्भ लाइनी कति क्रीया: कति क्रीयान् व्याप्य तिष्ठती क्ष्ये:, पत्र केवलं प्रथमा। दितं यार्थाकरणे अत्र (२८३) दितीया भवितुमहिति। हिमाखयमारभ्य चा ससुद्रात् गङ्ग यव च देश्रे लहुमुनिना पौतोज्भिता तत पारभ्य पा समुद्रात् ल।क्रवीति गङ्गाः नामान्त्रम्। जाक्रव्यामध्यदेशे यसुना मिलितेति । वार्त्तिनं भाष्यव ।

# ३१५ । त्रादयोऽर्घार्धेनतोः सेस् सर्वाः।

(ची चादय: १॥, चर्यार्थें कत्ते: प्रा, स्वे: प्रा, तुःश, सर्व्वा: १॥)।

श्रर्थार्थिनैकाते लें स्यादयः स्यः, स्नेसु सर्वाः।

भुक्त्वार्थेनार्थस्य मुक्तेः किं, कार्य्यं नार्चतेऽच्तः। \*

३१६ । संजाः कं। (संबाः १॥, कं १।)।

ढ ध घ भ ज ड़ा: कसंज्ञा: स्यु:। १

इति कापादः ।

<sup>\*</sup> जी अादिर्यांसां ता:, अयां निमित्तं, स एव अर्थे। उभिधेयी यस्य सीऽर्थार्थः, एका (प्रभिन्ना) तिर्यमान् स एकितः, प्रयोगेन सद एकितिः पर्यार्थेकितिसमान्। निमित्तार्थलिङस्य विभेषणात् लिङ्गात् त्तीयादयः पच विभक्तयः स्यः, ताहमात् सर्जनासन् सर्जा: प्रथमादय: स्थरिलर्थ:। भुत्या पर्धेन सुतिरर्थस्य प्रचातीऽर्चते पूज्यते, किंकार्यं न फर्चते प्रिप तु सर्वसै कार्याय, जनैरिति ग्रेप:। प्यत्र निमित्ता-र्थस्य पर्धशब्दस्य विशेषणात् भुक्ता इति तृतीया, मुक्तेरिति षष्ठी, रवं मुक्तार्थे पर्याय, मुर्त्तः र्घात, मुक्तौ ऋषें इत्यपि। किंकार्थ्यमित्यच कार्य्यमित्यस्य निमित्तार्थस्य विभिष्णान् किनित्यकात् सर्जनामः प्रथमा, एवं दिशीयादिकमपि । एवं हेतुकारणनिमित्तादिग्रव्द-विश्रेषचाद्य-तयाच चलास्य ईतीर्वंड हातुनिक्कतिति रघु:। साध्यम्।

<sup>🕇</sup> चिम्रिन् पादेयायासंज्ञाउकासाकमंज्ञा स्थान् । ता:संज्ञा:— दघघभ **ल** ड़ा दूति । कर्म्यकरणकर्नुमम्प्रदानापादानाधिकरणानाभेकतमं कारकमिति यावत् । करोति कर्मुतादिव्यपदेशानिति कारकमिति भाष्यम्। ''क्रियानिमित्तं कारकम्' इति दुर्गसिंदः पद्मनाभयः। क्रियान्वियत्वं कारकलमिल्यपिकियित्। चैत्रस्य धन-भित्यादी धनादिकाभेव भाकाहितं स्यात् न तुगच्छतीत्यादिकं, तेन सम्बन्धस्य क्रियाः निमित्तलाभायात्र कारकलम्, एवं खिङ्कार्थस्कीधनयीरपि। ग्रहे प्रविश्तीलादौ ग्रहादेः कर्म्यतया दितीयापाती प्रिकरणविवचया सप्तमी, विवचावणाद्धि कारकाणि भवनीति न्यायात्। एवं महाकविषयोगादयी विवचया समाधानीयाः, स्थितेगंतिसिकनीयेति न्यायात्। तेन स्वेच्चया यामे गच्चकीत्यादिप्रयोगीन कर्त्तव्य इति साम्प्रदायिकाः। उभयोर्युगपत् प्राप्तौतु — कर्त्ता कर्याधिक रचं करचं सम्प्रदानकम्, चपादानञ्च सन्देहे 🗣 रंपूर्वेष वास्त्रते इति वचनात् व्यःस्था। यथा,पश्चमनी घावतीत्यादि । एवं क्रम-

दीवरोऽपि—पपादान सम्प्रदान करणाधारकर्मणाम् । कत्तुंवान्यीन्यसन्देहे परसेकं प्रकर्तते॥ इति ।

भाव वक्तव्यानि सूवाणि लिख्यन्ते —

- १। ''नात्याख्यायामेक थिन् बहुवचन मत्यतरस्याम्" (पाणिनि: १।२।५०)। जातिप्रतिपादन एकीऽपि जातिकपीऽर्थीं बहुवहा स्थात्। यथा ब्राह्मणः पूज्यः, ब्राह्मणः पूज्यः। भच भानंख्याप्रयोगे इति बक्रव्यन्। यथा पद्मनाभः— "जात्यर्थे वैकस्थिन् वहुवचनमसंख्याप्रयोगं (कारकप्रकर्षे ३० स्वम्)। क्रमदीयरीऽप्येवम् ''जात्युक्तावसंख्यापिशिष्टस्थैकले'' (कारकपादे ४५ सूचम्)।
- २ । "पद्मदी दयीच" (पाणिनि. १।२।५८)। षद्मद एक ले दिले प वह वदा स्थात्। यथा पदं बनीमि, पानां बृतः इत्यादी वयं बृतः । प्रतिश्रेषणादिति वाच्यम् । स्था पद्मनाभः "पद्मदो दयोषाविशेषणात्" (कारकप्रकरणे ३८ स्वम्)। एवं क्रमदी वरः यथा "पद्मदोऽिशेषणस्य दिले च" (कारकपादे ४८ स्वम्)। यथा कविरहम्।
- ३। ''युम्नदी गुक्तिभोषणस्य'' (संजितसारै कारकपादे ५० सूत्रम्)। "युम्मदी भौरवे'' (सुपर्दाकारकप्रकरणे ३८ सूत्रम्)। यथालं से गुक्:, यूर्यं से गुग्द:। एवसेव कायादित्यः, यथा, "युम्भांद गुरावे केवाम्'' इति ।
- ४। "भागांत्र भागीरवे" (सिविष्तसारी कारकपादि ५१ सूत्रम्)। यया जीवत्सु तालपादेषः।
- पू । "िंग्रत्यादेश्नावत्ती बहुत्वेऽयोकवचनम्'' (संचिप्तसारे कारकपादे ४४ सूत्रम्)। एवं सुपर्ग्नऽपि "विंग्रत्यादेरंकत्वमनावत्ती'' (कारकप्रकरणे ३६ सूत्रम्)। यथा विंग्रतिः पुरुषाः। भावत्ती तुद्दे विंग्रती नशाणाम्।
- ६। "दारादिनित्यम्" (सपग्ने कारकप्रकरणे ४२ स्वम्)। "मापी दारा वर्षाः सिकता नखीकस प्रत्यादरवष्ट्लेऽपि वह्ववनम्" (संचिप्तसारे कारकपादि ४५ स्वम्)। "मुंसि रुष्टाय" "सुभनीऽभरोयल्जनादेवां" (पूर्वोक्षे ४६, ४० स्वे)।
- ७। "फल्गुनी-प्रीष्ठपदानाञ्चनवर्ते" (पाणिनि: १।२।६०)। पूर्वक्षलगुन्य इत्यन दिले बङ्क्तम्। तिथ्युनवर्तम् इत्यन् तु बङ्के दिलम् (पाणिनि: १।२।६३)।

#### श्य पाद:-समास: (सं)।

३१७ | देक्यं सोऽन्यये | (देकंश, संश, पनवेश)। दियोर्भह्रनां वा दानामैक्यं स संज्ञं स्थात्। तचान्वये सित कार्यम्। यथा—वन्यौ चरणौ कष्णस्य द्रस्यर्थे, कष्णचरणौ वन्यौ दित स्थात्, नतु कष्णवन्यौ चरणाविति। अ

३१८। भिन्तान्येकार्धद्यादिसङ्घ्राव्यादीनां च-ह्र-य-प्र-ग-वाः। (भित्र-व्यादीनां ६॥, प-वाः १॥)। भित्रार्थानां दानां सःससंज्ञः, श्रन्थार्थानां दानां इसंज्ञः,

किश्व यत प्रतियोगिपद-कारकपद-भिन्नपदापेवा वर्तते तत्र समाधी न स्वात्, यथा— ऋड्स्य राजी मातङ्गाः इत्यत्र ऋड्स्य राजमातङ्का इति न स्वात्। यत्र च प्रतियोगिपदकारकपद्योरपेचा वर्तते तत्र स्वादेव, यथाः,— रामस्य नाममिक्मा, क्ष्य-माथितमनाः, वाणेन निज्ञङ्कट्य इत्यादिः, स्वादंव। तथाच — प्रतियोगिपटादन्वत् यदन्यत् कारकादपि, इत्तिश्वदेवद्य सम्बन्धनीन नेष्यते इति, सापैचलेऽपि गमकलात् समास इति, समस्यादमि निष्यापेचेव सङ्गतिरिति च प्राचः। एवच निष्योऽनित्यो

<sup>ः</sup> स्वादीनामयं न् निरुप्य स्वाद्यानाना मे कपदीकरणार्थमाह — दैकामिति। द्घ दघ ते दे, दघ दघ दघ तानि दानि, दे च दानि च तानि दानि, दानामेकां दैकाम्, ऐकाम् एकामः। दं पदं, तच स्वाद्यानमेन। तथाच — "नामां ममासी युकार्यः। तत्स्या लीप्या शिकायः" इति मर्खनक्षी। नामां स्वाद्यानिक्षानामित्यथः। "समयंः पदिविधः" इति पाणिनि (२१११)। "समर्थानां समामः" इति प्रमामः। "समासंप्रनेक पदस्येकपदन्ता" इति कमदीष्यद्वतिः। प्रणमतीत्यादौ समामम् (५४८) व्यस्य स्वनादिव्यत्यानाम भनति। इयोः पद्योः वक्ष्मां वा पदानाम् ऐकाम् एकप्रकेषर्यं समंत्रं स्वादिव्यत्यः। सः समामः। तच ऐकाम् चन्ये सित कर्मव्यमिति। चन्यः समिप्रतस्य स्वः, स च कचिन विश्रेष्य हपेष, कचिन विश्रेष्य कपेष, इति तु सस्यः। क्ष्यत्यां साहित्यहपेष सन्त्रः। क्षय्यत्यो इत्यत्व स्वय्वावयविभावः सस्यः। क्षयः इत्यस्य वन्यो इत्यनेन सम्बन्धानान् न कृष्यन्यौ इति समामः। यदा तु क्षयेन वन्यौ कस्यिन् चरणौ इत्यर्थो भनति, तदा कर्मृत्यमन्त्रंन कृष्यन्यौ इति स्वानः। इति स्वादेव।

#### एकार्थानां दानां यसंज्ञः, द्यादिक्त्यन्तपूर्वेदानां वसंज्ञः, सङ्गा-पूर्वदानां गसंज्ञः, व्यपूर्वेदानां वसंज्ञः, स्थात् । \*

विकल्पय समास: कर्ष्ट्रिष्क्येति । समास: चतुर्विध:—''पूर्व्यपदार्थप्रधानीऽत्ययीभाव:, उत्तरपदार्थप्रधानस्तृत्पुरुष:, ष्रत्यपदार्थप्रधानी बन्दः। इति प्राचां प्रवाद:।'' ''तत्पुरुषविश्रेष: कर्ष्यधारः, तिहिशेषी हिगु:। ष्रनेकपदलं हन्वबहुतीस्त्रोरंव, तत्पुरुषय काचिदेव।'' इति सिद्धान्तकौसुदी। हरिषातु 'सपां स्पा तिङा नामा धातृनाथ तिङां तिङा। सुवन्तेनेति विद्येय: समास: पड्विधी बुधै:॥" इति स्वे पड्विधीन समास: पड्विधी

\* भिन्नय चन्यय एक चते, ते भयां येषां तानि भिन्नान्यैकार्यानि । दी (दिसीया)
भादिर्यासां ता द्वादयः, तासाञ्च कीवलानामसभावात् तदन्ता एव रुद्धन्ते । द्वादयभ्य
सक्षां च व्यञ्च द्वादिसङ्कात्यानि, तानि भादयो येषां तानि । भिन्नान्यैकार्यानि च
द्वादिसङ्कार्यायीनि च तेषाम् । भयं इयं ययं ययं ययं वयं ते ।

सित-मज्ञानां समसङ्गालात् यथाभङ्गां दर्शयित भिन्नार्थानामित्यादि । भिन्नार्थानां पृथकपृथगिभिषयानां पदाना समासः असंज्ञः स्थात । जो तत्तः । इतिकरानित्यादी अभिदः शिवरान्योरित्यादिवचनात् वन्तः पृद्धियोगभिदः पित्र भिद्विवचया तत्तः । अत्यत्य विनायके िञ्चराज्ञदेनात्त्रणाधिपा दत्यादिश्योगः । पदार्थतावच्छेदकभेदादित्यकं । पद्वन्यभितिपत्तिविषयभेदादिति च किवित् । एवभेव गीयोचन्दः—''भव्दप्रतिपाद्य-सम्बन्धने एव परस्परापेचा यक्षीतव्या'' दति । किञ्च दत्तः सर्व्यपदार्थप्रधानीऽपि परपदस्येव लिक्कं भजतोति यथा—घटम फलच घटफल, फलच घटम फलचटौ, स्त्री च प्रती च स्त्रीपुवा दत्यादि । सिज्ञानकौमुद्यां ''सभुचयालाचयेतरेतर्योगसमा-कारासार्थाः' दति चकारार्थौ दिर्भितः । ''परस्परिनरपेचस्यानेकस्य एकसिम्बन्यः समुद्यसः, स्वत्तरस्थान्यक्षित्रल्यः । समुद्रसः समाक्षरः ।'' पाणिनिः २।२।२८।

ष्यत्यार्थानां समस्यमानपदात् भिद्रायां ना पदानां समासः इसंजः, हो बहुवी हिः। स तु सस्वपदायाप्रधानः। स च दिविधः—तदगुणसंविज्ञानोऽतदगुणसंविज्ञानदा । यत्र समस्यमानपदार्थः समासवाच्यं वर्त्तते स तदगुणसंविज्ञानः, यथा विलीचनः शिवः। तदन्योऽतदगुणसंविज्ञानः, यथा इतकंसः कृष्यः। श्रस्यापरी भेदी यथा—समानाधिकरणो भिद्राधिकरणस्य; पौतास्वर द्रस्थादी सामानाधिकरणस्म, श्रस्त्रपाणिदिस्यादी भिद्राधिकरणस्म। पाणिनिः २ । २। २। २५, २४।

एकार्थानां समानाधिकरणानां विशेष्य-विशेषण-भावापत्रानामिति यावत् परानां समासः यसंज्ञः, यः कर्म्मभारयः। पाणिनिः १।२।४२।

# ३९८ । तोलुक्त्यच। (की: ६१, लुक्।११, बी आ, च।१।)।

से स्थितायाः त्रीर्लुक् स्थात्, त्ये च परे। \*

हितीयादिविभक्त्यन्तपदपूर्वकाणां पदानां अभासः वसंतः, वसत्पृदवः, स चीत्तर-पदप्रधानः । पाणिनिः २।१।२२ ।

सङ्गापूर्वपदानां तस्यार्थे इत्यादि वच्चमाणिनयमात् तिवितार्थे समाधारे उत्तरपदे परे च सङ्गावावकपदपूर्वकाणां पदान' समासी गर्सबः, गी दिगुः। तिवितार्थे उत्तरपदे परे च दिगुरुभयपदार्थप्रधानः, समाधारिहगुरुत्तरपदप्रधानः। पाणिनिः २।१।५२।

व्यपूर्वदः।नां — व: कसामीध्येत्यादि नियमग्त् कारकायर्थे भव्ययपदपूर्वकाणां पदानां समासी वसंज्ञ:, वीऽव्ययीमावः, सच पूर्व्वपद्यथानः। पाणिनिः २।१।५,६।

भाव कातस्त्रीक्षं कृन्दीवडांसमासविवरणं प्रदर्शते —

पर तुल्याधिकर से विज्ञेयः कर्मधारयः ।
संख्यापूर्वे विग्रिशित ज्ञेयः, तत्पुक शत्र मे ॥
विभक्तयो विग्रिशित ज्ञेयः मामा परपरेन तु ।
समस्र ने समासी विज्ञेयसत्पुक सः स ॥
स्थातां यदि परे वे तु यदि वा स्पृष्ट मिष्ट ।
तान्य न्यस्य परस्य ये बहुनी विः — विदिक् त्या ॥
क्षः. समुत्रयो नामो बंहनां वापि यो भवेत् ।
प्रत्यं वाच्यं भवेदयस्य चीऽव्ययोभाव दृष्यते ।
स न पुंस काल कंसात् वन्देकलं तथा विगी: ॥

# सर्वं समासेषु व्यितायाः खादैः क्रेषुंक् खात्, सर्वं प्रत्ययेषु परेषु च खादेषुंक् खादिलावं:। समासे यथा — इरिइनी, पीतान्तरः, परमात्मा, क्रचाशितः, पचगुः, सपक्षम्। प्रत्यये थथा — श्रीमान्, पुत्रकाम्यति, वाचिकं, चित्रयं, माथुरः, हेनः, ग्राम्यम्, इत्यादी प्रथमादेलुंक्। किच तत्रत्यः साव्यं किकः इत्यादी नादेग्रस्य जीपाभावनु स्थादि प्रकर्णं किता तत्रितप्रकरणे चादेशियानसामर्थात्। स्थादिरिति किं, पचिततरा-मिलादौ तिवादेनं लीपः। खुक्करणेन, लालीपे त्यलवधमिति चायात् प्राप्तस्यं विभक्तिनिमक्तं कार्यं (११) खुकि न तत्रिति निषेषात्र स्थादिति, तेन कस्य पुत्रः किपुत्रः इत्यादौ (१३१) टेरकारी न स्थात्, धातारं गतः धाटगत इत्यादौ (१२८) न विद्वः, यज्या चासो विप्रस्ति यञ्चविष्र इत्यादौ (११४) न दीर्षः। विराने परे विद्वितन्तु स्थादेव, तेन ब्रह्माचुतेश इत्यादौ (११८) नस्य जुप्, पशैविकार इत्यादौ (१०१) सस्य विसर्गः। किस्र लया कतं लन्जतनित्यादौ (११५) एकलिप्रं वदादेशः स्थादेव, कदयी-

#### इन्द्र-सम्बासः (च)।

## इतरेतरयोगेच समाष्टारेच चो दिधा। इरिज्ञ इरच इरिहरी। ब्रह्मा च अच्युतच ईयब ब्रह्मा-

चुतेथाः । अ ३२०। प्वत् स्रे:। (एंवन १९), से: ६)।

से स्थितायाः स्नेः पुंवत् स्थात्, त्ये च परे। पूर्व्वपश्चिमे। 🕆

र्थंसापि यहणादित्युक्ते:। युवावादेशी तु दिवचने परे एव स्थातां, नतु दिलेऽथेँ इति वक्तस्यम्, तेन युवाभ्यां क्रतं (१८० प्रष्ठं द्रष्टलं) युषान्कतमित्यादि । पाणिनिः २।४।७१ ।

\* ची इन्हः इतरेतरयोगे च समादारे च सवन् विधा सवित । इतरेतरयोगोऽतयय-प्रधानः, तेन चवयवक्षते विव्यक्कते स्वतः। समादारः संहितप्रधानः, तेन संहति-रेकतादेकवचनेसेव इति सेदः। इरिय इत्य इति वाक्ये सि-इयस्य लृकि हरिहर इति ससुद्यस्य लिक्कसंज्ञायाम् अवयवद्यधिटितलात् विव्यनम्। राजद्खिनावित्यादौ तु पूर्वपदस्य विभक्तेल्कि (११८) विरासे परे विदितनकारकोपः स्यात्, परपदस्य विभक्तिधीपेऽपि पुनिलेक्कसंज्ञायां विभक्त्युत्पचौ विरामविद्यतं नकारकोपादिकं न स्यादेव । ब्रह्माच्यतेया इत्यन चन्यववय्यटितलात् वहुवचनम्। एवं घटौ च घटौ च घटाः, चच चवयवचतुष्टयघटितलात् वहुवचनम्। समस्वपदिलक्कन् परपदस्य यत् तदेव भवतौति।

† पुनानिन पुंनत, स्थे च दित चनुनर्तते । किञ्च स्वयन्देनात्र विभक्तिभिन्नप्रस्थो याद्यः, किन्तु विभक्तिस्वयन्त्रयो ति ति पुनित्त स्थादिन, यथा सर्वस्थां सर्वतः द्रस्थादि । सर्वसमाने सर्वत्रप्रस्था च पर सर्वनात्तः पुनितः स्थादित्ययः । भन्न समासगतपूर्व्यवस्थेन सः पुनित् स्थान नृतु परपदस्य, भत्यन पश्चिमा पृष्ट्यां च पश्चिमापूर्वे दस्य मुर्च्या दित परपदस्य से न पुनितानः । न च, (८०) न गौष्याच्येत्यनेन सिसंज्ञानिविधान पूर्व्याचिन दत्यन्त्र कथं पुनितान दित्त वाच्यं, न गौष्याच्येत्यनेन द्वस्तानिविधान पूर्व्याचिन दत्यन्त्र कथं पुनितान दित्त वाच्यं, न गौष्याच्येत्यनेन द्वस्तानिविधान, दत्यविद्यान्ति । सन्त्र प्रविद्यानेन समाने स्थितस्य पुनित्रान्तः । (१२८) पूर्वापियत्ते प्रविद्यानेन तु (१२०) पुनित् स्वाज्ञेत्यादिना विद्यतस्य पुनित्रान्य निविधान प्रविद्यानेन तु (१२०) पुनित् स्वाज्ञेत्यादिना विद्यतस्य पुनित्रान्य निविधान प्रविद्यानिविधान सर्व्यवनान्य निविधान प्रविद्यानिविधान । सन्त्र स्वाज्ञेत्यादिन । सन्त्र स्वाज्ञेतिस्वादि । सन्त्र स्वाच्यान्तिस्वादि । सन्त्र स्वाच्यान्य स्वाच्यानिक्या

## ३२१। ऋतो ङा तत्पुने सगीनविद्ये चे।

(ऋत: ६।, डा ।१।, तत्पुत्रे ७।, सगोत्रविद्ये ७।, चे ७।)।

चे स्थितंस्य ऋदम्सस्य ङा स्थात् ऋदम्ते पुत्रे च परं संगीतिविद्ये। मातापितरी पितापुत्री, होतापनेतारी । \*

३२२। चगैक्यवं स्तीवं। (वगैकावं ११, क्रीवं १)।

चस्यैकां गस्यैकां वस क्लीवं स्वात्। १

३२३ । चैक्याचुटंपहोऽ: । चेक्यात् ४।, वदवहः ४।, प. १।)। पवर्गान्ताद्दवहान्तात् चैक्यात् ग्रः स्थात् ।

<sup>\*</sup> सच पुत्रयः ततपुत्रं तिथिन् । तत्र श्रद्धेन्ड पूर्वेस्थित-स्टर्स एवीख्यते । गोत्रख्य विद्या च ते, समाने गोत्रविद्ये यस्य तत् सगीत्रविद्यं तिथान् । इन्हसमासं स्थपूर्व्यविद्यं स्टर्स्त ग्रद्धे । समाने गोत्रविद्यं त्यात् एवे च परे. पूर्वोत्तरपद्योः समाने गोत्रविद्यं समान-विद्यं समान-विद्यं समान-विद्यं स्थान् । स्टर्स्ते सिं — पितृपिताम ही । सगीत्रविद्यं कि — ज्ञामाद्यपुत्री दाद्यभीकारी इत्यादि । अत्र पुत्र ग्रद्धे प्रवाधि । स्विप्त स्थाप्ति परपदस्य च समानिवद्यं से म्यति, वेन द्वित्यात्र स्थापित हिस्त समाने । प्रविपदस्य ममानगीत्र परपदस्य च समानिवद्यं से मवित, यथापित हिस्तारी । किञ्चान दिपदरने एव डा भवित, तेन होता च पोता च यष्टा च ते ही होयोद्ययप्टार इत्यन न स्थान् । दिपदवाक्ये तु स्थादेव, तेन हीतापीतारी च यष्टी देशायोतारी च ते हीतापीतायष्टादगातार इति । हीतापीतारी च यष्टा चिति वाक्ये तु होतापीतायष्टार इति । सन् मातापितरी इत्युदाहरता प्रायेण इन्हे स्वीलिङ्गस्यैव पूर्व्यस्तिरिति स्चितम् (पाणिनिः १।२१०) । "मातरिवतराबुदीच्याम्" (६।३।२२) इति पाणिनिस्वेण मातापितरी इत्यस्य हपानरम् । पाणिनिः ६।३।२५।

<sup>†</sup> चय गय तौ तयं। रेकां, चगैकाच वयः तत्। ऐकां समाद्यारः। प्रस्ययोभावस्य क्षोवलफलन्तु उपसंज्ञं उपलक्तिः इत्यादौ (१६०) इत्यः। गुरूपज्ञं व्यच्छायं रयःसभं उपसभंदासीसभंस्त्रीसभंगोशार्खं(पायिनि: २।४।२१—२५) इत्यादिक मि क्रीविक्डं भवस्येविति वक्तव्यम्। पायिनि: २।४।१,२,१०,१८।

वाक् च लक् च हयोः समाधारः वाक्लचं, श्रीसनं, ग्रमी-दयदं, वाक्लिषं, पीठच्छत्रीपानसं। \*

# ३२४। जर्बष्ठीवं पदष्ठीवं धेन्वनडुक्ती ग्रक्तो-राज: स्त्रीपंसी वाङ्मनसे ऋक्सामे दारगवं ग्रिचिमुवं द्रत्यादय: साध्या:।

(कर्वष्ठीवं १।, पदष्ठीवं १।, धेलनलुको १॥, षकोराचः १।, स्त्रोणुंशी १॥, वाङ्-मनसे १॥, स्टब्साने १॥, दारगवं १।, श्रविसुवं १॥, क्रत्यादयः १॥, साध्याः १॥)। †

#### इति चः।

श्रत्र समाद्वारिवयकाणि कितिचित् पाणिनिस्त्राणि लिख्यले — "दन्दय प्रापित्र्यंसेनाद्वानान" (२।४।२), यथा पाणिपादं सुखनासिकं, माई जिक्कपाणिकक्त, रिध-कावारिक्न। "नातिरप्राणिनान्" (२।४।६), यथा भानामकुलि। "विशिष्ट लिङ्की

<sup>\*</sup> पुष दय मूईन्य षष इ चिति चुरुष इ तथात्। समाहारहन्दे स्थितात् चनांनि-दान्त पान्त-हानात् ष: स्थादित्यर्थः। (५२०) षादित इत्यनेन एतदः प्राययादीनां तिहत्तवात्. (४३१) न दं तसावित्यनेन दान्तविविधे वाक्तवसित्यादी विराममाश्रिय (१११) कुङ्गिदकं न स्थात्। एवच समाभपादीक्षप्रव्या प्रन्यपदादेव स्पृतिि. तेन तक्तप्तं सिखिपुत्रः इत्यादी पूर्वपदात् न कथित प्रत्याः। चे किं, पञ्चानां वाचां समा-हारः पञ्चवाक् इति हिंगी न स्थात्। ऐकामिति किं, प्रावृद्यद्दी इति इतरेतरे न स्थात्, समाहारे तु प्रावृद्यग्दमिति स्थादेव। पाणिनिः प्राधा१०६।

<sup>†</sup> कर्ष्यहोत्रभित्वादयः साध्याः निपात्या इत्ययः। जक्ष च प्रहीत्रभी च कर्ष्यहोतं, पादी च प्रहीतनी च पदहोतं, उभयच प्रत्ययः। पादस्य पदादिशयः। धेनुष धनड्रांय धंन्तनहु ही, एतदादिस्योऽपि प्रत्ययः। यहस्य रात्रिय प्रहीरातः, समाहारेऽपि पंन्तम्। सह्यापूर्वतं तु क्षीत्रतं यथा विरावभित्यादि । स्त्री च पुमाय स्त्रीपंसी। वाक् च मनय वाद्यनसे। च्हक् च साम च च्छक्सि। दाराय गावय दारगवं। प्रतिणी च सुवी च प्रतिभुवं। इत्यादयः इति वादिशन्तेन घटसमासेषु प्रनुक्षानि उपाने। तत्र समासान्तरे-ऽनुक्षं तत्रैव वक्षत्यं, हन्तं प्रतुक्षानि तृ प्रच चच्यके। नक्षन्तिदं राविन्दिवं प्रहर्दिवं च्छाय्वहं; प्रयोगोनसारीण इतरेत्रयोगः समाहारस्य प्रयोगनसरी मिनावक्षी; इत्यादिकः प्रयोगानसरिण इतरेत्रयोगः समाहारस्य प्रयोगः। पाणिनिः प्रथावनः।

#### बहुवीकि-समासः (इ)।

### पीतमस्वरं यस्थासी पीतास्वरी इति:। नीलमुज्ज्वलं वपुर्यस्थासीनीलोज्ज्वलवपु: क्षणाः।\*

नदीदेशीऽयामाः" (२।४।०), यथा गङ्गाशीषां, कुक्कृक्तेत्रम् । "जुद्रक्तत्रः" (२।४।८), यथा दंशमध्रकम् । भानकृतात जुद्रकृत्यः । गृथ्येषाञ्च विरोधः प्राश्वतिकः" (२।४।८), यथा, गीन्यामम् । "गवाश्वत्रस्तोति च" (२।४।११), यथा गवाश्वः, दासीदामं, पुत्रपौषं, लोकृमारं मृत्रपुरीव, मांसशीषितमित्यादि । "विभाषा वृत्तस्त्रयाधान्यश्यकन्पगृशक्तयश्ववङ्वपृश्वापराधः निराषाम्", (२।२।१२), यथा अञ्चर्योधं अञ्चर्योधाः, कृष्यतं क्रप्यताः, कृष्यकाश्चः, दिष्वृतं टिष्वृतं, गीमहिषं गीमहिषाः, तित्तिदिकपिञ्चलं तित्तिदिकपिञ्चलाः, भश्यव्यवस्य भश्ववद्वौ (२।४।२०), दृष्यादि ।

निपातनादिकशिषीऽपि इन्हों भिवती। दिखानं यथा — भशी च भश्य भशी, इंसी च इंसय इंसी, युवती च युवा च युवानी (पा. ११२१६०), स्वमा च भाता च भातरी, दुहिता च पृत्रथ पृत्री (पा. ११२१६०), अशूष अग्रुर्थ अग्रुरी (पा. ११२१००), जाया च पित्र दस्पती जम्मती च। रामय रामय रामसे रामय रामय रामसे रामय रामय रामसे रामय रामसे रामसे

 मौतास्वर इत्यत्र समस्यमानाभ्यां 'पौतं' 'चम्बर' इति पदाभ्याम चन्चो हर्षिध्यते, एवं त्रिपदवहुती ही नी की ज्वलवपुरित्यच समस्यमाने भ्यो नी लं' 'उज्वलं' 'वपुः' इति पदेभ्योऽन्य: क्राणी ब्प्यते। एवं चतुपदयहत्रीहिरपि. यथा चारूटा बहुनी वानरा यंस चाकदत्त्वचन्त्रानरो तत्त इत्यादि । प्रायम: समानाधिकरणानां पदानां भन्यायंत्वे बहुबीहि: स्थादिति बीध्यम् । (३३३) सद्य मात्रा वर्गते थाऽसी समाहकः इति उदाहरता ग्रन्थकारेण त कदाचित भिन्नाधिकरणानां पदानासीय वहत्रीहि: स्थादिति मूचितम, अतएव धर्मो बनियंस्थासौ धर्मबनिरित्थादि। (सिज्ञान्तकौसुद्यान्तु 'ंव्यधिकरण।नः मिप न पद्यक्षिभंकसस्य"। एवसेव गोयीचन्द्रः ।) घषिच पौतास्वर् इस्ट्राइरता विशेषणविशेषायी: समासे विशेषणमेव पृथ्वे स्थादिति स्वितं, तेन पीता-स्वर इत्यत्र भ्रम्बरपीत इति न स्थान । (२६८) प्रक्रमित्रीत्यादि उदाहरता क्वचित् क्तान्तिविश्रीवर्णं परमपि स्थादिति सूचितं, तेन अग्रग्राहितः आहिताग्रिः (पाणिनिः २।२।३०) इत्यादि । वस्तः पूर्वपदीत्तरपदव्यवस्था प्रधीगानुसारेण क्रिया । दितीया-दिविभक्त्यन्तान्यपदार्थे। बहुर्जीदिरिति चाचार्योर्भन्थते यथा—चारुटी वानरी यंस भाष्ट्रवानरी त्रच:। जित: काभी येन स जितका सक्तपस्ती। उपनीतं भीजनं यस्त्री स उपनीतभी जभीऽतिथि:। निर्गती जनी यस्नात स निर्गतजभी देश:। पीतास्वर इति षष्ठान्तान्यादार्थः। उपितो विद्वशी यक्षिन् स उपितविद्वशी द्वव इत्थादि । "प्रथमार्थे तुन, यथा इन्टे देवे गतः'' इति सिद्धान्तकौ छदो । स्वनते तुप्रयमानान्यपदार्थीऽपि, यथा समाहक दलादि।

(१०७) षुर्णोऽदान्ते न इति इतिभाविणी इतिभाविनी, श्रीभाविण श्रीभाविन । रम्यविणा श्रीकामिण । रम्यपक्षेत रम्ययूना रम्याङ्का । ॥

## इर्पू। नजोऽनौ वाज्यसोः।

(नज: ६।, बनौ १॥, वा ।१।, बच्हसी: ०॥)।

नजोऽचि परै अन् इसे च अ: स्थात् से वा। नास्थन्तो यस्थासी अनन्तः नान्तः। अच्युतः नच्युतः। 🌵

भगाभस्यं विरोध च मजर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥ दति प्राघः I

च्टरहरणं यथा— न बाग्नणं ( बाग्नणः बाग्नणस्य द्रव्ययं: । पापस्याभावी ( पापस्य न चटी ( घटभित्र दःस्यः । चनुदरी चलीदरीलर्थः । चनेश्री चप्रवसकेशीलर्थः । चनुरः सुरविरोधील्ययः । पाणिनिः ६।३।३१,३४ ।

चत्र वाग्रस्टस्य व्यवस्थावाचित्वात् नाकादिवु चारेमो न स्मान् यथा---

<sup>\*</sup> इर्रि भावयितुं श्रीलमस्याः इति भृक् ग्राङ्गिल्याम् (८८२) पिनि क्षते, (६४१) अर्लोपं, (२५०) नान्तवादीपि, समासांत्रविहितेन देपा सहितस्य नस्य (१००) वा पत्नम् । श्वन् (२६६) धात् क्षीतादिति ज्ञापकात् स्याद्य्यमेः प्रायपि कारकाणां समामः, तथाप क्षति कारकोपपदानां क्षाः समासवचनं प्राक् सुनुत्यते-रिति भाष्यम् । श्वियां भावी यस्याकौ श्वीभावः तेन श्रीभावेण श्रीभावेन, श्वन समासीत्तर्तिकस्यादिसम्बन्धिनो नस्य वा पत्मम् । अभवन् एकाच्कवर्ययुक्तग्रन्दसम्बन्धिभिन्नत्वात् विकन्यः । रस्यो विः पचौ यत्र तेन रस्यविषा, श्रियां कामी यस्य तेन
श्रीकामेणः ज्ञमयत्र एकाच्कवर्ययुक्तग्रस्टसम्बन्धिन तिन रस्याक्षन्, रस्यो युवा यस्यान् तेन रस्ययुक्ता, रस्ये श्वहर्यसिन् तेन रस्याङ्गा, एतंषु पक्कयुवाहवर्जनात् न पत्नम् ।

<sup>†</sup> पन् च प्रथ पनी। पक्च इम् च प्रज्ञासी तथी:। समासे स्थितस्य नजः स्थाने पचि परे पन् इसं च पः स्थान् वा। नास्ति पन्त इति पन्ती नाशः। नाति प्रति पन्ती नाशः। माति प्रति पन्ती नाशः। प्रतिथातीः क्षति नाशो यस्य स प्रच्यतः। प्रतिभित्ति चुधानीभावि क्षतः। प्रतिथातीः कर्मारि (१९६) काम्यवे पुनी नवर इति केचिन्, तन्त्रते न पुनीऽप्युतः चुनभिन्न- स्थार्थः। तथाच--- तसाइःश्वभभावश्व तदन्यतं तदन्यसा।

# ३२६ । महत्तेकार्ये जातीयद्वासकरविशिष्टे त ती च । (महत् १६), व ११), भारा, एकार्वे का, जातीय—विशिष्टे का, त ११), व ११)।

महतस्त त्रास्यात् एकार्थे, जातीयादी तुती च। महावल: । अ

३२७ । पुंवत् स्त्युतापुंस्तः स्त्रियां ङ्यमानि-तत्वशसन्ततरादौ चारूप्य । (प्यत् ११), स्त्री ११), अत्रपुनः १।, स्त्रियां २।, इ.स. - तरादौ २।, च १९, प्रदर्ध २।)।

नाकी नवेदा नक्षलय मको नासत्य नचत्र नपाच नभाट्।

नपुंसकं वे नमुचिनस्वच नार्दशमेतेषु वदन्ति धौरा:॥ इति पाणिनिः ६।६।०५। एषामर्थाः—न प्रकं (दुःखं) प्रसिक्ति नाकः। न वेतीति नवेदाः प्रमुन्प्रस्यानः। न कुलमस्येति नकुतः। न कामगीति नकः, क्रमेर्जः। न सस्यः प्रसस्यः, न प्रसस्यः। न चरतोति नववम्, चौयतेः चरतेवां चविनिति निपातः। न पातीति नपात् प्रत्ययानः। न साजते इति नसाट् क्विवनः। न स्त्री पुमान् नपुंसकं, स्त्रीपुंस्थोः पुंसकसावी निपातनात्। न सुचतीति नसुचिः। न खमाकाथ-मस्येति नखम्।

ॐ एकीऽथाँ यस म एकार्यसिखन् । जातीयय घासस करस विशिष्ट्य ममाहारे तिखान् । महन्गव्दस्य तकारस्य माकारः स्थान् एकार्यं विशिष्य धर्माहारे तिखान् । महन्गव्दस्य स्त्रीलिक्षं) तौकारस्य माकारः स्थाद्त्य्यंः । जातीय इति (४८०) प्रत्ययः, घास कर विशिष्ट इति शद्दाः । महन् वल यस्यासौ महाकतः । एवं महती कीर्सिण्याभौ महाकीर्तः । विशेष्यश्रद्ध्यरत्वं कम्प्रेशारयेऽिय सम्प्रवि । तन महांचासौ देवसि महादेवः, महती चासौ कीर्सिविति — महाकीर्तिरिति । एकाथ किं, महाय पिछत्य महत्याख्यते, महतः पुत्रः महत्युत्र इत्यादौ न स्थान् । आतोयादौ त महती महत्या वा घासी महाघास. । महतो महत्या वा कारी महाघास. । महतो महत्या वा विशिष्टः महाविशिष्टः । महत्या महत्वा महत्वा महत्वा महत्वा वा विशिष्टः । महत्वा महत्वा महत्वा महत्वा महत्वा महत्वा महत्वा महत्वा महत्वा । पाणिनिः ६।१।४६, वार्त्विक्ष ।

उन्नपुंस्तः स्त्रीलिङ्गः पुंवत् स्वात् एकार्षे स्त्रीलिङ्गे, ङग्रादी च. न तुरुष्ये। \*

## ३२८ । नोप्ताककोङ्पूरग्याख्यायुम्ततिका-रार्धणित्तं जातिखाङ्गेपं त्वमानिनि ।

(न ११', कप्—वित्तं १।, नातिखाङ्गेय् ११', त ११', घमानिनि ७।) ।

<sup>🔹</sup> पुनानित पंतत्। उत्तः पुनान् बेन म चक्तपुंस्तः, एक बिक्वर्ये यः स्वीपुंसयोर्वत्तंते स उक्तपुंस्क इति यावन् "भाषितः पुनान् युन समानायामाक्रताविकस्थिन् प्रविति-निनिर्त्त भाषितपृंस्तः ग्रन्दः। तदेतदेव कयं भवति। भाषितः पुमान् यक्षित्रधै प्रवृत्तिनिभित्ते स भाषितप्रंस्त्रग्रन्देन।च्यते । तस्य प्रतिपादको यः श्रन्दः सीऽपि भाषित-पुंस्कः: " इति काशिका। ग्रम् चने यस्य संग्रसनः, तर चार्दिर्थस्य संतरादिः, -ग्रमुन्तथामौ तरादियेति ग्रमुन्ततरादि.। ङाय मानिन् चतयलय ग्रमुन्ततरादिय तन् तिस्मिन्। न रूपाऽरूप्यतिस्मिन्। एकार्ये इत्यनुक्तते। चक्रपृक्तः स्त्रोलिङक्रस्टः षंत्रत् स्थात् विभेष्यस्ती लिङ्गभव्दे परं, ङग्राटीच पर. न त्रुष्ये इत्ययं। यथा— सन्दरी भार्यायस म मुन्दरभार्यः, एवं मुन्दरी चानौ भार्याचिति मुन्दरभार्या। इत्यादौ तु सुन्दरीवा चरति र प्रश्रपः) सुन्दरायते । आयातानं सुन्दरीं सन्यते या सा (८८३) सुन्दर-मानिनी। सुन्दर्या भाव: (४३८) सुन्दरता सुन्दरतम् । शसन्ततरादिन् (४६२ –४८३)— तरस्तमस ६०स चतरां चतमां तद्या। इष्टेयम् इमन्कल्पौ दंग्शो देशीय इत्यपि। वहु. पाग्रस्री कथ्यसमस् चैत तरादय इति॥ यथा –(४६२) द्रयमनशीरति॥धेन ग्रुसा ग्रुमतरा, इयमासामितिश्रयेन ग्रुसा ग्रुसतमा । (४६४) चितिश्रयेन ग्रुसा ग्रुसद्भागः। (४६५) चनयोरतिर्श्यन का किल्तराम्, चासानति श्रयेन का किल्तसाम् । (४६६) चति-ছেথিৰ শবুী অবিষ্ঠা অভীয়নী। (৪৩५) অহ্যামাণী অভিনা। (৪৩৩) ई.बहूमा ग्रुमा ग्रुभक्त या ग्रुभदे या ग्रुभदेशीया। (४००८) ईषटूना ग्रुमा वड्डग्रमा। पाच वडी: परिख्यासभावात् न पंत्रद्वावः । वहीय समन्ततगदावुपन्यामसुवस्यमाणति स्तप्रकरणे द्मसन्तर।दिविधायकस्ववर्गनध्यपातानुरोधात् । (४०८) कुक्तिसता ग्रमा ग्रमपाशा। (४८०) सूतपूर्व्या ग्रभा ग्रभवरी। (४८१) ग्रभाया सृतपूर्वीगी: ग्रभारुष्य:, भव कथ्यवर्जनात् न पुंवत्। (४८२) वहीर्देडि वहुणी देहि दृति। उक्तपुंक्तः सिं, गङ्गा-भार्यः । तस्याः, ततः तस्यां, तत्र, तदा, तर्हि इस्यादौ तु (३२०) पुंवत् स्नेरिति पुंतत् । इिलिनोनां नइ: इालि वं, भग्नायौ देवता भस्य भाग्नेय:, कुक्कृट्या भस्यं कृक्कृटा छं, सन्याः चौरं सगचीरं, सन्याः पदं सगपदं, काक्याः ग्रावकः काकग्रावकः इत्यादी प पुंबद्वावी वक्तव्य:। पाणिनि: ६।३।३४,३४,३६,४२, वार्तिकानि च।

जबन्तं, तस्त्राकस्य वा क्षेन ककारोङ्, पूरणीत्यान्तं, संज्ञाभूतम्, इम्-उम्-रक्तार्थ-विकारार्थ-वर्जं णित्तान्तच, पुंवन्न स्थात्, जाति-स्वाङ्गविहितंबन्तन्तु मानिन्वर्जे। \*

३२१। पूरणी प्रिया मनोत्ता सभगा दुर्भगा चान्ता कान्ता वामना वामा चपला बाला समा सचिवा तनया दुहिलं खा कल्याणी भक्तौ।

(पूरची--भक्ती ७।)। '.

एषु परेषु पुंवन्न स्थात्। 🌵

<sup>•</sup> तथ पक्य ताकी, तथी: कः ताककः, स छङ् यस स ताककोङ्। इस छ य यू ताथां स युन, (४१०) (मकारस्य प्रयोकसम्बन्धेन इम् छन् इत्यूषः), रक्तय विकारय तौ रक्षविकारौ, तौ पर्यो थियां ते रक्षविकारायोः, युम घुरक्षविकारायां ये ते, न विदासे तं यत्र सीऽयुसक्षविकारायेः, मूर्क्त्य च इत् यस्य स ियत्, पिषासौ तयेति विक्तः, प्रयुक्तविकारायेथासौ वित्तयेति चयुसक्षविकारायेथिकः। पसात् छप् व ताकको छ च पूर्षौ च भाष्या च चयुसक्षविकारायेथिकस समाझारे तत्। जातिय स्वाक्तय जातिन्वाक्ते, ताथानीप् जातिन्वाक्तेप्। न मानिन् प्रमानिन् तिकान्। जनलं पदं, तिक्ततस्य केन चक्रप्रस्थ वा केन ककारीक् पदं, दितीयादि-पूर्षोप्रस्थयानं पदं, दत्ताभद्रादि संभाक्ष्यं पदं, इन-छन्-रक्तायं-विकाराये वज-चकारेन् तिकान्नस्यानं पदच पुंतक स्थान्। जातिविक्तिवन्तं स्थाक्तविकितेवन्तस्य मानिन्वके प्रस्तिप्रस्थानं पदच पुंतक स्थान्। जातिविक्तिवन्तं स्थाक्तविकितेवन्तस्य मानिन्वके प्रस्तिप्रस्ति परिच्त स्थादिष्टर्यः। पाणिनिः इ। इ। इ० — ४१।

<sup>†</sup> प्रश्ने चेत्रादि इन् तिसान्। प्रश्नीत प्रश्नीमत्ययान्तः स्त्रीखन्नम्दः वितीयादिः। भित्तम्द्रभाव कम्मेविहित क्षिमत्ययान्ती भव्यमानद्रव्यवाची बीध्यव्यः, भावसाविति तु पृंतत् स्मादेव । एषु चटादमस् परंषु पृंवत् न स्मादिवयः । चत्र केचित् चानातनयचीः स्वाने चमातवस्त्री, स्मा द्रत्य स्वसा इति, वाला इत्यच क्ष्मला इति च भाषः, वाला-वाना-मस्दो च नाषः । नेघद्ते इटभित्तभवाना इति, रघी च इद्भित्तिरिति व्यष्ठि इति, भाषिविहत्तान् पृत्यावः । 'स्त्रीलविववायान्तु हृद्धभितः'' इति सिखान्यनीमुदी । मस्ततनया इति तु प्रत्तं तनयया यस्मा इति स्थिक्तस्थनभूनीहः । पाषिनिः दश्वश्च ।

# ३३०। गवाबादे: खोऽन्ते गौखेऽनीयस:।

(गवाबादी: ६।, स्तः १।, चली था, गौर्खे था, चनीयस: ५।)।

म्रन्ते स्थितस्य गोः श्राप ईप जपद्य स्वः स्यात् श्रप्रधानत्वे सति, नत्वीयसः।

भीतगुः ध्वस्तमायः कालतनुः। ईयसलु बहुपेयसी । \*

जबादेसु (३२८) — वामोरू आयीः रसिकाभार्थः पाचिका-भार्थः षष्ठीजायः दत्ताजायः मैथिसीभार्यः । ब्राह्मणीभार्यः सुकेशीभार्थः । श्रमानिनि कि — ब्राह्मणमानिनी । युमादेसु वैयाकरणभार्थः सौवखभार्थः काषायकस्यः हैमसुद्रिकः । १

आप्पार्टियस सावादिः, गौय आवादियतत्तस्य । गुगस्य भावी गौस्यं तिस्मिन्। न द्रीयस अनीयस तस्मात्। द्रीयमः परस्थ द्रेपः स्त्री न स्यादिश्यर्थः, एव निषेधः बहुत्री हार्वेव, (ई.यसी बहुत्री हेर्नेति वाचिमिति वार्त्तिकम्) तेन प्रेयसीमितिकाल: ऋति-प्रयक्तिः खल इत्यादि । पर्छे विषयस्याः अद्वेषिपपत्ती, एवं पर्धसारी प्रश्नेगारी इत्यादे-इंस्तिविधी वक्तव्य:। अत्र भावादिस्तीत्यानां ग्रहणात् न स्त्रीतिङ्गशब्दमातसः इस्तः. तिन घतिलच्ची:, घतिचौरित्यादि। प्रविद्वावस्य विधिनिषेधौ निरुष्य उदाइरित शीतग्रित्यादि। श्रीताशीतलागी: किरकी यस्रासी शीतगृयन्द्रः, ध्वला सायायस्य स भ्वसमायः, उभयव पूर्वस प्वद्वावः, पग्न्य इस्तः । ईवनं यहवीही (२३२) कप्रस्थयेन वाधितत्वाद्रीदाद्रतम्। काली तन्यैस्थासी कालतनुः, पूर्वस्य पुंतत्, परस्य प्रस्तः। एवस् भन्धवापि गौवले पञ्चगुः भतिसावः भतिस्त्रिशिखादि। बह्नाः प्रेयको यस्य स बइप्रेयसी कृषाः, पूर्वस्य प्वद्वावः, परस्य ईयसी वर्जनात् न इस्तः, (१४८) ईपः सेलीपः ध्यादेव । समासान्तविधेरमित्यत्वादव न (३३२) अनग्रत्ययः, (ऋच पाणिमिस्वं ग्रष्या "ई्यस्य" ५।४।१५६)। भाम ऋश्वनिधेधान् सुप्रेयसी कृलसिल्पच (१६०)क्रीवेस्तः इस्रुमेनापि इस्दी न स्थादिति । एवं प्रथीगानुमारेचान्यवापि । घप पुंवदावप्रकरची विपट्वहुती ही मतर्भदी दृखते, यथा, चित्रानरतीगुः, नरती चित्रागुर्वा ; एवं दीर्घा-तम्बीजङ:, तन्बीदीर्घाजङ: प्रति केचित्। पपरेतु चित्राजरहगुरिति वदस्ति ; चित्रा-जरलीं गावी यस्थेति दलगर्नेऽपि चित्राजरदगुरिति भाषाम्। कसौधारयपूर्व्वपदेतु इसोरपि प्रंतत्, यया जरिवनगुः। पाणिनिः १।२।४८, वार्त्तिकसः।

<sup>†</sup> वाली सुन्दरी जड यक्षा: सा वालीक: (१९०८), वालीक: भार्या यस्य सः। स्कंबितीतिरसिका(४१८), रसिका भार्यायस्य सः। पचतीति (८८०) पाचिका,

पूरखादी तु (३२८)--

# ३३१। हे पूरणीप्रमाणीभ्याम:।

(हे ७।, पूरवी-प्रमाखीम्यां ५॥, च: १।)।

त्राभ्याम् त्रः स्थात् है।

(२५८) ययोर्लीपोऽयुक्ती पी। कत्यागीपश्वमा रात्रयः. कर्ष्याणीपियः। मुख्यात्र पूरणी पाद्या, तेन- 🕆

पाचिका भार्या यस स:। वकां पूरकी (४५५) वष्टी, मधी जाया यस स:। दत्ता (इति संज्ञा) जाया यस्य मः। मिथिलायां भवा मैथिली (४२८), मैथिली भार्था यस्य सः। एव पूर्वपदानामूबन्तादीना प्वहार्बानवेषः। वाद्ययी (१६०) भार्या यस सः बाज्ञ की भार्यः, सुकेशी (२६५) भार्या यस्य सः सुकेशी भार्यः, उभयव् नाति-स्वाजः-विहितेबलं न पंवत्। आत्मानं बाह्मणीं मन्यते या सा ब्राह्मणमानिनी, मनधाती: (८८३,२५०) थिन, ईप्च। ऋत मानिनि पर पुंबद्वाव:। व्याकारणं तिति मधीते वा या सा (४२८,४१७) वैत्राकरणी, सा भार्था यथ सः। सु सुन्दरः चत्री यस्य सः स्वयः, स्वयस्थेयं (४३०,४१०) सीवयो, सा भार्या यस्य सः । कषार्येण रक्ता काषायी (४२६), काषायी कत्या यस्य स:। ईसी विकार:(४३०) हैसी, सा मुद्रिका यस्य सः । एतेषु इस्- अस्- रक्त विकारार्थ- वर्जनाब् एवडावः । सञ्चेत्र पर-पदानां ऋस्य:। (६।३।४३) पाणिनित्त्रेण क्राञ्चाणिकल्पा, बाह्मणिद्रवा, बाह्मणिहताः इत्यादी ङीवलस्थानेकाची इत्सः इति वज्ञव्यम् ।

#### पूर्व्यादौ परे (३२६) उदाइरिष्यन् म्त्रमाह ।

+ पूरणी दितीयादि:। प्रमीयतेऽनया इति प्रसाणी। पूरणी च प्रमाणी च ताभ्याम्। पूरणीयाचकात् प्रमाणीशब्दाचमः स्थात् बहुबीही दर्श्यः। पञ्चानां पूरको पञ्चमी (४५१)। कल्याकी प्रथका पञ्चमी रात्रियांसु रात्रियुता रात्रयः कल्याणीपश्वमाः, पत्र पश्चमीप्रन्दं परे (१२८) पुंबद्वावी नामृत्, पश्चमीप्रन्दादर्नन भगव्यये ययो लींप इति ईपो लोपे, (२४८) भाष् । कल्याची प्रिया वस्य स कल्याची-प्रिय:, (३२८,३३०)। एवं कल्याकीमनीजः इत्यादि। सुख्याकीत अन्न पूरकी-परे पुंक्षावनिवेधे पूरकीयरात् चप्रत्ययेच उभयच सुख्या पूरकीयःच्चाः सुख्यत्वऋ समासवाच्यानाससाधारणधर्माः स्वस्। कलयायी पञ्चना इत्यत्र समासवाच्याकां राषीयाः

# ३३२। द्यृत: क:। (दी-सत: ४।, क: १।)।

दीसंज्ञ का हदन्ता च का: स्थात् है। कर्त्या चपच भीकः पचः। राजिः पूरणी वाच्या चेति पूर्वेत्र सुख्यलम्। स्त्रीप्रमाणः। #

३३३। सहः सो वा। (बदः ६), वः १।, वा।१।।

सष्ट्य हे सः स्यादा।

सह मात्रा वर्त्तते योऽसी समात्रकः सहमात्रकः । 🌵

## ३३८। सक्ष्यंच्याः षः खाङ्गे।

(सक्थक्षः ५।, षः १।, खाङ्गे ०।)।

माभ्यां हे ष: स्यात् खाङ्गे। दीर्घसक्यः, पुण्डरीकवदिचिणी

योऽसाधारणधर्मः: रानिलंतचतासु रानिषु पश्चय्यां रानाविष वर्णते, भारी सुख्यलम् । तेन दति, परस्वीदाइरणे कल्याणपञ्चमीकः पत्तः द्रत्यत्र न पुंवद्वावनिधेधः, नापि अप्रत्ययः, द्रस्यभेन सस्वन्यः । पाणिनिः ५।७।११६ ।

\* दो च सम यून् तथान् । (१६) नदीसंजकाश्रदान् सहलक्षम् सम्मि व मुले व सम्मि दिल्यः । इति तृपक्षम् वभागम्, भन्यभीऽपि चरःप्रथितिभ्यः श्रद्धभी व मृत्ये व प्रयोगानुसारेण कप्रत्ययो व कत्यः (पाणिनः प्राधारप्रः १,४।४।१४४)। कत्याणी पश्चभी सिक्षम् पच सः कत्याणपश्चमीकः पचः, भन्न समास्रवाच्यस्य भमाधारणप्रमः पचलं, तमु पश्चर्या रौनौ न वर्षते, भती सुद्धत्वाभावान् न पृंवद्वावनिषेषः (१२६), नापि भप्रत्यः (१२१)। कत्याणीत्य (१९०) पृंवद्वावे, पश्चमीत्यस्यान् नदीस्थकाद्नेन कप्रत्यः। राविः पूर्णौ वाच्या चित पूर्वेच कत्याणीपश्चमा रावयः इत्यमीदाप्रणे राविः समास्रवाच्येतः, पूर्णौवाच्या पश्चमीवाच्या चेत्र्यः, भतः पश्चमीश्रन्थस्य स्रुल्यत्विति। स्त्रौ प्रमाणी यस्य संस्त्रीप्रमाणः, स्त्रौश्रन्थस्य स्रुक्तपुंस्ततान् न (१२०) पृंवद्वावः, प्रमाणीश्चरान् (१११) भप्रत्यः। पाणिनः प्राधारप्रस्त्रः।

† समायक इति (२१२) कः, भागेन वा सम्स्थाने सः । विचित्त मात्रा समितः समायक इति वाकः क्रवा व्याचितत्पुष्यं वदन्ति । एवं सम्मानम् उदरं यस्य सः संवदः स्थादि । के किं, सम्मान, सम्यस्यं स्थलाग्रं स्वितः स्थादि । के किं, सम्मान, सम्यस्यं स्थलाग्रं स्विताम् सम्भादि निस्यं वक्षस्यमिति । पाचिनिः ६।३।५२ ।

यस्यासी पुण्डरीकाचः। साङ्गे किं, दीर्घसकृष्टि मकटं। #

३३५ । दाक्रायङ्गले: । (दार्वाष ७), पङ्गले: ४।)। पञ्चाङ्गलं दाक् । १

३३६। दिनेर्मुद्धै: |' (विवे: ४।, स्वृं: ४।) । :

# ३३७। नोर्लेगितो तेऽच्छे।

(नी: ६॥, लीपौतौ १॥, ते ७।, भचे ७।)।

नस्य लोपः स्थात् उवर्षस्य क्षोत् स्यादंचि ये च ते। हिमूर्ड: । §

अ सक्षि च घवि च तत् सक्ष्यचि तसात्। स्वस्य घात्रानः चक्नं स्वाक्तं तिसान्। स्वाक्तं लचणस्क्तं (२६५)। स्वाक्तवाचिम्यामाभ्यामित्ययं:। य-प्रत्ययय व धत् (२५०) ईवयं:, घकारस्थितः। दीघें सक्ष्यमी (ऊक) यस सः दीघंसक्षः। प्रश्वरीकविदिति, प्रश्वरीकं सिताम्योजं तन्त्वे च च अं सम्प्रवित, क्रती खच्चया तत्त्त्वं घर्षः, घतपत वाक्ये पुष्परीकविदिलुकं, एवं व्याप्तया (३५८) इति स्वयं व च्यति। उभय्यव उदाइरणे घनेन प्रप्रत्ये, (२५८) इकारस्वीपः। विश्वात स्वियां दीघंसक्ष्यो, सराजाची। दीघंसक्ष्ये, दर्भाजाची। दीघंसक्षियः। इति भवत्यः प्राणिताभावादिति भावः। एवं स्थूलाविदिषुः। इति भ्रत्यस्य प्राणितः ५।४।११३।११३।

<sup>†</sup> षजुलिशस्त्रात् यः स्थात् हे, दाकणि वाण्ये। दाक कार्छ। पञ्च प्रकुलयो यच तत् पञ्चाङ्गुलं दाकः पञ्जलिस हमाश्यवं धानानां विचेपणकाष्ठमुच्यते'' दात गीयीचन्द्रः। स्त्रियान् विचादीपि पञ्चाङ्गुली सिनत्। दावणि किं, पञ्चाङ्गुलि हंतः। एवं पञ्चाङ्गुला शिला, इत्यच (३६०) सङ्गाव्यादिति प्रायये, स्त्रियाम् पाप्। पाणिनिः ५।४।११४।

<sup>‡</sup> विश्व विश्व तत् तस्त्रात्। दिविभ्यां परात् सूर्वुः वः स्वात् हे। पाणिनिः प्राधारर्भू।

<sup>§</sup> न च उथ नृतयो: । लोपथ भोत् च लोपोती । भच्च यथ भचंतिकान्, ते इत्यस्य विशेषणम् । दो मूर्बानी यस्य सः दिम्दैः, (३३६) प्रत्यये, भनेन नलोपे, (२६८) भलोपः । एवं चयो मूर्बानी यस्य स निमूर्बः । स्त्रियां विमूर्जी निमूर्जी राचसी । दिनेः किं, वहुमूर्जा । (४३१) न टंतसावित्यनेन दाललानिषेषात् (१०८) नो लुप्फेऽधावित्यस्थाप्राप्ती नलोपार्थमिदम् । भोत् यथा—वाइविः, वासस्य द्रत्यादि । केवित्न स्वात्यथा—स्वायसुकं घाम । पाणिनिः ६।४।१४४,१४६ ।

## ३३८। सङ्ग्राया डोऽवहो:।

(सङ्गाया: ५।, ड: १।, भवशी: ५।)।

बहुवर्जायाः सङ्घाया डः स्थात् हि । पञ्च षट् परिमाणं येषां ते पञ्चषाः, उपगताः दग्रः येषां ते उपद्याः । बहोस्तु उप-बहुवः । ॥

ं ३३८ | नाभेनी स्नि । (नाभे: ४।, नाबि ०॥) । पद्मनाभ: । १

## ३४०। लोमींऽन्तर्विष्टर्थां।

(लोस: प्रा, चनार्वहिर्धां प्र॥)।

श्रन्तलीमः वहिलीमः । 🕸

<sup>•</sup> नासि वहुर्यंत सा भवहुस्तस्याः । वहुयन्दस्य (१०१) सङ्घाविद्यानेन सङ्घातातिर्देशात् भाभी निषेधः । पश्चपाः इति उपत्ययं (१२६) टिलीपः । एवं दियाः
चतुःपश्चाः इत्यादि । उपगता विंग्रतिर्यस्य स उपिष्णः, (१२६) उपत्यये विंग्रतिसीलीपः, (१५८) ययीलीप इत्यकारलीपः । उपगता वहतो येषां ते उपवहतः । एवस्
उपगणाः । वहुवर्कनात् सद्धोयहत्तिसङ्घाया एव यहणं, तेन भटाभिः सह वस्ते
या सा साष्टा पश्चायत् इत्यत्व सङ्घा। जिलात् न स्थात् । भतप्त पाणिभी संख्ये
इत्युक्तस्। श्रीभनं प्रातयंश्यतत् सुपातसित्यत्व "भव्ययादेरिति वक्तव्यस्" इति वार्त्तिकात्
उप्तत्ययी वक्तव्यः । पाणिनः ५।४।७३ । भव "उप्तृपकरणे संख्यायास्तरपुष्ठपथ्योपसंख्यानम्" इति वार्त्तिकस्वात् निर्गतानि विंग्रती निस्तिशानि वर्णाण, निर्गतस्तिंग्रती
उक्तुलिश्यः निस्तिंगः खड्गः इत्यपि वक्तव्यम् ।

<sup>†</sup> नाभे: परी ड: स्यात् इ संजायाम्। पर्जा नाभी यस्य, पद्मवत् नाभियंस्य इति वा, पद्मनाभी विष्यः। एवं वजनाभः। ज्ञणां नाभी यस्य स ज्ञणंनाभः, ज्ञणंनाभि-रिस्त्यं, प्रव्र ज्ञणं इत्यस्य निपातनात् क्रस्यः। नामि किं, गभोरनाभिः। परिनद्धः नाभिरिति तु समासान्तविधेरनित्यलात् प्रसंजालादाः। "प्रच् प्रत्यव्यवृष्यात् साम् लांस्यः" (पाषिनिः ५।४।०५) इति सूर्वे 'प्रजिति योगविभागाद्यचापि, पद्मनाभः' इति सिज्ञानकीसुदी। क्रविद्याचापीति क्रमदीयरस्वम्, "एतदुपलचणम्, पद्मनाभिरिप्रभवति' इति गोथी चन्द्रः।

<sup>‡</sup> पृथग्थीगात् नास्त्रोति नानुवर्त्तते। चन्तर्विक्थीपरात् कीस्रोडः स्रात्

## ३४१। नञ्दुःसोः सक्ष्मो वा।

(नञ्दु:सी: ४।, सक्यू: ४।, वा ।१।)।

भ्रसक्यः असक्यः। 🕸

३४२ । ऋस् प्रजायाः । (धम्।१।, प्रजायाः ५ः)।

भ्रप्रजाः सुप्रजाः । 🕆

## ३४३। मन्दाल्यांच तु मेधाया:।

(भन्दान्यात् ५।, च ।१।, तु ।१।, सेघायाः ५।) ।

श्रमधाः सुमेधाः मन्दमेधाः । ह

हे। भ्रम्तर्गतानि लीमानि यस्य सः भ्रम्तर्ले।मः, एव विद्विं।मः । भ्रम्तर्ले.मा नासिका इति क्रमदीयरः । भाग्यां किं, दोर्घलीना । पाणिनिः ५।४।११९।

अ नञ्च दुत्र सुविति तथात्। एथः परात् सक्यो उः स्थादा है। मालि सक्यि यस्य भीऽसक्यः भसक्यः। एवं दःभक्यः दःभक्यः, सुसक्यः सुसक्यः सुसक्यः। भन्न प्रतः प्रतः स्थाद्वेषेत्र पः। (भन सक्यि अव्स्थाने अकि-रिति कंषित् पर्यत्वेषेत्र ।। अभन्नी अरस् स्थाने प्रति प्रयक् पदं स्वीकुरते।। ज्यादित्यादिसत्तवस्य वेषदेवेन विश्वितम्। पाणिनः ५।४।१२१।

† नज्-दः सभ्यः परस्याः प्रजाया सम् स्थान है। वेति नानुवर्मते पाणि निस्वि निस्यमिति कथनात्। नास्ति प्रजा सस्याभी सप्रजाः, ससि क्रेते, (१५८) ययोर्लीप सस्यासारक्षीपे, (१८५) सत्यसीऽधीरिति दीर्षः। एवं दुण्जाः, सुप्रजाः। इह नञादेर-व्यवहितोत्तर्ते तेन सुगुणिप्रज इत्थादी न स्थान्। पाणिनः ५।४।१२२।

‡ मन्दय घलाय तद्यात। मन्दालाभ्यां चकारात् नज्दुःसभ्यय परस्या मेधायाः अस् स्यात् है। नास्ति मेधा यस्य सः सभेधाः, सुन्दरी मेधा यस्य सः सुमेधाः, मन्दा मेधा यस्य सः सुमेधाः। एवं दुर्बोधाः। घनेन चस्. (२५८) चालीपः, (१८५) दीर्घः। इष्टापि नजादेरव्यविद्वतीत्तरस्वमेपितां, तेन मन्दवहर्मधः इत्यादौ न स्थात्। स्वन्तवात् मन्दादौनां परच नानुकत्तिः। "नित्यमिष्ण् प्रमानेधयाः" (५।४।१२२) इति पाणिनिम्वे 'नित्यग्रहणं क्राचिद्व्यवापि विधानार्थम्, चन्द्यमेधाः" इति तहीकाः। "मन्दान्याभ्यां सेधायाः" इति चन्द्रवर्धमानस्वम्। चत्रवर्षः चन्द्रवर्धानात् वर्षाः, यथा "यावि-प्रयोगो दर्धितः, यथा "यावि-प्रयोगो दर्धितः, यथा "यावि-प्रयोवे ते राजन् सन्द्वस्थान्यभेसः। चनुवाकहता वृद्धिनेषा स्वापदिर्धाः।"

३८८ । धन्मदिन् । (धन्मात् ४।, धन् ११) ।

सुधमा । \*

३४५ । नञ्सुनिव्युपाचतुरोऽः।

(नञ्-्वि वि उपात् प्रा, चतुर: प्रा, म: १।) ।

एभ्यसतुरः मः स्यात् हे। मनतुरः सुनतुरः । 🅆

३८६ । भान्तेतः । (भात् ४।, नेतः ४।) ।

नचवात् नेत्रयञ्दात् भः स्थात् हे । सगनेवा राविः । 🕸

क पूत्रिपदाभि विविद्याहिरंव न स्वादित्यतः पूर्वपदान् परान् धर्मादन् स्वान् है। स धर्मी यस्त्र स सुधर्मा, चनन चन्, (२५८) चनारकीपः, (१६४) दीर्घः। एवं सधर्मा विधर्मा वष्ट्यमा इत्यादि। भव सत्मेदो इस्त्रते यथा— "धर्मादिन्य् कंवलात्" (५।४।१२४) इति पाणिनिन्तस्य "केवलान् पूर्वपदान् परो यो धर्माश्रव्दः तस्मादिन्य भवति न पदममुदायात् चर्तास्त्रपदे वहुवौहौ न भवतीति" चन्द्रवहंनान-जयादित्यादिक्तता व्याच्या। भदीजिदौचितोऽर्ध्यवमाद। तत्मते परमः स्त्री धर्मी यस्त्रेत विपदे वहुवौहौ मा भृत्; किन्तु परमः स्वधर्मी यस्त्रेत्यच चिन् मत्रस्त्रेत्र स्वः स्वनीयो धर्मः स्वधर्मे इति कर्माधारयेण स्वधर्मेशस्त्र धर्मान्ततान्। कमदीवर्षण् तृ स्वान्तकति धर्मा इति कर्माधारयेण स्वधर्मेशस्त्र धर्मान्ततान्। कमदीवर्षणः तृ समावान्ततान् धर्मे। स्वान्ततान् समावान्ततान् स्वयं स्वान् नत् सन्। तत्मते परमः स्वर्मी यस्ति परममुधर्मः, सनुपावितकुष्टधर्मः इत्येव स्वान् तत् सन्। 'परमः स्वाभने धर्मोऽस्तित विपदे वस्त्रीदे तु परममुधर्मा इत्येव स्वान्। तत्मति। नत्मतम् पाणिनिस्वस्थिकेवल-सन्दी धर्मोदित्यस्य विभिवष्टं विभवष्टं विभवष्टं

<sup>†</sup> नक्ष सुध विध विध उपयेति तकात्। एथः परात् चतुर्वव्यात् पः स्थात् हे। म मिन चलारि यसासी भवतुरः, मृषु चलारि यसासी मुचतुरः। एवं भीष चलारि वा परिमाणं येशं ते विचत्राः। विज्ञतास्वारां यस्य स विचत्रः। उपगतास्वारी यस्याः सा उपचतुरा। पाषिनिः ५।४।७०। "बुःपाध्यासुपसंस्थानम्" इति वार्त्तिकस्र।

<sup>‡</sup> नचवात् नव्यवस्याचकादित्यर्थः परात् निष्टशब्दादः स्थात् है। स्याः स्याधिरी नव्यं निता प्रापको यस्थाः सा राविः स्यानेवा, च-प्रत्यथे (१४८) चाप्। एवं प्रयानेवा

# ३४७ । सङ्घरासूपमानात् पात् पादोऽ हस्यादे:।

(सङ्गा मुन्त्रपमानात ४।, पात् ११।, पादः १।, श्रष्टखादेः ५।) ।

णभ्यः पादस्य पात्स्थात् हे, न तु इस्यादेः। दिपात् सुपात् व्याघ्रपात् । इस्यादेल् इस्तिपादः। \*

३४८। कुसादेरीप। (कथादे: ४।, ईपि ०।)।

कुमादे: परस्य पादस्य पात् स्यात् हे ईपि परे। (२२३) पात् पत् पौ। कुमापदी प्रतपदी। ईपि किं, कुमापदः। प

इमनेवा इत्यादि । यश्चिन् भववे उदिते गाविः प्रवक्तते तत् तस्या नेत । "नेतुर्नेश्वव उपसंख्यानन्" इति वार्क्षिकम् ।

मद्ध्या च मुत्र उपमानच तथात्। न हस्यादि रहस्यादिस्तकात्। एथः परस्य भकाराल-पाद-भव्दस्य पाद स्थात् ही, मतु हस्यादेः परस्य । उपमानतया प्राप्ती हस्यादें। निवेधः । ही पादी यस्य स हिपात्। श्रीभनौ पादी यस्य स सुपात्। स्थाप्तस्येव पादी यस्य स व्याप्तपात्। हस्तिन इन पादी यस्य स हस्तिपादः। हस्यादि-र्थया—हमी कटीलः कर्व्होलो गच्छोलो गणिका महान्। दासी कुर्म् इत्यष्टी हस्यादी परिकीत्तिताः॥ कटील यखालः, गच्छोलो घान्यायाधारविशेषः, डील इति भाषा। पाणिनिमते—कृद्दाल भज भव गच्छ कपीत— पतेऽपि हस्यादिगणपिताः। भव गृहादपीति वक्तव्यं, तन गृहपात् सर्थः। पाणिनिः प्राधारुष्ट्र,१४०।

<sup>े</sup> भव र्यूपीति विषयसप्तभी, द्रीप कर्त्तव्यं द्रत्यथं:। क्ष्माविव पादी यस्याः सा क्षमपदी, क्रतं पादा यस्याः सा क्षमपदी, भनेन पादस्य पाद. (२६५) ईप्, (२२३) पदिवः। क्षमाविर्धया—क्षमाष्टनालाः क्षतत्त्वयोषाः विष्णः क्रितिर्देण-कृषी च कृषाः। निरादं भृचीकक्षदेकदास्यी विः स्करी वै कलसीऽपि विति ॥ "क्षमाष्टनालक्षतः सिनित्त्वकृष्णकृषिणितिकलसाः। विनिर्द्धमकृत्त्वत्यस्यक्षद्रोणगोधाय॥" दति गोयीचन्द्रः। भव भादं सन्दर्शाने भवं श्रव्यः विष्णुक्ष्यस्थाने सृनिगन्दय पिततः, सक्तत्वस्यः दत्यादिष्य। भयं गयी-विक्षतिसंख्यकः, पाषिनीये गयपाठे तु हार्विक्षत्र-संख्यकः। पूर्व्वस्वेषैव पाद-भादेशः। पूर्व्वस्वेषैव पाद-भादेशः। प्राथिनिः प्राधारहर ।

## ३४८। व्यतीहारे चिः पूर्वे वें।ऽनचा वा।

(स्वतीहार का, चि: १।, पूर्जं: १।, घं: १।, धनवि ७।, सा ।१।, वा ।१।)।

व्यतीहारे यो हस्तकात् चिः स्थात्, पूर्वस्य च र्घः स्थात्, श्रा वा नलचि ।

क्रीषु केरीषु रहीला यत् युदं प्रवत्तं — केयाकेथि। दण्डैय दण्डैय प्रद्वत्य यत् युदं प्रवत्तं — दण्डादण्डि। मुष्टामुष्टि मुष्टीमुष्टि, बाहाबाहित बाह्नबाहित। अपि तु, अस्यसि। \*

#### द्रति हः।

बहुनुहो, (पाबिनि: प्राधारक्ष) नायाया नानि:, (पाणिनि: प्राधारक्ष) धनुषी धन्तन्, (प्राधारक्ष) वा संज्ञायाम्, (पाणिनि: प्राधारक्ष) प्रसंभ्यां नातृनी जुः, (प्राधारक्ष) कहांविभाषा, हत्यादि प्रयोगानुसारात् वक्तव्यन्। यथा—युवनानिः, व्यक्तिकान्, प्रत्यक्षना स्तक्षनः, प्रयुक्तिकार्दि।

<sup>#</sup> परस्परमेकजातीयिकयाकरणं व्यक्तीहारः, तत्र यो बहुवीहिस्तयरपदात् चिः स्थात्, चकारित् अव्यथार्थं (८४), इकारिस्यितिः । चौ क्रते पूर्व्यपस्य प्राकारः, पर्वे दीर्घयं, चित्र पर याकारः, नापि दीर्घं इत्यथः । क्रेशकार्का द्रव्याद्यः उपमय पूर्व्वपदस्याकारः, परपदात् चिः, (२५८) अकारलीपः, (२४६) क्रीलंक् । एथं सृष्टिमिर्मृष्टिभः महत्य यद युद्धं प्रवत्तं सुष्टासृष्टि सृष्टीसृष्टिः वाहभिर्माह्मिः प्रवत्य यद युद्धं प्रवत्तं वाहावाहित वाह्रवाहित, जमयन पूर्व्यपदस्याकारः, पर्वे दीर्घः, परपदात् चिः, वाह्यस्य तु विश्वेषस्वात् (३२०) छकारस्य भीकारः, (३५) भीकारस्य भव् । प्रसिभः प्रविभः प्रवत्य यद युद्धं प्रवत्तत् । छदाहरणज्ञापकात्, तन गरहीता तन प्रवत्य तु न भाकारः नापि दीर्घः भव्यवस्तात् । छदाहरणज्ञापकात्, तन गरहीता तेन प्रवत्य युद्धं व्यतौद्दारे थे इस्त्रवेवायं विधिरिति, तेन कायभ्र कायभ्र गरहीता दिष्यं च स्थातः स्थादौ न स्थात् । भत्यव तन तेनेदिमिति सद्धे" इति पाणिनिस्चम् (२।२।२०) । ''क्रम्बंव्यतिहारे युद्धप्रवायं समासः । तनापि सप्रयत्तस्य यद्दवविषये ; व्यतौयानस्य प्रइत्यविषये । सद्दि किं, इत्येष सुवत्येषदं युद्धं प्रवत्तन्।' इति दीका । पाणिनिः ५।४।११२०, ६।११२०।

#### विभाषास्य-समासः (य)।

परमयासावाला चेति -- परमाला। संयासी चित्रासा-वानन्दयेति --- सचिदानन्दः। अ

### ३५०। कोङादिः 'पुंवत् यजातीयदेशीये तत्वे त्वजात्याख्यः।

(को झादिः ११, प्रंवत् ११), य जातीय देशीये अ, तले अ, तु ११।, प्रजालाख्यः १।)। को ङ्पूरखादिः पुंवत् स्थात् यादी, तलयोस् जातिसंज्ञावर्जाः। पाचकस्त्री पञ्चमभार्य्याः। पे

मयूरव्यंवकायाः, (पाणिनिः २।१।०२) माकपार्थिवायाय (शाक्रपार्थिवानेनां विद्यये उत्तरपदस्त्रीपसंख्यानमिति वार्त्तिकम्) निपायने। व्यंस्यति इत्तयतीति व्यक्ति पुर्तः, विपूर्वादंसभातीर्थकः, मयूर्यासौ व्यंसकस्ति मयूर्यंसकः। एवं उद्धर उत्तरं प्रति यसां कियायां सा उदरीत्स्त्रना, उद्धनविभमा, उत्पतिपता, भन्नीतिपवता रत्यादि। माकः मिनः वत्सरो वा प्रियो यस सः माकप्रियः, माकप्रियः पार्थिवः माकपार्थिवः, निपातनात् मध्यपदस्तिः। एवं सौइर्धनामा स्वपतिः सौइर्धन्तामा स्वप्तिः सौइर्धन्तिः, सेदनामा महीभत् सेदनम्हीभत्, सुख्युक्ता नासिका सुख्नासिका स्वादि। मयूरव्यंसकादिः माकपार्थिवादिय माकतिगयः, प्रयोगात्रसारि वोद्ववः, तेन मन्यो राजा राजान्तरम्, प्रकिथनः, भक्तिभयः, उद्यावचं, विदेव विन्याविभवादि मयूर्व्यंसकादम्वर्गतम्।

† क उर्ङ्यस्य स कोङ्, कोङ् चादिर्धस स कोङादि:। यस वातीयक देगीयम तत्त्रकान्। तस लय तलंतिकान्। जातिस चास्या क जालाकी, न विस्तेत

<sup>\*</sup> जनरपदियु-इन्द-बहुगैहि-वर्ने पदवहते समासी नासौति दुर्गसिंह-क्रमदौ-यरौ। तन्मतमस्वीकृत्रन् विभिः पटैरिप कर्मधारयमाह सिद्धानन्द ६ति। भानन्द-यतीति भानन्दः इति विभेष्यं पदं, त्रयाणां विभेषणते समासानुपपनेः। कुलकुन्तः पटुविस्पष्टः इत्यादावुभयस्य विभेषणतेऽपि विभेषविभेषणभावस्य कामचारत्यात् एकस्य विभेष्यत्वं कन्याते। विभेषणस्य तु पूर्व्यस्थितिरैव, तेन ब्राह्मणदीर्घः, एवं न स्थात्। कडारादिभव्दासु वा पूर्व्यं प्रयोज्याः, (पाणिनिः २।२।३८) तेन कड़ारजैमिनिः जैमिनि-कडारः इत्यादि। कड़ारादिश्रया—कड़ार जठर गडुल काण्यां स्वीड़ खन्नः कुन्छ स्वस्ति गौर बद्ध भिन्नुक पिङ्गस्य तम् विधिर मठर वर्ष्यर इति।

### ३५१। दिनप्रष्टाधिका दानयोऽष्टा-स्तिद्गा-द्येऽन्यषटके लनगीतौ वा।

(दिचप्रष्टाधिका: १॥, दाचयीऽष्टाः १॥, विद्यायी ७।, भन्यषट्को ৩।, तु ।१।, भनभीतौ ७।, वा ।१।) ।

एषामेते क्रमात् स्युः दशादि निके, चलारिं श्रदाद् षट्के श्रशीति-वर्जे तुवा।

हाधिका दम हादम, चयोदम, अष्टादम। हाचलारिंमत् हिचलारिंमत्। श्वनमीती किं हामीति:।

जात्याख्ये यत्र क्षोङादो सीऽजात्याख्यः। (३२०) पृंवत् स्तुग्रत्यं स्वेयनेन जक्रपृंक्तः य कोङादेः पृंवद्वावप्रसक्तौ, (३२८) नीशाककोङित्यनेन निर्धेषे, कर्म्यधारयादौ पुनरनेन विधिः कियते, तेनायमण्यः—तिहतस्य भक्तस्य वा केन कक्षारीङ्, प्रचौप्रत्ययानस्, भाष्याभृतम्, इम् जम्-रत्नायं-विकारायंवर्ज णिनद्वितानं, जाति-स्वाद्व-विदितवन्त परं यदः उत्तपुंक्तं भवित, तदा एकथिं स्वीनिङ्गे परे कर्म्यधारयादौ पृंवत् स्यात्, जातीय-देशीय-प्रत्यये चपरे पृंवत् स्यात्, तत्वथीः पर्योन् जातिमं जावजं जक्षपुंकः कोङादिः पृंवत् स्यादित्ययः। जातीयप्रत्ययं पृंवद्वावप्रसङ्गाभविऽपि क्षमेन विशेषविधानम्। यया—रिवता चासौ भार्या चित रिक्तकभार्या, पाचिका चाभौ स्वी चित पाचकस्ती, पद्मी वासौ भार्या चित पद्मभार्या। एवं दत्तभार्या, विश्वभार्या, वाक्षणभार्या, सक्ष्यभार्या, (४८०) रिक्तकातीया, (४००) रिक्तियादा, (४००) रिक्तियादा, वाक्षणभार्या, वाक्षणभार्य, वाद्वनं कोडादिरित्यनेन येषां पृंवद्वावी निषिद्यस्ते रखाने, तेन (३२०) पूरणौप्रिवेत्यादौ निष्यंऽपि कर्म्याराये पृंवद्वाव द्वादः, यथा कल्याणपर्यभौ महारमी महारमी महानवमी कल्याणप्रिया द्वादि ।

कोङादिः (३२८) नीमाककोङ् इत्यादिस्त्वे ये पाँउताः, पूरण्यादिः (३२८) पूरणी-प्रियेत्यादिस्त्वे थे पाँउताः, ते प्वत् स्युः ये नातीयदेशौथे च परे, तः ते परे ग् नानिवायकस्य मजावायकस्य च न स्थादित्ययः इति रामतर्कवागीशः। पाणिनिः हाराष्ट्र । "त्वतलीगुँणावचनस्य" इति वात्तिकस्।

 दी च चयद्य षष्ट च ते दिवाह, दिवाहिम: सहिता व्यक्षिका: दिवाहिमाः, शाक्तपार्णवादिलान् भद्रितपदस्य भीपः, दक्षान् परसाधिकश्रव्यस्य प्रत्येकीन सम्बन्धान्

## ३५२। वैकोनस्वैकाटुकान्त्रौ सङ्घरायां।

(वा ।१।, एकीनस्य ६।, एकाइ-एकाझी १॥, सङ्घायां ७।) ।

एकाइविंग्रतिः एकाव्ववंग्रतिः एकानविंग्रतिः। \*

### ३५३। सख्यहोराज्ञः षः षगे च।

(सिन्दि-अहन्-राज्ञ: ४।, ष: १।, ष-गे ०।, च ।१।)।

एभ्यः षः स्थात् ये षे गे च। प्रियसखः परमाहः महाराजः। १

ु एकीनस स्थाने एकाइ-एकाद्री स्थातां सङ्गावाचके परे थे। एकीना चाभी विंग्रतिस्ति एकाइ विंग्रतिरत्यादि। वाग्रन्टस्य व्यवस्थ्या सङ्गा इह विंग्रत्यादिरेव, तेन एकीनास्य ते दम चेति एकीनदम इत्येव। 'ययि संख्यायासिति सामान्येनीकं तथापि विंग्रति विंग्रत् सल्यारिंग्रत् पञ्चाम् विष्ट सप्तति स्थाति नवति मत सहस्रा-दावेव परेऽनाझवादेशी भवतः, नत्यश्यान् संख्याग्रेट परेऽनाभधानात्" इति गोयौचन्दः। थ किं, एकीना विंग्रतिर्थव स. एकीनविंग्रतिरित। पाणिनिः ६।३।०६।

† सस्ताच भाइय राजा चेति तस्नात् । प्रिय्यासी सस्ताचेति प्रियसस्तः, भानन पः (२५८) इतारलोपः । स्त्रियां क्लियां क्लिय्दोपि (२५०) प्रियसस्त्री । परमञ्जतत् श्रद्धयेति

### ३५४। सर्वेकरेगसङ्घरातसङ्घराव्यान्त्रेकान्त्रे-क्येऽक्लोऽक्तः।

(सर्च-च्यात् ४। न ।१।, एकात् ४।, न ।१।, ऐक्ये ७।, मझ: ६।, मझ: १।)।

एभ्यः परस्य अहन् इत्यस्य स्थाते अक्रः स्थात् यादी नलेकात् न चैक्ये। \*

#### ३५५। प्राग्वत नो गोऽतोऽक्कस्य।

(प्राग्वत् ।१।, न. ६।, या: १।, श्रतः ५।, श्रप्तस्य ६।) ।

सर्वोत्तः पूर्वोत्तः। एकान्, एकार्दैः।

**অत इति किं, त्रिभिरहोभिर्जातः ব্যক্ক**া 🕆

परसाहः, पप्रवैि, (२२०) नलीपे, (२५८) भकारलीपः, भहानानां पुंस्तमिधानात्। महांधाधी राजा चिति महाराजः, (३२६) महतस्य भाकारः, षप्रव्ये, नःलीपे, भकारलीपः। स्त्रियां महाराजी, ''महाराजी तु प्रायी नामग्रहणे स्त्रीलिङ्गस्यापि ग्रहणित्यस्य प्रायिकत्वात्" इति कमदीश्वरः। "महती चासौ राजी चिति" इति ग्रीयीचन्द्रः। ''लिङ्गविशिष्टपरिभाषया भित्यत्वात्रेहं मद्राणां राजी मद्रराजी" इति भद्रीजिदोचितः। एवं क्रणस्य सखा कृणसखः, त्रयाणां सखीनां समाहारिक्षसखं। यादौ किं, कृणाः सखा यस्य संकृणसखः, कृणसखा इति तु भाष्यकारः (१२६ म्वटीका दृष्ट्या)। भत्यत्व ''वायुः सखा यस्य स्वायुसखा' इति गोयीचन्द्रः। पाणिनः प्राधीद ।

\* सर्व्य एक देशय सङ्गातय सङ्गाच व्यच समाहारे तकात्, न एको मैक-स्तकात्, न एका नैका तिकान्। चक्र एक कि भागे वर्णमानः पूर्वादिरेक देशः। एथः परस्य चहन् शब्दस्य चक्र इत्यकारान्त चादेशः स्थात्, नतु एकात्, न च समाहारे दिगी। पाचितिः प्राधाः ।

† प्राग्विटिख नेन (१००) षू : भवकुपूनरिपीति च प्राप्तं, तथाच — वकार-रेफसवर्ष-युक्तात् परन्तात् परस्य चक्र दशकारानस्य भी णः स्थात् भव्कु.पु.भनतरप्रपोत्थयः। सर्व्यस्य तत् भव्यति सर्व्यक्तः, पूर्वयः तत् भव्यति चूर्व्यक्तः। एवं
प्राप्तः भपराज्ञः दत्यादि (१५१,१५४,१५५)। एक्य तद्वयित एकाषः (१५१,
११०,२५८)। नग्रकः इति तद्वितायेदिग्रः, प्रत्युदावर्षायेमिक्वीक्रम्। भक्रसीलकारान्य

### ३५६। कौटग्रामात् तच्णः।

(कौट-बामात् ५।, तक्षा ५।)।

कीटतचः, (ग्रामतचः)। \*

### ३५७। जातमहर्ष्टेडादुच्णः।

(जात-महत्-बहात् ५), उत्ता. ५)।

जातीचः, महोचः, वृदोचः । १

### ३५८। शुनोऽत्यप्राग्थुपमानात्।

(ग्रन: ४।, पति-प्रप्राख्यपनानात् ५।)।

**अते: प्राणिवर्जादुपमानाच ग्रनः षः स्या**त् यादी ।

त्राकर्षद्रव स्वात्राकर्षसः। प्राणिनस्तु,व्याघदव स्वा व्याघसाः ‡

इति किं, दीर्वाणि चड़ानि यस्यां सा दीर्घाको अरत्। प्राग्वदिति किं, सङ्गाताङः व्यक्तः। पूर्वव नैको इति किं, दयीरकोः समाचारः डाइः। एतेषां पुस्तमिभधानात्। पुण्याहमिति,तुनपुंसकं "चपथपुण्याहे नपुंसकों' इति जिङ्गानुशासन विश्व स्वात्। एवं सुदिनाइमिति।''पुण्यासुदिनाभ्यां क्रीवें' इति असटीश्वरस्वस्। पाणिनः ८।४।०।

\* भाश्यां परात् तत्त्वन्थव्यात् षः स्थात् यादी । क्ष्यां भवः कौटः कौटसासी तत्त्वाचेति कौटतत्त्वः , ''स्रतस्त्रक्षक्षंको ने न कस्यचित् प्रतिबद्धः' इति गीथीचन्द्रः । यानस्य तत्त्वा यानतत्तः ''बह्दना माधाग्ण इत्यर्थः'' इति गीथीचन्द्रः कौटयामात किंराजतत्त्वा । पाणिनिः ५।४।८५ ।

† एभ्यः परात् उचन्॥ब्दात् षः स्थात् यादी। जातयासौ उचा चेति जालीच एवं सफीचः, बढीचः । यादी किं, सहान् उचा यस्य स सहीचा थियः। पाणिनि.५।४।००।

‡ न प्राणी भ्रप्राणी, भ्रप्राणी चासी उपमानश्चित भ्रप्राण्युमानं, भ्रतिय भ्रप्राण्युपमानश्चिति तस्मात्। भ्रात्रध्वेति चात्रधं, भ्रातुङ्सी इति स्थातः। भ्रात्रधं-प्रस्तेन सम्राण्युपमानात् परात् अनुम्रस्तात यः। भ्रतेन्, ज्ञानमतिकान्तः भ्रतिश्चः वराष्टः, भ्रितश्ची सेवा। स्थाभ्रस्तेन सम्राण्युपमानात् परात् अप्रस्त स्थाभ्या स्थाभ्यात् न वः। पाणिनः ५।।।८६,८०।

# ३५८। पूर्वोत्तरसगाचानतेः सक्षः।

(पूर्ञ-उत्तर-स्मात् ५।, च ।१।, भनते: ५।, सक्षु: ५।) ।

एभ्यः पूर्व्वोत्ताच त्रतिवर्ज्ञात् सक्यः षः स्यात् यादौ। पूर्व्वसक्यं। \*

## ् ३६०। देशात् ब्रह्मणः कुमहद्भगान्तु वा।

(दिणात् प्रा, ब्रह्मणः प्रा, कु-महद्वां प्रा, तु।१।, वा।१।)।

कुलितो ब्रह्माकुब्रह्मः कुब्रह्मा। 🕆

## ३६१। सरोऽनोऽयोऽस्मनः संच्याचात्यीः।

(सरम् अनम् अयम् अस्मनः ५ा, मजा-लात्यो. ०॥)।

महानसं उपानसं लोहितायसं पिण्डाश्मः श्रमताश्मः । 🕸

<sup>ं</sup> पूर्विय उत्तरय सगय तमात्। नालि भतियेत मोऽनितलसात्। पूर्वित्तरसंगियः अप्राम्यप्रमानास सक्ष्यं षः स्थात् यादीः। पूर्वित तत्त्रसंधि चेति पूर्वित स्थायः प्रमाण्यप्रमानास सक्ष्यं प्रमासक्ष्यं। प्रवित स्थायः सक्ष्यं स्मासक्ष्यं। प्रमायप्रमानास्य सक्ष्यं स्मासक्ष्यं। प्रमायप्रमानास्य सक्ष्यं। भतिसु सक्ष्यं स्थायः सक्ष्यं। प्रमायप्रमानास्य सक्ष्यः स्थायः सक्ष्यः प्रमायप्रमानास्य स्थाप्रस्कृष्यः। प्रमायप्रमानास्य स्थाप्रस्कृष्यः। प्रमायप्रमानास्य स्थाप्रस्कृष्यः। प्रमायप्रमानास्य स्थाप्रस्कृष्यः। प्रमायप्रमानास्य स्थाप्रस्कृष्यः।

<sup>+</sup> देशवाचकात् परात् बद्धाणः सः स्थात् यादी, कुसडद्वाां परात्तृ साः। भवितिष् बद्धाः भनितिनद्वाः, सराष्ट्रवृद्धाः । देशात् किं, देववृद्धाः नारदः । सहायामौ बृद्धाः चिति सहाबद्धाः सहाबद्धाः । वृद्धन्थव्दाऽच वृाद्धायवाची । पाणिनिः ५।४।१०४,१०५।

<sup>‡</sup> सरम् च चनम् च अयम् च चयम् च च्यम् न चित तसात्। सभा च नातिय समानाती तयीः। संज्ञानचणमाइ गीथीचन्टः 'धी यीगवित्तिमितरचापहाय विभेषे वर्तते स एव संज्ञाच्यां न्यस्ते।" नातिन्नचणन् पृत्रमेशीकं स्त्रीय २६६ मृचे। एथः यः स्यात् यादौ संभायां नातौ च। नानस्य सरः ज्ञालसरमं संज्ञा। ननस्यमिति तु भशीति-दौनितः। चन्द्रसरो दैतवनभरः चन्नोटमरः इत्यादौ तु न भवित। मण्डूकसरसं ज्ञातिः। सहच तत् चन्यति सहानमं सज्ञा। उपगतमनः उपानमं ज्ञातिः। सोहितसयः नोहितसयः नोहितायमं संज्ञा। नानस्यः नानिः। पिष्डुद्व च्यम्पा पिष्डासमः संज्ञा। च्यतः च्यत्याः चनत्यः। सोहितसयः स्त्राः च्यतः च्यत्याः चनत्यः। संज्ञानात्योः नितं, दौर्धसरः स्ट्रानः इत्यायः सम्राग्रमा। पाणिनिः ५।॥८४।

# ३६२। सर्वेकदेशसङ्घातपुख्यवर्षादीर्वाद्राचेः।

(सर्व-दीर्घात् ५।, रावे: ५।)।

राचेरेकैकरेशे वर्त्तमानः पूर्व्वादिरेकरेशः।

पूर्वरात्रः ग्रपररात्रः। \*

३६३। गोरतार्थे। (गी: ५१, बतार्थे ०)।

गोग्रव्हात् ष: स्थात् यादी,'न तु तार्थे । परमंगवः। 🙌

## ३६४। नाबोऽडीत् ग्रेच।

(नावः प्रः, चर्जात् प्रा, मे छा, च ।१।)।

त्रर्डात परात् नीयव्हात् षः स्यात्, अतार्धे गे च । अर्डनावं । क्ष

३६५। खार्था वा। (खार्था: ४।, वा ।१।)।

अर्डखारं अर्डखारी। §

#### द्रति य:।

<sup>\*</sup> सर्व्य एकदेशय सङ्गातय पुष्यच वर्षाय दीर्घय तथात्। एथा: परस्या: रावे: घः स्थात् यादौ । सर्व्या चासौ राविधित सर्व्यरातः । रावानानां पुंस्तमिधानात्। पूर्व्या चासौ राविधित पूर्व्यरावः रावे: पूर्व्यमाग इत्यर्थः, एवमपररावः, मध्यरावः, सङ्गातरावः, पुष्यरावः, वर्षाणां राविः वर्षारावः, दौर्घरावः । पाणिनिः ५।४।८०।

<sup>†</sup> परसम्राधी गौबेति परसगवः। एवं पुनामासी गौबेति पुंगवः। राक्ती गौः राजगवः। चयाणां गवां समाद्वारः तिगवं, प्रमां गवां समादारः पङ्गवं। पञ्च गावी भनस्य पञ्चगवधनः। मतार्थे किं, पञ्चभिगींभिः कौतः पञ्चगः। पाणिनः ५।४।८२।

<sup>ू</sup> अब सूर्व परच च यादेरतुइत्ताविष अभिधानात् अर्द्धात् परात् नौधन्दात् य एव सः स्नात्, पुन. गे च इति स्वथनात् नौधन्दात् यः स्नात् अतार्थे गे च इत्यपरोऽधीं वोद्धन्यः। अर्द्धन्यः। वार्थेत्, पञ्चभिः: नौभिः: क्षीतः पञ्चनीः। पाविनिः ५।॥।८८.१००।

श्रद्धात् परात् स्वारी श्रद्धात् ष: स्वात् वा ये । स्वारी श्रद्धात् घः स्वात् वा भतार्थे
 गे च इति च भवे: । चर्डस्क तत् स्वारी चेति भर्दक्षारं, क्रीवलमिभावात् । पचे भर्दक्षे

तत्युद्व-समासः (व)।

क्षणामायितः क्षणायितः। \* .

३६६। व्यं पूर्व। (वं १।, पूर्व १।)।

परं व्यं पूर्वं स्थात् से सति।

खारी । एवं विखारं विखारि, हिखारधन: हिखारीधन: । तार्थे तृ, हाश्यां खारीश्यां क्रीतः हिखारि: । पाणिनि: ५।॥१०१ ।

\* वितीयादिविभन्न्यन्तपदपूर्व्वकाणां समासक्तपुष्क प्रत्युकं (३१८), क्रमेणीदा प्ररित क्रणमात्रित प्रति । एवं क्रियाविश्वेषण दितीयानादिरिय यवा — नित्यभौकः, सन्दगामी, मासं व्याप्य स्थितः मासस्थितः प्रत्यादि । पाणिनिमते तु क्रियाविशेषणस्थले सुप्सुपेति समासः, क्रियाविशेषणस्य कारकलेनानद्वरैकारात्।

नञ् इत्यव्यय्य स्वायनित सइ समासी नञ्जतपुरुषः (पाणिनिः २।२।६), स च प्रयमान्पदपूर्वंक एव । यथा न बाद्ययः भवाद्ययः । नञ्च हिविधः प्रयासः प्रसम्प्रतिविधय । तथाच — प्रधानतं विधेये प्रतिविधः प्रधानता । पर्युदासः स विश्वये यवीत्तरपदेन नञ् ॥ प्रप्राधानतं विधेयं प्रतिविधः प्रधानता । प्रसच्यप्रतिविधः प्रोधे स्वयं सह यव नञ् ॥ प्रप्राधानयम्, प्रतिविधं प्रधानता । प्रसच्यप्रतिविधः प्रधान्यं, प्रतिविधां त्रात्ययां भावात् प्रतिविधः स्वयादौ परपदार्थं सह स्वाव्यक्त त्र विधः प्रधान्यं, प्रतिविधां त्रात्ययां भावात् प्रतिविधः स्वयाप्तायां स्वयादौ विध्यं त्र तात्ययां भावात् विधिरप्रधान्यं प्रमासः । किञ्चत् न कुष्यां स्वयादौ विध्यं तात्ययां भावात् विधिरप्रधान्यं प्रतिविधः च प्रधान्यम्, प्रतप्त प्रसच्यप्तिविधः नञः कियया सह सम्बन्धात् स्वायनितिष्य स्वयायनितिष्य स्वयायनितिषय नञः विश्वया सह सम्बन्धात् स्वयायनित्यः सह सपिचलाभावात् न समास दित । "प्रयास तृत्वस्वतानां सैन्यविषेऽप्यसम्प्रमम्" इत्यादौ विश्वम् समास द्वयते । प्रायस्तु नञ्चाः वट् प्रकौतिताः ॥ यथा— चवाद्ययः, प्रपापं, प्रसटः, सनुदरी कन्या, प्रविधीते स्वादौ सु सु सु विति समासः । प्रविधीतीच्य हतात्रुद्धः समासः । नातिश्रीतोच्य हतादौ सु सु सु विति समासः । प्रविधीतोच्य हतात्रुद्धः एव ।

एवच जु-प्रादिभि: सङ स्नायनस्य नित्यसमासः स्वात् (पाणिनि: २।२।१८, 'प्रादयः गतायर्थे प्रथमया'. इति वार्षिक्च)। नित्यसमासे खपद्वियक्षी नासि, पदानरिष भर्षक्चनम्। जुत्सितः पुरवः जुपुरुषः, दूषित् नलं कानलं, प्रकृष्टी गतः प्रगतः, दृष्टी जनः दुर्जनः, ग्रीभनी जनः सुननः इत्यादिः विष्टप्रयोगानुसारिण नित्यसमासी विषः। राजानमतिकात्ता त्रतिराजी, त्रतिस्त्री, त्रत्यक्रः, त्रतिस्तिः।

### ३६७। सङ्घाव्याद्राचाङ्गलिभ्यामः।

(सङ्ग्रा-स्थात् ५।, रामि-चङ्खिम्यां ५॥, मः १।)।

सङ्गाया व्याच पराभ्यां रात्राङ्गुलिभ्याः सः स्थात् यादी, न तः तार्थे। त्रतिरातः अत्यङ्गुलः । १०

ष्ठित्या नाती हिरिनातः । विष्यवे दत्तं विष्युदत्तं । प्रच्युतात् जातं प्रच्युतजातं । क्षणस्य सखा क्षणसखः, महाघासः, ग्रामतचः, स्गसक्षं, जालसरसं, मण्डूकसरसं, राजगवः, वर्षारातः । ॥

<sup>(</sup>५४८ सूर्व द्रष्टव्यम्)। स्थायुत्पत्तेः प्रागिष कदलेन सङ उपपदस्य नित्यं समासः, यथा—क्तभं करोति इति कृभकारः, प्रतिग्रहः, धनकौतौत्यादि।

<sup>\*</sup> समासान्तप्रयानामेव निमित्तीभृतस्य यादेः इड पूर्वनिपाते प्रतृक्षिनंति, तिन समासमाविऽत्य विधानात् उपक्षणम् इत्यययीभाविऽपि पूर्व्यानपातः । प्रति-राजीति (३५३) ष-प्रत्ये, (१६०,२५८) नकार-चकार-स्पेपे, (२५०) विस्तादीप् । यानमतिकाला पितवो (१५८) ष प्रत्ययः, श्रेषं पूर्व्यत् । पहर्रातकालः प्रतः (१५१) षः, (१५४) प्रतः । स्त्रियमतिकालः पितस्तः, परपदार्थस्याप्राधान्यात् (११०) कस्तः, एवम् प्रतिमायः, प्रतिवामोदः । राज्यनमतिकाला प्रतिराजीखदाहरता प्रत्यादिभिद्वितीयान्तस्य समास इति म्चितं (प्रत्यादयः कालायर्थे दितीयया इति वार्त्तिकम्), तेन वेनासुद्गतः उद्देशः, ज्यामधिषदं प्रित्यं, सुद्धमभिगतः प्रभिसुखः — इत्यादि विध्यं । प्रव प्रयोगानुसार्यः प्रत्यादां, दन्तानां राजा राजदनः इत्यादि । पार्यिनः राश्रः ।

<sup>+</sup> सङ्गा च व्यच सङ्गाव्यं तकात्. एकवचनं यथासङ्गः निरासार्थे। भव मन्दू कमुताधिकारात् यादेरगृहिनः। राविमतिकान्नीऽतिस्वः, भङ्गिक्षमतिकान्नीऽव्यङ्गुलः,
चभयव भनेन भगव्यये (२५८) इकारलीपः। एवं तिस्रुणां राभीको समाद्वारः
विरातं, द्यीरङ्गुल्कोः समाद्वारः दाङ्गुलं। तार्थे किं, द भङ्गुली पिस्मायानस्य दाङ्गुलि
(चैवं)। दाङ्गुलं चेवं, दाङ्गुला सूमिरित्यादि तु यवोदरपरिमाणार्थकाङ्गुलयस्देन
समास्ति सिद्धं, तयाच—भङ्गुलम् यवो मतः इत्यमरमाला। पाणिनः ५।४।४-६,८०।

<sup>‡</sup> हतीया-तत्पुक्षमांध---इरिका नात इति। एवं खड्गक्किनः, रथकका,

### ३६८। मुख्यायोरसः। (मुख्यावे-जरमः ४।) । मुख्यार्था-दुरस्थन्दात् ग्रः स्थात् यादी। त्रकोरसं, मुख्योऽख इत्यर्थः।

पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः, श्रवृन्तिषु ब्रह्मा श्रवन्तिब्रह्मः । \* इति षः ।

मासपूर्वः, मासोनः, वर्षावरः, गुड़मित्र इत्यादि । दक्षा मित्रित-पीदनः दध्यीदनः, गुड़ेन मिश्रिता घाना: गुड़धान।:, इन्तिना युक्ती र्रंथ: इन्तिरय:, एवं अञ्चरय: इत्यादी भाकपार्थिवादिलात् मध्यपदलीपः । चतुर्थीमाइ--विचावे दत्तमिति । एवं गोभ्यो हितः गोहित:, यूपाय दाद यूपदाद, कुछलाग्न सुवर्ण कुछलसुवर्ण, दूखादि । श्रव वक्तव्यं — केषाश्चित्याते प्रकृतिविक्ततिभावस्थले एव चतुर्थीतत्पुरुषः, ऋन्यत्र तु षष्ठीसमासः। यया भवस्य घास: अवघास:, नतुभवाय घास:। एवं रक्षनस्थाली इत्यादि। पञ्चमीमाइ — चच्तात् जार्तामिति । एवं व्याचमीतः धर्मामीतः, चत्रपतितः, चर्जुन-पराजितः, सर्परचितः, घटभिन्न इत्यादि । षष्ठीमाइ—क्रणस्य सखा क्रणसखः (३५३), महतो देशस्य सहस्या भूस्या वा घामः सहाघामः (३२६), सहतः तकारस्य तीकारस्य वा भाकार:। गामस्य तचा गामतव: (३५६) घ-प्रत्यय:। सगस्य सर्काय सगस्य (३५८) । जालस्य सर: मख्डुकस्य सर:, जालसरस मख्डुकसरसं (३६१) । राजी गी: राजगव: (३६२)। वर्षायां रावि: वर्षागव: (३६२)। एवं मासस्य जात: मामजात इत्यादि। भव वक्तव्यम्—''क्रदीगा वष्ठौ समस्यते इति वाच्यम्'', ''प्रति-पदिविधानाषष्ठीन समस्यते इति वाच्यम्"— इति वार्त्तिकद्वयम् । यथा इभानी वस्रनः इभावयन: ; सिंपेवी ज्ञानम्, मातुः व्यरणम्, पधीदकस्य चपस्तरणम्, भौरस्य वजा, सर्पिकी नाधनम्, चौरस्रोज्जासनम्, ग्रतस्य पणनित्यादि ।

\* सुर्खाऽघाँ यस तत् सुख्यायं, सुख्यायंच तत् उरचेति तद्यात्। प्रमस् उरः प्रधानं प्रस्तोरसं। उरस्यस्टी इदयवाचकः, षत्र तु लचण्या प्रधानायः। ''प्रमानासुर इतः इति भद्दोनिदीचितः। सुख्यायादिति किं, इदस्य उरः इवीरः इदस्य वच इत्ययः। सप्तमीतत्पुक्षमाइ—पुक्षोत्तमः। पत्र उदाहरणज्ञापकात् पुक्षाणासुत्तमः इति न वशीसमाधः ''न निर्दार्षे" (पाणिनिः १।२।१०) इति स्तेण निषेधात्। प्रवन्तिवद्वा इत्यत्र (३६०) षप्रस्तयः। पाणिनिः ५।४।८१।

#### दिगु-समासः (ग)।

तस्यार्थे—विषये, वाच्ये श्रपत्यार्थे शिकादिकं प्रोज्भ्याजादेः, समाद्वारे, गस्त्रिधोत्तरदे परे । पञ्चभिगोभिः क्रीतः पञ्चगः । \*

# ३६८। गैक्यादतोऽपात्रादेरीप्।

(गैक्यात् ५।, भतः ५।, वर्षात्रादेः ५।, ईप् ।१।)।

गैक्यादकारान्तादीप् स्थात्, न तु पात्रादेः । त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी ।

<sup>•</sup> गो हिनु:—तस्र तिहतस्य भयें, समाक्षारे, एक्तरपदे परे च भवन विधा भवित। तिहतायेंऽपि हिधा भवित, यथा—तिहत्तप्रयमाचस्य चयें विषये द्रत्येकः, भपत्यार्थ- खिकादिकं प्रोजभग यजा भनदित्ततितस्य भयें वाच्ये द्रत्यपरः। खिकादिकं निति खिरीव खिक इति इत्तरेशियात् खायें कः, खिप्रधितकमित्यर्थः। यव तस्यायेविषये समासः कियते तव तिहतप्रययोग्पत्तः पूर्व्यावस्थागां समासे कते ततः प्रययोग्पत्ते छद्यादः, यथा द्रयोगीवीरप्रयमित्यच प्राप्तव्यस्य खप्रत्ययस्य छन्पत्तेः पूर्व्यावस्थायां द्रयोः मानोः एतयोरिकपदीभावे विमादपदात् (४१५) खप्रत्यये कते, (४१६) विद्रत्यस्य इदी, (४२५) छुर् कते दैमातुरः इति पदं। एवं पञ्चाना नापितानामपत्रं पाञ्चनापितिरित्यादि। वाच्ये यथा—पञ्चभिगीभिः कौतः पञ्चगः स्त्यच कर्माणि वाच्ये कर्या-कारकात् (४२६) द्रवे कादित्यादिना प्राप्तव्यस्य चर्ये वाच्ये, समासनैव तिहतस्य छक्तार्थते, छक्तार्थनामप्रयोगः इति न्यायात् तिहतप्रत्यस्य भनत्पत्ती, (११०) गवावादिरिति इत्तः। खबादिरिति किं—वयोर्भुवृत्तियः विमुद्धन्यः, इत्यादौ तिहतप्रत्यस्य पूर्वे समासे, विसूर्शन्यन्दात् (४६०) खानस्यः, स्त विषये एव विद्यात् प्राप्ते समासे, विसूर्शन्यन्दात् (४६०) खानस्यः, स्त विषये एव विद्यात् प्राप्ते समासे समासारे व्या—विस्ववनं। छत्तरस्यः प्रवावभावः। पाणितः २।१।५१।

पात्रादेलु, दिपात्रं विपात्रं, विभुवनं, चतुर्युगं । \*

३७० | वानाप: | (वा ११, वन वापः ४०)। अनन्तादापस ईप् स्थात्वा। पञ्चकस्त्री पञ्चकस्री, त्रिखदी त्रिखद्वं। नः

#### ३७१। तार्षे मानरत् कार्यहात्तस्ते । व (तार्षे ७), मानात् ४१, कार्यक्षत् ४१, तु १११, क्यंत्रे ७))।

त्राद्रकी, तिकाण्डी रर्जु:। चित्रे तु, तिकाण्डा भूमि:। \$

#### ३७२। पुरुषादा। (पुरुषात् ४१, वा ११)।

<sup>\*&#</sup>x27;गस्य ऐकां गैकां (समाक्षारित गुः) तस्त्रात्। पात्रमादियंस्य स पात्रादिः, न पात्रादिरपात्रादिः तस्त्रात्। समाक्षार-दिगुनां (६२२) क्रीवलिऽपि कूंपी विधानात् नित्यस्त्रीलं स्थितं। क्योः पात्रयोः समाक्षारः दिपात्रं। प्रादिना विगुणं चतुर्गण चतुःसतं चतुष्य चतुर्मुलं पद्मात्रं प्रस्तात् क्षेत्रं। प्राप्तिनः प्रदेशितः क्षेत्रं। प्रति क्षेत्रं।

<sup>†</sup> वाज्ञन्दीऽत समुख्यायंः, तथाच — चनतात् षावनाम गैक्यात् ईप् स्थात्, समुद्धयेन (३६७) सङ्ग्राव्यादित्यतः मञ्जूकगत्या चनुइत्य प्रथ स्थादित्ययः। समुद्धयाक्षष्टं शोत्तर दति न्यायात् परत प्रथत्यस्य नानुइत्तिति। पञ्चानां कर्म्यणां समाहारः, भनेन दूरि (३३०) न-छोपे, (२५८) पकार-छोपे, पञ्चकक्यौं। पचे चननेव समुद्य-स्थादि। "वावनः", "अनो नसीप्यान स्थापिया च स्त्रियान्" इति वार्तिकहयम्।

<sup>‡</sup> तदितार्थिक्षिौ परिमाणवाचकात् ईर्प्स्थान्, कास्क्रबन्दानु चेत्रभिन्ने वार्थः इत्यर्थः | त्रयः भादकाः परिमाणमस्याः द्वादकौ धान्यसंक्रतः । एवं दौ द्रोणौ परिमाण-मस्याः दिद्रोणौत्यादि । त्रयः कास्काः (त्रलाः) परिमाणमस्याः द्विकास्की रज्यः । चेत्री विकास्का भूमिः वेत्रैकदेशः । पाणिनिः ४।१।२२,२३।

हिपुरुषी हिपुरुषा। विसखं त्रिगवं त्रिनावं, त्रिखारं त्रिखारि, त्राष्टः। \*

## ३७३। दिवेर्बोञ्जलेरः।

(दिने: ५१, वा ।११, अञ्चले: ५१, अ: १।) ।

हाञ्चलं हाञ्चलि, हाङ्कुलं, तिरातं। १ पञ्च गावो धनं यस्यासी पञ्चगवधनः हिनावधनः हिखारधनः, हाङ्कप्रियः। ॥

#### द्रिति गः।

<sup>\*</sup> परिमाणवाचकात् पुरुषणश्दादीप् स्थात् वा तिज्ञतार्थे दिगी। दी पुरुषी परिमाणमस्थाः दिपुरुषी दिपुरुषा भितिः। वशाणां सस्वीनां समाहारः विसस्वं (२५२)। वयाणां गवां समाहारः विगवं (२६२)। तिस्रणां नावां समाहारः विनावं (२६४)। तिस्रणां स्थारीणां समाहारः विस्थारं (१६५), पचि विस्थारं (१६०)। वयाणामझां समाहारः वाहः (१५२), पभिषानात् पृंक्षं। (१५४) सर्वेकृत्येयेय समाहारवर्णनात् प्रकारेशः। परिमाण्भिन्ने तु दास्था पुरुषास्थां क्षौता दिपुरुषा इत्येव। पाणिनिः ४।११४।

<sup>†</sup> विचित्रां परादञ्चलेः त्रः स्वात् वा तिष्ठतायें विगी। दावञ्चली परिमाणमस्य दाञ्चलं नकं, पर्च त्राव्यवाभावे जलविशेषणलात् कीवलं। एवं त्राञ्चल त्राञ्चलि। विलोचमस्त्र तिष्ठतार्थभित्रं दिगी दिविधामञ्चलेरात्ययं विद्धाति, तनाते दयोरञ्चल्योः समाहारः दाञ्चलं दाञ्चलं, एवं दावञ्चली प्रियौ यस्य स दाञ्चलिपयः दाञ्चलिपियः इति समाहारोत्तरपद्परयोगदाहरणं। तिष्ठतार्थे तृ दास्थामञ्चलिभां कौतः दाञ्चलिप्यः इति समाहारोत्तरपद्परयोगदाहरणं। तिष्ठतार्थे तृ दास्थामञ्चलिभां कौतः दाञ्चलिरित। स्वरूप्यं त्रविद्धतल्यां समाहारः देशक्लं, तिस्र्यां रात्रोत्या समाहारः विरातं, समयव (६५०) सङ्गान्यादिति त्रमस्यः। पाषितिः प्रकारः त्रः स्वरात्यं दाव कीवम् दित वात्तिका ।

<sup>‡</sup> उत्तरपदे परे छदाइरति—पद्मगवधनः, षत्र धने छत्तरपदे परे विगी, (१६१) षप्रकारः, हे नावी धनसस्य विनावधनः (१६४) षप्रसायः। हे खार्थी धनसस्य विस्तार-धनः विस्तारोधनः (१६५) विकल्पेन षः। हं षड्नी प्रिये यस्तासी वाजप्रियः, (१५१।१५४) पः, षजादेशस्य।

#### चव्यवीभाव-समासः (व)।

वः कसामीप्यसादृश्य-साकत्यानुक्रमिष्ठिषु । वीपापर्थ्यन्तयोग्यत्व-पयादर्थानितिक्रमे । ग्रव्दपादुर्भावाभाव-यौगपदीष्वनेकथा ॥ %

## ३७४। वात् क्तोर्माऽतीऽष्याः।

(वात् प्रा, त्री: ६१, म: ११, चत: प्रा, चवा: ६।) ।

श्रकारान्तात् वात् परस्यः क्ते भैः स्थात्, नतु प्याः । पे क्षणमधिकत्य प्रवत्ता कया, श्रधिकणाम् । श्राप्याः किं, क्षणास्य समीपात् गतः, उपक्षणात् गतः । क्ष

३७५। चीप्त्रोवी। (वी-स्रा: ६॥, वा ११।)।

उपक्त पांउपक्त पोन कार्यः। उपक्र पांउपकृषी स्थित:। §

क वः अध्ययीभावः — कं कारकं, साभीयं, साह्यं, साकल्यं नि भेषतं, अनुकमः, स्रद्धः सस्तिः, वीप्ता युगपत् व्यापुनिच्छा, पर्यन्तः भेषभीमा, योग्यतं, प्रवादयः, अनितिकाः, श्रव्यपद्भांवः अन्तितकाः, श्रव्यपद्भांवः अन्तितिकाः, अभावः, यौगपदाम् एककालतं — एषु प्तर्द्शमः अर्थेष भवति. प्रयोगानुसारादनेकथा च भवतीत्ययः। स च अव्ययश्रव्यां स्थायनेः सङ्गित्यसमासः स्थादिति । पाणिनिः २।१।६ ।

<sup>†</sup> प्रकारान्तशब्दस्य प्रव्यवीभावषमासे कते, (११९) क्रेलुंक् त्ये चेत्रणेन क्रेलुंकि, पुनर्लिङ्गसंज्ञायाम्, उत्पद्यमानविभक्तीनां स्थाने मः स्थान्, नत् पद्यस्याः स्थाने दल्लाः।

<sup>‡</sup> क्रणमधिक्रत्येति. ययपि ज इति सामान्येनीकं, तथापि दितीयासमयोरयंपन क्रीयः। पत्र क्रणमिति कर्षार्थे पित्र प्रदेश (१६६) व्यं पूर्व्यमिति पर्धः पूर्व्यमिति कर्षाः प्रदेशिताः, (११८) क्रणमिति दितीयाया लुकि, पित्रक्ष इत्यस्य पुनर्लिङ्गसंक्रायां जातस्य से स्थाने पनेन स् एवं सर्वत्र । सप्तययं तु स्त्रीव्यक्षिक्ष प्रवत्ता या कथा सा पित्रि इत्यादि । स्पत्रस्यादिति प्रयाः इत्यस्य स्वराधिक्ष स्त्रादि । स्वत्रक्षस्य समीपस्य स्वराहित प्रयाः इत्यस्य स्वरामीयमर्थः । पाविनः २।॥ १६१ प्रविक्षस्य समीपस्य स्वराहे । क्षायस्य समीपन

## ३७६। लुक् परात्। (लुक् ११।, पराव ४।)।

भकारान्तादन्यस्मात् वात् परस्याः त्तेर्नुक स्यात् । \*

### ३७७। सहः सोऽकाले।

(सह: ६।, स: १।, भकाले ७।)।

सहस्य सः स्थात्, न तुकाले । इरः सट्टग्रं सहरि । काले तु, सहपूर्वीह्नं । 🌣 '

त्येष सह सकलमत्ति सत्यणं। ज्येष्ठमनुक्रस्य अनुज्येष्ठं। मद्राणां सन्दृद्धिः सुमद्रं। विष्णुं विष्णुं प्रति प्रतिविष्णु। अग्नि-ग्रन्थपर्थन्तमधीते साग्नि। रूपस्य योग्यं अनुरूपं। ग्रिवस्य पश्चात् अनुश्चिवं। यिक्तमनित्कस्य यथायिक्तः। हरेः यब्दः प्रादुर्भूतः इतिहरि। पापस्थाभावः अपापं। चक्रेण युगपदेहि सचक्रं। यावन्तः स्रोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः यावच्छ्लोकं। हः

कार्यं (येय इति भेषः) इत्ययं उपक्षणं उपकृषीन । सप्तम्यान्, क्रिणस्य मभीपे स्थितः, साधुरिति भेषः, उपकृषां उपकृषो इति । एवं उपगङ्गं उपगङ्गंन (३२२,१६०) इत्यादि । पाणिनिः २१४।८४ ।

चकारान्ताद्यस्मात् इननात् इसनाच कीः सर्व्वासां विभक्तीनामित्यर्थः नित्यं लुकस्थात्। पाणिनिः २।४।८२।

<sup>े</sup> भ अयथीभावे पूर्व्ववर्त्तनः सडशन्दस्य सः स्थात्, म तु कालवाचिणन्दे परे इत्यरंः। सहरि इत्यव सडशन्दस्य सादृश्यं भर्यः, इकारानात् र्क्तर्ष्कः सहपूर्वोक्षमित्यव कालवाचि-पूर्वोक्षे परे सहस्य न सः, पूर्वोक्षस्य सदृशमित्यर्थः। पाणिनिः ६।३।८१।

<sup>‡</sup> साकत्यादी कमेणोदाइरित — टिणेन सड सकतमत्ति टणमिं न व्यनतीव्ययः सटणं. भव सहग्रन्थः साकत्यम् भर्षः। ज्येष्ठः मनुक्रस्य ज्येष्ठस्य डीनो भृता गच्छतीत्यथः भनुज्येष्ठं, भव डीनाथेन भनुना थोगे (२८६) ज्येष्ठमिति वितीया, भनु-भन्दस्य भनुक्तभीऽथः। मद्राणां मद्रदेशानां सस्विः समद्रं वर्गते दृष्यं, एवं समिचं वर्गते, भव सुश्रन्थः मस्विर्थः। विण् विण् प्रतीति (२८६) वितीया, प्रतिविण् दृष्येव समस्विन वीसाया उक्तत्वात् न वित्यं। एवं परिविण् भनुविण् द्रस्याद् । सामि दृष्येव समस्विन वीसाया उक्तत्वात् न वित्यं। एवं परिविण् भनुविण् द्रस्याद् । सामि दृष्येव प्रतीवा परं किमिंप नाधीते

### ३७८। शरद्विपाड्यस्रेतोमनोविडुपान-द्धिमविद्विद्विनडुह्म्स्चित्र्यंत्तरोऽ:।

(श्ररद-विधाश-च्यास-[? चनस्]-चेतम्-सनस् विश्-उपानह्-हिसवन्-विद-दिव्-चनकुह-दिश्-चतुर्-यद-सदः ४।, घः १।)।

एभ्यः यः स्थात् वे। उपगरदं। \*

#### ३७८। जराया जरंस च।

(मराया: ६।, नरम् ।१।, च ।१।)।

#### उपजरसं । 🕆

इत्यर्थः । योग्यलार्थे चनुरूपं ददातीत्यादि । चनुभिविमिति पषाद्यें, भन्नाः चनुभिवं तिन्नतीत्यर्थः । एवं चनुरूषं पादाताः इत्यादि । यथाभिक्त इति चनित्रभाषे स्दातीत्यर्थः । एवं चनुरूषं पादाताः इत्यादि । यथाभिक्त इति चनित्रभाषे स्दातीत्यर्थः । एवं यथावलं धारयतीत्यादि । चनापि चित्रभत्ये लोके प्रकाशित इत्यर्थः । घपापित्ये चन्नविद्यादः, स च संसर्गाभाव एव, न तु भेदः । (३२५) ननः स्थाने घः । एवं निर्भाविकां सत्यादि । चकेष युगपत् वेषि — हे विषी चकेष सह युगपदिककाले गदां धारय इत्यर्थः, सहस्य सः । धनेकधा इत्यस्य एकसुदाहरणमाह — यावच्छीकं च्यात्रप्रणामाः द्रीकानाम् इयत्तया प्रणामानां इयत्ता धवसिता इत्यर्थः । एवं यावद्भिक्तवात्यां व्याव्यर्थः । एवं यावद्भिक्तवात्यं व्याव्यर्थः । तिष्ठत्ति वहित चायान्ति गावो यक्ति काले, यथान्नमं तिष्ठद्गु वहद्गु चायतीगवम् — इत्यादयो ज्ञेषाः (पाणिनिः २।१।१०) ।

- भरच विपाट्च भयय वितय मनस विट्च उपानच हिमवांस विद्च यौस आनड्वांस दिक्च चत्य यस तच तत् तथात्। भरदः समीपं उपशरदं, एवं उपविपासं, उपायसं, उपनिनं, उपनिनं, उपविद्यं, उपोपामः, उपिहमतः, उपविद्यं, उपदिवं, प्रत्यन्तुः, प्रतिदिशं ('चतुर्दिश्मित्यसाध' इति कमदौसरः), उपचतुरं, उपयदं, उपतदं इति । पाणिनिः ५।४।१००। भच पाणिनिम्चे 'भरत्प्रस्तिन्यः' इत्युक्तगणे भयस् इति स्थाने भ्नस् इति पठितस्, हिस्क् सद हम् त्यद् कियत् एतानि चातिरिक्तानि हस्याने । कमदौसरोऽपि भनस् इत्येव यठित, न त्यस् इत्यनुस्थेयम् ।
- † अराया: ष: स्थात् वे, तस्थिन् जरसादेशयः। नराया: सभीपम् खपजरसं।
  स्थाणिनि: ५।३।१०७। शरत्मस्तिमणानार्थनं स्वभीतत्।

३८०। सरजसोपशुने। (सरजस<sup>.खपश्ने १॥)</sup>

निपात्ये। \*

३८१। सम्परःप्रत्यनुखोऽन्णः।

(सम्-परम्-प्रति-चनुभ्यः ५॥, चच्यः ५।)।

समर्च । 🎷

३८२। ऋनः। (भनः ५०)।

**अनन्तात् भः स्यात् वे। अध्यालां**। ‡ः

३८३। स्तीवादा। (कीवान् ४।, वा ।१।)।

उपचर्मा उपचर्मा । §

<sup>\*</sup> रजसा सह समाजनित्त सरजमं, निपातनात् घः। ग्रनः समीपं उपग्नं निपात-नात् वन्त्रव्यः वस्य उः, चप्रत्यययः। "मरजसं पद्मनित्यसाषु?' इति क्रमदीवरः, सरजः पद्मनित्येव साधु। चत्रप्य "सरजस्तानवनेरपां निपातः" इति क्षिराते चिन्यम्। पाणिनिः ५।४।००।

<sup>†</sup> सम्च परय प्रतिय भन्न स्थाः। एथः परात् भणः सः स्थात् वे। भणोः सभीपं समनं, भणोः परः परोत्नं, परभन्दात् निपातनात् भ्रम्-कृते परस् इत्यव्ययं। "प्रतिपरसमनुश्योऽष्यः" इति त्वे भण्णाः परिमति विग्रष्टं निपातनात् परस्य भाकारा-देशः इति भद्दीजिदौनितः। कमदीयरसु "परेः परस् भ" इति स्वं विग्यस्य परि-भस्यत् परस्यदे परस्य परि-भस्यत् परस्यदे परस्य । एषु भिन्यस्य परि-भस्यत् परस्य परि-भस्य परादेशं वदति। भण्णोरिभस्यं प्रत्यतं भन्तस्य। एषु भन्तिग्रस्यत् भ्रम्यये (२५८) इकारलीपः। प्रत्यस्यः परीचः इति तु इन्द्रियवाचिना भकारानेन भन्नश्रदेन, भणाणां प्रति प्रत्यत्वः, भण्णाणां परः परीचः इति तु इन्द्रियवाचिना भकारानेन भन्नश्रदेन, भणाणां प्रति प्रत्यत्वः, भण्णाणां परः परीचः इति सष्टीजिदोवितः। पाषिनिः प्राधार्वः । स्वर्त्रम् प्रतिभव्यत्वाचनार्गतं स्वभेतत्।

<sup>‡</sup> पृथक् योगात् समादेर्गानुइति:। चालप्राममधिक्तत्य चध्यालां (३३०,२५८) । एवम् चिधराजम् चिधपूर्वमित्यादि । 'चनव्ययोभावे तुपरमाला' इति क्षमदीचरः। पाणिनि:५।४।१०८ ।

<sup>§</sup> क्लीविलिङादनन्तात् च: स्वाहा चव्ययीभावे । चक्तं च: समीपं उपचर्म उपचर्म । एवम् चहरह: प्रति प्रव्यहं प्रत्यह: इत्यादि । पाणिनि: ५।४।१०६ ।

## ३८४। अप्नदीपौर्णमाखाग्रहायणीगिरेर्वा।

(भाष-गिरी: ५।, वा ।१।)।

उपसमिधं उपसमित्, उपनदं उपनदि । \*

द्रित वः।

#### षट् समासाः।

३८५ । पथ्यप्पुर: से । (पिंचन् अप्-पुर: प्रा, से ठा) ।

एभ्य: ग्रः स्थात् से सित । सिखपयी,रम्यपयो देगः, महापयः, दिचिणापयः, चतुष्पर्यं, उपपयं, विमलापं सरः, विष्णुपुरं। 'ि

## ३८६। दान्तर्गेर्वोऽपोऽनात्।

(दि-चल्तर्-गे: ५।, र्द्र ।१।, त्र: १।, ऋषः ६।, चनात् ५।)।

#### एभ्योऽनवर्णान्तेभ्योऽपोऽकार ई: स्थात्।

<sup>\*</sup> भव् प्रत्याहारभदनात्, नदी-पौर्णमाधी-षायहायणी-फिरिन्थ पः स्वात् वे वा। श्रव वा-यहणं परव निवस्ययंम्। सिनिधः समीपं उपसिनिधं उपसिनितं, एवं उपतिहितं उपतिहित्। नयाः समीप उपनदं उपनदि। एवं उपपौर्णनास उपपौर्णनास उपपौर्णनास उपपौर्णनास उपपौर्णनास उपपौर्णनास अधि। उपायहायणं अपायहायणं । उपितरं उपितिर। ष्रप्रत्याभावपचे दीर्वान्तानां क्रीवे स्वः (१६०); पाणिनिः ५।४।११०—११२।

<sup>†</sup> पत्थाय भाषय पूत्र तत् तकात् । से इति सर्व्यक्तासप्तागर्थं। षट्स्दाइरति—
सक्ता च पत्थाय तौ (च:) । रखः पत्थाः यत्र सः (इ:) । महांखासौ पत्थायित (यः) ।
दिवापसां दिशि दिविषे देशे वा पत्थाः (वः), दिवाणा इति तु (५२०) सम्याः स्थाने
आ, तिव्वतिदेशकात् (११६) न भाकारकीयः। एवं उत्तरापथः । चतुणां पथां समाहारः
(गः) । पथः सभीपे (वः) । एथं पथिन्भव्दस्य भप्रत्यथे (२२०) न-कोपे, (२५०) इकारकीपः । विमला भाषो यिक्षान् तत् । विभीः पूः विणुप्रमिति भभिधानात् कौवलं ।
यथि अदन्तपुरभव्दीऽष्यमि तथापि पुर्मव्देनानिष्टवारणार्थमिदं । पाणिनिः ५।४।०४।
'पथः संख्याध्ययादैः' इति वार्त्तिक्ष ।

हीपं अन्तरीपं समीपं। अनात् निं, प्रापं। \*

३८०। समापानूपौ। (समाप-षन्पौ१॥)।

निपात्वौ । समापो देवयजनं, अनूपो देशः । 🕆

३८८। सम् तम् मन:-कामे ज्वश्यम् त्ये जन्यनोपं सम-मांसौ तु हित-तते पाक-पचने वा।

(सम् ।१।, तुम् ।१।, मन:-कार्मे था, अवश्यम् ।१।, ल्ये था, अवत्यलीपं २।, सम्-मांसी १॥, तु।१।, दिततते था, याक-पचने था, वा ।१।)।

सम् तुम् च मनः-कामयोः, श्रवश्यम् त्ये, श्रन्यतीपं याति ; सम् हित-ततयोः, मांसः पाक-पचनयोर्वा।

समनाः सकामः, रन्तुमनाः रन्तुकामः, श्रवश्यसेव्यः, सहितः संहितः, सततः सन्ततः, मास्याकः मांसपाकः, मास्यचनं मांसपचनं । क्ष

अ हो च चलय गिय तत् तस्रात्। न चः चनस्तस्रात्। दिशन्दात् चलर्शन्दात् चलर्शन्दात् चलर्शन्दात् चलर्शन्दात् चलर्शन्दात् चलर्शन्दात् चलर्शन्दात् चलर्शन्दात् चलर्शन्दात् चलर्थः। दिशेदिशोगिणो यच तत् (''दिशेता चापोऽस्तिनिति दौपः" दति क्रसदीचरः; दौपमिति सदोजिदीचितः), चलगंता चापो यच, सस्यक् चापो यच इति वाक्यानि। एवं चलीपं प्रतीपं द्रस्तादि। प्रगता चापो यच तत् प्रापं। पाणिनिः ६। १। १०। ''ईलमनवर्णोदिति वक्तव्यम्" इति वार्तिकच्च।

<sup>†</sup> समीचीनाः (समा इति भट्टोजिदीबितः) आषो यत्र स समापः देवयज्ञनं (यक्षः)। (''समापंनाम देवयज्ञनम्'' इति तुक्रमदीश्वरः ।) अनुगता आषो यत्र सः अनुपः देशः। एतयोदेवार्थयोनियातनं, अन्यत्र समीपं अन्वोपनिति। पाणिनिः ६।३।८८ । ''समाप ई्लप्रतिषेषः" इति वार्त्तिकन्नः।

<sup>‡</sup> सम्तुम् इति पदभेदः मनः-कामाभ्यां यद्यासङ्ग्रानिरासार्थः । मनय कामय तिक्षान् । सम् च मांस्यातौ, दितचाततचा तिक्षान्, पाकच पचनचा तिक्षान् । सम् सनः-कामथोः, तुम् सनः-कामथोः, घवग्रसम् लये चन्त्यजीपं याति से सति । सम्

### ३८८। घुरोऽनच्चयाः।

(धरः ५।, भनवस्य ६।, भः १।)।

राजधुरा। अवस्य तु अवधूः। \*

३८० | स्व: | · (स्व: ४।)।

ऋचः परः ग्रः स्थात् से। ग्रर्डमें। †

## ३८१। नञ्बहोर्माणवक-चरणे।

(नञ्-बद्धीः ५।, माणवृक-घरणे ७।)।

भट्नो माणवनः, बहृनः चरणः। श्रन्यत्र श्रटक् साम, बहृक् सूत्र्ता । భ

हित-तत्यी: मांसः पाक-पचनयी: घन्याचीपं याति वा से सतीलार्यः । स्यक् मनी यस्य, स्थलं कामी यस्य, इति वाक्यं । तुम् इति (१९६४) चतुम् । रन्तु मनी यस्य, रन्तुं कामी यस्य, इति वाक्यं । तुम् इति (१९६४) चतुम् । रन्तु मनी यस्य, रन्तुं कामी यस्य । ल्यक्तव्यादिः (६८६) । भवस्यं मेल्यः अवस्यसेन्यः, एवं भवस्यकरणीय इत्यादि । सम्यक् हितं यस्य, सम्यक् ततं यस्य । मांसस्य पाकः, मांसस्य पचनं । सन्त्रं भन्यलीपः । भवस्य पचनं । सन्त्रं भन्यलीपः । भवस्याजीकरणीय इत्यादि । "सभी हित-तत्यीर्ग लीपः ।" "संतुमुनीः कामे लीपो वज्जन्यः ।" "मन्ति च वज्जन्यम् ।" "भवस्यमः क्रत्ये लीपौ वज्जन्यः ।" एतानि वार्षिकानि । काशिकान्निष्य यथा — "लुग्धे-दवस्यमः क्रत्ये तीम् काममनसोरिष, सभी वा हिततत्यीभीं सस्य पवि युङ्ख्जोः ॥"

अधूमारः । धरः भः स्थात् समासे, नतु भवसम्बन्धित्याः । भवी रथनकं। राजी धः राजधरा, एवं महाधरा दलादि स्त्रीलादाप् (२५०) । भवस्य धः भवधूरिलव न भप्रत्ययः । पाणिनिः ५।४।०४।

† भार्क्ष तत् सक् चेति, सम्बोऽहंमिति वा भार्क्षे, (त्रार्क्षची वा पाणिनि: २।४।३१) ; एवं सप्त ऋची यश्चिन् स सप्तभी मन्तः । पाणिनि: ४।४।७४।

‡ नञ्च वह्य तत् तस्रात्, पुंग्लं सौतात्। माणवक्य चरणय तसिन्। कञ् वह्यां परस्याः ऋचः घः स्थात् कमात् माणवक्य-चरणयोर्वाच्ययाः। नामि ऋक् यस्य मीऽन्ची माणवकः शियः। वह्याः ऋची यत्र स बहुचः चरणः वेटैक्टेग्यः। न ऋक् घटक्। साम, बहुक् इति पूर्व्वत, स्कां, साम स्काञ्च वेटांश्विशेषी। पाणिनिः प्राधा०४ — काशिका ''सन्देषी माणवके जयी बहुचयरणा स्थायाम्।''

#### ३८२। प्रत्यन्ववात् सामलोनः।

(प्रति-पत्-पवात् ४।, साम-लोस: ४।) ।

प्रतिसामं प्रतिलोमं। \*

३६३ | ऋच्णोऽचच्चित्र । (अकाः ५।, भवनुषि ०।)।

गवामचीव गवाचः। चत्तुषि तु, विप्राचि। पं

## ३८४। ब्रह्महस्तिराजपण्यात् वर्चसः।

(बद्ध-पर्यात् [ १ पल्छात्] ५।, वर्चमः ५।) ।

ब्रह्मवर्चसं हस्तिवर्चसं राजवर्चसं पख्यवर्चसं । 🕸

#### ३८५। समवान्धात् तमसः।

(सम्-अव-अन्धात् ५।, तमसः ५।)।

#### सन्तमसं। §

अप्रतिश्व अनुश्व अवश्व तस्त्रात्। एथ्यः पराध्यां सामन् लीमन् इत्येताय्यां प्रः स्थात् सं सति। साम साम प्रति, लीम लीम प्रति, वीम्नायां वः। एवं अनुलीमं अनुसामं। पाणिनिः प्राधाव्यः।

<sup>†</sup> न चतुः श्ववज्ञतिधान् । श्विष्रब्दात् श्वः स्थात् समाने, श्ववज्ञति वाचे । गवाची वातायनं । विश्वस्वि । विश्वालाचः पद्माचः इति वहन्नौद्दौ चचिश्वद्वे वाचि श्वः । लवणाचं प्रकाराचं गवाच इति क्षमदीश्वरः चदाहरति । पाणिनिः ५।४।७६ । श्वच "श्वप्रास्प्रद्वादिति वक्तस्यम्" इति वार्त्तिकम् भट्टीजिदीचितेन न स्ट्हीतम् ।

<sup>‡</sup> ब्रह्माच इसीच राजाच पण्यच तसात्। एथः परात्वर्धः इः स्थात् में । तेजः पुरीषयीर्वर्धं इत्यमरः । ब्रह्मणी वर्धः, इनिनी वर्धः, राजी वर्धः, पण्यच तत् वर्धयित वाक्यानि । अत्र , वार्त्तिते संविप्तसारिच पण्यस्याने पत्य इति पाठी दृश्यते । गोथीचन्द्रश्चं "थच पलालरञ्चा ब्रीहं वेष्टियता स्थापयन्ति तत् किल पल्यमुच्यते इति सातुपारायण्यम्" इति वद्ति । पाणिनि. ५।४।०८ । "पल्यराजभ्याचिति वक्तव्यम्" इति वार्तिकस्य ।

<sup>\$</sup> एभ्यः परात् तमसः पः स्थात् से । सन्ततं विज्ञीर्णं तमः सन्तमसः। पवचीर्णं तमः पवतमसं, पश्चयतीति पचाहितात् पन्, पश्चं तमः पश्चरतमसं। पाणिनः ५।४।७६।

# ३८६। स्त्रीवसीयस-खः श्रेयस-निः श्रेयसं।

(श्रीवसीयस-- नि.श्रेयसं १।)।

एते निपात्याः। #

#### ३८७। तप्तान्ववाद्रहसः।

(तप्त-भनु-भवात् ५।, रहस: ५।) ।

तप्तरहसं । 🌵

३६८। प्रत्युरसानुगवे। (भल्यस अनुगवे १॥)।

एते निपास्ये। 🕸

३६६। गेरधनः। (गेः पा, अध्वनः पा)।

प्राध्वी रथः। §

<sup>#</sup> भ्रज्ञयानामनेकार्थत्वात् (श्व:भ्रष्टः आशीर्यातकः) श्व: भ्रीभनं वसीय: ग्रभं (वसमत-द्रेयस) (वसभ्रष्ट प्रथ्रमावाची) श्वीवभीयमं कल्याणं, श्व: श्राभनं र्यथ: श्वःश्वयसं फल्याणं, निर्निधतं श्रेयो निःश्वयमं निर्व्वाणं। भ्रत्र वसीय इत्यत्र अवसीय इति कीयास्तिम्। पाणिनिः ५।४।००,८०।

<sup>†</sup> एथा: परान् रहनः याः स्थान् से । तप-धाती: कर्त्तरि क्षः तप्नं, तप्तस्व तन् रह-येति, चक्षयं थन् भवेन् वाकां तन् तप्तरहम विदुः ; षण्यवा ''परंणानिधगस्यं हि यद्ही विक्रितप्तन् । तप्तच तद्रहयेति तन्तरहस विदुः ॥'' इति । रहोरहः चनुरहसं, चवगतं रहः चवरहसं । पाणिनि: ५।४।८१।

<sup>्</sup>र उरिं प्रतिवत्तते प्रत्युरसं, चिवकरणार्थे ऋवयोभानः । गवां अनु भागतं अनुगवं भकटं। ऋवात्र प्रतिगतसुरः प्रत्युरः, गवां पद्यात् अनुगु इति । पाणिनिः ५।४।८२,८३ ।

<sup>§</sup> गैं: परात् चध्यन: च: स्थात् से । प्रगतः चध्यानं, प्रगतोऽध्या शेन इति वा, प्राप्यः रषः । पर्वप्रत्यध्यं धकटं। गेः किं, उत्तमाध्या । पाणिनिः धु।॥ प्राृ्

## ४००। पागडूदक्कष्टात् भूम:।

(पाख्ड उदक्-लष्टात् प्रा, सूमी: प्रा)।

पाण्ड्भूमो देश:। \*

#### ४०१। सङ्ख्याया नदीगोदावरीध्याञ्च।

(सङ्गाया: ४१, नदी-गीदावरीभ्यां ५॥, च ११।) ।

पचनदं, सप्तगोदावरं, हिभूमं: प्रासाद: । 🕆

४०२। निस: ग्रातो ड:। (निस: ४१, शत: ४१, ड: ११)।

निस्तिंग:, नियतारिंग: । \$

# ४०३। सूत्सुरिभपूतेर्गन्यादिर्वातूपमानात्।

(स. उत् सरमि-पूते: प्रा, गत्थात् प्रा, इ: ११, वा ।१।, तु ।१।, उपलानःत् प्रा)।

सुगिन्धः, पद्मगिन्धः पद्मगन्धः। §

अ उदक् इति उत्पूर्वात् श्रधातीः कर्त्तिष्, क्रष्ट इति क्षप्याती. कः। एथः परात् भूमेः श्रः स्थात् में। पाष्डुर्भूमिर्यक्षिन् म पाष्डुभूमां देशः। उदीची घरगता भूमिर्यक्षित् स उदग्भूमी देशः, पुंवडाबाइदक्स्थितिः। श्रव उदक्स्थाने उदक्तिति भाष्यकारः। कष्टा भूमिर्यक्षित् स क्षष्टभूमां देशः। कष्टस्थाने कृष्य इति. केषित्। पाणिनाये ५।४।४५ स्त्रे 'क्षणोदकपाख्डमंख्यापूर्वाया भूमेरिजयिते" इति इष्टिः।

<sup>†</sup> सङ्गायाः पराभ्यां नदी-गोदावरीभ्यां भूनेय थ. स्थान् से। पञ्चानां नदीनां समाहारः, सप्तानां गीदावरीणा समाहारः, दे भूमी यत्र सः इति वाद्यानि। धन नदीथव्देन (८६) स्वीक्तपारिभाषिकनदीसंज्ञको न वाध्यते, नापि च ख्रुद्धपद्धणं किन् नदीपर्यायवचनम् ; धतः सप्तगङ्क दियासुनिम्बादि। पञ्चनद्भित्यादी संज्ञायास् अव्ययीभावसमासः इति पाणिनः। पाणिनिः २।१।२०।

<sup>‡</sup> निसः परात् भत् इत्यन्तात डः सात् से। निर्गता विभित् यस्य स् निस्त्रियः, एवं नियलारियः निष्पद्याभः । ''निर्गतानि विभित्तो निस्त्रियानि वर्षाणि चेवस्य । निर्गत-स्त्रियतीऽङ्गुलिस्या निस्त्रियः खड्गः ।'' इति भद्दानिदीचितः । निसः किं, दुस्त्रियत् इत्यादि । ''डच्पकर्ण संख्यायासत्पुरुषस्थोपसंख्यानं निस्त्रियाययंम्'' इति वार्त्तिका।

<sup>\$</sup> स्य उच सुरिभिष पृतिष तथात्। एथः परात् गत्थात् इः स्थान् से, उपमान

### ४०४। नार्चायां खते: सख्यादेर:।

(न ।१।, पर्यायां ७।, सु-पतेः ५।, सख्यादः ५।, पः १।) ।

स्तिभ्यां परात् सख्यादेरी न स्यात् पूजायां। शोभनी राजा सुराजा, त्रतिग्रयेन राजा त्रतिराजा। अर्जायां किं, गामतिकान्तः त्रतिगवः। \*

४०५ । किम: चोपे। (किम: ५।, चेपे ७।)। किराजा। प

8०६ । नजोऽइते। (नजः ५।, पः इते ७।)। नजः परात् सखादेरी न स्थात्, न तु इ-वधीः।

वाचकास् परामु वा दृष्यथे। शोभनो गसी यस्य स सृगित्यः, एवं उदृगित्यः स्रिभित्यः पूरितित्यः। पद्मिये वस्ते यस्य सः पद्मितिसः पद्मित्यः। प्रव समवायसम्बन्धेन वर्त्तमानान् गर्त्यात् इः स्थादिति मन्प्रदायः, तेन सुगसी वायुरिति, वस्तुतः शिष्टप्रयोगानसरिणैव । किञ्च गुणवादिनी गर्त्याद्व दः, तेन शोभनानि गस्द्रश्चाणि यस्यां सा सुगसा विपणिरिति । पाणिनिः स्थारश्व १३५,१३०। 'गर्सस्यं तद्कान्त्रग्रहण्ण्" इति वार्त्तिक्ष्म् । सद्यय (तद्वयव द्वाविभागेन सद्यमाणी यी गुणकादाची गर्माव्यी स्थाते, न तुद्रश्ववाची।"

- \* सुय पतिय तथान् खते:। प्रश्नं श्रें वर्तमानाभ्यां सु-प्रतिभ्यां परात्, (३५३) सम्बद्धाराज दलारभ्य (३८१) गर्प्यन दल्यतेषु येभ्योऽप्रत्यथी विद्वितः स न स्वादित्ययं:। सुराना जितराना जमयन प्रश्नं स्वती। प्रतएव "सुराजि देशे राजन्यान्" दल्यमरिल्यनम्। एवम् चित्रश्चेन या प्रतिया, सुगौः सुरानिः सुपत्याः दल्यादि। प्रतियाः दल्यादि। प्रतियाः उत्तमराजः उत्तमराजः दल्यादी प्रविधेऽपि खल्यभाषात् भवस्वि । पाणिनिः प्राधाद्धः।
- † निन्दायां वर्षमानान् किमः परात् सख्यादिरो न स्थात् । कुलिश्तो राजा किराजा, यो न रचित प्रजाः । एवं किंगौः, यो न वक्षति भारम् । निन्दायां किं, केषां राजा किंराजः, कियां थीः किंगवः क्रवादि । "स किंससा साधु न प्राक्षि योऽभिपम्" कित कियति । पाणिनिः ५।४।७०, २।१।६४ ।

त्रसला। इतितु—ग्रनपंसरः, ग्रधुरं। अ

800। पयो वा। (पयः प्रा, का ।श)।

अपयं अपत्याः । इ-वे तु—अपयो देशः, अपयं । †∙

४०८। कत कच्चिरथवदे।

(कत् ।१।, क ।१।, भच्-वि-रध-वदे ०।)

को: स्थाने कत् स्थात् से अजादी परे। कददं कचयः। 🕸

४०६। कार्चे। (का ।१।, अर्व ०।)।

कार्च । §

इय वय इवं, न इवं षइवं तिखान्। इ-व-भिन्न-समास नजः परात्ं सख्यादेरी
 सक्षात्। असस्खा दति नञ्तत्पुरुषः। न सन्ति चापी यत्र तत् घनपं सरः, चत(३८५)
 भ-प्रत्ययः। धरीऽभावः अधरं, चत्रापि (३८८) घ-प्रत्ययः। पाणिनिः ५,१४।०१।

<sup>†</sup> इन्बन्सिम्न-समासी नज: परात् पष: च:स्यादा । न पत्याः इति तन्पुरुषे चपषं जपत्याः । नास्ति पत्या यक्षिन्दुकति चपष्ये देशः, पषोऽभावः इति चपष्यं, चसयव (३८५) निव्यम् च-प्रव्ययः । पाणिनिः ५१४।७२ ।

<sup>‡</sup> भव्य तथय यथय पर्य तथिन्। अप कु इति शब्दः कुत्सितवाची, तेन की: (पृथिव्यः:) उद्यितः कृत्थितः इत्यादी न स्थात्। कुत्सितममं कदमं, एवं कदाकारः कदीयधन्। कुत्सिताम्कयः कस्यः, एवं कद्रषः। अस्य सृत्रस्य कर्भधारय एवासिधानात् कृत्सितोः दयो यस्थेत्यादी नःस्थात्, यतः पाथिनिम्चे "तत्पुक्षे" इत्युक्तम्। भव वक्तव्यम् "द्येषे च नाती" इति (पाणिनिः ६।३।१०३) स्वेण कनृष-मिति। पाणिनिः ६।३।१०२,१०२। "कक्षावे वाबुषसंख्यानम्" इति वार्तिकष्ठा।

<sup>§</sup> अप्तश्रद्धे परिक्षी: का स्थान से । कृत्कितसम्बं (इन्द्रियं) कार्च। अप्त इति सानास्थतोः यहणात् कृत्किते अस्तिणीः यस्य स काची विष: इत्यत्र अविश्वस्दात् (३२४) व कतेऽपि स्थान । ''अच्याब्देश तत्पृक्षः, अपिश्वस्टेग बहुत्रीडिवी'' इति सर्टीजिः दीवित.। पाणिनि: ६।३।१०४।

8१८ | पश्चिपुरुषे वा | (पश्चिपुरुषे था, वा ।१।) ।

कापयः कुपयः, कापुरुषः कुपुरुषः। \*

8९९। कोरीषदर्थे। (को: ६।, द्रेषदय ०)।

द्रेषज्जलं काजलं। 🌵

# ४१२। कत्कवौ चाम्नुप्रणो।

(कत्-कवी १॥, च ।१।, अग्नि-उणी ७।)।

कदिग्नः कवाग्निः काग्निः, कदुर्णं कवीणं कीणां । 🕸

<sup>•</sup> की: का स्यात् वा पथि-पुक्षपे: परथी: । कुत्मित: प्रयाः,, कुत्मित: पुक्षः, इति वाक्यद्ववं । अव द्रष्टव्यम्— 'का पथ्यवयं.'' इति पाणिनिम् वे (६१३१०४) पथिन् भ्रव्यत्त नित्यं कापथः इति पदम् ; पथात् "पथि च च्हन्दिषि" इति म् वं (६१३१००) वेदे कवपथः कापथः इत्यप्यः इति पदचयं दर्धितम् । वीपदेवेन तु लौकिकालौकिकमतं लौकिकवेन प्रयुक्तम् । विचार्यव्यात्त्यत्— कापथः इत्यच पुंम्तं वार्णिकमतेनास्त्रकं, "पथः संख्याव्ययादेः'' इत्यव क्षीवत्यमुक्तम् (२८५ मृतं द्रय्व्यम्) । भ्रत्यव कमदीयरः— "कुत्तितः प्रयाः कापथम् । कृपथिनित्यसाध् ।'' इति । "पथिभ्रव्यत्त समामे नित्यं कारिशः । पथिभ्रव्यसमानार्थेन पथभ्रव्यन्तिषिक्तीक्वाभावः'' इति गीयौचन्दः । एतस् द्रय्व्य-तर्कवाचस्यतिप्रकाशितायां निद्यान्तवौम्यां कापथः इति पाठो द्रयते ; श्रिव-रामगर्भाणा भीधितायान् तस्या कापथम् इति पाठः । वीधिविद्रप्रकटीकतं अष्टकं पाथिनीयं च कापथः इति पुंलिङ्गमेवाक्ति । सुपद्यं तु समासप्रकरणस्य "पथः संव्यान्ययात् क्षीवे" इति ८० मृत्वे कापथमित्रकं, भ्रत्वक्तम् स्व कापथः इत्यक्तम् इति स्वीकविरोधः। शिवीकम् वटीकायान् "वार्तिकभाष्ययीनं सतमेतत्, भ्रदन्तपचे तु कुपथः" इति चिखितम् । पाणिनिः ६।३११०६।

<sup>†</sup> ईपटर्थं वर्त्तमानस्य की: का स्थात् से। कीर्यहर्णपथिपुरुषयोरनतुवर्त्तनार्थम्। प्रयोगान्सरिण यखिन् किसिबिप पर इत्थर्थः। एवं ईषट्त्रं कात्रमित्यादि । भारती च ''देव कानिनि कावार्ट— काकारे भभरे'' इत्यादि । पाणिनिः ६ । ३।१०५।

<sup>‡</sup> ईषदर्थं की: स्थाने कत्-कवी, चकारात् का च स्थात् पश्चि-उपायी: परयी: । ईपद्ग्निः, ईपद्ग्रामिति वानाद्यं। पर्शाणिनः ६।३।१०७।

## ४१३। ज्योति र्जनपद रात्रि नाभि बन्धु गन्ध पिग्छ लोहित कुच्चि वेगी ब्रह्मचारि तीर्थ्य पत्नी पच्चे समान: स:।

(च्योति:-पचे ०।, समानः १।, सः १।) ।

समानं ज्योतिर्यसासी-सज्योतिः। #

## ४१४। इत्प नाम गीत स्थान वर्ण वयो वचन धर्मा जातीयीद्यों वा।

(६प-उदर्थे १।, वा ।१।)।

सरूपः समानरूपः। 🌵

#### द्रति स-पादः।

 एष चतुर्दंशसु परेषु समानः सः स्थात् से सित्। एवं सजनपदः, जनपदपर्याय-ग्रहणात समानी देश: सदेश: । सराजि: सनाभि: सबस्य: सगन्य: सपिण्ड: सलीहित: सक्ति: सवैणीक:। ब्रह्मचार्यादिसम्बन्धेन समानगब्द: एकार्यएव ल तु तुल्यार्थ:. समानं एकं ब्रह्म वेदं चरतौति वार्क्य (१८३) ग्रहादिलात् णिनि, ब्रह्मचारिन् शब्दे परे समान: स:, एक ब्रह्मवताचारा नियः सब्ब्रह्मचारिया इत्यमरः। समाने एक स्मिन तीथें ग्री वसतीत (४२६) शाप्रत्यये तीर्थ्यशब्दे परे समान: स: ; निर्यकारपर्च (पाप्रत्यये) समानं तीर्यं यस्य इति बहुबीहि:। तीर्थ-स्विज्ञ जले गुरी इति, सतीर्थायेक-गुरव इति चामर:। पाणिनी संचित्रसारे च सयकार तीर्ध्यक्षद एव दृख्यते। समान-एक: पतिरस्था इति बाकी निपातनात पत्यः पतादेशे ईपि भमानस्य मः सपत्री (पाणिनि: ४।१।३५)। एवं समानः पचः (सहायः) सपचः। पाणिनि: ६।३,८५,८६,८०। एषु मुत्रेषु परमुत्रे च गन्ध पिरुङ लीहित कुचि वेशी पत्नी पच शब्दान दृश्यने "वामनस् पुन: पचधर्माजातीयान्यपि पठति'' इति क्रमदीयरः । सेतुभन्दोऽपि संचिप्तसारे दृश्यते । † एषु दशसु परेष समान: स: स्यात् वा । समानं दपं यस्याधी सदप: । समानभिकं नाम यस्य स सनासा। एवं सगीत: सस्थान: सवर्ण: सवया: सवचन: सधसा (३४४)। समानस्य प्रकार: इति (४८०) सनातीय:। समाने एकस्मिन् उदरे भवतीति (४२८) उदरशब्दात् शाप्रवये सोदर्थः। सीदर-सहीदरशब्दी त उदरेण सह वर्त्तते योऽभी द्रति (३१३) मूर्त्रण सिद्धी। एषु विकल्पपत्ते समानस्थिति:। पाणिनिः ६।३,८५,८८। उदये वर्जीयला सन्धे पाणिनिमते नित्यम्, चान्द्रमते तु विकल्पः।

#### ४र्थ पाद:--तिबत: (त) I

## ४१५। बाह्वाद्यतोऽनप्राबादेर्गर्गादेर्न डादे: पिटष्यसादे रेवत्यादे: श्रेषिशवादे: ष्णि-ष्णेय-ष्ण्य-ष्णायन-णीय-ष्णाक-ष्णा अपत्ये।

(बाह्वाद्यत: ५१, भवर्गवादे: ५१, धर्गादे: ५१, नड़ाटे; ५१, पित्रवसादे: ५१, रेक्साटे: ५१, भेषभिवादे: ५१, चि.—चा: १॥, भपत्ये ७५)।

एभ्यः परा एते क्रमात् स्वुरपत्यार्थे । \*

<sup>•</sup> बाहुरादिर्यस्य सः, वाह्वादियं चा सं संस्थात्। चित्रयं चाएं चती चाटी यस सः चत्रावादिश्वात्, चत्रादः चावादेशेल्यः। गर्गे चादिर्यस्य तस्मात्। नड़ चादिर्यस्य तस्मात्। पिट्रष्टसा चादिरं स्य तस्मात्। देवती चादिर्यस्य तस्मात्। एकताद्यः भ्रेषः, श्रितं चादिर्यस्य स्थादिः, भ्रेषयं स्थिवादिः तत् तस्मात्। स्त्रलात् भ्रेषिवादिवत्ते सर्वते पुंत्वस्। चित्रयं च्यायं च्यायं च्यायं च्यायं चित्रस्य च्यायं स्थाप्येयः एते सत्त प्रत्याः क्षात् स्थः चप्यार्थे। न पति वंभो येन तद्यत्यं, पुत्र-पौत्र-प्रीतादिः (कत्या च) उच्यते (पाणिनिः श्राश्यः स्थाप्यः चाह्वादः चक्रा- प्रत्यादः च्यादः चावादेयः च्याः, नड़ादः च्यायः, दित्र्यस्यः च्यादः च्यादः, गर्गेटः च्याः, नड़ादः च्यायः, दित्र्यस्यः च्यादः, व्यादः चित्रुप्यसदिः च्यादः, वित्रव्यसदेः चित्रः, भ्रेषतः, भ्रेषतः प्रत्यसदेः चित्रः श्राश्यः। चित्रः स्थादः स्थादः स्थादः स्थादः स्थादः स्थादः स्थादः च्यादः च्यादः च्यादः च्यादः च्यादः च्यादः स्थादः च्यादः च्यादः

### ४१६ । णित्ते त्रिराद्य**चः सुभग-सुपञ्चा**ला-द्योस्तु द्वयन्त्रयहानां ।

(णित्ते था, त्रि: ११, भाग्यवः ६१, सुभग-सुपचालायोः ६॥, तु ११।, धान्यदानां६॥) । अ**चां मध्ये त्राद्यचो त्रिः स्थात्, णिति ते परे, सुभगादेसु** इयोर्दयोः, सुपच्चालादेसु अन्यस्य दस्य । \*

· (३३७) न्वोर्लीपौतौ तेऽचिः। बाहोरपत्यं बाहिवः, उप-विन्दोरपत्यं ग्रीपविन्दविः, उडुर्लाम्बोऽपत्यं ग्रीडुर्लामः, ग्राम-ग्रामीचोऽपत्यं ग्रामिग्रामीः। क्षणस्थापत्यं काणिः। १

### ४१७। योर्युम् रान्तेऽखङ्ग व्यङ्ग व्यव-हार व्यायाम खागत खध्वर गानः।

(योः ६॥, युम् ।१॥, दान्ते ७।, प्रखङ्ग — पनः ६।)। .

<sup>\*</sup> मूडंन्य थ इत् यस्य स णित्, णिवासी तथित णित्तः तिखन्। षादियासी षच् चिति षाद्यच् तस्य। सुभगय सुपचालय सुभगसपचाली, नौ बादी थयीसी सुभगसपचालादी तथीः। हे च चत्त्यच दान्यानि, हान्यानि च तानि टानि चेति हान्य-दानि तेषां। पूळां (१) चच एव इडिस्थानिलेन निर्देशिऽपि षच घची गृहणं परस्वे षाद्यची हिनुहृत्त्यथे। सामान्यतः सळींगां अन्दानां चचां मध्यं षाद्यची इडि:, सुभगादे-देशी: पद्योगाद्यची इडि:, सुपचालादेनु केवलम् चन्त्रपद्याद्यची इडि: स्यात्, णिति तिहिते परे इत्यथं:। पाणिनि: शरा११९, ४।११६६।

<sup>†</sup> बाह्नादीनाह — बाहुनानकस्य कस्यचिटपत्यं इत्यर्थे, बाहीरिति परात् िष्णः, ष च इत्, इकारस्थितः, (११६,१३०,३५) बाहिति इति भागस्य पुनर्लिङ संज्ञायां स्यायुत्-पत्तः, एवं सम्बन् । यया विभन्न्या वाकां तिहमन्न्यत्तात् प्रत्ययः। एवम् श्रीपिवन्दितः। श्रीजुलीमिरित्यत्र व्याप्तत्र्यये, (३३०,२५८) नलीपः भकारलीपय। एवम् श्राप्तिः। कार्षिरिति (२५८) भकारलीपः। बाह्नादिस् — बाह्न उपबाह्न उपिवन्द् उज्जीमन् श्रिप्रामान् सुश्मान् कष्ण युविष्ठिर अर्जुन ग्रास्त्र गर्यस्य राम सत्यक प्रस्तिः।

त्राद्यत्तः स्थाने जातयीदीन्ते स्थितयीर्यवयीः स्थाने क्रमादि-सुमीस्ती णितिते परे, नतु सङ्गादेः। \*

४१८। द्वार खर ख: खिस खादुम्दु व्यन्तम ख: खन् स्फांजत ख खाध्याय खग्रामै-कत्यग्रोधानां खापदन्यङ्कोस्तु वा निविति खादे:।

द्वार—न्यग्रीधानां ६॥, यापद-न्यद्वी: ६।, तुःशा, वाःशा, नःशा, तुःशा, द्वाःशा, नःशा, तुःशा, द्वाःशा, नःशा, तुःशा,

द्वाराटेरिदतीयस्य न्यग्रोधस्य च यूर्वेर्युम् स्यात्, स्वापदन्यङ्गोस्तु वा, न तु खाटेरिकारादी ते। १

<sup>\*</sup> यच वच यौ तयो: । इय उप यू ताथां स्युम् इति लृतप्रथमा दिवचनं यथाक्रमार्थं। स्वङ्गय व्यङ्गय व्यङ्ग व्यवहार्य व्यायासय स्वागतय स्वध्यर्य सन्च तत्,
प्यावज्योगे तस्य । स्वङ्गार्यः भप्त भच्छाः, सन् इति (११४१) ज्ञत्पव्यः, तेन तदसस्य ग्रह्मार्थः प्रायस इति स्विते इति च भन्वतेते । इसुमीर्भस्वादादौ । शिति ते
पर स्वादौ इसुमि ज्ञते प्यात् इद्विः । पाणिनिः ७।३।३,०,५,६ । स्व द्रष्टव्यम्—
पाणिनिये स्वागतादिगणे व्यायामश्रास्ते नाभ्ति, स्वपतिभव्दल् द्रस्ति ।

<sup>†</sup> एकोऽिद्विनीयशासी न्ययोधशित एकन्ययोधः। एकेति किं, न्ययीधम् लेकावा न्यायोधम् लाः शालयः इति भटानिदीचितः। न्यायोधम् लिकिसिति (४३२) स्वं स्वयं वस्यति। दारञ्च स्वर्थ स्वरिति रेफान्तमञ्चयञ्च स्वमौत्यञ्चयञ्च स्वादृश्दय व्यक्तस्य श्रम् इति भान्तमञ्चयञ्च श्रा च स्काकृतय स्वयं स्वाध्यायय स्वयामय एकन्ययोधय ते तेषां। श्रापदय न्यदुर्धति तस्य। श्रा चादिर्धस्य सःशादिनस्य। दारादेगेनं यवयोरदान्तवात् चाद्यवः स्थाने चनातलाञ्च पूर्व्यवाप्राप्ती वचनिनदं। दारादेये-वयीरिसुनी स्थानं विति तद्विते परं, श्रापदच्यदीम् वा, श्रन्थतीनां (वार्त्तिकोत्र —श्रदंप्रश्मवयीष) इकागदौ तद्विते परं तृ न स्थादित्यर्थः। च स्वः च्यायः स्वाध्यायः इति व्यत्पतिः, न तृ (सृ) श्रीभनः चाध्यायः स्वाध्याय इति काशिका। स्वाद्यदु इति पदं केषाचित् सते पृथक् पददयम्। स्यामश्रस्य द्वारादिगणं न दृश्वते। पाणिनिः ७१४,५,८।

वैयखि: सौवधि:। खङ्गारेस खाङ्गि: व्याङ्गि: व्याङ्गि:। \*

## ४१८। व्यासादेईक् क्णौ।

(व्यासारे: ६।, जब्दाश, ची ७।)।

वैयासिकः सीधातिकः। १

श्रात्रेयः शौभ्रेयः । गाङ्गेयः माहेयः यौवतेयः । 🏗

# ४२०। चोर्लोपोऽकद्रुपागड्डोरेये।

(भो: ६।, सोप: १।, भकटु-पाख्वी: ६॥, पर्य ७।)।

\* पूर्वस्त्रीदाइरचमाइ—विगतीऽत्री यस सः व्यत्रः तस्यापत्यं वैत्रत्रिः, चट्नतात् चित्रत्यये यकारस्य इति क्रते तसीय विदि:। एवं क्रीभगीऽत्री यस सः सन्नः तस्त्रापत्यं सीवत्रिः. वकारस्य उति तसीव विदि:।

चादाच: स्थाने जातयी: किं, दिधिषय: चत्री वस्य स दध्यय:, मधिपयीऽची वस्य स मध्यय:, तस्य तस्य चपत्यं दध्यवि: मध्यवि: इत्यादी इस् उस् न स्थात्। दाले स्थितयी: किं, दधाती: बट वत् इति बच्दः, यतः इदं यातमिति, एवं दयी-वैर्धेयोभवं दिवाधिकं इत्यादी इस् उस्व स्थात्।

खड़ादेनु श्रीभनं भड़ं यस स खड़: खड़स्सापत्वं खाड़ि:, विगतं भड़ं यस स: ध्यङ्ग: खड़स्सापत्यं व्याङ्गः, व्यङ्स्सापत्यं व्याङ्गः इत्वादी यवयोर्दान्तवादायनः स्थाने जातत्वाद्य प्राप्ती विषेषः । यनन्तस्य तु व्यावक्रीशी, व्यय-कुश्रभातीः (११४१) यन्पत्यये, व्यवक्रीश-शब्दात स्वायं को द्विपि सिद्धम । पाक्षिनः शहाद ।

† व्यासादिश्व्रस्थ स्थाने क्ष्म् स्थात् विषम्बये परे, क्षित्वादन्यस्य स्थाने । श्रक्-िस्यितिः । व्यासस्थापव्यं वैद्यासिकः, व्यासश्व्यात् व्यः यकारस्य (४१०) रम्, (४१६) रकारस्य विदित्तेकारः, भनेन क्ष्म् । एवं मुधातुरपत्यं सीधातिकः, सुधावश्व्यात् व्याः, श्रायची विद्यः, स्थाने क्ष्म् । व्यासादिस् — व्यास वद् विषाद च्यांल विश्व सुधाव प्रस्तिः । पाविनिः ४।१।८०, वार्त्तिकः ।

‡ चत्रादीनाइ—चत्रिपत्यं, ग्रथस्यापयं। चावादीन् चाइ गङाया चपत्यं, मच्चाचपत्यं, युवत्याचपत्यं, सन्तेत्र चीयप्रत्यथे यद्यायीग्य (२५८) इत्यपीवर्णयीतींपः। चत्रादिल् —चति ग्रथ्यं पूक् स्वकस्डु पास्तुकदू ब्रद्धा कुमारिका रीक्षिणी विमाट विधवाचिका क्रिक्सियी गोधाग्रक नटी प्रस्तिः। पाणिनिः धारारे २३। उवर्णस्य एये परे लोपः स्थात् नत्वनयोः। कामण्डलेयः। त्रयोन्त्र काद्रवेयः पाण्डवेयः। ≉

४२१। कल्याणी सुभगा दुर्भगा बन्धकी रजकी बलीवरी ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा परस्य-नुस्च्यन्दृष्टि कुलटाभ्य र्नेयः।

(कल्याची---कुलटाभ्य: प्रश, इनेय: १। ।

सीभागिनेयः दीर्भागिनेयः। १

## **४२२। जुट्रागोधार्थ्यो वैरारौ**।

(चुद्रा-गोधाभ्य: ५॥, वा ११।, एरारौ १॥)।

नाटेर: नाटेय:, गौधेर: गौधार: गौधेय: । 🕸

<sup>ः</sup> कमण्डलीः कमण्डला वा श्रपत्यं कामण्डलेयः, णोये प्रानेन उनर्यलोपः। कद्रा प्रपत्यं, पाखीरपत्यं — उभयत उनर्थलीपाभाषे, (३३०) उनर्णस्य प्रीकारः, (३५) श्रीस्थाने प्रन्। कमस्डलुः चतुषाज्ञातिविशेषः। पाणिनिः ४।१।१३५; ६।४।१४०।

<sup>‡</sup> चुद्राय गीधा च ताभ्य: ; (पाषिमौ ''गीधाया दृक्'' इति एकवचननिर्देशात् ''चुद्रास्यो वा'' इति वष्ट्वचननिर्देशाक्ष)। एरच चारच एरारी। चुद्रा: कुलशील होनाः

गार्ग्यः वात्यः जामदग्न्यः पाराग्रर्थः । \*

### ४२३। योदौतीऽज्वत तसदय-काङ्यः।

(भीत्-भौतः ५।, भचन्त्र ।१।, तक्तदयका-स्वाः १॥)।

श्रीदीद्वाां पर-स्तसंज्ञः कत्संज्ञकस्य यः काब्यी च श्रज्वत स्वात। पं बाभ्रयः। 🕸

नाडायनः गार्ग्यायणः दाचायणी । पेतृष्यस्रीयः मातृष्यस्रीयः । रैवतिकः भ्राष्ट्रपालिकः । यादवः श्राङ्गिरसः । §

भक्तकीनाय। "का: चुट्रा नाम ? भनियत पंक्ता भक्तकीना वा" इति भाष्यस्। "व्यङ्गाद् भी नाभ्याचः" इति क्रमटी चरः । गीधामब्दः ग्रुमादिगणान्तर्गतः । श्रन वामञ्चस्य व्यक्ष्यावाचित्वात चुद्राभ्यः परस्य णीयस्य एरः स्थादा, गोधायाः परस्य णीयस्य एरारी स्यातां वा इत्यर्थ:। कुलभीलहीना यथा—नक्या चपत्यं नाटेर: पर्व नाटेय:। एवं कुल टाया अपत्यं कौल टेर; कौल टेय:। सतीवाची तुपर्वमुवादिनेये कौल टिनेय इति। एवं दास्या चपत्यं दासेर; दासेय: इत्यादि। चक्र हीना यथा--- काषाया: भापत्यं कार्णरः कार्णय इत्यादि । गीधाया भापत्यंगीवेरः गीधारः गीधेय इत्यादि । पाविनि. ४।१।१२८,१३०,१३१।

- गर्गादीनाइ—गर्गस्थापत्थंः वसास्थापत्थं, जमदग्रेग्पत्थं, पराग्रस्थापत्थं, मर्व्वव गर्गादिलात पाप्रत्यये, चाराचो हजी, (२५०) यथासम्पर्यासम्गावणं योलींगः। स्त्रियां (२५८) यलीपे गार्गीत्यादि। गर्गादिय-गर्ग वसा चजः चगस्ति पुकस्ति चमम रेभ भग्नियेश शह शक धनम्रय लोहित बस मण्ड मन्तु बतग्ड कग्व. यजनन्त प्राण्डल चयक सुद्गल कसद्ग्रिपराश्रर उल्कादण्ड प्रस्ति:। पाणिनि: ४।१।१०५।
- † भीच-भीच तसात्। अन्य इव भज्वन्। तथा क्रम तौ, तयोर्णः तक्रदयः, तकदयय काय उपायाते। पाणितिः ६।१।७८,८०।
- ‡ बसीरपत्यं बासव्यः, अत्र बस्त्राच्टात् भी कर्तः, (३३०) खकारस्य श्रीकारे, अभेन यस्य भज्यक्षात्रे, (३५) ऋषिकारस्य भव्। (पाणिनिः ४।१।१०६)। एवं नानातास्ये नाव्यं, (४२८) पाप्रथये, घनेन धच्तुल्यले, घौस्याने धाव्। स्रती यकारे. सन्धं भाव्यक्तियादि । गामिक्कति ग्रथिति, नाविभिक्कति नाव्यति (८४३) स्थमत्ये प्रज्वतः । गौरियाचरति गन्यते, नीरियाचरति नाव्यते, अभयत्र (८४८) दाप्रत्यथे, अञ्चत्।

§ नडादि-चतुष्टयसाह -- नडस्थापत्यं नण्डायनः, बाग्येस्थापत्यं गार्ग्यायणः. दच-स्थापत्वं स्त्री दाचायणी, सर्वेत्र नड़ादिलात् प्रायन:। नड़ादियः (पाणिनिः

### ४२४। मन्वर्जान्वर्योः चर्यनेऽनेऽध्वातानी-ऽपत्यज्योऽविकारव्याभावकर्यय ईने न न-स्रोपः।

(सन्वर्णान्-वर्षे। चर्छनः ६।, चनः ६।, चप्तासनः ६।, चपस्यक्रेश, चिवकारक्षः-सावकसंग्रेशः, देनेश, नः।१।, न-कीपः १।)। \*

मन्वर्जस्थानी वसंगः उत्तरः स्थात् परस्थेनय ऋपत्यार्थः ची, अनी विकारार्थवर्जे ची भावकसंग्रंबर्जे ये च, ऋध्वास्मनीरी ने, न लोपी न स्थात्।

याज्वनः भाद्रवर्माणः श्रीच्यः चाक्रियः । १

धाराटर, १००, १०१) नज् नर तीप काम्य दिखन् इसिन् बदर षश्वल दख्डा प्रश्वति:।
पिटलसुरपत्यं पैतृलसीय:, मातृलसुरपत्यं मातृलसीय:, उभयत्र पिटलसादिलात्
षीय:। (पाणिनि: ४।१।१३२,१३४)। दिन्या भपत्यं दैनतिक:, भश्वपासस्मापत्यक्
भाश्वपासिकः, उभयत्र देनत्यादिलात् चिकः। एवं डारपासिक इत्यादि। देनत्यादिय—देनती पश्चपासी मिणपासी तारपाली इक्षत्रमु इक्ष्याहः कर्षयाह दख्याहः
भामरयाह प्रभृति:। यदोरपत्यं यादनः, भित्रपत्यं भाश्विरसः, एवं द्योरपत्यं
राघनः इत्यादितु भ्रेषलात् चाः। (पाणिनि: ४।२।२२) सूने भ्रेषः = भपत्यादिचतुर्यन्तादन्योऽयं:। भन्न तु वाहायादिगयान्तर्यक्तिः।

<sup>†</sup> भव (४३३) विकारायंवर्ज-णे परे सर्वेषा-मननानां न-लोपनिषेषे, भपत्यायं णे परे मन्-वर्जसीव भनन्तस्य न-लोपनिषेषः। परे मन्-वर्जसीव भनन्तस्य न-लोपनिषेषः। निर्मयः, मनन्तस्य त न-लोपः स्वादेव, भपत्यायं भित्रणे परे त मनन्तस्यापि न-लोपनिषेषः। मनन्तवर्जनात् वर्षाणोऽपि न-लोपप्राप्तौ तस्य न-लोपनिषेषाः प्रनवंषाणोऽपि न-लोपप्राप्तौ तस्य न-लोपनिषेषाः प्रनवंषाणोऽपि न-लोपप्राप्तौ तस्य न-लोपनिषेषः। स्वाप्तेषः स्वप्तेषः स्वपत्तेषः स्व

भैव: वाभिष्ठ:। \*

### **४२५। सङ्ग्रासंभद्रात्मातुर्ङ्**र् व्यो।

(सङ्ग्रा-संभद्रात् ५।, मातुः ६।, खुर् ।१।, चि ०।) ।

हैमातुर:। 🕆

४२६ । नन् पुंस्त्रियोः । (नन् १२), पुंक्तियोः ६॥)।

पौंस्रः स्त्रेणः । 🕸

विष्वात् णः, चनेन म-लीपनिषेधः । ममनस्य तृ सुमान्नोऽपत्यं मौसामः इत्यादि । प्रत्याणे इति किं, चर्माणा परिवतो रयः चाम्म्ययः । उत्त्योऽपत्यं चौत्यः (४३५) उद्विताः, पत्यस्यं भीत्यः (४३५) उद्विताः, पत्यस्यं भीत्यः तृ उत्त्य इदं चौतं चर्मः । चित्रणोऽपत्यं चाक्रिणः, एवं स्वक्षितः । शिक्षनः शिक्षनः श्वासिनः इत्यादि संयोगः दिने न-खोपनिषेधः । चभोऽविकारणे यूषा— ब्रह्मः नामाति वाद्मणः । साम्च इदं सामनित्यादि । तिर्दं कथं वद्मणेऽपत्यं बाद्मणः, वद्मण्यादि वाद्मिने । चच्यते— "बाद्मोऽनातौ" (६।४।१७१) इति पाणिनि- विष निपातः । "योगविभागोऽच कर्त्तयः । ब्राह्म इति निपायते चनपत्येऽणि । व्यक्षे निपातः । "योगविभागोऽच कर्त्तयः । ब्रह्म इति निपायते चनपत्येऽणि । व्यक्षे जाताविण ब्रह्मणश्चिपो न स्यात् । ब्रह्मणोऽपत्यं । व्यक्षे निपातः । चपत्ये किं, ब्रह्मणे चितः । अभावकर्मये । व्यक्षे किं, ब्रह्मणे स्वापः । व्यक्षितः । विष्वितः । व्यक्षितः । व्यक्षि

- श्रीवादीनाइ । श्रिवस्थापत्यं भैवः, विश्वस्थापत्यं वाश्रिष्ठः । श्रिवादिसु—श्रिकः
   श्रीतम मनुवियवण यस्क कञ्जत्स्य इत्त्वाकु कुद्ध्या मूमि सपवी कर्षनाम ।स्रितः । पाणिनः ॥१।११२ ।
- ां सक्का च सम् च भद्रय तकात्। सक्कावाचकात् सभी भद्राय नाटण्डस्य जुक् यात् च्छंपरे, कि खादत्यस्य स्थाने। वयोगांचीरपत्यः दैमातुरः, चन तद्वितार्थे विषये देगी, शेषलात् च्छंकते एकपदीभावात् दे-रिकारस्य (४६६) ब्रद्धिः। एवं तिस्यणाः गत्यामपत्यः नैमातुरः. वच्छां मातृषामपत्यः वाच्छातुरः। संमातुरपत्यं स्रांमातुरः, वं भद्रमातुरः। पाणिनिः ४।१।११६५।
- ‡ पुम्स-स्त्री-शब्दयी: नन् स्थान् ची, निस्त्वादनी, घटनानकारस्थिति:। पुंचीऽपत्यं ों सः, स्त्रिया चपत्यं स्त्रैणः, चीननि चक्रते (२५०) चकारसीपः। एवं इदमादांगे

# ४२७। कुञ्जादेणीयन्योऽस्त्रीःवेऽपत्वे।

(क जादे: ५।, चायन्यः १।, चस्ती व्वं ०।, चपत्ये ०।)।

कुञ्जादेरपत्यार्थे णायन्यः स्थात्, नतु स्त्रियां नच व्वे । कोञ्जायन्यः ब्राप्तायन्यः । स्त्रीव्वे तु कोञ्जायनी कोञ्जायनाः ।

### ़ ४२८ । गर्गयस्कविदादि-स्टग्वचि-कुत्सा-ङ्गिरो-वशिष्ठ-गोतम-क्रढांत् लुक् व्वेऽस्त्रियां ।

(गर्ग - रुट्रात् ५।, लुक् ।१।, ब्वे ७।, चिस्त्रयां ७।)।

देशतुल्बाख्यः चित्रयोः रुडः। एभ्यः परेषामुकानां त्यानां व्वे विचितानां लुक् स्थात् नतु स्त्रियां। पे

गर्गाः वलाः, यस्ताः लह्याः, विदाः उर्व्याः, श्वगवः अत्रयः कुलाः अङ्गिरसः विष्ठाः गीतमाः, अङ्गाः वङ्गाः कलिङ्गाः। स्त्रियांन्तु भागीयः। । इ

चित्रतेऽपि यथा—पुंस दर्दं पैंसं, स्त्रीयां समूहः स्त्रीयं, स्त्री दंक्ता प्रस्य सीयः। पाचिनिः ४।१।८०।

कस्ती च क्य स्त्रीव्यं, न स्त्रीव्यं पस्तीव्यं तस्मन्। णायनीन णायनी वाप्यते। क्य स्थापत्यं, दक्षस्थापत्यं, णिस्तान् पाद्यं गे इति:। क्य स्थापत्यं स्त्री, क्य स्थापत्य।नि प्रमांतः, इत्युभय्य नदादिलान् णायन एव। क्यादिन् ,—क्य बक्ष ग्रह्मलोन भय ग्रभ विपाग् प्रस्ति:। पाणिनि: ४।१।८८२; ५।३।११३।

<sup>†</sup> गर्गेश्व यस्त्रश्व विदय ते चादयी येथां ते गर्गयस्तिव्हादयः, चादिण्ट्य प्रत्येकेन सम्बन्धात् गर्गादि-यस्त्रादि विदादय इत्योधः। ते च स्रग्रथ चित्र च कृत्मथ चित्रश्य विश्व गीतस्य उदय तसात्। देशेन तुल्या चास्या यस्य सः देशतुल्याच्यः, यथा वद्गी देशिविधयः, वद्गं पातौति (४२६) चण्यस्य यद्गाराजा इत्यादि। ''जनपदवचन-चित्रः' इति पाणिनिः। उक्तानां त्यानासिति चपत्यार्थपत्ययानासित्यर्थः। जुक्-करणात् (८३) त्यकोषे त्याचचणसिति न्यायेन बद्गादिनं स्थात्।

<sup>‡</sup> गर्भस्थापत्थानि क्लास्थापत्थानि, उभयत्र गर्गादिलात् चास्य लुक्। यस्कर्याप-स्थानि सञ्चास्थापत्थानि यस्कादिलात्, विदस्थापत्थानि उर्जस्थापत्थानि विदादिलात्

### ४२८। ढघे कात् च्णीककण्णीनेयाञ्चानितञ्च।

(ट-वे ७।, कात् ५।, णोक कण् पीन- इया: १॥, घाशा, घिनतः १॥, घाशा)।

कात् परा एते पूर्वे च सेतोऽनितय स्थुः ढे घे च वाची। \*

तर्को वित्ति अधीते वा तार्किकः; पदकः, क्रमकः; वैया-करणः; वाचा कृतं वाचिकं; पाणिनीयं; यक्त्या युध्यतेऽसी भाक्तीकः, याष्टीकः; तिथेण धृक्ता राचिः तैषी, पौषी; चन्नाय साधुः चित्रयः; यज्ञाय द्वितं यज्ञियं; मथुराया आगतः

एवं स्गोरपत्यानि एतेष णस्य लुक्। यस्तादिर्यंणा — यस्त पुक्तरसद वर्षक सम्यक लक्ष (लुज्ञ वा) रधीसुख कीष्ट्रपाद प्रस्ति:। विदादिय — विद् पुत्र उन्ने कस्यप क्षिक भरहान उपमन्य प्राप्तस्य प्रश्वतः। विदादिय — विद् पुत्र उन्ने कस्यप क्षिक भरहान उपमन्य प्राप्तस्य प्रश्वतः। प्रविद्यान प्रस्ति:। क्षत्रे रित्यानि क्षत्र भ्रेष्य स्व क्ष्यापत्यानि क्षत्र प्राप्त प्राप्त प्राप्त प्राप्त क्ष्यापत्यानि कित क्ष्यापत्यानि प्रति प्राप्त क्ष्यापत्यानि कित क्ष्यापत्यानि हत्यादिष्ठ णस्य लक्ष्य कित्र प्राप्त कित्र कित्र प्राप्त कित्र कित्र प्राप्त कित्र कित्र प्राप्त कित्र क

<sup>\*</sup> टख यथ टचं तिक्यन्। खीकथ कण्च खीनथ इयस ते। नास्ति इत् येयां ते चितः। यीनेयासित चकारेण पूर्वीकाः िषाप्रस्तयः प्रत्ययाः समुधीयते। सिनत्यिति चकारेण सितः इति विशेषणान्तरं समुधीयते। तत्य— इड चतारः पूर्वेकािष सप्त इति एकादश प्रत्ययाः सर्वकारकेश्यः कथाणि कर्तर च वाची स्थः, ते च प्रयोगानुसारेण कचित् इद्दिताः स्युरियथः। इत्-रहिता इति कथनात् (४१६) यिति ते परे हिंदिनं भविष्यतीति। सर्थविशेषे प्रत्ययित्येषन् सभिधानात्य प्रयक्षति।

माधुरः ; इह भवं ऐहिसं ; कादाचित्तं ; ग्रामीणः, ग्राम्यः ; मूर्जन्यः ; नादेयः ; ग्रानीयः ; नागरः ; श्रयाः । \*

### ४३०<sub>।</sub> व्यटेर्नीपोऽनाराच्छावतोऽच्येऽयौ।

(य टे: ६।, खोप: १।, चनारातृ-मधत: ६।, भच्-ंग्र ७।, भगी ७।)।

अ तर्कम वेलि अधीते वा इत्येषे एव तर्कम इत्यक्षात कर्मकारकात कर्मरि वाची र्शिक्:। (पाणिनि: ४।२।६५)। एवं -- पदं थेति पधीते वा पदकः, क्रमं वेति पधीते वा क्रमक:, अभयत अनित कण । (पाणिनि: धारा ६१) । व्याकरण वित्ति अधीते वा वैद्याकरणः, व्याकरणप्रश्टात् णप्रत्ये (४१०) यस्याने इ.म्, तस्य वृद्धिः। (पाणिनिः ৪। २।४८)। बाचा तर्तवाचिकम्, अत्र वाची इत्यस्नात् करणकारकात् कर्माण वाची चिषकः, (४३१) न टंतसावित्यनेन दान्तत्वनिषेधान् (२११) विरामाभावे कुङादिनं क्यात । (दाणिनि: प्राक्षात्र । पाणिनिना प्रीक्षं पाणिनीयम्, अत्र पाणिनिना इति कर्त्तकारकात कर्माता बाची चीय:। (पाणिनि: ४।३।१०१)। एवं प्रव्यवर्माणा प्रोक्तं श्राञ्चविर्मात्रसित्यादि। श्रातीक रत्यच करणकारकात कर्भरि वाच्ये चौक:: यध्या युध्यते वासी बालीकः। (पाणिनि. ४।४।५८)। पाणिनिमते तु शक्तिः प्रहरणमस्य, यक्षिः प्रकरणसञ्चाद्रत्याकारं वाक्यम्। तिष्येण नववेण युक्ता राविः तैषी. एवं पुष्येण नतत्रेण यक्ता रात्रिः पौषी, उभयत्र तिथ्येण पृथ्येण इति कर्मकारकात् कर्माण वाची चों जते ब्रुडी. (२६०) यकारलोपे, (२५०) विस्तादीय । (पाणिनि: ४।२।३) । चित्रियः, यित्रयम् इत्यभयत्र ताद्यें हितग्रब्दयीगे च चतुर्य्यनादकारकादि इयग्रत्ययः, सूत्रे कार-कादिति तुप्रधानेन व्यपदेशा भवन्तोति न्यायादुर्ता। (३०८) स्वामी श्वराधिपती त्यभेन सम्बन्धविववायानेव षष्ठीसप्तमीविधानात्, चलाय साधरित्यत्र निमित्तार्थे चतुर्थी। (पाणिनि: ४।१।१३८-- भन सूत्रे जाती घः न तु साध्वर्षे । पाणिनि: ५।१।५) । साय्र द्गति मध्रायाः द्रति ऋपाद।नकारकात् कर्त्तरि वाच्ये थाः। (पाणिनिः ॥॥॥॥)। इ.इ. इ.ति ऋधिकरणात् कर्लरि वाच्यं णिको ऐडिकां, एवं कटाचित् भव कादाचित्कं, भाजकाण । (पाणिनि: ४।३।५३)। यामे भव: याभीण , भाज गीन:, एवं ग्रास्य इत्यत्र च्याः । (पाचिनिः ४।२। १४ ; ४।३।२५)। मुर्द्धन भवी मूर्कचः, अपत्र चीत्र कर्ते (४२४) न-लोपिनिवेध:। (पाणिनि: ४।३।५५)। नद्यां भवी नादेश:, भव खेयः, (पाणिनि. ४।२।६७)। श्रालायां भवः श्रालीयः सत्र गौयः । (पाणिनि: ४।२।११४)। नगरे भवी नागर:, चन च: (पाणिनि: ४।२।१२८)। चग्रे भव: चग्र:, घन चार:, (पाचिनि: ৪।৪।११६) । एतेषु उदाइरचेषु (२५८) यथासम्बन्ध इवर्णावर्षलोप: प्रत्यगास सेतीऽनितस क्रीया:। एवं प्रशीगानुसारेण कारकात् कर्माण कर्त्तर चवाच्ये प्रत्यया-भवनीति ।

पौनःपुनिकः, वाह्यः वाहीकः। #

### ४३१। न दं तसौ लस्त्रधें च।

(न । १।, दंश, त-सी १॥, तु।१।, भल्यथें ०।, च ।१।)।

चय।विच ये चते पूर्वं दसंद्रां∙न स्थात् तान्त-सान्ती तु श्रस्त्रवें च।

श्रारातीयः गाम्बतिकः। 💠

\* व्यख टि: व्यटिस्ख। चाराच शयम तत्, न तत् चनाराच्छ्यत् तस्य। चय चय प्रचं तिलन्। नास्ति युर्यक्षित् चैयुत्तिक्षित्। चारात्-श्यत्-विजितस्य चय्यस्य टेलें।पः स्थात् प्रकरणवत्तित् तिहितसं क्षले चि युभिन्ने ये च परे इत्यर्थः। पुनःपुनभंवः इति वाक्ये (४२८) चिक्ते. (४१६) इती, चनेन टिलीपे पौनःपुनिकः। विह-भंवः इति वाक्ये चौकं च इती, टिलीपे वाचाः वाहीक इति। एवं सायंप्रातर्भवः सायं-प्रातिक इत्यादि। चयौ किं, अंयुः चहंयुः। चारात् श्रयत्तीकदाहर्षं परस्ते दिलीपाभावज्ञापनार्थे, तेन सुष्ठुभावः सौष्ठवं, संविद्यति इस्य स्थः, एवं क्षय इति। "च्ययानां भनावे टिलीपः। चित्रक्षोऽस्य प्रति सिद्धानकौस्दी।

† तथ सथ तसी। चिस्त चर्थी यस तक्षित्। तिकि विद्विष्टे पूर्वसेति न्याया-दाइ -- पूर्व दसंजंन स्वादिति। घचेऽयौ इत्यनुवर्णते। (३१८) प्रस्वे परे र्ते-र्विक सप्तिमितिमात्रिय पद्वे भनेन निषिध्यते। भारातीय इति भारात् भव इति वाक्ये (४२६) ईये, भनेन पदलनिषेधात्न (५८) चपीऽवे अम। एवं शयत् भव इति षाकी चित्र भाषातिक इति। ये परे यथा - लच इदं लाच्यं, दिश्चि भवं दिग्रामित्यादी धनेन दानत्वाभावात (२११) विरामे परेन कुङादिः । एवं धानङ्खं मधुल्छां गीद्रुखं भीपान इमियादी क्रमेख न, दङ्ढ च घङ (१८२,१७५,१७६,२३०)। ताल साली यथा- तिइती भाव: ताड़ित्यं, भस्त्रयें तिड़त्वान् इत्यादी न (५८) तस्त्र द। एवं म्बर्भी विकार: पायस्यं घतादि, पायसं परनाव्नं, अस्यर्थे पयस्वान् पयस्वी तेजस्वी म्बादी घटान्तवात्, स्थादीयसस्परताभावादिति केचित्, न सस्य (१०२) विसर्गः । पयी किं, अंगु: चइंगु: चत्र दानलात (५३) मस्यानुस्तार:। चर्च किं, वासर्य दिसाचम् इत्यादी दालालात् (६४) विरामविद्यितं कार्यं स्थादेव । किञ्च नञा निर्दिष्ट-निवासित न्यायात भवदीयमिलारी दानलात् (५८) जब, भंग दलारी (५३) "बब्ययतीर्ष्यीत्तरपदीदीच्यग्रामकोपध-नस्यानुस्त्रारः। पाणिनिः १।४।१८,१६। वेधे वैद्याच्छी विप्रतियेधेन'' इति वार्त्तिकस्रा

## ४३२। यद्गीऽद्गोऽनीने।

(भक्र: ६।, भक्र: १।, भनीने ७।)।

त्राक्तिकं। ईनेत दाहीनः। \* सपाञ्चालकः यर्षपाञ्चालकः। व

दीवारिक: सीवरं सीवं सीवस्तिक: सीवाद्सदवं वैयल्कसं शीवं शीवनं सीयक्रतं सीवं सीवाध्यायिकं सीवग्रामिकं नैय-ग्रोधं। एकेति किं, स्राग्रोधमूलिकं। ग्रीवापदं खापदं, नैयङ्गवं न्याङ्गवं। ऋागंणिकं। क्ष

<sup>\*</sup> न दूंनोऽनीनस्तिसन्। चाइन्शब्दस्य चाइ: स्थात् घिषि ये च तहिते, न तु र्टुने प्रयो चं। लन्तलात् पास्त्रयें इत्यस्य मान्त्रितः। प्रक्ति भवं प्राक्तिकं (४२८) चिक्ते, भनेन प्रकादेशे, (४१६) ब्रज्जि:। ईने तु, दयोरक्रोर्भनः द्रति तद्वितापैनिषयदिगौ (४२८) ईने कते, चक्रादेशीनवेधान (१३०,२४८) दाहीन:। पाणिनि: ५।१।०८, ८८, ८० : ६।४।१४५ ।

<sup>+ (</sup>४१६) सुपञ्चालादी तुदाहरति—सुपञ्चाले (देगे) भव:, श्रर्वपञ्चाले भव:, उभयव (४२८) कण्, परपदस्य ब्रेडि:। सुपञ्चालादिन् —सुपञ्चाल सर्वपञ्चाल प्रर्देपञ्चाल पूर्व्वपञ्चाल देविषपञ्चाल उदारपञ्चाल गुरुलघु पितृपितासह वातपित्त वातग्लेम एकपुरुष पूर्त्वपुरुष पूर्व्वद्वायन चपरदायन दिसंबसार हिन्दं निसप्तति दिनिष्क दिस्वर्ण भी छपद भद्रपद इत्यादि। अत्र द्रष्टव्यम्--पाणिनी: ७।३।१०--१८ स्वाणि उत्तरपद-इद्यार्थकानि ; ७३।१८ — ३१ स्वाचि खभयपदृष्ठकार्यकानि । तम प्रथमीकानि स्वाचि वीपदेवसर्तसुपञ्चासादिगणघटकानि; श्रेषीकानितुतन्त्रते सुमगादिगणप्रयोजकानि (४१६ सूत्रं द्रस्थास)।

<sup>🛨 (</sup>४१८) बारादीबुदाहरति—कारै नियुक्त: दीवारिक:, (४२८) चिक:, वस उम, तस्य विदि:। दार दिति अपजनास्य ग्रद्भात् रिफानास्य न स्थात्, तेन दारि नियुक्तः हारिक इति। (पाचिनि: ४।४।६८)। खरीभवं स्रोवरं, स्वरमधिकत्य क्रतीयन्यः सीवर: इति वा, चाः, उस्, तस्य बिद्धाः। (पाणिनि: ४।३।८०)। एवं सर्वत्रः। स (खर्ते) भवं, सीवं, सत्र खर्गब्दात् चाः, (४३०) टेखींपः। (पाबिनिः ४।३।२४,५३) खलोति वित सीवितिकः, खिलायणा स्थानया विति, विद्यति इति वा-णिकी,

# ४३३। विकारसङ्घभावेदंश्वितखार्थादौ।

(विकार-सार्थादी श)।

एखर्षेषु चते त्याः स्युः।

हेकी विकार: हैम: त्राप्य: त्राक्तिय:, भित्ताणां समूह: भैतं न्नाक्रं गाणिकां राजकां, गुरीभीव: गौरवं यौवनं साम्य वैरूप्यं राज्यं सीहाई, विणोरिदं वैज्ञावं बादीयं माघवनं गौवनं। \*

टेलींप:। खाद सदना कर्त. खादसदैनि संकर्तना. (भक्तं) सीवादसदनं। व्यक्त भी-ऽव्यत्पन्न: व्यल्कासे भवं वैयल्कास। केचित्त व्यल्कासग्रव्हं द्वारादी न पठिना ते पुन:, विगतीऽर्क: व्यर्क: तं स्थित व्यर्कसः, किपिलिकादिलात रस्य लः तत्र भवः वैयल्कस इति चाद्यच: स्थानजातलात् (४१७) यस्य इस् तस्य बहिरिति बदन्ति। य: (परदिने) भवं शौवं, को टेलेंगि:। शौविभिक्तलमिति अहिकाव्ये—्य: परदिनं तेकते गच्छतीत श्वस्तिक: (११६) कामत्यय: श्वस्तिक एव श्रीविक्तिकसस्य भाव इति व्याख्या, भन श्वसम्बद्धः वस्य उम् । मुनि भवं भौवनं, (४२४) भविकारक्षं परे न-लोपनिषेधः। (१८४) खयुवनधंगामिति तङ्गिपरि वर्जनात न वस्य छः। सप्राकृते भवं स्फैयक्ततं, स्पाः खादिरः खड़गः, तेन क्रतमिति त्तीयातसपुरुषः। स्वे (धने चाला (न वा) भवंसीवं। स्वाध्याये वेदे भवंसीवाध्यायिकां वेदाध्ययनं। स्वयासि भवं सौवगानिका । खान्य हणेनैवेष्टिसिखी खाध्याय खगामयो ग्रंडणं चन्यस्टादिस्थितस्व शब्दस्य निवेधार्थे, तेन खगन्दसद सामन्द्रं, स्वीदरं पूरवतीति स्वीदरिक इत्यादि। नागंधे भवं नैपयोधं, न्ययोधी वटहच:। एकंकि किं,न्ययोधमुले भवं न्यायोधसूलिकन। चापरे भवं शौवापरं चापरं. न्यङी (स्रो) भवं नैयङ्वं न्याङ्गवं, उभयच विकल्पेन दस्य उस्। ग्रनां गण: अर्गण: अर्गणे भवं अर्गाणिकां, (पाणिनौतु अर्गणेन चरतीति यागणिक: यमणिक इति ४।४।११) भन (४१८) यादेखिकारादी तिस्ति परे निष्धात न वस उम । इकार कि, महंदायां भव: शौवादए: इत्यादी उम स्थादेव। अव (३४) मनीवादिलात् (पाचिनि: ७।३।६—"पदानस्यान्यतरस्थाम'') अकारदीर्घ.।

\* खस पातानीऽयं: प्रभिषेयः खायं:, खार्य प्रादिश्य म खायांदिः। निकान्य सहय भावय इदम् प हितस खायांदिश समाद्रारं तिकान्। प्रकृतेरवस्थान्तर निकारः, (पाणिनि: ४।२।११४), सङ्घः समूहः, (पाणिनि: ४।२।२०), भावोऽसाधारणवर्षः, (शब्दम्बन्तिनित्तं भावः, प्रकृतिनम्यवो धेमकारो भाव इति वा) (पाणिनि: ४।१।११६), इदिनिति सम्बन्धीपल्यक्षं, (पाणिनि: ४।१।४)

### 838 | स्टूरो ये। (स्त्।रा, र: रा, वे का) ।

पित्रंग्र। 🕸

# ४३५ । इन्षन्धृतराज्ञामुङ्लोप: **ष्णे।**

(इन्-यन्-धतराज्ञां ६॥, उङ्खोपः १।, खे ०।)।

वार्त्तन्न पौणां धार्त्तराचां। एषां किं, सामनं। 🕆

स्वार्थः प्रक्रतार्थ।नितिरिक्तः ("स्वार्थं 'उपसंख्यानम्' इति वार्त्तिकम्)। एषु अपरेषु ते पूर्वीता: (४१५) थि को य का कायन कीय किन का, (४२८) कीन नक्य, एते एकादश प्रत्ययाः सेतः भनितम् स्युरित्यर्थः । मतापि यस्मान् ऋव्दात् यस्मित्रर्थेयः प्रत्ययः सेत् चनित्, वा स्थात्, एतत् सर्व्ये प्रयोगातुसारेणेव क्रीयं। चादिपदेन "सास्य दंवता" (पा. ४।२।२४), "तदस्य पर्ण्यम्" (पा. ४।४)५१), "भ्रिल्पम्" (पा. ४।४।५५), "प्रहरणम्" (पा. ४।४।५०), "शीलम्" (पा. ४।४।६१), "तत्र नियुत्तः'' (पा. ४।४।६८), "'तस्येत्ररः" (पा. ५।१।४२) द्रत्यादयी वहवीऽर्या बीध्याः। हैम इति चनेन खप्रत्यये, (४१६) हिंदि: (३३७,२५८) नस चकारस च लीप:। एवं चपां विकार: माप्य: चत्र चारः। चम्रे विकार: चाग्रेयः, चत्र चीयः। भित्राचां समूहः भैचं (पाणिनि: ४।२।३८), चन्नां समूद: चान्नं, (वार्त्तिकम्), चन चौ (४३२) चन्नादेश:। गणिकानां समूह: गाणिकां, चन चाः। राज्ञां समूह: राजकं, चन कच्। यूनां भाव: यीवनं, (४२४) ऋविकार-च्ये परे न-सीपाभावः, (१८४) सञ्जितवर्जनात् न वस्र **उ:। (पाणिनि: ५११:१३०)। समस्य भाव: साम्यं, विष्ठपस्य भावो वैष्ठ**यं, उभयच च्याः। (पुरीहितादिगचान्तर्गतस्य) राज्ञी भावः (पाणिनिमते भावः कमा वा) राज्यं (सप्ताइत्वचनं), व्याप्रस्यं, (३३७, २५८) नस्य चनारस्य च लीप:। सुद्धदी भावः सीहाई पा:, (४१६) सुभगादित्वात् समयपदव्यति:। वैचाविमाणव पा, (११७) छवर्णस श्रीकारे, (३५) भव्। तव इटं लटोयं, भव श्रीय:, (२१५) लटार्टश:। मघवत दूरं माघवनं, (१८१) तुङ्पचे माघवतं, ग्रन दरं शीवनं, छभयव पी, (१८४) न वस्य उ:, (४२४) चविकारची न खोपनिषेधसः।

च्यतारो र: स्थान निज्ञत-यकारे परें। पितृरिदं पित्रंग, (४३३) भनित् चाः।
 (पितृरागत इति तुपाणिनि: ४।३।७६)। ये किं, पैतृकं, सेत् कण्।

† इन् च घन् च धतराजन् च तेषां। घन् इति घन् भागान्तः, सेन उचन्-पूषन-प्रश्रतीनां ग्रहणं। (११७) सदालीऽस्नोप इत्यनेनैव चान्नोपे सिन्ने इदंनियसार्थे, तेन

### ४३६ । युषादसार्त्वनारां युषाकासाक-तवकममकाः व्यागीने।

(युषाद---मदां ६॥, युक्ताक -- ममकाः १॥, पाणीने अ)।

यीषाकं यीषाकीणं, श्रास्नाकं श्रास्नाकीनं, तावकं तावकीनं सामकं सामकीनं। \*

सूर्याय हितं सौरीयं त्रागरतीयं त्रात्मनीनं। चोर एव चौरः त्रैलोकां रामकः। १

- युपाद अस्माद लाद सद् एवां स्थानि क्रमात युपाक अस्माक तवक समक एते
   अप्तियाः स्यु से यो ने चपरे । युपाकि निर्देशित वाको भी यौने च के लेकि युपाकि दिशे इकी यौमाक यौमाकी थाँ। एवं आस्थाक अस्माकी नं। तव ददं इति वाको भी सीने चयुपाद एक लात् (२१५) लदादेशे, अनेन तवकादेशे इकी तावकं तावकी नं, एवं सामकं सामकी नं। सित्यां सामकी (क्रन्दिन), सानिका (क्षोकी)। पाचिनिः अशि १,२,६।
- † (४३३) दितार्थे जदाहरति सौरीयमिखादि । स्यांग दलकात् योथे विभिन्नलोपे, (२६०) यखीपः । एवं भागसीयं । भान्नाने दितं भान्नाने , भव योने (४२४)
  न-लोपनिवेधः । (पाणिनः ५११८ः ६ ।४११६८) । स्वार्थे जदाहरति, भीर दित ।
  एवं चिलोजी एव चैलीका भव योग इडी (२५८) ईकारलीपः । स्वार्थप्रत्ययानाः
  पूर्व्यालङ्गा एवेति नियमेऽपि भस्य क्षीवलमभिषानात् ; भतएवोक्तां कचित् सार्थिकाः
  प्रत्यया जिङ्गव चनान्वतिवर्षन्ते । राम एव रामकः, भव कण् । कप्रत्ययेऽन्यार्थेऽपि
  भवति, यथा—भक्ताने जुत्सिते चैव संज्ञायाननुकम्पने । तद्युक्तनीतावव्यत्ये वाच्ये
  प्रस्ते च कः स्वृतः ॥ इति प्राञ्चः । तद्युक्तनीतौ भनुकम्पायुक्तनीताविव्ययेः । पाणिनः
  भक्ताते" (५।३।०३), ''जुत्सिते" (७४), ''संज्ञायां कन्" (०५), ''भनुकम्पाय्यम्"
  (०६), ''नौतौ च तद्युक्तात्" (००), 'भक्ते" (८५), ''क्रस्ते" (८६)।

भी परे एवामेव जङ्कीपः स्थान नान्यस्य इत्यर्थः। व्यक्त इदं इति वाकी (४२३) भी कते व्यक्तन इत्यस्य जङ्कीपे, (१८८) क्रस्टाने घः. (४१६) क्यायची वृद्धिः, वार्त्तघः। एवं पूण इदं पीणां, एतराक इदं धार्मराज्ञं। जक्कानु क्रपत्यार्थे भी, भीक्य इति (४२४) पूर्वमुदाइतम्। एवां किं, सास्त्र इदं सामनं, भाव पूर्वेणापि (११७), जङ्कीपो न स्थान्। सर्व्यंव क्षितकार-भी न कीपाभावः (४२४)। पश्चिनिः ६।४।१३५।

### ४३७। केऽकः स्वो हेत वा।

(के ७।, भक: ६।, स्त्र: १।, क्षे ७।, तु ।१।, वा ।१।) ।

कन्यका, सुकन्यकः सुकन्याकः । 🕸

श्रिवी देवता यस्यासी ग्रैवः, शाक्तेयः। 🌣

8३८। लतौ भावे। (त-तौ १॥, भावे अ)।

साधुलं जड़ता, पाचकलं, बाह्मणीलं । 🕸

अन्नः प्रत्याद्वारस्य स्वः स्यात् कियि परे, बहुती ही तुवा। कत्या एव कत्यका, भव भिनित्किया कते, भनेन इस्ते, स्वार्थप्रत्याना चिक्रिः। एवेति (२४८) भाष्। एवं स्वयात्विका रासो कता, सेनानिका द्रत्यादि । श्रीभना कत्या यस्यिति बहुती ही सुकत्यकः सुकत्याक, भव वा इस्तः । भक्त इति किं, नौरेव नौका द्रत्यादि । पाणिनिः ७।४।११,१४,१॥।

इसे परेऽपि कृचिन् इस्ती वक्तव्यः यथा—कालिदासः, वेदेश्विन् , क्षेतिकदन्तुरितं, नाडिनचनभित्याद्यः प्रयोगानुसारात् ।

- † (४३३) ऋादिपदस्य उदाइरणमाइ भैव:, ऋत णः। (पाणिनि: ४।२।२४)। एवं मक्तिरेंवता बस्यामी क्षाक्तेय:, भव भोयः। एवं माक्तः वैष्णवः गाणपत्य इत्यादि। प्रयोगानुसारेण ऋषेविक्रेषे तिखित्रान्यया भविष्यनौत्यादिपदेन स्वितमिति।
- ‡ स्यायतात् त त इति इयं स्थात् भावेऽषें। चिभिषात् तात्तस्य क्रीवतं, तात्तस्य च स्वीतं स्थात्। भावसु प्रवितिनिमिनं, येन घभ्मंण चयं गौरित प्रतीतिः स्र धम्मं गीर्शतः प्रतीतः स्र धम्मं गीर्शतः भाव इत्यथः। साध्याः भावः साध्यं, लड़ाया भावः लडता, उभयव (३२०) पंवडावः। पाचिकाया भावः पाचकतं, चव (३२०) पंवडावः। पाचिकाया भावः पाचकतं, चव (३२०) पंवडावः। सेथिलत्वित्यादिः प्राच्च भावः सेथिलत्वित्यादिः प्राच्च भावः संद्राच्यात्यं (३५०) चाल्यात्यः इत्युक्तः न प्वडावः, एवं दत्तात्व-मियादि। त्र त इत्युभयस्य भावविद्यतः प्राच्याद्यस्य च सामान्यविश्वभावाभावात् वाध्यवाधकत्वाभावे लड्स भावः चड्ने चड्ने चड्ने गड्ने गुर्गता गौरविम्यादि स्थादेव। चव वक्रव्यम् —'दिवात् तत्वं' (५।४।२०) इति पाचिनिम्वं पदि पदिवता इति सार्थे तत्रप्रयः। पाचिनः ५।१।११८।

### ४३८। **जीकोऽर्घात् सः ष-स्ति।**

(लि-इक: प्रा, च-घांत प्रा, स: ६।, ष: १।, ति ७।)।

म्रा-र्घात् लीकः सः षः स्थात् तिइते ते। यजुष्टं, र्घातु गीस्वं।क

88०। चृत्सास्ये। (वृत्।रा, साम्ये०)। उपमानार्थे चृत्स्यात्। कणा दवकणावत् पं

88१ । मतुरस्टार्धे । (मतः ११, अलि-अर्थे ०।)। श्रीरस्ति यस्यासी श्रीमान्, विदुषान् दीषान् । क्ष

अं लिस् लीक् तस्त्रात्। नालि घें। यत्र सीऽर्धलस्त्रात्। दीर्घवर्णात् लिङ्गस्र दकः परस्य सस्य षः स्थात् निज्ञत-तकारि परे। यलुषी भावः यलुष्टं, एवं इतिष्टं। निरी भावः गीस्त्वं, एवं घूल्वं, श्रवं (२२०) दीर्घं, रीफस्य (१०२) विसर्गे, (१५) विभगस्य सकारे, यल्यप्राप्तौ दीर्घपरत्वाद्विषेषः। लीकः किं, वसुक्तरं। पाणिनिः प्राहा१०१।

<sup>†</sup> समस्य भाव: साम्यं तिस्मिन्। स्थाद्यन्तात् चृत् स्थात् उपमानेऽयें। चकारोऽ-स्ययार्थ: (८४)। क्रणा इय कृष्णवत् भिवी भातीति भेवः, एवं कृष्णमित्र कृष्णवत् भिवं सन्ते इति भेवः। एवं सन्ते विभक्त्यन्तात् चृतपृत्यये क्रिलेकः। उपमानं क्रियाविभेषणीय-मेव, तेन पुत्रेण तुल्य: स्थूल इत्यादौ क्रियाभिज्ञसास्य न स्थात्। पाणिनिः ५।१।११५, ११६,११७। एषु मृत्रेषु द्वितीयादतीयावडी सभीविभक्यन्तादेव वितः स्थादिस्कृतम्।

<sup>‡</sup> पति पथें। यस यसिन् वा सः पस्यथें विद्यमानस्यस्मसिन्। प्रयमान-पदात्, प्रति पस्य पिसन् वा इत्ययें, (पस्य पिसिनित् । प्रतिन्त्रे । प्रतिन्ति प्रतिन्त्रे । प्रतिन्ति । प्रतिन्ति प्रतिन्ति । प्रतिन्ति प्रतिन्ति । प्रतिन्ति । प्रतिन्ति । प्रतिन्ति प्रतिन्ति । प्रतिनि । प्रतिन्ति । प्रतिनि । प्रतिनि । प्रतिन्ति । प्रतिनि । प्रत

### ४४२। मो**ङ्म-भ्र**पात् वतु:।

(म्-भ-छङ्-भ-भ-भाषात् ५।, वतु: १।) ।

मकारो ङोऽवर्षों ङो मकारान्ता दवर्षान्तात्, भाषान्ताच, वतुः स्यादस्ययें । स्वस्त्रीवान्, यूयस्तान् भास्तान्, किंवान्, ज्ञान-वान् विद्यावान्, विद्युत्वान् । \*

## ४४३। सङ्मेधास्मःयात् विन् वा।

(स्रज्-मेधा-चम्-मायात् ५।, विन्।१।, वा।१।)।

### स्रग्वी मेधावी तेजस्वी मायावी। पत्ते स्रग्वान् इत्यादि। १

"न कर्म्यारयान्यत्वींगी बहुनी ६ वेटवेंगिति पत्तिकरः" इति प्राञ्चः, तेन, भीभना बुद्धिति कर्म्यपारंगे सुर्वुद्धरत्वयस्थित सुर्युद्धमान् जन इति न स्थान, भाभना बुद्धि-र्थस्थासी सुर्युद्धिति बहुनी ६ भैव तद्यंप्रतिपादनात्। मत्वादीनां स्थानमाङ दुर्ग-सिंहः, सूम-निन्दा-प्रश्नंससु नित्ययोगेऽतिश्रायने। संसर्गेऽकि विवचायामभी मत्वादयो सताः॥ यथा—भूषि गीमान्। निन्दायां पाषी। प्रशंसायां कपवान्। नित्य-योगे सीरिभी हवाः। कतिश्रायने उद्श्वती कन्या। संसर्गे दृष्णी पायः।

\* मच घर मी, मी उडी यथोजी मोडी, मोडी च मच घर भाग् धित तथाता। अध्य प्रयादार:। जाजीर व्यक्त, यशीऽ व्यक्त, भा घर्षस्य, किम् घर्षस्य, कान मस्त्रस्य, विद्या घर्षस्य, विद्या घर्षस्य, विद्या घर्षस्य, सर्वेत घर्षान् वा, इति कमिष वाकानि। यशस्यान् भास्तान् विद्यतान् एतेषु (४६१) हानात्वनिवेधात् न सस्य विसर्गः, न च (५८) तस्याने द । पदमाधनन्तु पूर्वेवत्। पाणिनि. ८। २। ८, १०।

कसुर-वेतस नड़ादीनाम् चकारखोषी निषात्यः, तेन कुसुदान् वेतस्वान् नडुान् इस्यादि । (पाणिनिः प्राप्तः । एतन्त्राते द्यतुष्) । राजन्वान् इस्यच न-खोषाभावो निषात्यः । (पाणिनिः प्राप्तश्वे) । उदन्वातुदंधौ चर्ये निषात्यः । (पाणिनिः प्राप्तः ) । चर्षोवन् चक्रौवत्-चर्यांखदादयद्य निषात्याः (पाणिनिः प्राप्तिः) ।

† सक् च मेधा च चाम् च नाया चिति समाइ।रे तक्यात्। एथीऽस्वर्थे विन् वा स्थात्। पचे पूर्वेण वतः। सक् चस्यस्य सन्यी, चव दान्ततनिषेधाभावात् विरामे परे (१११) कुडः, ततः (१८८) दीर्घः, (११८) न लुप्। एवं मेधा चस्यस्येत्यादि। चामग्रीऽस्वस्य चामग्रावीति निपातनात् चकारस्य चाकारः। पाणिनिः ५।२।१२१। "चामग्रस्थापसंख्यानं दीर्घय" इति वात्तिकच्या

### **८८४। नैकाजादिन् वा।**

(नैकानात् प्रा, इन् । १।, वा । १।)।

यनेकाचीऽवर्णान्तादिन् वा स्याद्त्यर्थे। ज्ञानी ग्रिखी। \*

### ४४५ । शं-कंग्यां य-यु-त-तु-ति-व-भा: ।

(ग्रं-कं स्था ५॥, य--- भाः १॥)।

ग्रंय: ग्रंयु: गन्त: यन्तु: ग्रन्ति: ग्रंव: ग्रंभ: । 🌵

88ई। गी त्या मेधा दन्त का गड द्युवल बिल पर्व चूड़ा फेन लोम पाम प्रच्या मधु केश रज: फलोणी शृङ्ग निद्राशी वाता दे— िर्मन् सेरोरेर मोलेभ तलेल श्रन्य र व वलेन यारका ल्लंकिन् वा।

(गी -वातादी: ॥।, मिन्-किन् ।१।, वा ।१।) ।

<sup>%</sup> न एकी नैक:, नैकीऽच्यस्य संनेकाच्, नैकाचासी भवेति नैकाज: तस्मात्। प्रानम् प्रस्यस्य ज्ञानी, शिखा प्रस्यस्य शिखी, एवं माखी दस्ती दस्त्रीदः। पर्वे प्रानवानित्यादि। नैकाच: किं, संधनम् प्रस्यस्तिन स्त्री, परन्तु स्रवान्, खामीति स्यं वस्त्रीतः। पाचिनि: प्राराहर्प्र। "दिनिठनीरिकाचरात् प्रतिवेषः" दिति वार्त्तिकः।

<sup>†</sup> अम् कम् इति मानाव्ययाथाम् एते सप्त प्रवयाः स्युः अस्त्यों। श्रं कत्यार्थं वियतेऽस्य श्रंयः, भव टिलीपाभाववीनं (४३०) द्रष्टव्यम् । एवं (४३१) नजा निर्दृष्ट- मिनलिमित न्यायात् दान्तलिमिधाभावे (५०) मस्यानुस्वारः । एवं श्र्युरिलादि । कं वारिणि च मुर्बनीत्यमरः । पाणिनिः भारार्थः भव द्रष्टव्यम् — वीधलिङ- भकाशिते अष्टके पाणिनीये शिवरामप्रकाशितायास्य वैयाकरणि ज्ञान्तकौ सुद्यां वप्रवयी वर्म्यंत्वेन खिखितः, तारानाथरुकं वास्थितिप्रकाशितायान् मिडान्तकौ सुद्याम् अन्तःस्य- विशितः , तारानाथरुकं वास्थितिप्रकाशितायान् मिडान्तकौ सुद्याम् अन्तःस्थ- विशितः प्रभेदः । "यो वः प्रवयस्थितः" इति नियमान् भनःस्थप्य भवितुमर्हति ।

एभ्य एते क्रमात् स्यः अस्यर्धे वा। गोमी। क्ष

### ४४७। नाम्त्रस्यर्थेऽचो र्घः

(नासि ७), पर्स्ययं ७।, पत्तः १।, र्घः १।) । †

स्वामी, त्यपसः, मिधरः' रिधरः, दन्तुरः, काण्डीरः श्रण्डीरः, युमः दुमः, बलूनः वातूनः, बिसः तुन्दिभः, पर्वतः मरुत्तः, चूड़ानः मांसनः, फिनिनः पिच्छिनः, लोमगः रोमगः, पामनः श्रङ्गना, प्राज्ञः श्राजः, मधुरः कुच्चरः, लेगवः मानवः, रजस्वना कषीवनः, फिनिनः विर्धिणः, जणीयुः श्रष्टंगुः, श्रङ्गारकः वन्दारकः, निद्रानुः, द्यानुः, श्रर्थसः वैजयन्तः, वातनी श्रतिसारकी। \$

क्रमीयथा----

कारुड द्यु वल विल पर्व्य चुडा फीन सीम दन उर् ईर म जल इभ प्रजा मधु केश रजस फल ऊर्का ग्रङ्क निद्रा पर्श्वस वात वस 37 य चारक बातादेरिलादिपदं सर्वेत्र योज्यं। अब यद्यपि सामान्येनीक्षं तथापि अर्थविभेषे ज्ञातर्यः। गावी विद्यन्तेऽस्य गीमी, पर्व गीमान्। पाणिनिः ५।२।११४ ; ४।२।८० ; "मेधारणा-भ्यामिरब्रिरची वज्ञाची'' दति वार्त्तिकाम ; ५।२।१०६ ; १११ ;१०८ ; "बलाचील:" इति वार्त्तिकम्; प्राराश्वरः; "पर्व्यमब्ह्यां तप्" इति वार्त्तिकम्; प्राराट६; रहः १००; १०१; १०७; १०८; ११२; ''फलवर्डास्वामिनच्'' इति वार्त्तिकम्; प्राशश्यक्ष, "प्रज्ञवन्दाध्यामारकन्" दति वार्त्तिकम्; निद्रालु: द्याल्रिति निपूर्वद्राधातोः दयधातीय चालुच्प्रत्ययेन सिश्वं (पा. शरारभ्रः) न तु तिश्वतप्रत्ययेन ; प्रारा१२०; १२८।

<sup>🕂</sup> घची दीर्घ: स्वात् अस्वर्थप्रत्ययेषु, नास्त्रि वाच्ये । पाणिनि: ६।३।१२०।

<sup>‡</sup> स्त्रीऽस्त्रास्त्रीति स्वमसीति वा स्व इत्यमात् मिन्, घनेन दीर्घः, स्वामी ईत्ररः। ढणम् पस्यस्य ढणसः, एवं नेधा पस्यस्य मेधिरः इत्यादि वाकां। यवासभावं (२५०) इत्यांवर्णलीपः। सर्व्यंत्र पक्षिधानान् स्त्रीपुंतिका-व्यवस्था।

### 88८ । वाग्मि वाचाट वाचालाः।

(वाग्मि - वाचाला: १॥)।

वाचीऽस्यर्थे एते निपात्यन्ते। \*

### 88र । जन-खलादि-गो-रथ-वातात् तेन्-चकडोलं सङ्घे।

(जन--- बातान ॥।, त-इन्-च-कडा-जलं १।, सद्दे ৩।)। '

जनता बन्धुता, खिलनी इलिनी, गीता, रथकद्या,वातूनः । १

एतिह्वानि — चूड़ादिलान् — ('सिमादिस्यय'' इति तृपाणिनिः ५।२।८०) मांमलः भंगलः पांग्रलः स्वामलः पिङ्गलः कपिलः कष्टूनः पृथुलः पण्यलः मञ्जलः स्टुलः चटुलः पेग्रलः ग्रकलः तृन्दिलः भीलः कुम्रलः घारालः भीतनः पृप्कतः श्रम्भलः। रीमादिलान् — कपिमः कर्कमः गिरिमः। पामादिलान् — वामनः दटुणः लक्षणः। प्रज्ञादिलान् — वार्षः भार्करः सैकतः वैद्यः वाभवः। मध्वादिलान् — पैषिरः जषरः पृप्करः सुखरः खरः नखरः पाखुरः बन्धुरः कुम्ररः नगरं। केमादिलान् — विषवः राजीवः गाण्डीवः भाववः सिण्यः हिर्ग्यवः। रजभादिलान् — दन्तावलः श्रित्वावनः पर्वदः जन्नस्वः भाववलः पुत्रवलः जन्नस्वः। एलादिलान् — मालिनः। जर्णादिलान् — मालिनः। जर्णादिलान् — मालिनः। निद्रादिलान् — तन्द्रालः लक्ष्यालः श्रद्यालः क्रपालः हृदयालः, भीतालः खणालः इस्यालः स्वादिलान् प्रिभीगानुसारान् भीयानि।

\* वाच्यान्त्रस्य स्थाने एते निपात्यन्ते भारत्यें। निपाती द्वार्थविशेषे इति वास्मीति प्रशंसायां, वाचाटवाचाक्षो निन्दायां, बहुसाषित्वादस्ययं इति। ''यो हि सस्यग्वह भाषते स वास्मी''। यो तुकृत्वितं वहु भाषेते तो वाचाटवाचानो । च्यतएव पाणिनौ (५।२।१२४,१२५) स्वहयं, परस्वे च ''कुत्वित इति वक्तव्यम्'' इति वार्त्तिकम् ।

† जनस खलस तो आही यस स जनखलादि:, सच गौस रयस वातस तत्तसात्। तस इन्च चस कहास जलस तत् । समूहार्यं जनदिनः खलादिदिन् गोमन्दात् वः रयात् कदाः वातादृलः स्वादित्यधः। जनानां समूहः जनता, एवं वन्धता गजता। स्वानां समूहः खिलनी, एवं इलिनी विधिनी पिदानी कुसूदिनी। जनादिः खलादिस प्रयोगती क्रेयः। गवां समूहः गोवा, रथानां समूहः रथकदा, वातानां समूहः वात्तः। जलप्रस्वानस्य पृंस्तम् भयेषां स्वीत्यस्य मिधानात्। पाणिनिः ४।२।४३, ५०,५१; 'वातात् समूहे च' इति 'खलादिक्यः इतिः'' इति च वार्षिकस्। अन्त रथकद्या इत्यपि पाठानरं द्वायते।

### ४५०। सङ्ख्याया डट् पूरणे।

(सङ्गाया: ५।, उट् ११।, पूर्ण ०।) ।

एकादयानां पूरणः एकादयः। 🕸

### ४५१। नोऽसङ्ख्यादेर्मट्।

(न: ५१, भरहारि: ५१, मट् ।१।)।

असङ्गादेनान्तसङ्गाया मट् स्यात् पूर्णे। पश्वमः। 🌵

८५२। तमट् षष्ट्यादेः। (तमट् १११, षष्ट्यादेः ५१)।

श्रसङ्घादेः षष्ट्यादेः पूर्णे तमट् स्थात् ।

षष्टितमः सप्ततितमः। सङ्गादेसु एकषष्टः। ईः

### 84्३। शतादि-मास-संवत्सरात्। (\*)।

एभ्यस्तमट् स्थात् पूरणे। यततमः एकयततमः, मासतमः

संवसरतम: । §

<sup>•</sup> सङ्गावाचकेस्यो उट्स्यान् पूर्ण । उटावितौः श्वकारस्थितिः, डिस्तान् (१२६) टिकीपः, टिस्तान् (२५०) ईप् । पूर्यंते सम्पद्यते भनेनेति पूरणः करणेऽनट् । दशपर्थं- नानां विश्वपप्रस्थिन वाधितलान् नान् विहाय उटाहरित, एकादशानां पूरणः एकादशः इति, एकादश सङ्गा धेन करणेन पूर्णं भवति स एकादशः पुतः, दशपुत्रेभ्यः पर- इत्यर्थः। एवं दादश इत्यादि । स्त्रियास् एकादशो इत्यादि । पाणिनिः प्राराधः

<sup>+</sup> सङ्कार धादिर्यस्य स सङ्गादिः, न सङ्गादिरसङ्गादिसस्यान, न प्रत्यस्य विशेषणं। पञ्चाना पूरणः पञ्चमः (११८) नस्य लुप्। टिस्नान् (२५०) पञ्चमौत्यादि। एवं सप्तमः घष्टमः नवमः दशमः। धसङ्गादेः किं एकादशः द्वादश द्वशदि। एषां सुख्यानाभिव ग्रह्मणं, तेन घतिपञ्चानाः पूरण द्वादौ न स्थान्। पाणिनिः ५।२।४८. ।

<sup>‡</sup> परिरादिर्धस्य म प्रधादिलस्थात्। षष्ट. पूरणः, सप्ततेः पूरणः। एवं जनपष्टितमः, स्र्थोतितम इत्यादि। एकपष्ट इति (४५०) उट्। पाणिनिः धाराध्रः।

<sup>्</sup>र १ प्रतादिय मास्य संवत्सरय तत्तकात्। प्रयक् योगात् असङ्गादेरिति

### 848 | विंशत्यादेवी | (विंशत्यादेः प्रा, वा ११)) !

विंगतितमः विंगः, त्रिंगत्तमः त्रिंगः। \*

### ८५५। चतु:-षड्-डित-क्रिययात् घट्।

(चतु: - कतिपयात् भी, बट् ।१।)।

चतुर्धः षष्ठः कतियः कतिपययः । 🌵

# ८५६। बद्ध-गण-पूग-सङ्घातोस्तिषट् तलोपश्च।

(बहु-मती: ४।, तिबट्।१।, तसीप: १।, च ।१।)।

बहुतियः यावतियः। 🕸

नानुक्तंते, तेन सङ्गादिश्वीऽसङ्गादिश्वी वा एश्व इत्ययः। श्रतस्य पूरणः, एकश्रतस्य यूरणः, नासस्य पूरणः, संवत्सरस्य पूरणः। एवं एकमासतमः एकवत्सरतम द्रत्यादि। पाणिनिः प्राराप्रकः।

- \* विंगतिरादिर्धस्य म तसात । चादिपदेन नवतिपर्थनं व्यवस्थीयते । सङ्गादे-रसङ्गादेवां विंग्रत्यादं नमट् स्थादा पूरणे । विंग्रते: पूरणः विंग्रतितमः, पर्धे (४५०) डट्, (१२६) तेलींपः, (२५८) चकारलीपः, विगः। एवं विग्रत्नमः विंगः इत्यादि । सङ्गादं सु एकविंग्रतितमः एकविंग्र इत्यादि । पूर्वेण (४५२) सङ्गादि-वर्जनेऽपि, चनेन सङ्गादेः पत्यादेः पूरणे तमट् वा वक्तयः, तेन एकपष्टितमः एकषष्ट इत्यादि । पाणिनिः ५।२।५६ ।
- † चतुर् च षष् च उतिथ कतिपयय तसमात्। उतिथिति प्रत्यः (५०८), तेन तदनाना किति-यित-ततीनां ग्रहणं। एथः पूरणे थेट् स्यादित्ययः। भतुणां पूरणः चतुर्थः, एवं षष्ठ इत्यादि। विद्यमानिविधिक्तिकाना पदलं स्वाभाविकं, लुप्तविभक्तिकानाना पदलं स्वाभाविकं, लुप्तविभक्तिकानाना पदलं स्वाथात्, चतुर्थः पष्ठ- इत्युभयच पदलाभाविन विरामाभावात् (१०२) रसान विसर्गः, (१५५) पस्य च न उदिति। पाणिनिः प्राराहरू।
- ‡ बहुय गणय पूगय सङ्घ पात्रय तत्त्वात । अतुरिति प्रत्ययः (५०८), तेन यावत् तावत् एतात्रन कियत् इयत् इत्येतेषां ग्रहणं। एभ्यः पूरणे तियट् स्यात्, तियट् परे श्रव्यवहितपूर्ववर्ति-तकारस्य लीपय इत्यर्थः। बह्रनां पूरणः इत्यादि वाकः। पार्विनिः ५।२।५२,५३।

# 840। दितीय हतीय तुर्ये तुरीया:। (१॥)।

एते निपात्याः। #

### ४५८। सङ्घाया धाच् प्रकारे।

(सङ्ग्रायाः ५।, भाच् ।१।, प्रकारे ७।)।

चतुःप्रकारं चतुर्दा । 🕆

### ं 8पूर | दैघं हेघा चैधं चेघा घोढ़ैकाध्यं वा।

(हैध-ऐक्ध्यं।१॥, वा।१।)।

एते निपात्यन्ते वा प्रकारे। पत्ते दिधा त्रिधा षड्धा एकधा ।

### ४६०। सङ्घाया ऋवयवे तयट्।

(सङ्ग्रायाः ५।, ष्रवयत्रे ७।, तयट् ।१।) ।

### चतुरवयवं चतुष्टयं। §

\* दयो: पूर्ण:, चयाणां पूर्णः, चतुर्णां पूर्णः, इति वाक्येषु क्रमेण एते निपात्या: । तुर्थं दूर्वेच (२२८) तद्वितयकारवर्जनात् न दीर्घः । पाणिनिः ५।२।५४,५५; तर्थंतरीयेत्यत्र ''चत्रण्ह्यतावायचरलीपच'' इति वार्त्तिकच ।

† सक्षायाः इत्यनेन (१०१) सक्षातुल्यानामिष यहणं, तेन सक्षावाचिनेष्यः उत्यत्वहुगणेथ्यः धाच् स्थात् प्रकारे। चनारीऽत्ययार्थः। प्रकारी भेदनादृश्ये इत्यनरः। चतुःप्रकारिभित चतारः प्रकारा यस्य तत्। एवं कतिधा इत्यादि। सर्व्यविभन्नयये एवायं प्रत्ययः, तेन चतुःप्रकारान् सुङ्कोः चतुःप्रकारौः सुङ्को इत्यादौ चतुः सुङ्को इति। पाणिनिः ५।३।४२। ऋषिच (५।४।२०) इति पाणिनिम्त्रेण वहीः क्षियाभ्यावृत्तिगणेने वर्षभानात् स्वाये धाप्रत्ययो वा स्थात् ; यथा, वहुधा दिवसस्य सुङ्को, बहुवारानित्यर्थः। सत्यव्य वान्यर्थेऽपि घा इति जीमराः। यथा, तिह्नतपरिभिष्टे "वहीरविप्रकर्षे धा वार्" इति स्वकृता गीयोचन्द्रेण "वहुग्रन्दाद्विप्रकर्षे वारे वाच्ये धा वास्थात्" इति वित्तिखिद्यता।

‡ दिप्रकारं, विश्वकारं, षट्प्रकारं, एकप्रकारिनिति यथालामं वाक्यानि । षड्षेति (१५५) डे त्रते, दान्तटवर्गपरलात् न (४०) घस टः । पाणिनिः ५।३।४४,४५,४६ ; षोद्धेयव ''धासुवा'' इति वार्तिकस्य ।

§ पुन: सङ्गायदणं डलातुवहुगणानामप्राप्तायः । भवयववत्तः सङ्गायाः तयट् स्वात्,

# ४६१ | दिनेवीयट् | (विने: प्रा, ना ११), प्रयट् ११।)।

हयं हितयं, त्रयं त्रितयं। \*

## ४६२। तरतमौ दिबह्रनामेकोत्कर्षे।

(तर-तमी १॥, दि-वह नां ६॥, एकोत्कर्षे ७।)।

दयोरेकस्यातिगये तरो बइनां तमः स्यात्।

अयमनयोरतिययेन विद्वान् विदत्तरः, अयमेषामतिश्ययेन

विद्वान् विद्वत्तमः। ग्रुभतरा ग्रुभतमा। गृ

# ४६३। रूपकाल्पे चेबूप् खंवा वित्तु पुंवच।

(६.प कर्ल्य ७।, च ।१।, द्वैप् ऊप् ।१।, खंश, वा ।१।, त्रित् ।१।, तु ।१।, पुंतत् ।१।, च ।१।)।

ट इत्। इयीर्विभाषयीर्भध्ये विधिर्नित्यः। चलारीऽत्रयवा यस्य तत् (कुलं) चत्रवयवं इति वाक्ये चतुष्टयं, (१०२,६५,४३८,४०)। स्त्रिया चतुष्टयो। पाणिनिः प्रारा४२।

<sup>\*</sup> दी च त्रयस्र तत् तस्त्रात् दिवे:। भाग्यां अप्यट् स्यादा भावयवे। दावयवं त्राययवं द्रांत वाक्यदयं, दिः बि-सब्दाग्यां अप्रयट्, (२५८) द्रकार-लीप:। पत्ते पूर्वेण तयट। स्त्रियां दयी, बसी। पाणिनि: ५।२।४३।

<sup>ां</sup> तरय तमय ती। दौ च वहवय दिवहवसीयां, (३१३) निर्दारणे यशी। दिवहनामिति वहवयनान्तेऽपि श्रन्थसाम्यात् तरतमाभ्यां कमी भ्रेयः। उत्कर्षाऽतिश्रयः। एवम् उत्कर्षाय-प्रत्यान्ताः पूर्वेलिङा एव। विद्तरः विद्तनमः, उभयव विद्याया जत्कर्षां गम्यते, (१८३) दङ्, (६४) दस्य त। द्र्यमनयारित्रश्रयेन यमा यस्तरा, भामामित्रश्रयेन ग्रमा ग्रम्थता, (३२७) पुंवदभावः। एवं भतिश्रयेन साध्यो साधुनरा द्रव्यादि। भव द्रष्ट्यम्—मुवे जत्कर्षश्रस्य प्रयुक्त वृत्ती भतिश्रयश्रस्यः प्रयुक्तः। भस्यायमिनिग्रयः—विद्वतरः विद्वनमः दिवन् मृर्वेतरः मृर्वेतमः द्रव्यापः भवति। निर्देशकर्षमात्रे एव तरत्मी, परन् भवक्षस्य भतिश्रयेऽपि। ग्रुणानामुत्करापक्रस्तेऽपि तदितश्रयः प्रव तरतमप्रयोजकः। भत्यत् विद्वत्यस्य स्वानव्यव्यः श्रीमता गोधीचन्द्रेष "दिवह्मधीऽस्वर्थे तरतमी" दिव मृत्र वित्यस्य "भितश्रय समानद्भपपेच एव भवति" दिव स्वन्। पाणिनिः श्रव्यास्त्रप्रः।

चकारात् तर-तम-रूप-कल्पेषु दैवन्तमूबन्तञ्च स्वं स्थादा छट-दित्तु पुंवच । स्तितरा स्त्रीतरा, वामोक्तरा वामोक्तरा। विदुषितरा विदुषीतरा विदत्तरा, सतितरा सतीतरा सत्तरा

४६४। त्यादेश ६ पः। (बादेः पा, चारा, ह्यः रा)। सिल्यादेशीत्वर्षे हृपः स्वात्। पटुहृपः, पचितिरूपं। प

### 8ईपू। किमेव्याचाद्रव्ये चतरां चतमां।

(किम्-ए-व्यात् भ्रौ, च ।१।, श्रद्रव्ये ७।, चतगां-चतमां ।१॥)।

किम एदन्तात् व्यात् त्याद्यन्ताच दिवहनामेकोत्कर्षे चतरां चतमां स्त: नतु द्रव्ये । किन्तरां प्राह्लितरां उच्चेस्तरां, पचिति-तरां। एवं चतमां। द्रव्ये तु उच्चेस्तरस्तरः ॥ ः

<sup>ः</sup> रुपय कल्यय रूपकल्यं तसिन्। ईप् च कप् च देवप्। उय स्था ह, ह इत यस्य वित्। ईक्तं कवन्तस्य पटं इक्तं वा स्थान् तरतमरूपकल्पेष् परेषु, उकारित् स्वकारिनु पुंचस वा इत्यर्थः। (३२०) पुंवतस्त्रक्तेत्यनेन नित्ये प्राप्ते अपनेन विकल्प-निधानं। इयमनयोरतिभयेन स्त्री, इयमनयोरतिभयेन वामीरूः, इति वाक्यदयं। स्वस्य स्त्रियाः मौन्दर्यगत उत्कर्षो गस्यते। अपनेन वा इन्दः। विद्धातोः भट (१९०३) तस्य स्थाने कसु प्रत्यये, (२५०) ईपि, (२१८) वस्य उः विद्धी इति, ततः इयमनयोरतिभयेन विद्धी, एवं अस धातोः (१९००) अस्टप्रत्यये ईपि सती, ततः इयमनयोरतिभयेन सती इति तरप्रत्यये, अनेन वा इन्दः, पत्ते पृंवसा।पाणिनिः इ। इ। इ। इ।

<sup>+</sup> येन विधित्तारत्तस्मिति न्यायात् त्यादेः त्यायनात् चनागत् लिङाम ६पः स्थात्। भव एकप्रव्ययस्य चर्यद्रयेन कमान्यसम्भवात् केवलम् छत्कवे द्रवेव चतुवर्तते। चित्रधेन पटुः पट्डपः, चित्रधेन पट्टी पट्डपा, (१२०) प्रवहावः। चित्रधेन पत्ति पचित्रदर्पः, चत्रस्थेन पट्टी पट्डपा, (१२०) प्रवहावः। चित्रधेन पत्ति पचित्रदर्पः, चत्रक्षेयः। एवं चतिष्यंन पचित्र पचित्रदर्पः त्यादिष् कर्नवेचनानुसः रेण तिवादयः प्रयुज्यन्ते, परन्तु कियायाः प्रस्तायमावेन द्रपान्त-क्षिया-पद्य निङ्गानिष्यामावे सामान्यतान्नपुंसकः, एवं कियायाः सङ्ग्राभावेन च प्रयमीप-स्थितमेकवचनभेव। पाणिनः प्रशिह्दः १११।३०।

<sup>‡</sup> किम्च एयः व्यञ्ज किमेव्यं तक्षात् । न द्रव्यमद्रव्यं तक्षिन् । घतरांच घतमां चतो । मण्डूकगत्या दिवङ्गमिकोत्कर्षे इति भनुक्तेते । चक्कारात् त्याद्यनायः।

### ४**६६ं। गुगादे**चेयसू।

(गुणात् प्रा, वा ।१।, इष्ठ-ईयम् १॥) ।

गुणवाचिनो दिवहनामेकोलर्षे क्रमादिष्ठेयस् ईयस्विष्ठी वा स्तः।

### ४६७। जीमंश्च डिन्नेकाच:।

(जि-इसन् ।१।, च ।१।, डित् ।१।, नैकाच: ५।)।

जि-रिमन् इष्ठ ईयसुष अनेकाची लीः परी डित् स्थात्। स्रविष्ठः, स्वीयान्। पं

किन्तु चानुक्रष्टं नीत्तरच इति न्यायात् व्यायात् विव्यय्ते जोनक्षये चतरां, वह्ननाने कीत् क्षयं चतमानिति क्रमः। चकारेत् प्रव्ययाये। प्रव किमादीनां मध्ये ये गुणादि-वाचिनी द्रव्यवाचिनय तेथ्ये गुणादी वाच्ये एती प्रत्ययो कः, द्रव्यवाच्ये तु न स इत्थयः। इदमनथोरितश्ययेन किम् किन्तरां, किम्श्रन्दोऽच कुक्तिनाथः। इथोरितश्ययेन प्राप्ते प्रश्चितग्येन प्राप्ते प्रत्ययविधानमान्यात् स्वप्तमीविभक्तरे जुक्तः। प्रयमनयोरितश्येन पचति प्रत्यत्वार्यः। एवं नौचैक्तरां, सुतरां नितरामित्यादि। इदमनयोरितश्येन पचति पचिततरां, प्रव पचनिक्षयाया छत्कर्षः। छवैक्तर इति, यद्याय द्रव्ये (जातौ च) प्रकर्षाभावक्षयाया गुणाक्षयाप्रकर्षे। यदा द्रव्ये प्रारोध्यते तदैवायं प्रतिविधः, पूर्वेष (४६२) तरतमाविति। एवमेव गीथौचन्द्रचित्तपरिश्रिष्टे—"नाति-द्रव्ययी: प्रक्रवाभावात् गोतरो डित्यतम इति न भवित। यदाचापि क्रियाग्रयप्रकर्षे विवन्यते तदा तरत्वमाथ्या भवितव्यमेव।" पाणिनः १।१।२२; प्राधारिः।

- \* गुणवारिन इति मुणवदाचिन एव यहणं, नतु गुणमाचवाचिनः, तेन गुलीयान् घटः इति स्थान्, नतु घटस्य गुलीयानिति। चत्रप्व ''गुणवचनेश्यो मतुषी लुगिष्टः'' इति भाष्यलिखनम्। ''गुलीउस्थाभौति ग्रकः पटः'' सिजान्तनौमुदी। दिवङ्गनामेस्रोत्सर्वे इति चतुवर्त्तते। यदापि पाणिन्यादित्याकरणेषु (पाणिनः प्राश्प्रप्र, प्रश्र्प्र) दिवङ्गनासित्यनेन द्यासिष्ठयोः कसी दृष्यते, तथापि, वीपर्वेन कमविपरीत-प्रयोगदर्भनात्, इष्टेयस् द्रियस्तिष्ठी वास्त इति वत्तौ कमाभावः स्थितः।
- † जिस इसन् चतत् जीमन्। चकारादिष्ठेयम् च। गाला एकोऽच्यस्य स नैकाच् तस्रात्। इसन्साइचर्यात् जिरच खेः पर एव, तेन जागस्वतीस्य।दीन मसक्षः। चयमनयोरियां वाचितिस्रवेन् खष्ठः सिष्ठः, इष्ठे, चनेन तस्र खिडहाने,

४६८। लुङ्मट्वट्विनां । (लुक् ११।,मत्-वत् िकां (॥)।

मतिष्ठ:। मेधिष्ठ:। \*

8६१ हन् लोष: । (हन् ११), लोष: १।)। करिष्ठ: १ 🌵

8%। वाढ़ान्तिक स्थूल दूर युव चिप्र चुद्र प्रिय स्थिर स्किरोक गुक् बज्जल त्यप्र दीर्घ ह्रस्व इड इन्दारका:—साध नेद स्थव दव यव चेप चोद प्र स्थ स्कावर गर बंह नप द्राघ ह्रस वर्ष इन्दा:।

(बाद्र-- इन्दानका: १॥, साध--- इन्दा: १॥)।

एषां खाने क्रमादेते खुः ज्यादिषु।

साधिष्ठः नेदिष्ठः स्थविष्ठः द्विष्ठः यविष्ठः चीदिष्ठः चीदिष्ठः

<sup>(</sup>१२६) टिजीप:। एवं लघीयानिति वा। पचे लघुतरः लघुतस इति। पाणिनिः इ।॥११५५।

<sup>•</sup> सच वच विन् च तंत्रां। चर्षवक्षात् विभन्नेविष्टिचाम इति न्यायात् आहेः समस्यन्यत्वेनातृत्वतिः। तेन — आ इसन् इष्ट क्षेत्रमु एषु परेषु मत्-वत्-विनां खुक् स्थात्। चित्रस्थेन मितमान् मितष्ठः, चर्नेन सतीर्ख्यिक, डिच्चात् टि-खोपः। चित्रस्थिन स्थावान् नेथावी वा इति वाक्यक्षये वतु-विनोर्ख्यकि डिच्चात् टिखोपे सेथिष्ट-इति। एवं मतीयसी सेथीयसीत्यादि । पाणिनिः इ:श्र्थ्र।

<sup>†</sup> वन् लीचः स्थात् आदि । भित्रयोग कर्ता करिष्ठः, भाष वधी धीपे, त्यलीपे त्यलचणनिति न्यायात्, (५४२) मुखे एकाष्ट्यात् न जिड्डावः । एवं करीयान् । कर्त्तभावः करिमा। कर्त्तारमाषटे कारयति, भाष वसी लीपे, तस्त्रनगुषस्य निहत्ती, औ परे पुनः (५००) हिंदः । पाणिनिः ६।४।१५४ ।

प्रेष्ठ: स्थेष्ठ: स्केष्ठ: वरिष्ठ: गरिष्ठ: वंश्विष्ठ: वरिष्ठ: व्राधिष्ठ: इसिष्ठ: वर्षिष्ठ: वृश्विष्ठ: । ≉

**89१। प्रमुखः यः।** (प्रमुखः रा, यः रा)।

८७२। ज्यो रहस्येयस्त्राः।

(ज्य: १।, हर्ड: १।, च ।१।, ईयस्ती ।१।, मा: १।) ।

हृदः प्रयस्यसः अप्रादी ज्यः स्थात्, तस्माचियसीरी आः स्थात्। ज्येष्ठः ज्यायान्। क

वाटस अन्तिक्षस इत्यादि, साधस नेदस्रेत्यादि च इत्तः। स्फिरी वह्नये , उर्ह्मां-इ। थं:, त्रप्रोतीति त्रप्र: भीषादिकारिफ:। तन्दारकी देवी सुख्यी वा। क्षमी यथा---च न्तिका युवन चिप्र दृष् यव चेप चीद स्यव टव साध टीर्घ त्रप्र क्रख विद बन्दारक स्फर बहल लक ग र द्राघ इस गर ब ह चप वर ₹4 एषां सध्ये ये गुणवाचका न भवन्ति तेथ्याऽपि इष्ठादथी भवन्ति, इष्ठादिषु परेष चादेशविधान-सामर्थात । अधमनधीरेवां वा चित्रिश्यन वाढ्: साधिष्ठ:, एवं सव्यंत प्रथमान्तेन बार्का। इष्ठप्रत्यये चनेन साधादि-चार्दश्रे (४६०) जिल्ल (१२६) टिसीप:। प्रेष्ठ:स्थेष्ठ: स्फ्रेष्ठ: एतेषु एकाच्लात् न डिक्तं। एकाच-वर्जनसामर्थादव (२५८) यथोरिति न चकारलोप:। राभतकंवागीशसुप्रस्थ स्कान् विना सर्वे इसना देशा: एकाच्लात् ञ्रादीनांन डिस्तमिति व्दति । एतन्त्रतम् पाणिनिसम्प्रतम्, थर् गर् बंडि वर्षि द्राघि वयु इत्यादि-इसन्तादेशपयोगान्। पाणिनि: ५।३।६२,६।४।१५६, 1 649

भूप्रयस्यः यः स्थात् ज्यादी । चयमनयोरीषां वा चितिव्रथेन प्रवस्यः श्रेष्ठः । एवं चैत्रान् । प्रवस्यस्य भावः चेनाः । पाचिनिः ५।३।६० ।

<sup>‡</sup> ईयसीरी ईयस्त्री इति जुप्तमयमेकम्। चयमनयीरेवां वा चित्रयेन इद्धः प्रश्रस्यो का ज्येष्टः। एवं ज्यायान्, चच ज्यादेशात् परस्य ईयधीरीकारस्य च्याः। पूर्वेण (४९०) वर्षिष्ठः वर्षीयानिति च भवति । पाणिनिः प्राराद्दर्भरः।

# ४७३ । पृथु **चढु दाग सम द**ढ परिष्टढ्साई:।

(प्रयु-परितदस्य ६।, च्हत् ।१।, रः १।)।

एषासकारस अगदी रः स्थात्। प्रशिष्ठः। अ

## ४७४। युवाल्पौ कन् वा।

(युवाल्पी १॥, कन् ।१।, का।१।) ।

कनिष्ठः, यविष्ठः श्रत्यिष्ठः । एवमीयसः । 🌣

### ४७५। गुणादिमन् भावे।

(गुषात् प्रा, इसन् ।१।, सावे अ)।

गुणवाचिन इसन् स्थात् भावे। लिवमा। 🕸

# ४७६। भूयोभूमभूयिष्ठा:।

(भूयस-भूमन्-भूविष्ठा: १॥)।

<sup>#</sup> पृथ्य सटुकेल्यादि इन्हें तस्य । भयमनयोरियां वा भतिमयेन पृथुः प्रविष्ठः । एवं सदिष्ठः क्रमिष्ठः समिष्ठः द्रदिष्ठः परिवृद्धिः, प्रयोगान्, प्रथिमा इत्यादि च । पाचिनिः ६१४।९६१ ।

<sup>†</sup> युवा भल्यस कन् स्थाडा जागदी। भयमनयोरीयां वा भित्रध्येन युवा भल्यो वा कनिष्ठ: इति युवाल्ययोक्दाइरणं, पत्ते युवन्धस्टस्थ (४००) यविष्ठ:, भल्यसन्दस्य भल्यिष्ठ:। एवं कनीयान्, पत्ते यवीयान् भल्यीयान्। पाणिनिः ५।३।६४।

<sup>‡</sup> गुणवाचिन इति गुणवदाचिन इत्यर्थः। तेन कपस्य भावः कपत्वं, रसस्य भावः रसत्विमित्यदि, न तु कपिमा रसिमा इत्यादि । यक्किमा कालिमा नौलिमा इत्यादि तृ यक्कादिगुणवती घटादिरेव धन्मः। खचीर्मावः, खघ्या भावः, खघुनो भाव इति वाकावधेऽपि खघिमा, (१२०) पुंवहावः, (४६०) जिल्लं, (१२६) टिखीपच । इमन्-प्रत्ययानः पृंजिङ्गप्त चिमिषात्, कोवलं प्रियस्य भावः प्रेमा प्रेम इति पृंजिङ्गः क्षीविज्ञङ्य । प्रेमा ना प्रियता इन्हें प्रेम स्नेह इत्यमरः। पाणिनः प्राराश्ररः ।

बही-रीयस्त्रिमितशासस्य क्रमादेते निपालकी । \*

### ४७७। त्यादेश्चोने कल्पदेखदेशीयाः।

(चादे: ४।, च ११।, चीने ०।, कल्प-देखा-देशीया: १॥)।

नेस्याचन्ताच ईषदूनेऽर्धे एते स्युः ।

र्देषदूनी विदान् — विद्वलाल्यः विद्वदेश्यः विद्वदेशीयः । तार्विक-देशीया । पचतिकरूपं । १'

8७८। लेवेड: प्राक्। (चे: ४१, वड: १४, माक्।११)।

ईषटूनः पटुः बहुपटुः । 🕸

८७६। पाशः कुत्सायां। (पामः १।, कुत्मायां ०)।

कु तिसती भिषक् भिषक्पायः । §

क चित्रक्षयेन बहुरिति वहुक्रव्यादीयसुप्रत्यये भूयः, इष्ठप्रत्यये भूयिष्ठः । वहीर्भाव-इति इसनप्रत्यये भूमा इति । पाणिनिः ६।॥१९५० १५०।

<sup>†</sup> ति चादिर्धमा स त्यादिसमात्। चा (ईषत्) जनः चौनसिमन्, (२६) चकारलीपः। कत्यम देश्यम देशीयम् ते। विदन्तन्त्य इति (१८३) विरामे परे दृष्ट् । एवं विदद्देश्यः विद्वदेशीयः। एषां पूर्व्वतिद्वते । ईषट्ना दीर्घा दीर्घकत्या दीर्घनेश्या दीर्घनेशीया, एषु (३२७) समन्तरादिलात् पृवद्वावः। ईषट्ना तार्किकी तार्किकदेशीया, (३५०) पृवद्वावः। ईषट्ना तार्किकी तार्किकदेशीया, (३५०) पृवद्वावः। ईषट्ना यद्या स्थानस्या प्रचित प्रचितकत्यं, एकं प्रमतःकत्यं प्रमन्तिकत्यसिलादि। पाणिनिः ५।३।६७।

<sup>‡</sup> ली: पुनक्पादानं त्यादिनिहस्त्ये । स्यायनात् वहः स्वात्, सच वहः परच नातः सन् पूर्वः स्वादित्ययः । बहुपटुरिति विभक्तेणुं नि कते, पुनर्खिङ्गसंज्ञायां विभक्तिः । ईवद्ना विद्वी बहुविद्वी, भव वहुप्रत्ययस्य ग्रसन्तरादितिऽपि परस्याधिताभावात् न (१२०) पुंवत् । पाणिनः ५।३।६८ । भव द्रष्टव्यम्—वीधनिङ्गिवरामनते वहुप्रत्यये वस्पेवकारादिः, तक्ववाचस्पतिमते तु स्वतःस्थादिः ; प्रत्ययत्नेन स्वतःस्थादिरेवास्य विद्वितः । ४४५ स्वटीका द्रष्टस्य ।

<sup>§</sup> खाद्यनात् पात्रः खात् कृत्सायां । कृत्सिता विद्वी विदत्पात्रा, असनतरा-दिलात पुंबद्वादः । पाणिनिः ५।३।३०।

४८०। चरट् भूतपूर्वे। (वस्ट् ।११, स्तव्वे अ) । भूतपूर्वेऽधे वरट् स्थात्। भृतपूर्व बाह्यः बाह्यचरः। ॥ ४८१। प्या क्रायस्य। (व्याः ४१, व्याः ११, व ।११) ।

यम्तात् रूप्यः चरट् च स्यात् भूतपूर्वे धे । क्षणस्य भूतपूर्वी गीः —क्षणरूपः कणचरः । ग्रभारूपः श्रभचरः । १

### ४८२। बह्वल्यार्थात् काचग्रस्वा।

(बह्नत्यार्थात् ५।, कात् ५।, चग्रम् ।१।, वा ।१।) ।

बद्धर्थाद्यार्थाच कात् परसमस् स्थादा । बहुमी देहि भूरियः, ऋल्याः स्तोकमः । 🕸

अ भ्तपूर्वः प्रागभ्तः, तिकात्रधे स्वादानात् चरट् स्वात्, ट ईवयः। भूतपूर्वः चान्यः (नतु सम्प्रति वर्षते), भूतपूर्वा चाका चाकाचरी, भूतपूर्वा विद्वत्रौ विद्वत्रौ विद्वत्रौ, प्रसन्तरादित्वात् (३२०) पुंवहावः, टिचात् (२५०) ईव्। पूर्वयद्वतात् यव वर्षमान्तरादितात् तत्र न स्वात्, यया द्वियो भूत इति । पाणिनिः प्राह्मप्रह ।

<sup>†</sup> ष्यत्तात् षष्ठात्तात्। यसायाः (गीः) भूतपूर्वी गौः ग्रभाष्यः, भव (३२०) ष्रयवर्जनात् न पुंत्रहादः, ग्रभचरः भव पुंत्रत् स्थादेव । साणिनिः प्राहःप्रक्षः।

<sup>‡</sup> बहुस फल्यस बहुत्यों, तो वया यस स तस्त्रात, कात् इत्यस्य विश्वषणं। चकारित् भव्ययायम्। प्रयक्ष योगात् भृतपूर्वे इत्यस्य, प्या इत्यस्य च नातृक्रक्तिः। वहुध इति बहुत् वहीः बहुति वा देष्ठीत्वणं कर्याकारकात् चम्रम्। भृतिमः इति भृति भव्ययं बहुयः। एवं सङ्कः प्रयमः इत्यः इत्यादि । वहुभिनेतेः परस्ति, वहुभ्यो देहि, वहुषु तीर्थेषु स्नातः इत्यादी वहुमः। चन्यं देहि भव्यमः, एवं सीक्रमः। कनम इति त कृत्यां। कात् किं, वहुनां स्वामीत्यव न स्थात्। पाणिनिः ५।४।४२। भव पाणिनित्वे स्वार्थे सम्स्यात्, परम्वे च वीपायाम्। चम्रसे वारार्थम् टीकालिकः प्रयुज्यते, यणः, "कुमुमान्तर्ये सहायतां वहुमः सीन्य गतस्वनावयोः" इति कुनारे यहुन्नो वहुवारिति मिल्लावाय्यास्थानम्। भिष्टकाव्ये ''चनेक्रमीऽसी सप्यानमप्तर' इत्यव चनेकम इति पदे जयमङ्गलादयोऽस्थेनम्।

## ४८३। सङ्खेत्रकार्थात् वीभागां।

(सङ्गा-एकार्थात् ५।, वीसायां ७।)।

कति कति कतिगः गणगः यावच्छः तावच्छः, दिगः, पादगः। \*

8८8। चङात्वस् वरि । (पक्रत्वस् ११, वार श)।

कति वारान् भुङ्को कतिकलः, गणकलः पञ्चकलः । 🕆 🗼

### ४८५। सुच् चतुर्दिने:।

(सुच् ।१।, चतुर-दि-वे: ५।) ।

एभ्य: सुच् स्थात् वारे। चतुः दिः तिः। ह

**४८६ । सयर्** तदूपे । (मयर् ११, नदूपे, ७)।

<sup>•</sup> एकः एकशागः, एकः अर्थीयस्य स एकार्थः,सङ्गाच एकार्यस समाहारितस्त्रात्। सङ्गात्राचकः कारकात् एकशागार्याच कारकात् च सस् स्थात् यी सार्याः किति किति देडि कितियः. एवं गणं गणं देडि गणाः, यावलं यावन्तं यावच्छः, तावनं तावन्तं तावच्छः, (१०१) सङ्गातुत्व्यतात् च यस्। दौ दौ दिगः, एवं चिग्र दृष्टादि। एकशागः-र्यानुपादं पादं पादं पादं पणं पणं पणां पणाः इत्यादि। प्रत्योगवी साथा स्कृततात्, अनुकृत्रीभाषां दिलस्य नियमादच न दिः। पाणिनिः प्राथाधः ।

<sup>†</sup> सङ्ग्राभित्रस्य वारोऽधों न सम्भवतीत्याङ्कतिवारानिति । विच्वादव्यये। एवं गण्यकत्यः। (१०१) सङ्ग्रावच्यं। पञ्च वारान् पञ्चकत्यः, एवं दशकत्व द्रत्यादि । (१४६) विभक्तेर्श्विक, (१८५) न दौर्धः। पाणिनिः ५।८।१७।

<sup>‡</sup> चतुस दिस विस ततसात, पुंच्लं स्वलात्। सुचा चललस् वाध्यते। सच-चनार चत्रारवायं: चनारोऽव्ययार्थः। वारः क्रियास्यावित्तगणनम्। चतुरिति, चतुरो वारान् इत्यये सुच् (१०२) रस्य विसर्गः, (६०) विसर्गस्य सः, (२१३) सस्य चीपः, ततः सुचः सस्य विसर्गः। एवं दी वारी दिः, त्रीन् वारान् विः। पाचितिः प्रामारकः।

तदालानेऽर्धे मयट् स्थात्। विश्वालाकं विश्वमयं। वाद्ययं। अ

8८७। प्रकारे जातीय:। (प्रकारे अ., जातीय: १।)। तार्विकजातीया। প

# ८८८। वित्ते चुञ्जुचगौ।

(वित्ते ७।, चुच चषौ १॥)।

विद्याचुञ्चः विद्याचणः । 🕸

### 8दर। निर्हत्ते भावादिम: I

(निर्वृत्ते था, भावात् ५।, इ.म. १।)।

#### पाकिम:। §

\* तदेव द्वयं घात्मा यस्य तत् तद्वयं तिष्मन्। प्रथम् योगात् िकमिप नान्वर्णते, प्रकरणवलात् स्यायन्तादेव । विष्पात्मकिति विष्पात्मा यस्य तत् विष्पुमयं जगत्, एवं वागात्मकं वाद्ययं प्रास्तं । "एकाची नित्यम्" इति वार्तिकेन वाद्ययमिति । इत्यात्मकं हिर्ण्ययमिति निपातनात् यलीपः। टिच्लादोपि तेजीमयी । पाणिनौ वहुम्याऽवें स्वी मयट् इस्यते । यथा, ष्पागतार्थे — ४।३।८५; विकारार्थे प्रवयवार्थे च — ४।३।१४६,१४८; इदमर्थे गीमच्दात् पुरोषे — ४।३।१४५; विकारार्थे — ४।३।१४६,१४८; प्रकृतववने स्वार्थे — ५।४।२१,२२; विकारार्थे निपातः — ६।४।१०४।

† स्थायनात् जातीयः स्थात् प्रकारि । प्रकारशन्दः 'सादृश्यवाची पुंलिकः, तयु-क्रार्थे इत्थर्थः । "सामान्यस्य भेदको विशेषः प्रकारः" इति पाणिनिटीका । तार्किकाः प्रकारः तार्किक जातीया, (२५०) पुंबहावः, तार्किक तृत्या स्त्रोत्थरेः । एवं पटुजातीयो स्ननः, सदुजातीयं फलं । किञ्च विद्याः प्रकारः विद्योजातीया, चन्न जातीयस्य प्रसन्तरादिभिन्नत्वात् (२२०) न पुंबहावः । पाणिनः ५।१।१९ ।

‡ स्यादान्तात् (''तृतौयान्तात्" इति तुपाणिनिः) चुसु-चणौ स्वातां वित्ते (तेन स्वाते) चर्षे। चुसुः पञ्चनस्नरहयवान्, चणो सूर्वन्यवान्। विद्यया स्वातः इति वान्धे। पाणिनिः ॥१२।२६।

§ भावविद्यित कदनात् इस: स्थात् निर्वृत्ते (तेन निष्यक्ते) मर्थे। पाक्तेन निष्यः पाक्तिनः, (१५८) चलारलीपः। पचनिति भाववाची (११३४) चल, पाकाः। ''वंर्मन्

### ८८०। पश्रुखः स्थानिद्वषट्की गोष्ठगोयुग-षड्गवं।

(पश्चयः पू॥, स्थान दि घटकी ७।, गोष्ठ गोयुग षङ्गवं १।)।

गीगोष्ठं गोगोयुगं गोषड्गवं। \* ,

### ४८१। गुग्डोच्चस्योऽपकर्षे रष्टरौ।

(ग्रुण्डी कथ्य: ५॥. प्रमा के जा, र-प्टरी १॥)।

अपकष्टा ग्रुण्डा ग्रुण्डार: भमीर: कुटीर:, उचतरी । 🕆

### ४८२। पौलुति लोमाकणारेः कुणतैलकट-जाइं पाकसे इरजोमले।

(पीलु -- कर्षांदे: प्रा, कृष -- जाहं रा, पाक -- मूले श)।

पीलुकुणः, तिलतैलं, उमाकटः, कर्यजाहं। क्

- स्थानच ती च पट्कच तिबान्। गोष्ठच गोग्रगच वङ्गवच तत्। पग्रवाचकिस्यः स्थानि वाच्चे गोष्ठः, दिक्किलवर्षे गोग्रगः, षट्किलिवर्षे वङ्गवः स्थान्। गवां स्थानं गोगीष्ठं, एवं महिषगीष्ठं। गीदिकं गीगीग्रगं, एवं इत्थिगीग्रगं। गवां षट्कं गोषङ्गभं, एवं इत्थिगीग्रगं। गवां षट्कं गोषङ्गभं, एवं इत्थिवङ्गभं। एषां क्रीवत्वं स्वभावात्। "गीष्ठचादयः स्थानादिष् पग्रनानस्यः" "दिल्वे गोग्रग्यं" "षट्ले षङ्गवच्" दित वार्तिकवयम्।
- † ग्रष्डाय उत्तायय ते तेथः । उभयत वहुवचनं गषायं । रय एरयती । ग्रष्डादेः रः, उचादेः एरः स्थात् घपकषेँऽर्षे (इस्तते, तनुते इति पाणिनिः) । ग्रष्डा मदिरास्थानं । घपक्रष्टा ग्रष्डा ग्रष्डारः, एवं घष्या श्रमी समीरः, घन्या बुटी कुटीरः । स्रत्येत्र पुंस्तमभिधानात् । घपकष्टा (गतयीवना) उचा उचतरी, एवं घपकष्टा (वालिका) वन्सा वन्सतरी इत्थादि । पाणिनिः ५।३।६८८१।
- ‡ पीलुक तिलय क्याच कर्णय ते चादयो यस तकात्। कृणय तैलय कट्य जास्य तत्। पाक्षय सेक्ष्य रजय मूलच नचिन्। पीलादे: कुण: पाके, तिलादेसैल:

नित्यम्'' इति पाणिनिस्त्रे (४।४।२०) "एवं वर्हिभाव इति प्रक्रत्य इसव्यक्तव्यः'' इतिवार्सिकसः।

### ८८३। सचे शाकटशाकिनौ।

(चित्रे ७), शाकट-शाकिनी १॥)।

द्रचुगाकटं द्रचुगाकिनं। अ

### ८८४। इतोऽस्य जाते।

(इत: १।, अस्य ६।, जाते ७।)।

### फलितं। 🌵

स्रेहे, उमादे: कटो रजसि, कर्णाटेर्जाडी मूले स्थादिसर्थः। पीकी: पाक:, तिसस्य स्रेहः, उमाया (मिमना) रज: कर्णस्य मूलं इति क्रमेण वास्थानि। कृषकटान-यो: पृंग्लं, तिलजाडाम्पर्या: क्रीवलचाभिधानात्। पाणिनि. ५।२।२४। ''झेई तैलच्'' "कटच् धकर्णः चलावृतिकीमास्यो रजस्युपसंख्यानम्" इति वार्त्तिकदयस्व।

\* स्वत्यान्तादेती सं: तस्य चेत्रसित्यर्थे। द्वी: चेत्रसिति वाकां। ययपि सामान्येनोत्तं, तथापि द्वीरंदेति केचित्, द्वमूलकाभ्यासिति परे, ''संभवने चेत्र प्राक्षटश्रन्थ प्रत्ययो वक्तव्यः'' ''शाकिनश्रष्ट्य प्रत्ययोवक्तव्यः'' इति वार्त्तिकदृष्टे तुन तथा नियमः ; य्या, द्वश्राकटं, सूलशाकटं, कीरशाकटं, वासुशाकटमित्यादि । एवं इत्तराकिनसित्यादि ।

† स्थायनादितः स्थान् अस्य जातभित्यर्थे। फलमस्य नातं फलितं वनं, फलिती इद्यः, फलिता लता। फलाव्देरेवायं विधिः। फलादिन्तु (पाणिनिमते तारकादिः, कौसरमतेऽपितस्था)—

फल पृथाकुरपन्नव गब्बे कार्यक मृत्र शर् कान्नीलं। इर्ष कृत्इल किसलय गसं इसका कच्छक सुख सीमलं। तन्ता तिलकं भैवल रोगं कज्जल कृद्धल कारक वेगं। निद्रा सुद्रा मद गल रोगं कद्धन कन्दर कुसुन तरहं। संज्ञा तारक सूत्र पुरीषं पुलक विचारं त्रण भक्षारं। स्ववक पिपासा खज्जा टीइं निष्कृमण ज्वर दु:ख द्रीइं। सुभ दीचा वन्ने सूर्का रण प्रसा द्रमा जुथा:। सुश्कीषाङ्कार रोमाच प्रवाल व्याधि चन्द्रका:। पिछीत्कार्य सुश्चा च खरीत्क छे च मञ्जरी।

यतद्यतिरिका चन्येऽपि गर्भादयः अन्दा सन्ति। बुसुदित-पिपासित-मन्दी न कान्ती सकर्मकलात्। पाणिनिः ५,२।३६।

### ४२५। चि. क्षंसस्यभूततङ्गावेऽस्वावीर्घा-वव्यस्य।

(कि रा, क्र.भू-षममु ०॥, षभुततहाति ०।, ष-सौ र॥, ईवीं र॥, षवस रा)। ग्राभूततद्वावित्रमें क्रास्वस्तिषु परेषु चि स्थात्, तिसिंसावर्ण-स्वयो-रीकार-मी स्त: नतु व्यस्य । \*

### ४८६। त्वी बमाबो लोषः।

(त्वः १।, वसात्रः १।, खीष्यः १।)।

वकारमात्रस्यो लोष्यः स्थात्।

त्रक्षणं कृषां करोति कृषाोकरोति, कषाीभवति कृषाीस्यात्। ф

क्षय भूष त्रम् च ते तेष् । चमूबस्य त्रनातस्य तद्येण भाव उत्पित्तिस्तृततहावः । 
"प्रागवस्थावर्ताऽवस्थान्तरेणाभूतस्थाजातस्यानन्तरं तदाक्षनीलाभाऽवस्थान्तरंण लन्य त्रभृततक्षावः" इति तद्धितपरिणिष्टे गीर्योत्तन्दः । काष्ठं भस्य करीति इति तुन त्रभृततकावः,
किल् भभस्य भस्य करीति इत्थेव । ("भग्ययकर्तिरे" इति पाणिनः ।) कथातौ
भूधातौ त्रसम्याकौ वा परे त्रभृततक्षवंऽर्षे स्थायनात् विः स्थातः चौ पर्ग प्रकतेरनस्थितथीः भवणे इस्वयीः कमेण ईकार-दीर्षो सः, नत् भन्ययस्य ईकार-दीर्षेत, त्रव्ययात्
विष्ययस्य स्थादंव त्रव्यस्यति षष्ठान निर्देशात् । विषयस्य इकारियक्षायं, चकारत्
त्रव्ययायः । पाणिनः ५।४।४०; ५।४।३२।

<sup>†</sup> व चाभौ भावश्चित वभावः। वकारमावाविष्यष्टस्यथो लीखः स्थात्। तेन चूि (१०२८) विण्, (१०२०) विष्ट्, (१०३२) विच् किप् इति पञ्चानां भीपः। धन्नणं क्रणं करोतीति वाक्ये क्रणः भव्दात् च्चिः धन्न पश्चिष्टस्य वकारस्य लीपे, पूर्वविर्त्तनः धन्नारस्य क्रियाः। एवं क्रणोभविति क्रणोस्थात्। धव धन्नीति परं दिवा स्थादिति क्षणात् खोविभक्यते धन्धातौ परे विः स्थादिति स्थितं। धतएव, ''धर्मार्भेड नस्थेव प्रथोगेऽभूततद्वावस्य प्रतीतिः प्रव्दाक्तस्वभावातः' इति तक्षितपरिशिष्टे गोयोचन्द्रः। वच्यमाणस्वेष्वपि असीः प्रयोगे एवं व्याख्येयं। एवं धनाकां मानां करोति, मानी करोति—धाकारस्य ईकारः। स्थानि धान्तं करोति धान्तीकरोति – इकारस्य दोर्घ। धन्यद्वस्य स्थानिः स्थादिः। अभ्याकां करोति सहत्तकरोति इत्यादिः। अभ्याकां करोति सहत्तकरोति इत्यादिः। अभ्याकां करोति सहत्तकरोति इत्यादिः। अभ्याकां कर्याति स्थादिः। अभ्याकां स्थानिः स्

### १८७। यङ्ङाको चद्री।

(यङ्-ङा-को ७।, च ।१।, ऋत् ।१।, री ।१।)।

ऋकारो री स्थात् यक्ति की की ची च। मात्रीकरोति। क

# ४८८। मनस्र सुर्से तोऽकरकोर हीऽन्तलोपस्रौ।

(मन:--रष्ठ: ६।, श्रनखोप: १।, चुी ०।)।

मनीकरोति । 🌣

### ४८८। कार्त् स्रायत्त्रोः सम्पद्यकादौ चसादा।

(कार्त् स्त्रायच्यी: आ, सम्पद्ध कादी अ, चसात्।१।, वा ।१।)।

साक को अधीन तो च सम्मदाति कृष्वस्तिषु परेषु च चसात् स्यादा।. कृत्स्रं लवणं जलं सम्मदाते — जलसात् सम्मदाते। राजायत्तं सम्मदाते — राजसात् सम्मदाते। क्ष

करोति कस्मींकरोति, सज्ञानिनं ज्ञानिनं कगेति ज्ञानीकरोति, इत्यादौ (११८) नस्य लुपि, नजोऽत्यायंत्वात् तदादिविधिनिवेधाभावे, स्वकारस्त्रयोगोकारघौँ स्वातां। स्वययस्य तु सवया वया कत्वा इति वाक्ये वयाक्रत्य इत्यादौ विम्नत्ययानस्य (५४८) समासे, (११७६) क्वाची ययादेश:। साचौक्रत इति तु नजा निर्द्धिमनित्यमिति न्यायात् दौर्घः। पाणिनि: ५।४।५०; ०।४।२६,३२, ''स्वययस्य च्वावौत्यं नित वाच्यम्' इति वार्तिकस्य।

<sup>#</sup> भागतरं मानर कां।ति—मातृभव्दात् चिम्नस्ये ऋकालस्य री। यिङ—चेकी-यते। छोको, (८४८) मातेवाचरति भावोयते, पितरमिवाचरति (८४०) पिनीयति। पाणिनि: ७।४।२०।

<sup>†</sup> मनय चत्र्य चित्रय घर्षय रजव रहव तत्त्त्य । एवाम् अन्तस्य लीप: स्थान चौ परे । भमनी मनः वरीति मनौकरीति, स-खीपे अत्तारस्य द्री । एवं चलूकरीति, व-खीपे दीर्घः । चेतीकरीति, घरकरीति, रजीकरीति, रहीकरीति । पाथिनि ॥ ॥॥॥१ ।

<sup>‡</sup> ज्ञारसं सकलं तस्य भाव: कार्नकां। आयश्चिरधीनलं। कार्नकाच चायशिक कार्नकायशी तयी:। संपदाः संपूर्णका-देवादिक-पदधातुः, सम्प्रदाय कादिय तत्

### पू०० | देये नाच । (देवे ण, पाण्।श, माश) ।

देयेऽर्धे त्राच् चसाच स्यात् सम्पद्यादी । देवाय देयं करीति—देवत्रा करोति देवसात् करोति । \*

पू०१। नैकाचोऽव्यक्तानुकरणात् डाच् बानितौ दिञ्च। (नैकापे: प्रा, पव्यक्तातुकरणात् प्रा, डाच्।रं।, वा ।रा, प्रनितौ ७।, वि: रा, प्र।रा)।

श्रनेकाचोऽत्रकातुकरणात् सम्पद्यादी डाच् स्यादाः, निवितीः, तस्मिं च दिभीवः। 🌵

### पू०र। त लीप्याऽतष्टि स्वितौ देस्तन्ती वा।

(त ।१।, लीप्य: १।, चलः ६।, टि: १।, तु।१।, इसी ०।, हे: ६।, तु।१।, घलः १।, वा।१।)।

तिस्मिन्। सम्पद्ये च इत्यनेनैवेष्टसिती पुन: क्रादियहणं प्रव चातुवर्त्तनार्थं, चातुकष्टं क्रोत्तरव इति न्यायेन धातुवर्त्तनवाधात्। वसात्प्रत्ययस्य चकारीऽव्यवार्थः। हत्स्त्रं खबर्णं कल करीति जलसात् करीति, एवं जलसात् भवति, जलसात् स्थात्। पर्वे तद्वेण स्थिति:। पाणिकि: ६।४।५२,५३,५४।

इति। प्रकारोऽव्यवार्थः । क्यांचि वाच्ये यप्रव्यये देशं तिस्रान् चर्थेः । क्यारोऽव्यवार्थः । देवचा सम्पदाते देवसात् सम्पदाते इति च । सम्पदादीनां परिष्यत्यव्येऽपि स्थात्, तेन "मक्तरोदिचिरेवरः चित्रौ विषदारम्यप्रसानि सम्प्रसान्" इति । पाणिनिः प्राध्यप्रसानः

<sup>†</sup> एकोऽच् यस्य स एकाच्, न एकाच् नैकाच् तस्नात्। घन्यको ध्वनात्मकः-भन्दः. तस्य घनुकरणम् घन्यकानुकरणं तस्नात्। न इति घनिति तस्मिन्। हती — तिस्मिदित डाचि सति पृश्वस्य डिलघ स्यादित्यर्थः। वागध्दस्य व्यवस्यया इतौ परंऽिक कस्म (इर्भोवी वाच्यः। पाणिनिः प्राधार्थः, इ।१।८८।

तस्यादन्तस्य त लोय्यो डाचि, इतौतु टिकीयः, देसु अन्तोः लोय्यो वा। \*

पटपटाकरोति । एकाचसु—स्क्क्करोति । इतौ तु पटदिति करोति—पटिति,पटत्पटेति पटत्पटदिति।

#### पू०३। तीय सम्ब वीज सङ्घ्यादिगुणात् क्रञ्जि क्रष्मी। (तीय-गणात् था, क्रञ्ज था, क्रष्मी थ)।

एभ्यः करोती डाच्स्यात् कृषी। दितीयं कर्षणं करोति दितीयाकरोति सम्बाकरोति, वीजेन सह कर्षणं करोति वीजाकरोति, दिगुणाकरोति । क्ष

### ५०४। समय निष्मुल दुःख ग्रूल सत्यात्— यापन निष्मोष प्रातिकृत्य पाकाशपथे।

(समय-सत्यात् ५।, यापन- अ शपदी ७।) ।

<sup>#</sup> तस्यादनस्थिति तस्य चनेका भीऽस्यकानुका ग्यस्त, चदनस्य चन-भागानस्य पटत् भागत् इत्यादेशकारी लीयः स्थात् डाभि परं, इतिगृद्धे परेतृ ताटगस्थेव शब्दस्य टिलीयः स्थात्, एवं इती दिर्भृतस्य तस्थेव शब्दस्य चनवर्षो लीयो वा स्थादित्यर्थः। पाणिनिः ६।१।६८।

<sup>†</sup> पटत्यव्हात् डाचि, घनेन तकारकीये पटदत्यस्य दिले पटपटाकशीति । अनेन टिनीये पटिति, स्थानिबच्दात् न (५०) चयी जव् । देलु घनो वा सीध्यः पटत्पटेति पटतपटदिति । पाणिनिः ६।१।१००।

<sup>‡</sup> तीय: प्रत्यय:, तेन दितीय: हितीयय । सङ्गा आदियेष्य स सङ्गादिः, स चाभी गुणयित सङ्गादिगुणः । तीयय सम्बय तीजञ्च सङ्गादिगुण्य तस्मान । क्रिज परे एथां डाच् खात् कर्षणेऽयां । दितीयाक नित दिनारं की कर्षतीत्ययः, एवं सम्बर्भ कर्षणे करीति । दो एकार्यों । दिगुणं कर्षणं करीति दिगुणाक नित, एवं चिगुणाक करीतीत्यादि । पाणानि: प्राध्रक्ष, पूर्व ।

एभ्यः क्रमादेतेष्वर्धेषु डाच्स्यात् क्षञ्जिपरे। समयाकरोति निष्कुलाकरोति दुःखाकरोति भूलाकरोति सत्याकरोति। %

### पृ०प् । सपत्रनिष्मत्रात् प्रियसुखात् मद्रभद्रात् पौडानुकुल्यवपने ।

(मपच-निष्यचात प्रा, प्रियसुखात् प्रा, सद्रभद्रात् प्रा, घीडान्कृत्स्वयपने छा) ।

एभ्यः ज्ञमादितंत्र्ववेषु डाच् स्थात् कृञाः सपत्राकरोति निष्यताः करोति स्यां। प्रियाकरोति सुखाकरोति। मद्राकरोति भद्राकरोति। प

<sup>%</sup> समयय निष्कुत्व दु: स्व स्त्य सत्य सत्य तथात । यापन व निष्कुषिय प्राति-क्ल्यव पाकय अग्रथय तिसान्। समयात् यापने, निष्कुलात् निष्कुषि, दुखात् प्रातिक्ल्ये, स्तात् पाके, सत्यात अग्रपयं अयं डाच् स्यात् क्रांअ परे। समयाकरीति समयं यापयतीत्ययं:। निष्कुताकरीति, द्रांडिम निष्कुषियतीत्ययं:। अन्तरवयपस्य विष्किरणं निष्क्रीय:। निष्काषिमित्रार्थे भवं निष्कुलं करोति। दुःखाकरीति, अधुं पौड्यतीत्ययं:, अन प्रातिक्ल्यं। स्थाकरीति मांसं स्लिन पचतीत्ययं।। सत्याकरीति सुनि: सत्यं कथ्यतीत्ययं:, अन म भप्यः। भप्ये तु सत्यं दिश्यं करीति। पाणिनिः प्राधाद ०, ६२,६४,६६।

<sup>†</sup> सपत्र निष्यत्राथ्यां पीडायां, प्रियसुखाध्यां चानुकूल्ये (चित्ताराधने), सद्रभद्राध्यां वपने (सुष्डने) डाच् स्थान् क्रिजि । सपत्राकरीति स्थां, व्याधः सपत्रं अरं स्थण्यरीरे प्रवेषयतीत्यर्थः ; निष्यत्राकरीति स्थां, स्थणशरीरात् ध्रग्मपरपार्थे निष्कृासयतीत्यर्थः । "सपुङ्गश्यर्थावर्थनेन सपत्रं करीतीत्यर्थः । सपुङ्गश्य भपरपार्थे निर्धानगत् निष्यत्रं करीति योद्यः । च्यत्र सपत्रं (पत्रयुक्तं) करीति प्रावटः, निष्यत्रं (पत्रयुक्तं) करीति प्रावटः, निष्यत्रं (पत्रयुक्तं) करीति प्रावटः, निष्यत्रं (पत्रर्थाः) करीति योद्यः । स्थत्र सपत्रं (प्रयाकरीति सुखाकरीति स्थायं, स्थ्यरातुकूल्यं करीतीत्यर्थः । सद्र सदी स्ङ्गलार्थां, सद्रावरीति सास्रं नापितः, सङ्गलपूर्यं वपतीत्यर्थः । पार्खिनः ५।४.६१,६९,६०, "सद्राचिति चक्रव्यन्यः इति वार्त्तिक्षः ।

# प्रदी दन्नमाचद्वयसट् माने।

(दघ्र-माघ-इयस्ट् ।१।, माने ७)।

परिमाणार्थे एते स्युः।

गजपरिमाणः—गजदन्नः गजमात्रः गजदयसः। 🕸

# ्पू०७। सङ्ग्राशन्यतो डिन्।

(सङ्गा -- भन्-भतः ५१, डिन् ।१।) ।

दगी, तिंगी। १

# पू॰दा कति यति तति यावत्तावरेतावत्-कियदियन्तः।

(कति—इयन्त:१॥)।

किं-यत्-तदां डत्यन्तानां यत्-तत्-एतत्-किम्-इदमां वलन्तानां एतं क्रमात् निपात्यन्ते माने । क्ष

# प्रदा दशादेडी युते शतादौ।

(दमादी पा, ड: १।, युते वा, मतादी वा) ।

<sup>\*</sup> दन्नय मात्रय दयसय समादारे, तस्नात् ट। टकारस्य प्रयोकीन सम्बन्धः, दन्नट् मात्रट् दयसट्। परिमाणिनिङ ऊर्डपरिमाणा। गनः ऊर्डपरिमाणमस्य गनपरि-माणः — एयमेणे एते प्रययाः। टिल्लादीप् च। पाणिनिः ५।२।३०।

<sup>†</sup> प्रमुच ग्रत् च, प्रमुष्ठत, सङ्ग्राचासौ ग्रम्थत् चिति तस्त्रात् । ग्रम्थतीः सेव-स्त्रयोरसम्भवात् तदस्त्रभीसंहयम् । श्रङ्गावाचकात् प्रमुगत् (दश्रम् फादेः) श्रत्-प्रमुगाञ्च (चित्रत् प्रादेः) डिन् स्थात् परिमाणार्थे, उ इत् । दश्र परिस्थापसस्य दशी, एवं विश्वी (सासः), डिन् (१२६) टिलीपः । "श्रम्थतीर्डनिर्वक्तस्यः" इति वासिकम् ।

<sup>‡</sup> किं परिमाणनेषां कति, (का संख्या परिनाणनेषानिति तृपाणिनिः), एश्वं सब्बेंगोबाल्यानि । पाणिनिः ५।२।३१।

एकाद्यं यतं, विंगं यतं। #

### पूर्व। किंयत्तदेकान्यात् दिवह्मनामेकिनिद्वीरे डतरडतमौ।

(भि--श्रवात् ४।, दि व्ह्रनां ६॥, एकनिहारि श, उतरंडतभी १॥)। श्रनयोः कतरो वैषावः, एषां कतमः ग्रैवः। १

पूर्र तस् ती: । (तम् ।१।, र्कः ६।)।

त्ती: स्थाने तस् स्थात् । कृषातः सर्व्वतः श्रमुतः । \$

<sup>\*</sup> दश पादिर्यस स दशादिलकात्। पत्र पतदगुणसंविज्ञानवहुनीहिणा दस्र हिला एकादशादीनां ग्रहणं। (भतएव पाणिनी दशानादिख्कान्)। एवं उभयत्र पादिशब्दशीर्श्ववस्थावाविलात् दशादेशित विष्टपर्यनानानेव, श्रतादाविति श्रतसम्बर्धारेव ग्रहणं। तेन, एकादशादः विष्टपर्यनान् उः स्वात् युते (प्रिक्षे दित पाणिनिः) पर्ये, श्रते समस्ते च वाच्ये प्रत्यं:। एकादश्रभिर्यंत एकादश्र श्रतं, (एकादश्रधिका प्रतिन्न शते प्रति पाणिनिः), जिल्लान् (१२६) टिलीपः। एवं विश्वर्या युतं विश्वं स्तं, पत्र (१२६) विलीपः। एवं विश्वर्या युतं विश्वं सतं, पत्र (१२६) विलीपः (१२६) विश्वतेसीलीपे, (२५८) प्रकारलीपः। पाणिनिः ५११४५,१६६।

<sup>†</sup> कथ यथ सच एक य भन्य सन्तात, ही च व इवस ते सेषां। जातिमुणिकिया-दिभिर्ध्यव च्छेदी निर्दारः, एक स्थानिर्दार एक निर्दारः तिवान्। उत्तरय उत्तमस् ती। एभ्यो इयोर्क्षध्ये एक स्थानिर्दार्थे उत्तरः, वक्षनां भध्ये एक स्थानिर्दार्थे उत्तमः स्थात्, जिति टिलीपः। चनयीर्क्षध्ये कः कतरः, एषां भध्ये कः कतमः। एवं यतरः ययम क्रस्थादि। पाणिनिः ५ । ३। ६२, ८३, ८४।

<sup>‡</sup> प्रथग्योगात् पूर्वात् किमिष नानुवर्तते । सर्व्यवात् जिज्ञात् सर्विविभन्नेः स्थाने तस् पादंत्रः स्थान्, इति सामान्येन उन्नेऽपि शिष्टप्रयोगानुसरिण प्रयोक्तव्यमेव । भत्तत्व "साम्बेविभन्निक्तव्यसिः" इति साम्बे । ज्ञच इति, क्रच्यमिति, क्रच्येन इति, क्रच्याय इति, क्रच्याविति, क्रच्यस्ति , क्रच्याय इति, क्रच्याविति, क्रच्यस्ति , क्रच्यावि सिन्तिक्षानं क्राव्ये स्थादेव, तेन (१२१) टैः स्थाने पः, (२०४) द्रस्थाने मः, (२१५) इख्याने उः । विभन्निविश्वविद्यान्ति स्थान् तिभन्नावित्र, तेन वस्ति स्थाने तिस्ति क्रवे इति इत्यादी (१२२) गुचादिर्भ स्थान् । एवस्य विभन्निस्थाने तदादयो वे चादेशासदन्तानामन्यवत्यनिति प्राचः।

# प्रश्। देवादेहीप्तरोस्त्राच्।

(इवादी: ६।, बीस्प्री: ६॥, वाच् ।१।)।

देवचा वन्दे रमे वा। #

# पूर्व। खिनकोस्त्रोऽह्यादेः प्रयाः।

(चि वड़ी: ५।, चः १।, चदग्रदेः ५।, त्रग्राः ६।)।

स्रेवेष्टोय परस्याः स्यासः स्थात्, नेतु दास्मद्युष्पदः । सर्व्वित्वन् सर्व्वव, तव बहुव । १

# पूर्8। सर्वेकात् काले दा।

(सर्वेकात् ५।, काले अ, दा ।१)।

सर्विद्यान् काले सर्वदा । क

(पाचिति: "तिहितयासर्वेशिक्ति:"१।१।१८)।) त्राष् याच् भिन्नानानासव्ययतं नासी-स्रोके। पाचिति: ५।१।७,१४।

- \* देवादे: परयोधिंतीया-सप्तस्थीसनाम् स्थान् । देशं देशी देवान् वा वन्दे देवचा
   वन्दे । देवे देश्यी: देवेषु वा दभे देवचारसे । देवादिश्या—देवी वह: पुनर्मसर्थी
   मृत्याः पुरुषय घट्। पाणिनिः शुक्षाध्रश्रश्रक्षः
- † सिय वहत्वय तत्त्रसात्। सङ्घायेवहृश्यस्य यहकं। हिरादियंक्य स दादिः न दादिरदादिसासात्। दादिय (८६) स्वतादित्रक्षमात्रिपर्यंत्त रस्यत काह दि-वाद युप्दः। सर्वेक्षित् स्वयंपेः सर्वेद न सर्वेषः। सर्वेदाः सर्वेद्वः सर्वेदाः सर्वेद्वः सर्वेद्वः सर्वेद्वः सर्वेद्वः सर्वेदः सर्वेद्वः सर्वेदः सर्व
- ्र स्थलेश एकश्च वकात्। काली वर्त्तनानाम्बालामाः परकाः सहस्या दा सात्। एकस्थित काली एकदाः। यादिनिः ॥।३।१५।

# प्रप्। किमन्ययसदोर्हिस।

(किमन्ययत्तदः ५।, हिं: १।, च ।१।)।

वभ्यः स्यार्डिदाचस्यात्। किसन्काले कर्हिकदा। **क्ष** 

### ष्र्€। तदो दानीं वा।

(तद: ५1, दानीं ।१।, वा ।१।)।

तदानीं तर्हितदा। 🌵

# पूर्छ। पूर्वान्यान्यतरेतरापराघरीत्तरोभया-देसुसङ्गि।

(पूर्व- उभयात् ४।, एवुस् ११।, पक्रि ७)।

पूर्विसिमक्ति पूर्वेद्यः। 🕸

# पूर्दा दिक्षाग्दाहिग्देशकाले स्तात् प्रीपीप्तत्री ऽचो लुक्।

(दिक्-सब्दात् ४., दिग्-दिय-कार्ख ७), सात्।११, ग्री-पी-प्तप्रः १॥, भनः ४।, सुक्।१।) ।

क्षं चन्यच यक् सच तत्तकात्। चन्यकिन् काले चन्यहि चन्यदा, यि यदा,
 तिई तदा। पःचिनिः पः। श्रेशः।

<sup>🕆</sup> काली वर्त्तनानात् तदशस्दात् सप्तवा दानी वा सात् । पाणिनिः धाशास्त ।

<sup>‡</sup> पूर्वमः चन्याय चन्यात्रकः इतरकः अपरच चन्नरच उत्तरकं उभाव्य तत्त्रमात्। एस्पीऽष्टम्यः परस्याः सप्तम्या एद्युस् स्थात् चित्रं वाच्ये। पूर्वेद्युरिति चन, (५२०) चादिसा इत्यमेन तिवत्रकारचीकाः देवानामपि तिवत्तिसंज्ञाः विधानात् (२५८) चन्नार-चीपः। पाणिनिः ५।३।२२, "पूर्वाम्याश्वतरेतराप्रस्थाभयीत्ररेग्यः एद्युस्प्" इति "युव्यम्मात" इति चन्नथम् इति च वार्षिकम्।

परस्तात्, प्राक् । \*

पूर्ट। वैनोऽपी। (ना ११, एनः ११, क-पो ११)। पूर्वीण। पं

### पूर्व। दिच्चणोत्तरादाही।

(दविकीतरात् ४।, माःमाधी ।१॥) ।

द्विणा द्विणाहि। उत्तरा उत्तराहि। क

#### पूर्श वाधराचात्ताः।

(वा ११।, अधरात् ५।, च ११।, भात् ११।, ताः १॥)।

#### अधरात् अधरस्नात्, दिचणात् दिचणस्नात् । §

<sup>\*</sup> दिशि वर्णमानः श्रन्दो दिन् श्रन्थः, सच पूर्वादः प्रागादिकः । दिशि देशे काले च वाच्ये दिश्वाचकश्रन्दान् परासां प्रथमा-पद्ममी सप्तमीनां स्थाने सात् स्थान्, अन्च धातोः किप्रथने सावितात् स्थाः परस्य साते। जुक् स्थादित्यंः । यन्यकारेण तिस्त्यां विभन्नौनाभेकसुदाइरणं प्रयुक्तं परसादिति, परा दिक् परी देशः परः कालः, परस्या दिशः परसात् देशः परस्थान् देशे परस्थिन् स्थान् परस्या दिशः परस्थान् देशे परस्थिन् कालं, रित वाक्यानि । प्राक् इति प्राची दिक् प्राक् देशः, प्राक् कालं वा इति प्रथमस्थाने सात् तस्थान तस्य लुक् । मनौषादितात् पृवत् । एवं पद्यमीसप्तस्थीरिप वीध्यं। पाणिनः प्राइ।२०,३०।

<sup>†</sup> दिग्देशकाले वर्त्तमानिभ्यो दिक्षम्बद्देश्यः प्रीप्तग्रीरेनः स्त्राद्या। मूर्व्वेणेति पूर्वः पूर्व्विमन् वादत्यर्थः । पाणिनिः ५।३।३५,।

<sup>‡</sup> भाष भाहिष तो भाही, विवचनं यथासङ्गानिरासाय। दिन्देशकाले वर्भमानाभ्यां दिविषीत्तराभ्यां प्रथमा-सप्तयोः स्थाने भा भाहिष स्थान् । विशेषलात् साती वाधकावेती। दिविषः दिविषात्वन् या, उत्तरः उत्तरास्ति वाक्षं। पाणिनिः प्रश्राहरू, ३७,३८।

<sup>§</sup> ताः प्रीपीप्ताः । घथरप्रस्टात् चकारात् दिविधीक्तरप्रस्टाश्यो दिग्देशकाले
प्रयमा प्रयमी सप्तमीस्थानं चात् स्थात् वा । घथरः अधरस्थात् चधरस्थिन् वा अधरात् ।

# पूर्व । पूर्वाघरावराः पुराधावाः स्तादसोः। (पूर्वाघरावराः १॥, पुराधावाः १॥, सादसीः ०॥)।

पुरस्तात् पुरः, श्रधस्तात् श्रधः, श्रवस्तात् श्रवः। श्रतएव श्रस्।

### प्रह। चवत् याच् प्रकारे।

(चवत्।१।, याच्।१।, प्रकारे ७।)।

येभ्यस्त्र उक्तस्तिभ्यः प्रकारे याच् स्यात्, सच तद्दत्। सर्ब्य-प्रकारंसर्व्वया। †

प्रथ। ज्ञतः का ज्ञान्त जानेती ऽता ऽत्रेह सदै-तन्त्रधनेदानौं पञ्चादुपर्य्युपरिष्टात् परेद्यवि सद्योऽ-द्यैषमः परत्परारौत्यं कथम्। (कतः — कथम्। १॥)।

दिविष: दिविषक्षात् दिविकस्मिन् वा दिचिषात् एवं उत्तरात् । विञ्जलपचे प्रधरकात् दिविषसादिति । पञ्चस्यकोदाइरणं वहुलप्रयोगदर्भनात् । परिवित: ५१३।३४ ।

- पूर्वय पधरय पवरय ते। पुरय पध्य पवय ते। साव पस् च तौ तथी:।
  पूर्वस्य पुर: पधरस्य पध: अवरस्य पव: स्थान सादकी: परयी:। पुरसादिति पूर्वयन्दात् (५१८) प्रथमादे: सातः पादेशे, प्रनेन पुर पादेशः। पस् परे पुर पादेशे,
  (२५८) प्रकारलीपे पुर:। एवं पधरप्रव्हात् पधसात् पध:, प्रवर्शन्दात् पवसात् पव:,
  प्रतप्त, प्रस्विधायकस्त्राक्षावऽपि प्रनेन प्रस् परे पादेशविधानादेव, एतेथः प्रथमादेः
  स्थाने पस् स्थादिति वक्तव्यं। पाणिनः ५।३।१६,४०।
- † चन्द्रवत् सुखिनिखुक्ते यथा चन्द्रस्य चाङ्कादक्तिन सायं ग्रद्याते न तु धावत्या-दिना, तथाचापि चवदिख्को (५१३) चड्मादिसिवङ्गनसरज्ञातलेनैव सायं गाद्यां, न तु कोवछं सप्तमीस्तानज्ञातलेन । चत्रप्य— चड्मादिसिवङ्ग्यां पराशां (छदाइरच्य-ज्ञापकात्) डितीयादिविभक्तीनां स्त्राने याच् स्थात् प्रकारे । प्रकारः साद्यां । चकारः च्ययार्थः । सच तडदिखनेन, (६२०) प्रत्यये परे पुंवड्मावदिकं स्थादित स्वितं । स्वयं प्रकारं, सर्व्यं प्रकारिकः सर्व्यं प्रकाराय, सर्वस्थात् प्रकारात्, सर्वस्य प्रकारस्य, सर्व्यस्थान् प्रकारि—स्वयं इति । स्वतंथाया एव याच् इति पाणिनिः ५ १९१३ ।

#### एते निपास्त्रकी।

कसात्—कृतः, कसिन्—क कुष्ट कुष, ससात्—इतः, एत-सात्—सतः, एतिसन्—सष, सिसन्—इष, सर्वदा— सदा, श्रिसन् काले—एतिष्ट अधुना इदानीं, श्रपरिसन्— पद्यात्, कर्षे—उपि उपरिष्टात्, परिसन् सिष्ट—परैदावि, समानिऽक्रि—सदाः, श्रीसमक्रि—श्रदा, सिसन् वर्षे—ऐषमः, पूर्षिसन् वर्षे—परत्, पूर्वतरिसम् वर्षे—पदादि, इदम्यकारं —इसं, किस्मकारं—कथम्। \*

पूर्प । त्यनाद्य चिर दिचिणाद्यारे—स्त्य-ष्टन-त्र-त्यण्-मा भवादौ। (लान-पायादेः प्रा, ल-माः रण, भवादो का)। एभ्य एते क्रमात् खुः भवाद्यश्ची त्यनत्यः तनत्यः, श्रद्यतनी श्चस्तनी; चिरतः परुष्ठः, दाचिणात्यः पाश्चात्यः, श्वादिमः मध्यमः । परं

कलादिति। एवा तावत् टीका, सक्यें व पुत्तकेषु,त स्त्वमध्ये सितिविष्टा हम्मते।
 पाणितिः प्रश्चित्र,०,१२,१३,१०,३,५,१६,६,१६,१०,१८,३२,२१,२२,२४,२४,८५,१५४,१०४,१०४,।

<sup>†</sup> त्यमय घटाय चिरय दिवाय घादिय ते चाद्योः यस स तकात्। त्यथ प्टनव तय त्या व स्व ते। चान निम्नित्तमनाहत्य सन्देरित क्षमग्रहणं, त्यष्टनव त्यक्षं इति पाठी वा। त्यचादेः त्यः, चयादेः प्टनः (तनट् इति जीमराः), चिरादेः वः, दिच्चादेः त्यः, चयादेः नः व्यात्, तन भन इत्याय्ये। त्यम भनः त्यम वस्ति वा इत्ये त्यम्यः, प्रवं तनत्यः। चयमना चयतनी, (२५०) विच्चादीप्, पवं चाः (पूर्वेदिने) भना चासनी। चयादितात्— यसनः, विदन्तनः, दिवातनः, दोवातनः, सायनामः, सदातनः, सनातनः, प्रतातनः, प्रतातनः, प्रतातनः, प्रतातनः, प्रतातनः, वायनामः, विदन्तनः, विवातनः, प्रतातनः, व्यापनः। विरे भनः विरवः, प्रत् भनः प्रवः (चम तकारः चोपः), पवं प्रार्थिः, विच्या भनः

## प्र६। किमः तार्यनात् चित्रनी।

(किस: ५।, क्यनात् ५।, वित-धनी १॥)।

कस्यचित् कदाचित्, कस्यचन कदाचन। \*

### पूर्ण | श्रादिस्त: | (पादिः १।, तः १।)।

(३२३) चैकाच्दबहोऽ: इलोतमकारमारभ्य यस्य उक्ष: स तसंज्ञः स्थात । 🕆

इति तपाद:।

#### इति खाद्यन्ताधायः।

स्यायनाधिकार: समाप्त: ।

दाचिषात्यः, दिचिया इति (५२०) षा:। यिक्तात् (४१६) वृद्धिः। एवं प्रयात् भवः पादान्व:। चादिना पौरस्य इत्यादि। चादौ भवः चादिनः, मध्ये भवः मध्यमः। "घवान्तपश्चाती डिसः" इति क्रमदीश्वरः । तेन घविमः, घन्तिमः, पश्चिमः । "घवादि-पश्चात् जिनच" "भलाच" इति, वार्त्ति तदयम् । पाणिनि: शराध्म, १०४, शश्म, २३।

- \* 'प्रसाकल्ये तु चित्रन' इत्यमरीतयी: चित-चन-इत्यव्ययग्रन्दयीयाँगेन कचित की-चित कीचित् काचित किखिदिलादिपदे सिकेऽपि एतत्मृतकरणं कथित् कदाचिदि-लादेरेबपद्वनिर्वाष्ट्राये, तेन बादाविकानित्यादी (४१६) पूर्वपदस इस्मादि सादिति।
- । च चाहिर्यस स चाहि:। प्रधानेन स्वपदेशा अवनीति साधात्, तहित-प्रकरचीक्क-विभक्तिस्थाननातानामादेशानामपि तद्वित-संभा स्थादिति, तेते (५१८)-पूर्वेष इत्यादो (२५८) पौ पर चकारखीपादि विदं।

# व्याद्यन्ताधिकारः।



#### पूम:। स्वाद्यध्याय:।

**-->**≎○♦○≎~--

१म पादः—संज्ञा।

#### पुरुष्ट। घो:--

तिप् तस् श्रान्त सिप् थस् थ मिप् वस् मस्—
ते श्राते श्रान्ते से श्राये ध्वे ए वहे महे (की)
यात् याताम् युस् यास् यातम् यात याम् याव याम—
ईत ईयाताम् ईरन् ईथास् ईयाधाम् ईध्वम् ईय ईविह ईमिह (खी)
तुप् ताम् श्रन्तु हि तम् त श्रानिप् श्रावप् श्रामप्—
ताम् श्राताम् श्रन्ताम् खश्राधाम् ध्वम् ऐप् श्रावहेप् श्रामहेप्(गी)
दिए ताम् श्रन् सिप् तम् त श्रम्प् व म—
त श्राताम् श्रन्त थास् श्राथाम् ध्वम् इ विह मिह (घी)
दि ताम् श्रन् सि तम् त श्रम् व म—
तन् श्राताम् श्रन्त थास् श्राथाम् ध्वम् इ विह मिह (घी)
याप् श्रत्स् उस् थप् श्रथुस् श्र यप् व म—
ए श्राते इरे से श्राथे ध्वे ए वहे महे (ठी)
ता तारी तारस् तासि तास्य तास्य तास्य तास्य तास्य है (डी)

यात् यास्ताम् यास्तम् यास्तम् यास्त यासम् यास्त यासम् सीष्ट सीयास्ताम् सीरन् सीष्ठास् सीयास्त्राम् सीध्वम् सीय सीविह्य सीमहि (ढी)

स्थित स्थतम् स्थन्ति स्थिति स्थयम् स्थय स्थामि स्थावम् स्थामम्— स्थते स्थेते स्थन्ते स्थमे स्थेथे स्थावे स्थावहे स्थामहे(ती) स्थत् स्थताम् स्थन् स्थान् स्थतम् स्थत स्थम् स्थाव स्थाम— स्थत स्थेताम् स्थन्त स्थाम् स्थियाम् स्थायम् स्थे स्थावहि स्थामहि (धी: ४।, तिष्—स्थामहि।१॥)। (यी) \*\*

एतानि सामीतिमतसङ्घानानि घीः पराणि प्रयुज्यन्ते । १

### पूर्र। की खी गी घी टी ठी डी टी ती घ्यो ऽष्टादग्रगः। (की-णः १॥, षष्टादमगः।१॥)।

तान्यष्टाद्याष्टाद्य अमादेतत्संज्ञानि स्यः। 🕸 🤺

 <sup>&</sup>quot;प-न-णा दिस्त्रीन्कारकेतः" इति वार्त्तिकस्वम्। पाणिनिः ३।४।७८। अत्र स्वे अष्टादशानाभेव विभक्तीनाम्ब्रेखः । पत्रात् खकारस्थाने आरदेशा भवन्ति । यथा, २।४।८५. ३।४।८२, १०२, १०८ इत्यादि ।

<sup>†</sup> धीरिति पश्चयनं तिवादीनां प्रव्ययत्तज्ञापनार्थे। सद्द भणीत्या वर्णते यत् तत् भाशीति, तच तत् शतखेति भागीतिश्रतं, तत् सङ्गा येषां तानि सागीतिश्रत-सङ्गकानि वसनानीत्यर्थः।

<sup>‡</sup> ष्रष्टादम ष्रष्टादम प्रति वीसायां (४८३) षम्रस्, ष्रष्टादममः । तानि तिवा-दौनि ष्रष्टादम ष्रष्टादम भूता, क्रमान की-पादिसंग्रकानि स्पृरित्ययः । भगवता पाविनिना तु ययाक्रमं लट् (३।२।१२३), विधिलिङ् (३।३।१६१), छोट् (३।३।१६२), खङ् (३।२।१११), लुङ् (३।२।११०), लिट् (३।२।११४), लुट् (३।३।१४), पामीर्लिङ् (३।४।११६), लुट् (३।६।१३), लुङ् (३।३।१३६), एतत्संग्रकानि क्रतानि ।

#### पूरुग पञ्चर: शिचा

(पश्च १॥, र: १।, शित् ।१।, च ।१।)।

ताः पञ्च रसंज्ञाः स्यः, शिच। #

#### पूर्श नवगः पमे जितोऽन्यङिद्भगं घे।

(नवम: । १।॥, पसे १॥, जित: ५॥, चन्य कि इत्रां ५॥, घे ৩॥)।

तानि नव नव क्रमात् प-म-संद्वानि स्युः, तेच जितो धोः परेस्तः, तदन्य-ङिद्वान्तुक्रमेण स्तो घे। गुः

भू३**२ । ङिट्पिट्र: । ं**(ङित्।श, पित्।श, रः श)। अपित् रो ङित् स्थात्। ‡

पू ३३ । कित् ठी ढीपं। (कित्।रा, डी।रा, डीपंरा)

अपित् ही व्याः प च किसं मं स्थात्। §

ता: पञ्च की स्वी नी घो टी इति पञ्च, प्रथमीपस्थितपरित्यागे प्रमाणाभावात्।
 त्या र मंज्ञापलन्तु पश्चिद्वादी (५५४) वसीठग्रेये वन न इस्, प्रियद्वेन जिल्लात् (५२२) न गुण्य (५४२) । प्रकारित्प्रत्यस्थ ग्संज्ञया (तदी ज व व्यथे) तुदतीत्यादी न गुणः, सवन्दीव्यन् इत्यादिषु श्रदप्रथये परे श्रप्रक्षमृदियः। पाणिनिः ३।४।११२,११४। गः च सर्विधातुकान्, परः - चार्विधातुकान्।

<sup>+</sup> नव नव ६ति (४८६) नवशः । पञ्च सञ्च पसे, पंपरक्षेपदं, परोद्देशकाला-बीधनस्वरूपयोग्य, संभातनिपदं भाताद्देशकाल लंबाधनस्वरूपयोग्यं। ज इत् यस्य स जित् तस्यात् जितः । ज्इत यस्य स हिन्, भागाय ज्ञिष भागाज्ञितौ ताथ्यां। तानि तिवादीनि । तेच पसे आनुवस्थातोः सः, तद्यकात् आनुवस्थानद्यात् स्वातोः पंस्थात्, ज्ञानुवस्थान् संस्थात्, कर्त्तरि वार्षेय इति सर्व्यवान्यः । ज्ञानुवस्थान् समिति विशेषा-भिधानात् भागा इह आनुषस्य-ज्ञानुवस्थायान् भानो विशेषः । पाणिनिः ११४।८६,१०० ।

<sup>‡</sup> क इत्यसास कित्, प इत्यस्य स पित्, न पित् चिपित्। चिपिदिति क्षित्रं पदं परच चतुत्रचयो। पाणिनि: १।२।४।

<sup>§</sup> क्याः पं दीपं, यात् यासामित्वादि नव । पाविनिः शाशार • ४, वार्त्ति बचा

#### पू ३८ | दा-धा दा । (दा था।१।, दा।१।)।

त्रिपत्दाधा च दासंद्रः स्थात्। \*

# प्रप्। यलोऽचेक् जि:।

(यल: ६।, भवा'३।, इक्।१।, नि: १।)।

श्रचा युक्तस्य यलस्य स्थाने इक् क्रमाल् निसंत्रः स्थात्। 🕆 🔻

# प्रइ€। सञ्चत्, दिस्तु वा।

(सज्ञत् । १।, वि: १।, तु । १।, वा १।) ।

जिः पुनर्ने स्थात्, दिसु वा स्थात् । 🕸

ॐ दा घा इत्युभयं स्वक्ष्मं, तेन — दा ख खुनी, दा त दाने, खुदा ज् लि ख, खुधा ज् लि ख इति चतुर्या. एव देख पालने, दी य केंद्रे, घिटपाने इति चयाया एचीऽशित्या (६०८) इति खाकारे क्षते दा-सज्ञा, थिति परे खाकाराभातात् दासंज्ञा नालीति । ष्यिदियनेन देप शाधने इत्यथ दासंज्ञा निवंध:। दासज्ञाफलन् (५४८, ५५२, ८१२, ८१२) एतेषु मुचेषु दट्या । पाथिनि: १।२।२० । खाच दा ८ घः।

<sup>†</sup> प्रचास्त्रवर्णेन युक्तानां य व र ल इत्येषां स्थाने क्रमेण-इ उ ऋ ल इत्यादेशाः जिमेचाः स्युरित्यर्थः। फलान्तु (६५१,६६१) इत्यादिषु ट्रष्टकः। लक्षारस्य जिने सम्यवित, यल्मेच्यानुरीधादन्तःपतनं। पाणिनि. १।१।४५। श्रव जि: - सम्प्रमारणम्।

<sup>‡</sup> सक्तत एकवारं, जिन्लिन्वर्षते । यावत् सम्यवसाविधिनिति न्यायात् पुनः समयोससाधानेऽपि, त्रिः पुननं स्यात् । तेन, व्यय व्यध व्यव व्याद स्थात् । धान्ता एकवारं य स्थाने इक्ते पुनः वि इत्यस्य स्याने उर्ने स्थादिति । दिन् या इति वागव्दः समुचयार्थः, दिलख पुननं स्यादित्यंः । तेन, कितप्रस्ति-धानीः मनि कति दिलि विकित्स धातीः, विकित्ति सित्तिक्तितीत पुनः सित कति विकित्ति पिषतोत्यादी पुनिदेलं न स्यादिति । एवं कथातीर्थे कि दिले चेक्रीयधानीः मनि चेक्रीयधने स्थादित । एवं कथातीर्थे कि दिले चेक्रीयधानीः मनि चेक्रीयधने स्थादाविप पुनर्भ दिल्लिति दुर्गादामः । वक्तस्य (पाणिनो 'अनस्यासस्य' इति खिल्लाते । दिल्लितं वाशब्दस्य व्यवस्थितिभाषा स्थिः, तेन कतदिलानां पुनिदिने स्थात्, जधादेलु (१७४) दिलस्यायां स्थानिष् पुनिद्देः स्थादित्ययं । पाणिनः स्थात् । स्थात्यः

# पूर्छ। प्रागच्कार्यादिचि दिः।

(पाक ।१।, चचकार्थात् ५।, चि ।, हि: १।)।

त्रिच परे अच्-कार्यात् प्राक् हिः स्थात्। \*

पूर्वः पूर्वः खि:। (३: ४।, पूर्वः १।, बि: १।)।

देधी: पूर्वी भागः खिसंत्रः स्थात् । क

पूर्ट। खर्नी मुक्ताः (स-वीरा, मु-कशा)।

स्त्री घ्रसंज्ञी घीं रसंज्ञः स्थात् । क्ष

पूर्वः स्थे सः। (सः ११, से ७।, रः ११)।

स्ये परे खो रसंजः स्थात्। §

इति संज्ञा-पादः।

<sup>\*</sup> भवः कार्यं धव्कार्यं तसात्, प्राक् शब्द्योगे (२००) पद्यसी । यत्र स्वःवणं परे स्वरवणं स्थानं कियत् भादेशः सभाविष्यति, दिलच सभाविष्यति, तत्र प्रथमं दिलं स्थान्, पद्यान् स्वरकार्यं स्थादिल्यथं । यथा — निनायं लुहाव इत्यादौ भादौ दिलं पद्यात् विद्यस्था । यत्र एकदा भव्कार्यं दिलयं । प्रमक्तिस्तवेयां नियमः । नियमः सायं प्रायिकएव, तेन भरिष्वतौल्यादौ भादौ गुणे ससी प्रथात् दिल्यमिति । पाणिनिः १।१५८ ।

<sup>†</sup> देशित धीरित्यस्य विशेषणं, धीरिति मधिकारप्राप्तम् । स्वारं स्वारं ननतौत्यादी धातुत्वाभावात् पूर्व्वभागस्य न खिलं। पाणिनि: ६।२।४ । त्रव खि: = मध्यासः।

<sup>‡</sup> लघ्गुरुसंत्रयी: फलं (५८२,६३६) द्रत्यादी द्रष्टव्यं। पाणिनि: १।४।१०,१२।

<sup>§</sup> स्थे क्रियने भैवेष्टसिडी स्व इति कथनं कदाचित् कल्दसि संयोगे परे गुक्ने ऋषाः दिति सूचनार्थे, ऋतएव प्रक्रेवेशिह पिङ्गलस्वम् । पाणिनिः १।४।११।

#### २य पादः - पवत्।

---

#### (१) भू सत्तायाम्।

भू-तिप इति स्थिते—

प्र8१ | विश्वाप्रे। (विश, शव्। १।, रेश)।

रे परे घो: यप स्थात् घेऽधे । \*

### पू४२। गुर्घङ्याकिङिति।

(णु: ११, घुड: ६१, च ।११, श्र-कडिति ०।)।

त्रत्यस्य घुमंज्ञोङय णुःस्यात्, नतु किति ङिति । भवति भवतः । पं

<sup>\*</sup> घ मधें कर्नि वाची। मप: मप इत्, भकार स्थिति:। ,शिचा त् (४२०) स्थादानित्यादिना तिष्ठाद्यादंमः। (८२१) ट-भावगी थंका बाधितावशिष्टे सुतरां कर्त्तव्यं मप्तात्, तेनाच घे इति व्यथंमिति चित् उच्यते,—कर्माकत्तिर वाचे (८२०) ढवदढघ इत्थनेन यगादातिदेशात् भवादेवांधे, चिकार्षत इत्थादी (८२१) मन्यर्थ-त्यादिना पुनर्थगादिनिधेषे, भाशिककर्भृवाच्यतात् भवादयः स्पृण्ति। नच भवादे वाधिकस्थ यगादिनिधेषे सुतरां भवादिना भाव्यमिति वाचं, स्क्रद्रगती विप्रतिधंधो यदगाधित तदवाधितभविति त्यायात् पुनः भप्तसङ्गाभावात्। भत्रपथ भगूढ इत्यच (६५०) सकांऽप्रातिपचे सेनिधंधो भवित वाचंत् स्वराहिति। पाणिनिः श्राह्म ।

<sup>†</sup> गर्गेणः, घुयासी चक्रभिति घुक् तस्य। क च क च कडी, कडी इती यस स किलित्, न किलित् भक्षित् तिसान्। खघीरकः (८१) चकारात् (८) भन्यस रहस्य ग्रयः, याहरजातीयस्य विप्रतिषधी विधिर्ण ताहग्जातीयस्येति न्यायात् किति कित् प्रस्थास्यां भिन्ने भन्यस्य प्रस्थाः। निम्माव्यवहित पूज्वविर्म-धात्ना, धात्मरजातयोः भुग्रपोय गुणः स्यात्। एवं (८४२) कास्यक्षस्यस्य किस्तकरणात् कर्यावित् स्थाप्ति ग्रयः स्थादित्, यथा सुदमाचि मीदयतीस्यादि । भृतिप् इति स्थिते, थप्, सकारस्य गुण भीकारः, (२५) अव्। एवं भवतः इत्यादि । पाणिनः धाराहि, भप्, सकारस्य गुण भीकारः, (२५) अव्। एवं भवतः इत्यादि । पाणिनः धाराहि, भप्, सकारस्य गुण भीकारः, (२५) अव्। एवं भवतः इत्यादि । पाणिनः

### पूरुहा लोपोऽतोऽदेचोः।

(स्रोप: १।, चत: ६।, चत-एची: ७॥)।

श्रकारस्य लीपः स्यात् श्रकारे एचि च परे। भवन्ति, भवसि भवधः भवधः।

(१०८) श्रा तिमभवि। सवामि भवावः भवामः। %

# प्र81 सुब: प्राप्ती वा मं।

(सुव: ५।, प्राप्ती ७।, वा ।१।, मं १।)।

प्राप्ती भुवी मंस्यादा ही। भवते। 🕆

#### पृष्ठपू । याचातोऽतः।

(द्रे।१।, आ।१।, भाष-भात: ६।, भत: ५।)।

अकारात् परयोरायातोराकार देः स्यात्। भवेते भवन्ते, भवसे भवेथे भवध्वे, भवे भवावहे भवामहे । \$

अ भव अदिवीसित प्रकरणवलात् थी: परव नातयीसि वहणं, अथा भविन भवे भवन वुभूषंतीत्यादि, मुरारि: क्रणोक्तविम्लादौ न प्रसङ्घः । नीपीऽतीऽदेतीरिश्वेष पाठः साधः. एकारभिद्रानामनावण्यकतात्, अदेधीरिति तृ लिपिकारप्रसादागत इति । भविन इत्यव अपीऽकार्लीप. । पाणिनि: ६।१/८० ।

<sup>†</sup> भू मत्तायामिति गणपाठात् भूषातीः सत्ता एव पर्धः, सत्ता च उत्तसिर्वयः मानता च । प्रतिवर्वयः पर्धः (४३१) परस्मेपटभिव । यदा तृ प्राप्तिरयः तदा आत्मनेपटभिव भवती श्रेतत्वयः पर्वत् पृत्रां । प्राप्तिमन्पक्षत्रस्वयः 'इति भक्ष्मन्नः । प्राप्तमनेपटभिवित की चित् । धे कर्मि वाच्ये इति भक्ष्मनुताधिकारात् अनुवर्त्तते । प्राप्तमनेपटः प्रकर्णं दिला प्रवेतरस्वकारणं िरलप्रनार्यापनार्थे प्रथमप्रयुक्त भृषातोः पटभगुदायः प्रदर्भनार्यद्य । पाणिनिमते भृषातुः परस्तेपदी सत्तार्थ्य ।

<sup>्</sup>रे द्वा इति भिन्न पटं। भाष च भात चिति तस्य। भाष भाग विते कोबलयोरसम्भवात् तदादि विभन्नीनां यहणं, तेन भाथे भाते भाषां भानां इत्यंतियां ग्रहणं। भवेते भवेथे — स्थमयत अनेन भात आथयोराकार है, (२३) गुणः। भव

# प् ४६। ख्या या-युस्-यामा-मीयुसीयम्।

(ख्या: ६।, या-युस् यानाम् ६॥, ई-ईयुस्-ईयम् ।१॥) ।

अकारात परेषां ख्याः या युस् याम् एषां खाने-

ई ईयुम् ईयम् एतं क्रमात् स्यः। अ

भवेत् भवेतां भवेयः, भवेः भवेतं भवेत, भवेयं भवेव भवेम। भवेत भवेयातां भवेरन्, भवेयाः भवेयायां भवेष्वं, भवेय भवे-विह्न भवेमहि। भवतु भवतां भवन्तु।

### पूर्वा हेर्नोपोऽस्याप्रोस।

(इ: ६।, कीप: १।, अस्योद्री: ५।, अ ।१।)।

श्वकारा-दस्याभ्या-मुप्नुभ्याच हेर्नोपः स्थात् । 🕆 भव भवतं भवत, भवानि ।

पृष्ठद्र। व्यस्य य्यनुकार डाच् च्रिकाणेऽलं सन्मनोऽदेऽन्तः पुरो ऽस्तं तिरः कारिकार्यादे धौ

सः । (बस्य ६।, गि-- चर्यादेः ६।, घी ०।, सः १।)।

एषां व्यानां धी परदे सः स्यात्। ३

इकारक रणे नापि पदसिद्धौ (५ स्ते) दिमाववर्णे न सङ्ग्यकमाववर्णस्य साम्यमयक्तिमिति क्रसा दिमाचक रर्णुएवं परवापि बीध्यम् । पाणिनि: ७।२।८२ । अपव इय् इति इस्तः ।

<sup>\*</sup> ग्याद्रति ग्रहण भदन्तभातीकां भगाप्ताये। पाणिनि: ०४२ ८० ।

<sup>†</sup> स्यः संथोगः, नात्ति स्वी यत्र सीऽस्यः, उप्च तुत्रति उप्नः, पस्यशासातुप्नप्रेति ; पस्योप्नुत्तस्रात् । चकारादकाराज्ञ । उपनुग्यां यथा—तत्र हितु । पस्याभ्यां किं, पाप्रहि । पार्विनिः ६।४।१०५,१०६ ।

<sup>‡</sup> भनुकारी भनित्यटिह्लाबनुकरणश्रद्धः। गिथ भनुकारय डान् च च्यि कथे च भलम् च सत् च मनस् च भन्दस् च भन्तर् च पुरस् च भन्तन् च तिरस् च

पृष्ठर । प्राग्वन्ता गो उन्तरदुर्गे गोदि इन मीना चिन्वानिष् शान्तानशो,-गद नद पत पद दा मा सो इन वा या द्रा ग्रा वष वह शम चि दिहान्तने,-बी त्वन निंस निन्द निच मवान्ता- ' इनो,-ऽकाखाद्यपान्तान्त-ने:।

(प्रास्तत् ।१।, न: ६।, च: १।, धननर्-अदुर्गी: प्रा, चादि — नग्न: ६।, गद — नी: ६।, वा ।१।, तु ।१।, धन — हन: ६।, धक्त — नी: ६।)।

णादे धीं हन्ते मींनाते हिनोते रानियः यान्त-नयो गदायन्त-नेय नस्य अन्तरो दुर्वर्जगेय परस्य णविधिहेतौ सति णः स्यात्, अनादे मीवान्त-इन्तेः कादि-खादि-वान्तवर्ज-ध्वन्त-नेय वा स्यात्। अन्तर्भवाणि प्रभवाणि। दुरन्तु दुर्भवानि। भवाव भवाम। भवतां भवेतां भवन्तां, भवस्व भवेथां भवध्वं, भवे भवावहे भवामहें। \*

कारिका च उत्यादिशित तस्य । डाच् वि दित ही प्रत्यथे (५०१, ४८५), अव तदनानां यहणं । अव्ययानाने वां प्रज्ञानां धाती परपदे सित समासः स्वादित्यथं । यथा — प्रणस्य, सनत्कत्य, पटपटाक्रत्य, क्षणीभ्य । कणे मनम-भदी तृहायें, कणेक्रत्य मनःक्ष्य, पयः पिवतीति शेषः । भलकृत्य । सत् चाटं र. सत्कृत्य । नज्पूर्यं त्वेऽपि भसत्क्र्य । चटः भन्पदेशे — भटःक्ष्यः अन्तगैत्य प्रस्कृत्य । असमियपचसी, भलकृत्य । तिरीभ्य । कारिका स्व्यादायव पीडास्, कारिकाक्त्य । उरीक्रत्य, भादिना उरिती अस्तीनां यहणे । एषु समामात् (११७६) क्वाची यप् । भव समाधः पकपदीभावमावं, दलादिसंज्ञा त स्यादानानामेव, अतः समासप्रकरणे एतत् स्वं नक्तां । धात्यकरण्यादित-पत्वविधः पूर्वं समासकरणात् समासाभावे एता नस्यादिति स्वितम् । पाणिनः १ । ४।६१६,६२,६३,६४,६६,६०,६५०,००,०१।

श्रवास्ति दुर्यव सोऽदः, भद्रवासी गियति भदुर्गः। भन्तर्च भदुर्गियेति
 तस्तात्। सूर्वत्य णादिव इन च मीनाच हिनुच भानिप्च तालव्यःशानःनग्र चेति तस्त्र,

### पूपूर्व बीटी बीष्यम् घोरमा।

(बी-टी-चीव अम. भम ।१। भी: ६। भमा ।३।)।

श्रासु परासु धीरम स्थात न तु मा योगे। श्वभवत अभवतां श्रभवन्, श्वभवः श्वभवतं श्वभवत, श्वभवं श्वभ-वाव अभवाम । अभवत अभवेतां अभवन्त, अभवयाः अभवेषां श्वभवध्वं, श्वभवे श्वभवाविष्टि श्वभवामिष्ट । \*

मुद्रेन्यणादिश्ति (५७०) णीपदेशं क्रांता ज्ञेष:। (५६६) पुनर्देन्यतप्राप्ति: स्वादिति । गह्य नद्येत्वादिइन्दे गद — दिहा:, ते चन्ते यस स गद — दिहान:, स चासी नियति गर्-टिइन्तिनिसस्य। मदी मने यस्य स मदानः, सवासी इम चेति मदानहम, भनच निसंच निन्दच निवच सवान्त इन चेति तस्य। कस्बी भाषी येवां ते कस्वाद्याः, मुईन्यघोऽने येषांते पानाः, कखायाय पानाय कखायपानाः, न कखायपानाः त्रकखाद्यवाला:, ते चक्ते यस्य सः चकखाद्यवालाल: सवाधी निवेति तस्य i---

यचा--प्रचायति प्रहणिष्यति इत्यादि । मीना इति त्रायुक्तस्य मीधातोः, हिनु इति ययुक्तस्य द्विघातीर्येद्वर्णं। चानिप इति विभक्ति:। प्रयास्ति इति भान्तनभवात् णालं, प्रमष्ट इति न गालं । गहाद्यन्ते नेर्यया — प्रणिगदती त्यादि । दाइति हासंज्ञ-कस्य ग्रहणं, तेन — प्रणियच्छति प्रणिदशति प्रणिदधाति । देङ दी घेट इति त्रयाणां (६०८) भाकारे प्रणिदास्यते इत्यादौ खलंस्यान्, त्रिति परे तृ भाकाराभावान् दासंज्ञा-भादेन णत्तं। दीकः इत्यस्य (२०४३) उत्तदेशे णत्तंस्यादेव । मा इति स्वरूपग्रइणं— तेन मार्क्षल, माल, मार्ङ्य, इत्येतेषांणलं स्थात्, मीअर् मीङ्य मीङ्ग इत्येषां (७४५) डाटेग्रे, एवं सेङ्रेलस्स (६०८) चाकारे चस्रादेवेति। भनादेसुवा— यवा— प्राविति प्रानितीत्वादि । प्रनिकरीति प्रनिस्तादित प्रनिभेवित इत्यादी कादि-खादि-पानान्त-निलात् न चलं। तक्षित्रनिलात् प्रचिपचिति प्रनिपचतीत्वादी विकलः:। भन्तर्भवायोत्यादी भानिपो नस्य गर्लः। पाविनि: ८,४।१४,१६,१७, १5, १८, २२, २३, २४।

\* णादिइनमीनादीनामनुत्रतिमाश्रद्धाइ धीरिति। माइत्यनेन मास्र-प्रव्दस्यापि यहर्षः । योगसुभर्षेन, नत्भव्यवद्गितलेन । भम् इत्यागमः, नदत् (१७) भादी खादिति । भभवदिति मू-च्यादिप्, भनेन भ्रम्, (५४१,५४२,३५,६४) श्रप्, गुपः, भोस्ताने भव, दस्याने त्। एवं सर्व्वतः। पाचिनिः ६।४।३१,७४।

पूप्र। व्यांसि:। (श्वां अ, वि: १ः)।

धोः सिः स्यात् व्यां। \*

पूपूरा भूस्थापिबदेनी लुक्ष्मे।

(म्-स्था-पिव दा-दन: ४।, सुक्।१।, पे ७)।

रभ्यः सेर्नुक् स्थात् पे। अभूत् अभूतां। 🕆

पूप्र। सुवो वन् टीळाचि।

(सुव: ६।, वन ११।, टौकाचि ७।)।

भूवी वन्स्यात् टीर्क्वोरचि परे । श्रभूवन् । 🕸 श्रभूः ग्रभूतं ग्रभूत, श्रभूवं श्रभूव श्रभूम ।

पूपूष। वसोऽरखेमनौदितः।

(वस: ६।, भरसा ६।, इस् ।१।, भनौदित: ५।) ।

अनीदितो धीः परस्य अरस्य वसस्य इम् स्थात्। § अभविष्ट अभविषातां।

<sup>#</sup> पर्यगतिविश्वेषात् निभित्तगतिविश्वेषस्य बलवस्त्रात्, प्रय श्रप्शनादीनां यकीऽपि बाधकः। तंन कत्तेरि प्रभविष्ट, कर्माण अभाविषातानित्यादि। पाणिनिः ३।१।४३,४४।

१ भूष स्वाय पिवय दाय दन चिति तस्मात्। पिव दित निर्देशात् पा स्व रचये पै प्रोधे दखेतथी: अपाधीत्। दादति दासंज्ञकः, तेन दै प शोधने दखस्य भदासीदिति। अभूदिति द्या रतात् (५५४) वर्धोऽरस्थेति न दम्। किस्तात् (५४२) न नृषः। सुक्करपात् (५०४) न डिविः। पाणिनिः २।४।७०।

<sup>‡</sup> शुव इति षष्ठालस्य मृघातीर्वन्तवर्षं धातवयवतात् तिस्त्रान् परै मृघातीः (१४२) मृष्यविधिधार्थम् । बनीऽकार उदारवार्थः, न इत् (१७) घनी । सू-भन् (५५०,५५१,५५१) प्रस्टन् । पाधिनः ६।४।८८।

<sup>§</sup> न रीऽरलस्य । नास्ति चौत् इत् वक्तसः चनौदित् तथान् । वस इति कनःस्यवकारादिः प्रत्याकारः, घरस्येति (५१०) पच रः ब्रिकेति स्पीक्रसिकस्य ।

#### पूपूप्। मान्तोऽदनतः।

(मान्त: ६), ऋताशा, भगत. ५।)।

मस्यान्त् इत्यस्य चत् स्थात् नत्वकारात् परस्य । \*
अभविषत्, अभविष्ठाः अभविषायां ।

पूप्६। घे स-लोगो वा । (वे अ, म लोगः रा, मारशो। भे परे सस्य लोगो वा स्थात्। क

# पूप्छ। टी ठी ढीं घो ढिचः सेमस्त इलो वा।

(टी-ठी-ढी-घः ६।, ढ ११।, इच. ५।, सेम: ५।, तु ११।, इल: ५।, वा ११)।

इतः परस्थासां धस्य ढः स्थात्, सेम्हलात् परस्य तु वा स्थात्। श्रभविद्वं श्रभविध्वं, (६४) क्षप्रभसोरिति सस्य दः—श्रभ-विद्ध्वं, क्षः श्रभविषि श्रभविष्वहि श्रभविष्यहि ।

स इत् (१९) फादौ। इसी वस्त्यानजातलेन तत्तृत्यालात् वसी गुणिताग्रणिलेन इसीऽपि गुणिलागुणिलं, तेन विवरिय इत्यादौ गुणः, दुद्दिव इत्यादौ न गुण । फौदितक्तु कविकल्पटुमात् क्रियाः। पाणिनिः शराक्ष्य— ७.२।१०। स्रव सौदित्-स्थाने प्रगुदाभेतृकयनम्।

मस्य भाक्षानेपदस्य भन् मान्यस्य । अन्दर्शत इमनस्य यहणं, तेन भन्तः
 भन्ते भन्तां इस्वेशानिष्। भन्त इति निं, एधर्ने, (५४३) छीपीऽसीऽदेंचीरित्यकार-सीपस्य स्थानिक्ताकीकारान्। पाणिनिः २१।५।

<sup>+</sup> पाणिनिः = १२१२५ ।

<sup>‡</sup> टी-ठी टीनां घ टीठीटीध तस्यः । सह इसा वर्ततेहसी सेम् तस्यान् । आसां टीठी-टीनां । इस् प्रत्यादारः । स्—ार्च (५५०, ५५२, ५५४, ५४२, २५, ५५६), ततः धनेन धस्य वा ढ, धमविद्वं समिक्षिं । सलीप्राभावपचे सस्य द समिविद्धानिति । पासिनिः ह्याराज्य ।

पूपूट । मुर्दिष्ठ रिक्कः । ू(४: १।, वि: १।, व्यक्ति ०)। व्यां मिक्कः च धिर्दिः स्थात्। #

पूप्र। सम् खय् ह व क्षृणां जब चप् ज ख चाः खः। (सम्-ज-ऋषां ६॥, अर्-चु-भाः १॥, खः ६।)।

खेर्भभ् खय् इकार घे कावर्ग ऋवर्णानां क्रमात् जब् चप् जकारस्य चवर्गाकाराः स्यः । 🌵

पूर्६०। भवोऽङ् गां ढ-भावे तु वा।

(भुव: ६।, षङ् ।१।, क्यां ७।, ड-भावे ७।, तु ।१।, वा .१ः)।

भुवः खे रङ् स्यात् क्यां ट-भावयोस् वा । 🕸

बभूव बभूवतुः बभूवः, बभूविय बभूवयुः बभूव, बभूव बभुविय बभूविम ; बभूवे बभूवाते बभुविरे, बभूविषे बभूवाये बभूविद्वे बभूविध्वे, बभूवे बभूविवहे बभूविमहे। टे भावे च—बभूवे बभूवे इति प्रयोगी ।

ठीच प्रकृष काङ् तिकान्। प्रकरणादेव घी: प्राप्ती पुनक्षादानं, क्या चल्यव-हितपूर्लघातीरेव दिलं स्थादिति ज्ञापनार्थं, तेन इन्हान्यभूव इत्यादी इन्हादेनं दिलांगित। वीफायर्थे पदानां दिलमपि वक्तव्यन् (विद्वानाकीसुदी-दिक्तप्रवर्षं इष्टस्यम्।) पाणिनि: ६।१।८,११।

मब्चप् मस्य चु

पाणिनि: ८।४।५४,--०।४।५१,६२,६६ ।

<sup>‡</sup> पाणिनिः ७ ४। ७३ । वार्मिकञ्च ।

भविता भवितारी भवितारः, भवितासि भवितास्यः भवि-तास्य, भवितास्यि भवितास्यः भवितासाः; भविता भवितारी भवितारः, भवितासे भवितासाये भवितास्वे, भविताहे भवि-तास्त्रहे भवितासाहे।

भ्यात् भ्यास्तां भ्यासः, भ्याः भ्यास्तं भ्यास्त, भ्यासं भ्यास्त भ्यासः भ्यासः भ्यासः भविषीष्ट भविषीयास्तां भविषीरन्, भविषीष्ठाः भविषीयास्तां भविषीय भविषी-विष्ठाः भविषीमितः ।

भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति, भविष्यसि भविष्यः भविष्यय, भविष्यामि भविष्यावः भविष्यामः ; भविष्यते भवि-ष्येते भविष्यन्ते, भविष्यसे भविष्येचे भविष्यन्ते, भविष्ये भविष्या-वहे भविष्यामहे ।

श्रभविष्यत् श्रभविष्यतां श्रभविष्यन्, श्रभविष्यः श्रभविष्यतं श्रभविष्यत, श्रभविष्यं श्रभविष्याव श्रभविष्यामः; श्रभविष्यत श्रभविष्येतां श्रभविष्यम्त, श्रभविष्ययाः श्रभविष्येषां श्रभविष्यः, श्रभविष्ये श्रभविष्याविष्टं श्रभविष्यामिष्टः।

भवतिक भवतकः। प्रणिभवति प्रनिभवति । \*
एवं चेततीत्वाद्यः। १

मध्यदित्यादि, दिले, खेर्भय्य व, चनेन चक् । भिवता इत्यादि (५५४, ५४१, १४१) । स्वादित्यादि कित्त्वात् न गुणः । भिवयौद्धिति चासां घस्य टः स्थादिति कथनेन स्यवधानेऽपि टः । भिवयतौत्यादीनि सुगमानि । भवतकौत्यादी (२०८) टेः पूर्वे चक् । प्रणिभवतौत्यादि (५४८) चकखाद्यधानान्तनेर्वा णत्वं ।

<sup>†</sup> एवं चेततीत्वादय इत्यमेन येष विशेषकार्य्याणि न सन्ति ते एवमित्ययः। विशेषकार्याये स्वार्णाः कदायसीत्वादि।

#### (२) चिती संज्ञाने। #

\* चित घातु:, ई मनुबन्ध:, संज्ञाने प्रक्रष्टज्ञाने (पर्धे) वर्त्तत इति ।

#### प्रसङ्गात् गणपाठीका अनुबन्धास्तत्प्रयोजनानि च लिख्यनी।

```
न-ज्वलादि:। (१०००)
च-सुखीद्वारणार्थ:। (४)
मा--- निष्ठाभावादिकमं वेट ।
                                   ज-- चभयपदी । (५३१)
    (१०७०, भावे कियारमी च वाची
                                   জি--- খঘ-ন: |
    क्तःक्तवतुःस्थाने वादट्)।
                                      (१०८५, वर्सभानकाले का:)।
                                   ट - सागु:। (११४२)
प--- नुण्वान् । (५६८)
                                   डु--विसक्तयुतः । (११४३)
द्रर्---वा चङ्वान् ।
                                   च-फ्यादि:। (५०६)
    (५६५, ७ इ.ति खमते)।
र्दू---श्रनिङ्गिष्ठ:।
                                   त--- घटन: । घन्-धनः । (७०५)
   (१०७१, का-कवतुस्थाने न इट्)।
                                   द-तनादिः। (६८८)
                                   ध-रधादि:। (७३८)
च--कावेट्। (११७२)
                                   न-स्वादि:। (७३८)
क-बेट्। (५०३) वेस्।
                                   प-सुचादि:। (७४१)
च्ट—चङि पद्गतः । (६३८)
                                   भ-- भमादि: । (०४०)
म्ह---चिक्तिया ऋख:। (७०८)
                                   म-चटादिः। (७१८)
लृ—चङवान्। (५६५, ङ)।
                                   मि- विचि इष्-चर्माः वा इस्त । (७१६)
ए--- शिवि महित्तः। (५७६)
                                   य-दिवादि:। (७३८)
ऐ-यजादि.। (६५१)
भी--- निष्ठात न।
                                   र – वैदिकां:। (वेदीन धातु:।)
   (१०५२, क्ता-कवस्वी: त-स्थाने न)।
                                   स-षदादि:। (६७०)
भौ--भनिट। (५५४) भनिम्।
                                   लि-हादि:। (७२६)
                                   लु—स्वपादिः। (६६१)
क-चुरादि:। (७०३)
कि--वा चुरादि:। (७७३)
                                   ब---ब्रतादि:। (६४८)
                                   म-तुदादि:। (७३८)
ग---क्यादि:। (७३८)
गि-प्रादिरपि (७६८)।
                                   मि—कटादि:। (७५५)
                                   ष---क्तदङ्वान्।
   पूषातुभित्रधेत खादिय। (१०५२)
घ-कदादिः। (४६१,६८५)
                                      (११५६, क्रदर्ने उङ)।
                                   च--जचादिः। (१७४)
জ---त ज्वान्।
   (५६१, कर्मार वाची त्रावानेपदी)।
```

# पूर्श । रदाद्यस्तिसे-र्दिखोरीम।

(कदादि श्रील-से: प्रा, दि-स्यो: ६॥, ईम् ।१।)।

एभ्यो दि-स्वोरीम् स्वात्। #

## पूर्द्र। अस-स्वात् असीम ईमि सेलीपः।

(भस खात् ४।, भसि ७।, इमः ४।, ईमि ७।, भेः ६।, लोपः १।)।

भासात् खाच परस्य भासि, इमः परस्य ईमि, सेर्नोपः स्थात्। श्रनेतीत् श्रनेतिष्टां। 🕆

## पू६्३। अनुस् सिद्देरभवः।

(धन्।१।, खस्।१।, सिर्वः ४।, असुवः ४।)।

सेंहें य परस्य अन उस स्थात् नतु भुव: । अचेतिषु:, अचेती: । \$

<sup>\*</sup> कदादिष प्रसिष िश्वेति तक्षात् । दिय किय तथी: । कद स्थप वस प्र-प्रन जच इति पञ्च कदादि: । प्रसिदिति प्रसिधातः, स्वक्ष्यके तिष् । सिरिति (५५१) स्त्रां सिः । एतिभ्यः परस्य देः सेष ईत् स्यादित्ययः । कदायिक्थां स्था दि-स्थोरेव, कदादेश्यां सि-स्यव्धानिन प्रक्षेभूं इति पादेशेन च स्त्रा दिस्थोरसभावात् । सेसु स्त्रा दिस्थोरेव, स्या प्रसभावात् । पाथिनिः अहादक्ष्ये ।

<sup>†</sup> भास् च खबेति तकात्। भास् प्रत्यादारः। चिते—वित—व्यादि (५५०, ५५१, ५५४, ५४२, ५६१, ५६२)। चितिष्टां— चन दसः परस्य ईस्पेनेति विशेषिनय-भात् इस्तान् परस्यापि संर्वे लोपः। चिष्ट चलीष्ट इत्यादौ लोपस्वरादेशयोज् स्वरादेश-विधिनंतीति न्यायान् चादौ गुणे सिलीपो न स्वादिति। पाणिनिः ८।२।२६,२०,२८।

<sup>ः ‡</sup> सिम दिय विदिक्तक्यात्। से: परस्य क्या चन् उत्, देलु घ्यापद। यथा भवेतिषुः। चस्युः चपुः चदुः चनुः एषु (५५२) सेर्लुकि, त्यक्षीपे स्वस्तवपनिति नायात्से: परत्वात् चन् उत्त्। देलु चज्रचुरित्यादि। पाणिनि: १।४।१०८।

### ५६४। खेराद्यची जोषोऽनु ग्रस्खपाद्य-न्तान्यस्थाद्यन्तौ।

(खी: ६।, भावच: ५।, खोप्य: १।, भतु ।१।, भस्-भनौ १॥)।

खेरायचः परी भागी लोष्यः स्थात्, पश्चात् प्रसादि-खपान्ती यदि स्थोऽविषष्टस्तस्थादिलीष्यः, यद्यन्यादृशस्तस्थान्ती लीष्यः। चित्रेत चित्रिततुः चित्रितः। \*

#### (३) चुतिर् चरगे।

# प्र्प् । शासु लिट् द्युत्पृषा दे र्ङ ष्टीपे — ज शिव स्तन्भु विषु मुचु स्तुचु गुचु ग्लु ज्विदितस्तु वा।

(शास-पुषादी: ४१, कः ११, टीपे ७१, जू-इरितः ४१, तु ।११, वा ११) ।

यासी र्जुकारेती खुतारे: पुषादेश डः स्थात् टीपे, जारेसु वा। प्रश्नुतत् अचीतीत्। चुचोता क्

<sup>\*</sup> चादिषासी चच्चित चायच् तकात्। चादिरत चचा मध्ये इत्यथः। मस् च खप्च मस्वपी, चादिष चन्न चायनी, मस्वपी चायनी यस्य स मस्वपायनः, सच चन्य ती भस्वपायनान्यों, ती च ती स्थी चेति मध्यपायनान्यस्थी, तथीरायनी मस्वपायनान्यस्थी । चनु पसादर्थः। पसात् चायचः परभागाभावे इत्थर्थः। तेन यस्य स्थः चायचः परभागो वर्णते तस्य तक्षोपामन्तरं, यस्य तु न वर्णते तस्य प्रथमतएव, मसादि-खपान-संयोगस्य चादिवर्णी लोखः, चन्यविषशंयोगस्य चनवर्णी लोखः स्थादित। चिचेत इति चित—चप् (५५०) दिलं, चनेन खः तलीपः, (५४२) गुषः। पाणिनः वाधादः, ६१।

<sup>†</sup> लृ रत्यस्य स लित्। युत् च प्रव् च युत्प्रधी, ती चादी ययोसी युत्प्रधादी।
शास्त्र लिच युत्प्रवादी चेति तस्तात्। स्तमते लिदिस्तिनैव विश्वे युत्प्रधायीवंडचं प्राचासत्ररोधात्। रर् रत् यस्त स ररित्। जृश्व श्विष्ट सान्स्य विश्व सुच्य सुच्य युच्य खुच्य श्रिकेति तस्तात्। शासुप्रध्यतीनां स्वकारित् विक्रार्थः।
युतादय चात्रमनेपदिनः, चत्र तुटी-पे कविधानसामधात् स्तां सभवपदिनः खुरिति।

#### (8) मन्य विलोड्ने ।

# प्रईई। खात् ग्रिपत् किदा।

(स्थात् ४।, ठी।१।, चिपत्।१।, कित्।१।, वा।१।)। 🌣

# पूर्ध। इसङ्गे लोपोऽणौ।

(इसुङ्न: ६।, 'लोप: १।, प्रणौ ७।)।

भोर्हस उङो नस्य लोपः स्यादणी।

ममथतुः ममन्यतुः । मर्थात्। १

जुतादयस जुत हत स्थ स्वन्द कप सित निद लिद लिद कच घृट कट लुट लुट लुउ स्थ जिम नम तुम सन्म धन्म सन्स सन्स सन्म दिन चयोविंगिति:। प्रपादयस प्रप एप तृष दृष सिव स्थ कुष चृष याच सिव रथादि (चर्ष नस तृप दृप दृह सृह सृह सिहं) अमादि (च्यम तम दम सम सम चम कम मदे) भास जस यस तम दस वस वस वस व्यम व्यव बुष वुस तृष विसं कुम सुम मस सम उच स्था तस क्र तृष च्यव क्ष व्यव वुष वुस तृष विसं कुम सुम मस सम उच स्था तस क्र तृष च्यव क्ष दिष डिप कुम गृप पुप कप लुप लुम चुम नम तुम किद दिति। वीपदेवेन तु गणपाठे सर्वे दिनि निर्देश दिता। अच्यतिदिति दिन्तिन वा छ:। छम् सेवी-धन, तेन पचे क्यां सिरीव। क्यां स्पि मुच्योत दिति। पाचिनि: १।१।४५,५६,५०,५०। छ= भाछ।

- \* संयोगात परा आपित् ठी कित स्थादा। परमुत्रे इमुङ्नी लोपोऽणी ब्यान्तु वा इति क्रसे, आपित्ब्यां नखोपिवक्तले सिर्डे प्रथक् एतत्मृतकरणं अस्जधाती: (०५१) भस्जोऽरेखो भर्ज वेल्यभेन वभर्जे इत्यत्र भर्जादेशार्थे। आसंयोगासु निल्यम् यथा — पाणिनि: १।२।५।
- † जिङ् धासी न चेति जिङ्ग, इसी इसनधातीरङ्ग इसङ्गतस्य। नासि सर्येखान् (परे) सीऽस्वसित्। मन्यधातीः भतुम् पूर्वेष कित्, भनेन न-लीपः। पचे किस्तामानात् भगुणलाभावे न न-लीपः। मध्यादिति (५२३) निल्पक्षिचे निल्यं न-सीपः। पाणिनिः ६।॥।२४।

#### (५) कृषि हिंसा-संक्षेत्रयोः।

# पूर्दा नेदित्पूजार्थाञ्जोः।

(व ११, ददित्-पूत्रार्थाची: ६॥) ।

इहितो भी: पूजार्थस्याञ्चतेस न-लोपो न स्यादणी। श्रतएवेदितो तुण्। प्रनिकुत्यात्। (५४८) कादिलात णः। क (६) विश्व शत्यां।

# पूर्ट। भ्वाद्यादिष्ण: स्रो ऽष्ट्रीव्यक्षष्ठिवां।

(भादादिषा: ६।, सः १।, भ-छो-लक-छिवां ६॥)।

स्वादेरादी स्थितयोः व-णयोः स-नी स्तः, नतु च्यौ-खक्कष्ठिवां । व

प्राची सेक सीक स्प स् स्ज स्नु स्यान्ये दन्याजनासादयः शोपदेशा धवः, खक खित् खत् खन्डा खप सिडिय । गोपदेशा स्वनृन्तर्द नाय नाध नन्द नक्क नृ नटः।

इत् रकार: इत् यस स इदित्, पूजावंषासी पन्च चेति पूजावंग्न, इदिव
 पूजावंग्न च तयो: । इकारातुक अधातीर्भकार एव नास्ति कवं तस्त्र स्त्रीपी निविध्यते
 भत्याइ चत्रवेत्यादि, (पाचिति: ०।१।६८) चत्रव न-सोपनिवेधादेव । पाचिति:
 (४।४।२४,१० ।

<sup>+</sup> भू: चारियंख च भारि:, भारिरादि: भाषादि:, षच चच च, भाषादी च भाषादिच तसा। भारिरिति भू सत्तावानित्वादिर्यगणालकः, तथाच---भाषदादी खुडीव्यादि दिवादि: खारि-रेव च, तदादिच वधादिय तनक्रादिखुरादय इति। धीरिधिकारिऽपि भृदियद्वचं नामधातुनिराखाये। पाषिनि: ६११।६४,६५। वार्तिक्च।

(सेला — घन्ये १७, दत्त्याजन्तसादय: १॥,षोपदेशा: १॥, घन: १॥, सकः — सिण्डः १॥, च ।२७, षोग्रदेशा: १॥, तु ।२।, घ-वतः — नट: १॥)।

सेंधति। %

### प्७१। व्याच्छस गत्रवंबरे स:।

(व्याच्छस्य ४।, गलर्थत्रदे ७।, सः १।)।

गत्यर्थे वदे च घो परदे व्यस्यांच्छत्य सः स्वत्। प्रच्छ वेषति। 🕆

# प्७२। गीकः सुसुभ सो सुवाखान्त-सुझां स्वासिन सन्ज स्वन्जा अतिसेधा अतिसदा

#### वीपदेश-कोपदेशी दर्शयति बाईया भार्थ्या।

रुच नह्च राष्ट्रादि इच्छः, न सन्ति रुत् नहं नाथ नाथ नाय नाकः नृ नटः सेव धात्रः ते। रुत्प्रस्तिवर्जिता नादयो धात्राः कोषदियाः, धात्रसंचाकाले स्ट्यादिलेन पठिताः इत्यापं:। कोषदियापलन्तु (५४८) इत्यानेन कलं। पाचिनिः हाराह्य स्वे वार्तिकाम्।

सेधतीति विषधातुः कोपदंशः, (५६०) वस सः।

† व्यक्तत् घष्कः चेति व्याक्तसस्यः। मध्येश्व वदयःतस्यिण्। घष्कः इति घिन-सुस्तार्थी निपातः । घच्कः सेधिति घिभसुस्तं गच्कतौत्यर्थः । एवं घच्कः वदतिः घिभसुस्तं वदति । (५४००) व्यस्य स्यनुकारिकस्यः विद्योषीऽयं । पाचिनिः ११४।६८ ।

### ऽयङ्सिचा उनङ्क्तमा उन्तव्यवस्वन परि नि वि सेव सुम उनङ्सिवा उनोऽङ्सन्तां सः षो उस्यपि दश् स्थादेस्त देश्व। \*

(गि-१क: ५१, सु—सुर्जा ६॥, स्था—सङ्गं ६॥, सः १।, षः १।, षशि, विकासि ।१।, दश-स्थादे: ६।, तु ।१।, हे: ६।, च ।१।)।

स्वादे-रस्यात्तसुत्रः स्थादे-रगत्यर्थ-मेधो ऽप्रतिपूर्व-सदो यङ्वर्ज-सिचो ऽङ्वर्जस्तमो ऽन्नार्थव्यवपूर्व-स्वनः पर्यादिपूर्व-सेव-सम ऽङ्वर्ज-सिव श्रोऽङ्वर्ज-सहाञ्च गैरिकः परः सः षः स्थात् श्रस्यन्तरेऽपि, द्यानां स्थादीनान्तु दिस्तानाञ्च।

निषेधति न्यषेधत्। गतौ तु-गङ्गां व्यसेधत्। ф

<sup>\*</sup>गेरिकं गोक तथात्। सः स्वरुपः (नतु संयोगः), स्वोऽनं यस म स्यानः, न स्थानो ऽत्यानः, मं वासी सूज विति अस्यानसूज्। सृत्र सुभय सीय सुवय अस्यानसूज् । सृत्र सुभय सीय सुवय अस्यानसूज् । सृत्र सुभय सीय सुवय अस्यानसुज् । सृत्र सुभय सीय सुवय अस्यानसुज् । सृत्र सित्र यास्य सुवयः सुवयः, सुज्ञ स्वान सीऽ इनङ्, सुवासी सिवयेति अवङ् सिवः, नासि अङ् यस्यात् सीऽ इनङ्, सृत्र स्वान सीऽ इनङ्, सृत्र स्वान सीऽ इनङ्, सृत्र स्वान सीऽ इनङ्, सृत्र स्वान स्वान स्वान स्वान सीऽ इन स्वान सीय अङ्च भीऽ हो, न विवित्र भीऽ हो यस सु अनोऽ इन सु स्वान स्वान

<sup>†</sup> भव मुत इति तौदादितस्य यूभ चेथे इत्यस्य ग्रहणं, नतु यू उत्तल सूबीउर इत्येतयीः। मंनिरिति नामधातः सेना-शब्दात् (८५८) जि:। निषेधतौत्यत्र भगत्यर्थलात् वर्लं, च्या दिष्य न्यथेवदित्यत्र भम्व्यवधानेऽपि वर्लं। गत्यर्थे तु व्यसेधदिति न वर्लं। संध इति निर्देशात् दैवादिकस्य निसिध्यतीत्यादौ न वर्लं। भवस्यपतीत्यत्र व्यवस्थन-

#### (७) विध् गास्ते माङ्गली च।

# ५७३। वेमूदित् खर चाय स्फाय प्याय सूति सूय धूज रधादि निष्मुषोऽरवसो रुदुसुनोस्त्वश्याः।

(बा ११, इम् ११, अदित्—निष्कुषः ४१, घरवमः ६१, बदुसनीः ४१, तु ११, अब्बाः ६१)।

एस्यो वसस्यारस्य दम् स्थात्,वा, रीत्यादेसु ठीवर्जं । 
असेधीत्।

### ५७४। वजवदरं लजनिमो ऽजिश्विजागु विः सौ पे।

(तज वद भर-अल-अच-अनिम: ६।, अजिधिकागुः ६।, ति: १।, सौ ७।, पे ७।)।

इत्युक्ती: गीकिभिन्नादिषि पत्नं । सुम् इति सुम्-भागमः (७५३, ०६६) । (१११) किला-दिल्यनेन प्राप्तं चपमगैनिमिक्तकमेव घलं भ्रमेन नियम्यते, तेन नियोति प्रतिस्नाति इत्यादी न घलं; तीष्ट्रयते इत्यादी खि.निमिक्तकं पलं स्थादेव । किलादित्यन यथा, तथा इष्ठापि विसर्गत्यवधानेऽपि पत्नं स्थात्, यथा नि:ष्टौतीत्थादि । पाणिनिः प्राश्चिक्तं ६६,६७,६८,६८,००,११३, वार्त्तिकानि च ।

क तत् इत् यस्य कंदित्, रघ मादियंस्य स रघादिः, निमः कुष निष्कुष ; किदिस स्वर्थ चायस स्थाय प्यायस मृतिय म्यस धूजन रघादिय निष्कुष चिति तसात्। वय द्य सुष नृष तसात्। स्वर इति स्वृज अन्दीपतापयीः, सजातीय-धालन्तराभावात् स्वृग्रहणे नैविष्टिसडौ स्वर्ग्यहणं किचित् निर्भेषं वाधिला विकल्पीऽयं प्रवर्षते इति ज्ञापनार्थं, मत्त्व (६१६) नेस्तरस्थप इत्यनेन इस्निपेधेऽपि सस्वरिष्य सस्वर्थ इति भनेन वा इस्। सृति स्य इति भदादिः दिवाधीग्रहणात् षू म चिपे इत्यस्य भसावौदिति निष्यिम् । रधादिनु रघ त्य द्य सुष दृह सुह सिह नम्य इति भष्टा समिते किदिन्तेन सिहौ स्व-रधायां रिइ पाठः प्राचीनमतात्वादार्थः। विदस्त इत्येते इत्येते क्यां विकल्पस्थेन वर्णनं (५८४) नेससम इति नियमात् निष्यं इस् स्थादेव। पाणिनिः ९१९४४, वार्त्तिकं "किति तु नित्यः प्रतिषेषः। स्वृता। सूला। धूला।" इति।

व्रजे वंदे-ररन्तस्यालन्तस्याजन्तस्यानिमय सौ पे विः स्यात्, न तुः जि-स्वि-जागृगां। श्रसैस्तीत्, श्रमेधिष्टां। अ

# पूर्पा हमात् तथीघीऽघः।

(ढभात् ५), तःयोः ६॥, घः १।, चघः ५।)।

टभात् परयोक्तवयोर्धः स्थात् नतु धानः। श्रसेदां। वि (८) खद स्थेर्ये वधे च ।

पू ७६ । इसादे: सेमा ऽद्धारे दित्चणखस-वधा वाङत: सौ पे ब्रि:।

(इसादे: ६।, सेंस: ६।, घ-इ-स-य-एट्ति-्चण यस वध: ६।, वा ।१।, छङत: ६।, सौ २।, पे २।, ति: १।)।

हमयान्तादेकारेतः चणादेवान्यस्य सेमो हसादेरुङोऽका-रस्य त्रिः स्यात् वा सौ पे। प्रन्यखादीत्, खादिलात्र णः (५४८), त्रखदीत्। अ

<sup>•</sup> नास्ति इस यसात् सीऽनिम्। तजय वदय घर्ष घल्च घल्च घनिम् चिति तस्य। जिय यिय जारखेति तत्, न तत् घिजिष्ठनारः सस्य। घर् घल्— एतदल्योग्रहणं। घच् इति स्वर्यणाः। तजेवंदेरिति, धातोः स्वरुपकयने इप्रत्यथो वक्तन्यः। घनिम् इति घटा इम् न स्थात् तदैन, तेन घसेत्यौदिति, इसी विकल्पपचे घनिम्लात् हिध इकारस्य इतिः ऐकारः(८) घचघारालेज् विरिति नियमात्। तजसाह-घर्यात् वद इति दल्यवकारादिः। (६८९) जागीऽणविति गुणभाषाविप इह जार-वर्जनं विशेषविधानात् भाषाया वद्वेनिवेधार्यः। पाणिनः ७।२।१,२,२,४। निथेधम्

<sup>†</sup> टभ इति प्रत्याद्वारः टघघभ इति । अभिन्नामिति विकल्पपचे अपिम् लात् वर्षी, (५६२) सि-सोपि, अनिन तस्य भः । याञसुभत्ते इति । पाणिनिः पारा४० ।

<sup>‡</sup> इन् मादिर्थस्य सातस्य । सइ इमा वर्त्तते य: स सेमृतस्य । एत् इत्यस्य स एदित्, इत्त नच यत्त एदिस वर्षाम् अस्य यक्षत्र तत्, न तत् महीयदित्सवामस्वय

### प्७७। ज्ञिलल्येनुङतीः।

(ञ्चिति ०।, भन्येजुङतो: ६॥)।

धोरन्यसीच उङोऽकारस्य च तिः स्यात् जिति णिति च। चखाद। अ

पू७८। **गण्यन्ये वा।** (विषि का, धन्ये का, वा ११))। चखाद चखद। गं

(८) गद भाषे।

प्रणिगदति। \$

(१०) बद खैर्थे ।

प्७१। तृ फल भज तप यथ ग्रथ रभादा-न्ताखह्मां थाः कित्-सेमथपदेः खिलापसा-ग्रग

तस्य । उङ्चासी पञ्चिति उङ्ग्तस्य । इन्नादिलु पच हीत् पर्कमीत् पहयीत् पकः टीत् पच थीत् पत्रसीत् पत्रिय न बिद्धः । यखादौत् प्रस्वीत् प्रवेन वा बिद्धः । पाणिनिः २।२।५,२।

<sup>\*</sup> अच या च ज्यी, ज्यो इती यस स ज्यात तिकान्। चन्यसाधी इति चन्यच्, उड् चासावेदित उड्त, चन्येद्य उड्याती तयी:। चन पृतः उड्तो यहणात् इसादेदिति नानुवर्षते। तेन धातुमानस्य चन्येच उड्तय त्रिः सादिति। उड्त इति येन कोनापि उड्ततो यहणं, तेन चभाजि चलाभि इत्यादी (१२६) न चोपे ततः उड्याते विज्ञाः। चन इत्ती धोरिति यहणात् त्यचयतीत्यादी जिसमेतस्य (६२१) धातुमंत्रायामपि त्यच्यस्य धातुवाभावात् उड्यते न व्जिरिति। नागरयतीत्यादी (११८) गुणे, एकनिस्तत्तं कार्यं कार्यान्तरस्य वाधकमिति न्यायात् पुनर्नं व्जिरिति। च्यादा इत्यच चड्तते विदः। पाणिनः अश्वाद १ त्यच चड्तते विदः।

<sup>†</sup> अपन्ये (चत्तसपुरुषेकवचने) यपि परे धोरन्यस्थेच छक्कीऽकारस्यचि वि: स्थादा इ.स.चै:। पाणिनि: ७।१।८१।

<sup>‡</sup> प्रविगदतीत्वत्र (५४८) गदावलनिर्वतं ।

### दद वाद्यन्यथा-िख णुनलोपिनां जूवम स्वम चस फणादि वधार्थ-राधान्तुवा।

(तॄ—इसं ६॥, ब्या: ६।, कित्-सेमयपि ७।, श्वत्।१।, ए: १।, खि-खोप: १।, घ ।१।, घः श्रग्रम—नक्षोपिनां ६॥, जु—राधां ६॥, तु ।१।, वा ।१।)।

नादीनामाद्यन्तस्थितास्यहसानाञ्च अकारः त्याः किति सेमष्टिप च एः स्थात् खिलोपय, न त प्राप्ते देदे विकारादे रन्ध-ष्टाभूतखे णुमतो नलोपिनय, जॄवमस्थमनसफणादीनां हिंसा-र्थस्य राधेय वा स्थात्। बेदतः बेदः बेदिष। अन्यथाभूत-खेस्तु चखदतः। ॥

#### (११) एट ग्रब्हे।

(५६८) भ्वाचादीति णो नः। नदति। प्रणिनदति। १

तृथाती प्रेमच्वात् पलभनी र थया खिलात् चपः संघी गादिलात् यथयपे: संघी गादिलात् निलोपिलाच दभी निलीपिलात् चप्राप्ती प्रथातिः। फाणादिच फण राजधान भागभाग्र स्थम स्वम इति। चन फणादिपाठ सामच्योदिन चाकारस्यापि एत्लं, एवं वधार्थराधीऽपि।

वेदतुरित्यादि वर्म्यवकारादितात् न निषेष:। इत्यादेनु ववजतुः ववनतुरित्यादि । चस्रदतुरिति (५५८) खस्त्राने च-करणादन्यथास्त्रितं । पाणिनिः ६।४।१२०,१२१,१२२, १२३,१२४,१२६,१२६,वार्त्तिकानि च ।

<sup>ं</sup> स्यः संयोगः, न स्थेऽस्यः, प्रस्थयासौ इस चिति प्रस्य इस् पायान्तयोः प्रस्य इस् वेषां ते प्रायान्तस्य इस्यः भायान्तस्य इस्य विषां ते प्रायान्तस्य इस्यः भायान्तस्य इस्य तेषाः । सह इसा वर्णते यः स सेम्, सेम्चासौ थप् चिति सेम्थप्, किन्न सेम्यप् तिस्ताः। प्रचारः वकारः पादि यंस्य स वादिः, प्रस्याः प्रवायाकारो जातः स्विर्थस्य सेऽस्यस्यात्तः, एष्य नलोप्यतौ एनलोपौ, तौ विद्येते यथोनौ एनलोपिनौ ; प्रश्यः (पाणिनिमते तु दन्यान्तः) ददय वादिय प्रस्याविष्यः एनलोपिनौ च ते, प्रसात् नञ्समासे तेषाः। वधार्यसासौ राधचेति वधार्थराष्ठ्र, जृथ्यं वस्य समय चस्य प्रणादियः वधार्यराष्ट्र च ते तेषाः।

<sup>†</sup> प्रणिनदति (५४८) गदादान्तनेर्थलं।

#### , (१२) ऋई पीड़ायां।

### पूटः। स्थान्तादाद्यृदाद्यश्चोः खेरान् कां वा त्वाञ्चेः।

(स्वानादादि-महदादि पत्री: ६), से: ६), पान्।।।, कां ०।, वा।।।, तु।।।, पान्के: ६।)।
स्यान्ती योऽकारादिस्तस्य ऋकारादेः अग्रोतेष खेरान् स्यात् व्यां
ग्रान्कतेलुवा। योनई। \*

#### (१३) इदि परमैखर्थे।

पूट्र | भूयोऽमजादे: । (भूयः ११। भना ११। भनादेः ६।)। भजादेरिम कते पुनरम् स्थात्। ऐन्दत्। पं

पूट्र। विजादि-दयायासत्यानेकाचोऽनृच्छू-र्गोष्ठियामाम्।

(विजादि - भनेकाच:, ५।, भन्चकूर्णीः ५।, खां था, भाम् ।१।)।

<sup>#</sup> स्थः संघीगीऽनी यस मृ स्थानः । चत् चादिर्यस्य सः चदादिः । स्थान्तयासी चदादियिति स्थानादादिः । ऋत् चादिर्यस्य स ऋदादिः । स्थानादादिष ऋदादिय चयुचिति तस्य । चव ऋदादिरिति चन्तवर्षि वर्षान्त्रस्वित-ऋकारादिरैव, तैन ऋधाती-नैयहणं । चानई इति चई - यप्, दिलं, खेः स्थाने चान् । पाणिनिः ७।४।७१,०२, वार्तिकस्य ।

<sup>†</sup> अष् (खरवर्षः) चादियंख सीऽजादिसस्य। जीम कते इति (४५०) घीटौथी-घन इत्थनेन। ऐन्दत् इद चतएवेदिती तृण् इन्द, घ्या दिप् (५५०) चिन, अधे धातीरिकारेण सन्धी, पद्यात् चनेन पुनरम्, ततः पुनः मिनः। जये चम्हयस्य सन्धी पुनरम्करणस्य वैथर्ष्यात्। (५०५) घीटौथीष्यम् धीरमा चनादेर्त्रिय, इति कते सिखी पुनरतन्म्चकरणं चादिष्टस्यापि चनादेः पुनरम्विधानार्षे, तेन यज्ञधातोः पैज्यस्, वद्यधातोः चौष्टामित्यादि सिखं। पाणिनः ६।४।७२।

वसंज्ञेजादेरीय श्रय श्रास एभ्यस्थान्तादनेकाचय श्राम् स्थात्, नतु ऋच्छूणीः। \*

भूट३ | श्वस्क्रन्वामः। (म्-षस्क्राश्ण, षत् ।शा, षामः ॥) । म क पर्वे श्रामस्तादन प्रयुच्यन्ते ।

भू अस् क एते आमन्तादनु प्रयुज्यन्ते । इन्हास्त्रभूव इन्हामास इन्हाञ्चकार् । 🕆

पूट्छ। नेम ऽसुम्झ सृष्ट स सुद्रु श्रु सी-रेव

ক্যা । (न।१।, दम।१।, चमुम्क-स्वी: ५।, एव।१।, व्या: ६।)।

एभ्यएव ळा इम् न स्थात्, अन्यसादिनिमीऽपि स्थात्।

कर्न्दः। क्यासी इच् चिति विच्, विच् चार्द्धिस स िनादिः, विनादिः दियस चयस चानस त्यस चिताविति तसात्। सटक्कच कर्ण्य सटकुण्ः, न सटकुण्ः तसात्। त्यः प्रत्ययानः। त्यानानामनेकाचलनेव प्राप्ती प्रथक् सस्यं स्वामास (८४८) इत्याद्यर्थम्। पाणिनिः २।१।१५.१६,३०।

<sup>†</sup> भूय भम् कथिति भूसक् । भान इति पश्चा एव परतः प्रयोगे ि से अब्यहणं कियाविश्वेषणीपमर्गव्यवधानिऽपि प्रयोगार्थः। तेन तं पात्रयाम्प्रयममास इति, छत्ताम्प्रयक्तिरित च रघुभद्दीः (इदन्तु न पाणिनिस्म्यतम्)। प्रवंतीऽनृहत्ताविष् पुनरामी यहणं सामान्याम्प्रप्रायं, तेन (६००) दिरहाकाशिति, (०२०) प्रयाम् विति भानिऽपि भादिरनुप्रयोगः। भव भाकानेपदिधानुभ्योऽस्सुवी-रनुप्रयोगे कत्तरि कतस्य भाकानेपदस्य स्थाने परकौपदादेशी वक्तवः, करीते रनुप्रयोगे तु (कर्णुगेऽपि कियाप्तः) मूल्यातीदिव परकौपदाक्षमेपदे तिष्ठतः (पा. १।३।६१)। इत्यामासिति, भक्षेः भनुम्यागिविषानसाम्वयदिव (६८२) न मू-भादेशः। पाणिनः १।११००, भव तृ व "प्रयुच्यति इत्योगे ल स्थे भनुपदीपादानः विपन्नां निहस्ययं व्यवहितिनिहस्ययं इति वार्त्तिकाराण्यः; तेन तं पात्रयां प्रयममासेलादिकामपाणिनीयमिति मितिनाथः। '' "तं पात्रयां प्रयममास पपात प्याद्विष्वसाध्यः दित कमदीवरः। एवां प्रकृतिस्व उद्यान् प्रयम्भादिकामपाणिनीयमिति मितिनाथः। '' "तं पात्रयां प्रयममास पपात प्याद्विष्ट वित्र गोयोभन्दः। "भानः कञनुप्रयुच्यवे" इति कातकस्वम् । "व्यवधानिऽपि दृक्षते, तं पात्रयाम्प्रयममास पपात प्रात्तः इत्यते, तं पात्रयाम्प्रयममास पपात प्रात्तः । इत्या प्रवन्तः। प्रात्ते प्रात्ते कातकस्वम् । "व्यवधानिऽपि दृक्षते, तं पात्रयाम्प्रयममास पपात प्रात्तः इति प्रात्ते। स्वतं प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते प्रात्ते प्रात्ते प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते। प्रात्ते प्रात्ते। प

द्रस्टाञ्चकर्ध । 🌣

(१४) णिदि क्रवायां।

प्रणिन्दति प्रनिन्दति । १

(१५) उख गती ।

# प्रद्र। खेर्ये। रियुवर्णे।

(खं: ६।, यो: ६।, इयुव ।१।, वर्षे ७।) ।

खेरिवर्णीवर्णयीः क्रमादियवी स्थातां त्रर्णे परे। चवीखा। ऋर्णे किं. जखत!। धः

(१६) अन्तु यतिपूजनयोः ।

(५६८) नेहित्पूजार्थाचीरिति, अच्यात् । गतौ तु अच्यात् । §

(१७) स्च इर् गत्यां।

(५६५) शासुनिद्दादिति को वा, श्रम्चत् श्रमीचीत्। ¶

गास्ति सुन्यस्य सः प्रसुन्, प्रमुन् वासी क्षयित प्रसुन्कः, प्रमुन्तयः स्थावयः भव स्य द्रथ य्य स्थिति तथात्। (५८०) नेसेकान।दिखव ववर्जनात प्राप्तस्य इ.सी निवेधार्थीसह इ-सइ.शं। अस्त्रेशं सप्तानां एकाचलेल अनिसामि इइ सहसं नियमार्थे। नियमय प्रनिन्धात्मध्ये कीवलं एथएव न्यादम् न स्थात्. सुतरा एव-कारिण भन्यसादिगिमीऽपि धाती: ब्या इस् स्यादिति । इन्टाञ्चकर्य इत्यत्र अनुमक्रलाः दिम्निक्षेष:। पाणिनि: ७।२।१३, "क्रजीऽसुट." दति वाक्तिका ।

<sup>†</sup> प्रशिन्दति प्रनिन्दतीत्यचः (५४८) वाणालं।

<sup>🛊</sup> इय उस्य प्रतस्य यो:। इयन उवच तत्। पर्धे प्रप्रमानवर्धे परे। उवीख इति उत्तः गप् इत्तं, खलोपः, स्नुलस्य उकारस्य गण क्रोकारः, (वर्णादाङ बलीज इति कायात् चादीन (२२) दोर्घः।) ततः चनेन खे. उस्थाने उन्। ऊखतुरिस्यका भिति गुणाभावे समानवर्णलात् ग उवु सन्धिः । पाणिनिः ६.४।०८८ ।

<sup>💲</sup> भधात् भन्व दी-सात्, पूनार्थलात् म गलीपः । गत्यक्षे भचादिति न सीपः । 🖪 असुवदिति सुव टौ-दि, चादिलात् ङ.,डिति गुणाभावः । पर्वे व्यां सिरित्यादि ।

एवं (१८) स्नुषु, युषु, म्नुषु । (१८) श्राह्य श्रायामे ।

সাৰাক্তমাক্ত।

(२०) वज गती।

ववजतुः, ववजिष्य । (५७८) वाहित्वात्र ए: । अ

(२१) वृज गती।

(५०४) वृजवदेति वृ:। अवाजीत्।

(२२) अज गती चेपणे च।

#### पूद्ध। व्यजोऽरे वा त्वनवस्ववजनकापि।

(वी ११।, भन: ६।, भरे अ, वा ११।, तु ११।, भन-विध अ, भ घज्-मल्कापि अ)।

श्रजते-ररे वी खात्, श्रन-त्ये वसे च वा स्यात्, न तु घञादौ।†

# प्राप्त । नेमेकाजाद्युदतोऽध्वि यि डी शी युक्षा सुच्च च्या वुः।

(न ।१।, इस् ।१।, एक।च्-मात्-इ-उत्-ऋतः ५।, कत्रि-- दः ५।)।

सनुप्रस्तयोऽपि व्रत्वसाः गलार्थाः । श्रामाञ्क भाव्क प्रति श्राञ्क पप् (५५०)
 वा खेरान् । वनधातुदैन्यवकारादिः, श्रतप्त म खेलीपः नच श्रकार एकारः ।

<sup>†</sup> अनस्य तस्य तस्यिन्। घज्य अल्च काप्च घजल्काप् ति सन्। अन इति (११३४) मलयः। वस् प्रलाझारः। घज् अल्काप् एते च (११३४,११४०) प्रलयाः। 'वी' इति दीर्घीचारणं किं—प्रवीतः, वीला, वीतिः इलायर्थम्। पाणिनिः राधाप्र,५०।

खादिरन्थेभ्य एकाज्भ्य ग्रादन्तेवर्णान्तीदन्त-ऋदन्तेभ्य इम् न स्थात्। भ्रवेषीत् भ्राजीत्। विवासः। अ

पूट्ट। अधारणुचीयुव्यो व्याँ त्वसान्ते-काचो व्याः।

(त्रु-ध्वी: ६॥, पर्वाच ७।, इयुव् ।२।, यी: ६।, व्यी १॥, तु ।२।, प्रस्थात् ५।, नैकाची: ६॥, व्यी: ६॥) ।

श्रीर्घोष इवर्णीवर्णयोरणाविच इयुवी स्तः, श्रानेकाचीसु श्रस्थात् परयोः क्रामादुवर्णेथर्णयो व-यो स्तः। विव्यतः विव्युः। वि

\* एकोऽच्यस्य स एकाच्। भागच इय उत्च चृत् चित भागुटन्, एकाझासी भागुट्येति एकाजायुट्त् तस्मान्। यिश्व शिय जीय भीय युष क्य ग्रम स्वय सुय सुय स्वय सुय सुय ह्य ते, न विद्यले ते यत्र तत् भिष्टि जी भी युष ग्रम सुप्र सुय सुय सुय सुय सुय सुय सुय ह्य ते, न विद्यले ते यत्र तत् भिष्टि जी भी युष ग्रम सुप्र सुय सुय (५८८) सम्मिति भागसीत्, (६२३) सुस्पीरिति भागिति, (६१०) स्पर्या (५८८) यमस्मिति भागसीत्, (६२३) सुस्पीरिति भागिति, (६१०) स्पर्या हित स्वारीय-क्रादीययोः सम्मिति प्रतिप्रस्यः। भाव क्ष गुडित द्योगंड्डं निस्पेम्प्रस्य भागिति क्षित्। भवैषिदिति भाग-टी दि, पूर्वेण वसे परि वी भार्षे, एकाजिवणांत्र सम्निष्यः, (५०४) भनिस्तात् हृद्धः। पन्ने भाजीदिति न दमनिष्यः। विवाय इति भाग, भरे परि निस्तं वी-भादेशः, (५०५) हृद्धः, (५००) हृद्धः, सिसः। कारिका।

† शुख पुषु त्रधाः। नालि ण्यं िवान् सीऽणुः, ष्रण्यावाविधित प्रख्य तिथान्। इय् च उव् च तत् इयुव्। इय उय यु तस्य। वच यच तौ व्यो। न स्थो- उस्यलक्षात्। न एको नैकाः, नैकीऽच् ययोजौ तथीः नैकाचीरित युष्पोरित्यस्य विशेषणं। उय इय वी तयीः स्थोः। श्रीत्येकवचनान्तस्य इयुव इत्यनेनेव कमः, न तु श्रुष्पोरिति दिवचनान्तेन, श्रीरिवर्णस्यासभावात्। तेनायं नियमः— षणाविष् परेश्रोकवर्णस्य उव्यादिति दिवचनान्तेन कमः, तेनायं नियमः— पर्वे व्योरिति दिवचनान्तेन कमः, तेनायं नियमः— पर्वे वाचः श्रीरिति दिवचनान्तेन कमः, तेनायं नियमः— पर्वे वाचः श्रीरिति दिवचनान्तेन कमः, तेनायं नियमः— पर्वे वाचः श्रीरिति दिवचनान्तेन कमः, तेनायं नियमः— परियाः श्रीरिति दिवचनान्ते कायः, स्थायाः परस्य अवलं इवर्णस्य यकारः इति। (३५) यखायवायावः इत्यस्य, धातुप्रकरणे प्रयं विशेषान्यमः। पाणिनिः द्राष्ट्राष्

विव्यतः विव्यः सभयन भनेन द्रस्थाने यः । एवं विव्यिन विव्यिन ।

#### पूद्र। सजदशस्पाठात्वती निलानिम्तु-स्थपो वेमनृव्येऽदः।

(सृज दृश चच् पाठ-चलत: ५१, नित्य-चनिन्तु: ५१, घप: ६१, वा ११।, ६म।१।, चन् ऋ व्ये ऽद: ५१)।

स्रजिर्दृ भेरजन्तात् भ्वादिपाठे श्रकारवतो नित्यमिम्रहितहत्यात् थप इम् वा स्थात्, नतु ऋ व्येज श्रद एभ्यः । विविधिय विवेष । #

(२३) चि च्ये।

पूरः । द्वींऽज्यारे । (र्धः ११, यच् १११, वि ०), वरे ०)। त्रजन्तस्य र्धः स्थात् बरे ये परे । चीयात् । र्वः

<sup>\*</sup> यत् प्रस्यस्य पतान्, पाठे (दगिवधगणपाठे) पतान् पाठातान्। सृत्यं स्था च पाठात्यं वित तसात्। नित्यं पिनस्य पिनस्यो यसात् स नित्यानिनता तसात्। नित्यानिनत्ति प्रक्रमस्य पाठात्तत्य विग्रेषणं। ऋय व्यय पर चित स्थार्त् , न ऋवेऽद प्रव्येऽद तसात्। पाठकाले प्रकारवत्ते यथा पच—पेविष्य पपक्ष, वच—उविष्य उवक्ष द्रत्याद्। पाठयहणं विना क्षेत्रलं प्रत इति क्षते क्षयं प्राप्त प्रकारस्य रिक्षे कष द्रति प्रकारवत्तात् प्रकाशय चक्षष्ठ द्रत्यादः। पाठयहणं विना क्षेत्रलं प्रकार इति क्षते क्षयं प्राप्त । नित्यानिन्तुः क्षिं—श्राय्ययं पेठिय द्रत्यादो नित्यमिम्। नतु ऋवंऽद द्रत्यच स्थान्द्रस्य स्ववणं निवाणिवंऽित्, दीर्धस्यदन्तानां व द्रत्यस्य च सेनतृत्वात् प्रमुत्राः भावे, (६१६) नेस्तस्यपीऽवृन्तुरित्यनेन व स्य क्ष भिन्नस्य च प सेनतृत्वात् प्रमुत्राः प्रकार क्षति हियमात् (५५४) वेसतेऽरस्यति नित्यमिम् स्थादेव। प्रज्ञाताः यप्, वौ पादेशे, प्रकानत्वाद्वनेन वा दम्, गुणादिय। पाणिनाः अन्तर्थ, ६९, ६५, ६५, ६५, ६६, कारिका च।

<sup>+</sup> नरः भरलक्षित् भरे, यि इत्यस्य विश्वष्यं। भव सामान्याजनानिर्देशात् जिवदवाभरति, इरिरिवाभरति शिवायते इरीयते इत्यादी लिङ्गानस्थापि दीर्धः। घाती-रन्तस्थितस्य प्रक्ततिर्वकतिरित भभी दीर्धः, यथा, क्षे — इयात्, क्षि — स्यादिकादी भी क्षतिऽति दीर्धः। सियात् कियादित्यादी तु (६२०) स्वस्थाने इस्वाना-रिम्रादिशसामय्यात् न दीर्धः। वि — दी-यात्, दीर्षः, भीयात्। पाणिनः अक्षार्थः।

#### (२४) कटे वर्षावरणयोः।

चकटीत्, एदित्त्वात्र विृ: (५०६) । \*

(२५) गुपू रचणे।

#### पूर्श। कम ऋतो गुपू घूप पण पनो जि-ङीयङाया घः।

(कमः ४।, ऋतः ४।, गुप् घूप-पण पनः ४।, जिङ्-ईयङ् भाषाः १॥, धः १।)।
कामी जिङ्, ऋतेरीयङ्, गुपादेरायः स्थात् स्वार्धे, तदन्तथः
धर्मन्नः । गीपायति । पृं

# पूर्र। वारे। (वा ११, वरे ७)।

एभ्य एते वा स्यु: अरे विषये। अगोपायीत् अगोपीत् अगोपीत्। गोपायामास जुगोप । क्ष

<sup>ः</sup> कट--ए इत् सिचि श्रश्डिः, वर्षथे भावरथे च वर्तते। सकटीत् टी-दि, (५०६) एट्स्वात न ब्रडि:।

<sup>†</sup> गुपूच धूपच पणच पन चेति तकात्। जिङ्च द्येङ्च चायच ते। जिङी अकारी व्हार्थः, ककार भाक्षनेपदार्थः। द्येडो ककार भाक्षनेपदार्थः भगुणार्थयः। भर्थिकभेषानिभिधानात् खार्थे एव स्थः। गुपधातीः आयप्रत्यथे, गुणे, धृतशायां, गीपाय-धातीकिष्। भाय इति भदनिनिर्देशात्, गोपायधातीकीं क्रते, (००५) भकारकीषे, गोपायि-धातीः द्यादि, भनुगापायदिति भन्नीपिलात् (६२८) न इस्तः। पाणिनिः १।१।२८,२८,३०।

<sup>‡</sup> भरे इति विषयसप्तभी, तेन, व्यानिव सिप्तस्तिप्रत्ययः सभाव्यते इति टोप्रस्तु-त्यत्तेः प्रागेव भादेशाः, ततो धातुसंज्ञायां टीप्रस्तिविभक्तुत्पत्तिः। भगोपायीदिति भायान्तत्वेन धातुसंज्ञायां धात्वन्तरतात् (५५४) नित्यमिम। पचे कदित्तात् (५०३) वा इम् भगोपीत्, भगौभौदिति भनिमतात् (५०४) इतिः। गोपायामास इति (५८२) प्रत्ययान्त्वादनेकाथलादा भाग्। पाणिनिः ३।१।३१।

यवं (२६) धूप ताये। अ (२७) तपी सन्तापे।

(५५४) चीदित्वात् नेम्। चतापीत्।

(२८) चमु श्रदने । 🌵

# · पूर्व। छिवुक्तमाचमोऽपि र्घः।

(ष्टितु-क्रम-चाचन: ६।, षपि ७।, र्घ: १।)।

एषां घी: स्यादिष । श्राचामित । श्राङ: किं, चमित विचमिति। (५७६) मान्तलात् न ब्रिः, श्रचमीत् । क्ष

(२८) क्रमु पाद्विचेपे।

#### पूर्छ। क्रम क्रम स्वम स्वास भास तस तुट लाष यस स्यम: य्यन वा रे घे।

(क्रम-संयस: ५१, ग्यन् ११।, वा ११।, दे ७।, घे ७।)।

एभ्यो धेऽर्धे प्यनुस्यातुवारे परे | क्रास्यति | §

भूपधातोक्दित्त्वाभावात् टी दि अधूवागीत् अधूवीदिति (५५४) नित्यनिम् ।

<sup>†</sup> चम-घातुः चकारानुबन्धः क्वा-वेट् (११७२)।

<sup>‡</sup> शित्रय क्रमच पाचमच तस्य । पपि इति (५४१) अप् परे । पाङपूर्वस्थैय पभी दीर्घः, नतु केवलस्य भन्दोपसर्गपूर्वस्य च । पाणिनिः ७।३।०५, ''दीर्घले पाडिः पम इति वक्तव्यम्'' इति वार्तिकच ।

<sup>§</sup> क्षमय क्षमयं त्यादि दन्दं तथात्। श्रव सास भामी दन्यानी तालव्यानी प । तालव्यानी दित कमदीवरः । पाणिनिन्नु भाग्न भाग्न दित्यानी तालव्यानी प । श्रवीपसर्गनिरासार्थे । ग्रानः ग्रव दती यकारिव्यतिः । ग्रपी वाधकोऽयं । ग्रिकात् (५२०) र संज्ञायां, (५२२) डिकात, वृद्यतीत्यव व (५४२) ग्रवः । नकारसु वृद्यनी द्रवादी (२४५) तुष्यं: । ग्रानि परेऽपि दीर्घदित गीविन्दमहः, तन्त्रते क्राम्यतीत्यादि । श्रवी विकल्यपचि तत्तदगणीयः प्रत्यय दति । पाणिनिः श्रि।००००१,०२।

#### प्रप्। ऋमः पेऽपि र्घः।

(जम: ६।, पे ७।, अपि ७।, र्घ: १।)।

कामति। %

### ं ५८६। सु-क्रमोऽमे ऽरवस इम्।

(सु कन: ५१, चर्न ०।, चरवस: ६१, इस् १११) ।

श्राभ्यां वसस्यारस्य इम् स्यावतु मे । श्रक्रमीत् । व

(३०) श्री यस उपरमे।

पूर्छ। स्था दान पा ज्ञा घा ध्मा म्ना-र्त्ति दश शत् सद् गिमष् यम जनां—तिष्ठ यच्छ पिव जा जिघ धम मनच्छे पश्य शीय सीद गच्छेच्छ यच्छ जा: शिति। (स्था—जनां दण, तिष्ठ—जाः १ण, शिति भी। एषामिते क्रमात् स्थु: शिति परे। यच्छति। इ

<sup>•</sup> क्रमी र्घः स्यात् पे भपि परे। पे किं, विक्रमते, भपि किं, क्रमिष्यति । पाणिनिः ১।३।७६।

<sup>†</sup> सुज्ञमाध्यामिम् (५५४) सिन्नेऽपि पुनरिम्विधानं, सिन्ने सत्यारको नियमाय इति वायात् स्वासमिपदेन स्वादिति नियमार्थं, तेन कर्माण वार्चे क्रमधातीसिन स्वकामि इत्यान, सेमलाभावात् (७४४) न इत्याः। याद्यन्गातीयस्य विप्रतिषेधी विधिर्पि ताद्यम्मातीयस्य विप्रतिषेधी विधिर्पि ताद्यम्मातीयस्य ति न्यायात् सुधातीः परस्येपदे एव स्वनेन इसि सिन्ने, पुनः (५८०) नेभेकानित्यन सुधातीः प्रतिप्रसवः सुवितः सुवितवानित्यादौ इस्प्राप्तप्रथः। पाणिनिः शराह्द।

<sup>‡</sup>स्थाच दा-म चेत्यादि इन्हें तेषां। तिष्ठच यच्छचेत्यादि इन्हें ते। दान इति नका-रेत्-दाघातुग्रहणं चन्य-दाघातूनां श्रद्धशानयोर्यच्छादेशनिष्ठच्ययं। पा इति पानायं-गा-सइणं। चन्नीति चट गती चट खिंगत्यामित्युभयी:। इष इति तौदादिकस्थैन।

# पुरद। यम-रम-नमातः पे सेरिम् सन् चैषां।

(यभ-चात: प्रा, पे अ, से: दा, इम् ।१।, सन् ।१।, च ।१।, एवां दा।) ।

यमादेरादन्ताच सेरिम् स्वात् पे, तेषाच सन्। चयंसीत् चयंसिष्टां। \*

(५८८) सजहब्रीत वेम्, येमिय यसन्य।

र्षं (३१) गमी प्रव्यवाः ।

(३२) इय नती।

श्रहयीत् (५७६) यामतलाव विः।

(३३) दल मि भेदे।

(५०४) व्रजवदेति दिः, श्रदासीत्।

(३४) जि फला विसर्धे।

फीलतुः फीलुः फीलिय । 🌵

अन इति देवादिकसेव। पन्न रेइति नीक्षा शिवीति कथनं, इयक्तींत्य (६९०) प्रपीनुकि, रेपरेक्टकादेशनिहस्त्यये। क्रमसु— ' स्था दाव पा जा घा था सा कट तिष्ठ यथा पिव जा जिम्न धम सब कटका दम प्रत सद नम इष यम जन प्रस शोय सीद गक्क इच्छ यच्छ जा पाणिनि: ९।३।९९,९८,९८।

#यम चरन चनन चचात् चतवात्। तेषां यमाङ्गीनां स्थाने सन्स्थात्, मद्रत्वनी। पेकिं, परंसा चदान दशादि। पाविनिः ७१२।७३।

† फल धातुः, जिः भयकः (१०८५), चा निष्ठाभावादिकक्षं वेट् (१००२), विषः रूपं छत्वादनं। फीसतुरित्वादि (५०८) खिलोपः, भकारस्य एकारः।

(३४) सर इज्ञगती I.

प्रकारीत्।

(३६) ष्ठिवु जिरसने।

(খু ১ ২) ष्ठिवुलामिति र्घः, ष्ठीवति ।

#### पूरर। डिबजाद्यो: खेडक्रोस वा।

(डिय-पनाची: ६%, खे: ६१, ठ-को: ६॥, तः।११, वा ।१।)।

तिष्ठेव टिष्ठेव, ष्ठीव्यात्। #

(३७) जिंबचे।

## ६००। जेर्नि: सन्-छो:।

(जी: ६।, सि: १।, सन्-व्यो: ७।) ।

जिगाय । 🅆

(३८) रच पावने।

प्रनिरचिति, पान्तत्वाच ए: (५४८)।

(३८) यच् व्याप्ती।

# ६०१। वाच-क्रगार्धतच: सुधे रे।

(वा ।१।, भच क्रमायंत्रवः प्रा, त्रुः १।, चे ०।, रे ०।)।

रुषित के भगिदिया तथी:। ठ ष क च तथी:। विवधाती: खीं: उकारस्य भगिदियाती: खीं: क्रकारस्य च तकार: स्थादा । यथा तिष्ठेव टिव्रेव, उतिच्छिवित खिचिक्षिति । कीव्यादिति (२२८) दीथी:। "भस्य-दितीयस्थकारककारीविति" वृत्ति:। "उक्की: तुक्" दिति च सिदालकौसुदी ।

<sup>†</sup> केशि: स्थान् सनिक्यास्त्राः वा-इयमध्यवत्तिंबाइस्य निव्यता। यथा जिगाय, जिगीवसौत्यादि । जेनुबन्बोन्तिक्षीति वक्तव्य । जित्रः तीः तुम्स्याने तिष्, भन्तु स्थानं सःभन्ति भवसौत्यश्चेः । पाणिजिः ७३५७ ।

भाग्यां रे परे युः स्यात् वा घेऽवैं। अस्पोति अचिति । \* (५८८) युध्वीरित्युव्, अस्तुवन्ति । (५७३) जदिलादिम् वा, आचीत् । (२१३) स्यादेः सी लोपः ।

**६०२ । षढ़ी: का: सी ।** (ष-ड़ी: ६॥, का: १।, से ०।)।

ष्ट्रस्य उसा चकः स्थात् सकारे परे। चाचीत्, चाचिष्टां चाष्टां, चाचिष्ठः चाचुः । वे

एवं (४०) तच्चू कार्थे।

क्षणार्थः किं, निर्भर्तसने सन्तचिति ।

(४१) णिच चुम्बने ।

(५,8८) प्रणिचति प्रनिचति ।

(४२) कषी विलेखने।

# ६०३ | क्षष स्वा स्पृष्ण त्यप हम स्पः सिष्ट्रां वा। (क्षण—सपः ४१, वि: ११, व्यां ७१, वा १११)।

एभ्य: सिर्वा स्वात् व्यां । इ

<sup>\*</sup> त्रजार्थयासी तच चिति त्रवातम, षचय त्रधायेतच चेति तस्मात्। यथा तच्योति तचिति कार्धतचा, तन्त्रकरीतीव्यथः । क्रमार्थः किं, सन्तचिति चीरं साधः, निर्भत्स्यतीव्यथः । षच्याति षच प्रपथयस उन्नारस्य ग्रयः । व्यां पाचीदिति (५०३) इस्पने, पनिस्पचेऽपि पाचीदिति वस्यति । पाणिनिः ३।११०५,०६ ।

<sup>†</sup> भाचीदिति चनिषयते, व्यां सि:, (५६१) ईम्, (२१३) कलीपे, चनेन पर्यक्तः. (१११) घतं। चाष्टामिति चनिष्यते, (५६२) सि-लोपे, (२१३) कलीपे, (४०) तस्य ट। चाचिरिति चनिष्पत्ते कलीपे, षस्य का., से: सस्य घत्नं, (५६३) अन्स्याने उम्। पाणिनि: दाशश्रा।

<sup>्</sup>रै क्रप चस्त्र चेलादि तस्तात्। पचे क्रप स्थ्या (६०५) सका-प्राप्तिः,

# ६०४। वट्रीऽिकज्भसे दशस्जोस्त नित्यं।

(वा ।१।, ऋत् ।१।, रः १।, चिकत्-भसे ७।, हशस्त्रीः ६॥, तु ।१।, नित्यं १।) ।

कषादीनाम् ऋकारो रः स्थात् वा चिकित्भसे, द्यस्जोस्तु नित्यं। चकाचीत् चकाचीत्। \*

६०५ । इग्रषो ऽनिमिजुङो ऽद्द्यः सक् व्यां स्थिपस्वालिङ्गने । (इ-म.चः ४), अनिम् रज्ञङः ४।, अन्द्रमः ४।, सक्

भनिमिजुङो इ य-पान्तात् दय-वर्जात् सक् स्थात् व्यां, श्चिषतेस्वालिङ्गनेऽर्थे। भक्तचत्। १

(४३) रुष हिंसायां।

#### ६०६। वेम् सह लुभ स सु श्रुच वस लग रुष रिषिषो स्तोऽरस्थ।

(वा ।१।, इन् ।१।, सह—इषी: ५।, त: ६।, भरस ६।) ।

तृप दा स्पां (५६५), डः-प्राप्तः। "स्थयस्यकत्रत्वपद्यां चूी: सिज्वा बाच्यः" इतिः वार्त्तिकम्। अत्र स्प्न दश्यते।

<sup>•</sup> नासि नित् यथिन् घोऽिकत्, स चासौ भस् चेति तिथिन् । क्रवाद्योऽनुवर्भने । वायहणं परतानु इत्तिनिबस्यये । भिकत्-भसं इत्यमेन मृषिनि भसे इत्यथंः, तेन दिहचते सिख्ति इत्यत भनिम्-सिन (८०४) भगुषत्वे, न स्वकारस्य रः । केचिन् भिकत् कथनं ङित्भसप्राध्यं, तेन हग्र-यङ्नुकि दरौद्रष्ट इत्यादि । भक्ताचौदिति क्रव-टोदि, सिः, इन्, भनेन प्रथमं स्थस्याने रः, ततः (५०४) भकारस्य बिज्ञः, पश्चे स्वकारस्येत बिज्ञः, भकाचौदिति । जभयन (६०२) षस्य कः, षत्वं । पाषिनिः ६।१। ५८,५८।

<sup>†</sup> इय तालव्य-श्रम्र मूर्डन्य-प चेति तथात्। नासि इम् यथात् चीऽनिम्, इच् एड्यस च इजुङ्, चनिम् चासौ द्रजुङ्चित तथात्। चनिमिजुङ इति इशकी

#### एभ्यस्तस्यारस्य दम् स्वादा। रोषिता रीष्टा। अ

एवं (४४) रिष हिंसायां।

(४५) उष दाई।

#### €०७ । दरिद्रा काम कास जामुषो वाम् छां।

(दिविद्रा — सप: ४), वा ।१।, चाम् ।१।, व्यां ७।) ।

एभ्य भाम् वा स्थात् ठ्यां। (५८३) स्वस्कन्वाम इति। भोषा-स्वभृव उवीष। पे

(४६) यय प्रतगती।

(यथाय) यथयतुः ययशिय। इ

(४७) मिष्टी सेचने।

(६०५) इयषोऽनिमिति सक्। (१०५) होडोमी। श्रमिचत्। (७०) द्रोदिर्षयानुरिति, मेटा। §

विशेषणं। न।स्ति हश्यव भीऽहश् तकात्। ऋथं (५५१) सेवीयकः। ऋजविदिति (६०१) सेविकत्य-पत्ते भनेन सक्षस्य कः, वस्यं। पाणिनिः १।२।४५,४६,४०।

अस्ड लुभच स्थ कुथ ग्रचव यस्य त्य अथच कथच रिषव रूप्य तस्रात्।
एषु कंपाचित् अभाग्नी केपाचित् निथे प्राप्ते अर्थ वैकल्पिकविधिः। एथ्यी रिमन्नस्य
सकारस्य कम् वा स्थादित्यर्थः। इपुग्रक्षणात् इपु ग्रावाञ्के इत्थस्यैव विकल्पः।
इपुगाभीच्या इष्य सर्पयो इत्येतयो निथमेव।पाणिनिः ९।२।४८।

<sup>†</sup> दिग्दा जारधाजी: (५८२) नित्ये प्राप्ते, षव विकल्पार्थे ग्रहणं। श्राम्-विकल्प-पर्वे उनीय इति (५८५) खे: स्थाने उव। पाणिनि: ३,१३८।

<sup>‡</sup> शशशतिरियादौ (५८) शशवर्जनात् न खेलें।पादि । अन्त शशाश इति परं निर्धकं पूर्वस्वेरेव तत्रिक्षे:।

#### (४८) दही भस्नीकर्षे।

(९०६) दारेर्घः । (१७०) मामानस्येति दस्य धः । ग्रधाचीत् ।

(४८) चह कल्कने।

**भ**चहीत्, (५७६) हान्तलात् न विृ:।

(५०) शुच गोकी।

(६०६) योचिता ग्रीता।

(५१) ग्लै हर्षचये।

### ६०८। एचोऽशिला:।

(एच: ६।, पशिति ७।, पा: १।)।

भोरेच आः स्थात् अधिति । \*
(५८८) यमरमेतीम्सनौ । अखासीत् । ,

**६०८। गावातो डो।** (वप्तर, कात. ४।, डो: १)। श्रादल्तात् परी गाप् डो: स्वात्। जग्बी। पं

अ एव इति धातीर न्यावयवस्थै व, तेन भादी की दिल्यादी न स्थात् । एवं भक्ततस्थै व एव इति, तेन की ध्यती त्यादी न स्थात् । भिक्ति इति विषयसत्र मी, तेन भादी भाः, पद्यात् प्रत्ययीत्यात्तः, भतएव सामग इत्येष भादनात् (१८९०) उप्रत्ययः । भव भरे इति नोक्का भिक्तिति वयनं धे-धातीः व्यादि भधादियत्र लोपविधेवं लवन्तादादी से संक्षिति दे परेऽपि भा-प्राप्तयः । स्वधातीः यङ् लुक्ति खो-यात् ज्ञास्त्यादित्यादी भ दे परेऽपि भा-प्राप्तयः । (६६५) व्यंधाती सु क्यां न स्थात् । पाथिनः ६।१।४५ ।

<sup>†</sup> डी इत्यस्य उ इत् (१२६) टि. लोपार्थे। भी इति न कला डी-करणं क्वचिटेक-पदेऽपि सिथनं स्थादिति स्वनार्थे, तेन तितत्तः (चालनी) भसुसुईची भदसुईची इत्यादि सिद्धं। नन्ती इति न्वै-ज्या-थप्। पाणिनिः शिहाइ४।

#### ६१०। उसे चीयगुराचि लोप:।

(उसि ७), एवि ७), इमि ७), अन्तरावि ७।, सौप: १।)।

उसि एवि इसि ऋणोररस्थाचि घोरातो लोपः स्थात्। जग्लतुः जग्लुः जग्लिथ जग्लाथ। क्ष

# **६९१। स्थादेडेंऽस्थो वा काणौ।**

(खादेः ६।, कं ।१।, षख: ६।, वा ।१।, व्यचौ ०।) ।

स्यादेरादन्तस्य स्थावर्जस्य ङेस्यात् वा व्यणी। ग्लेयात् ग्लायात्। १

(५२) गै मध्दे।

# ६१२। दा मा गै हाक पिव सो स्थोऽर हसे त्वयपि ड्री। (दा-सः ६।, घरहवे ७।, त ।१।, घरपि ७।, डी ।१।)।

एषां काणी डें स्थात्, ऋरहमें लणी यप्वर्जें डी स्थात्। गेयात् 🕸

अन रोऽर:, नास्ति णुर्यस्थिन् सोऽणः, चल्यासावरंथित चल्वरः, तस्य चन् चल्यराच् तस्थिन्। प्रथक्षपदकरणात् जस्यादौ चलानांच्यः। जिस्ति यथा चम्, एचि—दिदेदघे, ६िन—जिल्ल्य, चल्यराचि—जन्ततुः, चलर्डिः (११४५)। ग्लैथ्यप् (५८८) वादम्। पाणिनिः (।४।६४।

<sup>†</sup> स्य भादिर्यस्य स्थादिलस्य । व्या भण व्याणसियन् । क्षेट्रस्यस्य क्षः रत् (१७) भ्रत्यस्य स्थाने । परमुवे स्थायकणेनैव भव स्थाधातीरप्राप्तौ पुनस्व स्थाधनैनं, परमुवे भरक्षते त्वयि क्षिति भ्रेषभागेनैव स्थायक्ष्यस्य सर्थिकत्वे, संयोगायादन्तत्वात् भानेन क्याणौ स्थाधातीः विकल्पापित्तिनवारणार्थे । क्ष्यात् क्वायादिति क्या यात् । पाणिनि: ६।४।६८ ।

<sup>‡</sup> दाच मायेत्यादि इन्हें तस्य । धरभाशी इसचेति तस्यिन् । काणी इत्यन्तर्नते, ततस्य विधिदयं । यप्वजनादेव धरहसे इत्यस्य भणी इति विशेषणं लस्यं, याटग्-जातीयस्येति न्यायात् । दा इति दासंज्ञकः । मा इति मासदर्ग, तेन मा स माने,

(५३) छाँ संहती धनी।

ष्यायति । 🕾

(५४) दै-प गोधने।

(५३४) पित्वान दासंज्ञा। अदासीत्। दायात्। १

(५५) धे-ट पाने।

(२५७) ट ईबर्घ: । \$

६१३। जि यि सु दुकमाऽङ् घे व्यां शिवधेट ध्वन्येल्यद्भनेस्तु वा । (बि—कमः प्रा, षङ् १२१, घे अ, व्यां अ, वि-धट-धिन-पिक-पिक्ष-पिक्षं-कनेः प्रा, तु १२१, वा १२)।

ञानादिभ्यद्यां श्रङ् स्थात् चेऽयेँ, खारिसुवा। (५५०) धुर्दिष्ठाङीति, श्रद्धत्। §

मा ङ ्वि अव्दे, मा ङ ्य च, मे ङ प्रतिदाने एषां ग्रहणं। गै—टी-यात् ग्रेयात्। पाणिनि. ६।४।६०,६८।

श्वायतीति (५६८) श्री वर्जनात न पस्य सः।

<sup>†</sup> घटासीदिति (५६८) यमरमेति इस्मनी । दायादिति दासंज्ञाभावात् न छे।

<sup>‡</sup> ट र्नुवर्ष ५ित, तन मुझस्यी, सनस्यीयादि (१०१०)।

<sup>§</sup> जिस सिय सुष ह्रय कम चेति तथात । सिय धेटय ध्वनिष्ठ एलिय प्रदिय किनियेति तथात, मुजलात पृंद्धं । सुरिति दत्त्वादिः । ध्वन्यादिकं ग्रनः, ध्वनिरिति घटादिलात (१९८०) इत्त्वः, घटनचुरादिय । घटधदिति धे-धातीः व्यान्दि, धनेन घड्, (६००) ए-छाने घा, (५५०) दिलं, (६१०) घा-छोपः । घे किं, घकारियेषातां कटौ देवदत्तेन । (५४१) घं प्रप्रेदित सूत्रे उक्तलेऽपि धन घे दति पृनः कथनं प्राचीनानुवादार्षे, ''विश्वद्रसुध्यः कर्षरि चङ्" दति पाणिनिश्रासनात् । एवं (६१०) स्वेऽपि । पाणिनिः इ।१।४८,४१।

#### ६१४। वेशाच्छासाधः सेः पे लग्वा।

चे--- प्र: प्रा, से: द्रा, पे अ, सकाश, बा।श) वे

श्रधात श्रधासीत्। #

(५६) पा पाने।

(५८७) खादानिति पिव। पिवति। (५५२) भूखापिवेति सेर्ल्क। अपात्, पेयात्। 🌵

(५७) घा गसीपादाने।

जिन्नति। अन्नात् अन्नासीत्। ध

(५८) भा मन्दान्मिसंयोगयोः ।

धमति। अधासीत।

· (५८) छा गतिनिहस्ती।

तिष्ठति। न्यष्ठात्। नितष्ठी। स्थेयात्। §

(६०) सा अभ्यासे।

#### मनति ।

<sup>\*</sup> घेशी की सी चा इत्येतेभ्यः सेलुंक स्थादा पे। घेशाइयं (५५२) सेल्कि प्राप्ते विकल्पार्थे। पशादिति पड़ी विकल्पपचे छां सि:, प्रतेन सेर्जुक, पत्रे (५८८) द्रम्सनी, ऋधासीदिति। पाचिमः राधाण्य।

<sup>+</sup> विवतीति विवादेशस्य भदनासात् न गुणः । वैयात् (६१२) के ।

<sup>‡</sup> चन्नादिति चनेन वासेर्लुक्।

<sup>§</sup> न्यष्टादिति (५०२) प्रमागमन्यवधानेऽपि वलं । नितष्ठी इति विकत्तसापि वलं। स्येयादिति (६१२) के।

(६१) दा-न दाने।

प्रणियच्छति। प्रख्यदात्। देवात्। \*

(६२) हुकी टिखे।

६१५१ स्याद्यक्तृत्रतो सुर्यङ्यक्ठी व्यासी स्कुस्तु यां।

(स्वादि प्रति-स्वतः ६।, षः १।, वङ्यक्-डोब्बणो ७।, खः ६।, तः ११।, व्यां ७।)। स्वादेरत्ते ऋकारस्य णः स्यात् यङि यिक ठोळ्योरणो च, स्कुस्तु व्यामिव । जञ्चरतः । पे

# ६१६। नेस्तसपो ऽवृस्तुः।

(न ।१।, इ.स् ।१।, ऋतः ५।, घरः ६।, घ-इ-ऋ-स्तुः ५।) ।

ष्ट-ऋ-स्कृ-वर्जात् ऋकारान्तात् थप इ.म् न स्यात् । जन्नर्थः। 🕸

<sup>ं 🛊</sup> प्रणियच्छति प्रग्यदादिति (५४९) गदायमानेर्णतं।

<sup>†</sup> साः मंत्रीय चादियस स स्वादिः, स्वादिव चित्तं स्वादातीं, तत्रीः सत् स्वादाचृत् तस्य । मंत्रीयादिधातीः , सः धातीय स्वकारस्य इत्यथः । स्वाइचर्यात् स्वादेरिति सदनस्यैव, तेन स्व्यप्रस्तीनां म प्राप्तः । नास्ति प्रविधान् सीऽणः ठीक्वीरणः
ठीकाणः, यङ्च यक्च ठीकाणचेति तस्मिन् । काण्णिति ठी-परस्मैपदस्येन यहणं,
तेन मृत्रीष्ट इत्यादी चात्रानेपदं (६५६) कित्त्वेऽपि चनेन न गणः । स्तुरिति (७६६)
सुम्युक्त-क्रज इत्यर्षः । पाणिनः ९।४।१०,११,२८,३०, वार्तिकच्च ।

<sup>‡</sup> इय ऋष स्कृष ते, न विद्यन्ते ते यस सः अवृष्का तस्तात्। (५८४) नैमसुमित्य-भेन वधातोष्ठीमात्रस्य इम्निषेषेऽपि श्वतः इयहसात् यम इम्, तेन ववरिष इति, श्रम्यवत् ववव इत्यादि। स्वृधातोष्टिस्चेऽपि (५७३) वेम्ट्रित्यित्र स्वर्यहणात् मस्व-रिष सस्त्र्यं इति वा इम् स्यादिव। श्रव इक्त्यक्त्रीनादेकात्र एव निषेधी मन्तन्यः, भेन जनागरिष इति। जन्नर्य इत्यव (५८४) नेमसुमित्यनेन श्रम्थानिम्लादिम्प्राप्तौ श्रमेन निष्येषः। पार्विनः शर्थास्त्र।

# **६१७। सयर्डनः।** (सस (।, क्रत्-इनः ५।)।

ऋदन्त-इन्तिभ्यां खख इम् खात्। इतिखति।

(६३) खु ज शब्दोपतापयोः।

(५७३) वेमृदितीम् वा। श्रस्तारीत् श्रस्तार्थीत् । 🕆 सस्रियः सस्र्धे।

#### (६४) स्ट गती।

### ६्१८ । वक्ताय्य ख्या लिप सिच हो डो घे व्यांस्तुवा लिक्यसुमे।

(विजि—ः हृ: ५।, ख: १।, घे ७।, र्घां ७।, सः ५।, तु ।१।, वा ।१।, लिव्स्यः ५॥, तु।१।, मे ७।)।

वक्त्यादेर्घेऽर्घे रू: स्थात् ट्यां, स्टक्त्यम्यान्तु वा, लिपादेसु मे वा स्थात्। क्षं

<sup>#</sup> सदय इनच तसात्। स्यस्य इति स्यस्वरुपस्य ग्रहणं, तेन स्यति स्थतम् स्थलीताः देरैव । इसः केवलस्य भनुवतिः, नतु नञ्चिषेषणस्य, स्वाभाविकालिम्-इन-धार्तारिम्-निपंधवैपल्यात्। स्वधाती-रुदिस्वात् वेसलेऽपि, विशेषविधानादनेन नित्यसिम्, तेन स्वरिष्यतीस्येव । पाणिनिः ७१२।७० ।

<sup>+</sup> अखारीत् अखाधीत् (५०४) अञ्चललादुभयत्र ऋ इत्यस्य वृद्धिः चार्, (१९९) इलात् परस्य सस्य घलं।

<sup>्</sup>विकिय प्रस्थय खाय लिप्य सिचय हाथ तन तस्यान । स्वय स्वय मृतस्यान् स्वः । विकिरिति प्रदादिगणीय-वच-घातः (ब्रुची वचादेशेऽपीति केषित्) । प्रस् किति दिवादीथोऽसधातः । लिब्स्यः कित बहुवचनं गणार्थे, लिप सिच केकित । प्रस्थातीः क्रिस्तान् परस्थेपदे कः (५६५) सित्त एव, कक्षान्तभेपदार्थः । तेन (८०६) प्रात्मनेपदे निरास्थत कति । पाणिनः श्राप्त, १९,५३,५४।

# **६१८। दखोर्ण:।** (हमी: ६१, ष: १।)।

द्योक्तवर्णान्तस्य च णः स्थात् ङे। असरत् श्रसार्धीत्। अ

### **६्**२०। ऋद्रिः शयक्ढीपे।

(चटत्।१।, रि: १।, श्रयक्-डीपे ७।)।

स्रियात्। 🌣

(६५) ऋ गती।

ऋच्छिति। ग्रारत् ग्रार्षीत्। ग्रार, ग्रारतुः, ग्रारिष्ट। त्रय्योत्। क्ष

(६६) यु यवणे।

# ६२१। यो: सुर्धे रे जिया।

(यो: ४।, यु: १।, घे अ, रे अ, जि: १।, घ ।१।)।

युनो घेऽर्धे युः स्थात् रे, युनव जिः। युणोति युग्रतः युग्रत्ति। §

 <sup>\*</sup> हमच स्थ्य ती तथी: । अर्थवमात् के इति सप्तस्यस्त्वेनानुवितः । असर्दिति
 (জ-पचे गुण:, काभावपचे अनार्वोदिति (५०४) वृद्धिः । पाणिनिः शक्षाश्कृ ।

<sup>†</sup> श्रव यक् व दीप च तिक्षन्। इन्त्र-ऋकारी रि: स्थात् श्रे यांक दी-पे च परे। सियादिति इन्त्रान-रि-निर्देशादेव (५९०) न दीर्घः। पाणिनिः ७।४।२८।

<sup>‡</sup> भारतः भर्यादित्युभयत्र (६१५) सु:। आरिथेति (५८८) ऋवर्जनात् न वेस्।

<sup>§</sup> यु-धातीः श्रो कते यु इत्यस्य (५३५) जिः उकारयक रेपस्य चः । श्रुः यणे वाषकः । य इत्, तुस्यितिः । युधानं स्वादिनणीयभक्तवा भादिव पाठात् कचित् यवती-त्यपि । प्रयोतीत्यत्र श्रीककारस्य तुषः । प्रस्तनीत्यत्र (५८८) युधीरिति व, (१०७) वृत्यं । पाणिनिः ६।१।७४ ।

# ६२२। नपाऽस्यस्योत्त्वोपा वृमि वा।

(नपः ६।, चसम्य ६।, चन्नोपः १।, व्नि ०।, वा ।१।) ।

श्रस्यस्य नी-क्षय उकारस्य वा लोपः स्यात् वमयोः परयोः। ऋखः ऋणवः ऋग्मः ऋगुमः। (५४७) हेलीपोऽस्येति, ऋगु। श्रुश्रुव। %

(६७) सुगती।

# **६्**२३। सुस्तुधाः सेरिम् पे।

(सु-सु-धी: प्रा, से: ६।, दम् ।१।, पे ७।)।

त्रसावीत्। सुषविय, सुष्विव। सविता सीता। 🕆

(६८) सुगतौ।

(६१३) चित्रीलाङ्। ऋसुसुवत्। सुस्रोय, सुसुव।ःः

(६८) दु गती।

ब्रदावीत् अदीं घीत्, दुदुविव । §

<sup>#</sup> नुघ उप् चेति तस्य । न स्रोऽस्यक्तस्य । उतो लोपः उत्तोषः । व च न च वम् तस्मिन् । नुस्त यूः, उप् तनादिभ्य क्रतः (६८८) ग्रुप्। ग्रुणोमि तनी-मीत्यादी, लीपस्वरादेश्योसु स्वरादेशविधिवलीति न्यायान् भादी गुण एव । ग्रुणुव इति ब्याव, (५८४) नेमभुम इति नियमान् न इम् । पाणिनिः ६।४।८०।

<sup>+</sup> सुय स्व प्रय तसात्। स स् प्रधातम्यः सिरिम् स्थात्पे। स धातीः (५०२) विकल्पे प्राप्ते नित्यायं ग्रह्मं। स्तु प्रद्येतयोः (५००) एकाजुदललेन निषेधं ग्रह्मं। पे किं, असविष्ट अभीष्ट, अभीष्ट अघीषानां। (५०२) करुसनी-स्वज्या इति नियमेन सुषविष्य सुष्विव इत्यादौ नित्यमिम्। स्विता सीता इति (५०२) बाइम्। पाणिनः ७२।०२।

<sup>‡</sup> श्रम्भसुवदिति (४८८) उत्र । एवं श्रदुदृवत् । मुस्रीयेति नेममुमिति नियभेन (५८९) सृत्रहशैत्यस्य वाधितत्वात् न इम् ।

<sup>§</sup> भ्रदाबीत् भ्रदीपीदिति (५०३) बदुमुनोस्त्रक्या द्रख्की: वाद्रम् । दुदुविवैति नेमसुमिति नियमात भ्रत्यत्र निस्पमिम् ।

#### (%) द्रु गती।

श्रदुद्वत् । दुदुव ।

(७१) गम्बी गती।

गच्छेति । (५६५) निदित्वात् ङः, श्रगमत् । जगाम । (२३०) इनगमेत्युङ्नोपः,जग्मतः जग्मः । जगिमय जगन्य ।

# **६्**२४। गमाऽमे स इम् मार्हात्त् वा।

(गमः ५१, भमे ७।, सः ६।, इम् ११।, मार्हात् ५१, तु ११।, वा ११।) ।

गमः परस्य सस्य इम् स्थात् न तु मे, मयोग्यात्तु वा। गमि-ष्यतिः। पं

(७२) सम्भी गती।

श्रसापीत् श्रसाप् सीत् श्रसपत् । क

(७३) स्कन्दिरी गति-शोषणयो: ।

६२५ । विस्तामा निर्वन्ति-सु-निर्दु:खपः सः षो:,-निनिविस्फुर-स्फुल परिविस्त्रन्दाऽप्राणिघ-निपरिनिर्व्यभ्यनु-स्थन्दस्तु वा।

(विस्त्रभा -खपः ६।, सः १।, वः १।, निनिर् -खन्दः ६।, तु ।१।, वा ।१।)।

 <sup>\*</sup> दुदुवेति नेससुमिति नियमात् न इम्। जगिमय जगन्य इति (५८६) वा इम्।

<sup>†</sup> मं भाक्षानेपदं भाईतीति माईलाखान्। (८०५) सभीगस्व्य्वेशनेन भाक्षानेपद-विभानान् समर्गला संगंखते इथादौ न इम्। भाक्षानेपदशीग्यस्थले तु संजिगनिषु: संजिगंसुरत्यादौ वा इम्। पाणिनि: ७।२।५८।

<sup>‡ (</sup>६०३) क्रयस्य इति, (६०४) वर्द्रति चन्नासीत् भसार्यसीत्, सि-विकल्पपचे (५६५) विदित्तात्रः, भस्यत्।

विस्तभाते वे वर्जे व्यादिपूर्विस्य स्वप्य सः षः स्यात्, न्यादि-पूर्व-स्मुर-स्मुतोः परिवि-स्तन्दतेः त्रप्राणिष-न्यादिपूर्वस्य स्यन्द-तेय स्यादा । परिष्कन्दति परिस्तन्दति । \*

(७४) तृ प्रवन-तरणयोः।

# **६५६। च्टृतो णुः कित्**र्या।

(महत: ६।, गः १।, वित्वां ७)।

तेरतुः । 🕆

# **६्**२७। वृता वेमोघेंाऽठीढीपसे:।

(वृ-सतः प्रा, वा ।१।, इनः ६।, र्घः १।, भ-ठी दी पसे: ६।) ।

हड़ी हज ऋदन्ताच इमी घी: स्थात् वा,न तु काः व्याः पमेय।
तरीता तरिता। ठी ठी पमेलु तरिथ, तरिषीष्ट, अतारिष्टां ।

के ते: स्कमा: विस्तिमां, विश्व सुध निर्च दुर्व तेथः स्वप, निर्गतो तः यधात् स्र निर्वः, निर्गयासी विस्निद्ः स्वप् चेति, पद्मात् विस्तिमाद्य निर्विवस्तिद्यः स्वप् च तस्य । निय निर्च विश्व ते, तेथः स्मृरस्मृतौ, परि विष्यां स्कल्टः परिविस्कल्टः, निश्व परिश्व निर्च विश्व प्रसिथ अनुध ते, तेथः स्यन्द निपरिनिर्व्यथनुष्यन्द, अप्राणी घः (कतां) यस्य सः अप्राणिषः, सचासी निपरिनिर्व्यथनुस्यन्द चेति अप्राणिष्विनिपरिनिर्व्यथनस्यन्द्र, पश्चात् निनिर्व-स्मृरस्पृती च परिविस्कान्द्य अप्राणिष्विनिपरिनिर्व्यथनस्यन्द्र चेति तस्य । स्क्रभा दित श्वात् निर्देशात् विस्क्रभीतौत्यव यत्वं न स्थात् । निर्वे द्वित यदा स्वप्यातीः न स्थादित्यथः । अप्राणिष इति स्यन्दित्येष्यान् निस्यन्दते (सदं सुचिति) इस्तौत्यव न स्थां। पाणिनिः पाश्चित्र २०३,०४,०५,००,प्ष्य।

<sup>†</sup> किञ्चासी ठीचेति कित्ठी तस्यां। तेरतुरिति भनेन गुणे, (५०६) भकारः एकारः खिलोपसः। दोर्घनद्वत इति किं, चक्रतुः। पाणिनिः ७।४।११।

<sup>‡</sup> तथ चरथ तकात्। पे निः पनिः, ठीच ठीच पनिःचिति, न ठीटीपनिः श्वाठीटीपनिस्सा। इ इति वृङ इञीग्रंडणं। तृता (५५४) इस्. (५७२) गुणः, भनेन इसी वा दीर्घः। तिरिय इत्यत्र गुणादनन्तरं (५०२) भकार एकारः, खिलीपय। भतारिष्टानिति (५०४) भक्तनत्वात् इद्विः। व्युन्तसीदाइरणन्तु स्चीक्तनियेभक्तनातुः सारीण। पाणिनिः २।२१८,१८,४०।

# **६२८।** ऋदिरणावुर्लेष्ठियात्।

(ऋत्।१।, इर्।१।, प्यो का, उर्।१।, ता।१।, श्रीष्ठपात् धा)।

ऋकार इर् स्थादणी, ग्रोष्ठगात् परसु उर्। तीर्थात्। अ

(७५) षन्जी जि सङ्गे।

#### **६्रिट । षन्ज दन्**श ष्यन्जोऽपि नलोप:।

(षन्ज-दन्भ-ष्वन्ज: ६।, ऋषि ७।, न-स्रोप: १।)।

निषजति । न्यषाङ्चीत् । निषषच्च, ससजतुः ससञ्जतुः । विषयः । (७६) दृश्यिरी प्रेचणे ।

पर्यात । अद्र्भत । (६०४) वर्द्रीऽिकदिति, अद्राचीत् । क्ष (५८८) सजहशेतीम् वा, दद्भिष दट्रष्ठ ।

<sup>\*</sup> भन पी: इति नीक्वा भीष्ठादिति कथनं दत्त्ववकारसापि प्राप्तार्थं, तेन वृधाती: सनि वुव्धैतीति (८०५) दोर्घे, भनेन भीष्ठापरत्वादुर्। भीष्ठादिति धालवयवादेव, तेन सम्पूर्वकस्य ऋषाती: सभीर्थादिखेव। लाचिषिकस्याप्यव ग्रहणं तेन भश्चिकीर्थात (८०५) स्वं द्रष्टव्यम्। तीर्थादिति तृधाती: दी-यात् भनेन इर्, (२२८) दीर्षः। पाषिनि: ७१११००,१०२।

<sup>ां</sup> पन्त्रस दन्त्रस घन्त्रच तस्त्र । एषां नस्य लोप: स्याद्षि । एस्य: प्रप् िकत् इति न क्रला नलोपिवधानं, दिश्च कङ्दर्शे इति इदन्वस्य-चुरादीय-दश्वधाती: ॐ-विकल्पपचं दशते इत्यव (५६८) नलापिनिधेधेऽपि, चनेन नलोपाधे । निपजतीति (५०२) षत्तं । न्यवाङ्वौदिति (५०४) वृत्तिः, (२११) कुङ्, (५०,५१) नस्याने अनु-स्वारत्तस्य च ङ । (१११) कवर्गात् सः षत्तं । (५०२) चन्यवधानेऽपि षत्तं । निषयञ्च इति द्वितेऽपि द्वरी: षत्तं । ससजतुः ससञ्जतुः (५६६) वा किङ्कावः, (५६०) कित्यचे न-लोपः। पाणिनिः ६।४।१५ ।

<sup>‡</sup> पद्मति (५८९) दशस्याने पछा। भदर्भत् (५६५) ङः, (६१८) गुणः। ङः विकत्यपचे भद्राचौदिति भनिमलात् (५७४) विज्ञः, (१५४) वङ्, (६०२) वस्य कः, (१११) वर्लं।

#### (७७) इन्गी इंगने।

**त्रहाङ्**चीत्। #

(७८) कित निवासे रोगापनयने संग्रये च।

६३०। जित्तिज्युपः सन्तेम् मान शान दान बधस्त खेडी च। (कित्-प्रापः शा, सन्।११, मन१।, इन्।१।, मान-वधः शा, तु।१।, खे: ६।, की।१:, च।१।)।

कितादेः सन् स्यात्, इम् न स्यात्, मानादेलु खेर्ङी च ।

क्रमादेतेऽत्र सन्देहे चान्ति-निन्दा-विचारणे ।

नियानार्जवनिन्दासु क्ग्जयेऽपि कितो मतः ॥ कृ

६ं३१। सन्जादि र्घुः। (सन् अप्राद्धिः १), पः १)। सनन्तो जायन्त्रय धसंज्ञः स्यात्। इ

भदाङ्चीदिति दन्ग-धार्ताः टो-दि, इदिः षङादिकञ्च।

<sup>+</sup> कित्व तिज्व बुप्य तसार । मानय ग्रानय दानय वध्य तसार । पिति हिंष्टार्थतात् सार्थे एव अन् भवति । एतेषां सप्तानां धात्नामणांन् निर्हिशति । कमा-दिति । यत्र भन्विधाने एते कितास्यः सप्त कमात् सन्देशदि सप्तस् पर्णेषु मताः, कितः करज्येऽपि मतः । तेन कित — सन्देश-करज्ययोः, तिज उ धान्तो, गृप उ निन्दायां, मान उ विधारणे, ग्रान उ निग्राने, दान उ पार्जेवे, वध उ निन्दायाः मित्यथः । सन्देशः विकद्यानककोटिविषयकं ज्ञानं, प्रसिद्धयं प्रकर्मकः यथा — ग्रास्त्रे विभिन्ताति । कग्ज्यो रोगप्रतीकारः । धान्तः सप्तनं । निन्दा दोषवस्याख्यानं । विवारणं प्रदेशियां न विति प्रमाणानुस्थानं । निग्रानं तीष्णीकरणं । पार्जवं पन्त-टिलीभावः । एष्ययेषु सक्तर्यका एव । पाणिनः श्रीः। ६।

<sup>‡</sup> आहिस—जि (৩৩৩) सन् (८०३) यङ् (८२०) कास्यक् (८४२) का (८४१) का (८४८) कि (८४८) कि (८४८) का (८४) का (८४८) का (८४८) का (८४) का (८४८) का (८४८) का (८४८) का (८४) का (८४) का (८४) का (८४८) का (८४८) का (८४) का (८४) का

### **६३२ । सन्यङन्तो दि: ।** (धन-यङ् धनः १।, वि: १)।

विकिसति। अविकिसीत्। विकिसामास। अ

पति पवत् पाद: । +



३य परदः -- मवत्।

(७८) एध ङ हडी।

एधते। ऐधिष्ट। एधाचको। इ

(८०) दद ङ दाने।

(५७८) ग्र-माग्रहरेल्की:, दहरे।

(८१) व्यक्त उन्सर्पणे।

(५६८) अ-स्त्रीषकी त्युती:, खकती विषकी।

<sup>#</sup> सन् च यङ्च सन्यङी, ती अलि यस्य स सन्यङलः। तदग्णसंविज्ञान-बहुबीहिणा सन् यङ् ससेतो हिः स्वादित्यर्थः। कदाचिदतदगुणसंविज्ञान-बहुबीही क्षेत्रली घातुरिप हिः, तेन सीचते इत्यच सनं हित्वा सुचधातीः इत्ये, (८०४) भीचा-देशः। चिकित्यतीत्यादि, कितः सन्, इननिषेषे, (८०४) ग्रानीनिसीति वत्यमाणात् मुणनिषेषं, इत्ये चिकित्य इति भागस्य धातुसज्ञायां तिवादिकं। त्यान्तवादान, ततः (५८२) चसप्रयोगः। पाणिनिः ६।१।८।

<sup>†</sup> पवतां परस्मैपद्वतां धातूनां पादः एकार्याविक्तिन्नम् ममूहः इत्यर्थः।

<sup>‡</sup> एघ-ते (५४१) श्राप्। एघ तन् (५५०,२२,५५१,५५७,१११,४०) ऐधिष्ट । एघ-ए (५८२,५८३)। चाकानेपदिलात् कीवर्णक प्रयोगः।

(८२) ऋज ङ आर्जवे।

आवृजे। %

(८३) तिज ङ चमा निमानयी:।

तितिचते। १

(८४) खन्जी ङ सङ्गे।

निष्ठजते। 🕸

#### ६३३। निविपरि खन्ज सुमादेः सः षोऽमिवा।

(नि-समादेः हा. सः हा, षः शा. प्रानि वा, वा शा) ।

न्यषङ्क न्यसङ्क । सस्त्री सस्त्री । §

#### **६**३४। सत्खञ्जोष्ठां नाखे:।

(मद् खड़ी: ६॥, व्यां ७।, न ।१।, अवे: ६।)।

खिवर्जस्थानयोः सः षो न स्थात् ळां। विषस्रजे विषस्रज्ञी। ॥

भारते इति सन-ए (५८०) सकारादिलात खेरान्।

<sup>+</sup> तितिचते इति तिज्ञः (६३०,६३२,२११,६३१,) तितिच इति धातु:। (६३६) चालानेपटं।

<sup>‡</sup> निष्वज्ञते (५६८,६२८,५७२)।

<sup>§</sup> सुम षादिर्थस्य स सुमादिः, स्वन्तय सुष सुमादिशित । निष विष परिय ते, तेभ्यः स्वन्त्रभुस्मादिः तस्य । सुमादिः (५७२) सुम, ष्रनङ् सिव, ष्रनोङ् सह इति। निविपरिभ्यः परिपामेषां सः षः स्थान् वा ष्यमि सित । न्यत्रङ्क्त इति नि-स्वन्त-तन् (५५०,५५१,५६२) सेलीपः, (२११,५०,५१) ष्रनेन वा पत्नं । सेः स्थानिवस्तात् (५६०) म नत्तापः । सन्त्रे सस्त्रे इति (५६६) वा कित्सं ज्ञायां, (५६०) नलीपः तदसावौ । पाषिनः प्रकार ।

<sup>¶</sup> सट्च स्त्रज्ञच तौ तथी;। न खिरखिलस्य भक्षे:। विशसके विषखि

(८५) त्रपूषङ् लज्जायां।

अविषष्ट अवस । वेषे। \*

(८६) जभ ङ् जसाने।

#### ६३५। नुण् जभोऽचि।

(नृष्।१।, नभः ६।, पवि ७)।

त्रजिभष्ट । 🕆

(८७) हम ङ स्तमे।

विष्टोभते। व्यष्टोभिष्ट। \$

(८८) पण ङ व्यवहारे स्तृती च ।

(५८१) कामऋतित्यायः । पणायते ।

### **६्३६। सन:** पमे धा वी त्वायात्।

(सन: पू।, प-मे १॥, घो: ६।, वा ।१।, तु ।१।, श्रायात् पू। ।।

पणायति । अपणायिष्ट अपणिष्ट । पणाया चक्रे पेणे । §

इति इपनेन निवेधात् म्लस्य म वर्लखेलु (५०२) वलमेव । व्यामिति किं, विवाख-च्यते इत्यत्र उभयोरिव वर्ला पाणिनिः, पा३;११८, काशिका वार्धिकानि च ।

<sup>\*</sup> श्रविष्ट इति (५०३) वा इम्, पचे (५६२) सिलीपः श्रवप्तः। विषे इति (५०८) सिलीपः, श्रकार एकारसः।

<sup>†</sup> जभी तृष् स्थादिच परे। गिल्लाद्रत्याचः परः । प्रकरणवलादात्रसनेपदिन-प्रवेति बोर्ध्यं, अपभ जभने इत्यस्य तुलभतौत्यादि । चलस्थिष्ट इति इसि, चलि परं उष्ण । एवं जन्मनित्यादि । पाणिनिः भारादेश ।

<sup>‡</sup> विष्टीभते, सुभधाती: (५०२) वलं | व्यष्टीभिष्ट इति श्रम्यपि वलं ।

<sup>§</sup> धी: म्लधातुसम्बन्धिनी प-मे सन: सनलात् सः, त्राथालात्तु वा। तथात्र परक्षेपदिधाती: सनलात् पं, भावानेपदिधाती: सनलात् मं, समयपदिन: सनला-

#### ६३७। विच्छास्तृतिपणो वायः।

(विच्छ-मस्त्तिपण: ५।, वा ।१), चाय: १।)।

पणायते पणते। %

एवं (८८) पन ङीड़े । १

(८.০) कामुङ कान्ती।

कामयते। (६१३) जान्तवादङ् ं क

# ६३८। ञाङ्गङः खो उनग्लोपिशासृहितः।

अम्बोपिनः शासी ऋकारितयान्यस्य उङः स्वः स्थात् जेः परे ग्रङि परें। §

टुभयपदिमिति। चायाल् वेति वाण्डदो व्यवस्थितविकल्पार्थः, तेन चात्मनेपदिन-श्रायान्तान पसे सः, परसंपदिनम्नुपर्भव । अतो गुपधातीः गीपायतीक्षेत्र । पणाय-तीति भाषान् वैत्यस्य विकल्पपर्न उदाइरणं। भपणायिष्ट भपणिष्ट (५८२) वारे द्रवसीदाहरणं। पाणिनि: १।३।६२।

🗴 न सुतिरसुतिः, चसुतौ पण चसुतिपण, विच्छय चसुतिपण चेति तस्मात्। विच्छ घातीः ऋन्तृत्यर्थात् पण्यः चायः स्यादाः। स्तृतिवर्जनात् स्यवद्वारार्थे भवती वर्षः। व्यवहारमः क्रयविक्रयस्वरूपः । पाणिनिः ३।१।२८८,३१ ।

- 🕂 एवं पन इत्यनेन (५८१) भाषप्रत्येय पनायते पनायति इत्यादि ।
- 🗜 कामयते दति (५८१) जिङ्कते, (५००) इंडी, कामि-घातोले विभक्ति:।
- § जे. परी ऽङ् ञाङ् तिश्वन्। भाको लीपः श्वन्तीपः, कीऽस्यासीति भन्तीपी। च्छत् इत् यस्य म च्छदित्। ऋग्लीपीच शासुय च्छदिचेति, पक्षात् भञ्गीगैतस्य । जः परे प्रक्रि परे इति कथनात् जे: पूर्वविभिमागसीय उकः स्वः स्वादिति । प्रस्तीपि-भास ऋदिताल — भनुकूटत् अभ्रमासत् भडुढीकदित्यादि । पाणिनिः अधार,र ।

# ६३८। खेः सन्वद्घौ, धार्हसारे र्घस, ल्यनेकाचास्वकलिङ्के वी।

(खि: ६।, सन्वत्।१।, घौ ७।, घो: ६।,इसादे: ६।, घं: १।, च ।१।, ऌयनेकाभी: ६॥, तु।१।, भकलिइल: ६।, वा।१।)।

श्रनग्लीपिनः खेः घी ध्वचरे परे सन्वत् कार्य्यं स्थात् जाङि, घीष खेर्हसादेः घी स्थात्, किलि हिलि वर्जस्य लेः श्रनेकाचय सन्वदास्थात्। अ

**६४० | ख्यस्थेत् सनि ।** (ख्यसः ६१, दत् १२१, सिन ७) । खेरवर्णस्य दत्स्यात् सनि परे । पे

# ६४१। जेर्लीपो ऽनात्विष्णुायान्ते त्वामिम् शिति।

(जे: ६।, लोप: १।, अनालु— भिति ৩।)।

त्रालु इणु त्राय्य अन्त इतु त्राम् इम् ग्रित् एभ्योऽन्यत्र जेर्लोपःस्यात्। 🕸

<sup>\*</sup> सन्दर्व सन्तर्, लिय अनेकाच तौ तथोः, किलिय इलियेति किलि-इलिः, न किलिइलिः अकिलिइलिनस्य। अनर्गापि-शास्त्रृदितामन् वर्गनेऽपि शास्त्रृदिता लघु-स्त्युक्तधात्ववरपरलाभावादपाप्तो, अकास्त्र च ल्दीभी इत्यस्य ऋदितीऽपि अनेकाच्-स्वात् विश्वेषे वाधितलात्, केवल-सनर्गापिनः इति व्याच्यातं। अनर्गापिधातोः स्तिः सन्वत् कार्ये स्थात् ञाङि, लघुधालचरे परे। तवैत इसादेधीतोः खियंदि लघु-भविति तदा तस्य दौर्यः स्थात्। किलि इलि-भिन्न लिङस्य अनेकाच-धारीय स्तः सन्वत् वास्यादिस्थयः। पाणिनि ९१८८३, यार्त्तिकानि च।

<sup>†</sup> खे: प: ख्यत्तस्य। पाणिनः ७।४।७६।

<sup>‡</sup> भाजुय ६ ज्ञायय भन्य इतुय भाम् व इम्च शिव ते, न वियत्ते ते यत्र स तिक्षित्। भाजादी तु—स्प्रस्यालुः, कारिये जुः, स्पृष्ठयाय्यः, मज्ययनः, सनियितुः, कारयामास, कारिये थिति, कारियतीत्यादिः। (१०७०) स्त्रे सेम्कादी परे तु श्रेलीपः। पाचिति: ६ । ४ । ५ ९,५ ९,५ ९,५ ६ ।

अचीकमत अचकमत । कामया चुक्री चक्रमे। अ

(८१) अय ङ गती।

यायिदुं प्रायिध्वं यायिद्वं। ययाञ्चली।

(८२) एवं, दय ङ गती।

(८३) स्मायी ङ हडी।

श्रस्मायिष्ट । 🕆

# ६४२। योर्लीमो इस्यये।

(यो: रं॥, लाप: १।, इसि ७।, भये ०।)।

अस्पास्त । 🕸

(८४) क्रो प्यायी ङ <u>व</u>डी ।

## ई ४३ । पदस्तनी स् घे प्याय ताय दीप पूर जन बुधस्तुवा।

(पदः ५, तनि ७, इण् ।२।, घे ०।, प्याय-नुषः ५।, तु ।१।, वा ।२।) ।

<sup>\*</sup> अप्योक्तमत इति कम धाती: (५८२) जिड्, (५००) बर्डि:, कामि इत्यस्य (६११) धात्मं आ, तत: तन्, (६१३) घडः, (६१८) अस्तः, किम इत्यस्य दिले मि इथस्य खोपे, कस्य चकारे, खे: सन्तत्वात् (६४०) घकारस्य इकारे, लघुखंदीं अर्भेने जेलींप:। जिङो विकम्पपये, अर्ङ् दिलादिकस्य। कामयास्त्री-इति कामि धाती: (५८२) त्यान्लादाम्, तत: क्रप्रयोगः। जिङोऽभावे चकसे।

<sup>🕇</sup> मायिदुमिति (५५६,५५०) सर्लापः, घस्र ड.। भस्कायिष्टेति (५०३) वा इम्।

<sup>‡</sup> यच वच यौ तयोः । वकारी दन्यः । यवयोर्जापः स्यात् भाग्ये इन्नि परे । भरकास्त्रीत भनिभुपचे यःलीपः । एवं स्काताप्याता । दिवी यङ्कुकि उन्टोऽप्राप्ति-पर्चदेदिति भव वकीपः । इन्नि किं,स्कायते चैवते । भर्यकिं,दोव्यति । वार्सिकम् ।

पदी घेऽर्थे इण् स्थात् तिन, प्यायादेसु वा। क

#### ६४४। द्रणसन् लोष्यः।

(इ.स. ५।, तन् ।१।, लीयः १।)।

श्रयायि श्रयायिष्ट श्रयास्त । 🕆

# ६्८५ । प्यायः पी यङ्कोः ।

(प्याय: ६१, पी: ११, यङ् खी: ७॥)।

पियो । 🕸

(८५) तायु ङ सन्तानपालनयीः।

चतायि चतायिष्ट । §

(८६) यल ङ चलने।

श्रमलिदु' श्रमलिध्वं श्रमलिद्वं। ¶

इ.पी च इत् वृद्धार्थः । सेवीधकीऽयं। पाचिनिः इ।१।६०,६१।

<sup>†</sup> इष: पर: तन् लोप्य: स्यात्। इष: इति सामान्यायें, तेन (६२१) रतनो-येगियावित्यनेन क्षतादिषोऽपि तनो लोप:। पदलनीच चे इत्यत्र तन: स्थाने इष क्षते लाघवेऽपि, त्यां सेरापत्तिः, तन्स्थानजातलेन इषो जिल्लात् अवीधीत्यत्र गुषाभावस स्थात्। अप्यायिष्ट इति इषो विक्लपचे (५०३) वा इम्। अप्यालेति इमीऽभावपचे यक्षीप:। पाणिनि: ६/४/१०४।

<sup>‡</sup> प्याय-स्थाने पी: स्थात् यिङ क्यास्त । पिछो इति (५८८) यः। पाणिनिः ६।१।२६।

<sup>§</sup> भतायौति तायधाती: तनि (६४३) इस्। पचे (५५४) भतायिष्ट ।

<sup>¶</sup> भग्रालिदृनिति (५५६,५५७) वा-इधेन पदत्रयं।

(८७) पेह क सेवने।

परिषेवते, न्यपेविष्ट, विषिषेवे। प्रतिसेवते। \*

(८८) काम्र ङ दीप्ती।

काशामास चकाशे। क

एवं (८८) कास ङ कुमन्दे।

(१००) ईह ङ चेष्टायां।

ऐहिदुं ऐहिध्वं ऐहिह्नं। क्ष

(१०१) र इन्वधे गत्यां।

अर्विष्ट अरोष्ट। कक्विषे। §

(१०२) दे ङ पालने।

#### **६४६** । दे देंडो दिगिष्ठां।

(है: ६।, देड: ६।, दिगि: १।, व्यां ०।) ।

दिन्तस्य देखो दिगिः स्यात् व्यां। दिग्ये। श

 <sup>(</sup>५०२) परिषेत्रते, नावेतिष्ट ६ति अन्यापि, विषिषेते इति देश पत्नं। परि-नि-वि-पृत्र्वेतासातान प्रतिसेत्ते इति न पत्नं।

<sup>†</sup> काशामास दति (६००) वा चाम्।

<sup>‡</sup> ऐडिंदु (५५६,५५०)।

<sup>§</sup> भरविष्ट भरोष्ट (५०३) वा इम्। कक्विषे इति ठौवर्जनात् (५८४) नेससुमिति इम्। (५८८) खन।

শ दिग्ये इति दिवलास्य देवाती: বিনি-মারিল:, (५८८) इ.-स्थाने य:। पाणिनिः গাধান।

(१०३) भी डी ङ नभीगती।

श्रडयिष्ट । %

(१०४) गुप ङ गोपन-कुलानयोः।

जुगुपाते।

(९०५) मान ङ विचारे।

मीमांसते।

(१०६) बध ङ निन्दायां।

बीभसते। 🕆

(१०७) खुत ङ ए दीप्ती।

(५६५) शासु लिद्युदिति ङ:। तेनैव पं। अयुतत्, अयोतिष्टाः

६४७। दात्-खाषी: खेर्जि:।

(द्युत्-स्वार्धाः ६॥, खेः ६।, जिः १।)।

दियुते । §

(१०८) वृत ङ वॢ वर्त्तने।

€8८। इद्गोनेम् पे खसनोर्वालमे।

(बदस्य: ५॥, न ।१।, इस् ।१।, वे ७।, स्य-मनी: ६॥, वा ।१।, तु ।१।, प्रामे ७।) (

<sup>\*</sup> শত্যিত হবি (১ু৯) ভী-বর্তনার্ল হুম্নিট্ড:।

<sup>†</sup> जुगुप्तते, सीमांसते, बीमवाते, इति (६३०) मन्, सान-वधी: खंडींच। मुपधाती: (८०४) प्रनिम्सनि न ग्रा. (१९०) वध-घातीर्वस्य भः।

<sup>‡</sup> तेनेव पं (५६५) टीपरकोपदे उट-विधानसामव्यांत् बुतथाती: व्यासुसयपद-मिल्ययः।

<sup>§</sup> द्युद्य स्वापिष तथी:। द्युती ज्ञानस्वपथ खेर्जि: स्थात्। हिट्युते इति खे: (५१५) यस इ:। पादिनि: ৩।৬।६०।

हतादे: ख-सनोरिम् न स्थात् पे, मादन्यत्र तु वा । त्रतएव पं। वर्तस्यति । मेतुवर्त्तिथते । अ

(१०८) सम्दुङ वृ चर्गे।

निष्यन्दते निस्यन्दते घृतं। निस्यन्दते हस्तीति प्राणिघलाव षः। 🕆

(११०) क्षपूङ बृत्काल्पने।

# ईश्वर । कपः क्रुपो ऽक्रपादौ । (कपः ६।, कृपः १।, भक्रपंदौ ०।)।

क्रपः स्थाने कृपः स्थात् न तुक्तपादौ । कल्पते । 🕸

ई्पू०। नेम् पे खा:। (नाश, इम्।श, पे भ, बा: ६।)। क्रापी द्यादम्न स्थात् पे । अत्रत्य पं। कल्प्षा। पे किं, कल्पिता कल्प्ता। कल्प्स्यति, मेतु कल्पियते कल्प्-स्यते। §

<sup>\*</sup> ब्रह्मा: दूति बहुवचनं गणार्थे। भतएव पिनति इतादेशायानेपदिन: परसीएदे स्य सनोरिम्निविधादेव स्य सनोक्तभयपदिलिनिवर्षः । यथा वर्तस्यति । सनि विवत्-स्ति। मे तुवर्त्तिप्यते, स्नि विवर्तिषते । मादन्यव तुविवर्तिषा विव्रत्सा इत्यादि । इतादिय-इतुर्वृषः ग्रथः सन्दूः कपूः पञ्च इतादयः । पाणिनिः ०।२।५६.१।३।६२ ।

<sup>†</sup> घृतं निष्यन्दते द्रवीभवतीयथः, (६२५) प्रप्राणिघलात् वा घलं। इसी निस-न्दते चीको भवतीत्वर्थः, अव प्राणिपत्वात् न षतं।

<sup>🗜</sup> क्रपाचादि: यस्य च क्रपादिः, नज्योगे तिवान्। क्रप: स्थाने क्रप: स्थान् नत् क्रपा-प्रस्तित्। क्रपादिर्थेषा—क्रपा क्रपाणः क्रपाणः क्रपीटच (कर्पटच) क्रपः क्रपी दात। कल्पते दति क्राप्रचादेशे ग्रापि खकारस्य गुणः भल्। पाणिनिः माराधिन "क्षपणादीनां प्रतिषेधः" द्रति वार्त्तिकाचा

<sup>§</sup> अवावि अतएव पं। तत्व - युतादेः व्यासुभवपदिलं। इतादेः गुतायनः

#### (११९) व्यथ पाङ् पीड़ायां।

# ६५१। व्यथ ग्रह ज्या वय व्यध वरा व्यच प्रच्छ वृक्ष स्वस्च स्वप वच यजादेः खेर्जिष्ठगां।

(व्यथ - यजादे: ६।, र्व: ६।, जि: १।, व्यां ०।)।

एषां खेर्जिः स्थात् ळां। विश्यथे। \*

(११२) जि तरा पङ् स्वरे।

त्रवरिदुं त्रवरिध्वं त्रवरिद्धं। 🕆

इति मवत्-पादः।

र्गणलात् व्यांस्य सनीय उभयपदिलं। क्रपनु युतादिलात् वतादिलात् नेम् पे आर-इल्पनेन च, व्यांस्यस्नीः खाख उभयपदिलमिति, अन्यत्र सर्वे एवालानेपदिनः। कल्पा परस्मैपदे अनेन दम्निषेधः। कल्पस्यतौति वदस्यो नेम् पे दल्पनेन निषेधः। आसमिपदेतु (५०३) वादम्। पाणिनिः ७।२।६०,१।३।८३।

\* व्ययस्थादि — यजादियिति इन्हेतसा। वय इष्ट वेज स्थाने (६६१) वयादेण: ।
तस्य च वेजस्थानजातलेनैव यजादिलात् कौ सित्ते पुनिष्ट यक्षणं (६६२) व्याने नेपिका मिति जिनियेषस्य वाधनार्थे। यह प्रक्त तथ सम् म इति चतृणां खेजाँ कते, (५५८) स्टकारस्य सकारे, जी फलामावेऽपीह ग्रहणं यहादिगणार्थं, तेन यहाते पृक्ताते इलादों (६६१) यहादिलात् जि:। यजादिन् — यजि विधि वेज्ञे वेजो क्षयतिस्या, वदि वैसिय स्थातिस्रेते नव यजाद्यः। विव्ययं इति विधि वतात् सिर्धे स्थानिस्रेते नव यजाद्यः। विव्ययं इति विधि वतात् सिर्धे स्थाने विद्यस्य प्रति विधि वतात् सिर्धे सिर्धे स्थाने विद्यस्य प्रति विधि वतात् सिर्धे सिर

† पलरिद्वमित्यादि (५५६,५५०) विकल्पहर्यं।

#### 8र्थ पाद:--मिय: I

(११३) पत रह ज गर्येखर्ययोः।

#### ६५२ । वचाख-छिन-पतां वोचख-ख-पप्ता छ।

(वचि-षस्य-श्वि-पतां ६॥, वोच-षस्य-श्व पप्ताः १॥, क्वे ৩।)।

एवामेते क्रमात् स्युर्ङे। प्रख्यपत्। \*

(११४) ण ज टुवंम उदिरणे।

वेमतुः ववमतुः, वेमिथ वविभथ।

(११५) भ्रमु ज ए चलने।

(५८8) क्रम क्रमेति खन्वा। अय्यति अमिति। श्रेमतुः वश्रमतुः।

(११६) सह ज ङ यती।

व्यषहत व्यसहत । (६०६) वेमसहेतीम् वा । परिषहिता । 🕆

#### **६्**पूइ। सन्द-वन्नोऽदो दिः।

(सष्ड-वष्ड: ६।, चत् ।१।, ची ।१।, ढि ०।)।

<sup>·ः</sup> विश्व श्रद्धश्च श्रिष्ठ पत्त**च** ते वेषां—

कोच च अस्यय यथ पप्तय ते स्थः। विचितित घटादिक एव, भीवादिक कान उपप्राप्ताभावात्। प्राचितिक एव, भन्यसात् उप्राप्ताभावात्। पाणिति-स्रते असघातोः युक् चागमः। प्रख्यपप्तदिति प्र-नि-पत—टौदि, (५६५) लृदिस्वात् इतः, चनेन पप्तादेशः। (५४८) गदायन्तने र्णैलं। पाणिनि: अशार०,१८,१८,२०।

<sup>†</sup> वेमतुरित्यादि (५०६) जृवमसमिति वा खिलीपः सकारस एकारस । व्यवहर्तिति वि सह—घीन्त, (६२३) वा पर्ल । परिषष्टिता (५०२) निलं घलं।

सहवही: त्रकार श्री स्थात् है परे। निसीढ़ा, (५०२)

(११७) षद स्ट जी विषादेगती। निषीदति। न्यषदत्। निषसाद। प्रतेसुप्रतिसीदति। पै

(११८) ग्रद् ऋ जी गाते।

६५८ । शहोऽपि मं। (भदः ५१, पि ७१, मं ११)। शीयते। अग्रदत्। क्ष

(११८) फण मि ग गती।

फेणतुः पफणतुः, फेणिय पफणिय।

(१२०) राजु ज ग दीप्ती।

रेजतुः रराजतुः, रेजे रराजे । (५७८) विधिबलादातीऽप्येतं।§

<sup>•</sup> निसोटा पित नि.सह.— जी-ता, इ.सी. (१०५) इस्प टः, पनेन पका-रस्य फ्रोकारः, (५०५) तस्य घः, (४०) घस्य टः, (००) टजीपः। एवं सीटन्यः। भोटा, बोटन्यः। पाणिनिः ६।३।११२।

<sup>†</sup> निषीदिति, नि-मद-तिप्, (५६०) सीदादेश:। (५०२) षलं। न्यपदत् — टीदि, (५६५) लृदिस्तात् ङ:। भानव्यथधानिऽपि षलं। निषमाट— टीषप्, दिला-दिकं, (६३४) खिभिन्नस्य पलिभिष्धः, खेलुषलं। (५०२) प्रतिवर्जनात् प्रतिसीदतीति न पलं।

<sup>‡</sup> भप्विषये भदो मं स्थात्, यत्र यत्र अप् तत्र तत्रात्मनेपदिनित्यर्थः। भौयते (५८५) भौयादेश:। भपि किं, भगदत्, भत्र टौ-दि (५६५) छ:। पाणिनिः १।३।६०।

<sup>\$</sup> फोचतुरित्यादि (५৩১) फचादित्वात् वा एलं, खिलीपश्च। विधिववात् राजृ- স্থা प्रभतीनां फचादिपाठवलादाकारस्थापि एलं खिलीपश्च।

एवं (१२१) टु स्नामृ ङ ण दीप्ती।

साखते भागते। सेग्रे बसाग्रे।

एवं (१२२) टुभाष्ट ङ ण भासि । \* (१२३) खन ण ग्रब्दे ।

विष्णिति श्रवष्यणित मांसं, व्यष्यण्त्, विष्णेणतः विषष्णतः । विस्तनित वीणा, निस्तनित श्रवं, (५०२) श्रवव्यवेत्युक्ते ने षः।

(१२8) खनु च विदारे।

(२३०) इनगमेत्युङ्लीपः, चखृतुः चख्रे ।

# **६्**पूप् । खन-सन-जनां ङा आसे, ये तुवा।

(खन-सन-जनां ६॥, ङा ।१।, भारे ०।, ये ०।, तु ।१।, वा ।१।)।

खायात् खन्यात्। ध

अध्यक्षित दित (५१४) य्यन् वा । से भे दित फर्णादिलात् भातोऽप्येलं । भाग-भागो दन्यसानौच ।

<sup>†</sup> समन्दं मांसं सुङ्क्ते इत्यर्थः, श्ववष्यातीति विधानवत्तात् श्वकारात् परस्यापि घलं। व्यष्यपदिति घी दिप्, श्वनव्यवधानेऽपि घलं। विश्वेषन्रिति फणादिलात् वा एलं, खिलोपस, दिकतस्यापि घलं। वीषा विस्तृति मन्दायते, श्वनायंभिन्नलात् ; श्रमं निस्तृति सुङ्क्ते, वि-श्वविभन्नपृञ्वेलात्, न घल।

<sup>‡</sup> एषां उपान् भाने परे, ये त्वा, ङिक्ताइन्यस्य स्थाने। पत्र पिति भाने परे न स्थादिति बोध्यं, तेन यङ्कुिक चंखित चंखंसीत्यादि। (प्रतएव किति ङिति भाजादौ परे दिति पाणिनिः)। एवं घ्यण्भिन्ने ये परे बोध्यं, तेन जन्यमित्यादि। पाणिनिः ६।४।४२,४३।

(१२५) चायृ ज निग्राने ग्रर्चे । अचायीत्, (६४२) योृलींप द्रति, श्रचासीत् ।

(१२६) लष ज स्पृहायां।

लायति लापति । 🕸

(१२७) गुह्न ज संवर्णे।

६५६ । गुहो गोदः । (गहः ६१, गोः ६१, कः ११)। गुहो गोरुः स्थात्। गूहित गूहते। अगूहीत् अष्ठचत्। १

६५७। गुहदुइदिइलिइां टीमदन्ये न सि: सक्वा।

(गृह-दृह-दिह-लिझं हण, टीमदत्त्वे था, नारा, मि: रा, मक् ारा, जारा)।
एषां टीमदन्त्वे परे सिर्ने स्थात्, सक् च वा स्थात्।
अगूढ़ श्रष्ठचत । धै

भ चायौदिति (५०३) ता द्रम्। लष्यतौति (५८४) ग्रान् वा।

<sup>†</sup> क्रति (८८३) गुद्धं गोद्धानिखुदाहरता भिन परे एवायं विधिरिति स्चितं, तेन गृहिता गोदा, गृहिष्यति घोच्यतीत्यादि । भगृहीदिति (५७३) वा इ.स् । पर्च भनिम्लात् (६०५) सक्, (१७५,१७७,६०२,१११) भघुचदिति । पाणिनि: ६।४।८८ ।

<sup>‡</sup> ग्या मं टीमं, टीमं दन्यः टीमदन्यसियान्। एषां वि नं स्वादिति पश्वभी दिला षष्ठी-निर्देशेन, गुडधातोः सेम्पचे जातः सिः टीमदन्येऽचरे परे न तिन्छेत्, सेर्जातलेन सपी न प्रसङ्कः। धनिम्पचे (६०५) इस्रष इन्हर्भने जातः सक् च वा तिष्टेदित्यर्थः, धतः सकोऽभावपचेऽपि सपी न प्रसङ्कः। तथा दुड-दिइ-जिडां धनिमि- जुङ्हान्तलात् सिप्राप्तिरेव नालि, सक्तुत्वा स्थादेन, सकोऽभावपचे सपी न प्रसङ्कः, सकद्भतो विप्रतिपेधी यद्वाधितं तद्वाधितभैवेति न्यायादित्यर्थः। ध्रमुद् इति गुइ-

#### ६५८। सकाऽस्तोषो उचाने।

(सक: ६।, घत-सीप: १।, चिच ०।, चले ०।)।

सकोऽकारस्य लोपः स्थादव्ये घिच परे । भ्रगहिषि घषचि । भ्रगहृष्टि भ्रषचाविह ।

अगृहिषि अघुचि। अगुहृहि अघुचावहि। दन्ये किं, अगृहिषहि अघुचामहि। अस्त्रे किं, अगृहिषत अघुचन्त। अ

(१२८) ह ज हत्यां।

## ईपूर। इगुङ् माठीखनिम् किद्गमस्तु वा।

(इगुङ्: ५1, म-ढीसि ।२1, त्रनिम् ।१1, कित् ।१1, गम: ५1, तु ।१1, वा ।१1)।

टौतन्, बनेन सेरभावे, (१०५) इस दः, (५०५) तसाने घः, (४०) घस दः, (००) दलीपः पूर्वस्य च दीर्घः। प्रमुखत इति सक्, (१०५, १००, ६०२, १११)। सकी विकल्पपचे तु प्रमूद इतीन। से किं, श्रमुखत्। (दल्योष्ट्रीऽपि वकारी दल्यग्रधीन स्ट्रिसे, तेन प्रमुद्ध इत्यावि इति सिद्धानकौसुदी)। पाणिनिः ०।३।०३।

\* भती लोपः भन्नोपः । न व्यं यव्यं तिमन् । वहुवचनिमिन्ने अचि विषये इत्यर्थः । अगृहिषि—टी इ., (५०३) इस् । इस् विकल्पपचे भघुचि (६०५) सक्, अनेन सकः भकारलोपः, (१०५) इस् टः, (१००) गस्य पः, (१०२) उस्य कः, (१११) षतं । विकल्पगृत्ति सेनिर्वेषः, वकारस्य इत्यत्नेन भन्नतामावात् होदोभावित्यस्याप्राप्तः । सक्पचे (१०८) भकारस्य भाकारः । अगृहिष्यक्षीति सकारस्य इत्यत्नाभावात् न सिनिवेषः । इसी विकल्पपचे सक् । अगृहिष्यक्षीति सकारस्य इत्यत्नाभावात् न सिनिवेषः । इसी विकल्पपचे सक् । अगृहिष्यक्षीति सकारस्य इत्यत्नाभावात् न सिनविषः । अश्वे विकल्पपचे सक् । अगृहिष्यक्षीति सकारस्य पत् । अश्वन्त इति इस्विकल्पपचे सक्, अत्र व्यवज्ञंगादनेन न भक्तारलोपः, परन्तु (५४३) लोपोऽतोऽदिचोरित्यकारलोपः, तस्य स्थानिवल्पात् न भक्तस्याने पत् । भन्नारलोपे भवस्यस्यावित्यति अञ्चे इति स्वयं आवति—(१६) लोपोऽसोमाक्षोरिति, (५४३) लोपोऽतोऽदिचोरिति, (७०५) इसाम्नोपोऽशित्यद्योरित्येतेन्योऽत्यत्वेष भक्तार-सोपस्य स्थानिवल्पं नामौति । तेन (६००) लुगदस्योऽप इत्यादिना प्रकारलोपे स्थानिवल्पान्, (५५५) मानोऽदनत इत्यस्य प्रवची दृष्टते दिष्टते विद्वते दिश्वते स्थादि सिद्यं । पाथिनिः ०।३।०२।

इगुङ ऋवर्णान्ताच परा ने स्थिता अनिम् टी सिय कित् स्थात्, गमसुवा। श्रष्टत श्रह्मातां। हृषीष्ट। \*

(१२८) दु डु स ज सृतिपुद्यी:।

बस्व। 🕆

(१३०) दान ज ग्राजीवे छिदि।

दीदांसति, दीदांसते। क्ष

एवं (१३१) गान ज तेजी।

थीयांसति ।

(१३२) भजी ज भागसेवयोः।

भेजे, भेजिय बभक्य।

(१३३) श्रि ज सेवायां।

(६१३) जिस्रीत्यङ्, स्रामिययत्। स्रायता। §

इत् उल्यस स इगुङ्— भिद बुध स्तृत प्रश्तिः। इगुङ्च ऋष इगुङ् तथात्। दी च सिथैति, मं (भाक्षनेपदे) दीक्षि, मदीसि । नास्ति इम् यस मोऽनिम् इति मदीमैर्विशेषणं । गमसु चात्मनेपदे (८०५) समगत समगंस । अद्भत इति मन्, सिः, अनेन कित्, (५६२) सेलीपः । पाणिनिः १।२१११,१२,१३।

<sup>†</sup> बस्य इति (५८४) नेससुम् इति इम्निपेधः।

<sup>‡</sup> दौदांसतीत्वादि (६३०) सन्, खेडीं च।

<sup>\$</sup> भेजे इति (५०८) घ: ए:, खिलोपय। भेजिय इति (५८८) वा इम्। पर्वे वमक्षय (२११) कुङ्। अभिवियदिति श्रङ् दिलादिकं, (५८८) इयः। श्रविता (५८०) थियकंनात् दम्।

(१३४) रन्जी ज रागे।

६६०। रन्जो ऽपषकानास्टिणनौ न-लोपो जौ तु स्गरमणे। (रनन: ६।, अप-पक अन-अम्- िष्णनी ७।, न-

सीप: रं।, जी ७।, तु । रा, सगरमचे ७।)।

रजति रजते। ररजतुः ररञ्जतुः। \*

. (१३५) विषी ज कान्ती।

ग्रिविचत्। विचीष्ट। 🕆

(१३६) यजैं जी देवार्चा-दान-सङ्कती।

(६५१) व्यथयहित जि:, द्याज।

६६१। ग्रहस्वपाद्योः कडित्-कितो र्जिः।

(ग्रह-खपायी: ६॥, कडित कितो: ०॥, जि: १॥)।

यहादै: किति ङिति, खपादेः किति, जि: स्यात्। ईजतु: ईजु:, इयजिय दयष्ठ । क्ष

<sup>\*</sup> अप्च षकथ अनय अम्च स्थिनिश्चेति तस्मिन्। एतेषु प्रत्यथेषु परेषु रन्तः म-स्वीपः स्थात्, औ परेतृ स्गरमचेऽये। स्थिनिश्वि क्रत्मत्ययो वक्तव्यः, तिक्षिन् रागीति। रञ्जनिमिति न व्यानस्थैव। रजति रजते इति अपि नलीपः। ररजतुः रस्ञुत्रिति (५६६) वा कित्संज्ञायां, (५६०) किति नलीपः। पाणिनिः ६।४।६६, श्वारक्षेत्र, "रजकरजनरजःस्पमंख्यानं कर्त्तव्यम्", "चितृषि च रज्ञेद्पमंख्यानं कर्त्तव्यम्", "रिजृषि च रज्ञेद्पमंख्यानं कर्त्तव्यम्", "रिजृषि च रज्ञेद्पमंख्यानं कर्त्तव्यम्", "रिजृषि च रज्ञेद्पमंख्यानं

<sup>🕇</sup> पितवदिति (६०५) सक् । विचीष्ट (६५८) किलात् न गुणः ।

<sup>‡</sup> ग्रह्म स्वपम् ग्रह्मपी, ती भादी ययोशी तथी:। कडी इती यस स कहित्, कडिंच किच कडित्किती तथी:। (६५१) व्यथगहेति सूत्रे पठिता: ग्रहादय: खपादयम जिया:। यज-मृत्म दिलादि, व्यथगहेति खेजिं, भनेन मूलस्य जि:। एवं ईशु:। इयिज्य (५८६) वा इस्। पर्व (१५४) पड्, (४०) म्या ठ:। पाणिनि: ६।१।१५,१६।

(१३७) हुँ वपी ज मुण्ड वीजोप्तगी: ।

प्रख्वाप ।

(१३८) वहै जी प्रापणे।

प्रख्यवाचीत्, अवीढ्। उवाह, जहे। \*

' (१३८) वै जै स्यूती।

#### **६६२ । यांन वे-प्रच्छां।**

(ग्यां ७।, न ।१।, वे-प्रचकां ६॥).।

वैअप प्रच्छि व्रक्षि भ्रम्जीनां जिनेस्यात् व्यां। ववी, ववतु:। 🕆

**६६३ । वेजो वय् वा ।** (वेजः ६१, वय् १११, वा ११))। वेजो वय् स्थादा व्यां। उवाय जयतुः । क्ष

<sup>\*</sup> प्रस्युवाप प्र-नि-वप-पप्, दिलादिनं, (६५१) खेर्जिः । (५४८) गदायत्तनेर्णलं । प्रस्यवाचीत् प्र-नि-वहः टोदि, '(१७५) इस ढः, (६०२) ढस्व कः, (५७४) त्रनिम्लात् हिंडः, गदायत्तनेर्णलं । स्वीट वह-टीतन्, (५६२) सिलीपः, इस्र ढः, (६५१) सकार स्रोकारः, (५०५) तस्य घः, (४७) घस्र ढः, (००) ढलीपः । उवाह वह-टी-सप्, दिलादिनं, (६५१) स्विस्तं (६५१) खेर्जिः । कहे खेर्जिः, (६६१) मूलस्य जिः ।

<sup>†</sup> प्रच्छां इति बहुवचनं गणार्थ। विजी जिनिधेधेऽपि तदादेशस्य वयी न जिनिधेधः, प्रवाया तत्र (६५१) वयीग्रहणस्य वैयर्थात्। विजीणप् (६०८) एकार श्राकारः, दिलादि, (६०८) षप् डौः, ववी, पत्र स्वेर्णनः। एवं ववतः, पत्र स्वेर्णस्य च जिनिधेधः। पाणिनिः ६।१।४०, वार्णिकच।

<sup>‡</sup> जवाय इति भनेन वयादेशे, (६५१) खेर्जिः । जयतुरिति खेर्मूलस्य च जिः। पाणिनिः राक्षाधर,६।राइर ।

# ईई 8 । य व: किति । (य ।१), व: १।, किति ७।)।

वेजो यस्य वः स्थादा व्यां किति। जनतुः। \*

(१४०) व्ये जै हती।

ृ६६५ | नाव्येष्ठत्रां | (नारा, पारा, बें: ६१, खां ७)। वैज्ञानसात् खां। विचाय | पे

#### ६६६। जिंवान्य: किति।

(जिं २।, वा।१।, भन्यः १।, किति ৩।)।

द्वेचेंजोऽत्त्यो भागो जिं वा प्राप्नोति व्यां किति। विव्यतुः विव्ययतुः, विव्ययिष्य । इः

<sup>′</sup>क वेजी यस प्रमुखवात् तदादेशस्य वयएव यकारस्थेलर्थः। जवतुरिति जयतुः रितिवत् सार्ध्यं, कंवलमनेन यकारस्य वकारः। पाणिनि: ६।१।३८।

<sup>†</sup> व्येजे इतावित्यस्य व्यां विभक्तों (६०८) भानस्यात्। भनुइत्ताविष व्यामित्यु पादानं, कितीत्यस्य वा इत्यस्य चिन्डस्यपै। विव्याय इति भानिभेषे (६५१) यजादित्वात् खेजिः, (५००) बिडः, (३५) ऐस्थाने भाषः। पाणिनिः ६।१।४६।

<sup>‡ (</sup>६६१) यहस्वपाद्योरित्यनेन प्राप्तस्य निर्वेकन्यविधानं। जिं वा कितीति सति आदौ निःविधाने पद्यात् वि इत्यस्य हिले,, यनादिलात् (६५१) खेनिं-विधाने ज्ञात्रित्याने एकात्, (५३६) जि: पुनर्न स्थादित्यस्य नात्र विधयः हिर्भूतस्य वेः प्रक्रात्यन्तरतात्। विव्यत्रिति व्ये व्ये इति हिले, (६५१) खेनिं:, भ्रमेन मूलस्य निः, (५८८) इस्थाने य। विव्ययत्रिति भ्रमेन मूलस्य निव्यविध्य इति (५८८) व्यञ-वर्जनात्, (५५४) निल्यमिम् सर्वेत्र (५३६) पुनर्जिविधान-निय्धात् विद्यस्य न ज.। "उभयेषां यहणसामर्थात् इस्रादिः भ्रेषं वाधिला सम्प्रसार्यम्" इति इति:।

#### (१४१) ही जै सादीयां मब्दे च।

अहत्, अहत अहास्त । \*

**६६७। ह्वी होजि:।** (हः ६।, वि. ६।, जि: १।)।

देर्हें जो जि: स्यात्। जुहाव जुहुवतु:। 🕆

(१४२) ऐ वसी निवासे।

ई६्ट। सत्खरे। (मृादा, मृारा, विशा, घरेश)। सस्य तस्यादरेसे परे। अवासीत् अवात्तां, उवास जवतुः । क्ष

(१४३) वदै वाचि।

श्रच्छ-वद्ति। (५०४) व्रजवदेति विः। श्रवादीत्। जवाद जदतुः। §

<sup>\*</sup> महदिति हि-टी-दि, (६१८) छः, (६१०) मा-लीपः। ऋहत भहास इति, (६१८) लिब्भ्यस् भेवा द्रवनिवा छः।

<sup>†</sup> जी: पुनकपादानात् कां, किति, वा, इति चयाणां नानुवृत्ति:। हि धाती येंच दिलं तच खेर्मूखस्य चित्रः स्थादिश्यर्थः। यथा भागृहवत् जुह्नवि द्रश्यादि। सुहाव इति भनेन सभयच जि:, (५००) वृद्धिः, (३५) भौस्थाने भाव्। जुहवतुरिति (५८८) सस्थाने सव्। पाणिनिः ६।१।३३।

<sup>‡</sup> भवात्सीत्, भनिम्लात् वृद्धिः, भनेन सस्य त । भावात्तामिति भनारङ्गलात् निरवकाश्चलाय भादौ सस्य तकारे पद्यात् सिलीपः । उनास जवतुः (६५१) यनादि-लात् खिनिः । (६६१) किति परे मृलस्य जिः । पाणिनिः ७।४।४९ ।

<sup>§</sup> पच्च-वदति (५८१) समासः, समुखे वदतीलयेः। खवाद ऊदतुः, यजादिलात् जि:।

#### (१४४) टु भो खि दर्गति-हद्योः।

(५६५) प्रासुनिद्युदिति ङ: वा। श्रखत्। (६१३) जित्रीत्यङ्वा। श्रमिखियत् श्रखयीत्। क

# ६६१। खोर्ज वी यङ - को अंग्रङ सनी:।

- (ब्रि: ६।, नि: १।, वा १२।, यङ्क्यी: ७॥, न्राङ्सनी: ०॥) ।

खेर्जि वी स्थात् यिङ क्यां जेः परे श्रङ सिन च । ग्रमाव भिष्वाय, ग्रग्रवतुः भिष्वियतुः । श्रविता । श्र्यात् । पै

इति भिश्रपादः।

#### इति खाद्यध्यायः।

<sup>\*</sup> प्रश्नत विटीदि, ङ:, (१५२) विस्ताने या ङ-विकल्पपचे पङ्, हिलादि, (५८८) गृथ्वीरिति इय् पश्चित्रयत्। पङ्विकल्पपचे व्यां चिः, (५५४) इ.स., गृषः, (१५) एस्थाने पर् पश्चथीत्।

<sup>†</sup> यङ्च ठीच ती तथी:। षङ्च सन् च श्रङ्भनी, जेः परी श्रङ्भनी, तथी:। ग्रजाव प्रति श्रादी जिः पद्यात् दिलादिकं। पचे श्रिष्टाय । एवं श्रत्तुक्ष (५८८) यथा-यीग्यं उव्प्रय्। ग्रायादिति (६६१) जिः। (५८०) दीर्घः। पाणिनिः ६।१।३०,३१।

#### ६ष्ठः । १म-चतुर्गणाध्यायः ।

१म पादः-श्रदादिः।

----

(१४५) यद ली भच्छ।

**६७० । लुगद्ध्यो ऽपः ।** (लुक् ।रा, भद्रथः प्रम, पपः ६।)।

**यदादे: परस्यापी लुक्स्यात्। यत्ति।** \*

**६७१। इभसो हे धि: ।** (इसमः था, हे: ४१, घि: १)। हो भैसाच परस हे धि: स्वात्। श्रवि। ग

# ६७२। इसाद्भगं दिसे जापामी।

(इस-षद्भ्यां ५॥, दि-से: ६।, लीपामी १॥)।

हसात् परवी र्दिस्री नीपः स्थात् अदः परवीरम् स्थात् । क्ष आदत् आदः ।

<sup>•</sup> भद्रभ इति बहुवचनं गणार्थं। घे शप्रे इत्यच भदादिवर्जनं न कला भच लुक् करणं कदाचित शपः खिलार्थे, तेन अइनिदिव्यादि। भिष्म, (१०६१) भप् विशिष्ट-धातीर्भृषिविकत्ये, भदादिगणीयकदधातीः रीदितं कदितिनिव्यादि सिद्धं। लुक्कर-शात् युतः युवन्तीत्यादौ (८३) लुक्किन तत्रेति निषेधात् न गुणः। पाणिनिः २।४।७२।

<sup>†</sup> इ.— लुड्घि। षदः — घडि। ६४ — ६ त्यः। वयः — छङ्टि। घकासः — वकाद्धिः इत्यादि। (८५६) विशेषविधानात् तातङादेशस्यक्षे न स्थात्, तेन लं धर्म पत्तात् चडि वा। पाणिनिः ६।४।१०१।

<sup>‡</sup> दि-मेरिश्वेकवचनं क्रमनिरामार्थे। दि-मेरिति च्या एव, य्याना सिन्यय-।।नादमभ्यः। पाथिनिः ६।१।६५,०।३।१००।

# ६७३१ वसूदः सन्चल्घि।

(घम्लः ।१।, चदः ६।, सन्-टी चल् घिष्ठ ०।)।

ग्रदो घम्रुष्ट स्थात् सनिः व्यामिल घिचि च। (५६५) लिखात् ङ:। श्रवसत्। अ

# **६७८।** कांबा। (क्यांका, ना।१।)।

जवास ब्राद। (२३०) हनगमेत्युङ्लोपः। जचतुः ब्रादतुः, जवसिय ब्रादिय। १

(१६६) पा ल भचणे।

प्रिपाति । 🕸

#### ६७५। दिषविदाती उनुस्वा।

(दिष विद-स्रात: ५१, भन् ११।, उस् ११।, वा ११।)।

देष्टे वेंत्ते रादन्तांच परोऽन् उस् स्यादा। अपुः अपान्। \$

<sup>#</sup> सन्च टी च ऋल् च घञ्चिति तस्मिन्। सनि निष्यति। व्यां श्रघसत्, (२३०) ड-वर्जनात् न उङ्-लीपः। ऋनि घत्रि च प्रघसः घासः। (पाणिनिः ३।३।६०) न्याद इत्यादी सुन घसादेशः। पर्यापनिः २।४।३०,३८।

<sup>†</sup> अदी घस स्थात् ना व्यां। जवतः उङ्लीपे (६४) घस्य कः, (१११) णास-वसम्बसीत षत्वं। अद घस इति हाभ्यां धातुन्यां आद जवास इत्यादि सिञ्चाविष एतत्म् वकरणं घसधातीस्थपि अदतुल्यत्वज्ञापनार्यं, तेन (५८८) अदवर्जनादेव घसवर्जने सिञ्जे, घसधातीः जवसिय इत्यव (५८४) नित्यसिम्। पाणिनिः २।४॥४०।

<sup>‡ (</sup>५४९) गदनदेति चलं।

<sup>§</sup> अत्र धन् इति घ्या एव, व्यान्तु हिष: स्व्यवधानात् न प्रसन्नः, तेन व्यां धह्यन् । विदासीस्तु सिन्यवधानात् अनेनागृत्ती, (५६३) नित्यसुस् धवेदिधः, अग्रासिषुः । पाणिनिः ३।४।१०८,११०,११२ ।

#### . (१४०) वम स काम्ती। \*

वष्टि । (६६१) ग्रह्स्स्रपाद्योरिति जि: । उष्टः उग्रन्ति । श्रवट् । उनाग्र । 🌣

(१४८) इन सी हिंसा-गत्थी: ।

#### ६७६। वनतनाद्यानमां अम्लोपो अस्-यपतिकार्यो।

(वन-तनायितमां क्षा, जम्बीप: २१, भम्पिषः अ, भितिक अ, भषी अ)।
एषां जम्लोप: स्यात्, अणी भन्ने यिप्,च, नतु तिकि।
प्रणिहत:। (१८८) हनो हो प्तः। प्रन्ति। प्रहेखः प्रहन्वः,
प्रहस्मः प्रहन्मः। क्ष

#### ६७७। जन्नेधि-माधि इन्यस्ति-मास्ति हिना।

(जिहि एधि-माधि ।१।, इनि पिलि-मास्ति ।६।, हिना ३।)।

रवां हियुतानां क्रमादेते स्थः। ज्ञहि | §

कान्तिः कामगा, इच्छेति यात्रत्।

<sup>†</sup> वस-तिष्, (१५४,४०) वङ्, तस्य टः । भवट् इति घी-दिष् (६०२,१५४,६४) । ठी-वष् जवास (६५१) खं-जिः ।

<sup>‡</sup> तम पादिर्यस्य स तमादिः । नास्ति इस्यक्षात् सः । वनसः तनादिस पनिम् पैति तेषां । ञन् भत्तस्य प्रत्याद्वारी । यप् इति (१.१७६) क्वाप-स्थाननातः । तिक् (१००७) प्रत्ययः । नास्ति युर्धेस्वन्, स तस्मिन्, प्रणौ इति भत्ती विशेषणः । एषा-मिति बनधातीसनादेरनिमास्त्र । प्रणि इत इति पनि न जोप्रः ; (५४६) गदायस्ते-र्णतं । एवं प्रद्यादि म-वास्त्र नो वा यत्वं । पाषिनिः ६ ।४।३०,३८,३८ ।

#### ६७८। इनो वषष्टीकालि टीसे तुवा।

(इन: ६।, वध: १।, टौळालि ०।, टौभे ०।, तु ।१।, वा ।१।)।

इनो वधः स्थात् व्यां व्यामलि च, टी-मे तुवा। अवधीत। \*

## ६७८। खे हो वो अणिति च।

(खं: ५१, इ: ६१, घ: ११, ञ्चिति ०।, च ।१।)।

खेः परस्य हनो हस्य घः स्वात्, ञिति णिति च । जघान, जन्नतः । हन्ता । वध्यात् । प्रहणियति । 🕆

(१४८) यु लिभसर्पणे।

# ६८०। रिपडस्रुता उद्देति:।

(र-पित्-इमि ०।, उत: ६।, भद्दे' ६।, ब्रि: १।)

श्रद्धे भी र्नजारस्य विः स्थात् पिति इमे रे। चौति चुतः चुवन्ति । क्ष

<sup>\*</sup> टी च टी च भन् चित तिधान्। भन् पति (११६४) प्रत्यः। द्यादी हन्ते प्रयोगं निष्यं भौवादिक-वधधातः प्रयुक्ति दित तात्पर्यम्। भवधिदिति हनी वधदिभे वधधातोरनीदिक्तात् (५५४) दम्, सतः (५६१,५६२) द्रेम, सिलीपय। एवं वध्यात्, (भन्) वधः। टीने तु—भाविष्ट भाहत द्वादि। (पाणिनिः १।२।८४) परिच द्वादौ तुन वधादेशः। पाणिनिः २।४।४२,४६,४४।

<sup>†</sup> चकारादयंदयं, खे: परस्य इनो इस्य घः स्थादिति, जिति चिति च परेऽपि घ: स्थादिति च। खे: परलात् जघनिय जिघां भतौत्यादि। जिति घातयिति, चिति घातक इत्यादि। जन्नतुरिति (२२०,१८८) उङ्लोपी न्नादेशच। प्रइषिष्यतीति (६१०) इस्। (५४८) नादिहनभीनेति चलं। पाणिनि: अश्वश्वसुप्रः।

<sup>्</sup>रशासी पिश्वासी इस् चिति तक्षिन्। न दिरदिभस्य। यथा बौति बौति रौति। ऋडे: किं, लुझीति। युशनि (५८८) खन्। पाणिनिः शश्रास्ट।

(१५०) युल मित्रणे श्रमित्रणे च। ग्रीति । यविता । अ

(१५१) गु ल खुती।

श्रनावीत् श्रनीषीत्। नुनुविव। \*

(१५२) च्युल तेजने।

च्छविता ।

(१५३) णा स प्रसुत्यां। अ

(५८६) स्क्रमीऽमे इति इम्। श्रस्रावीत्।

(१५8) इ-न स गती। 🌵

६८१ | यिनाऽचाणौ । (य ।१), इनः ६।, अवि ०), पणौ ०।) ।

द्रनी यः स्थादणाविच । इ यन्ति ।

६८२। गाव्यां। (गारा, यो ण)।

द्रनो गा स्थात् व्यां। श्रगात्। द्रयाय। §

<sup>\*</sup> यितता, च्लाविता इति (५८०) प्रतिप्रमवात् (५५४) इम् । भनावीदिति (५०१) वा इम् । भननतात् (५०४) व्रि: । तृत्वित्, (५०३) खब्या इत्युक्तीः, नैमक्षमिति (५८४) नियमात्, नित्यमिम् । मचपाठे च्यु इति पोपदेश्वभिद्धेशः । (५६४) भ्वायादीति षस्याने सः, सु इति धातुः ।

<sup>†</sup> इ-न धाती नंकारः (५५२) मुखापिवेत्यादिषु विभेषज्ञापनार्थः।

<sup>‡ (</sup>५८८) ऋष्वीरिति प्राप्तव्यस्य द्वयो वाधकः। पाविनिः ६।४।८१।

<sup>§</sup> इ.चाप्, दिलं, (५००) सूलस्य इंडिः। (५८५) खे. स्थाने इय। पाणिनिः; राधाध्या

६८३ | खे: किति घे: । (खे: ६।, किति ७।, घं: १।)। इ.न: खे: घं: स्थात् किति ळां। ईयतु:। क्र

ं ६८४। अगे क्यां। (पने: et, बां ण)।

श्रगेरिनो घी स्थात् किति व्यां। द्रैयात्। श्रगी किं, श्रन्वियात्। पे

(१५५) अधीक ल स्मरणे। ई

€ द्यू । इंनवदिका: । (इन्वत्।१।, इक: ६।)।

इन इव इक: कार्य्य स्थात्, रूपच तदत्। §

(१५६) या ल गती।

प्रणियाति । श

एवं (१५७) वा ल गमन-हिंसयी:।

<sup>#</sup> विभूतस्य दन धाती: क्या चन्यत्र कितीऽसभावात् वृत्ती क्यामिति त्याख्यातम्। ईयतुरिति, (६८१) यकारे, चनेन दीर्घः। पाणिनः 'श्रेशहरु।

<sup>† (</sup>५२०) घीँऽज्यरे इत्यनेन दीधें सिर्डेऽपि, भयं नियमापं:, तेन व्यां किति भगेरिन एव दीधं: न तु सगेरिति। पाणिनि: ७।४।२४।

<sup>‡</sup> इ-क: ककारियक्रार्थः । चित्रइ शंचन्यपूर्वस्य केवलस्य च प्रयोगनिरासार्थे ।

<sup>§</sup> इनधातीरिव इकधाती: कार्यं स्थान्, रूपच तद्दित्यनेन सर्व्वेतेव स्थादिति स्पष्टं, तेन (८०६) गमीनिङोरित्यवापि यहणं, भतएव इक् धातीरिप भिधिजगीमप-तीति । ससीतयी राघवयीरधीयत्रिति भटी, भातिदेशिकस्थानित्यत्वेन इनतुःख्यता-भावान् (६८१) य चादेशं वाधिता, (५८८) इय भादेशः । "इण्विदिक इति वक्तव्यम्" इति वार्त्तिकम् ।

<sup>¶</sup> प्रवियाति (५४८) गदनदेति पर्ल ।

(१५८) द्रा ल खप्रे पलायने च।

(१५८) ख्याल ख्याती कथने।

अख्यत्। 🕸

(१६०) मा ल च माने।

प्रिमाति। मेयात् । \* .

(१६१) विद ल जाने।

# ६८६। वेत्ते: क्रीपंठीपंवा।

(वैत्ते: ५१, की पंशा, ठी पंशा, वा । ११)।

विदः परस्य क्याः पस्य त्याः पं स्यादा।

वेद विदतुः विदुः, वेख विद्युः विद, वेद विद्व विद्य | पत्ते सगमं। वि

#### ६८७। ङाम् वा ठ्यां ग्यान्तु क्रनु।

(डाम्।११, वा।१।, व्यां ७।, ग्यां ७।, तु।१।, क्र।१।, घनु (१।)।

वैत्तेष्ठ्यां ङाम् वा स्यात्, ग्यान्तु क्षञ एवानुप्रयोगः । 🕸

<sup>\*</sup> प्रव्यदिति (६१८) जः, (६१०) पालोपः। प्रविनाति (५४८) गदनदेति पत्नं। भेयादिति (६१२) छे।

<sup>†</sup> स्थानिवदार्दशः इति न्यायात् ठीपस्य कीप-तृष्यत्वात् न दिलं, (६८०) न उत्तम्, नेवावेत्यः इत्यादाविम्। कोवलं कोपरस्मैपदविभक्तीन।नाकारभेदः इति। पाणिनिः १।४।⊏३।

<sup>‡</sup> ग्यानु इत्यनेन गीपरेऽपि छाम् वा स्थात्, तस्यात् क्रञ एवानुश्योगः नतु स्रम्-तुभीरिति । जन्द्रत् स्रगुषः । पाणिनिः ३।१।४१ ।

#### ईदद। तन्थः ग्रुप्रे वे।

(तन्भ्यः ५॥, ग्रप्।१।, वे ०।, चे ०।)।

विदाङ्गरीतु वैत्त्। \*

## ६८१। ब्रजी उद्यो रे।

(क्रजः ६।, धन्।।।, च।१।, वर्षी ०।, रे ०।)।

क्षजो आतार उ: स्थात् अपो रे। विदाङ्गुरतां वित्तां। अविदुः अविदन्। पं

## ६्८०। घ्यां सौरवादघो:।

(घा ा, सी ा, र ।१।, वा ।१।, द-घी: ६॥)।

द्धो २ फ:स्यादासी घ्यां। अवेः अवेत्, अवित्तं अवित्तः। विदास्वभूवं विवेदः। इ

तनस्य इति वहत्रचनं गणार्थे, तमादिस्य दल्यरं:। गुप: शपावितौ जकारिस्यितः, अपपी वाधकीयं। विदाङ्करीत् इति क्र-पर्यागे, क्रजमनादित्वात् ग्रुप्, ग्रुपि परे (५४२) क्रजी गुण:, पुन: तुप परे ग्रुप जकारस्य गुण:। पाणिनिः ३।१।७६।

<sup>†</sup> नास्ति णः (गुषौ प्रत्ययः) यक्षात् सीऽणुलक्षिन्, चणौ इति दे द्रवस्य विधेषणं। अनुविप्रत्ययपूर्ववर्षिनि रेपरे इत्ययंः। विदाङ्गुक्तामिति ग्रपि परे क्र इत्यस्य ग्रणे, विदाङ्गर् इति स्थिते, अनेन अकार उकारः। अविदुरिति च्या चन्, (६०५) दिव-विदेति उस् वा। पाणिनिः ६।४।११०।

<sup>‡</sup> अप्रेतिति विद-घौ-सिप्, (६०२) सिपी लोपः, त्यक्षोपे त्यलत्तवासिति न्यायाः इनेन दस्य रेफः, (१०२) रस्य विसर्गः। विदान्त्यभूव (६८०) विकल्पेन उद्यास् (५८२) सृप्ययोगः। एवं विदासास, विदासकार । पर्च विवेद । पाणिनिः ८।२।०५।।

#### (१६२) श्रस ल भुवि।

#### ६८१। लोपो उत्यसो र्डिट्रसो रघ्यां।

(लीप: १।, अस्ति-अ-धी: ६॥, ङित्-र-सी: ०॥, अध्यां ०।) ।

श्रस्तिरकारस्य ङिति रे, सस्य च से, लोगः स्थात्, नतु घ्यां। स्तः सन्ति, श्रसि, एधि, श्रासीत् श्रास्तां। \*

**६८२ । भूररे ।** (मः रा, बरे का) । अस्ते र्भूः स्थादरे । अभृत् । क

## ६१३। प्रादुगीक: सः षा उच्छे।

(पादुर्-गि-इकः ५।, सः ६।, वः १।, भच्-घे ७।)।

पादुःषन्ति, प्रादुःष्यात् । निषन्ति । क्ष

<sup>\*</sup> मघ सच मसी, पसेरसी माल्यसी तयो:। ि हिसासी रशेति ि इट. ि इट्रय सचती तयो:। स इत्यनकारान्तगृहणात् सि से ख इति नयाणां ग्रहणं। परे परे (१८२) सूम्ब्रिटिंग मस-स्थित्यसम्भनात्, कीवलं ि त्यहणेन सित्ते, रग्रहणं परे परे "लावस्य स्ताद्य ह्वास यतः" इत्यादी कटाचि-दसभातीर्भू-माटेशनिभेषाये। सः सन्ति सभगत किति रे परे म-लीप:। मसि इति से परे स-लीप:। ग्या हि (६००) एषि। स्या दिप (५६१) ईन। पाणिनिः १। ४११,०।४।५०।

<sup>+</sup> भरविषये भस्यातुस्थाने भ्षातुरादिस्थते, तेन भूधातु-निमित्तं सब्बे कार्ये स्थादिति । पाणिनि: २।४।५२।

<sup>‡</sup> गेरिक् गौक्, प्रादुष गौक्ष तस्रात्। प्रादुर्गन्दात् गेरिक्य परस्य अस-घाती: सस्य व: स्थात् अपि येच परे। अपि येच किं, प्रादुःक्ष: इत्यादौ न पलं। पाषिनि; ८।३।८०।

#### (१६३) स्जूल म श्ही।

# ६८४। सना उनिङ्गति विवीलस्याणी।

(बन: ६।, मकङिति ७।, वि: १।, वा।१।, तु।१।, मचि ७।, मणी ७।)।

त्रकिक्ति सजो ति: स्थात् श्रणाविच तुवा। मार्ष्टि सष्टः, मार्जित सजिता । \*

(१६४) वच सौ वाचि। गं

(६५२) वचस्यिष्वपतामिति वीच । भवीचत् । उवाच जचतुः ।

(१६५) रुदिर् ल घ रोदने।

#### **६८५। रद्गो ऽया इसस्यम्।**

(कद्भ्य: ५॥, भय: ६।, इस रख ६।, इस् ।१।) ।

क्टादेः परस्य श्रयस्य हमस्य रस्य दम् स्थात्। § रोदिति क्टितः। श्रयः किं, क्यात्।

<sup>\*</sup> क- छी इती यस स का छिन, न का छिन् चका छिन् ति बान । सन इति घरादीय-मुरादीययी देथी यं इथं। सनी भी विश्विक्षेत्री घका छिनीति कथनं निमार्चती-त्यत्र चिनिस्ति (५०४) चगुणेऽपि बिद्यिशासार्थे। मार्ष्टि चनेन बिद्यः, (१५४) पड्। पाथिनि: ७।२।११४। वार्त्तिकस्र।

<sup>†</sup> एतचात् धाती: भन्ति-भन्तु-प्रयोगी गासि ।

<sup>‡</sup> भवीचदिति (६१८) छ:। छवाच (६५१) जि:। जचतु: (६५१,६६१) जि:।

<sup>§</sup> बदम्य इति बदादिगणेभ्य इत्यर्थः, गणसु (५६१) स्वे उक्तः। इस् वासी रथिति इसस्तस्य। रिवथये प्राप्ती विधिग्यं, तेन रीदिव्यतीत्यारी (५५४) इस् स्यादिन। पाणिनः २१२०६।

**ई८ई। दिखोरम् वा।** (दि-स्वो: ६॥, घम ।रो, गारा)।

रूरादेः परयो दिस्योरम् स्यादः। अरोदत् अरोदीत्, अरोदः अरोदीः। \*

(१६६) जिष्पी घलु स्त्री।

विस्विपिति, (६२५) सवलाव वः। विसुत्वाप, दुःषुषुपतः, (६२५) निर्व्वलात् वः। 🅆

(१६७) अन घ लु प्राणने।

प्राणिति प्रानिति । क्ष

(१६८) खस घ लुप्राणने।

खसिति। अष्यसीत् (५०६) चणादिलात्र वि:।

(१६८) जच च लु घ भच-हासयी:।

जिति।

**६८७। अन्तोऽट्देः।** (पनः ६, पन ११।, वे: ४।)।

<sup>#</sup> दिस्रोरिति च्या एव, व्यान्तु सि-व्यवधानादसम्भवः । असी स इत् आदौ । अरोदिदिति अस्, पर्वे (५६१) ईस् अरोदीत्। एवं च्याः सिपि । व्यान्तु, (५६५) वा क्षेत्रसदन अरोदीदिति । पाणिनिः शहाटट ।

<sup>†</sup> विसुष्याप इत्यव (५०२) दशस्यादेरिति नियमात्, भव खेर्न घलं, खिनिमित्तकं सूलस्य षलं (१११) किलादित्यनेन स्यादेव । दः पुषुपनुहित्यकः बलवस्वादादौ (६६१) जो क्षते, पले चक्रते, पश्चात हिल्सिति ।

<sup>‡</sup> प्राणितीति (५४८) भननिंसेति वा चलं।

हि: परस्थान्तीऽत्स्यात्। जचिति। अ (५६३) श्रतुस्सिद्देरिति। श्रजचुः।

(१७०) जाग्ट च लु जागरणे।

्ह्र्टि । गुरुख्यां । (णः ११, पि १०, प्रवार्ग १०)। देरसि परे गुः स्थात्, नतु र्व्वाः। प्रजागरः, ग्रजागः। ग्रजागरीत्। जागरामास जजागार। प

# ईरर। जाग्री ऽणब्वीण्ङिति कसुकाने तु वा।

(जायः ६।, घ-णप्-वि-इण्-डिति २।, जसु-काने २।, तु।१।, वा।१।)।

जागर्तें गुःस्थात्, नत् गपि वी इणि ङिति च, कसी काने तुवा। जजागरतः। इ

अन् इति इसन्तिविदेशात् चिन्तं चन्तु चनामित्यादीनां यहणं। देरिति
 (१०४) मृत्रे कथितात्। जन-चिन्तं जनति, एवं ददति। निकीर्षनीत्यादी, (५४३) ग्रपी लीपे स्थानिवत्तात्र चनोऽत्। पाणिनिः ९।१।४।

<sup>†</sup> अनागरुरिति जाग्रःध्या चन्, (५६३) चन उम्, धनेन गुण:। व्यान्त जुहतः। अजागः---ध्याः सिप्, (५४२) गुणः, (६०२) सिपो लोपः, र विसर्गः। चनागरीत् (५०४) न विक्षः। नागरामास (६०७) वा धाम्। पाणिनि: ७।३।८३।

<sup>‡</sup> जाय इति स्वलात् न दः (१४१)। स्य विश्व इस्प् विश्विति तत्, प्यात् नज्योगे तिसान्। स्पप्मस्तिषु गुस्तिविधात् सत्यव सर्व्ववेव गुस्यः स्यादित्ययः। जो जागरयति, घांज जागरः, यिक्त कागर्याते, यपि प्रजागर्यात्, दी-यात् कागर्यादित्यादि। स्वादौ तुं जनागार, जाग्यविः (१९३१), स्रजागारि, जाग्यतः जाग्यतीत्यादि। क्षसुकाने (घ) जनागर्व्वान् जनाग्यवान्, (हे) जनागरासः जनायासः। पास्मिनः ०।३।८५।

#### (१७१) दरिद्रा च लु दुर्गलां।

## ७००। दरिद्रो ङि ईस्वे ऽणौ हाग्योस्त वा।

(दिरद्र: ६), डि: १), इस्रे थ, अणो थ, हाक्योः ६॥, तु ।१।, वा ।१।)।
दिद्गिते र्डि: स्थात् अणी हमे रे परे, हाग्स्योसु वा ।
दिद्गित: । \*

# ७०१ | ऋाद्वारा लोष्यो ऽणो हसे त्वादः । (या-द्याः ६॥, चा १२।, बोष्यः २१, चणो ००, इसे ००, त १२।, दे १२, घरः ६०)। या द्रत्यस्य देव या लोष्यः स्थात्, यंणी हसे तु दावर्जनी स्थात्। दरिद्रति। ११

## ७०२। दरिद्र त्रालोपोऽसनकानेऽरे व्यान्तवा।

(दिरद्र: ६१, घालीप: ११, घ सन् घक घने अ, घरे अ, घा अ, वं ११,वा ११)। द्दिद्र आलोप: स्थादरे, नतु सनि अने अने च, व्यान्तु वा । अद्दिद्रीत् अद्दिद्रासीत् । द्दिद्रामास द्दरिद्र । द्रिद्रात् ।

हास्च भीय तथी: । ङ इत् (१७) चन्यस्य भाकारस्य स्थाने । पाणितिः
 ६ । ४। १२४, ११६ ।

<sup>+</sup> ग्राय दिय तौ तयी:। चन चणी रे इति नक्तळां, तेन ख्याघाती ग्रीड चाख्या-.यते इत्यादी न प्रसङः। चणी इसंतु कीणीते जहीते इत्यादि। दा-घा-घालीसु दसे, घत्ते। दरिद्रति (६६७) चन् चत्, चनेन चालोप:। पाणिनि: ६।॥११२,११३।

<sup>‡</sup> सन् च अक्स अनय तत्, न तत् असनका भै तिसान्। यथा दिदरिद्रासितः, दरिद्रायकः, दरिद्राणं। एपि दरिद्रामास (६००) वा आस, पर्च अन्तरङ्गलादादी आ-लीपे ददरिद्र, पाणिन्यादयमु डौ आदेशं यलवनं मला ददरिद्रौ इलुटाहरिन । "यमु णिल ददरिद्रीत तिनिर्भूलभेव" इति सिद्धान्तकौसुदौ। वार्त्तिकदयम्।

#### (१७२) चनास च लु दीप्ती।

(६०१) हुभसो हेर्घि:। चकाघि। (६४) भाष्भसोरिति सस्य इ:। चकादि। #

७०३ । घ्यां दौत सः । (व्यां अ, दौ अ, तारा, सः ६।)। घ्यां दी परे सस्य तस्यात्। श्रचकात्। पं

७०४ | सौवा | (धीष), वा ।श)। भवकात् भवकाः । ध

(१७३) गास च लु गासने।

७०५ । ग्रासिङ इस्डे ऽगौ को त्वाग्रास्य ।
(बाम जङ्गा, दत्तारा, इस्डे अ, वर्ण अ, को अ, तारा, वाणाम हा, वारा)।
ग्रास्ते कडं इत्स्यात् प्रणी इसे डे च, को तु आगासय।
ग्रिष्ट:। ग्राधि। प्रशिषत्। §

<sup>🌣</sup> चकाधि (५५६) सलीप:, पचे चकाहि।

<sup>†</sup> विभाषादयमध्यवर्त्तित्वाद्रित्यं। अध्वकात् (६०२) दिपी लीप:। अपनेन सस्य त्। पाणिनि:⊏।२।०३। तन्मते सस्य दः।

<sup>‡</sup> सस्य तस्यादाच्यां सी परे। भवकात् भवकाः (६७२) सिपी लीपः। पाणिकः ८।२।०४।

<sup>§</sup> प्रास उर्ज् प्रामुङ् तत्। इस् च उत्य तिसत्। चयी इति स्तरां इसी विभिन्नं। प्राम इति प्रास च लु प्राम ने इत्यस्येव। कौ तु भाषासय इति भाषू र्वकः श्राम उत्त भाषि इत्यस्य किपि एव, भयौ इसे तु भाषाके इत्यादौ भाक्षिपदीयस्य इत् न स्थात्। किपि यथा, मित्रं प्राक्षिति मित्रभीः, भाषाके इति भाषौः (१०३३)। श्रिष्ट इति भाकारस्य इः, (१११) प्रास्तवमेति वलं। श्राधि (६९०)। स्थादि, (५६५) म्रायवित्। पाणिनिः ६।४।३४। नार्त्तिकानि च।

(१७४) चच ङ स बहै।

चष्टे। 🗱

# ७०६। चचः क्साञ्खाञ् ऽरेऽत्यागीससने।

(चच: ६।, क्साञ्च्याञ् ।१।, भरे ७।, भ्रतागीसमने ०।) ।

चचः क्साञ्खाञ्स्यादरे, नतु वर्जने उसि ग्रसि ग्रने च । श्रक्सासीत् ग्रक्सास्त, ग्रस्थत् ग्रस्थत । त्यागे तुसमचर्चिष्ट । 🕆

७०७। यां वा। (ठारं ७।, वा।१।)।

चन्सी चन्से, चखी चखी, चचने । 🕸 ·

(१७५) ईड़ ङ ल सुती।

ईहे। §

#### ७०८। सध्वो रखेम् जनीड़ीगः।

(स-ध्व: ६।, रस्य ६।, इम् ।१।, जन-ई.ड्-ई.श: ५।)।

<sup>🛊</sup> वदः कथनं। चष्टे इति चच्ते (२१३) का-लीपः।

<sup>†</sup> क्साञ् च ख्याञ्च तत्। न रोऽरसितिन्। खागय उस्च चस्व चन्य तत्, नञ्योगे तिक्षान्। क्साञ्खाञ्दल्यभयो जीनुक्सादुभयपदं, अर्र इति विषय-समी, तेन विभक्षात्यत्ते: पूर्लं एतौ स्यातामिति। वर्जनेऽये उसादौ प्रत्यये च न सात्। क्साञ्द्ति तालत्यमध्य इति पाणिनि-कमदीवरी। सतानरानुरीधात् शेपदंतेन दन्यमध्यः कथितः। र्न्यथदादेशविधानसामर्थात् वर्लं न स्यादिति। मक्सासौदिति (५८८) इन्सनौ। चक्सास्त (५८०) एकाजादन्तलात्रेम्। चस्यत् प्रस्तत इति (६१८) छः, (६१०) चालोपः। समचिष्ट त्यक्रवानित्यर्थः। उसादौ तु

<sup>‡</sup> चचः क्षाञ्ख्याञ्च स्थादा ढग्रां। विषयसप्तभीयं, तेन घाटावादिये ञातु-वसादुभयपदं। पाणिनि: २।४।५५।

<sup>§</sup> ई.ड ते, (४०) तस्य ट·, (६४) इस्र टः।

एभ्यः परस्य सस्य ध्वस्य च रस्य इम् स्थात्। ई ड़िषे ई ड़िध्वे। 🕸

(१७६) ग्रास ङ ल उपवेशन ।

ग्रास्ते। (५८२) र्व्विजादीत्याम् ग्रासाञ्चक्रे।

(१७७) वस ङ ल ग्राच्छादने।

वसितः वस्ता । गः

(१९८) निसि ङ स चुखने।

प्रणिंस्ते प्रनिंस्ते । 🕸

(१७८) सू ङ ल प्रसवे।

सूते।

७८ । सूते न णुर्यो । (म्ते: ६१, न ११, ण: ११, म्या १०)।
सुवै। §ं (५०३) वेमूहितीम् वा। असविष्ट असीष्ट।

(१८०) भी ङ ल भयने।

७१०। मीडने रे गुः। (भीडः ६।, रे ७।, गः १।)।

<sup>\*</sup> जन इति १८८ मं व्यक्तस्य जुडी त्यादिरेव, न तु २३४ मं व्यक्तस्य देवादिकस्य, तस्य ग्रयना व्यवधानात्। भागाशी विधिष्यं न तुनियमः, तेन जनिता ईडि़ता इत्यादी (५५४) वसी ऽरस्थेतीम् स्यादेव। ईडि़पी ईडि़पी इति क्याः से खे भ्रतेन इम्। एवं ईग्रड ऐश्वर्यों, ईष्टी इत्यादि। पाणिनिः ७२।७०,७८। तन्मते व्याः स्वमि ऐडि़ष्यम् ऐड्ष्म इत्युभयम्। इति मिद्धानकौमुदी।

<sup>†</sup> वसितावसा इति (६०६) वा इस्।

<sup>‡</sup> प्रचिक्ते प्रनिक्ते द्रति (५,४६) चन निक्ते निन्देति वा चलं।

<sup>§</sup> स्ङ ख धाती र्णुर्नस्थात् ग्यां। सुवै स्-ऐष् भानेन भागुणाले (খুদদ) छव्। पाणिनि: ৩।३।দদ।

श्रीते ग्रायाते । %

#### ७११। मान्तो रम् विदस्तुवा।

(मान्त: ६।, रम् ।१।, विद: ५।, तु ।१।, वा ।१।)।

भीडः परस्य मस्यान्तो रम्स्यात्, वेत्तेसुवा । भेरते। अभयिष्ट । पे

> . (१८१) ऋषीं ङ् ल ऋध्ययने । क्ष

ऋधीते ।

## ७१२। गौङ ष्टीष्यो वर्ग।

(गी ।१।, इड: ६।, टी-ध्यी: ७॥, वा ।१।)।

इङो गीस्यात् वाटी-ष्योः परयोः। वैलान गः। अध्यगीष्ट अध्येष्ट। §

### ७१३। ठ्यां गा ज्यङ्सनोस्तु वा।

(ब्यां ७), गा ।१।, त्राङ्-सनी: ७॥, तु ।१।, वा ।१।) ।

श्रीखो ग्रः स्वात् रे पेरे, गुणनिमित्ते त्रगुणनिमित्ते चेत्यर्थः । पाणिनिः ०।४।२१ ।

<sup>†</sup> सस्रान् मान् तस्य । विद इति शीरू-साइचर्यात् भदादिपितस्थैव ग्रइषं। श्रेरते इति शी-भने, भनेन भनस्याने रस्, मिस्तादादौ, एकदेशविक्ततसनन्यवत् सवतौति न्यायात् पूर्वेष गुण:। विदसु संविद्रते संविदते, (८०५) भान्यनेपदं। भविष्ट शी-टी-तन् (५८०) सुवस्य प्रतिप्रसवात् (५५४) इस्। पाणिनि: ०।१।६,७।

<sup>‡</sup> गणपाठे चित्रपूर्वकस्य इ.ड-धातो निर्देशात् चित्रपूर्वकस्यैव प्रयोगः न तु केवलस्य । चाते चधौयाते (५८८) दय ।

<sup>§</sup> घंतात्र ए:, गी इति दीर्घनिर्देशात्र गुण इत्यर्थः । अध्यगीष्ट, अधि-इ.टी-तन्, गी-चादेशः, एकाजिवर्षान्ततात् न इम् । गी-चादेशस्य विकल्पपचे (५०१) पुनरमागमे अध्येष्ट । पाणिनिः २।४।५० ।

दुङो गास्यात् ह्यां, जेः परे घडिः सनि च वा। प्रधिजगी। अध्यगीयत प्रधेयत। \*

(१८२) दीधी र्ङ च सु देवने दीप्ती।

७१४। दीधीवेच्यो न गु:। (दीधी वेच्यः ६१,न १११,गः ११)। दीध्यै । नं

७१५ | लोषो उन्तो खी: । (बीषः रा,चनः रा,ची: अ)। दीधी-वेब्बी-रन्तो लोष्यः स्नात् यकारेवर्णयोः । अदीधिष्ट । क्ष

(१८३) एवं वेवी रुंच लु ई-ल-वत्।

(१८४) दिषी ज स वैरे।

(६৩५) दिषित्रातो ऽनुस्वा। ऋदिष्ठः ऋदिषन्। ऋदिष्ट। ऋदिचत्। §

<sup>\*</sup> भङ्च सन्च अङ्ग्रनी, जें: थङ्-सनी जाङ्-सनी तथोः। अधिनगे अधि इ-स्ता ए, गा-भादेशे दिलादी, (६१०) भाषीपः। यी-स्तंत, (०१२) गी-भादेशे अध्य-गीयत, विकल्यपचे अध्येखत । जाङ्-सनीम्न अध्यजीगपत् अध्यापिपत् अधिनिगाप-यिषति अध्यापिपयिषति । पाथिनिः २।४।४८,४१।

<sup>†</sup> दी चौ च वेबी च समा डारे तस्य, दिवचना नाले परस्वे च सुवर्त्तमान थी र्थया-सक्कालप्रसक्ष: स्वात् । एतथी खुंने स्थात् सर्वतः । गौ-ऐप् (५८८) दी ध्ये, एवं दीध्यनोयमिल्यादि । पाणिनिः १११६ ।

<sup>‡</sup> यच इस तौ यो तथी: यो:। व्या-त्तनि सेरिम्, पनेन र्द्रलोप पदीधिष्ट। पाणिनि: ৩।৪।५३।

<sup>§</sup> भदिपुरिति च्या भन्, उस्विकल्पपचे अदिषन्। भदिष्ट घ्यान्ता। भदिचदिति टग्रादि, (६०५) सक्, (६०२,१११)।

(१८५) दुही अ ल दोहने।

श्रध्चत्, श्रध्चत श्रद्धः। \*

(१८६) एवं दिही ज ल लेपने।

प्रशिदेग्धि। १ अधिचत्।

. (१८०) जर्षु ज त ग्राच्छाइने।

७१६। वार्गी: पिइसे णुः।

(बा ११), कर्षे: ६।, पित-इस् रे ७।, गः १।)।

जणीं णुं: स्यादा पिति इसे रें। \$ जणींति, जणींति। (६८०) रिषडस्युत इति वृि:।

७१७। घ्यां। (घां ।)।

जणी णु: स्यात् पिति हमे घां। श्रीणीत्। §

७१८। स्विति छा। (ग-उव् कि: १।, यां ०।)

भ भध्वत् दुइ-टी दि, (६०५) सक्, (१०५) इस्य टः, (१७०) दस्य घः, (६०२,
 १११) दस्य कः, पलचः। टा।सन् भध्वतं भद्रम्प (६५०) गृहदृहंति न सिः सक् वा।

<sup>†</sup> प्रशिद्देग्धि (५४९) गदायन्त-नेर्णत्वं।

<sup>‡</sup> पिद्यासी इस्वासी रचेति तिबान्। (६८०) रिविड्सृत इति प्राप्तक्षेतिभेषीऽयं, निकल्पपचे हर्डिते। पाणिनि: ७।३।८०।

<sup>§</sup> निवाधे प्रथम् विधानं। पाणिनिः शश्रदः।

जणीं णुं: उव् ब्रि: एतं स्यु-द्यां। श्रीणवीत् श्रीणुंवीत् श्रीणीवीत्। \*

# ७१८। नाजन्तादेरादि हिं:।

(न ।१।, चलतादै: ६।, चादि: १।, वि: १।)।

यनादिस्थिताची धी-रादि हिं र्न स्थात्। १

# ७२०। खादौ नवद्रोऽये।

(सादौ ७), न-व-द र: १॥, पर्य ७।)।

स्रादी स्थितान वद रादिने स्थुनैतु ये। जर्णुनाव। 🕸

# ७२१। ङिदिम वार्णाः।

(ङित् ।१।, ४म् ।१।, वा ।१।, जर्थाः ५।) ।

जर्गी: पर इम् ङित् स्यादा। जर्गुविता जर्पविता। §

अ सुख चवच त्रिय. समाद्वार पुस्तं सीतात्। गुर्फे चौर्णवीत्. छित चौर्णवीत्, छित चौर्णवीत्, छित चौर्णवीत्, छित चौर्णवीत्। पाणिनि: १।२।३,०।२।६।

<sup>†</sup> भन्तय भादिय तो भनादो, भनी भनादी यस्त्र सृतस्य। यस्त्र भातोरादी अने च स्तरवर्णः, तस्त्र भादिवर्णे हिला दिलं स्रादिल्यंः। पाणिनिः ६।१।२।

<sup>‡</sup> स्थ: संयोगलस्थादिलिधिन्। न चवचद चरचते। प्रशे इति परस्थित-यकारिण संयुक्ताः पूर्ववितंनी न वद राः विः स्युरिवेल्ययः। प्रचापि चन्नादेधें-रिल्यनवर्णते. श्रन्यया दुदाव ददी इल्याही दकारस्य विल्विनिवेषापितः। ज्ञणुनाव इति कर्णुधातोः, स्ववयेन ककारं रकारस्य दिलां, सु इत्यस्य दिल्वं। पासिनिः ६।१।३। वार्तिकदयञ्च।

<sup>§</sup> जर्ण्विता इति अनेन इसी डिक्ले (५८८) उत्। पचि मुणः । पाणिनिः १।२।३ ।

#### (१८८) षु च स सुती।

# ७२२। पिद्धस्यम् ब्रवे। यङ्नुग्रतुस्तास्तु वा।

(पित्-इस-रस्य ६), ईम् ।१।, ब्रुवः ४।, यङ्खुक्-रु-तु-स्तोः ४।, तु ।१।, वा ।१।)।

हुवः परस्य पितो इसी रस्य ईम् स्थात् यङ्लुगादेलु वा। स्तवीति स्तीति, श्रभिष्टीति। न्यष्टावीत् न्यस्तावीत्। श्रस्तीष्ट। तुष्टुव। स्तविता स्तोता। \*

(१८८) दु चु व चुते।

चविता। 🕆

(१८०) त ल ध्वनी।

रवीति रौति। रविता रोता। पै

(१८१) तु ल हत्ति-हिंसा-पूर्तिषु ।

तवीति तीति। तविता तीता। १

<sup>\*</sup> पिश्वासी इस्वासी रियेति पिडसप्तस्य। यङ् लुक् यसात् स यङ्लुक्, सक रस तुम्र लुमेति तसात्। सवीति सु-तिष्, अप्, तस्य लुक्, अनेन ईस्, उकारस्य गुणः, भा-स्थाने भव्। पर्च (६८०) वृद्धिः सीति। भिरिष्टीत (५०२) मतं। न्यष्टावीदिति (६२३) इस्, भनन्ततात् (५०४) वृद्धिः, (६२३) निविष्यीति वा पर्वः। भन्नीष्ट इति भान्यनेपदं (६२३) न इस्, भादौ गुणे, इस्वपरताभावात् न (५६२) विलीपः। तुष्टुव इति द्याव, (५८४) नेमसुमिति न इस्। स्विता सीता (६०६) वा इस्। पाणिनः ७।३।८३,८४,८४। एकत्यते पुनः सार्व्वषात्वयस्थात् भपिशस्यपि वा भवति। तेन स्वीतः इतः इत्यादि।

<sup>†</sup> चितिता इति (५८०) प्रतिप्रस्तात् (५५८) इत्। रिता रोता (५०६) करुसुनी-स्कट्याः इति बाइन्। तिवता तीता इति (६०६) वाइन्।

(१८२) ब्रूच ल उत्ती।

ब्रवीति।

#### ७२३। पञ्च तिए पञ्च गाववा हमा

(पच १२॥, तिप् १२॥, पच १२॥, चप् १२॥, वा १२।, घाडः २१, च १२।) । ब्रुवः परेषां पञ्चानां तिबादीनां पञ्च खबादयो वा स्युः, ब्रुबः खाडः स्थात् । आह घाडतः आहः । ॥

७२४। हस्तथि। (इ: ६।, त।१।, वि ७)।

श्राही इस्य तः स्थात् थे परे। श्रात्र श्राह्यः। पत्ते सुगमं। 🌣

**७२५ । वर्चो ऽरे ।** (वणः ११, परे २०)। ब्रुवो वचः स्थादरे । अवीचत् । उवाच, जवे । क्ष

<sup>\*</sup> तिप् षप् च एतयो बँह्वचनान्तलं गणाधे, तिवादवः पञ्ज, षथादगः पञ्च रत्ययंः । षाहादंशी स्वयादोस्प्यचे एव । तिवादि-स्थाने सवादिकरणात् न हिलं, न इम्, नापि षतीतकालप्रतीतिः । (किविभिन्न "किमिक्कसीति स्कुटमाह वासवः" इत्यादी वामनसतेन बाहादिकां भूते प्रयुक्ताते ।) तिपी षप्, तसीऽतुम्, फर्नेः उम्, सिपस्यप्, धसीऽयुस् इति क्रमः । षाह इति ब्र-तिप्, षप् षाहय वादेशी, एवं वाहतुरितादि । पाणिनिः १।४।८४।

<sup>†</sup> भाइ इत्यस्य विभक्तिव्यत्यवेन भनुवृत्तिः । भात्यः 'इति विषः स्थाने थप्, भाइ भादेशः, भनेन इस्यतः । (७२२) पिहसस्येमित्यत्र ब्रुवः स्वरूपयङ्गात्भन न ईम् । पाणिनः पार्शिः ।

<sup>‡</sup> विभिक्तिव्यत्यभेन ब्रू रत्यस्थानुइति: । चरे इति विषयमप्रमी, तेन वाचां इत्यत्र ब्रुधातोः वच्-चादेशं सम्भाव्य (८०१) इसम्तवात् व्यण् । एवं व्यां (६१८) वक्त्यस्य व्यति उपस्यो भविष्यतीति सम्भाव्य उपस्यात् पूर्वमेन वचादेशः । एवं सर्व्यत्र चरसमावनायासेन वचादेशः । ततः सर्व्यत्र ब्रूजो जानुबन्धात् उभयपदं, तेन चनोचत् च्याचेत्त रत्यादि, (६१८) उपस्यथे, (६५२) वोचादेशः । उवाच इति णप्, (६५१) खें किं: । जचे इति (६५१) खें:, (६६१) मूलस्थापि निः । पाणिनः राधाप्रः ।

#### ह्वादि:।

#### ----

#### (१८३) इ लि होमे।

७२६। ह्वादी रे दि:। (हादि: ११, रे ७), हि: ११)। हादि हिं: स्थात्रे परे। जुहोति। \*

७२७ | ह्वी वच्चागौ | (हः ही, व् १२।, वि श, व्रवी श) । ह्वी क्वारस्य व् स्थात् अणाविच रे । जुह्नति । जुहुधि । पे

# ७२८। पशाम् वा भी-ह्नी-स्ट-हो छतां।

(पश्राम् ।१।, वा ।१।, भी-क्री मृ-ही: ५।, व्यां ०।) ।

एभ्यः प्रमाम् वा स्थात् त्यां। जुह्नवामास जुहाव। 🕸

<sup>•</sup> इ: (धातः) भादिर्थंस्य स हादिः। गणपाठे लि-इतां धातृनां श्रदादिलं इ।दिलञ्च। जुद्दोति इ-तिप्, (५४१) भए, (६००) तस्य जुक्, दिलं, (५५९) से ईस्स जः, (५४२) मूलस्य गुणः। (६८०) रापिडस्यृत इत्यत्र दिलवर्जनात् न बाँदेः। पाणिनिः २।४।०५,६।१।१०।

<sup>†</sup> कोष इहः तस्य इहः। (५८८) युध्वारिति उत्पाप्तियोधकोऽयं। लुह्नति, स्रन्ति (६८७) सन्तीऽत्, सनेग व्। सधौ किं, लुह्नानि। रेकिं, लुह्नतुः। लुह्नधि ६९१) हे धिं:। पाणिनि: ६।৪।८०।

<sup>!</sup> पमामः पिचान् गुणः, शिचान् रसंज्ञायां (७२६) हिलं, चाम-स्थिति.। पुड्यामास इति इ-षप्, पभाम्, हिलादि, (५८३) चस्प्रयोगः। एवं सूक्त प्रयोगेऽपि। शामो विकल्पपचे नुकाव। पाणिनिः ३।१।३८।

(१८४) जि भी लि भीत्यां।

बिभेति । (७००) दरिद्रो ङिरिति, बिभितः बिभीतः, बिभ्वति। बिभयामास बिभाय । \*

(१८५) इडी लि लज्जायां।

जिन्नयामास जिन्नाय । अ

(१८६) पृ लिंपालने।

७२८। पृभादे कि:,खेरे।

(पृत्तः-भः आदे: ६।, जिः १।, खं: ६।, रे ७।)।

प्ट-ऋ-स-माङ-हाङां खे डिं: स्यात्रे। पिपर्ति। १

. ७३०। पुद्दी वा। (पु: ६।, वं: १।, वा।१।)।

पिपूर्तः पिप्रतः । पपरतः पप्रतः, (५७८) समत्वात एः। \$

<sup>\*</sup> विभेति भौतिप् दिलादिकां। तम् विभितः, ङौकते ङिच्लादन्यस्थ ईकारस्य स्थाने रः, पर्वे विभौतः । पन्ति विभ्यति (६८०) अन्त सत्, (५८८) ईस्थाने य । षण् विभयामास, पश्राम् अस्प्रयागय, पर्वे विभाय । एव क्री-चण् जिक्रयामास जिक्राय ।

<sup>†</sup> पृ लि पूर्नो इति पाठमु कविकाल्यहुमविशेषिलात् न ग्रहीतः । एव ऋष भादिय सत्त्रस्य । भादिमु २०५-२०० संख्यक स्याप्यति द्वादिगणसमाप्तिपर्यनः इत्यतः पाइ स्थान हाङामिति । यथा—पिपर्त्तं दर्यात्तं विभित्तं सिमीते जिहीते इति । रेकिं, पपार वभार द्वादि । पिपर्तीति दिले खं: स्थाने जिः, उ इत् खेरन्यस्य स्थाने इ: । पाणिनः ७।४।०६,००।

<sup>‡</sup> प्रधाती दीर्घः स्वादा। चनिष्टलात् स्वेः रे इति च नातुवक्ति। जिपृ लि तु पालने इति दीर्घान्त पृ धातौ स्थितिऽपि एतत्त्वकरणं क्रसान्तस्यापि दीर्घान्तवत् पदसाधनार्थे। पिपूर्क इति दीर्घे करी (६२८) उप्, (२२८) दीर्घः। चतुस् पपरत्-रिति दीर्घयचि(६२६) गुणः। (५०८) गुणवन्तात् न खिलीपः चकारस्थाने एस। पाणिनौ दीर्घान्तगरस्यात् नास्य सुवस्थावसरः। "क्रस्तान्तीऽथिनिति केचित्" इति तु सिद्धानकौ सदी।

#### (१८७) भी हा-क बि त्यागे।

जहाति, जहितः जहीतः, जहित । \*

#### ७३१। हाकीऽन्तलोपः खां।

(हाक: ६।, भन्नखोप:१।, स्वां ७।)।

जह्यात्। 🕆

७३२ । हो डावा। (धी वा, बा।शा, वा।शा)।

ष्टाको ङा स्थात् वा हो। जहाहि जहिहि जहीहि। हेयात्। ‡

(१८८) ऋ र्लि गलां।

द्रयर्ति । §

(१८८) जन म लि ङ जनी।

जित्रवे, जित्रकी। १

<sup>\*</sup> नहित: इा-तम् (७००) दरिद्रोङितित वा ङिः, पचे (७०१) त्राह्योरिति ई । चिन नइति, त्राह्योरिति चा-लोपः, (६८७) चन चत ।

<sup>†</sup> डाक-धातोरालीप: स्थात स्थां। डाको इ स्थामिति कते सिञ्जाविष, भादी डिलंपसादनलीप इति जापनार्थे भनलीप: इति कथितं, तेन नज्ञादिति भादी डिलंपसाद मुलस्य भालीप:, भन्यया (५३०) प्रागच्कार्थ्यादिनि दिरिति वियमेन डिलं। इसे परेपसात् दिलं खेरदन्तलव्याघात: स्थात्। एवं जड़ित इत्यादी भादाविव डिलं। पाणिनि: ६।४।११८ ।

<sup>‡</sup> जहादि इत्यादि भादौ दि: पश्चात् ङा, ङि:, ईश्व । ब्या-यात् हेयात् (६१२) ङे। पाणिनि: ६।४।११०।

<sup>§</sup> इयर्त्ति, (৩२८) पृक्षादेरिति खे ङिः, (॥८५) इयः, मूलघाती र्गृषः। एवं इयृतः इयृति। च्यादिप्तां चन्, ऐयः ऐयृतां ऐयकः इत्यादि।

<sup>¶</sup> निश्चिषे जन काा: सें, (৩০৯) इ.स्. (२३०) उङ्लीपः, (४६) नस्य স। ध्वे শিश्चिषे।

(२००) निजिरी ज लि पीषणे श्रीधने च।

७३३ | निजां खेरे गु: | (निजां सा. की: ६१, र २), गः ११) | निज-विज-विषां दे पुं: स्यात् रे। नेनेकि नेनिकः । \*

७३८। न ह्युङोऽचि। (नाश, दुाङ: ६ा, पवि ०)। देवङो ख ने स्थादचि परे। नेनिजानि । 🕆

एवं (२०१) विजिरी ञ लि विवेकी।

(२०२) विषि र्लि जी व्याप्ती ।

श्रविषत् श्रविचत्। 🕸

(२०३) ड् दा ज लि दाने।

प्रणिददाति। अद इत्युत्ते-रासीप:। दत्ते। §

निक्तामिति वहलंगणार्थं, गणाय गणपाठे ह्वासुमधपित्समापकपर्यंतः: इत्यत-णाष्ट्र निक-विज्ञामिति। निज-तिप् नेनेक्ति (२११) कुङ्। एवं विज्ञ वेर्वाक्त, विष वेविष्ट इत्यादि। णव विज्ञानीरिक स्वेर्ण्टिति वक्तव्यं। पाणिनिः ०।४।०५।

<sup>†</sup> इंकड् दुग्ड् तस्य। भात्र अवि इति इ विषये एव । निज आगिप् हिलादिकं, भानेन सूलस्य गुणनिवेधे नेनिजानि, एवं वेविजानि । यङ्क्तुकि खेलिडीति सीस्चीति इत्यादि । चङ: किं, जुइवानि । देकिं, निनेज । अवि किं, नेनेकि । पाणिनिः ९।३।८०।

<sup>‡</sup> विष-टौदि, (५६५) इश्क्लि।त् वा खः:। पत्ते (६०५) सक्, चविषत् चिवत्। § प्र-नि-दा-तिप्, (५४१) गदायन्त-ने ग्रंतं। ते दर्भ (७०१) चा-लीपः दा-वर्जनात नर्द्रः।

### ७३५ । द्यो दी-धा दें-धे हो।

(द्यी: ६॥, दा-घी: ६॥, दे-घे ।१॥, भी ०।)।

दे दीनो देघींनो देधे च स्यात् हो। देहि। #

# ७३६। स्थादो कि ष्टीमे न गु:।

(स्थादी: ६॥, जि: १।, टीमे ०।, न ।१।, गः: २।) ।

स्था-दो र्ङि: स्थात् टीमे,तस्य च न गुः। ऋदित ऋदिषातां 🕂

(२०४) डुधा ज लि धार्णे।

प्रणिद्धाति ।

#### ७३७। घो द घो उन्तलोपे तथि।

(घ: ∢ा, द।१ा, घ: १।, घनलीपे ०।, त-यि ०।)।

धाजो दस्य धः स्थात् तथयोः परयोः, श्रन्तकोपे सिति। धत्ते । धेडि । श्रधित । क्ष

١,

अ दास धाय तौ तथी: दाधी:। देख धेन इति लुप्तप्रथमा-दिवचलं कमार्थ। षच खुदाञ्चि, खुधाञ्चि इति इथोरेन ग्रहणं, चन्येशं दासंज्ञकानां धी परे दिलासम्प्रवात्। दा-दि दिल, दिक्कास्येन दे-चादेश: देहि, एवं घेडि। पाणिनि: ६।४।११८।

<sup>†</sup> स्थाय दाय ती तयी:। उट इत् चन्यस्य स्थाने। चच दा इति दामंजकः। दा-टीतन् चदित (५६२) इस्सात् भक्ति सि-खोप.। चातां चदिपातां भक्तप्रला-भावान् सिकोपाभाव:। पाचिनि: १।२।१०।

<sup>‡</sup> धाजी दकारसभावना खेरेन । चन्तालि (७०१) चालि पे सित । घने पति धाती दिखं (५५६) संबंध्य द:, (७०१) मूलस्य चालिपः, चनेन खे दंख घ:। एवं धतः धत्य प्रत्यादि । धत्यं घठे प्रत्यादी तु (१००) सभानस्यति दस्य ध:। घन भषी तथि प्रति कति सिहावि चन्तलिपे प्रति कथनं, यङ्गृतिः क कवली: दाधीतः सधीतनान प्रत्य (६१२) डी प्रदिश्च दस्य धकारापतिनारणार्थं। पाणिनिः प्राराहिष

(२०५) टुडु स ज लि सति-पुद्योः।

बिसतः, बिभ्रति । बिभरामास बभार । #

(२०६) मां ङ लि ग्रब्दे।

प्रणिमिमीते मिमाते मिमते।

एवं (२०७) श्रो हा-ङ लि गती। अ

इति घटादि पादः।

२य पादः--दिवादिः।

----

(२०८) दिव्यु क्रीड़ायां

७३८ | दिव-स-तुद-त्व-क्राहे र्यन्वनण्नाः
ग्रिट्वे रे | (दिव-क्राहे: ४।, यन् – नाः १॥, विक्।रण, चे ०।, रे ०।)।
पन्यो चेऽर्थे यन् तु य नण्ना एते रे परे क्रमात् स्युः, ते च
गितः। दीव्यति। \*

विश्वति स-ष्यनि (६८७) घन षत्। षप् विभागमाम, (७२८) वा प्रशाम,
 (७१८) खेडिं:। माङ्-ते निमौते खेडिं:, (७०१) ई:, षाते षम्ते (७०१) षालीपः
 निमाते निमते इति। एवं इा-ङ-- जिहीते जिहते।

<sup>\*</sup> दिवय सुत्र तुद्य कथय कीयेति, ते भादबीयस्थ तसात्। भादि शब्दस्थ प्रश्लेकेन सम्बन्धः। उत्तर् चतुर्यभय नण्चनाय ते। प्र इत् धेषां ते क्रित् इति वहुवचनानं। तेच क्रितः इत्यनेन दिवादेः श्रान्, स्वादेः श्रुः, तुदादेः श्रः, कथादेः भ्रण्,कप्रादेः श्रा इति। क्रित्करणात् (५२०) रसंज्ञायां, अपिद्रलात् (५२२)

#### (२०८) षिच्यु तन्तुसन्तती ।

#### निषीयति। न्यषेवीत् न्यसेवीत्। #

#### (२१०) तृती य नर्तने।

७३८। नृत् कत् चृत् कृत् हृदे ऽरसे ऽसे रिम वा। (क्त-हदः ४।, भर्मः ६।, भमेः ६।, ४न ।१।, वा।१।)।

एभ्यः परस्यारस्य सिवर्जस्य ,सस्य इम् स्यादा। निर्मिष्यति नर्गस्यति । सौतु अनर्जीत्। पं

#### (२११) त्रसी य भये।

(५८8) क्रमक्रमेति ध्यन् वा। नस्यति नस्ति। तनास निसत्: तनसत्:। क्ष

िक्सी, प्रक्षनादी परे (५४२) न गुणः। एते प्रपो नाधकाः। यण् इति स्वकारातु-वसात् (१०) क्षादिरत्याचः परो अनद्विष क्षणं नाधते। स्वित्व क्षादिरिति षष्ठा-नत्वेन स्रयो बोध्यः, विरुक्षसंसमनाये भूयमां स्थात् स्वसंकत्विति न्यायेन च पक्ष-स्थनत्वेन प्रयुक्तः। दीव्यिति दिव-तिषु, प्रसन्, (२२८) दीर्घः। पास्तिः ३।१।६१, ७१,७०,०६८१।

- निषीव्यिति (५०२) पत्नै । न्यथेवीत् (६३३) वाषलं।
- † वृद्ध इत्यादि इन्दः। घरषासी सयति तस्य घरसः। वृत्-स्वति वा इन्। घनभौदिति टीदि, (५५४) नित्यमिम्। पाणिनि: ७।२।५०।
- ‡ चसित इसन्विकलपचे प्रप्। चस-चतुम् (५०६) वा खिलीपः, चकार एकश-स्यः। पचे तनस्तः।

#### (२१२) जृ दर्ध जरायां।

जीर्थिति । ग्रजरत् ग्रजारीत् । जेरतुः जजरतुः । जरीताः जरिता । \*

(२१३) भी य निमाने।

# . 980 । यन्येाश्रमादिमिदेा लापर्वणु ।

(यनि ०।, श्रां भमादि मिद: ६।, खीप-र्घ ॥ १।) ।

श्रोकारस्य लोपः श्रमादे घी मिदे आुँ: स्थात् यनि । कृ स्थित । श्रमात् श्रमांसीत् । कृ

. एवं (२१४) की य लूनी।

(२१५) षीय नागी।

प्रणियति । न्यषात् न्यषासीत् । सेयात् । §

अनीर्यभीति जृ-तिप्, खन्, (६२८) इर्, (२२८) दीर्घः। भजरत्, टी-दि,
 (५६५) वा छः, (६१८) गुणः। पचे भनारीत् भी पे (५०४) इडिः। जिरतः अनगतः,
 (६२६) गुणः, (५०८) वा खिलीपः अरथः। अरीता इति (६२०) इमी वा दीर्घः।

<sup>†</sup> भीय ग्रमादिय मिद् च तस्य। लीपय घंय ग्रय तत्। उभयत्र स्माहारी क्रमान्यः। गणपाठे भ इत् शमादिः, सच—शम श्रम दम चम तस यस मद् क्रम इति घष्ट। पाणिनिः २|३।२१,२४,८२।

<sup>‡</sup> स्विति, शी-तिप्, स्वन्, चीलीपः । चलात् टी दि, (६०८) चीस्थाने चा, (६१४) वासेर्लक। पर्च (५८८) इन्सनी चलासीत् ।

<sup>§</sup> प्रक्रिय्यति प्र-निसी तिप् (५४८) गटायन्त-ने र्णलं। न्यपान् न्यशसीत् (५०२) भाष्यपि पलं। सेयान् ढीयान् (६१२) डी।

(२१६) दो य च्छेदे।

प्रखदात् । देयात् । \*

(२१७) राध्यी ग हिंसे।

रेधतुः रराधतुः । वधार्धः निं, ग्रारराधतुः । अ

(२१८) व्यध्यी ताड़े।

विध्वति । विव्याध, विविधतुः । १

(२१८) पुषी ल्ह पीषणे।

(५६५) गासुलिद्यादिति ङ:। अपुषत्। 🕆

(२२०) श्लिष्यौ चि एट स्लेषे।

यक्षिषत्। यालिङ्गनेतु यक्षिचत्। 🕆

(२२१) रध्यू ऌ पाक हिंसयी:।

### ७४१ । नृण् रधा मुचां नश्मस्जी रभलभी रनठीमच्ये अस्यर्श्वचि । (नण् ११), रघः ६१, सर्चा ६॥, नश्

मम्त्र: ६।, रभ लभ: ६।, धनठीमचि ७।, ए ७।, भामि ०।, धरळाचि ७।)।

<sup>\*</sup> प्रख्यदात्, प-निदी-टी दि, (६०८) भी स्थाने भा,(५५२) से लुंक् दामंजकतात्, (५८८) गदायन्त-ने र्णलं। देशत्. (६१२) कि। देशतः, राध (वधार्थ) ठी भतुस्, किंत्रं, (५०८) विधिवलात् वा खिलोपः भाष्य। पत्ते रराधतः। भाराधनार्थे त भारराधतः। भाराधनार्थे त भारराधतः भव न ए:।

<sup>†</sup> विध्यति, व्यधःतिष् (६६१) जि:। चप् विव्याध (६५१) खेर्जि:। ऋतुम् विवि-धतु. खे. मूलस्य च जि:। चित्रवृत्, पृत्रादिलात् (५६५) ड:। चित्रवित् (६०५) सक्।

रधष्ठीवर्जेम्वर्जेऽचि, सुचाहेरत्वे, नम्-मस्जी भीने, रभ-सभी रठीवर्जेऽचि, तुण्स्यात्। घरस्यत्। रिधता रहा। स्थान्तु ररस्थिव रेख, ररस्थिम रेखा। \*

(२२२) लप्यू जिल्ल प्रीणने।

त्रतर्पीत् मत्रापीत् भताप् सीत् भव्यत् । पं

एवं (२२३) दृष्यु दुर्जि हर्षाहद्वारयोः।

(२२४) मुद्धू जिल्ल वैचित्ते।

मोहिता। (१७८) मुहां घडिति, मीन्धा मीटा। इ

<sup>म ठी घठी, घळा इम घठीम, नासि घठीम् यत्र सः घनठोम्, घनठोम् घासी
घर्वति अनठीमच् तिअन्। रय ठी च रळ्यो. न रळ्यो घरळ्यो, तयोरच् घरळाच्
तिअत्। रघधातीः ठ्या इसि सामान्यं घिच घर तृष् स्थात्, ठ्या इस्मित्ने घन्यकिन्
इसि न स्यादिति ताल्य्यम्। ठीमचि इति क्षते त रस्थत्रित्यादो ठ्या घिच तृषोइपाभिष्पमिन्षष्टं स्थःत्। सुचामिति बहुवचनं गषायं, तेन सुचादेरिति, सुचादिष —
पकारान्यत्या घातवः — सुच सिच लिप लुप कृत विदादयः । घल्यं इति तृदादिलाज्याते
घ'प्रत्यये पर इत्ययं:, तेन घिण सीच इति। भन्ने इति भन्न्यप्रशाहारे। रठीवर्जे
इनीत रिमक्तं ठीभिन्ने घचि पर इत्ययं.। घरश्वदिति, रघ-टीदि पुषादिलात् (५६६)
छः, तिस्मन् घि परे घनेन नृण्, शिक्तात् (१०) घन्याचः परे, न-स्थितिः, उकारयिक्तार्थः। तुष्करणादेव (५६०) इसुङ् व इत्यनेनं न नलीपः। रविता इति
रघ-डीता, (५०२) रघादिलात् वा इस्। ठी-व ररिस्थन, चत्र व्या इसि तृण्। इसी
विकत्यपचे (५०२) खिलीपः, घकारस्य एकारः। एवं ठी म। पाथिनिः ०१।५८६०,६१,६२,६३,६४।</sup> 

<sup>†</sup> त्रप-टीदि, (६०३) वा सि: (५०३) वा इस्, चसर्पीत्। इसीऽभावपर्चे (६०४) ऋस्थाने वा र:, चिनम्लान् (५०४) चकारस्य बिडि: चनासीत्। रस् विकल्पपर्चे, ऋकारस्य बिडि: चनाप्ंभीत्। सैविकल्पपर्चे (५६५) जः: चटपत्।

<sup>‡</sup> मीहिता, सुइ-डी-ता, (५०३) वादम्। दमी विकल्पपचि मीन्धा, घरं विकल्पपचिमीदा, चनरङ्गल।दादौगुणै, (१०५) इस्र ढः, (५०५) तस्र घः, (४० घस्र ढः, (७०) ढलोपः।

#### (२२५) गम ख यू नामे।

98२। नम् नेम् वा को (नमारा, नेमारा, वा रा, के जा)।

प्राणियत् प्राणयत्। नियता प्रनंग्धा प्रनंष्टा, श्रयाम्तलात् (५४८) न णः। ॥

(२२६) शमु भ्य इर् उपश्रम ।

प्रणिशास्यति । 🌣

(२२७) सम्युभिर्ग्लानी।

क्लाम्यति क्लामति। १

(२२८) श्रस्यु दर् चेषे।

श्राखत्। 🅆

(२२८) यस्य दर् यति।

यस्रति यसति, संयस्रति संयसति । अन्यत्र प्रयस्रति । ई

(२३०) लुभ्य द्रर्गार्डेग।

लोभिता लोब्धा। 🕸

(२३१) जीर् मिद्या सिहै।

मैद्यति । 🕸

(२३२) स्यो ङ स्ती।

असविष्ट असोष्ट । 🕸

 <sup>•</sup> नम्र धातो नेंग्र स्वात् वा छि। नम्र-टीदि (५६५) छ:, वा नेग्र-मादेग:। (५४८) मान्तलात् नस्य ग्रलं। छी-ता (५०६) वा इम् निकल्पपचे प्रपूर्वनम्र-डी-ता (०४१) नृण्, (१०००) घङ्। घङो विकल्पपचे (१५४) षङ्, (४०) तस्याने ट:। "निश्चमन्यीरलिस्त्रीलं वक्तव्यम" इति काशिका।

<sup>†</sup> प्रविशास्त्रति, (७४०) श्रमादिलात् दोर्घः, (५४८) गदायत्त-ने र्णतं । स्नास्यति '(५८४) वा स्यन्, श्रमादिलात् दोर्घः। विकल्पपचे श्रप् (५८३) विद्यक्रमेति दीर्घः, सामिति। स्रास्थत सस-टीदि, (५६४) छः, (६५२) पर्स्थादेशः। पर्चे सासीदिति।

<sup>\*</sup> यस-संपूर्वक यस घाती: (५८४) धान्या, संपूर्वकादन्यत्र (७३८) निर्धे खान् प्रयस्ति । लुभ डी-ता, (६०६) वा इम् लीभिता लीखा । निर्द-तिप् खान् (७४०) मिटंगुंष: नेदाति । स्-तन्, (५०३) वा इम्, अस्विष्ट घसीष्ट ।

#### (२३३) घो दी इत य चये।

# 98३। दौङ्छ्यां यन् यन्गौ ङा सनि तुवा।

(दीक: ६।, व्यां ७।, यन्।१।, यप-व्यो ७।, उत्ताश, सनि ७।, तु ।१।, ना।१।)।

दीङ ष्ठगं यन्, यिष गौ च ङा, सनि तु वा स्थात्। श्रदास्त । दिदीये। \*

(२३४) जनी म्य ङं प्रादुर्भावे।

जायते। 🌵

### ७८८। जनवधः सममो ऽकमवमाचमो ज्णित्-क्रदिणि खो ऽमयमविश्रमस्तुवा।

(जुन वध: ६।, सेमम ६।, घ-कमवकावम: ६।, ञ्चित् स्रदिषि ७।, स्व: १।, व्यम-यम विश्रम: ६।, तु।१।, वा।१।)।

जनी वध: सेमोऽमन्तस्य च कमवमाचम-वर्जस्य स्वः स्यात् ज्णिति कति द्रणि च, श्रम-यम विश्रमसु वा। श्रजनि श्रजनिष्ट। जज्ञी थि

<sup>\*</sup> यप् च स्था समाहारे तिस्थान्। यप् इ. (१९०६) क्वाच्साने नातः प्रस्यः। सिन तु का वा स्थादिति। भदास इति दी-टीतन, सिः, भनेन गुणिनि परे का, कि स्वादन्यस्य स्थाने। व्या ए, हिलं, भनेन यन् निस्तादन्यस्य स्थाने। व्या ए, हिलं, भनेन यन् निस्तादन्यस्य स्थाने। औ (गुणयोग्ये) दापयति। यपि भदाय। स्थौ किं, दीयते। सिन दिदासते दिदीवते। पाणिनिः ६।४।६१, ६)१।५०।

<sup>+</sup> जायते, जन-ते, ग्यन्, (५६०) जादेश:।

<sup>‡</sup> जनस्य तथस तत्तस्य । इसा सङ्घर्णभानः सेम्, सेम् चासी अम् चेति तस्य । कसस्य वसस्य भा-चम्च ते, न सन्ति ते यच स तस्य । अच खच अयो, तो इती यस्य स अय्यित्. अ्णिवासी क्षेत्रि अ्षित्कृत्, अ्थित्कृत्व इत्यूच तत्तस्य । असस्य सम्य विश्वस्य वत्तस्य । असम्य समय विश्वस्य वत्तस्य । असमय समय विश्वस्य वत्तस्य । असमय स्ति सेमम इत्यूच विश्वस्य । अस्विति कृति, अ-इत् ख-इत् कृत्यस्थे परि इत्युषः । यथा — व्याष्, अस्य वस्यं । अस्य अक्त, जनकः

(२३५) दीपी ङा ऋ दीपने।

यदीपि यदीपिष्ट । \*

एवं (२३६) पूरी ङा प्यायने । (२३७) पद्यौ ङ गतौ।

(६४३) पदस्तनीण् चे द्रति । प्रख्यपादि, अपसाता । \*

(२३८) बुध्यो ङ अवगमने।

श्रबोधि श्रवुद्ध । \*

(२३८) नहीं त्राबर्धे। (२३९) नहीं धङ्भी। त्रुनासीत्, ग्रनद्व। \*

इति दिवादि-पादः ।

३य पादः — खादिः। (२४०) षु जन बन्धे।

सुनोति, श्रभिषुणोति, सुनुतः सुन्वन्ति । (६२३)सुजुधोरितीम् । व्यवाबीत् । श्रसविष्ट श्रसीष्ट । सुषुविव। विसविष्यति विसोष्यति, (५७२) स्थान्तत्वात्र षः । 🗥

बधक इत्यादि। भजनि, जन टीतन्, (६४७) इष्, (६४४) तन्लीपः, (५००) हिद्दः, भनेन इन्छः:। पचे द्यां सिः, भजनिष्टः। ठीए, अर्ज्ञे दिलं, (२३०) छङ्लीपः, (४६) नस्थाने ज। पाखिनिः ७।३।३४,३५। वार्त्तिकं भाषाद्य।

 <sup>#</sup> दोप-टीतन् (६४३) दण् वा, (६४४) तन्लोपः, भदीपि । द्रणो विकल्पपचि
 भदीपिष्ट । प्रस्त्रपादीति (५४८) णलं। भवुद्धः इति वृध-तन्, द्रणो विकल्पपचि
 भिः, (५६२) सिर्कापः । भनाव्यीदिति भनिम्लात् (५०४) वृद्धः ।

<sup>†</sup> सु-तिप्, (७६८) खादेः यु, (५४२) गुज़ः, सुनीति । ष्मिभुणीति, (५०२) षतं, (१००) षतं । सुनुतः किलाझ सः । सन्विन्त, (५८८) उकारख वः । व्यवावीत, वि-सुटी हि (५७२) षत्यपि वतं । टी-तन् (५७३) वा द्रम्, ष्मधविष्ट ष्मभीष्ट । ठी-व सुप्विव, (५७३) बदुसुनीस्वउमः द्रित दम् विकल्प मिषेषात् (५८४) नेमभुमिति नियमेन नित्यमिन् (५८८) उव. (१११) षतं ।

### (२४१) हु मि अ न चेपे।

# ७८५। मिस्यो र्यन्गौ ङाऽखललि लियस्तु वा।

(मिस्यी: ६॥, यप्-चौ भ, खा ।१।, ष-खल्-घति ०।, लिय: ६।,तु ।१।, बा ।१।)। श्रमासीत । प्रस्यमास्त । क्ष

(२४२) चि ज न चित्यां।

# ७४६। चे: कि की सन्छो:।

(चे: ६।, कि: १।, वा ।१।, सन्-ठग्ने: ०॥)।

विकाय विचाय। विक्ये विची। 🕆

(२४३) स्तृ ज न स्तृती।

# ७४७। स्वाद्यृहुदु-रस्कु वेम् सन्मढीसे:।

(स्यादि-ऋत्-ऋत्-वु: ५१, घस्कु: ५१, वा ११।, इम् ११।, सन्-मडीसे: ६१) ।

स्तवर्ज स्थायृदन्ता-हदन्ताच वजो वङ्य सनो मे स्थितयो-दीस्थोय दम् स्थादा। यस्तिरष्ट यस्तृत। स्तिरषीष्ट स्तृषीष्ट ।

सिम न, भी ख्य, भी जग, भी ति, एषां ख्यां स्थात् यि गुणसाधन-योखे
 म, नतु खिल पिल च, लीधातील वा, ख इत् पन्यस्य स्थाने । प्रमासीत्, टीदि, पि,
 प्रनेन खा, पाइन्ततात् (५८८) इन्सनी । प्रस्थमास, मदायन-ने र्यलं । पाणिनिः
 १११५०,५१ । वार्तिक्ष ।

<sup>ो</sup> सनि—चिकौषति विचौषति । पाणिनिः शहाप्रद ।

<sup>‡</sup> स्य चादि ग्रंस स स्थादिः, स्थादिशासी स्वेति स्थायृत्, स्यायृत स्व हसेति तसात्। नासि स्व ग्रंसिन् सोऽस्कलकात्। दी च सिच दीसिः, में (चात्सनेपदे) दीसिः मदीसिः, सन्च मदीसिय तस्य। स्ववर्णसंयोगादि-स्टलात्, दीर्घ-सदलाय, उपयादिश्यः, चात्सनेपदि-इण्डय इत्ययः। चलिष्ट इति स्नु-टौतन्, चनेन सेरिस्, प्रयात् गृणः। इसो विकल्पपंचे चलृत, (६५८) सेः किस्वात् न गुणः, (५६२) सिलीपः। एवं दी सीष्ट। पाणिनः शराधः, ४२,४२।

(२४४) ह च न हती।

श्रवारीत्। श्रवरीष्ट श्रवरिष्ट श्रवतः। ववरिय, वववः। वरिषीष्ट वषीष्ट । अ

(२४५) धुजन कम्पे।

(६२३) सुलुधोरितीम्, अधावीत्।

(२४६) हिन वर्षने गती।

प्रहिणोति । १

७४८। हे: खेरनङि वि:।

(ई: ६।, खें: ५।, धनिङ था, घि: १।)।

खे: परस्य हे घि: स्यात त त्र कि । जिघाय । क्ष

(२४०) कविन कतौ हिंसे।

७४८। जविधिव्याः जधी सौ।

(क्रवि-धिच्यो: ६॥, क्र-धी १॥, स्रौ ७।)।

कणीति। अकखीत् (५६८) अतरवेदिती नुण्। चक्रणः। कण्विता। कख्यात्। §

<sup>\*</sup> भवारीत्, व-टौदि, (१८७) व दलस्य प्रतिप्रस्वात् (५१५) इस्। भविष्ट, व-टौतन्, सि:, भनेन वा इस्, (६२७) इसी वा दौर्धः, दौर्य-विकल्पपेचे भविष्ट, इसी विकल्पपेचे भवतः (६५८) से: किल्वात् न गुषः, (५६२) सिलीपः। वविष्य, व-विकल्पेपः (६९६) प्रतिप्रस्वात् (५५४) इस्। ववव ठौ-व, (५८४) इस्निपेषः। ठौ-सीष्ट विषयि वषीष्ट, भनेन वा इस्। इसीऽभावपेचे (६५८) कित्संका।

<sup>† (</sup>५४८) इनमीनाहिन्वानिविति गलं।

<sup>‡</sup> पङितु, पनीइयत्। पाषिनिः ७।३।५६।

<sup>§</sup> अप्ति-धिच्योरिकारातुवश्वात् विभक्ष्युत्पत्ते: पूर्वे तृष् अते अन्व धिन्व इत्येतयी: श्री परेक्क धिषादेशी स्वातानित्यये:। श्रक्षणीदित्यादी वकारस्य दत्त्यलेन भत्तत्वा-भावात् तिस्तान् परे (५०) न नस्यानुस्तारः।

(२४८) दन्भुन दभी।

देभतुः ददस्यतुः। 🌣

#### ७५०। श्रन्थ-ग्रन्थ-दन्भां धपि न-लोपो वा ෦

(यय गय दन्भां ६॥, विषि ७।, निलीप: १।, वा ।१।)।

देभिय ददिभिय।

(२४८) धिवि न प्रीती।

धिनोिि ।

(२५०) ग्रशु ङ न व्याप्ति-संहत्योः।

(५८०) स्थान्तादिति खेरान्। श्रानग्रे।

ं इति खादि-पाद:।

-

४र्थ पादः-तुदादिः ।

(२५१) तुदौ ज म व्यथे।

तुइति तुइते।

(२५२) सम्जी जगपाकी।

भृज्ञति। अभाचीत्। क्ष

## ७५१। सम्जो ऽरे गौ मर्जवा।

(सम्जः दा, चरं ७), सौ ७।, सर्भ।१।, वा ११)

<sup>ः</sup> देभनुरिति (५६६) वा कित्संज्ञायां, (५६०) नलोपे, (५०८) दभगडणात् खिलोप:, पकार एकारयः।

<sup>†</sup> अत्र थप् किहा इति कते, दिभि यथि इत्येतथोश्यित्वसयोः थप् विभन्नौ (५६८) मृखोपनियेघापत्तिः स्थात्। "यत्यियस्थिदिभासञ्जीनां लिटः किस्तं वैति व्याकरणानरम्" इति भट्टोजिदौषितः।

<sup>‡</sup> तुदतीत्यादि (७२८) प्रप्रत्ययः, तस्य डिस्तात् न गुणः। स्ट्याति (६६१) निः, श्रयोत् रस्य सः। श्रभावीत्, अस्मा-टौदि श्रनिम्लान् (५७४) हडिः, (२१३) स्रादेः स्विपः, (१५४) परः, (६०२) पस्य कः, (१११) सः सस्य मर्लं।

वभर्ज बस्रज, बस्रजी बसर्जी। \*

(२५३) मुच ली ज श प मीचे।

(७४१) नुण्रध इति नुण्। सुञ्चति। अमुचत्, असुक्त। व

(२५४)। जिलिपी जगप लेपने।

श्रलिपत्। श्रलिपत श्रलिप्त। \$

(२५५) षिची अगप उचगे।

निषिञ्चति। न्यषिचत्। न्यषिचतन्यिवता। निषिषेच। ई

(२५६) क्रती गप च्छिदि।

(৩३८) न्टत्कदितीम् वा। कर्त्तिष्यति कर्त्स्यति। (२५७) षूग्रचेपे।

विषुवति। व्यषावीत्। §

अ नास्ति रो यस्तात् सः भरम्तिन । अस्ति अर्ज ना स्थात् भरे थौ गुणसाधन-योग्वे इत्यर्थः । भरं इति कथनात् अभाजीहित्यत्र सिरूप गुणिनि परंऽपि तदुत्तरं टौरि-रूप-रस्य तियसानत्वात् न भर्मादेश । बभर्ज बस्त्र हित ठौ णप्, वा भर्जादेशः, (६४) सस्य दः, (४६) दस्य जः । बस्र्जे, ठौ ए (५६६) कित्त्वेऽपि (६६२) व्यां न विप्रक्तामिति जिनिशेषः। 'कित्त्वाभावपत्ते गुणसाधनयोग्यते सति भर्जादेशः। पाणिनिः ६।४।४०।

<sup>†</sup> अप्तुचत्, सुच-टीदि (५६५) लिटिलात् ङ:। अप्तुक इति आस्त्रिपेटे ङखाप्राप्ती सि:, औदिल्लाटिमीऽभावे (६५८) मे: किलात् न गुण:, ततः (५६२) मेलीप.।

<sup>‡</sup> लिप टीदि, (६१८) डः, चलिपत्। टीतन्, चात्मनेपदे तेनैव वा डः। पत्ते िधः (६५८) कित्संद्रा, (५६२) सेलीपः। निधिचति, नि-भिच-तिप् (०४१) तुष्, (५०२) घतं। टीदि, टीतन्, लिपवन् साध्यं, चम्व्यवधानेऽपि घतं। ठीषण् निधिषेच, (५०२) दिसक्तसापि घतः।

<sup>§</sup> विषुविति, वि-स्तिष् (५८८) छव्, (५०२) षत्नं। व्यषावीत् (५०३) वेस्टिति स्वे त्ति त्य ग्रहणात् प्रकात् (५५४) नित्यमिम्, (५०४) चनन्तलात् इद्धिः, प्रस्यपि घतं।

#### (२५८) ब्रध् म च्छेदे।

ष्टयति। अत्रथीत् अत्राचीत्। वत्रयः वत्रयतुः। अ

(२५८) ऋच्छ य गमनमोहकाठिन्धेषु।

७५२। ऋच्हो गुष्ठ्यां। (स्वः ६।, णुः ११, व्यां ०।) श्रानर्च्छ। १

(२६०) कृ भाविचेपे।

(६२८) ऋदिरणाविति इर्। किरति । चकरतः । करीता करिता । ध

# ७५३। प्रत्युपोपात् काः सुम् हिंसाच्छेदे।

(प्रति-उप-छपात् प्रा, कः इा, सम् ११ा, हिंसा-र्च्छन् ०)।

प्रत्युपाडिंसायां उपाच्छेटे किरतेः सुम् स्यात् । प्रतिस्किरति उपस्किरति । §

(२६१) तन्प म प्रीणने।

<sup>•</sup> त्रय-तिप् (६६१) ति:, इयति । टीटि (५०३) किटच्चात वा इस् । पचे (५०४) चिन्स्वात् वित्रिः, (१५४) षङ्, निमित्तस्थापिये नैमितिकस्थाप्यपाय इति न्यायेन चकारनिमित्तकस्य गस्य पुनर्दैन्यले (२१३) स्वाटे: स-चीप:; (६०२) षस्य कः, (१११) कवर्गत् पलं। बत्रयतः (६६२) निनिवेधः।

<sup>†</sup> ऋष्को षः स्थान क्यां। ऋष्क पाती लंबृङीऽभावान, भनुसादिविभक्तौ प किस्तात् गुणावाप्तौ विधिरयं सामान्यतीविषयः। तेन पानकं पानकंतुरित्यादि, (५८०) स्टेःस्टाने पान्। पाणिनि: ७।४।११।

<sup>‡</sup> चकरतः (६२६) गुणः। करीताकरिता (५५४) इस्, (६२०) इसी वादीर्घः। § प्रतिच उपच प्रवृपं, प्रवृपच उपच प्रवृपोयं तक्षात्। हिंसाच केदच हिंसा-च्छेदं तक्षित्। प्रतिक्तिरित हिनक्षि, उपक्षिगित हिनसि किनति वाइव्ययः। (५०२) परिनिचित्रे सुसेव्युक्तेः चव प्रतिपृक्षेक्ष न वलस्। पाणिनिः ६।१।१४०,१४१।

### ७५४। त्रन्पां न-लुक् वा श-णौ।

(तृन्पां ६॥, न।१।, लुक्।१।, वा।१।, ग्र-णो ७।)।

ह्यन्प तुन्प ह्यन्फ तुन्फ रिन्फ गुन्फ ह्या उन्भ श्रन्भां नकारस्य तुक्वास्यात् श्रेणीच। ह्याति हस्पति।

(२६२) चुती य प हिंसे।

चित्ति चत्रस्थित । १ ।

(२६३) प्रच्छी य ज्ञीप्से।

पृच्छति। यप्राचीत्। पप्रच्छ पप्रच्छतुः। 🕸

(२६४) सजी य विसर्गे।

श्रसाचीत्। ससर्जिथ सस्रष्ट। §

(२६५) ट् मस्जी ग स्नाने।

मज्जिति। श्रमाङचीत्। श

(२६६) सृयीयसृपि।.

अस्पाचीत् अस्पाचीत् अस्पचत्।

<sup>\*</sup> बह्वचनं गणार्थम् । गणाया वत्तो नत्रमदाकः स्वयं स्प्रष्टोक्ततः । णौ इति गण-साधनयोग्यप्रत्यये इत्ययेः । यथा, तर्पयति तृन्पयतीत्यादि । तृपतीति श्रे परे न-लुक् । विकत्यपचि (५०) नस्यानुस्वारः, (५२) चनुस्वारस्य मः । वार्षिकम्, नाव छन्पः ।

<sup>† (</sup>७३६) वा इस्।

<sup>‡</sup> प्रच्छतीति (६६१) जि:। अप्राचीदिति (१५४) षङ्, (६०२) षस्र कः, (५०४) अर्थनम्लात् बडिः, (१११) पलम्। पप्रच्छतुरित्यत्र (६६२) न जि:।

<sup>\$</sup> स्टन-टीदि, चि:, (५६१) धिस्थाने देंम, (६०४) नित्यं स्टस्थाने रः. (५०४) भकारस्य विज्ञः, (१५४) पङ्, (६०२) पस्य कः, (१११) पत्नं। टी-थप्, (५८८) वा ६म्। ६म्विक उपपचे पङ्, (४०) थस्र ठः।

<sup>¶</sup> मस्ज-तिष् (६४) सस्याने द, (४६) दस्याने ज। टौदि, (७४१) तुण्, (२१३) सखोप:, (५०) नस्यानुस्वार:, (५१) अनुस्वारस ङ:।

<sup>∥</sup> स्प्रय-टौदि, (६०३) सि:, (६०४) चटरः, सतः बिडिः, षङ्, सस्य काः, पत्वं। र-विकल्पपचे चटकारस्य बिडिः। सि-विकल्पपचे (६०५) सक्।

(२६७) विच्छ गगती।

विच्छायति विच्छति। अविच्छायीत् अविच्छीत्। \*

(२६८) सभी गस्ति।

यमाचीत् यमाचीत् यमचत्। 🕆

(२६८) इषु भ वाच्छे।

इच्छतिँ। (६०६) वेमसहेतीम् वा, एषिता एष्टा। 🕆

(२७०) कुट गिकौटिखे।

### ७५५। कुटां गुत्री जिगति।

(कटां ६॥, णु-बी १॥, ज्विति ७)।

कुटारे मुंबिर्वे स्थात् ञिति णिति च, नान्यत्र। श्रक्तटीत्। चुकोट । इ

(२७१) व्यचिम व्याजे।

#### विचति। विव्याच, विविचतुः। §

<sup>\*</sup> विच्छ-तिप् (६३०) चायः, (६३१) धातुमंत्रा, ततः भृादिलात् तिप्मपौ। चाय-विकन्पपचि तुदादिलात् मः। टीदि खप्टं।

<sup>†</sup> सभाटीदि, स्पृणवत्। ६पःति (५६०) दक्क-आदेश: ।

<sup>्</sup>रेज च प च ज्णो, तो इतो यस्य म ज्णित् तक्षान्। जित्-िषतोः परथीः गुषवृद्धाः सिंडौ पुनर्विधानं नियमार्थं, तेन क्टादीनां जित्षिकामस्य गुषवृद्धीन सः इति नियमः। जित्-िषतो मृ गुणभामस्यां गुषः, वृद्धिसामस्यां वृद्धित्वयः। धारप्त, भक्टीत् कुटियिति कुटनिम्बादी न गुणः। नू मि स्वने इत्यादीनां अनुवीदित्यादी न गुणो नच वृद्धिः, भगुणलाद्व च। एवं तृविधातीत्यादि। कुटादिभ कुट पुट कुट पुट कुट लुड कड लुट कड कुड पुट पुट कुट चुट क्ट लुड कड लुट कड कुड पुट पुट तुड युड स्थुड सुड कुड सुद पुन पुन पुन पुन कुट (पुन)। जिस्स निल इति हो विकल्पन कुटादिमध्यगती भवत इति प्राचीनाः। पाषिनः ११२।१।

<sup>§</sup> विचति (६६१) जि:।

### ७५६। व्यचो जि-रञ्णिदसि।

(ब्यच: ६।, जि: १।, श्रज्शिदिस ०।)।

विचिता। \*

(२७२) चुट गिच्छेरे।

च्याति चुटति । 🕆

(२७३) स्पुर शिस्पूत्तीं।

निष्प्रति निस्पुरति । 🕸

एवं (२७४) म्मु'ल ग्रि स्मृत्ति-चलनयोः।

(२७५) न शि स्तवने।

ऋनुवीत्। नुनाव। §

(२७६) मुङ ग मृतौ।

७५७। स्ड ष्टीको मं। (सङ: ५१, टीका अ, मंश)।

व्यां क्या-मत्ये च मुङो मंस्यात्। ११ (६२०) ऋदिः ग्रयक्दीगे।

अच णाव ञ्णो, तो इती यस्य म जित, जिध व्यम् ज णिटम्, ने ञ्योगे तिस्मिन्। व्यची जि:स्यान् ने तृ जिति णिति भिस्च । यथा विविधाति विच्यति विव्याच विविवतिरित्यादि । जिति णिति असि तृ व्याचर्यात व्याचक. उक्ष्याः (१०३२)। (पाणिनिसते तृ किति डिति परे एय जि: नान्यत्र)।

<sup>† (</sup>५.८४) क्रामक्तर्भति ग्यन् वा।

<sup>‡ (</sup>६२५) विस्तर्भेति ना घलं।

<sup>§</sup> भनुवीदिति कुटादिलान गुणवृङ्गी निषेधे, (५८८) पृथ्वीरिलुव्।

<sup>¶</sup> टीच द्वीच अब टोब्सं तस्मिन् विषयमप्तमी। सडी डिल्क्डिय स्वांत्कास् अप्रत्येष चित्रयेस स्थादिति नियमः, अभवत् परसीपदमेव। आस्मनेपदिनिक्ति परसीपदिनां कविदिति स्थायंन अदाविद्यदस्यदि स्थादिशतं केवित्। पार्शिनः १।१६९।

स्वियते, अस्त, स्वीष्टः एषु किं, ममार, मरिष्यति। अ

(२७७) चो विजी ङ ग्राभी-कामी।

৩ খু **८। विजे र्णु नेंसि।** (विजे: ६।, णः १।, न।१।, ছদি ৩।)। विजे र्णु ने स्थादिमि। স্পবিজিष्ट। †

इति तुदादि-पाद:।

१म चतुर्गणाध्यायः।

# ७म:। २य-चतुर्गणाध्याय:।

१म पादः--क्घादिः।

(२७८) रुधिरी ध जि जावरणे।

क्षांडि । \*

७५८ | नणो ने ऽणो | (नणः ६१, न ११।, र ०१, घणो ०) । नणो नकारः स्थादणो रे। कसः कसन्ति । नं

<sup>#</sup> सियते (५८८) इस्थाने इय । अस्त स्वीष्ट, सभयत्र (६५८) कित्संजा।

<sup>†</sup> विज: किदिस् इति कते सिद्धाविष स्प्रष्टार्थभेवं कृतं। पाणिनि: १।२।२।

कथ-ति (०३८) प्रण्, णकाश्चित् (१०) प्रन्याच: परे, प्रदत्तनकार-स्थिति: ;
 (१००) गलं, (५०५) तस्याने घ:, (६४) घस द:।

<sup>ं</sup> घरं नयां उत्तम्भवात् भव र इति स्प्रष्टार्थं। एवं परस्वेऽिष् । अदन्त-न-स्थाने नृस्यादित्वर्थः । कल्प इत्यादी, चयी यवैकवर्गीया मध्यमन्तव लुखते इति प्रमाणात् अध्यक्षर्य-प्रवास्य लोपः । तवर्गयुकःनकारस्य गलाभावः । पाणिनिः ६।४।१११।

अक्षत्, अक्षः अक्षत् । अक्षत् अरीत्नीत् । \*

(२७८) छुदु च धिर् देवने।

(७३८) छहिषाति छत्साति।

एवं (२८०) हृदु ज धिनोंदरे। (२८१) हृह ध हिंसे।

७६० | तह रूण् पिद्धस् । (तृहः ६।, दण् ११।, पितः हैम् रे ०।)।
हही नण रूण् स्थात् पिति हमे रे। हणेढ़ि हण्डः तृंहन्ति ।
अतहीत् अहचत् । पे

(२८२) हिसि ध कि हिंसे।

9ई१। नगो न लोप्य:। (नगः प्रा. न ।रा, बीपाः रा)।

हिनस्ति। 🏗

(২८३) श्रन्जू ध जि खितागित-स्रचणे। ' श्रनिता। ‡

<sup>\*</sup> प्रकणदिति व्या दिप्, (६७२) देर्नें।पः, (६४) घस्य त (द वा) । व्याः निप्, (६८०) घस्य रंभे, रस्य विसर्गः ; रंभिविक्नर्णः (६४) घस्य त् । व्याःदि, (५६५) इरिस्तात् ङ:। डिवक्नर्ले प्रनिम्लान् (५७४) वृद्धिः, प्ररोक्षीत् ।

<sup>†</sup> पिश्वाभी हस्वाभी रथेति तिस्ति । इणी णिलात् नणः भन्यावः परे स्थितिः । तृह-तिप्, (७३८) नण्, तृन्ह, भनेन इण्, तृनंह इति स्थिते, (१०५) इस्य ढः, (५०५) तस्य घः, (४०५) सस्य ढः, (७०) ढलीपः, (१००) णलं, तृणिढि। तृह-तस् वर्ण्डः, (७५८) नणी नकारे (४०) नस्य णकारः, अस्यत् पूर्ववत्। भनि तृंहन्ति, (५०) नस्यानुस्तारः । टीदि, (५०३) कदित्तात् इम् भतर्भीत्, इमी विकल्पपचे (६०५) भनिम्लात् सक्, (१०५) इस्य ढः, (६०१) दस्य कः, (१११) घलं। ढहधातीः सुदादिगणीयस्थेव कदित्तिकातन्ताः । पाणिनः ७।३।८२।

<sup>‡</sup> नयो नः पूरो नकारी कीष्यः स्थात् । क्रिस-तिप्, भातप्वेदिती नृण् हिन्स्, ततः क्षादिस्तात् नण् हिनन्स इत्यस्य भानन नणः परी न कीष्यः क्षिनित्ति । एवं भ्रम्भ भानति, सन्ज सनिति । पाणिनि ६।४।२३।

## ७६२। अनुज: से रिस्पी।

(अन्त्र: ५।, सं: ६।, इस् ।१।, घे छ।)।

अन्जः परस्य सेरिम् स्थात् पे। आञ्जीत्, आनञ्ज। \*

(२८४) जि इसी ङ घ दीप्ती।

द्रसाञ्चने । 🕆

**इति क्घादि-पादः।** 

२य पादः - तनादिः।

(२८५) तनु ज द विस्तृती।

तनोति तनुतः तन्वन्ति, तन्वः तनुवः तन्तः तनुमः । \*

## ७६३। से लुक्त त- घासो स्तन्थ्यो ऽक्कार्या।

(से: ६, लुक्।१), त-याधी: ७॥, तन्थः ५॥, ऋकुः ५।, वा ।१।)।

कवृर्जात् तनादेः सेर्जुक् स्यादा तःयासोः परयोः । अतत अतनिष्ट, अतयाः अतनिष्ठाः । १

<sup>\*</sup> भन्तधातीकदिस्त्विदिमत्वे नियार्थे विधानं। सेरन्यत, अज्ञिता अङ्का, भक्षियति अङ्स्यति इत्यादि। आनश्चेति (५८०) स्थान्तादिति स्वरान्। पाणिनिः शराश्रा

<sup>† (</sup>५८२) व्विजादीत्याम्, (५८३) क्रप्रयोगः।

क्र तनोति (६८८) ग्रुप्, (५४२) ग्रुप खकारस्य गुण । तल्वकीलादौ (३५०) उस्थानेव। तन्व द्रत्यादौ (६२२) खकारलोघो वा।

<sup>†</sup> तय थाम् च ती तयी:। थाम्माइचर्यात् त इति भावानेप्रहसीतः। भवाधा परकीपदस्य तांतंत एष अतानिष्टां अतानिष्टं अतानिष्ट एम्बपि प्रसत्ती:। तथी-रयुक्ते चित्राविष थास्यदणं स्रष्टार्थः। भातत भत्तथाः इति, भ्रानेन संसुंकि, सुक्

#### (२८६) षतु ज द दाने।

सनोति । असात असनिष्ट, असावाः असनिष्ठाः । सायात् सन्यात् । \*

(२८७) चणु ञ द वर्षे।

श्रचणीत्। 🕆

(२८८) चिए ज द हिंसायां।

# ७६४। नोष्युङों णुर्का लृतः।

(न ।१।, उपि ७।, चङ: ६।, गु: १।, वा ।१।, तु ।१।, ऋत: ६।) ।

चिणोति। इ

(२८८) ऋण ज द गती।

ऋणोति अणीति । क्ष

(२८०) डु क़ ञ द करणे।

करोति। \$

७६५ । कुरुब्लोपो व्यये । (कः प्रा, खब्-लोपः शा, व्यथे ०)।

कुर्व्य: कुर्माः, कुर्यात् । चक्तव । §

करणान् (८३) त्यक्षीपं त्यक्तवणमिति न्यायेन गृणि-सौ परे कार्यानिषेधे, पगृणिनीः तथामीः परत्योः (६०६) ञम्लीपः। प्रकः किं, श्रक्तत श्रक्तयाः उभयत्र (६५८) सीः कित्तान् गृणाभावे, (५६२) नियं सिलीपः। पाणिनिः २१४१०८।

श्रमातित्यादि अनिन सेर्लुकि, (६५५) खनसर्गति ङा, पर्चे (५५४) सेरिस्।
 सायात सन्यादिति विकर्णेन ङा।

<sup>†</sup> भवणीदिति (५०६) चणवर्जनात् न इडि:।

<sup>‡</sup> उपि चड़ी गुर्नस्थात्, उड़ च्यकारस्य तुवा। विगति, (६८८) उप् तिस्मिन् परे विग्र उड़ इकारस्य न गुणः, तिपि परे उप चकारस्य (५४२) गुणः। इट्योति इप्योति इत्यत्र उड़ च्यकारस्य ना गुणनिष्धः, एवं द्यगीति तर्णे।ति इत्यादि। उड़: किं, क्र-तिपृकरोति, इत्र चन्य-च्यकारस्य नित्यं गुणः। पाणिनौ मतभेदः।

<sup>§</sup> बचमच यच ब्स्यंतिधान् । क्रजः परस्य उपी जीपः स्थात् वे मे ये चपरे। कुर्म्यः इत्यादि व म य परेषु उपी खीपः, (२२०) व्यंनच्तयीका इत्यव कुर्वजनात् न

# ७६६। सम्परेः सुमुपात्तु भूषा-सङ्घ-प्रति-यत्न-विक्तताध्याद्वारे।

(सम्-परे: ४।, सम् ।१।, जपान् ४।, तु ।१।, भूषा-सङ्ग-प्रतियव-विक्रताध्याद्वारे ०)। श्राभ्यां क्षञः सुम् स्थात् उपात्तु भूषादावर्धे । संस्करोति, सम-स्क्रषातां, सञ्चस्करिय, सञ्चस्करिव, संस्क्रियात्, संस्क्रषीष्ट । परिष्करोति, पर्यय्कार्षीत् पर्यस्कार्षीत्, उपस्करोति ।%

# ७६७। इस्ते पाणौ प्राध्वं जौविकोपनिषदो व्यख क्रञि स-स्तिरी मध्ये पदे निवचने मनस्यर-स्यपाजेऽन्ताजे साचादादेस्तु वा । '

(इस्ते—उपनिषद: ६।, व्यस्य ६।, क्रजि ७।, स: १।, तिरम्—साचादादे: ६।, तु ।१।, वा ।१।) ।

#### इस्तेकरोति, तिरस्त्ररोति करोति-तिरः।

ं इति तनादि पादः।

दीर्घ: । करोमीत्यत्र, भीपस्वरादेणयोस्तु स्वरादेश-विधि वैसीति न्यायेन गुणएव । ठीवचक्कव (५८५) नेससुसिति निर्ध्धात् न इ.म् । पाणिनिः ६।४।१०८,१०८ ।

<sup>\*</sup> सस्-पिश्यां क्रजः सम् स्यात्, सम जकार्यत् चिद्रायः, मकार्यत् (१०) क्रषाती-रादौ सकारस्थितः। प्रधानिभिषानेऽपि पाणिनिमतेकवाक्यत्वात् सृषासद्वयोरिवः; "सम्पूर्वस्य कांच्ह्रपणेऽपि सुट्" इति भिद्यान्तकोमदौ । ज्यान् भृषादावर्षे । स्था प्रभादार्थे । सद ममूदः । प्रतियती गृणान्तराषानं । विक्रतं स्वद्यस्थान्यस्थाभावः । ष्याद्याद्यो वाक्यस्य प्रधुताकाङ्कित-श्रस्दोपादानं । समस्तृषातां टी-प्रातां, (०४०) स्तृवर्जनात् न इम् । (६५८) कित्मंश्रायां न गृणः । सघन्तरिय ठी-प्रप्, (६१६) स्तृवर्जनात् द्रम । सद्यक्तित् ठी-व, (५८४) असुनिति कथनादिम् । संस्त्रियादिति टी-यात् (६१४) स्तृष्तु व्याभेविति जक्तः गृणनियेषः । (६२०) स्रस्याने दि: । सस्तृषीष्ट (६५८) कित्मंत्रायां न गृणः । परिकारीति (५०२) षत्वं । टी-दि (६१३) विकत्यने पत्वं । पाणिनिः ६।१।१३०,१३६८।

<sup>+</sup> इसे इत्यादे: उपनिषदनस्य भव्ययस्य क्रज्ञधातौ परपदे नित्धं समासः स्थात्

#### ३य पादः -- क्र्यादिः ।

----

(२८१) ड्क्री अ ग द्रव्यविपर्थये।

क्रीणाति। (७०१) यादगोरिति, क्रीणन्ति।

(२८२) स्तु ज ग न उडुती।

७६८। खु खान्भ खुन्भ सन्भ स्तृन्भथः अग्रे हो रो। (खु-सुन्भथः अग्रे वा रे वा रे

एभ्यो चेऽर्धे युः या च स्यात् रे परे। %.

खुनीति खुनाति, विकामीति (६२५) विकामीति षः—विकामाति । एवं विक्षुमीति विक्षुमाति, विष्टमीति विष्टमाति, व्यष्टमीत्, वितष्टमाति, व्यष्टमीत्, वितष्टमा । सुमीति सुमाति । पं

(२८३) मी ज ग वधे।

#### (७४५) मिर्म्योरिति ङा, यमासीत् यत्रास्त ।

तिर:प्रश्वतिम् वा। एष समाम: एकपदीमावमावं नतु बन्दरिक्तमः। समाम-करणच (३६६) पूर्व्वनिपात-नियमार्थे क्वाची यवधंच। इसे पाणौ स्वीकारे। प्राध्वं वस्त्रनातुकूल्ये। जीविकीएनियदौ उपमायां। तिरोऽन्नधाने। मध्ये पदे निवचने मम्मि उरित प्रच चनुपर्शेष एव, उपश्चेषि तु उरित क्वाच हसं शेते, पदे क्वा मम्मकं शेते था, इत्यादौ न समागः। उपाजि अन्वजि वलाधानार्थे। साचादादेरसूत-तक्कावं। पादिना—भिष्या अञ्चा नमम् याविस् प्रादुस् विस्त् वशे इत्यादि। पाणिनिः १।४।०१—०६, वार्त्तिकच।

अस्तिम स्तुन्भ सन्भ सनुभ ग्रुरीधने इति चलारः सीत्रा घातवः। पूर्वः घातपाठे ये न दृश्यने पदिविशेषसाधनार्थं मृते तुदृश्यने ते सीत्राः। स्तुत्रादयः पद्यं स्वादिगणीयाः क्रादिगणीयायः। पाणिनि शाशान्तः।

<sup>†</sup> विस्तरभूति स् चे क्षा-प्रत्ययस्य यहणात् विस्तरभूतिविध्य न पत्वं। विष्टर्भूति विष्टभूति उभयत्र (५०२) गीक इति पत्वं। व्यष्टभदित्यादि (५६५) डी वा, उभयत्र प्रस्यपीति पत्वं। वितष्टभंति खिव्यवधानेऽपि षत्वं।

(२८४) पूज गि ग्रोधने।

# ७६८। पादे: खो ने व्यादेस्त वा। (प्-त्राहे: हा, ख: ११, भे ७।, बी-त्राहे: हा, तु।११, वा।११)।

ष्वादीनां स्वः स्थात् ना-त्वे परे व्यादेशुवा। पुनाति।

(२८५) कु ज गि हिंसे।

अकरीष्ट अंकरिष्ट अकीर्छ। करिषीष्ट कीर्पीष्ट प

(२८६) धूज गिकम्पे।

धुनाति । अधावीत् अधीषीत् ।

(२८७) ग्रह ज गादाने।

ग्रह्माति ।

# ७७०। इसान्तानो हो।

(इसात् प्रा, ना ।श, श्रानः १।, ही ७।)।

इसात परी ना आनः स्थात् हो परे । रुहाण । अग्रहीत्। जग्राह जग्रहतु: जग्रहिय । 🖇

<sup>\*</sup> ने न्नाप्रत्यये पर्वक्षये:। पादिलु—पूलू भूका सन्वश्रस्य साप वट धन भ म गज ऋ च्यारी ली ल्यी (सी) क्री ली (ची) भी दित । च्या गि अपराया-इंटर इंटर इंटर चित्र स्थापित स भित्यस्य पादिभालन् -- जीन. जीनवानित्यव लादिलान् (१०५२) तस्याने न । पाविनिः 013,001

<sup>†</sup> भक्तरीष्टेत्यादि (७४०) इम, (६२०) वा दर्मादीर्घः, इमो विकल्पपचे (६५८) कित्मज्ञायां, (६२८) ऋकारस्य ९र्. (२२८) दीर्घः । एवं डो-मीट वा ९म्, पर्वे चहुद्र, तस्य दोर्घः।

<sup>🗼 (</sup>५०३) वसूदिति वा इम्, पचे (५०४) चनिम्लान् बिहः। यस्नाति (६६१) **जिः, रस्था**ने ऋ ।

<sup>§</sup> ग्रह-गी-हि (६६१) जि:, घनेन नास्थाने चान, (५४०) चकारास् हेर्लीप:। एवं बधान पुषाय सुवाय इत्यादि । इसात् कि, जानीहि । भग्नहीदिति (५०६) इन्तितात् न त्रि.। जग्रस्तुः (६६१) जिः। पाणिनिः ३।१।५३।

#### ७७१। यहिरमी घीँऽखां।

(गर्ह: प्रा, दम: ६।, घं: १।, पद्या ७)।

यहै: परस्य इमी घै: स्थात्, न तु खां। यहीता।

(२८८) मृ ज गि हिंसे।

# ७७२। शृपूद्रां खो वा किर्यां।

(गृप्-द्रां६⊪, स्वः १!, वा।१।, कित-न्धां ७।)।

एवां स्वः स्यात् किति व्यां वा। भयतुः मभरतुः।वि एवं (२८८,३००) जिप् गिपालने, ह गिविदारे।

(३०१) ज्या गि जरायां।

जिनाति, जिज्यो । 🕸

(३०२) ब्री गि वृत्यां।

विणाति बीणाति ।

(३०३) जा ग बीर्घ।

जानाति ।

(३०४) श्रम्य ग मोचे।

यथाति। येथतु: प्रयत्यतु:, येथिय प्रयत्थिय ।ः

<sup>🜞</sup> एवं ग्रहीतुं ग्रहीव्यति इत्यादि । ठ्यान्तु नग्रहिष जग्रहिव । पाणिनि: ७१२३०)

<sup>†</sup> ग्रमरतुर्गित इस्लाभावपचे (६२६) गुण: । एवं पत्रतुः पपग्तुः, दद्रतुः ददरतुः । पाणिनि. ७।४।१२ ।

<sup>‡</sup> जिनासीत्यादि (६६१) जि: या स्थाने इ:। निषातीत्यादि (७६८) वा इस्तः। जानातीति (५८०) जा-मादेशः। यथातीति (५६०) न-सीपः। यथप्रित्यादि (५६६) कित्पत्ते न-सीपः, (५०८) खिलीमादियः। यप् (०५०) यस्थस्येति न सीपः पर्व खिलीपादि ।

एवं (३०५) ग्रन्थ ग हर्भे ।

(३०६) कुष ग निष्कोषे।

(५०३) वेमूदितीम वा। निरकोषीत् निरकुचत्।

(३०७) श्रम म भोजने।

अभिता अष्टा 🕆

(३०८) हजगवरणे।

अवरीष्ट अवरिष्ट अवत । ववृषे । वरिषीष्ट वृषीष्ट । ह

दति क्यादि-पादः।

8र्थ पाद:—चुरादिः ।

**→◆** 

(३०८) चुर कि स्तेये।

७७३। चुम्भे जिवी। (चुम्थे: ४॥, जि: १।, वा ।१।)।

चुरादे जिं: स्वाहा स्वार्धे। चीरयति चीरयते। अनृचुरत्। चीरयामास। चीर्थात्। पत्ते चीरतीत्वादि। \*

निर्कृवदिति चनिम्पचे (६०५) सका, (६०२) षस्य कः, (१११) पत्थं।

<sup>+</sup> अभिता अष्टा (६०६) वेससहतीम वा, (१५४) पङ्, (४०) तस्थाने ट।

<sup>‡</sup> भवरीष्टेत्यादि (७४०) वा इ.म. (६२०) इ.मी वा दीर्घः, भविम्परे (६५८) है: कित्त्वं, (५६२) मिलीपः । ठी से वहषे, (५८४) नेमसुमिति इ.म्-निषेधः । वरि-पीष्टत्यादि (७४०) इ.म. पचे (६५८) कित्संज्ञायां न गुणः।

वा श्रन्थ व्यवस्थावाचित्वात् चुरादिस्थो जिर्नित्यः, चुरायन्तर्गणात् (किकारातु-वस्थात्) युनादिजिञ्चा स्थादित्वर्थः । पचि गणान्तरित्यमाभावात् सामान्यगणो स्वादि-रित्यर्थः । युनु चुरधातीः कि कारातुवस्थकरणं पचि चीरतीत्युदाहरणच तत् कदाचित् चुरादिजेरिनियलज्ञापनार्थं । अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः खार्थे भवनीति न्यायात् चुरादेः

#### (३१०) कृत का संग्रव्हे।

७७४। कीर्त्त: कत:। (कीर्त्त: ११) कृत: ६))।

कृतः कीर्त्तः स्थात् जी। कीर्त्तयति। क्ष

(३११) गण त क सङ्घाने।

### ७७५। इसाद्वीपोऽभित्यद्योः। .

(इसात् ५), लीप: १), षशिति ७), ऋत्-यी: ६॥)।

इसात् परयोः अकार-यकार्योर्लोपः स्थादिशिति । गणयति । पं

### ७७६। वेङ् गणकयः खेर्जप्रिङः।

(वा ।१।, र्देङ् ।१।, गण-कय: ६।, खे: ६।, जाङि ७।) ।

स्वार्थे जि: । चुरादिस्यो जे जिंच्छेऽपि उभयपदं न स्यात्, अव्यया स्वास जंक् वितर्के इत्यादे जीनुवसी व्यथः स्थात्, तेन ङितयुरादि रास्त्रेनपदं, जितयुरादि क्षस्यपदं, जभय-भिन्नचुरादेः परस्मैपदिभिति । यनु अव उभयपदोदाहरणं तत् कहाचिदासमेनपदिसिहायी चोरयतीत्वादि चुर-जि:, (५४२) गुण:, चीरि इति (६३१) घाउँ संज्ञायां, तिष् प्रष् गुणा: । चीरि-टोदि, (५४०) अभागमः, (६१३) जिथीत्वङ्, (५५०) चीरि इत्युख्य डिले, (५६७) खेरायवः परभागस्य रि इत्यस्य लीप:, (५५०) खेः चीनारस्य उकारे, (६३८) आङ्गुङः ख इति मूलधातीरांकारस्य इत्ते, (६३८) खेः चीनारस्य उकारे, (६३८) जेलींपः, अचूचुरदिति । ठी-णप्, (५०२,५०३) आम, अस्-प्रथीगय। ढी-थात्, जेलींपे, त्यलीपे त्यलचणिति त्यायात् गुणस्थिती चीर्यादिति । पाणिनः इ।११६॥ तनाते आध्यीयगणात् विभाषा ।

- मर्क्वच कीर्तादेशे, गणपाठे कृतवातुकारणं कराचित् कीर्तादेशी न स्थादिति
   ज्ञापनार्थे, तेन अचीक्रतदिव्यपि। पाणिनिः ७१।१०१,८१८।७८।
- † भत् च यथ तौ तथी: । प्रकरणवलात् धातु संज्ञकसीव भकार-यकारयो लें।पः, तेन इसतौत्यादौ न स्थात् । इसात् किं, बीभूयिता । अधिति किं, ईर्ष्यति । भरें इति नीक्वा भिर्मतीति कथनं, मन्य बन्धे इति धातीयं इलुकि स्वीयात् मंमन्यातः इत्याय यकार लोपायंम् । गणयतीति जी भनेन भकारलीपे, लीपीऽप्यादेश उच्यते इति माथेन स्थानिवस्वात् न छिंडः, एवं कुण त् काभाष-मन्तयोरित्यादीनां कुण- यतीत्यादीन गुणः । पाणिनिः ६।४,४८,४८।

गण-कथयोः खेरीङ्स्यात् वा चम्रङः। अजीगणत् प्रजगणत्, (६३८) अग्लोपिलान इ:। अ

(३१२) कथ त्क वाक्यप्रबन्धे ।

अचीकायत् यचकायत् । अ

इति चुगदि-पाद: ।

२य-चतुर्गणाभ्याय: ।

### ८म:। ३य-चतुर्मणाध्याय:।

-CKD-ACKS-

#### .१म पाद:--- त्रान्तः ।

### ७७७। जि: प्रेरणे। (ज: ११, प्रेर्ण ०)।

#### धो र्जि: स्यात् प्रेरगेऽर्थे। \*

- \* ईड: डानुबस्थात् भन्येवर्णस्थाने भवति । भन्नीगणदिश्यादि गण जि: पूलेभ्वेण भन्नारक्षीपे गणियाती: टी-दि, (६१३) भङ्, ततः दिलादि, अनेन खे: स्थाने ईडः, ततो (६४१) जे लेंगिः । ईडो विकल्पपचे अजगणदिति । (६३८) खे: सन्वरिति स्वे मन्तिपि वर्जनात् खे: स्थाने न इ:। एवं अचीक्षयत् अवक्षयदिशादि । पाणिनिः ७।४।८०। अव सूबे गणधातुरेव पठितः नतु कथयातुः।
- ♣ ल्यंतित् क्षियतामित्यादि कियामु नियोजनं प्रेरणं। यथा ध्रत्यं कर्मं कारय-तीत्यादि। षचितने तूपचारः। यथा परित्रमः चुधां वर्ज्ञयतीत्यादि। धीरिति व्याख्यानं सर्व्यप्रकारधानुपातार्थं, तेन भवनं प्रेरयित भावयित, कामयमानं प्रेरयित कामयित, चिकित्यन्तं प्रेरयित चिकित्ययित, चीरयन्तं प्रेरयित चीरयित, चिकी-र्धन्तं प्रेरयित चिकीप्येति, चिकीयमाणं प्रेरयित चिकीययित, चरीकुव्वनं प्रेरयित चरीकारयित, प्रवकाय्यनं प्रेरयित पुचकाय्यतीत्यादि। प्ररणार्थकीः परोऽपि जिः, यथा पिता पुवेष शिष्यं वदं पाठयतीत्यादि, श्रत्र पुतः पाठयतेरेव कर्तान् न्य पठतेः, तेन (२०४) पुचस्य कर्मालं न स्थान्। जे जिंचात् च्यान्यातीरभयपद्माकिः। पाषितिः स्थारहः।

कुर्बन्तं प्रेरयित कारयित । अचीकरत्। \*

प्रयमासत् अडुटीकत्। अश्यवत् अशिष्ययत्।
व्यतस्त्रभत्,पर्यसीसिवत्,व्यसीसहत्। (५७२) साङ्खान षः। ।।

प्रवीचकासत् अचचकासत्। श्रीन्दिद्त् श्रीकिजत् श्राडिडहत्

श्राचिंचत्। अररभत् श्रलकभत्। श्रजीहयत्, (७४८)

श्रनङीत्युक्ते ने घिः। यदिध्ननत् श्रध्वनयीत्, ऐत्तिलुत् ऐतयीत् श्राहिंदत् श्राहिंयीत्, श्रीननत् श्रीनयीत्। ।।

<sup>\*</sup> कारयभीत्यादि, क्र. जि. (४००) श्रन्थेची इति:, कीरिइति (६३१) धान्मंत्रा, ततिनिप्त्रपादि । कर्लनं प्रैरिस्त् श्रचोकारत्, (४३०) प्रागच्कार्थाद्दचि दिखित म्वात् (८१६) श्रतप्र जी दिले विधित बच्चमाणिनथमेन, क्रड इति धानुमंत्रायां, टीकि, (४५०) श्रमागमः. (६१३) जियीत्यङ्, (४५०) क्रइ इत्यस्य दिले, (४६४) खेरायद्र इति खेरिकारस्य लीपे, (४५०) स्वकारस्य श्रकारि ककारस्य च चकारे, ततः (४००) इति:, श्रचकारि इति स्थिते, (६३०) श्राकारस्य इत्ते, (६३१) सल्चे, (६४०) खेरकारस्य दकारे, पुनः (६३८) लघुले दीधें, (६४१) जे लीपः। एवं सर्वत्र साधनप्रकारः।

<sup>+</sup> प्रामतं पेरिरत् प्रयामिटिया (६३८) प्रामवर्जनात् न इन्द्रः । देविकानंनं प्रेरिरत् प्रदृद्धौकिदियव (६३८) स्टिइर्जगात् न इन्द्रः । ययन्त प्रेरिरत् प्रयामविद्याव विज्ञः, (५३०) पागच्कार्यादिति नियमात् पादौ दिले, (६६१) विजिति वाप्रव्यव्यवस्थ्या सिर्मुलस्य च जिः द्रयुक्त-वस्थानं उः, तती बद्धादिकं । जि विकल्प पर्वे प्रशिव्यव्यविद्याः विष्टममानं पेरिरत् व्यवसम्भत्, परिधीव्यन्तं पेरिरत् पर्यमीभिनवत्, विषद्यमानं पेरिरत् व्यक्षीभद्यत्, एषु (५०२) साडलात् न षः । पर्यादिनिभित्तवं सिंद वलं न स्थात्, स्विनिभित्तकन् सूल्यातीः पत्रं (१११) किलादियनेन स्थादेविति वीपतिदत्तः ।

<sup>‡</sup> चकाभतं प्रैरिरत् यचीचकामत् यचककामत्, चिटित्वात् (६२८) उङी न इस्तः, भनेकाचलात् (६२८) या सन्वद्वायः। उन्द घी क्षंदे, उज गार्गवे, भ्रदड भभियोगे, पर्यं ज् पूर्ज—रित चतुर्णां धात्नां — उन्दन्तं, उजन्तं, भ्रद्डन्तं, भर्मनन्त्र प्रेरिरिद्ति वाक्ये, जी उन्दि उजि भट्डि यिर्धित्ति स्थिते, (७१८) नाजनादिरिति भादावरं हिला, (७२०)स्थादौ नवद्र इति नवद रांय हिलादि जिडि चिएषां दिलं,

## ७७८। सृदृत्वरप्रथमदसॄसशोऽङ् खेर्जिऽङि चेष्टवेष्टोस्त वा।

(मृ—समः ६१, घड् ११), खे ६१, चाङि थी, वेध्वेद्यीः ६॥, त ११।, वा ११।)
एषां खेरङ् स्थात् चाङि चेष्ट-वेद्योत्तु वा ।
श्रमस्मरत् श्रद्दरत् श्रतत्वरत् श्रपप्रथत् श्रमस्मदत् श्रतस्तरत्
श्रपस्ममत्, श्रवचेष्टत् श्रविचेष्टत्, श्रववेष्टत् श्रविवेष्टत् । अ

. ७०६। भाज भास भास भाष दीप जीव मील पीड क्रण वण भण यण लप लुप लुट हेठां वोडः स्वः। (भाग-हेठां ६॥, वा ११।, वडः ६।, सः १।)।

<sup>(</sup>५०१) पुनरमागमः अंग्लिट्टत् भौजितत् भाज्ञिज्ञत् भार्तिं पदिति । रम्ममाणं सम्ममाणं स्वाप्ति स

<sup>†</sup> खृ इत्यनेन खृ खृती, खृ म श्रीत्कं इति हथं; हृ य गि विदारे; जि तर पाइ खाद; प्रथ म षड् व्यातों; सद म पड् चोदं; स् ज गि कादने; स्प्रश उ यय-वाधयो:; एपां सप्तानां खंरहिवधानात् (६४०) ख्यथेत् सनीति ह नं स्थात् (६३८) धीय वि हंमादे ध्यंत्वपि न स्थादिन्थं:। चंष्ट-विश्वानु खिरडेाऽपापिष्टं युर्वचरपरतात् (६३८) सन्द्रहायसापात्री वि देधिं न स्थात्। श्रमसादित्यादि— स्थरनं, दीर्यनं, त्यमाणं, प्रथमान, सदमानं, स्थानं, स्प्रमानं स्प्रमानं वा, चेष्ट मानं, वेष्टमान ग्रैरिगदिति वाक्यानि। श्रव ह ङ गादरे इति इस्तान-ह्यातो ग्रंहणसिति कियान, दिश्यमाणं ग्रेरिगदिति वाक्यं। सृ ज न सृतौ हति इस्तान् सृषात्रद न रहतेतः, तस्य तु श्रीवस्तरिक्षेत्र पदं। पाणिविः श्री १९८१,८६।

एषामुङ: स्वः स्थात् वा चाङि। धविस्रजत् धवसाजत्। \*

७८० । वर्दु ङो धुः । (वा ११, सहदण: ६।, धः १।)।

ऋदुङो धो र्धुरव स्थात् वा अप्रक्षि । श्रवीहतत् अवव <sup>ी</sup>त्। पृ

७८१। खपो जि:। (खप: हा, जि: १।)।

खपो जि: स्थात जो ङि । श्रस्पुपत् । क्ष

## ७८२ । ग्राच्छासाह्वाव्ये वे पांजीयन् ।

(मा—पां हते, जी था, यन ।१।)।

#### एषां जी परे यन् स्यात्। शाययति पाययति। §

<sup>\*</sup> टु साजृङ ण भाि , टु सास्ट ङ ण भाि , भागृ ङ दीती, भागृ ङ वाि न दीपी ङ ऋ दीपने, जीव ऋ प्राणने, नील निभेषे, पौतृक बाधे, कणृ भार्तसरे, ऋ वण ग्रन्द, ऋ भण ग्रन्दे, यण क टाने, ऋ लप भावे, लुप ऋ ग्र प ल जौ हेंदे, लुट्य ऋ विलीड़ने, हेटू ज बाधे, धोड़गेते। टु सागृ ङ ण'भाि हैति तालव्यानोऽपि भव गरहीत:। इह हिधातमपि व्यासकारः पटित। भव वाग्रहणं वाह्यमध्यवित्वेन निव्यत्विवारणार्थम्। एतेषु गणपाटे सासधातीर्क्षकच्छदनुवन्धः यणपातीय ऋदनुवन्धाः भावः कस्यविदनुरीधादिति दुर्गादासः, वस्त्तन्तु प्रामादिक-एविति। भविभन्नदिव्यादि, साजनानं प्रैरिरदिव्यादि वाक्षं। पाणिनिः शिष्ठा, वार्त्तंकच। भव सासधातुर्ने हम्बते, साथे च रणधातुरिधकोऽस्ति।

<sup>†</sup> ऋत् उड्ड यस स ऋदुड् तस्य । ञानस्य वतम्स्रति ऋदुङ्भातोः टीविभक्तौ, गुणनिवृत्ति व्वा स्थादित्ययः । क्रपधातोः (६४८) कृपादेशेऽपि ऋदुङ्भकृतिकत्वात् भिषोकृपत् भ्राचकत्यदिति दयमेव स्थात् । श्रव वायद्दणं परवानुवृत्तिनिवस्ययम् । भवी-वतदिति वर्त्तमानं ग्रैरिरत् । पाणिनः ०।४।०।

<sup>‡</sup> भस्पुपदिति स्वपन्तं ग्रैरिरत्, स्वप-जि: स्वापि धातः, टीटि भड् भनेन जिः, सिप इत्यस्य दिलं, (६२८) घीस सिर्हमार्ट्घः, (१११) पलं। पाणिनि: ६।१।१८।

<sup>§</sup> भी य निशाने, को य लूनी, पो य नाभी, हे बै स्पर्डे, व्ये जै वती, वे जै स्पृती, पापाने पै भीषे इति सयं। यनी न इत् अन्ते। म्यनं प्रेरयति भाययति, पियन्तं पायनं वा प्रेरयति पाययति। पाणिनिः ०।३।३०।

#### ७८३। दे: पिबः पीषो जाङि।

(वे: ६।, पिष: ६।, पीप्य: १।, आप्रक्ति ७।)।

ग्रपीप्यत्। \*

७८४। ही वी री क्र्यू द्धायातां पण् गुम्न जो। (की- बातो सा. पण्।रा, गः रा, पारा, जो ठा)।

क्रिपयति व्विपयति रेपयति क्रोपयति अपैयति स्नापयति स्थापयति। पे

৩८५ । खोढो ञाडी: । (खोड: ६१, আরি ৩), इ: १।)।

तिष्ठतेरुङ दः स्यात् चाङि । अतिष्ठिपत् । 🕸

७८६। घोवा। (प्रः स, वा।र।)।

#### श्रजिघिंपत् श्रजिघ्रपत । §

दिक्त स्थापापनि दत्यस्य पीष्यः स्थात् आप्रक्तिः। पिवन्तं प्रैरिस्त् अपपीय्यत्।
 पिवः किं, पै अपपीय्यत्, पाल रचणं अपपीयलत्। पाणिनिः शाशाधः।

<sup>+</sup> डी नि लर्ज, बी गिगलां. भी री छ य चरणे री गिरवे दति हयं, क्रृथी छ दुर्गमें, सह में हिंसे सह लिंगलां सह प्रापे च इति वशं, जाशी छ विधृतने द्वित पणां भादन्तानास्त्र जी पण स्थात, ण इत भन्यानः परः, यद्यासस्थवं गुण्या । हिपयतीत्थादी पणि क्रते, पकारस्थापि धान्तवयत्थात् अष्ट्रडीऽभावात् (५४२) भपिती गुणानिधानं । क्रीपयति कापयतीत्मुभथन भन्यानः परं पकारिक्षता तस्थात् परत्था (७०५) इसा क्षीप दित यन्त्रोपः । भादिष्टां भादन्ता भपि, तेन टे ङ पालने (६०८) दापयित, इ की जग द्रस्यविधयी कापयतीत्थादि, (७८३) ईस्थाने भा । निह्नियतं, बीननं, रीयमाणं रीणनं वा, क्रूयमाणं, स्वलन इपूर्वं सरकानं वा, क्षायमाणं, तिष्ठन व प्रेरथतीति वाक्यानि । पाणिनः श्रवाह ।

<sup>‡</sup> स्था इत्यस्य उङ्स्थी ड् तस्य । पिय क्षते स्थाप इत्यस्य उङ: इ: स्थात् आर्डी-लर्थः । चितिष्ठपदिति स्थाप इत्यस्य चाकार इकारे स्थिपि इत्यस्य दिलादि, (१९१) पतं । पारिपनि: ७।४।५ ।

<sup>§</sup> घा धातो: पणि क्षती प्राप-भागस्य उङ इ: स्वादा अप्रक्रि। अजिविविविति

# ७८७। पाति-स्फाया र्जन-वहरी औ।

(पाति स्कायी: ६॥, लम् वडी १॥, जी ०।)।

पालयति स्मावयति। #

९८८। ग्री-धूञा नेन वा। (গী খুজी. ६॥, नन्।१।, वा।१।)। ग्रीखयति प्राययति, धुनयति धावयति। १

७८१ रह: पङ् वा। (६६: ६१, पङ् ।११, वा ११))। सोपयित रोचयित । क्ष

७६०। गरोऽगतौ तङ्। (भंदः हा, अ गतौ का, तङ्।१।)।

श्वातयति। गतीतु, गाः श्वादयति गीपः। §

जिन्न में पेरिरिदिति वाकी जी पणि न्नाप इत्यस चा इ:, तत: न्निप इत्यस्य दिलादि। इकामामावपने न्नापि इत्यस दिलादी, (६१८) उन्हों इत्वे, (६१८) मन्दन्नी, (६४०) स्वेरिले, संगुरुलात् (६१८) दीर्घामावे, (६४१) जेलींपे, व्यजित्रपदिति। पाणिनः अधाद्।

- पा ल रचणे दलस्य लन्, स्काशी ङ बद्धी दलस्य वङ्स्यान् जी। लनी नित्तादन्ते, वङी ङिक्तादन्त्यस्य स्थाने। पानं प्रेग्यति, स्कायमानं प्रेरयतीति वाकादयं। पाणिनि: ०।६।४१, ''पातेर्लुग्नवनम्" दति वार्त्तिक्य।
- † प्रीय धूय प्रीधवी, तीच तीजी (ञानवयी) चिति तथी:। प्रीजृतर्पणे प्रीगञकानी इति दथी:, घृजगिकस्पे इत्यस्य चनन् स्यादाजी। निचादर्ना। धूज इति ज्ञानुवस्यप्रचात् नासंपानित्यर्थः। प्रीखन्तं प्रीयन्तवा प्रेरयित, धूननं प्रेरयित इति वाक्यदर्थ। ननीऽभावपचे (५००) अस्त्यची द्वतिः। "ियच्प्रकर्णे धूज-प्रीजीर्लुग्वचनम्" इति वार्त्तिकम्।
- ्रे जि न कही निन्यानित्यस्य पङ्स्यादा जी डिलादत्यस्य स्थाने । अन वा सहस्यं परनानुद्वत्तिनिवस्थये । कप-धातोः रीपथतीति निजायपि, रीपथतीत्यस्य उत्-पादनायंत्रीधनार्थं कहः पङ-विधानम् । रीहलां प्रेरयतीति वाकाम् । पास्तिनः ०।३।४३।
- श्रमद् लु जी माते इत्यस्य तङ् स्थान जी, न तु गती । भीयमानं प्रेर्थात भागमित, पात्रभतो लथे: । गत्यं स्थात माद्रशति गमयती लथें: । पाणिनि. अञ्चर ।

# ७८१। लाल्यो र्लन्ननौ स्नेहद्रवे वा।

(ला-ल्या: ६॥, लन्-ननी १॥, सेइंडदेवे ०।, वा ११।)।

लाते र्लन् लियो नन् स्थात् से इद्रवे ६ धे जी वा। विलालयति विलापयति। विलीनयति, (०४५) मिस्योरिति ङा वा, विलापयति विलाययति घृतं। से इद्रवे किं, लौहं विलाप-यति विलाययति। \*

**9८२। वा जन्धूतों।** (वः हा, जन् ११, धूनी छ)। वाते र्जन्स्यात् कम्पने जो। वाजयति। धूती किं, केप्रान् वापयति। पे

### ७१३। क्रीजीङो उजा चि स्पार प्रजनार्थ-वीनान्तवा।

(की-कि-इंडः ६।, षच् ११।, था ११।, चि स्कृर-प्रजनायंवीनां ६॥, तु ११।,वा ११।)। एषामच श्रास्थात् जो, चारिसु वा। क्रापयति जापयति अध्यापयति। ढ़ो .

<sup>, \*</sup> संहस्य घृतादेर्द्रवीकरणं सेहद्रतः। "सेहिविषातर्ने" इति पाणितः। "सेहि द्रयद्रावणं" इति क्रमदीयरः। साः ल च ग्रेहे, ली कि द्रावणे इत्येतथीग्रेहणं। ''लीलोडीः'' इति क्रमदीयरः (तिङन्तपादे ४५० म्त्री)। विलान्तं प्रेरयिति विलाल-यति, पर्च (०८४) चादन्तलात् पण् विलापयति। विलाययन्तं प्रेरयिति विलीमयति। उभयव पृतं द्रावयतीत्वर्थः। पाणिनिः ९।३।३८।

<sup>†</sup> वा च गमन- हिंस यो रिव्यस्य वानां प्रेरण्तीति वाकी वाज्यति कस्पयतीलार्थः। कि आगन् वापयति परिकारोतीलार्थः। पाणिनिः शश्रः । अत्र वैभाग्यहणं न तुवा-भागः, यती वजधातीवां जयतीलादि सिद्धो वै द्वत्यस्य पुक् (पण्) मा सून्, दिति पाणिनिटीका।

<sup>‡</sup> क्रीय जिय दक् च समाहारे तस्य । प्रजनी गर्भयहणम् अथी यस्य सः प्रजनार्थः, सचारी वैविति प्रजनार्थयौः, विश्व स्कृत्य प्रजनार्थवीय तेषां। वीनामिति (११०) नृक्षात्रमः मृत्रलात्। दुकी जाग द्रस्थतिपर्यथः, जि जथे, अभी दुल् अध्ययने, एषामित्यथः। वापयतीत्यादि — क्षीणनं जयनम् अवीचान च प्रेत्यतीति वाक्यानि। अनेन यथः स्थानं आ, ततः (०८४) भादनलात् प्रण्। पाणिनः इ।१।:८,५४,५४।

अध्यजीगपत् अध्यापिपत्। चापयित चाययित। चपयित चययित (७८८) मित्वात् इस्व इति प्रक्रियारित दृष्टं। स्मार्यित स्मोरयित। वापयित वाययित, गाः पुरीवाती गर्भं ग्राह्यतीलर्थः। अ

### ८८४। सिस्यो घीत् खर्षे मञ्जा

°(सिभ्यो: द॥, घात् ५१, घ्वर्थ ०१, मं ११, च ११।)

अनयोरच आ स्यात् घात् ध्वर्धे जी मञ्ज। विस्नापयते भाषयते सुग्छः। घात् किं, कुञ्जिकयैनं विस्नाययति भाययति । 🕆

७८५ | भी भीष वा। (भी: ११, भीष् ११, बा ११)। भियो घ-भये भीष् स्यादा जी मञ्च। भीषयते मुख्ड: । क्ष

<sup>\*</sup> भध्यजीगपदिति भिष्टि रेटी दि, (०१३) गा मादिशे, पण्, ततः गापि इत्यस्य हिलादि। गा भादिशस्य विकल्पपचे भनेन र स्थाने भा, ततः पणि भापि इति स्थिते (०१८) पि रत्यस्य हिले भध्यापिपदिति । चापवतीत्यादि भिन्नेनं प्रेरयित, चि-नि, भनेन र स्थाने भा, ततः पण्; पचे (५००,३५) बद्यादि । प्रक्रियाग्यं वैयाकृरण-ग्रथविशेषः । स्कृत्नं प्रेरयित भनेन वा छकारस्य भा । विनन् वियनं वा प्रेरयित वापयित, भनेन सा, ततः पण्। पचे बद्यादि । प्रीवातः पूर्वदिग्वायुः । वर्षास् प्रक्षेवायौ वाति गावी गर्भे एक्षनौति प्रसिद्धिः ।

<sup>†</sup> सि इ सिते, जि भी लि भीत्यां, अन्योगर्यो यदि जान्तकन्तः प्रतीयते तदः अच भा, आत्मनेपदञ्च स्थादित्। अत्य आ न स्थात् आत्मनेपदञ्च न स्थादित्। विस्वयमानं विभ्यतञ्च प्रेरयति भनेभ आ, ततः पण्, आत्मनेपदनेव । मुल्डः मुल्डित-मस्तकी जन इति दुर्गादासः। एवं विद्यापयते आपयते व्याघः उत्यादिष् कर्मृतः एव धाल्यंप्रतीतिः। भन्यत्र कुञ्चिक्या मत्स्य विभिवेष कर्णेन एनं अनं किश्चित् विद्याययित भाययित एवं खड्गादिना विद्याययित भाययित इत्यादिषु कर्णकारकात् धाल्यंन्यत्तिः नतु कर्मृतः, अतएव अचः स्थानं आ न स्थान्, भात्मनेपदञ्च न स्थान्। पाणिनः द्राराष्ट्रदुरुष्ठ, राहादनः।

<sup>‡</sup> घमधे कर्नृतीमधे निष्यत्नं इत्यर्थः। पत्ने पूर्व्वस्त्रीण भाग्यते इति। एवं स्रीपयते भाष्यते व्याघः। घान् किं,खङ्गेन तंनायथितः। पार्शिन श्राह्मः।

**९८६। दुघेरोदू:।** (दृषे: ६१, कीत ।११, कः १।)। दुपेरोकार जः स्थात् जो। दृषयति। क

७२०। चिदिकारे वा। (विदिकारे था, वा । ११)। दूषयित दोषयित चित्तं। १

७८८। घटादि जनी जूष क्रस रजाम मारतोषनिगान निगामार्थ-ज्ञां खो ऽक्रमामचमो जीयामोस्तु र्दञ्च जागुञ्च।

(घटादि—क्षां ६॥, खः१।, घंकमामचमः ६।, ञीखमीः ०॥, तु ।१।, घं: १।, घ ।१।, कागु: ६।, घ ।१। ।

घटादादि-रमन्तस्य मारादार्थ-त्रय जी स्वः स्थात् नतु कमाम-चर्मा, जेः परयी रिण्णमीनु र्घय जागुय स्वी र्घः । ः

इर्दुधी वैक्रते इत्यस्य जिन्निमित्तके गुणे क्रते दीवि इत्यस्य भीकारस्य कः स्थादित्यर्थः । दुवेर्घः इति क्रते तु, दीवः दीवर्षं इत्यादि पदं न सिध्यति । दूवर्यासित तुञ्जानस्यैव । दुध्यनं प्रेरणतीति वाक्यं । पाणिनिः ६।४।८० ।

<sup>†</sup> चिन् मन: तस्य विकारियदिकार:, तस्मिन्नर्थे दुवे जी क्रते श्रीकार कः स्थादा इत्यर्थ:। दूषयति दोषयति चित्तं, क्रीघदति श्रीय:। पाणिनि: ६।४।८१।

<sup>‡</sup> मारस तीयस निणानस निणामधंताः । घटादिस जनीस जृष्य तस्य स्वामी जासित मारतीयनिणानिणामाधंताः । घटादिस जनीस जृष्य तस्य स्वस्य समरतीयनिणानिणामाधंताः । घटादिस जनीस जृष्य तस्य स्वस्य समय मारतीयनिणानिणामाधंतास ते तेषां । कम च स्वम च स्वम स्व क्षमामचम, न कमामचम स्वमामचम तस्य । इण् (८२१) च णम् (१९८३) च रण्मी, जीः परी इस्मी जीस्मी तथीः । गणपातं मकारान्वस्यी घटादिः, स्वनण्य घट प्र इः पेष्टे इत्यस्य ग्रहण्ं, नत् घट क हिंसे इत्यस्य । स्वादिना यावनीयानां मान्वस्थानां ग्रहण्ं । जनीयहण्न जनी स्यङ्गाद्रभावि दत्यस्य प्राप्तः, जन म लि च इत्यस्य मान्वस्थिति न प्राप्तः । जृष्य ग्रहणान् जृपि कि ज्ञानि इत्यस्याप्राप्तः । स्वमः इत्यनि समनामास्य ग्रहण्ं कम स्वम चम इति तयाणां तदन्तर्गत्यात्र । स्वमः इत्यनि समनामास्य ग्रहण्ं कम स्वम चम इति तयाणां तदन्तर्गत्वात् क्षमं । मारा मारणं, त्रीवः

घटयति व्यथयति प्रथयति, जनयति जरयति क्रसयति, रज-यति सगान् रमयति, जपयति । जमादेख, कामयति श्राम-यति चामयति । ॥

#### ७६६। ज्वल ह्वल ह्वाल ग्ला सा वन रम नमो ऽगे व्वा । (ज्वल-नमः ६१, चर्गः ६१, वा ११)।

एषामगीनां सः स्यादा जो। ज्वलयति ज्वालयति, ग्लपयति ग्लापयति ।

अगेः किं प्रज्वलयति प्रग्लापयति । 🕆

#### ८००। वा शम यम फण गिस्वदां।

(वा ।१।, भ्रम यम फण गि-खब्दां ६॥)।

- घटमानं, व्यवसानं, प्रधमानं, नायमानं, जीर्थनं, त्रस्वनं, रमसाणं, जाननं, समसाणं, जाननं, समसाणं, जाननं, समसाणं, जाननं, समसाणं, जाननं, समसाणं, जाननं, समसाणं, कामसानं, प्रमानं, समयानं समयाने व्यवस्य स्थान् रमयतीव्यं:, तेन (६६०) स्थरमणायं न-लोप:। रमयतीव्यंनेन श्रमनोदाइरणञ्च दिर्धितं। जीसमीनु श्रघटि श्रघाटि, घटं घटं घाटं घाटमित्यादि। आगुनु—श्रमागरि
   श्रमागरि, जागरं जागरं जागरं जागारं।
- + ज्वल न स बल- त्विषीः, हल इतन स च चाले, रखे कासे, चाल क्षीधने, यत स व्याप्ती, रसु इत् जो की दे, नसी भव्द नथीः । पूर्वमूत्री रला सीरप्राप्ती अविधाध नित्यप्राप्ती विकलाः । अवत्य प्रज्वलयती वादी घटादिलात् नित्यं इत्यः, प्रग्लापयति प्रसापयती त्युभयत्र न इत्सः । ज्वलन् ग्लायत्तव प्रराप्तीत वाकादयं । रस इत्यत्र वस इति कि नित्पाठः । भाष्यम् ।

पितीपणं, निमानं तीक्णीकरणं, निमानी दर्भनभरणं। क्रमेण यथा - ज्ञपयित भवं वीर:, ज्ञपयित एवं पिता, ज्ञपयित खड्गं कम्प्रंकारः, ज्ञपयित रूपं कार्मिनी। निमानी ज्ञानभरणमिति कमदीयरादयः, अतएव विज्ञापनार्थं विज्ञप्तिरित्यपि प्रयोगः। एति इंदर्षे ज्ञापयित। पाणिनिः इ। ४। ६२, ६३, ७।३। ३४, वार्त्तिकञ्च।

एषां खः स्थाद्या जो। श्रमयति श्रामयति, यमग्रति याम-यति, फणयति फाणयति, परिस्खदयति परिस्खादयति । \*

# ८०१। इनस्तङ-ऽणविणि ञ्णिति।

(इन: ६।, तङ् ।१।, ष-वप्-द्रवि ७।, ञ्चिति ७।)।

त्रिति णिति च परे इन्तेस्तङ् स्थात् नतु णिप द्रणि च। घातयति । पं

# ८०२। यि: सन् वेष्यी दि:।

(थि: १।, मन् ।१।, वा ।१।, ईर्ष्यः ६।, वि: १।) ।

ऐर्षियत् । क

इति ञान्त-पाद:।

<sup>•</sup> गी: सत् गिखत, शम च यम च पण च गिस्त् च तियां। भूव वाशव्स्य व्यवस्थ्या शमुभिर्ध शमे दृष्यस्य नियं इस्तः, शम क कालीचे दृष्यस्य नियं इस्तामावः। भी यम चपरमे दृष्यस्य नियं इस्तः, यम क मि परिवेशने दृष्यस्य तृ विकर्णन। एवं भव परि पूर्वकस्येव स्तदस्य वा इस्त दृति कातन्वाद्याः, भव्यपूर्वकस्य केवलस्य च घटाद्तितात् निष्यमेव इस्त दृति। शास्यनं शामयनानं वा, यमयनं, पणनं, परिस्तदः भानभ्र प्रेरस्ति वाक्यानि। भाष्यम।

<sup>†</sup> साप् च इष् च षिवण्, न पिवण् षानिवण् तिकान्। ज च षा घ ज्यो, तौ इतौ यस्य स ज्यानि तिकान्। तङी ङ इत् अन्यस्य स्थाने। प्रनां प्रेरयतीति वाकी इन-जि, भनेन इनो नस्थाने त, (६०९) इन्स्थाने घ, (५००) इति:, घाति इति (६९१) धातः। स्वियोम्नु ज्यान, भघानि। पाणिनिः शिश्वर्।

<sup>‡</sup> जो कित दिलहिंगी सित ईप्यंत्रातीः यिरेव दिः स्यादिश्वेकीऽयै:। सिन किते तृ यि वा दिः स्यात्, मन् च वा दिः स्यादिश्यपरीऽर्थः। ईप्यंनं प्रेरिरिट्ति वाको ईप्यं जि, (००५) य लीपस्य निश्वेदिपि येदिंग्विधानज्ञापकान् यलीपाभावे ईप्यं दृत्यस्य (६२१) धानसंज्ञायां टी दि, (६१३) भङ्, ततः चनन के क्लं यि दृत्यस्य दिले, (६४१) जे लीपि ऐप्यियदिति। सिन तु (५५४) इमि. यि दृत्यस्य दिले ईप्यंयिषित्, सनी दिले ईप्यंविषति। ''ईप्यंतेस्टतीयस्येति वक्तव्यम्' दिति वानिकम्।

#### २य पाद: - सनन्त: ।

-00000n-

#### **८०३। सन्तिच्छायां।** (धन्।१।, इच्हायां ०।)।

धीः परः सन् स्यादिच्छार्ये । अनुमिच्छित जिघसति । दिदा-सते दिदीषते, दिद्योतिषते, उतिच्छिषति उचिच्छिष्ति, श्रिधि-जिगापियषति अध्यापिपियषति, ग्रियाविषति ग्रिखायिषति, जुद्दाविषति । \*

<sup>\*</sup> यस धाती येँ। ऽर्थनिविषयाया-भिकायां तस्मात धाती सन स्वादित्वर्थ:। अत-निक्कतीति वाक्येन, इक्छायां तुमगर्भायामेव, नतु अदनमिक्कतीत्यादिकपायां। गर्भादिच्छायां'' सित्रति भीमरात्र। इच्छासननात् पुन नै सन्, इच्छाया इच्छान्तरासमः-वात । स्वार्थमननात्त्र स्थादेव, विकित्सिषतीत्यादि । भवेतनस्य दक्काया अमुक्तवेऽपि नदी कुलं पिपतिषती त्यादी विवचार्या सन्। सन्प्रत्ययश्च वक्तरिच्छ्या वैकाल्तिक एव. पची वाका खेव स्थितिरिति । सनी न इत् चिक्रार्थः, घदन्त-स-स्थितिः । जिघतसती खादि---भद-सन्, (६०३) घस-भाटेश:, (६६८) सस्य त, घला इति, ततः (६३२) दिलादि, भिचला दति (६२१) धातुमंज्ञा, ततः तिष्, थए, (५४३) सनी Sकार-लीप:। सनन्त्रधाताः (६३६) सनः पनि इत्यनेन परस्रोपदादिनियमः। दातुमिक्कति दी-सन (०४३) ङा वा, दास इत्यस्य दिलादि, पचे दीस इत्यस्य दिलादि। यीतित्तिकृति युत-सन्, (४५४) इ.म्, दिलं, (६४०) खेर्जि:। एक्छितुनिकाति उक्छ-सन् इ.म् चिक्तप इति श्विते. (७१६) चकारं हिला किए इत्यस दिले, (५८६) खेरकस्य वात । খ-আ। पितृति च्छति च धि-इ-जि-सन्, (৩१३) दुङो वा गा-मादेगः, (৩८४) चाट्न-लात पण, गापि घातः, ततः (५५४) इ.स., गुणः, एस्याने चय, गापियव इत्यस्य दित्वं जिगापियम धातः ततः तिवादि । पचे (৩ ং ২) इ स्थाने चा, पण्, चापियम इति स्थिते (৩१८) चाकारं दिला, पयिष इत्यस्य दिलादि। স্বাযयितृनिकाति স্থি-ञि-सन्, (६६८) श्विभाती विकल्पेन जि:, (५३०) प्रायच्कार्व्यादिति नियमीन ग्रुइस इत्यस्य दिले, तत: (५००) बद्यादि, इमादि च। जि-विकलपचे शि इस इत्यस्य दिवादि। हाययित्मिक्कति है जिसन् (६०८) ए खाने चा, हाइ स इत्यस्य दिले (६६०) विवत-त्रे धाती जि:, हा-भागस्याभावात् (७८२) यनीऽभावे, बद्ध्यादि, इमादि घ। पाणिनि: ३।१।७। भात्र सूत्रे विकल्प:।

८०४ | खुर्नानिमि | <sup>(श्व:श, न ।श, चिनित छ।) ।</sup> ग्रनिमि सनि ग्रु ने स्थात् । विद्वस्ति विवर्त्तिषते, निरुत्सिति निनर्त्तिपति, तितरीषति तितरिषति तितीषीत । \*

८०५ | द्वा ऽज्कानिङ्गां । (र्व: ११, अन्मिनङ्गमां ६॥)
यजन्तस्य हन्ते-रिङ: स्थाने जातस्य गमय र्घः स्थात् अनिमि
सनि । दुध्वूर्षति दिध्वरिषति, वृत्वूर्षति विवरीषति विवरिषति
सञ्चिष्कोषति, जिगीषति, चिकीषति चिचीषति, जिघांसति।

८०६। गर्मीनिख्ने:। (गमि ।१।, इन्-इखो: ६॥)।

क गासि इस् यस्य सः चिनिष् तिस्तिन, सिन इत्यस्य विशेषणं। सन् इत्य विभित्तित्यत्ययंन चन्तिः। यत्र गुणस्थानं समावित तत्रेव सनीऽगृणितं, तं जिघांसतीत्यादौ (६७६) न जम् लीपः। वित्तिनिष्किति विवन्तिति (६४८) चत पस् इत्यन्न भाविष्यस्येपदे, (६४८) बद्धारी नेस् पे इति इक्तिचिधे गुणनिषेषः, व इत्यस्य दिलादि। चालानेपदं तु इसि, गुणः। निर्तिनिष्किति निचृत्मिति निनिर्तिष (७३६) इसीऽभावपचे गुणाभावः, इस्पर्चे गुणएव। तरीतुनिष्कितीति पदः त्-सन् (७४०) वा इस्, (६२०) इसी वा दीर्घः। चिनिष्पर्चे अगुणलात् (६ः नस्स्याने इत्, (२२८) तस्य दीर्घः। पाणिनिः १।२।१०।

<sup>†</sup> इस्रो गम इक्षम, अच् च इन् च इक्षम् च तेयां। दुष्वृषैतीत्यादि ष्वर्त्तीत्व घृमन् (०४०) अनिम्पचं अनेन दीर्थ, पन्तरक्षतादादी (६२८) उर्, ततो दिला (२२८) दीर्घः, दुष्वृषै धार्ताभिवादि। इम्पर्च दिष्वरिषति। वरीतुमिच इ-सन् (०४०) इमी विकायपचे अनेन दीर्घ, ऋष्याने छर्, ततो दिलादिकां। इम् (६२०) इमी वा दीर्घः। सस्कर्त्तीतच्छित संस्ता-सन् (०४०) स्क्रार्जनात् म इम्, इ दीर्घे, (६२८) ऋस्थाने इर्, तस्य दार्घः। जित्मिच्छिति जि-सन् (६००) गि-आर्द भनेन दीर्घे गीप इत्यस्य दिलादि। चित्मिच्छिति चिन्स्न, (७४६) वा कि-आर्द प्रनेन दीर्घः। इन्तिमच्छित इन्-सन्, अनेन दीर्घः, इन्स इत्यस्य दिलादि, (६

द्रनिङोः स्थाने गिमः स्थात् सिन । जिगमिपति, श्रिधिजि-गांसते । अ

८०**) नेम्गुहग्रह:।** (नारा, इम्वारा, खगुइन्यहः प्रा)। उवर्णान्तात् ग्रही ग्रहथ सन इम् न स्थात्। जुङ्घिति, बुभूः षति, जुष्ठचिति। पं

८०८ | ग्रहस्वपप्रच्छा जि:। (गडसप मच्हा रेण, जि.स)। एषां जि: स्थात् सनि । जिष्टचिति, सुपुप्ति । हः

# ८०१। स्मिङ पूङर्ग्जश्च क्तिर गिर द्रिय प्रच्छ दुस्। (बिङ पूड-स-पन्ज-श्र्य-प्रच्छ ४।, उस ११)।

- गमिरित इकारानुबस्थन गमधालादेशः स्वादित्यधः । गमधातुनैव पदिमिञ्जी दनः स्थानं गमादेशकरणं, गमनार्थस्य इन-धाती गमादेशः स्थात्, ज्ञानार्थस्य न स्थादिति जायनार्थे, तेन ज्ञानार्थे प्रतीविष्यतीति (५२६) मनुभागेषे स्वयमुदाहतं। एत्मिच्छति इ.सन्, गमादेशं (६२४) गमाऽभे स दम् दिति इस्, गमिष इत्यस्य विलादि। अर्ध्वत्मिच्छति अधि-द-सन्, गमादेशं (५०५) दीघें, इङः स्थानिवत्यादाक्यने-पदिवये, गमीऽभे स इमित्यत्र आत्मनेपदवर्जनादिमीऽभावे, गांम इत्यस्य विलादि। पाणिनिः २।४।४०,४८। अत वक्तव्यम् —(२।४।४६) दिति पाणिनिः विश्वस्य इन्धातीः सन्वत् आत्मनेऽपि गमादेशः, बाधनार्थे तु न भवति। यथा गमधतीति। बीधनार्थे तु मल्याययति।
- † उस गुहस यहस तसात्। उ: उत्वर्णातः। हीत्मिक्ति सन्, (८०५) हीर्घे ह्रव इत्यत्य हिलादि। एवं ह्वानुमिक्तित् ह्व भन्, (६०°) एस्थाने या, हाम इत्यस्य हिली, (६६०) हिक्तस्य जि:, ततः दोर्घे जुह्यति, अवापि उदललादनन इम्-निवेध:। भिवत्मिकिति बुभूषति दोर्घोदललादिग्निकेष:। गृहिन्मिक्ति बुभूषति दोर्घोदललादिग्निकेष:। गृहिन्मिकिति बुभूषति दोर्घोदललादिग्निकेष:। गृहिन्मिकिति बुभूषति दोर्घोदललादि। ग्रिकेश देश देः, (१७५) अस्य द , (१००) अस्य घ , (६०२) उस्य दः, पुष्क द्वास्यस्य हिलादि। पाणिनि: ७१९१९।

‡ गड़ीतुनिक्किति गड़ सन्, पूर्वस्वेग दम्निपंघः, प्रश्नेन जिः, स्रय हः, गस्य पः, दस्य कः, प्रव द्वाद्वर्य दिलादि । स्वृतिक्कितिः साय प्रन् यीदिलादिम, अनेनः जिः, सुप्स द्वस्य दिलादि, (१११) वर्षे । पाणिनि कास्ति होस्टर्

एभ्यः परस्य सन इम् स्थात्। सिसायिषते पिपविषते चरिरि-षति चित्तिज्ञिति चित्रियिषते चित्रतिषति पिप्रच्छिषति। अ

८१०। स्रस्ज स्त्रि खु यूर्णु भर दरिद्रा सन तन पत ज्ञपर्डिंदिन्भवो वा। (अन्न-४४: १५ वा ११)।

एभ्यः सन इम् स्यादा। विभिन्निषिति विश्वजिषति विभन्निति, शिययिषति शियीषति, सिखरिषति सुखूर्षति, शियविषति युगूषति, जर्णुन्विषति जर्णुन्विषति जर्णुन्विति, विभिर्देषति वुभूर्षति, दिद्रिषति दिद्रिद्रासति, सिसनि-षति सिषासति, तितनिषति तितंसति,—तितांसतीत्येके। पिपतिषति। गं

<sup>\*</sup> सिह च पूड च स्य अनुभ च भ्रास्य किरस गिरच दियस ध्रिय प्रक च तथात्। सिछ पूडी छंकार: भाक्षनेप दिल-जापनार्थ:। भर्म इति जकारानुक्यः। किर गिर दिय प्रिय इति कृ गृह घृद्येषां यहणे। सिम स्ट ह ए एषां (५००) एका जिवणोन्तलान् एका जृवणांनलाच् , पू इत्यस्य (०००) उवणांनलात्, प्रच्छ इत्यस्य भीदि खाछ इत्योदि, अन्त भ्रम एतथी कि दिखा (५००), कृ गृ एतयी स (०४०) विकत्य-प्राप्तो, नित्यार्थं विधानं। सिम्ययिवते इत्यम (५१०) जिल्होरित नियमेन सूल धाती-नेपलं। विपानित इति पू इ स इत्यस्य (५१०) प्रागच्कायादि हिस्ति नियमेन भादौ दिली, (८१६) वत्यामा स्वाप्ति प्रक स स्वस्य स्वाप्ति इति (८१६) वत्यामा स्वाप्ति प्रक स स्वस्य स्वाप्ति इत्या स्वाप्ति प्रक स स स्वस्य स्वाप्ति प्रक स स्वस्य स्वाप्ति प्रक स स्वस्य स्वाप्ति प्रक स स स्वस्य स्वाप्ति प्रक स स्वस्य स्वाप्ति प्रक स स्वस्य स्वाप्ति प्रवाप्ति प्रवापति तिमारिष्ति, दिदरिष्ति, दिधरिष्ति। पिष्ठच्यिति (८०८) मूर्वमूचेष जि: । पारिषिति श्वापति प्रवापति । पिष्ठच्यिति (८०८) मूर्वमूचेष जि: । पारिषिति । पारिष्ति । प्रवापति । प्रव

<sup>†</sup> सस्ज च शिष खृष शुष जर्षुष भरव दरिद्राय समय तनव पत्रव प्राप च्छिय दन्भ च दव च तत्तकात्। सस्की ज ग्रापिक, श्रिज सेवायां, ब्हुज ग्रब्दी

## ८११। मि मी मा दा रभ लभ शक पत पद हिंसार्थराघोऽचोऽनिमसनीस खिलोपस्।

(मि--राधः ६।, घषः ६।, घनिम्सनि था, इस् रि।, खिलीपः १।, च ११।)।
एषामच द्रस् स्थात् खिलीपश्चानिम्सनि । (२१३) स्थादेः सी
लोपः । पिस्ति । जिज्ञपयिषति । \*

पतापयो:, युल नियाणे, कर्णाञाल श्रीष्कादने, सुञ भरणे इति भीवोदिकस्य ग्रहणं नतुभा लि भृतिपुद्योरिति जुड़ी खादे: प्रस्य तुबभूषंती खेव। टरिटाचल टर्गला षन दुञ दाने, तनुञ द विचारे, पत ऌ ज गथां, पत्य उँध्ये इति इयं, जातन मारणादी, ऋध्य निर्वंदी, दन्भ न दन्धे, इव इति इवान्तः दिव विव प्रिवादिः । स्व-धाती वेंसर्वऽपि अन सहयां, कदसुनो स्वव्या इति (५०३) एवां वेसामपि सनि वेनलं नासीति जापनाथे, तेन नेस्युइयह इति इस्निपेधे रूख्वति दुदृषति सुसूवति ननपतीत्येव। सप्टसिच्छति सस्ज-सन्. अनेन इम् (०५१) वा भर्जादेशे दिलादि। पचे ससम इ. स इति (६४) संस्थ द, (४६) दस्य न, मजिप इत्यस्य दिलादि। इसी विकासपची (११३) स्थादी: स-सोपे, (१५४) वह, (६०२) वस्य का अच इत्यस्य हिलाहि। श्रयितुमिक्कति इमीऽभावपचे (८०५) दीर्घ. श्रीष इत्यस्य दिलाहि । स्वरितं स्वत् वा इक्ति पनिमपचे च्हकारस दोघें, (६२८) उर, (२२८) तस दीघें, स्वर्ध इत्यस्क दिलादि। यवितुमिक्कति युद्र ष द्रत्यस्य (५३७) प्रागचकार्यादिति नियमेन आदी दिले तती गुणादी युयविष इत्यस्य (८१६) खेवकारस्य द:। ऊर्णवितृति च्छति ऊर्ण द्रष इत्यस्य (७२१) इमी डिव्लं, (५८८) उकारस्य उव, कर्णविष इत्यस्य, (७१९,७२०) कं रख डिला सःविष इत्यस्य हिलाटि। इसी डिक्लविकल्पपचे गुस:। अनिसपर्चे षनिमसनि (८०५) दौर्घ: । भर्माभिष्कति, षनिमपचे ऋकारस्य दौर्घ:, ऋस्याने ७३. तस दीर्घ: अर्थ इत्यस दिलादि । दरिद्रित निकात, अनेन इ.म्, (६१०) आ लोप:, दरिद्रिष इत्यस दिलादि। चनिमपचे (७०२) सनवर्जनात्राकार लीप:। सनितु-सिच्छति (८१८) जिल्लोरिति नियमात न मुलस्य पर्लं। चनिमपर्चे (६५५) ङा, सा स इत्यस्य दिलाटि । तनित्ति च्छति, चित्रमपचे (५०) नस्यानस्यारे तंस द्रव्यस्य दिलाटि । (८०४) सुर्गानमोत्यन कुर्यस्कावनायामेव धनिम्सनीऽगुक्त. धतएवान अगुर्यताभावे (६७६) न अमलोप:। एकं इति पाणिनीय-जीमरा:, तनोतेरिनम्सनि वादीर्घ-मिक्कनीत्यथः (पहिक्तिः दाशश्च)। प्रतित्तिमक्ति प्रिपतिषति । पाकिनिः कश्शिष्ट. वासिक्छ।

\* जुनि ज न चेपे ; भी ज ग वधे, भी कि गत्यानिति दर्य; मादति माल च माने, माख्र लि शब्दे, माङ य च, ने ङ प्रतिदाने, मे इट य तुच दति पच; दाद्रिक ८१२। ज्ञपडीपामीय्यः। (जप-ऋध-भावां ६॥,ईर्थः१॥)।
एषामच ई ईर ई एते कमात् सुः खिलोपश्चानिम्सनि।

एषामच दें देर् दे एतं क्रमात् स्युः खिलापश्चानम्सान । ज्ञोसित । अहिधिवति देत्सति । दिद्शिपति । अ

८१३। दभा यो । (दमः ६१, यो १॥)।

दन्भे-रच द ई च स्यादिनिमि स्नि खिलोपय। धिसिति धीसित अनकारिनिईयात्। दिदेविपति। पं

८१८। छो: ग्रटावणौ अस्को यङ्लुकोस्त वा। (क्वी: ६॥, प्रटी १॥, पणी ७), अम् को ७, यङ्लुक् वी: ०॥, व ।रा, व ।रा)।

दा-मंज्ञकाः, तेन दा-न लूनी, दा त् दाने, डुदा ज लि च दें ड पालने, दो य च्छेदे. डुधा ज लि धारणे, धे ट पाने इति सत्त ; रमी ड रामस्रे ; लमी ड लामि ; मक छ्य भक न ज मकौ दित दयं ; पत लुज गत्या पत्यडेग्य द्वति दयं ; पतो ड गती ; राध्यौ सिद्धौ अव तु हिमाथं.। एषामच द्रम् स्थादित्यथं:। भक-धाताः स्वमते जिद्दितात् वैनर्लंडिप बहुशदिना मतं अनिम्ल । पित्यतीत्यादि, पतितृमिच्छिति पूर्वस्व प्रमिम्पची पत स द्रत्यस्य दिले, अनेन खेलीपे, अकारस्य इम् पिस्तस द्वति स्थिते स्थार्टे स-लीपः। अपयितृमिच्छिति जिप सन् पूर्विण दम्, गुणादौ अपयिष द्रत्यस्य दिलादि। पाणिनिः १०४५ द्रा सर्वकार ।

<sup>•</sup> ज्ञय ऋष च षाप च तपां। ईश ईर् च ईय ते ईयाँ:। ज्ञप द्यस्य प्रवः स्थाने ई, ऋषः दूर, षाप. ई इति क्रमः। जीमतीत (८१०) श्रानिम्पचे अनेन खिलीपः अस्थाने ईश, (६४१) कीं लीपः। ष्रिंदिमिष्कित ऋष सन् (९१०) भम्ज इति इस, अधिप द्रवस्य श्र रख दिला थिष द्रवस्य दिलादि। श्रानिभपेचे (६४) ऋसा द्रवस्य ऋषे दिला ता द्रवस्य दिले, ष्रनेन खिलीपः, ऋस्थाने दर्षः। दिश्ति-मिष्किति दम्भ सन् (८१०) समज इति इम्। पाणिनिः श्राप्त्र ५५,५८।

<sup>†</sup> इथ ईख ई, तौ थो। धिम्मतौत्यादि, दन्स-सन्, (८१०) सम्ज इत्यनेन इभी ऽभावपचि, घव मूर्व दभ इति च-नकार्यनदेंशात् गुणसम्भावनाभावेऽपि चनिस सनि न-लोपः, ततः (१७०) दस्य ध, (६४) सस्य प, घमः इत्यस्य दिलं, धनन खिलीपः चनारस्य इ, इंच। देवितुसिच्छति दिव सन्, अस्च इत्यनेन इवन्तलात् वा इस्। पाणितिः अधाप्र ।

क्रकार-वकारयोः प्रकारोटी स्थाताम् श्रणी जसे की च, यङ्-लुकि वे च वा स्तः । दुद्यूषित । अ मिरसित दित्सिति धित्सिति, रिफिते लिफिते, शिचति, पित्सिते, प्रतिरित्सिति, हिंसार्धः किं, श्रारिरात्सिति । ईफाति । पे

# ८१५। मुचीऽढे हे में।च वा सनि।

् (मुच: ६।, भंडे ०।, इ: ६।, भीच ।२।, वा ।२।, सनि ०।)।

अटस्य मुची दे: स्थाने मीच वा स्थात् सनि । मीचते मुमुचते । 🏗

<sup>\*</sup> क प व च कै तियो:। भ य जट्च तो। अस् च तिथ तियान्। यङ्-लुक्च व प यङ्च्यां त्यो:। जम् प्रत्याहार:। क स्यान् भः, व स्थाने जट्— इति कमः। पाणानिति पृथक्षद्वारणात् यङ्च्ति तत्रभव्यस्थानावे गुणिःन चगुणे च जसे वा मः, वकारित् यङ्च्ति चन्यत्र च मर्व्याधान् वकारि वा मः: ; कियः एष्यकग्रहणात् कंवलं किथी वकारि नियमित्यये:। द्युपतीति दिवसन्, इमीडभावपर्च-अनिम् सनीडगुणवे, अनंन वस्थाने क, युप इत्यस्य दिवादि। पाणिनि द्राधार्थः, भाष्य ।

<sup>†</sup> सम् नयी त्यस्थी दा इरणा नृकाि , सिमी मा दित्यस्थ च दा इरणा त्या ह — मित्र ती त्यादि, मेतुं मातुं वा इच्छिति सि भी मा एतिस्थः सन्, यिनम् सिन प्रचः स्था हे इस् मिस्म इति (६६८) सस्य त, खेलींपः । यात्य निप्रदिनान्त मित्रते इत्येव । दातु-मिच्छिति दा-सन्, धातु मिच्छिति धा-सन्, मित्रतिवत् साध्यं । रखु मिच्छिति लक्षु-मिच्छिति रभ-लभाश्यां सन्, प्रकारस्य इस् (२११) स्थादेः मलीपः, (६४) भस्य प, रिप्र इति हिलं, खेलीपः । यक्षु मिच्छिति यक्ष सन्, यवः स्थाने इस्, स्थादेः सलीपः, सनः सस्य (१११) यलं, यिच इत्यस्य हिलं, खिलीपः, यिचते इति च । पत्ति मिच्छिति पर-सन्, इस्, स्थादेः सलीपः, पत्त इत्यस्य हिलं, खिलीपः । प्रतिरात्तु मिच्छिति पर-सन्, इस्, स्थादेः सलीपः, पत्त इत्यस्य हिलं, खिलीपः । यात्रा घातु राराधनाः यात्रा च सम् खिलीपः । यात्रा च स्त्रस्थ स्थाने इस् खिलीपः । यात्रा च स्त्रस्थ स्त्रसं खिलीपः । यात्रा सिच्छिति याप सन् (८१२) या स्थाने ई, ईपा इत्यस्य हिलं, खिलीपः ।

<sup>‡</sup> टस्याभावी ऽढ़ंतिकान्। भाकर्मके सतीव्यर्थः। इत्ती भाटस्य इति सुची विश्व-षणं। भाटस्य देसुनी भीच वास्यात् सभीति कथनात् सनं हिला केवलस्य सुची हिलमिति तालाय्यं। भोजुनिच्छति अटविवचायां पापात् स्वयं सुज्ञो भवितुनिच्छती-त्यर्थः, सुच-सन् श्रीदिलान्नेम, दिक्तास्य सुची मीवादेशे (२११) कुछं, (१११) पल,

### ८१६। जयत्योः खोर्ये।

(ज-यल्पो: ५१, ख्यो: ६१, ६ ११।, ए ७।)।

खेतवर्णस्य जकार-यल-पवर्गात् परे श्रवर्णे परे दः स्थात् सनि । जुगती, जिजावियपति । रिरावियपति, पिपावियपति विभाविषपति । जयल्पोः किं, नुनावियपति । श्रतएव जो दिले वि: । \*

# ८१७। यु सु सु दु पु सु चुङां वा।

(गु—चुङां ६॥, वा<sup>°</sup>।१।)।

#### शियावयिषति श्रयावयिषति । ф

भीच इति धातुः, पचे सुसुच-धातुः। कर्म्यकर्नृत्वादात्मनेपदं। षढे इति किं, सुसु-चित वत्संगीपः, अव न पददयं नात्मनेपदछ। पाणिनिः श्राध्रशः।

क जय्यन्च प्रयंतकात्। खेदः ख्युनस्य। ए इति भ मब्दात् सप्तमी। जकारात् य व र छात् पवगांच परिस्तिती थेऽवर्ण किसन् परे खेदवर्णस्य इ: स्यात् भ्रस्थविद्वतिस्तानं उत्तर्भवात् व्यवहिते सनोव्यवं:। ज्ञानाविति पातुपाठः। जावितित्तिम्मिन जु इ ष इत्यस्य वित्ते ज्ञानस्ति जु जाविदित् सिन्ति जु जाविदित् सिन्ति जु जाविदित् सिन्ति जु जाविदित् सिन्ति ज्ञानविद्य इति स्थिते, भनेन जकारात् परे उवर्षे परे खेदवर्णस्य इ:। एवं राविद्यतिमक्ति, पाविद्यतिमक्ति, भाविद्यतिमक्तिलादि । नाविद्यतिमक्तिलात् नकारपरस्थितावर्णे परे न स्थादिति । एवं सुवाविद्यवित जु इ विद्यविद्यति सान्व- केसिन स्थात् । जवन्तं प्रेरिरदित्यादि वाक्षे भजीजविद्यादिविष (६३६) खेः सन्व- इति भनेन खेदवर्णस्य इ:। भन्तर जो, दिले, पद्यात् विदिति प्रागच्कार्यादित्यस्य स्वर्णादः। पाविनः र। । । ।

† युष सुष सुष दुष पुष सुष चुङ च तेषां। यु यवणे, सु गती, ए ख प्रस्ताः दु पुङ सुङ चुङ च गती, एषां सप्तानां स्वेदवर्णस्य द्रः स्वाद्या सिन, चयवितावर्णस्यासम्भवात् वर्णद्रयव्यवहिते उवर्णे परे इत्यर्थः। यु प्रश्वति धातुगद्र-चात् जयलपोरिति नानुवर्णते। यावित्रतृतिच्छति यु जि सन् दिलादौ स्वेदवर्णस्य वा द्रः। एवं प्रखन्तं प्रैरिरदिति वाक्ये यु-जि टी दि, चङ् युद्र रत्यस्य दिलादौ, खः सन्द्रावे, भनेन स्वेदकारस्य वादः स्थियवत् अग्रयवदित्यादि। पाचिनिः ०।४।८१। भव सुंब सुधातुनं दृष्यते।

## ८१८। व्युङो जो इसारे: सेम: क्वाच किहा स्ट्विट्म्पस्त नित्यं।

(ब्युङ: ५१, घ-व: ५१, इसादे: ५१, सेम: ५१, क्वाच् ।२।, घ ११, कित् ।२।, वा ।२।, वद-विद-सुष: ५१, तु ।२।, निल्बं २।)।

हसारे: सेम उकारोङ इकारोङय वान्तवर्जात् सन् क्वाच कित्वा स्थात् रुद्धादेसु नित्यं। रुरुचिषते रुरोचिषते, लिलि-खिषति लिलेखिषति। रुदादेसु रुरुदिषति विविद्धिति सुसुषिषति। वान्तः किं, दिदेविषति। \*

द्१ । जिस्तोः खेः सः पः षण्यस्वित्खत्-सन्हः । (जिन्होः ६॥, खेः ४॥, मः १॥, षः १॥, पणि ७॥, ष-धिद्-सद्-सहः ६॥)। वि खेः परस्य ज्ञान्त-स्तौत्योः सस्य षत्वभूते षणि षः स्थात्ं, न तु स्विद-स्वद-सहां। सुव्वापियषति तुष्टूषति। जिस्त्योः किं, सिसिचति। षणीति किं, तिष्ठासति। खेः किं,प्रतीषिषति। धे

इति सनन-पादः।

<sup>\*</sup> उस इय वी, तो जङी यस म व्युङ तसात्। नासि व (वकारानः) यत्र सः भव तसात्। इकाराकारोकः गर्यं कारानः धातारभावात् सत्र व इति दत्व एव। इस- आदि र्यस्य तसात्। इमा सह वर्तमानः सेम् तसात्। ज्ञाच इति चलारेण प्रकरणवणात् सन् आक्षयते। रोचित्र मिक्कति कच-मन्-इम्, भनेन सनः किल्वं ग्रणामावः, रुचिव इत्यस्य दिलादि। एवं लेखितुनिक्कति। रोदितुनिक्कति विद्तिनिक्कति मांवितुनिक्कति विद्तिनिक्कति विद्तिनिक्कति मांवितुनिक्कति विद्तिनिक्कति सांवितुनिक्कति विद्तिनिक्कति स्थादि। एवं देविता। पाणिनिः १।२।८,२६।

<sup>†</sup> ष्वप्राप्तौ नियमीऽयं। ष्वस्रुते षिष खिनिमित्तकं सूल्यातीः पतं ज्यन्तः सौत्योरिव स्थात् नान्यसित्यर्थः। भ्रष्तस्रुते सनि, तथा खेरन्यसात् पत्रस्ते षर्ण्यपि पूर्वनियमो बलवानिति। स्तिद-स्तद-सडां ज्यन्तानामेव निषेषः। स्वीपयितुनिन्धति,

#### ३य पाद:--यङम्तः ।

# ८२०। मूत्र सूत्र सूचाटमर्जूत्रर्णु हसाद्येकाचे। ऽशुभरची मुझर्भृषार्थे यङ्।

(मूत-एकाच: ४), षग्रमक्च: ४), सुइसंशार्थे ७), यङ् ।१।)।

एभ्यः ग्रभक्चवर्जभ्यो यङ् स्थात् पौनः पुन्ये अतिमये चार्षे । \*

 $\mathbf{z}$ २१। गत्यर्थाद् गृ लुप सद चर जप जभ हें ।  $(\mathbf{q}, \mathbf{q}, \mathbf{q}$ 

गत्यर्थात् वक्रे, यादे गेर्हायां, यङ् स्थात् नतु पूर्विक्रे, तद्युक्ते तुस्थात् । 🕆

स्वप-वि-सन्, स्वापियम दलस्य दिलं, (६४७) खे जिं:, (१११) सनः सस्य मूलधातीय पतं। सोतुमिच्छिति सु भन् । प्रे थे दीर्घः, स्नूम दलस्य दिलं, उभयन पतं। सेनुः मिच्छिति सिच-सन् (२११) कुछ्, सिक्स दलस्य दिलं, (१११) सनः सस्य पतं, जान्त-सु-मिन्नलात मूलस्य न पतं। एवं सुन्वतीत्यादि। स्थातुमिच्छिति स्था-धन् स्थास दलस्य दिलादी, निमित्ताभावात् सनः पलाभावं, एतित्रयमविधिकृतेलात्, (१११) मूलस्य पत्नं। प्रत्येतुमिच्छिति प्रति-द-सन्, (७११) दकारं हिला केवलं सन एव दिलं, (६४०) खेरित्ले, सनः सस्य पत्ने, मूलसातुनिमित्तकं खेः सस्य पत्ने स्थादेव, भव खेः परिख्यतमूलभात्यादितिवयमप्रवेशानवकाशः। खिदादेसु सिखेदियिषतील्यादीन पत्नं। पाणिनिः पाश्वदि, ६२।

<sup>।</sup> गृथ लुप प सद च पर च जप च अपन च दन्श च दह च तस्मात्। वक्रय

# ८२२। खेर्पु:। (खे: ६।, प: १।)।

यिङ परे खेर्णुः स्थात्। पुनः पुनरित्रययेन वा सूत्रयित स्रोसूत्राते, सोस्त्राते सोस्चिते। \*

# ८२३। घी ऽनितः। (र्घः रा, भ-नितः ६।)।

अन्नकारेतः खेः यः स्यात् यक्ति । अटाव्यते अधास्यते अरा-र्थ्यते कर्णीनूयते । पे देदीयते मेमीयते जेगीयते जेहीयते पेपीयते सेषीयते तेष्ठीयते । ध

गर्डाच बक्तगर्ड तिखान्। गत्यर्थादिति गृलुगादिश्ति च पृथक् पदकरणं वक्तगर्डान्या यथासङ्घार्थः, तेन गत्यर्थात् वक्षे गाडे गर्डायामिति । न तु पूर्व्वोक्ते इति एस्यो सुद्धर्भशर्थे न स्यात्, तदयुक्ते सुदुर्यन स्व्वायेन वा युक्तयो वैक्षगर्डयोज् स्थादित्यर्थः। अत्र गत्यर्थादिति इसाधिकाच एव, पूर्व्वस्त्रे सामान्यती ग्रहणात्। पाणिनिः इ।१।२९,२४।

<sup>\*</sup> पुनःपुनरित्थियेन वा इत्यान कियाविभिषणे दक्षीया । भूनत्का प्रस्रावे, मूच-धातीयुरादिलात् जिः (७०५) पकारलीपे, मूचिधातो र्थेङ् (६४१) जिलीपः, मूचा इत्यस्य (६२२) दिलं, खेरादाची लीपे, पर्नेन गुणे, मीन्चा इति (६२१) धातु-सन्नायां, यङो ङिल्लादाल्यानपदं चे अप्, (५४२) यङीऽकारलीपः मीमूचाते इति । एवं सूचत् क सीस्चाते, सूचत् क सीस्चाते । पाणिनिः ०।॥८२।

<sup>†</sup> न इत्योषां ते नितः (नीन् तुन् रीन्), न विद्यने नितो यस सीऽनित् तस, स्विरित्यस्य विश्रष्यं। षटाध्यत इति, षट गतौ, पुन.पुनरित्ययेन वा वक्षं षटित, (किवसं) वक्षं पटतीति वा, इत्ययं पट-यङ् षध्य इति, (०१८) यकार हिला व्य दत्यस्य दिलं, स्वेरायच इति यकारलीपे, ष्मनेन षकारस्य दीर्घः। एवं पुन:पुनरयाति, प्रशासते। पुन:पुनर्वकं स्टक्ति इयक्तिं वा यरार्थते, स्व यङ् (६१५) गृणः, षय्ये इत्यस्य षकारं हिला, (०२०) ष-थे इति कथनात् यो इत्यस्य दिलं, खेरायच इति य-लीपे षर्यं इत्यस्य पनेन खेदीर्घः। पुन:पुनद्षणिति कर्ण्-यङ् (५८०) दीर्घः कर्ण्य इत्यस्य (०१८, ०२०) कां रख हिला णूय इत्यस्य दिलं, खेणुं-, रेफसम्बन्धामावात् मूलधाती-नंकारस्य दन्यलः। पाणिनिः ०४॥ व्य

<sup>💲</sup> इसायेबाच उदाइरणाचाह पुन:पुनर्दशाति दा-यङ् (६११) डो, ृदीय इत्यस

भोश्यते शेष्वीयते, साम्मर्थते, चेक्रीयते सचेष्कीयते, विसे-सिचते, यङलान्न पः । \* वक्रं वजित वावज्यते ।

८२८। यो र लः। (णः ६६, र १११, लः १६)।

गिरते रो लः स्थात् यिङ । गिर्हतं गिरति जीगित्यते । लीलुप्यते सासयते । पं

दर्प्। की युर्जा। की युर्जा। की: दा, चः रा, वा।रा)। की: खेयु: स्यादायिकः। चीकूयते, कीकूयते। क्ष

दर्ह। नीनं वन्च सन्स ध्वन्स सन्श कस पत पद स्कन्दां। (नीन ११), वन्च—कारां (॥)। एषां खेनींन् स्वात् यिङ। वनीवचिते। §

हिलादि। एवं पुनःपुनमाति, गायित, जहाति, पिवति, खिति, तिष्ठति। सी स्था इति हुयी भेलस (१११) पलं।

<sup>\*</sup> पुनः पुनः स्वयति सि यङ् (६६८) विकल्पेन जिः, (५८०) दीर्घ, स्य इत्यस्य दिलादि, पचे सीय इत्यस्य दिलादि। पुनः पुनः स्वरित स्वृःयङ् (६१५) गुणः, स्वर्यं दृत्यस्य दिलादि। कः यङ् (४८०) करस्याने नी, भीय इत्यस्य दिलादि। सं-कः यङ् (७६६) सुन करी, (६१५) स्कुन् व्याभेविति नियमान न गुणः। वि-पूर्वेक सिचः यङ् विसेतिस्यते, (५०५) स्वत्र गि-निसित्तकं खिनिसित्तकमपि पत्नं न स्यात्, दशस्यादेदेय इति विधानवन निषयेदिप तथा।

<sup>†</sup> गृथ निगरणे, यङ् (६२८) ऋखाने इर्, भनेन र स, गिल्य इत्यस्य दिलादि। हिमौ निरतेदिति कथनात् रणाते जेंगीर्थते इत्येव। गर्हितं सुम्पति सोसुप्यते, गर्हितं सीदति सासयते। पाणिनिः ८।२।२०।

<sup>†</sup> मस्दृक्ष्यत्या स्वेदित्यस्यातुविधः । कुङ्गस्टे, पुनःपुनः कवते इति कु-यङ्, (५೭०) दीर्घः, भनेन वास्वेयु भादेशः । पाणिनिः ०।४।६३ ।

<sup>§</sup> वन्चुगत्यां, सनसु लृङ संशे, ध्वनसु लृङ गती, धन्य य ङ ঋष:पाते (ताल-व्यानः, पाणिनिमत्त दन्यानः.), कस ज्ञागती, पत लृज्ञागत्यां, पद स्थैथें—पथी ङ

### ८२७। जम जप जभ दह दन्य भन्ज पश् शपो ऽता नुन लवयस्तु वा।

(अम-श्रपः ६१, घतः ६१, तृन् १२१, च-व-यः ६१, तृ १२१, वा १२१) । जमन्तानां जपादीनाञ्च श्रदन्तस्य खे तुन् स्थात् यङि, लवया-न्तस्य तुवा । जञ्जन्यते जाजायते ।%

८२८ | इना वा भी | (इनः हा, बारा, भी रा)। जीभीयते जङ्गस्यते । जञ्जस्यते । चञ्चस्यते चाचस्यते, मस्ययते मामस्यते, दन्दयते दादयते । १७ '

गती इति हमं, स्कल्टिरी गति-शोषणधीः इति । नीनी न इत् भन्ते । अव पत सृष्ठ गत्यामित्यस्वेत ग्रहणं, पत्य उद्येश इत्यस्य तृ पापत्यते इत्येय, तेन (१११८) पापतिरिति स्वयसुदाहरिष्यति । वक्तं यञ्चति, तन्च-यङ् (५६०) न लीपे, वच्च इत्यस्य द्विते, भनेन स्वेनींन् वनीवच्यते, (८९३) न कारिचात् न दीर्घः । एवं सनीसस्यते, दनीध्वस्यते, वनीसस्यते, पाणिनः ९।४।८४ ।

<sup>\*</sup> जम् प्रत्या हार: । जमय जपय जमय दृष्य दृग्यथ भन्जय प्रयय प्रपण तक्कः।
भव तृन: भेवलं न द्रत् भने, न तृ जकार द्रत्, भनो तृ-रनुस्वारः, भन्यथा यंयस्ति
रंख्यते द्रत्यादौ भसपरत्वाभावात् (५०) भन्यदारो न स्वात् । येन विधिस्तदन्तस्ति
न्यायात् ल व य द्रति लाल-वाल्न-यालानामित्रत्यदे । ल-य-मन्यपाठात् वकारीऽव दन्यः ।
पुन: पुनर्भायते जन यङ् (६५५) ङा-भादेशस्य विकल्पपचे जन्य द्रत्यस्य दिलं, भनेन
स्वेनुन, (५१) भनुस्वारस्य नित्यं जम् । जीभराम् — भनुस्वारस्य दान्तत्वं परिकल्पा (५२)
वा जम् कुर्व्यन्ति (तिङ्न्तपादस्य ५६० मृचे गोयीचन्द्रः) । नकारित्वात् (८२३) स्वं न
दीर्षः । जन-स्थाने (६५५) ङा-भादेशपचे जाजायते द्रति । एतत्म्वीटाहरणाञ्र
भादौ ङाभावपची दर्भितः । पाणिनः ०।४।८५,८६ । भव शपकातुर्ने दृश्यते ।

<sup>†</sup> इन-पातः भी स्वादा यिकः । पुनःपुनईनि इन-यङः, भीय इत्यस्य दिलादि । विकल्पपचे इत्य इत्यस्य दिले, पूर्वेण खेन्न्, (६०६) खेः परस्य इस्य घः । गर्हितं व्यक्ति जञ्चप्यते । एवं नञ्चभ्यते, दन्दश्चते, दन्दश्चते वस्यस्यते, पम्पश्चते प्रश्चिते । वसं चलति, पुनःपुनमंवति, वसं दयते, एतेषु पूर्वेण वा नृन् । नृन्पचे खेनं दीर्धं. । "इन्हेस्यां यक्षि ग्रीभावो वाचाः" इति वार्त्तिकम् ।

### ८२८। चरफलोक्चोङी न णुः।

(चर-फली: ६॥, उत् ।१।, च ।१।, चङ: ६।, न ।१।, छ: १।)।

चरफलोः खेर्नुन् स्थात् उक उकारस यक्ति, तस्य चन णः। चञ्चर्यते पम्मुखते। \*

८३०। रीनृत्वतः। (रोन्।११, चलतः ६१)।

ऋकारवतो धोः खेः रीन् स्यात् यिङ । नरीतृत्यते । 🌵

८३१ | व्येखपखमो ज़ि: | (वी-खप-सम: ६१, नि: ११)।

एषां जि: स्यात् यङि । विवीयते सीषुष्यते सीसम्यते । इ

८३२। नवगः। (न।१।, वमः ६।)।

वष्टे जिं ने स्थात् यङि। वावस्थते। §

अर्थुन्दित्भात्वत्तंत्, खेरङोऽभावात् मूल्धातीरङ उकारयः। यङ्लुक्
प्रसक्तस्य गुणस्य निषेधार्ये न णरियुक्तं। वकं चरति चर्यं इत्यस्य दिले खेन्न्,
मूर्धाती रङ उकार: (२२८) तस्य दौर्दः। पुनःपुनः फखित पम्युल्यते। पाणिनि
०।४।८०,८८।

<sup>†</sup> स्ट्रेन् विद्यते यस्य साम्यतान् तस्य । स्टकारवत इत्यनेन यदा सकारस्थिति तदेव सि: रीन् स्थादित्ययः, तेन चिकीयते इत्यादी (४८६) स्टकारस्य रीभावे न रीन्, यङ्कुकि तु चरीकर्त्तास्थी स्थादेव । एवं यङ्ग्रकः नयादीनां (६६१) जौ क्रं स्टकारवच्चात् रीन् स्थान्, तेन नरीग्टक्षते परीष्टक्यते वरीव्यते इत्यादि । पुनःपुन कृत्यति तत्तर्यक्ष्त्रत्यक्ष्य स्थादे स्थादि । सुनःपुन कृत्यति तत्त्रयक्ष्यत्य स्थाद स्थादि । सुनःपुन स्थादि । पाणिनः । एवं दरीहस्यत् स्थादि । पाणिनः । एवं दरीहस्यत् स्थादि । पाणिनः । १४।८०, वार्षिकस्य ।

<sup>‡ (</sup>६६१) खपादे: किति जिरिति नियमादमाप्ती विधिषयं। श्वनिष्टलात् खे रित्यस्य नानुइति:। व्ये जै इती, खप घलु श्रयने, स्वतु ध्वाने, पुनःपुनर्व्ययतीत्यादि वाक्यानि। व्ये यङ्, श्वनेन जि:, (५८०) दोर्घः, यीय इत्यस्य दिलादि। स्वप-यड जि: सुष्य इत्यस्य दिलादि, (१११) घलं। स्वम यङ् जि: विस्य इत्यस्य दिलादि पाणिनि: ६।१।१८।

<sup>§</sup> यहादिंखात् पाप्तौ निषेष: । वश ख कान्तौ, पुन्:पुन वृष्टि । पाणिनि: ६।१।२०

# ८३३। चाय: की। (चाय: ६१, की।१।)।

चायते: की स्थात् यक्ति। चेकीयते। क्ष

८३४। घाध्मा ङी। (घाषी: (॥, डी।१।)।

जेघीयते देधीयते । १

## ८३५। ग्रीडो इय येऽगौ।

(मीङ: ६।, ङय्।१।, यं ७।, भणी ०।)

ग्रागयते । 🕸

#### यङ्नुगन्तः।

# ८३६। यङो लुग्वापा लुक् पं दि गाँदि च धूक्तन्तु वाऽनि तु नित्यं नेतिः।

(यक्ष: ६), लुक् १२१, वा १२१, भवः ६), लुक् १२१, पं १२, विः १२, खादि ११, व १२१, पृक्तं ११, तु १२१, वा १२१, भिन् ७), तु १२१, निन्दे ११, निर्दे ११, जतः ४।)।
यक्षो लुक् स्यादा, लुकि सित अपो लुक् पं दित्वं खेर्णुसित्यनदि
कार्याच स्थात्, ध्रयहणोक्तन्तु वा स्थात्, अनि तु नित्यं लुक्
स्यात्, उदन्तास्विनिन स्थात्। §

<sup>#</sup> पाणिनि: इ।१।२१।

<sup>+</sup> उत्ती इत्यस्य उत्सत् धन्यस्य स्थाने । पुन:पुन जिम्नति, पुन:पुनर्धमतीति वाक्ये । पाचिनि: ७।४।३१।

<sup>‡</sup> भौ धातो कैय् स्थात् भयो थे, डिक्तादत्त्यस्य स्थाने, भय-स्थितिः। भयौ ये इति कथनात् कर्मायि वार्च्यक् भ्रय्यते, क्वाचः स्थाने यप् संभ्रयः, काप् भ्रय्या इति । पुनःपुनः भेते, भौ-यङ्, उत्युभय्य इत्यस्य दिलादि । पाणिनः ७।४।२२ ।

<sup>\$</sup> यही लुक-करणेन स्वलीपे त्यलचगमिति व्यायपात कार्यस्य लुकिन तनेति निषेषात् (४८०) यङ्ग्रको चर्दीति, (६१५) स्यायर्थृतो णुरिति, (५६०) इस्ड्नी-

बीभवीति बीभीति, बीभूतः बीभुवति। अबीभवीत् अबीभीत् अबीभूतां अबीभुवन्, अबीभूत् अबीभुवीत्, बीभु-वाचकार। \*

वनीवचीति वनीवङ्क्ति, वनीवकः, वनीवचित । जङ्ग्मीति जङ्गन्ति, जङ्गतः, जङ्ग्मिति जङ्गमितः, जङ्गमीमि जङ्गन्मि, जङ्गन्मः। जङ्गनीति जङ्गन्ति, जङ्गतः, जङ्ग्मिति जङ्गनित जङ्गनितः,

लोप इत्यादीनि न स्युः, यङ नलंन विहितं कार्थं स्यादेव, तेन घातुमं ज्ञा स्थानाम् च स्यात् । खादि-कार्यस्य यङि परे विहितस्य लुक्तं न तचेति निषेधादमाप्तौ वचनं । धुग्रहणीक्तमिति, यव कचित् स्वं धातुविश्रेषग्रहणपूर्वकं यत् कार्यमुक्तं तदवा स्यादिति । चिन तु इति (८९३) पचादिलादिन क्रते तसान् परे नियंयङो लुक् स्यात्, इस्सीदन्तधातीनु चनि परे न लुक्सात् । पाणिनिः २।४।७४, भाष्यच ।

तिपा ग्रपान् व सेन निर्द्धिं यत् गणेन च। यवेकाच् ग्रहणं कि चित् पर्चेतानि न यङ लुकि। ज्ञाचार्या ग्रङ लुको च्छित् में ट्रक्त मिन्टामिष्॥ इति प्राचीनव चन-मिष् स्राप्योगं। (६८६) वेति रिखादी तिषा निर्द्धिलात्, (५०६) स्वर इति प्रपा, (७१०) भीङ इति चन्वसेन, (६८५) कहा इत्यादी गणेन, (५०६) एकाची वक्त स्रवात्, तत्तन् कार्थन स्रादिति। ज्ञांनेटां सेट्क्तं (८४१) विभिदिता इत्यादी।

कु पुन:पुनभंवित यङ् लुकि, भू-यङ तस्य लुक, िहलं खे गुँण:, बीभ् इत्यस्य धात्-संज्ञायां तिप्, प्रप् तस्य लुक, (७२२) ईस, गुण:, बीभवीति। ईभी विकत्यपचे गुण:, बीभीति। एवं सन्त्रंव। बीभू तम, िङ त्वात् न गुण:। भित्त (६८७) अन्त-स्थाने भन, (५८८) खव, बीभुवति। घी-दिप् (७२२) ईस् वा, भ्वीभवीत, भवीभीत्, धी-तां भवीभूतां, धी-भन, (५८३) भूवर्जनात न छम्, (५८८) छव, भवीभुवन्। टी-दि (५५२) ध्यहणोज्ञालात् वा सिलीप: भ्वीभूत्, पत्ते भ्वीभुवीत्, (८४१) भरे गुणनिके-धात् उव्। ठी णप् (५८२) त्यानादाम् खय्, ततः (५८३) क्रप्योग:।

† वन्च-यङ्क्क, दिलादि, (८२६) खं नींन् वनीवसः भारोसिष्, र्र्म्। द्रेमी विकल्पपंचे (२११) कुङ्, (५०,५१) नस्यातस्वारे भनुस्वारस्य ङ्। तस्, (५६७) म-स्वीप:। मन्ति, (६६७) भनस्याने भन्, न-स्वीप:। गम-यङ्कुक् (८२७) खे नृन् कङ्गभधातुः, ततिस्वप् वा द्रेम्। पचे मस्यानस्वारे तस्य न। तस् (६७६) अम्स्वीप:। भन्ति (२३०) ध्रयहणीक्षत्वान् वा छङ्क्वीपः, अन्त धन्। मिप्देम् वा, पचे (२०२) ग्रमी म-स्थाने न। वस् मस् उभयत्र मस्याने न। इन-यङ्कुक् गमवन्, भिषक्ति (६७८) इस्र घ।

चचुरीति चच्चृत्ति । चाखातः चङ्कतः, चङ्ख्नृति चङ्क-नित । जाजातः जञ्जनः जज्ज्ञिति जञ्जनित । देदिवीति देद्योति देदेति, देद्यूतः देदितः, देद्यूवः देदिवः । वेविच्छीति वेविष्टि, वेविष्यः वेविच्छः । \*

८३७। हाक: खेर्न घं:। (हाक: ६१, खे. ६१,न ११।, घं: ११)। जहेति जहाति। १

## ८३८। दन्शो न-लीपो वा।

(दन्म: ६।, न-लोप: १।, वा ११।)।

दन्दभीति दन्दंभीति दन्दष्टि दन्दंष्टि । 🕸

### ८३८। जिनेवा। (जि: ११, न ।१।, वा ।१।),।

<sup>्</sup>र चर यङ लुक् (८२८) खे नुंन एङ छकारय, तेनैव गुणानियेधः, ईमीऽभावपचे (१२८) छकारस्य दीर्घः। खन-यङ लुक्, तम् (६५५) धृक्षवात वा छादेशे, जमन्तवाभावात् खेने नुन्, (८२१) दीर्घः। पचे जमन्तवात् खेने नुन्, (८२१) दीर्घः। पचे जमन्तवात् खेने नुन्, (८२१) दीर्घः। पचे जमन्तवात् खेने । चित्र ति न्यायात् तिप् सिप् प्रस्तिषु पादौ (७२२) ईमि छादेशाभावे चक्षनीति चङ खन्तीत्यादि. ईमी-विकत्यपचेऽपि पिति भसे पर्वे निष्धात् न ङा इति बीध्यं। जन-यङ लुक् खनवत्। दिव-यङ लुक् दिव घातुः तिपि देदिशैति(७३४) निषधात् न गुणः। ईमी विकत्यपचे (८४४) वस्त्रीन जट्, तस्य गुणः। जटी विकत्यपचे (६४२) वस्त्रीपः, तती गुणः। तम् वस् एभथच वा जट्, पचे वस्त्रीपश्च। विकत्यपचे (८४२) इस्त्रीचः, तिप्, ईमी वक्ष्यपचे (८१४) इस्त्र थः।

<sup>†</sup> हाकथातो: खें: चीं न स्थात् वा यङ्लुकि । (८२२) घींऽनित इति प्राप्त-दीर्घस्य निषेधोऽयं । जहिति (०२२) ई.म्, सिन्धः । सिद्धान्तकौसुदीसते तु न दीर्घनिषेधः, तेन जाहिति जाहाति इति ।

<sup>‡</sup> दन्म-धाती र्नकारस्य खीप: स्वादा यङ्ल्कि । दन्दमीतीति द्रेनपचे वा नकारखीप:, श्रनीभपचेऽपि वा नकारखीप:। (८२०) खंनुन, श्रनिनपचे (१५४) षङ्, (४०) तस्याने ट। पाणिनिः ०।२।८६, श्रव मुत्रे नित्यम्।

#### सास्वपीति सोषुपीति समस्यिध सोषोति। #

### ८४०। रीना रिनरनी वा।

(रीन: ६।, रिन्-रनी १॥, वा ।१।)।

रीन: स्थाने रिन्रनी वा स्तः यङ्तुकि । चरिकरीति चर्करीति चरीकरीति चरिकर्त्ति चर्कर्त्ति चरी-कर्त्ति । †

# ८४१। यङ्लुक्कालापे ऽरेन गुत्री।

(यङ्लुक-कालीपे ७।, परे ७।, न ।१।, णु-त्री १॥)।

विभिद्ता मर्मृजिता। अरे किं, वेमेत्ति मर्मार्छि। 🕸

इति यङन पादः।

च यङ् निसित्तक एव जि नं स्यात् वायङ् लुकि, नेन(प्रश्ते अविष्याने जित्स्य स्थेन निषयः। जिवेति क्वते जिमानस्थेन निकल्यो स्थ्यते। वस्तुतन् (६६१) यहारि जिनिस्सेन । सोष्पीति स्थापित विवित । स्थापित स्थापित सेस्पित सेस्पित सेस्पित सेसिन्त । पाणिनिसते निस्यम् ।

<sup>†</sup> स्वलात् चलाभावः। अव वा-यहणं परव निव्रत्ययं। रीनः स्थाने इति रीन उत्पत्तिस्थाने इत्ययंः, अन्यथा नित्तात् रीनोऽनं रिन्रन्प्रस्तिः स्थात्। रनोऽकार उदारणार्थः। क्र यङ्कुक्, ईस्पर्च रिन्रन्रीन्, अनीमपर्चऽपि रिन्रन्रीन्, अतएव षट् पदानि । एवं वत—वरिव्रतीति वर्षतीति वरीवृतीति वरिवर्त्तं वर्ष्वार्तं वरौवर्त्तं इत्यादि । स्ट्यानीम्, अग्यिरीतं अर्रीति अरियत्तं अर्प्तिं, अव (५८५) असमानवर्षे परंस्वेरिय । पाणिनिः ९।४। १९, १२ ।

<sup>‡</sup> यङ्लुक् च कालीपय तत्तिकन्। यङ्गेलुकि कालीपे च सित घरे स्वती न स्वाता। पुनःपुनरित्रधीन वा भेत्ता केभिदिता, विभिदः छो ता (५५४) इस्, चनेन गुपः निषेधः। पुनःपुनर्गार्जिता सर्वं जिता, पूर्वम् तेच खेः रन्, सर्वं ज-डौ ता, इस्, (६८४) स्वजीऽकि कि तीव्यनेन प्राप्ती चनेन बिद्विनिषेधः। का-लीपे तु (८४५) स्विभिता इत्यादि। जौमरास् यङ्लुगलेश्यो जौ कते विकल्पेन बर्डि कुर्वन्ति, बीभावयित बीभुवयतीव्यादि (संविप्तसारे तिङ्लपाटे ४६० सूर्व)। पाषिनः १।११४।

#### ४र्थ पादः—लिधुः ।

----

## ८४२। ले: काम्यक खेच्छायां।

(ले: ५।, काम्यक ।२।, स्वच्छायां ७।)।

ली: पर: काम्यक् स्थात् भाकोच्छायां। भाकनः पुत्रमिच्छति पुत्रकाम्यति। अ

#### ८४३। क्योऽस्यार् यस्।

(क्यः १।, भस्वप्रात् ४।, ई.।१।, भः १।, च ।१।)।

मान्त-व्य-वर्जात् ले: क्य: स्यात् खेच्छायां,तिसिन्नवर्णे ई स्यात्। कि ज्ञानीयति । (४२३) श्रोदीतीऽज्यदिति। गव्यति नाव्यति । (४८०) यङ ख्यक्ये इति । कर्नीयति । (२५८) क्यां ख्ये च गार्गीयति । क्ष

अ सम्य दक्कायाः कर्ममूतं यिश्व थि यममस्तादिशेषणात पालामिन्न सम्बन्धि पदाद्या उत्तरवर्ति न स्थात् तदा तस्थात् काम्यक् स्थादित्यशः, तन महान्न प्रविमिक्कित द्यादी न स्थात् , समास तु महापुत्रमिक्कित राजपविमिक्कित द्यादी स्थादेवित । काम्यकः कित्वात् भालानी मृत्तिमिक्कित स्वित्तकाम्यतीत्यादी न गुणः। पालानः प्रविमिक्कितीति वाक्यविन्धासात् दितीयानात् लिशियं वांत्र्यं, तन भालानः पुत्र द्रष्यते प्रविमिक्कितीति वाक्यविन्धासात् दितीयानात् लिशियानात् काम्यकः (११८) भेलुंक् त्ये चिति स्थे परे भेल्कि, पुत्रकाम्य दति (६३१) घाषुस्त्रायां, तिप्-प्रपी, (५८३) प्रकारकीयम्य । पाणिनः श्राहा

<sup>†</sup> मच व्याघ न्यां, नासि स्वां यत्र भोऽन्वासस्यात्। मकारानं चत्रयस्य हिला चन्यस्यात् लिङ्गादिलयः। चत्र चकारेण काम्यक् च स्थादित स्वितं। तेन चर्चस्यात् लिङ्गात् काः काम्यक् च स्थात्, भकारानाटव्ययास्य केवलं काम्यगंवित निकार्यः। कास्यकः इन चगुणायं, यर्नस्थतिः। पाणिनिः श्राप्,०।धारु, वार्सकः सः।

<sup>‡</sup> भावानी भानमिकात भानमिवासात् काः,तिमन् पर अकारस्थ ई, जानीय इति

**८८८। न-लाप: क्यड**ेत्र । <sup>(न-लाप: १।, का-ङेत्र ०)।</sup>

#### राजीयति। #

#### ८४५। इसात्तयोर्वारे।

(हसात् प्रा, तयी: ६॥, वा ।१।, परे ०।)।

हसात् पुरयीः व्य-ङायोर्लीपः ,स्यादा अते। समिधिता समिज्यिता। वे अस्पात् विं, विंवास्यति स्रःकास्यति । इ

धातः । एवं पुत्रीयतीत्वादि । पूर्वभ्वेण ज्ञानकास्वतीत्वि । भवर्णस्य ई-कयनात् कन्यामिच्छति, कन्यीयति ज्ञान्न भाकारस्यं ई । कन्याकास्यतीति च पूर्वभ्वेण । गा-मिच्छति गव्यति, नावमिच्छति नाव्यति, उभयत्र कास्य भन्वद्वावात् (३५) क्रमेण भव् ज्ञाव् च । 'व्यातानः कर्नारमिच्छति, च्रम्थाने री,। एव धात्रीयति । गर्गस्यापत्यं गाग्यः गर्गभव्दात् एथः, ततः गार्थनिच्छति, व्ये परं भाग्नोपः, अकार ईय ।

 नात्तस्य ले नंकारलीयः स्थात् क्ये ङ्री च परे। (११८) नील्प फेडिशावित्यनेन विरामि परे नकारस्य लिथि कते (१५) तदादिविधि नं स्थादित्यती लीपिथिधानं।

एवत यहाथी: नली: विरामितिहितं किमिप कार्थं न स्वादित्यवानुस्तेथं, तैन विद्यांमिक्किति विद्याति अन न (१०३) दङ्। लिहिमक्किति लिख्यति अन न (१०३) इस्य छ। वापिनक्किति वाचिति अन न (१०६) इस्य छ। वापिनक्किति वाचिति अन न (२०६) कुल्। पुमांमिक्किति प्रस्ति अन न (१८६) स्वानल्प। नमः करोति नमस्यति अन न (१०२) विस्ताः। मिपिरक्किति अनुरिक्किति सर्पेष्यति धनुष्यति इत्यादौ न (२०२) विस्ताः। मिपिरक्किति भृत्यकिति स्वादौ न विरामिविहितला-भावात् (२२०) दकी दीर्घः। पाणिनः प्रानकिति पृथ्यति इत्यादौ न विरामिविहितला-भावात् (२२०) दकी दीर्घः। पाणिनः प्रानकिति पृथ्यति इत्यादौ न विरामिविहितला-भावात् (२२०) दकी दीर्घः।

राजानिमक्किति पूर्वम्वण काः, अनेन न लीपः, ततः पूर्वेण श्रकारस्य ईः।

† विभांकिवियरियामेन का-ख्योरनृश्वति:। समिधमेष्टा द्वित बाक्ये काः, समिव्य धातः, डी-ता, (५५४) द्वम्, अनेन वा कालीपः। एवं दृषदमेष्टा दृष्टिता दृष्टिता। इसात् किं, जानीयिताः अरे किं, समिव्यति। पाणिनिः दृ।॥५०।

( (८४३) क्वोडस्थादियस प्रत्युदाहरणमाह- किमिक्कित स्वरिक्किति, उभयव पूर्वण कास्यकाः एवं उदीकास्यतीत्यादि ।

# ८४६। धनोदकाशन-ष्टषाख्यले ग्रन्हपानान्त-जाभार्थे ङा डनङ ङा सन् सनसनौ को न ष:।

(धन—ली: ६।, यह— अर्थे था, उत्तारा, उनङ्गरा, उत्तारा, सन्।रा, सन्-अपनी रा।, की था, नारा, घ: रा)।

धनस्य ग्रहणे ङा, उदकस्य पाने डनङ्, ग्रग्ननस्य श्रवे ङा, द्वषाख्यीर्जाभे सन्, लेरर्थे काम्ये सन् ग्रसन् च स्थात्, की— सः षो न स्थात्। ॥

धनायति उदन्यति श्रमनायति वपस्यति श्रम्भस्यति, दिध-स्यति दध्यस्यति। ग्रहादौ किं, धनीयति। १

<sup>•</sup> अषय अयय अष्ठायं, धनस उदक्ष अभन च स्पायः विविति तस । यह य पानच अत्रच (भवणं) नाभस अपंथ तत्ति । सन् च असन् च सनसनी । धन-मन्द्रस्य ग्रहणे कास्ये ङा, ङ दि अत्वस्य स्थाने, उदकस्य पाने कास्यं इनङ्, ड डी, इती अन स्थिति:, अग्रनस्य भवणे कास्ये ङा, विपायथी नांभे कास्ये मन्, न इत् अत्ते, नाभी भैयुनं, एति इत- जिङ्गस्य अर्थे कास्ये भन् असन् च स्थात्, क्ये परे इति सर्व्यव योजनीयं। क्ये परे इति कथनात् इच्छापाधी, पुनर्वतो कास्ये इति कथनात् अति-स्णायामित्यर्षो वोध्यः। सः षो न स्थादिति एतन् भनदिग्रस्येव, तेन धनुष्यांत सर्पियतीत्यादौ पत्वं स्थादेव। सर्व्यव कर्माकारकादेव स्थादिति। पाणिनिः ७।४।३४, ७।१।५१, वार्त्तिकं काणिका च।

<sup>†</sup> घनं ग्रहीत्मिक्कति । घनायित ङा, घनग्रन्थार्थमङ्गीषनं प्राघीनानां मत्, तेन वस्तं घनायतीत्यादिप्रयोगः। उदकं पातृमिक्कति उनङ, डिक्कात् उदक्ष्यस्य अकारस्य स्थाने उन्, डिक्कात् उदक् इयस्य (१२६) टेः अक् भागस्य लीपः, उदन्य-धातः। अधनं (अज्ञादि) भोज्ञमिक्किति ङा, अवापि अर्थमङ्गेषे अग्रनायित पायसम् इत्यपि प्रयोगः। इषीऽन ग्रक्रलः पुरुषः, इषं अश्वं वा जन्तं (सङ्गियत्न) इक्कितः, अव च अर्थसङ्गेषेन, पुरुषं इषस्यतीत्येव प्रयोगः। दिध इक्कित सन् असन् च, न षतं। अव लिङ्स्य अर्थे कास्ये इति कथनात् नैव अर्थमङ्गेषः, तेन दध्यस्यति तक्षं इति न स्थात्। एवं चौरस्यति अवणस्यतीत्यादि। आदी दिधग्रन्दोन्दास्यति तक्षं इति न स्थात्। एवं चौरस्यति अवणस्यतीत्यादि। आदी दिधग्रन्दोन्दास्यति क्षं इति न स्थात्। एवं चौरस्यति अवणस्यतीत्यादि। अदी दिधग्रन्दोन्दास्यति क्षं इति न स्थात्। एवं चौरस्यति अवणस्यतीत्यादि। अदि दिधग्रन्दोन्दास्यति क्षं इति न स्थात्। एवं चौरस्यति क्षं पनित्यणाया किं, दधीयतीत्यादि। अस्यादौ किं, (भविष्यतीति ग्रेषः), धनिक्कित धनीयिति, एवं उदकीयिति, अग्रनीन्यति, व्यीयिति, अश्वीयति, अश्वीयति, अश्वीयति, अश्वीयति।

#### ८४७। ढडोपमानादाचारे काः।

(ढ-डोपमानात् ५), ऋाचारे ७।, काः १।)।

टात् डाचे।पमानात् क्यः स्थादाचारेऽर्थे। शिवमिवाचरति शिवीयति विण्णं, विण्णाविवाचरति विण्ययति शिवे। \*

८१८। द्वान्ङ्यकी सलोपश्च वा गल्भ-क्रीव-होटात्तु मं। (वान् ४।, डाकी १॥, स-सीपः १।, च ।१।, वा, ।१।, गल्म-क्रीव-होटात ४।, तु ।१।, मं १।)।

घादुपमानादाचारे ध्रें इंग्नि स्तः, मस्य च वा लोपः, गल्भा-देसु काविष मं। कृष्ण द्वाचरित कृष्णायते कृष्णित, स्वायते स्वति, स्वामास (५८२) त्यान्तलादाम्। प्रयायते प्रयस्ति। गल्भायते गल्भते। पं

<sup>•</sup> टघ डघ टडं टडघ तर्पमानवाति टडोपमानं तथात्। उपमानवाचकात् कर्मम्पदाद्धिकरणपदाच का. स्थात् पाचारेऽयें। विष्णुं गिर्वामव श्राचरित् शिवं विषो दिव पाचरित् उपमय काः, (८४३) प्रकारस्य द्रं, विष्णुवतीत्वच (५८०) दीघेः। कास्यक्पप्रसीनां कित्करणात् धात्विद्धितं कार्य्यं लिधौ प्रिय स्थादिति बाध्यं। पाधिकरणापमान्य क्ये परं न-लीपो न स्थादिति वक्तव्यं,तेनृ राजनि द्वाचरित राजनित युरी। राजानिभवाचरतीत्वच राजीयतीत्वेव। चीरीदीयलीत्वादि पदम् पान्नानं चौरीदिम्वाचरकीत्वादि वाक्ये कर्म्यापमानात् क्ये साध्यं। पाणिनि. ३।१।१०, वार्तिकच।

<sup>†</sup> कि चिरेकदेशस्थिति न्यायात् उपमानादित्यनुग्रस्थ, समझस्थाममस्तिन नित्याकाङ्-चेण भङ्गतिरिति न्यायात् घाटित्यनेन सम्बन्धः। द्वी कृतं डिल्वादात्मनेपदः का कृतंऽपि गल्भादेरात्मनेपदं विधीयतं। कृष्णायते इति (५६०) घाँऽज्य्यरं इति दीर्षः। एव इरीयते विष्णूयते। (४६०) पित्रीयते। (४२३) गव्यते नाव्यते। (२५६) गार्गा-यते। (८४४) राजायते दण्डोयते। (३२०) विद्धीवाचरति विदस्यते, सतीवाच-रति सत्यते, सन्दरीवाचरित सन्दरायते, युनीवाचरति स्वायते इति। कृष्णतीति किः, क इत् अगुणः इकार उचारणार्थः, ततः (४६६) वकारमात्व प्रथयस्थ

# ८४६। समादे सुप्रधे वा त-स-लोपसा

(स्वादे: प्रा, चूर्ये अ, वा ११, त-स-लीप: १।, च ११।)।

स्रगारे युग्धें डग-की वा स्तः, तिसान् तःस-लीपय। स्रगायते स्रगति स्रगीभवति । चेतायते ग्रन्नायते वेहायते । \*

# ८५०। डाज् लोहितादे: पञ्च।

(डाच लीहितार्ट: ५१, पं ११, च ११।) ।

डाजन्तात् लोहितादेश च्युर्थे ङाकी वास्तः पञ्च। पटपटा-यते पटपटायति पटपटाति पटपटास्थात्। लोहितायते

स्तीपः। तदललेन क्रण इति (६६१) धात्मंजा, तिष् अप्, (५४३) अकारलीपः। एवं इति-रिवाचरित क्रि. इरयित, एवं विश्ववित पितरतीलादि। स्वं इवाचरित छाः स्वायते, क्रिः स्वति । स्व इवाचषार क्रिः (५८२) स्वामासः। पय इवाचरित छाः, वा स्वीपयः भोजायते भागरायते दुर्भानायते एतेषु नित्य स्वोपो वज्ञन्यः। गल्भ इवाचरित छाः क्रिय, उभयनात्मनेपदं। एवं क्रीवायते क्रीवते, इंग्डायते इंग्डिते। गल्भीऽइद्धारी, क्रीवो नपुंसकः, होद्रं लीप्नं। पाणिनिः १११११, वार्तिकःसः।

ः ध्य पादि यस स तसात्। चे र्षथार्थः चभ्ततहातः तस्तिन्। तस सय तौ तयां लीपः तसलीपः। इतौ तस्तिन् इति उत्ते क्षी च परं त सलीपी नित्य इत्यर्थः। अध्यो ध्यो भवति जः ध्यायते, किः ध्याति, पचे (४८५) चिः ध्याभवति। एवं अचेतस्ति भवति चेतायते जः, मलीपः, (५८०) दौषः। किः चेति, पचे चेतीभवति पच (४८०) सलीपः। भगत्यत् ग्रयत् भवति जःकी, श्रयायते श्रयति, षभयच तलीपः, पचे श्रयहवति। एवं अवेहत् वेहत् भवति वेहायते वेहति वेह- इविति (वेहत् गर्भोपघातिनी गरेः)। ध्यादिय—ध्या भीन्न चपल वह्दय पण्डित पतीप चत्सक ग्रवि वेहत् श्रयत् जनाम् सुमनम् दुर्मानम् भिमनम् भीनम् तेनम् रहम् सुर्मानम् वर्मान् वर्मान् जप्ति वेहत् श्रयत् जनानम् सुमनम् दुर्मानम् भिमनम् भीनम् तेनम् रहम् सुर्मान वर्मान् । भवति हाविश्वत् । भवति विदायते अने निद्राविश्वत् । प्रापितिः स्मिव्यन एव, तेन निद्रायते जनः भनिद्रावान् । निद्रावान् भवतीत्यथः। पापितिः स्रिरीरः।

लोहितायति लोहितति लोहितीस्यात, धर्मायते धर्मीयति धर्माति धर्मीस्थात । क

### ८५१। शब्दसुखकष्टादे: क्रातिवेदपापे ङ्यः।

(शक्ट सख-कष्टादे: ४। क्रति-वेद-पापे ७। ङा: १।) ।

ग्रव्हादे: कती सुखादेरनुभवे कष्टादे: पापार्थे प्रवृत्तिरिख-सिवर्धे ङाः स्थात। ग्रन्दं करोति ग्रन्दायते, वैरायते। सुखमनुभवति सुखायते, दुःखायते। कष्टं नामं नारोति कष्टायते। 🕆

# ८५२। वाष्पोष्मफेनधूमादुद्दाक्तौ। (वाष-धृमात् धा, खदानी ७)।

वाष्पायते उषायते फेनायते धूमायते । 🌣

यदाि (५०१) सम्पदाित क्राम्निष परेष डाच विहित-क्रियाि अव डाजन्तात द्यक्तिविधानसामधीत द्य-कि-विषयेऽपि डाव स्यादिति वक्तव्यं। पञ्चेति चकारेण किल्वात प्राप्तनात्मनेपदमपि स्थादिति मुचितं। अपटत् पटत् स्थात् इति वाक्ये ञ्चिषये डाचि डिभावादी पटपटा इति डाजनान् डा भावानिपदं परसौपद्श्च, कि: पटपटाति, विकल्पपर्च चिं। एवं भर्काहितो लोहितो भवति, श्रधर्मी धर्मी भवति। लीहिनादिय-स्मादिभेषा लोहिनादवी हाटम । पाणिनि: ३।१।१३,१।३।८० ।

<sup>†</sup> भ्रव्स्य सुख्य कथ्य तत् भादि यंस्य तम्मात् । क्रतिय वेदय पापच तिमिन । बेट इति विट ल जाने इत्यस्य चलि रूपं। पापार्थं पापजनक कर्म्याणाः। कप्टंकर्मः करोति कष्टभनकः कर्ष्यं कर्त्ते प्रवर्तते द्रव्ययः । श्रव्हादिः — श्रव्हवैर प्रतीपाभ कन्द-भी हारदृद्धिना:, काल ह: मुदिनं भेघ: कोटा ऋहा ऋटा तथा, मीका भीटा च पीटा च म्रष्टा ग्रन्थादिशीरतः। सुखादिय-सुखं दु:खञ्च त्रप्तञ्च क्रपणः करुणस्त्रया, प्रतीपा-लीक भीढास क्रक्रांशाया: सखादय:। कष्टादिय— कष्टच मन्त्री गहनच कवः क्रक्र्य कष्टादिष् पञ्च शब्दाः । पाणिनिः ३।१।१४,१७,१८।

<sup>‡</sup> एम्यी डा: स्वादुदानी जर्डनि:सारणे इत्यर्थ:। पाणिनि: शशार्द, वार्त्तिकच।

८५३। रोमन्याच्छणे। (रोमनात्या, वर्षणे ण)। रोमन्यायते गौ:। \*

# ८५४। नमस्तपोवरिवःकाखुादिभ्यः क्यः छतौ।

(नमस्—कच्ड्वादिभ्यः ५॥, क्यः १।, क्वती ७।) ।

नमस्तरोति नमस्रति, तपस्रति वरिवस्रति, कण्डूयति कण्डू-यते, चित्रीयते, महीयते, हृणीयते । प

## ८५५। लेः क्रलाख्याने जिः।

(ले: ५।, क्रित-पाख्याने ७।, जि: १।)।

ते: परो जि: स्यात् कतावाख्याने च। प्रश्नं करोति श्राचष्टे वा प्रश्नयति, जड़यति श्रीडिढत्। श्रीजिढदित्येते। (४६८) लुङ् मददिनामिति। ईसमन्तमाचष्टे ईशयति। सुखन्तमाचष्टे सुचयति। स्रिवनमाचष्टे स्रजयति। क्षं

पूर्वमादुहानौ इत्यसायनुवर्त्तनम् बीध्यं, तेन सदगीर्य-चर्त्रणे पर्ये रोमत्यात्
 स्वाहित्यर्थः । रोमत्यायते उदगीर्थं चर्व्यवतीत्ययं: । पाणिनिः शशास्त्र।

<sup>†</sup> नसस् च तपस् च वरिवस् च काख्वादिश्व तेथ्यः । एम्यः काः स्थात् कर्तौ भर्षे । वित्वसम्भन्ने सेवा उच्यते । काख्वादिगणमध्ये काख्रुमध्यस्य आतृवस्थेन, चित्रौ मही हृणौ मध्यानां ङानुवस्थेन स्, (कामस्ययेऽपि) यद्यासम्भवं समयपदं भातानेपद्य । काख्वादिश—काख्यादिश—काख्यादिश—काख्यादिश्व—काख्यादिश्व—काख्या सिवीङ महीङ हृणौङ भस् मन्त वत्ग् लोट तिरस् स्तर्म मनस् पयस् उपस् कुषुभ सगध मधा सुख दुःख चुरण भरण वरण दूषण भवर सपर भरत भिषज् गृहगद एला वेला खेला लेखा रेखा पन्पण प्रस्तिः । पाचिनिः ३।१।१५,१८,१०।

<sup>‡</sup> भनुब्रत्ताविप क्रताविति कथनं स्प्रष्टार्थे। लेशित कथनात् दानकार्थे न स्वादिति, तेन लचयतीत्वादी न (२११) कुल्। ज इत् उभयपदं। प्रश्नयतीत्वादि, प्रश्न-जि (४६०) डिल्वात् (१२६) टिलीपे प्रश्नि इति (६३१) घातुसंज्ञा। वष्ट्रभातीः

द्र्ध् । ख्रिताखाखतरगालोडिताह्वरक्या-खतरेतक-लोपः । (श्रेतात्र-भाइरक्य ६।, भश्र-क-लोपः १।)। खेताखमाचष्टे खेतयति, श्रखयति, गालोड्यति, श्राह्वर-यति । #-

# ८५७। नाप् सत्यार्थवेदैकाजतः।

(नाप्।१।, सत्यार्थवेदैकाजतः ६।)।

सत्यादे रिकाचीऽकारान्तस्य च घो नाप् स्यात्, न इत्। सत्यापयति प्रयोपयति वेदापयति स्वापयति। (४००)वादान्ति-केति साधादयः, साधयति। प्रयस्माचष्टे यापयति। प

कि: किंद्रः, किंद्रमाष्टे इति किंद्र-भव्दात् जिं, जिल्लात् टिलीपे किंद्र्षात् किंद्रिकाल्यः तिरान् किंद्र्यः इति किंद्र-भव्यानः, (५८१) प्रनरमागमः, (६८१) प्रकः, (०१८) कर्नारं दिला दि इत्यस्य दिलाहि, (६४१) कर्नोपे पौडिद्रन्। एके वामनादयः। ईप्पालमिति ईप्रपाते: किप् ईट्, ततः ईट् विद्यते प्रस्य इति (४४१) मतुः, (१५४) प्रस्य ज्, (६४) जस्य ८, (५८) टस्य प, ईप्पान्। भनेन जिः, मतुः, ति या यस्य विश्वस्य पूर्वा प्रकृतिः सा तस्यित न्यायान् पुनसालन्य-प्र-स्थितः, ईप्रि धातः। एवं सुन्तमः स्विनस्य प्राचटे, वतु-विनोर्ज्ञक्, पूर्व्यावयवस्यितः। (४६८) सुङ् महिना-मिति वह्वचवेन प्रनट् कृत् वस्त्र प्रज्ञा प्रकृत् वक्ष्यः, तेन प्रमान्यते, या प्रस्ति प्रमान्यते, वस्त्राचि वस्त्र प्रस्ति, वस्त्राचि वस्त्र प्रस्ति वस्त्र प्रमावि वस्त्र वस्त्र प्रमावि वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र प्रमावि वस्त्र वस्त वस्त्र वस्त वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्

<sup>\*</sup> श्वेताश्रय पश्वतरय गाली दितय पाहरकव तत् तस्य । अश्रय तरय इतर क्या तेषां लीपः। एवां कमादितेषां गेणानां खोपः स्वादित्यवैः। अश्वतरमावर्धः, गाली दितमावर्धः, आहरकमावर्धः। (उन्त्रादशीले रोगानों मूर्वे गाली दिती मतः। पाहरकमस्यष्टवाक्यम्।) भाष्यम्।

<sup>†</sup> एका घासी चत् चेति एका जन्, सत्यय चर्यव वेदव एका जञ्च तत् तस्य । सत्य-भाषके, चर्चनात्रके, वेदनाचके, स्वमाचके दित वाक्यांति । वादमाचके साध्यति ।

८५८ | जि: कल्यादे: । (जि: १), कलादे: ४।)।

कल्बादेरप्रविश्वेषे जिः स्थात्। कलिं ग्रह्माति कलयित, ग्रचकलत्। इलयिति, ग्रजप्तल्त्। क्षतयिति, ग्रचीकतित् ग्रचकतित्। वर्णयिति, त्वचयित। तृस्तानि विनिद्दन्ति वितृस्त-यिति। वस्त्रं संकादयिति संवस्तयित। अ

वर्माणा संनद्वाति संवर्मायित'। चूणैरवध्वं सते अवचूणैयित।
हस्तिना अतिक्रामित अतिहस्तयित। वीणया उपगायित
उपवीणयित । त्लैरवकुणाि अवत् लयित । स्नोकैरपस्तीित
उपस्रोकयित । सेनया अभिमुखं याति अभिषेणयित ।
अभिषिणियिषति । रूपं पश्यित रूपयित । लोमान्यनुमार्षि अनुलोमयित । हस्तौ निरस्रति अतिहस्तयित ।

एवं भन्तिक सायष्टे नेद्यति, स्यूल सायष्टे स्ववयति, दूरसायष्टे द्यवति, युवाने यवयति, (४०४) कन्-भाटेशे कन भति, चित्रं चेपयति, चुद्रं चाँद्यति, प्रियं प्राप्यति, स्थिरं स्थापयति, स्थितं स्थापयति, स्थितं स्थापयति, स्थितं स्थापयति, स्थितं स्थापयति, स्थापयति, स्थापयति, द्राप्यति, इत्यं इत्ययति, इत्यं वर्षयति, (४०२) ज्य-भाटेशे ज्याप-।ति, वन्दारकं वृन्द्यति। कर्त्तारं (४६८) वन्ति में कार्यति। (४०१) प्रमध्यमि । स्थापयति, १४०२) ज्यापयतीति च। (४०३) पृष् प्रययति, सदं सदयति, क्षां क्रमयति, स्थाप्यति, द्रष्टं द्रवयति, परिवृदं परिवृद्यति। (४०४) भ्रम्पं क्षमयति स्थापयति, स्थापप्यति, द्रष्टं प्रवयति, विभिन्ने परिवृद्धं परिवृद्धं विभिन्ने ।

<sup>\*</sup> काल शादिर्गस स कल्यादि सस्मात्। काल इली कामधेन सन्नार्थवार्थवासकातादिति । स्वतो भाज्यने च (८५५) पूर्वेण जिविधानात् भन भर्षविभिषे स्मादिशकम्। मध्य स्थापित, कालां रुक्षतीत्मादि। कालिश्रच्यात् जिः, (४६०) डित्, टेलोपः, कालि इति धातः। भ्यभ्यक्षति (६२८) कालि इति धातः। स्थाप्तातः। स्थाप्तातः। वर्षे हिलं रुक्षाति, त्रतं रुक्षाति। भ्यभिततदिति (६२८) विकर्षन सन्वद्वावः। वर्षे (वर्णद्वा) रुक्षाति, त्रचं रुक्षाति। वितृत्वयिति, तृत्वरितं कारोबीत्ययः। (तृत्वं देणे च पापे च नटायास् नपुंसक्षाति भेदिनी।) संकाद्यति परिद्यातीत्मयंः। पाणिनः स्वार्थः, वार्षिकानि भा

पुच्छमुत्चिपति उत्पृच्छयते। भाष्डानि संचिनोति संभाष्ड-यते। चीवरं संमार्जयति परिद्धाति वासचीवरयते भिचुः। \*

## ८५८। तिथो यथेष्टं दिः, कग्डादाजा-द्योस्त हतीयानाद्योः।

(लिधी: ६१, यध्य २१, वि: २१, कब्बुारि-प्रजायी: ६॥, त १२१, वतीयानायी: ६॥)।
पुप्रचीयिषति पुतिचीयिषति पुतीयियिषति, पुचीयिषिषति,
पुप्रतित्वीयियिषिषति । क्ष्युवियिषति, प्रशिष्कीयिषति । ११

पति लिध-गाद: ।

#### '३य चतुर्गणाध्याय: ।

• वर्षाणा कवचेन मंनद्यति बद्धाती त्यां। चूणें यूणें द्रव्ये: भवध्यं ते भविकार तीत्यां:, नाश्यतीति कथित्। इस्तिना इत्युपलचणं भव्यं ता भितिकामित भव्यं यतीत्यां:, नाश्यतीति कथित्। इस्तिना इत्युपलचणं भव्यं ता भितिकामित भव्यं यतीत्यि यात्। तूलै: परिमापकर व्हें रवक्षणाति परिमातीत्यं:। भिष्यं यतीति (५००) गौत इति वर्त्ते, (१००) गल्वं। भिष्यं गिवित्ति क्षित्त इति वर्त्त्वः सेनिधाती: सन् (५५४) इस्, द्रिलादी, द्रशस्यादेरिति विक्तस्य पत्वं। भाष्डानि स्लिधाती: सन्वित्तीति सिव्तानि करीतीत्यथं:। (भाष्डं पावे विषद्भूलधने भृषात्रभूषयोरिति सिव्तानि करीतीत्यथं:। (भाष्डं पावे विषद्भूलधने भृषात्रभूषयोरिति सिव्तानीते।) भव संवर्ष्ययतीत्यादित् समस्टाहरणेष् वरणकारकीय एव जि: भत्यवेते सक्यं वताः प्रयोगाः, भन्येषु कर्षकारकिथः तेन प्रायशः भक्षं वतः इति। एव्दाइरणेषु पुक्छिभाष्डिचीवरियः भाष्यनेपदं, भन्येथः परस्वैपदं प्राचीनसम्बतम्। पाणितिः शारार्थः र

† चादी लि: पयान घु: लिघु: नामवातुरिति यानन् इष्टमनितकस्य यथेष्ट (किया-विश्रेषणं)। क्षळ्दादि यथ स कण्ड्रादिः, भव् भादियंस्य मः भनादिः। कण्ड्रादिय भनादिय तथीः। ढतीयय भनादिय तथीः। यथेष्टसिति कमेण युगपदा इत्यर्थः, तथाच कदाचित् प्रथमवर्षस्य, कदावित् वितीयादः, कदाचित मळेषा युगपत्, कण्ड्रादे-मृतीयस्थैत, भनादिय भादिवणे दिला वितीयस्य ढतीयादः चो विभाव इत्यर्थः। पुन-पित्राचयित भिष्यं इति वाक्षं (८४०) काः पुनीय-धातुः, ततः पुनीयितृमिक्कति सन् (५५४) इप्, पुनी विष दत्यस्य पुत्रस्तीनां कमेण युगपच विल्लं करीतीति वाक्षे (८५४) इप्, ततः कण्ड्रितृमिक्कति सन्, इम्, कल्ड्रिष दत्यस्य ढतोयवर्णस्य विद्वास्य दिल्लं। भन्निवासर्ति गां (८४०) काः, भन्नोथितृमिक्कतीति सन्, भन्नौथित्र इति स्थिते वितीयस्य दिल्लं। ढतीयस्य दिलं भन्नीथित्र पत्र चतुर्थसापि। वाण्निकानि।

#### १म:। त्याद्यन्ताध्याय:।

#### **→◆**

#### श्म पादः-पं।

## टई०। घे पं परानु-क —प्रत्यश्यति-चिप— प्र-वच्च —परि-च्छष — घ्यापरिरमो वा तूपरम:।

(चि. ७), पं १।, परा-भनुक्त, प्रति-म्यनि-चिष, प्र-वह, परि-मृष, वि. आर-परि-रम: ५।, वा ।१।, तु।१।, उप-र्म: ५।)

एभ्यः पं स्थात् घे, उप-रमसुवा। 'पराक्षरोति श्रमुकरोति, प्रतिचिपति, प्रवहति, परिस्थिति, विरमति श्रारमति परि-रमति, उपरमति उपरमते विश्वाः। \*

## ८६१। कम्पान्तार्थेङबुधयुषपुदुसुजननशेर ऽजिप्राणिवादाच जे:।

(कम्प्र -- नमः प्रा, पञि प्राणिवादात् प्रा, च ।१।, जेः प्रा)।

चलयति भोजयति ऋध्यापयति, बोधयति योधयति प्रावयति द्रावयति स्नावयति जनयति नागयति, ग्राययति क्रणः

<sup>\*</sup> परानुभ्यां तः परानुतः, प्रत्यभ्यतिभ्यः विषाः प्रत्यभ्यतिनयः, प्राष्ट्रः प्रवहः , परेभृषः परिम्हषः, व्यापहिन्यां रमः व्यापहिरमः। ततः, परानृत्त्रय प्रत्यभ्यतिविषकः प्रवहः अ
परिमृषः व्यापहिरमः चिति तसात्। चनिन नियमेन का विष यहः सृषः इति चतुणंः
जिल्वऽपि भाक्षनेषदं न स्यात्। वैथींग (२०६) हितीया विश्विता तेषामन्वादीनामिहं न यहण्यमिति, तेन वधमनुकुषते ध्रापेष स्थात्। विण्यः उपरमृति उपस्मते
की इतीत्यथः। पाणिनः ११९१०६—-५॥।

यभोदा। अप्राणिघात् किं, मोषयते मालिं। अङ्गत् किं, भित्तं कारयते। अञीकिं, रूपयते हरिः। क

इति पःपाटः ।

### २य पाइ:--मं ।

\_----

# द्र। वि-परा-जि --पिर-व्यव-क्री--नि-वि-शानुप्रच्छो मं। (वि-पचः प्रा, मं १।)।

एभ्यो मं स्थात् घे । विजयते पराजयते, परिक्रीकीते, निवियते, श्रानुते त्राप्टच्छते । \*

<sup>•</sup> कम्पयननं, पर्तं भोजनं, ते चर्णा येषां ते कम्पादार्थां, तेच दङ च वृध्य युध्य प्रुष दृष स्थ जनस नम च तथात्। प्राणी घी यस स प्राणिघः, नासि ढ यस सीऽढः, प्राणिघर्यां में प्रदर्शत प्राणिघाढः, चजी प्राणिघाढः चित्रप्राणिघाढः समात्। एथ्यी जानीथः पं स्थात् वी, एरीन फलन्त् कर्मय्येष चात्रमन्दं न स्थादिति बीर्धः। चल-यति जनयतीति च घटादिलात् इस्तः। भाययति क्षणमिति, क्षणः भेते दिति प्राणिक चृंकीऽकर्म्भकः, ततो जानान् परस्थैपदं, भालिः ग्रंघतीति चप्राणिक चृंकीऽकर्म्भकः, ततो जानान् परस्थैपदं, भालिः ग्रंघतीति चप्राणिक चृंकीऽकर्म्भकः, ततो जानान् परस्थैपदं, भालिः ग्रंघतीति चप्राणिक चृंकीऽकर्म्भकः, तेन जानात् परस्थैपदिनयमाभावे घभयपदं। ६पयते दित ६पत् कत्त्वती निश्च चरादिः, सुतरां चजान स्थाप चराया चरायावात् नैति विषय सम्पन्दः, चत्रप्रक्षेप्रान्दः, च्याप्यः

<sup>•</sup> वि-परास्था निः, परि-व्यवेश्यः कीः, ने विंगः, षाङो नु-प्रच्छी। ततः विपरा-जिय परिव्यवकीय निविधय पानुषच्छी चेति तस्थान्। घे इति पूर्वादन्वर्णते। डु क्षो ज ग द्रव्यविपर्थंग्र इत्थादि ञानुबन्धधातृनामात्यनेपद-विधानं प्रफलवन्त्वर्भयंकि पान्यनपद्गाप्तार्थे। एवं सर्वव। नि-विध इत्यनेन प्रचिविधतीयादी न संस्थान्। पाणिनिः १।२।१०,१८,१८, वार्तिकस्थ।

#### दर्इ। श्रा-दाओ ऽखप्रसारे।

(बादाजः प्रा, बाखप्रसारे ०।)।

त्रादत्ते। स्वप्रसारे तु, व्याददाति सुखं क्षणाः। \*

८६४। त्रा-गमेः चान्तौ। (षा गमेः प्रा, षानौ ७)। प्रागमयते कालं। ने

# ८६्५। पर्यन्ववाङः क्रीडः।

(परिचनुष्यव-षाङ: ४।, कीड: ५।)।

परिक्रीड़ते अनुक्रीड़ते अवक्रीड़ते आक्रीड़ते । 🕸

टर्ह्। समी ऽकूजने। (समः ४।, पक्रणने ७।)।

संक्रीड़ते। क्जने तु, संक्रीड़ित चक्रं। §

## ८६७। क्रो ऽपाइषान्त्रवासेच्छे चतुष्पाद्वौ सम च।

(का: ५१, चपात् ५१, हर्षात्रवासे च्छे ७।, चतुषादवी ७।, सुम् ।१।, च ।१।) ।

अस्तं स्वाक्तं, स्वस्य प्रसारी विक्तारणं स्वप्रसारः, नञ्योगेतिकान्। भाङ-् पूर्वात् दाञीनं स्वात् घे, नतु स्वप्रसारे। भादत्तं ग्रह्माति, व्याददाति विक्षारय-तौत्यर्थः। पाणिनिः १।३।२०। अत्र "अनास्थविद्वरणे" ब्रत्युत्तन्।

<sup>†</sup> गमि र्ज्यानः, चान्तिः प्रतीचणं। चाङ्पूर्त्रात् गमयते में स्थात् घेचानी (प्रतीचायाम्)। चागमयते कालंप्रतीचते इत्यर्थः। चानथनादी चर्ये परस्पैपदमेव। वार्तिकम्।

<sup>‡</sup> परिश्र भनुष भवष भाङ्च तस्यान्। एभ्यः क्षीड़ के में स्यान् घे। सम्मर्थका-तुपूर्वात् न स्यादिति वक्तव्यं, तेन वालकानतुकी इति। पाणिनिः १।३।२१। भन नावः।

<sup>§</sup> संपूर्व्यात् क्रीडले भें स्थात् घे, न तु कूत्रने । कूत्रन-सन्यक्तप्रस्टः । वार्त्तिकान् ।

भ्रपस्किरते मत्तः कुक्तुटः म्हावा। भ्रन्यव मक्रोऽपिकरित, गजोऽपिकरत्यभः। अ

# ८६८। भपवागीर्गत्यनुकारे भप-नाथ-हुञः।

(ग्रपण-वाशी-र्गत्यनुकारे ७।, श्रप-नाथ-हज: ५।)।

कणाय प्रपते गोपी । मोचाय नायते मुनि:। पैत्रकमनुद्दरते प्रावः। १

# ८६८। प्रतिज्ञा-निर्णय-प्रकाशे संप्रव्यवाच स्थः।

(प्रतिज्ञा-निर्णय-प्रकाशि ७।, सं-प्र-नि-भवात् ५।, च ।१।, स्थः ५।)।

<sup>\*</sup> पत्रच वासय ती, तयीरिक्ता चन्नवासंक्ता, इवंषा चन्नवासंक्ता यस स इर्षास्वासेक्त लिखन्। चन्याच विस्न तत्त्विम्। चन्यान पणः, वि: पणी। इवंहेन्त भन्नवंक्तावित इवंहिन्त-वासेक्तावित वा चन्यादि पित्तिया वा कर्त्तारे सित चपान् किर्त में स्थान्, तस्य सम् चिययंः। चपिक्तरते, मनी इटः कुकुटः भनार्थी भूमिमालिखति, मनः या वा वासार्थी भूमिमालिखतीत्वर्थः। चन क्षातुरालिख-नार्थे एव बीध्यः। चन्यादी किं. मस्रोऽपिक्तरति ख्लार्ये भूमिमालिखति। इर्षा-स्वासिक्तं इति किं, गनः सभी कलं चपिक्तरित कहें विपतील्यः। चन तृक्त्ययोग-विहिंद्यानां सह वा प्रवित्तः सह वा निवित्तिरिति चायेन चात्रकिप्रभावपचे सुमिन न स्वादिति। पाथिनि: ६।१।१४५। "किरतेर्ह्यंजीविकाकुलायकरपेष् वाच्यन्" इति वात्तिवे इषांदयस्ययो विषयाः उक्ताः, तत्र इर्षो विचेपस्य कारणम् इतरे फल्। वीप-देवसु मतान्तरसवल्ब्या इषंजनितं विषयस्यमेव लिखितम्।

<sup>†</sup> प्रपौ आक्षेत्रे इथकान अपये, नायु क तापाजिवीरै खेऽयेने इसकात् भाजिषि, क्षेत्र कथानित्यकान् नत्यनुकारे, सं स्थान् चे। अपयः पुत्रादिशरिस्सर्गादिना क्षिणानिरसनं, भाजी-रिटायांविकारणं, गत्यनुकारो गतिसहयोकरणं। गीपौ लणाय अपते, कस्यचित् सरौरं स्पृष्टा मयेतन्न कतिनिति दिस्येन कथं तीपियनुनिष्कतीत्ययः। अपयादस्यत्र नियमाभावा-दुभयपदमेव। मृनि मींचाय नायते मीची में भूयादि स्थायासे इत्यथः। उभयत्र (२६४) चतुर्थौ। नायधाती-रास्त्रनेपदिलेऽपि भाजिषी उत्यत्र परस्रेपदमेव। भन्नः पैटकं पिटसम्बसीयं गमनिति यावत् भन्दर्धः भन्नकरीति पिटवत् गक्कतीत्थयः। गतियक्षणात् कपायनुकारे न स्थादिति। "अप उपालक्षे", "सर्गिवि नायः", "इरतेगतताक्कील्ये" इति वार्त्यक्तवयम्।

नित्यं ग्रन्दमातिष्ठते। त्विय तिष्ठते विवादः। रामाय तिष्ठते सीता। सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते वितिष्ठते ग्रवतिष्ठते समस्यित। \*

८७० | उदोऽनुर्हेह । (घटः ४१, पर्हेह वा)। मुताबुत्तिष्ठते। अन्यव ग्रासनादुत्तिष्ठति, ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति। १

८७१। मन्त्रेणीपात्। (मनीप श, उपात् ४।)। गायत्रा उपतिष्ठते अर्को । क्ष

८७२ । मेन्राध्वसङ्गाराधि । (मैबी मध्व-मक्त-माराधि का)। सन्तमुपतिष्ठते साधुः। गङ्गामुपतिष्ठते पत्थाः। पतिमुप-तिष्ठते नारी । विणाुमुपतिष्ठते वैणावः। §

<sup>\*</sup> प्रतिज्ञादावर्थे तिष्ठते में स्थात्, सं-प्र-वि-भवेभ्यो व्यक्षिन्, किसिन्नपर्यं मं स्थात् घे, चकारात् भर्यदयं। प्रतिज्ञा भङ्गोकारः, निर्णयो निषयः, प्रकाशः स्वाभिप्राय-प्रकटनं। निर्णय भन्दमातिष्ठते, निल्मिति भन्दस्य विभिषणं, भन्दी निल्प इति प्रैतिज्ञां करीतील्पयः, मीमांसक इति भ्रषः। लिथ विवादिसप्रते इति निर्णयः। स्वीता रामाय तिष्ठते स्वाभिप्रायं प्रकाभयतीन्यर्थः। (२८४) चतुर्थौ। समस्थित इति (७१६) ज्ञिः। पाणिनिः ११३।२२,२३, वार्त्तिक्षः।

<sup>†</sup> न कर्ज भन्ते, भन्ते इंदा (चेषा) यस मः भन्दें स्विधन्, भन्दें हे इति कर्त्तिविधिषणं। अत्यूर्वात् स्थाधाती में स्थात् भन्दं विषये चेष्टमाने कर्ति। सुन्नो अत्तिविधि चेष्टमे कर्ति। स्वामे अत्याद्याः भासना-दुत्तिष्ठतीति कर्त्तु इंचेष्टलाञ्चमं। यामात् श्रतस्तिष्ठतीति श्रतस्तिप्रतीति श्रतस्ति। श्रतस्ति स्वामे में। पाणिनिः १। १। २४।

<sup>‡</sup> मन्त्रकरणके भाल यें उपात् स्थो मंस्थात् चे। गायनाा मन्त्रेण भाकं सूर्यं उपाक्ते भूलायं:। सन्त्रेण किं, युवित यैंविनेन भार्तरसुपतिष्ठति । पाणिनि: १।३।२ ५।

<sup>§</sup> मित्रस्य भावी भैत्री, प्रध्वा पत्थाः, मङ्गः सङ्गनः, पाराध प्राराधनं। एष्ट-येषु उपात् स्थीनं स्थात् घे। प्रध्वनि कर्षरि सतीति भावः। साधः सनं साधुं

# 조৩३। सिम्नायों वा। (विकास का, वा ११)। भिनु धीर्क्स कमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा। %

८७४। ऋढात्। (भडात् ४))। ज्ञानमुपतिष्ठते। पं

# ८७५। समी गरक्षप्रक्षयुवित्तार्तिहराः।

(समः ५।, गम-ऋषः प्रच्छ-ख्-ख्-ख्-ख्-वित्त-पर्त्ति-द्रशः ५।)।

सङ्गच्छते, समगत समगंस्त, सङ्गसीष्ट सङ्गंसीष्ट। सम्बच्छते, संप्रच्छते, संखरते, संयुग्तते, संविद्रते संविद्रते, समिगृते, सम्प-स्वते। यदात् किं, यङ्गां सङ्गच्छति। इ

ख्यतिष्ठते 'मित्रं कारोतीत्ययं:। गक्वासुपतिष्ठते पत्या: गक्कां गच्छतीत्ययं। पयि कर्मिर किं, पत्यानस्पतिष्ठति । पतिस्पतिष्ठते पत्या सह सक्तं करोतीत्ययं:। विणु-सुपतिष्ठते चागाध्यक्षीत्ययं:। ''ख्याद्देवपूजासङ्गतिकरचनित्रकरणपथिव्यति वाच्यन्'' इति धार्मिकस्।

रुम्बुनिच्छा लिम्सा। लिम्सार्थे उपात् स्थो मंस्यादा घे। घार्मिकसुपतिष्ठते
 उपविषठित वाघार्मिकात् (धर्ग) सम्बन्धिकतौत्यथं:। वार्तिकस्।

<sup>†</sup> चपात् चकर्चकात् स्थी मंस्यात् घि । विभाषादय-मध्यवत्तिलाहित्यं । ज्ञान-सपतिष्ठते ज्ञानं चपस्थितं भवतीसर्थः । पाणिनिः शश्चर ६ ।

<sup>्</sup>र नमच साक्षय प्रकार ख्रुय युव निषय भागिय हम चिति तकात् । समः परेयः सम्मानिक स्थान प्रभी मं स्थान् ची। पते सम्भाना प्रायि विवचावमादक स्थानाः । समगति ति सम्यान होतन्, सिः, (६५८) सेः कित्सं मा, (६०६) अम्-खीपः, (५६२) से लें।पः। कित्सं साधावपचि (५०) मस्थानुस्वारः। एवं डो-सीष्ट। सम्बन्धते संप्रकाते तृदादिलात् मः, (६६१) प्रकारि निः। संप्रकाते (६२१) मुः जिसा। संविद्धते द्यादि चन्ते (५५५) वित्तं, (७२१) विकायम रम्। समियृते द्वित चर्ला गर्था (७२६) वितं, (७२८) खे किः, (५८५) द्याने द्वा चा चार्ना व्यक्ति स्थापि, तेन सम्बन्धते द्वित च। पार्वितः ११३।२८, (११२।१३,०)१।०,] वार्षिक स्यस्य।

# ८७६। गेर्बासोहो देच।

(मैं प्रा, वा ११।, पस्सीष्ठः प्रा, ढे ७।, च ११।) ।

निरस्रते निरस्रति, समृहते समृहति । \*

# ८०७। गेहह: खो ये ऽगौ।

(ग्रे: प्रा, कड़: ६।, ख: १।, ये ०।, प्रश्री ०।)।

ब्रह्म समुद्धात्। 🕆

### ८७८। त्राताङ्गढादहाचा-हनयमः।

(भावमाञ्चलात् ५), भटात् ५१, भ ।११, भा-इन-यम: ५१) ।

उरग्राहते, पादमायच्छते। ग्राहते ग्रायच्छते। ग्रन्थन ग्रनुमाहन्ति, परिश्रार ग्रायच्छति। इ

८७२ | इन: कित् सि: | (इन: ५१, किन् १ए) वि: ११) व

चस्पुदर्चेपे, तद ङ वितर्को । गै:पराध्यामाध्यां मंस्यादा वे, ढेकर्यापि
 चिद्यमाने, चकारात् प्रकर्याण च । वार्तिकम् ।

<sup>+</sup> गी: परस्यः कडधाती : स्वः स्यादणी ये परे । वद्य वेदं परभेष्यरं वा ससुद्यात् वद्यविषये वितर्ककियादिल्ययेः । पूर्वतृत्वेण भाग्नने पद्विकल्पपचे टी यात्, भव क्रस्तः । पाणिनिः २।४।२१:।

<sup>‡</sup> भारतमाः भन्नं ढं यस्य स भारतान् तस्तात्। नालि ढं यस्य सीऽदलस्थात् । इतः च यस् च इत्यम् भारते इत्यम् भारत्यम् तस्तात्। मस्कूकसत्यः च मं इत्यन् व इत्यम् भारत्यम् तस्तात्। मस्कूकसत्यः च मं इत्यन्तवर्तते । स्वाज्ञकसंकाभ्यामकसंकाभ्यास्यः भारत्युकं इत्यमाभ्यां च नं स्यात्। स्वाज्ञदादितिः नीज्ञा भारताज्ञदादिति कथनं, (२६५) पारिभाविक-स्वाज्ञ-स्वाज्ञस्यः, भारत्य परिवार् भायन्त्रतीत्वव नातानेपदं। चरीः वद्यः भारते ताङ्गतीत्वर्यः, पारं चर्षं भायक्ति देशिं करीतीत्वर्थः । कर्त्याविव्यायां भारते ताङ्गती भवति, भाष- क्षते दीर्घो भवतीत्वर्थः । पाणिनाः १।३।२८, भाष्यस्य ।

हन: पर: सि: कित् स्थात्। श्राहत श्रावधिष्ट, श्राहसातां श्राविधिषातां। \*

# ८८०। यम: सूचने वा तूहा है।

(यम: प्र, स्वने अ, वा ।१।, तु ।१।, उदाह अ)।

त्रायत । रामः सीतामुपायत उपायंस्त । 🕆

८८१ व्युत्तमः। (वि-उत्-तपः धा)।

वितपते उत्तपते पाणि जनः। धः श्राक्षाङ्गढादढाच किं, महीं वितपत्यर्कः।

# ८८२। तपोढाद् यक् चरे।

(तपीड़ात् प्रा, यक् ११।, च ११।, रे भ)।

तप्यते तपुस्तापसः। रे किं, अतप्त। §

<sup>\*..</sup> पाइत इति पूर्व्वेषात्मनेपरं, (६७८) वधारेग्र-विकल्पपचे अनेन से: किल्ला (६०६) अम्लीपः, ततः (५६२) सिलीपः। वधारेग्रपचे (५५४) इम् भावधिष्ट। एवं टी श्रातां। पाणिनिः शशक्ष, (राष्ट्राध्य)।

<sup>†</sup> यम: पर: नि: कित् स्थात् भाक्षनेपदे सूचने भयें, विवाहार्थे तुवा। सूचनम् इक्कितादिना विद्यापनं। भायतः इति भा-यम, पूर्वेषाक्षनेपदे टौ-तन्, सि:, भनेग् से: किक्तं, (६०६) अमनोप:। उपायतेत्यादि (८०८) उपयम इति वद्यमाण सुवेषाक्षनेपदे भनेन विकल्पेन से: किक्तं। पाणिनि: १।२।१५,१६।

<sup>‡</sup> व्युद्ध्यां परादात्माङ्गढादढाच तपो च मं छात्। मञ्जूनगत्या च मं इत्वतु वर्तते। जनः पाणि इत्तं उत्ततं करोतीव्यः। एवं जनः उत्तती भवतीति श्रद्धादि वितयते उत्तपते। पाणिनिः १।३।२०, भाषां, वार्तिकच।

ह तयः ढं (क्यां) यस्य स तपीठलस्थात् । प्रथक्षिशानात् व्युदिति नानुकर्तते तपीटादिस्थिने आस्थाङ्गढादढाभेति च निरसं । तपःकस्यंकात् तपी भंस्यात् घे, परंयक् च स्यादिस्थयः । अत्र यक् अपी नाधकः । तपक्षायते तपः अर्ज्जयतीस्थयः

# ८८३। सृजः याडवात् तनीस् च।

(स्टन: ५।, याह्यात् ५।, तनि ७।, इष् ११।, च ११।)।

सञ्यते सज भतः। श्रम्जि। श्राहघात् किं,स्जति सजं मालिकः।\*

८८४। निसंव्यपह्यः। (नि.सं-वि-चप-ह्व: ५)।

निह्नयते संह्नयते विह्नयते उपह्नयते । 🕆

८८५ । सर्वाया-माङ: । (स्वर्तायां ०।, भाङ: ५।)।

क्षणायान्रमाद्वयते। 🕸

८८६। सूचनावचेषणसेवासाइसप्रतियत्न-क्रयोपयोगे खाजः। (स्रान-उपयोगे ७), क्रजः ४।)।

श्रपकुरुते, श्रीनो वर्त्तिकामुपकुरुते, विश्यां प्रकुरुते, परदारान् प्रकुरुते, एथादकस्योपस्कुरुते, गीताः प्रकुरुते, यतं प्रकुरुते। §

एवं तर्व्यत तव्यतां भतव्यत। भतप्ति टीतन्, निमित्तगतविशेषात् सिरेक्, न तु यकः, भौदिचान्नेम्, (५६२) सिकीपः। पाणिनिः ३।२।८०,८८।

यत्पूर्वक-धाधातोर्ङः (११५०) यदा इति, यदा विद्यतेऽस्ति (४४६) प्रज्ञादिवात् षः यादः, यादः घः यस्य सः याद्यस्तमातः। याद्यमात् स्वती संस्थात् हे, तिन परे इत्य्, चकारात् रेपरे यक् च स्थादिक्ष्यः। भक्तः यदाविधिष्टी जनः सर्जमाती स्वयते रचयती स्थः। अभजीति तन्, इत्य् सिवाधकः, (६४४) तन् लोपः। सालिकी न यदावान्। वार्तिकदयन्।

<sup>े †</sup> नि सम् 14 उप एथ्य: परात् हेजो संस्थान् घे। चशिष्टलात् यगिष्धो-नीनुइति:। पाणिनि: १।३।३०।

<sup>‡</sup> चार्कः, परात् ह्वेञी मंस्रात् द्वेस्पर्दायां गस्यनानायां। स्पर्दापराक्षिभवेच्छा ∤ चानूरं तद्वामकामसुरं। स्पर्दायां किं, पिता पुत्रनाह्वथति । पाणिनिः, र।३।३१ ।

<sup>§</sup> स्वनादार्थेषु क्रजो मं स्थात् घे। स्वनं — परदीषायाविष्करणं, प्यवंपण — तिरस्कारः, सेवा - प्रवृक्षतिः, साइसं — प्यादीषमनाजीचः करणं हिंसा-पौर्थ-

८८७ | श्रधे: गत्तौ । (भवे: ४।, मकी थ)। दैखानधिकत्ते कथा: । \*

८८८ । श्व्टाढादेः । (श्व्टाडाल् ४।, वे: ४।) ।

स्तरान् विक्तकते, वायुर्विक्तकते। अन्यत्र चित्तं विकरोति कामः।

ब्ययेषु नीज: । (भान-व्यवेषु जा, नीज: ५।)।

श्वास्त्रे नयते, विष्णुं नयते, दण्डमुवयते, पुत्रमुणनयते, श्रत्य-सुपनयते, ऋणं विनयते, द्रव्यं विनयते । क्ष

परदारममनादि, प्रतियवी—गुपालराधानं, कथा—चाल्यानं, उपयोगी—धर्मादाधें द्रव्यविनियोगः। अपकृष्ठते कस्यचित् दीषमाविकरोती-धर्यः। स्रोनो वर्तिकासुपकृष्ठते तिरस्करोतीस्थ्यः। वर्त्तिका-स्रोनौ पचिविश्रेषौ । विष्णुं प्रकृष्ठते सेवले द्रव्यथः। पर्द्रारान् प्रकृष्ठते साहस्रतत् त्रि, प्रवर्त्ते द्रव्यथः। एषः काष्ठं तस्य उदकं रसः, एधी-दक्स काष्ठरसस्य उपस्कृष्ठते चित्रयोगेन गुपालराधानं करोतीत्ययः, प्रतियवाधें (अद्धं, सुन्। गौताः प्रकृष्ठते क्षययतीत्ययः। स्रतं प्रकृष्ठते स्रतं द्रव्याणि विनियुङ्के द्रव्याः। पाणिनः १। १:३१ । भन्न मूचनमित्यन गन्धनपदं प्रयुक्तं सस्यायंश्व प्राण्ववियोगान्तुकृतं स्वनम्। हिंसा दिता भदीजिदीचितः।

\* अधिपूर्व्वात् क्रजो मंस्रात् घे ब्रातौ । ब्रक्तिरिक्षमंत्रः । टैल्यानिधकुरते क्रणः अभिभवतील्ययः । पार्विनिः १।३।३३ । (इस्त्र प्रसद्दनं≔ चनाक्षिभवस्र) ।

† श्रब्दो ढंग्रस सः श्रब्दढः, नासि ढंग्रस्य सोऽढः, श्रब्दढव भ्रद्रक तक्तसात्। वेः परात् श्रब्दकर्म्यकादकर्मकास क्रजी संस्थात् घे। स्वरान् श्रव्हान् विकृषि विशेषिण करोतीसर्थः । वार्थार्वकृषते विक्रती अवतीसर्थः । पाणिनः शश्श्वः १५॥

‡ जानं प्रमेयनिषयः, चर्चा पूजा, जरन्य छन्नयनं, उपनयनं यजीपनीतदान-संस्तारः, स्वतिर्वेतनं, विगणनं ऋणशीधः, व्ययी विनियीनः। एवर्थेषु नीजो सं स्थात् नि। श्रास्त्रे नयते प्रमेयनिषयं करीति, विष्णुं पूज्यति, दखसुरिचपति, प्रत्यं यजीपनीतदानेन संस्तरीति, स्वामुपनयते स्वाय वेतनं ददाति, ऋणं शीक्ष्यति, द्रव्यं विनियुक्तो इत्ययः। पाचितः १।३।१६। ८८० | घ्रस्यामूर्त्तहात् । (वस्यामूर्त्तहात् ॥)।
क्रीधं विनयति । घर्स्यं किं, गुरोः क्रीधं विनयति । अमूर्त्तं किं,

## ८८१। वृत्तुत्रत्साहतायने क्रमः-परोपक्रमः।

(हिन्छत्साइ-तायने ०।, कमः ५।, परा-छप-कमः ५।) ।

ऋचु क्रमते बुद्धिः। धन्मीय क्रमते साधुः। सतां त्रीः क्रमते। पराक्रमते उपक्रमते। 🕆

८६२ | त्राङो भोद्गमे' | (त्राङः प्रा, भोदगमे ०)। त्राक्रमते त्रर्काः । भोद्गमे किं, त्राक्रामति धूमः, खं व्याप्नोतित्वर्धः । क्ष

८१ वे पद्भिः । (वेः प्रा, पिक्षः, क्षा)। साधु विक्रमते वाजी। पद्धिः किं,वाजिना विक्रामति राजाः ।§

श्रे के कर्मीर तिष्ठतीति घस्यं, घस्यं प्रमूत्ते टंयस्य च तस्त्रात्, नीजो मंस्रात्
 श्रे के स्थंतिनयते श्रमयतीत्यर्थः, घत्र के सिः कर्त्तृस्यः । गण्डं वर्षः। पाणिनिः
 १।३।१७।

<sup>†</sup> ब्रिनिरप्रतिवन्धः, फल्साइ छद्यमः, तायनं ब्रेडिः (स्प्रीतता)। एव्यर्थेषु क्रमः परीपक्षमय मंस्थात् घि । परीपयहण्यमन्योपसर्ग-निराधाय । स्टन्ज वेटेषु बुर्जिः क्रमते प्रशित्वका भवति । पर्माय क्रमते छल्पहते । सतांत्री वंडेते । पाणिनिः १।३।३८८,३९८ ।

<sup>‡</sup> भानीति भानि (१८७) चादनात् चे खः । भानां चन्द्रत्यांदीनासुद्वमे चाङ्-पूर्व्वात् कसी भंस्यात् चे । चाकमते चद्रच्कतीत्यर्थः । पाचिनिः १।३।४०, वार्त्तिकच ।

<sup>§</sup> वै: परात् कमी मंख्यात् घे पिक्ष पिक्ष विश्व निष्यति । वाजी घीटकः पिक्ष विश्व पिष्यति ।

प्रश्रिष्यादारकी। (प्र-चपात् था, भारकी २०)। भोत्तं प्रक्रमते उपक्रमते। \*

द्र्यू । वाऽगे: । (वा ११, भगे: ५१)। क्रमते क्रामति । पं

८१६। निह्नवे जः। (निह्नवे था, शः प्रा)।

श्रतमपजानीते । क्ष

टर्७। त्रुढात्। (भटात् प्रा)।
सर्पिषी जानीते। §

ट्ट। संप्रतेरसातौ। (सं-प्रते: प्रा, प्रमृतौ ०१)।
संजानीते प्रतिजानीते । अस्मृतौ निं, पुत्रं संजानाति । ¶

दर्ह। जेटेंऽजो हा। (जे: पा, हे था, पर्जो था, पर्जा था,

<sup>⇒</sup> प्रीपाभ्यांपरात् कामी भंस्थात् घे त्रारकी । भीकृंप्रक्रमते पारभते दृत्यर्थः पारिवनः १।३।४२ ।

<sup>†</sup> नास्ति गिर्धिकान् चीऽगि साम्यात् । अप्री: क्रामी मंस्यादा घे । उपसर्गरहित क्रमधातः उभयपदीव्यर्थः । पाणिनिः १।३।४३ ।

<sup>‡</sup> जानाते में स्थात् घे निक्रवे ; निक्रवोऽपलापः। श्रतमपलपतीत्ययः। चप जानाति स्पन्नवार्यः। पाणिनिः १।३।४४।

<sup>§</sup> भक्तम्प्रकात् नानाते घें मंस्यात्। सर्पिषी प्रतस्य कानीते सर्पिषा करणे प्रवर्त्तते क्रत्यदं:। (३०३) भ्राऽज्ञाने धे क्रति करणे षष्ठी । पाणिनिः १।३।४५।

यु सं-प्रतिभ्यापरात् जानातं घें संस्थात, न तुस्पृती। संजानीते प्रतिजानी चक्रीकरीतीत्थर्थः ) पुत्रं संजानाति सोत्करुष्टसप्रतीत्यर्थः । पाणिनिः १।३।४६ ।

दर्शयति यम् भक्तान् भक्तिः। चृतौतु, स्नारयति भक्तान् इरि:। \*

### १००। ज्ञानयत्रप्रलोभे वदः।

(ज्ञान-यव-प्रलीभे ७), वद: ५।)।

पाणिनि वेंदते, चेत्रे वदते, शिष्यमुपवदते । 🕆

१८१ च्रनोरढांत्। (भनीः प्रा, भडात् प्रा)।

श्रनुवदती । 🕸

# ८०२। विमति-व्यक्तसन्होक्तोत्राः।

(विमति-व्यक्तसदीक्वी: ०॥)।

विवदन्ते शिषाः। व्यक्तं किं, संप्रवदन्ति खगाः। §

<sup>\*</sup> पजी (पजानदशायां) ढे कर्माण चे (जानदशायां भिति यावत) कर्तार सित, जानाडाती में स्थात् चे, न तुस्तृती। भक्ताः भवं पेश्चिनि, भवः भक्तान् दर्भयते पासानिति भेषः। भक्ताः सस्तुं पश्चिनि, भिक्तः भक्तान् सस्तुं दर्भयति। पत्र पञानस्य कर्मा सभुः, जानस्य कर्त्री भिक्तः. पती नासनेपदं। सारयतीर्ति पत्र पञानदशायां कर्माणे इरे जंगनदशायां कर्त्ते दिप सारणार्थलादासनेपदं। पाणिनिः १।१।६०।

<sup>†</sup> ज्ञानं यव: प्रलीभ: (उपमन्त्रणमिति पाणिनिः, र इस्प्रच्छन्दनिमिति क्रमदीचरः) एष्वेषु वदै वाचीत्यस्रात् मं स्थात् चे । पाणिनि वैदितुं नानातीत्यर्थ: । चेत्रे यवं करोतीत्यर्थ: । शिथं प्रलीभयतीत्यर्थ: । पाणिनिः १। ३। ४०।

<sup>‡</sup> प्रतृपूर्वादक चंकात् वदी मंस्रात् घी। घवापि व्यक्तीकौ इति पाणिनिक म-दौत्रती। घनुवदते रामस्य कणः, रामो यथा वदति कणोऽपि तथा वदती व्यथः। घटात किं, पृथ्वीक मनुवदति। पाणिनिः १।३।४८।

<sup>्</sup>रीविविधा मित विभितिः, व्यक्ता चासी सङीकियेति व्यक्तसङीक्तिः, विभितिस्य व्यक्तसङीक्तिस्य ते तयोः। एतयोर्थयो वैर्तमानात् वदी मं स्थात् घे। विवदले भिष्या द्वति दयोददाहरणं, विरोधिज्ञानपूर्वकं वदिन, व्यकं सङ्वदिन्ति वा इत्यथेः। संप्रवदिन्ति सस्प्रदं वदनीत्यथैः। पाषिनिः १।३।४०,४८।

१०३ | तद्योगे वा | (तद्योगे वा, वा।१।)।

१०४। ऋवाट्गिर: । (भवात् ४।, निरः ४।)। अवगिरते । १

१०५१ सम: प्रतिच्चायां। (सम: ५१,प्रतिवायां ०)। यतं संगिरते। इः

८०६। उच् : सठात्। (उत्परः ४।, वडात् ४।)। धर्मामुचरते। सठात् किं, धूम उचरति। §

६:०० । समस्या । (समः ४।, प्रा ३।)। प्राचीन सञ्चरती। ¶

# रुदां दांन: सा चेच्रार्थे।

(दान: पूर, सा ११, चेत् ११, चर्षे ७)।

स्तथी: (विस्ति-व्यक्तसक्षीक्षीः) थीगसिक्षन्। प्रसिद्धवर्षे वदीमं स्याद्वा घी।
 वैद्या: विरीक्षिक्षानपृथ्वेतं व्यक्तं सक्ष्वदन्तीत्यथे:। पाणिर्नः १।३।५०।

<sup>†</sup> भाव गिर इति कथनात् स्थाति नेति भाष्यम् । पार्थिनि: १।३।५१।

<sup>‡</sup> संपूर्व्यात् गिरते: प्रतिज्ञायां घे संस्थात् । प्रतं प्रतिजानीते इत्यर्थः । प्रतिज्ञायां किं. यासंसंगिरति ददातौत्यर्थः ; (यासंसंगिरति वा) । पाणिनिः १।३।५२ ।

<sup>§</sup> छत्पूर्श्वकात् सकम्प्रकात् चरी घेमं स्वात् । घर्मसुघरते चन्नक्यति । घृनः चन्नरति उद्गच्छतीव्ययै:। पाचिनि: १।३।५३।

क् साधन-व्यतीयालीन योगे सम्पूर्वकात् चरी घे मं स्वात्। हितौ सहार्थे च व्यतीययान स्थात्, तेन पुण्येन सम्बर्धतं, प्रवेण सम्बर्धतः। "हेतुव्यतीयायुक्ताद्पि अवति, बुद्धा सम्बर्धते वृषः" इति तृशीयीचन्द्रः। पाणिनिः १।१।५८।

हास्या संयच्छते कामी। चर्छेकिं, हास्या संयच्छति भिचां भिचवे।क

६०६ | उप-यमा विवाह । (अप-यमः श्रा, विवाहे ०)। रामः सीतासुपायत उपायंस्त । वृं

११० | मुजो ऽश्चने । (सनः ४१, षश्चने ७१)।

यालीन् भुङ्को गीः। अनमनित्, पृथ्वीं भुनिक्त राजा। क

**८११ | संच्योः ।** (संन्योः ४।)। प्रस्तं संच्युते । §

# ११२। युजिर उद्ग्यची ऽयज्ञपाने।

(युजिर: ५।, छद्ग्यच: ५।, चयत्रपार्व ७।) ।

<sup>#</sup> सा ट्रतीया चेत् यदि चर्ये चतुर्थयें भवति तदा तेन तृतीयानीन संपूर्वकात् दानी मंस्रात्। कामी अनः दास्या संयक्तते दास्यै वस्त्रादिकं ददातौत्ययः। दास्या इति (२८३) अध्यक्तसम्प्रदाने ट्रतोया। दास्या संयक्ति भिचा भिन्नवे इत्यन द्वास्या इति करके द्वतीया। चपसर्गान्तरव्यवधानेऽपि यया, दास्या सम्प्रवक्तते। पाणिनिः शाहाप्रथा।

<sup>+</sup> उपान सभी मं स्यात् घे विवाहे। विवाहग्रव्हेनाव स्वौकारार्थे बीद्ध्य उति साध्यमतम्, यतः पाणिनी 'खकरणे' इत्युक्तम्। ''खौकरणे'' इति च क्रमदीयरः। तेन ''श्रस्ताण्युपार्थसत्त जित्वराणि" शक्तरसुपयच्छते इत्यादि सङ्घच्छते। वीपदेवन तु ''पाणिग्रहणिनह स्वीकरणं रहातं न स्वौकरणमावन्'' इति जगादित्यसम्बंबन्द्रादोनां मतमनुस्त्य 'विवाहे' इत्युक्तम्। उपायत इति (८८०) सेः किस्वात् (६०६) अमलीपे, (१६२) सिस्वीपः, किस्वविकत्यपचे मस्य (१०) अनुस्वारः। पाणिनिः र।३।१६।

<sup>‡</sup> भीजनार्थे सुजी संस्थात् घे। 'घनवने' इति तः पाणिनः, घननः रचणं तक्तिहेऽयें इत्ययं:। शालीन् घान्यानि । रचाभिन्ने उपभीगार्थेऽपि कचित् महाकविषयोगारी सं स्थादिति वक्तव्यं। यथा—बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव कोवलाम् (रघुमंश्रम्) इत्यादी । पाणिनिः १ व्हा६६ ।

<sup>§</sup> संपूर्वकात् च्योति में स्थात् वे । संच्युते प्राणयशीत्ययः । पाणिनिः १।३।६७

उद्युङ्के प्रयुङ्के। यज्ञपाचे तु, प्रयुनिक्त सुचं। \*

१३। प्रतासे विन्त-गर्डे: । (प्रतारे अ, विश्व-गर्डे: ५)। वटं वश्वयते गर्डयते। प्रतारे किं, ग्रीनोऽहिं वश्वयति । के

# १८४। पूजाभिभवे च लापे: । (पूजाभिभवे ७), च।१।, जापे: प्रा)।

जटाभि लीपयते। स्थेनो वर्त्तिकामुद्धापयते। पुत्रमुद्धापयति। एषु किं, छतं विलापयति। क्षे

### **८१५। मिथ्या कारे-रस्थासे।**

(निया। ११, कारी: ५१, प्रभ्यासे ७)।

पदं मिथ्या कारयते। मिथ्या किं, साधु पदं कारयति। अभ्यासे किं, सक्कत् पदं मिथ्या कारयति। §

<sup>\* ,</sup> जत् च, गेरच तत्तवात् । जदो गेरचय परात् युनिरी ज घ युती इल्याबात् मंस्रात् चे, न तु यद्यपाते । प्रयुनित्त सुचिनिति सुचं यद्ये नियोजयतीलायेः । पाणिनिः १ । इ। ६४, वार्तिकच । "चर्सनिर्दुरः प्रादेः" इति क्रमदील्यः ।

<sup>†</sup> वन्तुगर्या, रुधिर्धुलिफ् इस्वेताभ्यां प्रेरणज्ञान्ताभ्यां वि मं स्थात् प्रतारी। प्रलक्षनिमित पाणिनिसर्व्वकाणी, विसंवाद इति क्रमदीवरः। वटुंबाद्वाणकुमार्वे वस्त्रयते गर्द्वेयते प्रतास्थतीस्थयः। स्थिनः पत्तीकाह्यं सर्पं वस्त्रयति परिइरतीस्थयः। पाणिनिः १।६(८)।

<sup>‡</sup> पूजायां भिभने चकारात् प्रतारे च लापयते घें मं स्यात् । लापिरिति ली-धातो जों (७४५) ङापचे, ला-धातीय जो, उभयोरादन्तलात् (७८४) पणि ६पं। कटाभि कंटिल केमें: पुषजटाभिष्यां पूजयतीययं:। श्रेनो वर्त्तिना-मभिभवतीययं:। पुत्रं प्रतारथतीययं:। इतं द्रवीकरीतीययं: (७८१)। पाणिनि: ११३।७०।

<sup>§</sup> निष्या-श्रन्दात् परात् कारयते घें मंस्यात् पौन:पुन्ये । परं निष्या कारयते स्वरादिदृष्ट' पदं पुन:पुनक्चारयतीत्वर्थः । साध पदं पुन:पुनक्चारयतीत्वर्थः । स्वरादिदृष्ट' पदं सकद्चारयतीत्वर्थः । पाणिनिः १।३।०१ ।

१६ | व्यतीहारे गतिहिंसाग्रव्दाय-हसान्य-हृवहो ऽनन्योन्यार्थे । (व्यतीहारे का, गति—वहः धा, प्रनशीवार्थे का)। व्यतिभवते प्रकीमन्दुः, व्यतिहरते व्यतिवहते । व्यतिजित्तिव्य व्यतिजित्तिध्वं । ॐ

१९० | होऽस्तेरेति। (इ.१), म्बी: ६), पित १) । अस्ते ई: स्यादेकारे परे। व्यति है। १ । ग्रायधी देसु, व्यतिसर्पनि व्यतिमन्ति व्यतिमन्ति व्यतिमन्ति व्यतिमन्ति । १ । इसन्ति। अन्योन्यार्थे तु, परस्परं व्यतिसुनन्ति । १ ।

# १८८। सृहश्(ऽ)ननुत्तानाप्रतियोः सनः।

<sup>\*</sup> गित्य हिंसा च प्रव्य गितिहंसा प्रव्य गितिहंसा प्रव्याः, ते चर्षा येषां ते गितिहंसा प्रव्याः। ते च इस्य ते गितिहंसा प्रव्याय हसाः, ते स्थीऽन्यः गितिहंसा प्रव्याय हसान्यः। गितिहंसा प्रव्याय हस्य वह चिति तस्यात्। चन्योन्यस चर्षं इत चर्षे। यस सीऽनी-न्यायं, त क्रमीन्यायों। इनन्योन्यायं क्षित्। चन्योन्यायं क्षित्-दित्र-प्रस्पर-प्रव्याव क्षियाः। गिन्यं हिंसा यं व्यायं इसिति—िमित्र धातुः चे व्यतीहारे, न तनीन्यायं प्रव्यं इसिति—िमित्र धातुः चे व्यत्यायायं मं स्थात् चे व्यतीहारे, न तनीन्यायं प्रव्यं प्रयुक्तमाने। परस्परमेक जातीय-िमयाकरणं व्यतीः कारः, क्षिया-विनिमयः क्षिया विपर्यं द्यादि। हम इन्हों ने व्यविचात प्रयुक्तिः। इन्हुरके व्यतिभवते, चर्को यथा इन्हान्यं गित उर्देति, इन्हुरित तथा चर्के चं गते छटेतीति व्यतीहारः। व्यतिहरने व्यत्यहते कार्षः वालकः। एवं व्यतिहरने धार्यं चौराः व्यतिवहन्ते भारं क्ष्यकाः इत्यादि। व्यतिकित्रिव्यति भ्रेषः, व्यतिकित्रिवं यूयमिति केवः, जन म लिर् जनौ, (७१६) हितं, (७०८) इस्, (२६०) छङ्कीपः। एवं व्यतिकत्रे हत्यादि। पाणिनिः १।३।१४,१४,१६, वार्तिकत्रवयः।

<sup>†</sup> व्यतिहे इति व्यति-भस-की-ए, भनेन भसस्याने इ-भादेश:। पाणिनिः ०।४।५२। ‡ व्यतिसर्पन्तीत्यादि गत्यधादिलात् व्यतौद्वारिऽपि न मं। परस्परं व्यतिलुन-नौति परस्परशब्देनेव व्यतौद्वारस्यां जलात् न मं। स्थ्यग्विनिमयेनीभौ दधतुर्भ्यन-इयनिति रघुवंश्च विनिमय-श्रन्दस्यापि भन्दीनार्थकत्यनेन नात्मनेपदं।

एभ्य: सनन्तेभ्यो मं स्थात्। सुस्तर्षते दिहचते जिन्नासते श्र यूषते । अन्यत्र अनुजित्तासित श्राश्ययूषित प्रतिश्रयूषित । 🕸

९१६। जिञ् अपन्त-पिन धे नृद्वद वस दम्-रुचाद परिमहायमयसा ऽगिज्ञापवदाग्रन्थात्समा-यमः फलिनि । १ (जित्-यसः ४।, पिका-यमः ४।, पिलिनि ७।)। जिती जान्तपिबादे रगिजानाते रपवदो अय्योदादिपूर्वयमध फलविति घे मं स्थात्। यजते। पाययते धापयते नर्त्त-यते वादयते वासयते दमयते रोचयते आदयते परिमोच्चयते श्रायासयते श्रायासयते। जानीते श्रपवद्ते उद्यच्छते संय-च्छते ग्रायच्छते। ग्रस्येतु, वेदमुद्यच्छति। फलिनि किं, यजित याजकः। 🕸

#### इति म-पाद: ।

<sup>\*</sup> नांति चनुर्यक्षित् सीऽननुः, स चासी जाश्चिति चननुजाः । न विद्यंते मा-प्रती यक्षिन मोडनाप्रति:, स चासौ स्थिति भनाप्रतियु: । स्रृष हम् भनतुक्तास भना-प्रतित्रुचेति तस्रात्। एभ्यः सनन्तेभ्यां नैस्यात् 'चे। पाणिनिः १।३।५०,५८,५८।

<sup>†</sup> परेर्नुड: परिसुड:, चाउने यम-यमी चायमयसी, पित्रस घेस तत् च बदस वसम्बद्भव रुवय ऋदय परिमृदय भागमयमी चेति तत्। आन्तयासी पिवधेतृहद-वसदस्चादपरिसुदायमयम् चेति तन्। जिच जानिपव---यस् चेति तस्मात्। नालि गिर्धिकान् सीऽगि:, चगियासी जाथीति चगिजाः। चपान् वदः चपवदः। खदच सम्व भाष उत्समा:, तेथां यम् उत्समायम्, न ग्रमी ऽग्रमः, अग्रमं उत्-समायम् अयस्योत्समायम् । ततः प्रिकासः प्रपवदय प्रयस्योत्समायम् चिति तस्यात्। पाचिनि: १।३।७२ - ७०,८६, वार्तिकदयम ।

<sup>🛊</sup> चत्र जित्पदेन गवपाठे जानुबन्धाः जानाय रहासी । ञानप्राप्ती ञान्ति पिकादे ग्रंडणं (८६१) कम्पाद्वार्थेङ ् इत्यादिना विहित-परस्रोपदस्य वाधनार्थम् । भन्मया पिवधे भद एषानद्रार्थलाम् भन्मेवामजिप्राणिघाढलात् तेन

#### श्य पाद: - ह-भावं।

#### 400

# **८२०। उ-भावे मं।** (ड-मावे था, मंशा)। धोर्डे भावे च मंस्रात्। \*

१ र-तनो र्यगिगा । (गतनो: ७॥, यक्-इपी १॥)।

धोः रे परे यक्, तिन परे इण्, स्यात् हे भावे च। स्तूयते विष्णुः स्तूयेत, स्तूयतां, ऋस्तूयतः। ऋस्तावि। गै

परस्मैपदापत्तिः स्थात्। ततस्य कम्पादार्थेङित्थादि-विशेषविधिरचन्नः सर्जञानिश्वः फलवत्कर्त्तरं भात्मनपदं सिजिमिति। किञ्च स्थान क् वितर्भे द्रत्यादि चुरादि-गणीयस्य ञानुवस्थात च्यादे जें जंकारिण ञानुवस्थित नासीति स्वनात् गणपिठत-जानुवस्थिति चृराने व्यवस्था। यनते इत्यादि। यजे जो देवाचादो इति जित्। पापाने, भे टपाने, नृत्य वर्षने, वदै वाचि. ऐवसी निवासे, दम् स्य रूपमे, कच जुल्ह भौतिमकाशयोः, भटलो भने. मुझू जिल्ह वैचित्ये, भी यसूपर्मे, इर् यस्य यतने, एकादभैते ज्ञानाः। ज्ञाग वोधे, वदै वाचि, भी यसूपर्मे इति चयः। वेदसुद्यक्कृति वेदमवगन्तुसुद्यमं करोतील्थः। यानको यनतीत्थन्न वेतनदानेन यनमान-एव फलवान्, नृत् यानक इत्यथः।

(५२१) मनकः पसे इत्यर्नम् उभयपद्याप्ती व्यवस्थियं, फलवति कर्णरि श्रात्मनेपदं, फफलवति परस्रोपदिमिति।

<sup>\*</sup> ढं कर्म, भावो भावर्थः, सनाइरि ढभावं तिद्यान्। (८२५) भावे मायिनिति वस्ति, तथाय्यव भावयद्य परवानुबच्चर्थे। बनौ भीरिति कथनं भावमात्रप्राप्तर्थे, तेन पच्चते, चिकितस्वते, कार्यते, पिपस्त्यते, पापच्यते द्रव्यादि। कर्म्याण वाच्चे प्रव्यान कर्म्मण प्रवोत्तातात कर्म्यपदस्य सङ्गा-नाम-युषद्यस्य । यानुसरि कियापदस्य वचनादि भविता। पाणिनिः १।३।१३।

<sup>†</sup> अप्येगत-विशेषापेत्रया निनित्तगत-विशेषस्य वलवस्तान् यां शिकायक् वाध्यते, इ.सा च शिवाध्यते। किस्तात्यकि न गुगः, शिस्तात् इसि बद्धिः। कृयते इत्यादि

# ८२२। इन ग्रह दशच: सिद्धादेमिण वा।

(इन-यह-हम-भवः ४।, सि-बादेः ६।, मिण् ११।, वा (१।) ।

एथः परासां सि-डी-ठी-ती-घीनां निण्वा स्थात् ढ-भावे। श्रस्ताविषातां श्रस्तोषातां इरिइरी। तुष्ट्वे, स्ताविता स्तविता स्तोता, स्ताविषीष्ट स्तोषीष्ट, स्ताविष्यते स्तोष्यते, श्रस्ताविष्यत श्रस्तोष्यत। क्ष स्रार्थते, धर्यते, संस्त्रियते। क्

## ८२३। नेण् तपो उनुतापे।

(न । १।, इण् । १।, सम् ५।, भनुतापे ०।) ।

श्रन्वतप्त । दीयते । क्ष

### ६२४। यन् जिल्लाहर्ण्यातः।

(यन् ।१।, जिषात्कदिषा ७।, बात: ६।)।

<sup>(</sup>५.२०), घाँऽज्यरे पति दीर्घः। विषापिति कर्मा, जनैपिति भेषः। टी-तन् प्रसावि (५.२०) हदः, (६४४) दखनन् लोयः। पाणिनिः ३।१।६६,६०।

<sup>•</sup> इनस यहम हम कम तत्तकात्। भिम्न आदिय (डी टी ती थी) तत्तम्य। मिणी मिलादारी, णिलात् इहि:। इसी वाधकीऽयं। कृटी मातां थि:, सेरादी मिण, लकारस्य (५००) इहि:। पत्ते (५००) भेसेकालादिति इस्नियेशः, (५४२) गुणः। इरि-इरी कर्णः। डी-ता, वा मिण, मिणी विकल्पपत्ते (६०६) वा इस्। एवं टी-सीट, ती-स्रते, थी-स्रत । पाणिनि: ६।४।६२।

<sup>†</sup> स्तृ-ते, यक्, (६१५) स्यायच्धृत इति गुण:। एवं चर-ते चर्यते। सं-त्त-ते, (७७६) सुम्, (६१५) स्तुनु स्त्राभेवेति नियमात् गुणाभावे, (६२०) चर्टहः।

<sup>‡</sup> तपी ऽनुतायार्थे इण्न स्थान् ढभावे। चन्ततिति तन्, इणो निवेधे व्यां सिः, भौदित्त्वाद्रेम्, (५६२) सिलीपः। दीयते इति दा-न दाने, खुदा अलि दाने, दा ल खूनौ, दे उट पालने, दै प भोधने, दीय च्छेदे इत्येषां (६१२) दामागै इति उटी। पाणिनः १।१।६५।

श्रादन्तानां यन् स्थात् िणति क्वति, इणि च। \*
यदायि, श्रद्धायिषातां श्रदिषातां। १
इन्यते, श्रवधि श्रघानि, श्रघानिषातां श्रवधिषातां श्रह्मातां। १
ग्रह्माते, श्रयाहि, श्रयाहिषातां श्रयहीषातां। १
इन्यते, श्रद्धिषातां श्रद्धातां। १
यम्यते मोहो मुकुन्देन, श्रयमि श्रमामि, श्रयमिषातां श्रयामिषातां श्रमामिषातां श्रमामिषातां।

<sup>•</sup> जन पाच डपी, ती इती यस्य में जियात, स चासी किसेति जियात्कत्, सच इण्च तिसान्। यनी न इत् चली। चाटलधात्य्यो पाप: स्थाने (६०६) डी विधानात्, जी च (७८४) पाय-विधानात् अत्र जियाति इत्यनेनैव सिडी किटियो ग्रेंड खं दिहा-धाती पंपि ददरिद्र इत्यत्र यनागम-निषेधार्थे, अन्यया, लीपीऽप्यादेश उच्यते इति न्यायेन लीपसादेशकी, चागमादेशयीमंध्ये वलीयानागमी विधिरिति न्यायात्, (७०२) दरिद्र चालीप इति मुनं वाधिला चनन यनागमापत्ते: । पाणिनि: ७।३।३३।

<sup>†</sup> भदाथीत्यादि दान्तन्, इण्, (६४४) तन्तीपः, भनेन यन् । भातां सिः, मिण्, इण्-मिणोरभेदात् यन् । निणो विकत्यपर्च (७३४) खीदीरिति ङि:।

<sup>‡</sup> भवधीत्यादि इन-तन्, रण्, तन्।वीप:, (६०८) वधादेश:, (५००) विद्वः,,(०४४) पुनः ऋखः। वधादेशविकत्यपचे (६०८) विद्वेष घ इति इस्य घः, विद्वः। भातां विः, मिण् इस्य घः, विद्वः। मिणी विकत्यपचे वधादेशः, तस्यापि विकत्यपचे (८०८) इनः कित्विरिति सेः किस्नुं, (६०६) अम्-बीपः।

<sup>ु</sup> राज्यते इति (६६१) जि:। ती चातां, सि:, निष्, तिक्:। पचे इम् (७०१) इमी दीर्घः।

<sup>¶</sup> घदमिं, दश-टी-तन्, इष्, गुषः, तन् लोपः। टी घातां सिः, सिष्, गुणः। पचे घौदिस्तान्नेन्, (१५४) षङ्, (६०२) षस्य कः, (६५८) सेः किस्तं, (१११) षतं।

<sup>|</sup> सस्यते इति समधाती: जि:, (८००) वा समिति निसं इख:, सि इति स्थिते यक्, (६४१) जेलाप: । मीह इति भजानकर्त्तुः कर्मालात् उक्तकर्माण (२८०) प्रथमा। सिन-तन्, इण्,(२८८) जीखनीन्तु धंयेति इखी दीर्घय, ततः तन्लीप: । आतां, सिः (८२२) भजनलात् मिण्, जीखमीन्तु धंयेति इखी दीर्घय। निषोनिकल्पपचे इम्, न जेलें।प: ।

# १२५। भावे मादंग। (भावे था, मार्थ १।)

मस्यादां वचनं भावे प्रयुज्यते । मृद्या भूयते, श्वभावि, बभूवे हुभूवे, भाविता भविता । यम्यते मृतिना, श्वयमि । श्रकामि श्रवामि । श्रविष । श्रजामि श्रवामि । श्रविष । श्रजामि । श्रविष । श्यविष । श्रविष । श

# १२६। भनजगिलस्रो वेखमो नेलोप:।

(भन्ज-भगिलम: ६।, वा ।१।, इष्यमी: ०॥, न-लीप: १।) ।

त्रभाजि श्रभज्जि, श्रताभि श्रतिभां गौतु, प्राविभा गं

<sup>•</sup> भावे क्यादिविभक्तयः चक्तसंकादेव घातीः स्यः, कत्मस्यमानु सक्तसंकादिष । भावो घात्यंः, तस्मिन् वाचे चात्मनेपदस्य चात्यं ववनं स्यादित्ययः । घात्यंस्य वाच्यः लात् युमदस्यदोरवाच्यं से-प्रश्तयो न स्यः, चित्रच घात्यंस्य दित्यादेरिविकातो दिवचन वहवंचेने न सः, धात्यंस्य दित्यदिविकायामिष पुनाभ्यां सूयते द्रत्यादौ दिवचनादिन स्यादिति । सूर्यते द्रति, स्या दित चनुक्तकत्तरि हतीया । सू सत्तायामिति चक्तभंकात् भावे की ती, यक् । चभावि टौ-तन्, द्रण्, इद्धिः । वस्वे नुभूवे द्रति (५६०) भुवीदङ् व्यां । दरन्तु पाणिनीया निक्कत्ति । भाविता भविता, मिण् वा, पचि दम् । प्रस्तते सुनिना दित प्रमु भियं प्रमे, ते यक् । सुनिः चानोभवतीत्ययः । प्रमिन, टौ-तन्, दण्, इद्धः । त्रवेव कम-वम-चाचम-वर्जनात् तेषु न इस्तः । चाङ्-पूर्व-चनां वर्जनात् चयमीत्यच इस्तः । चन-यम-वियममु वित स्थमि व्यामि, एवं चम चिम पामि, चयमि चयामि । चविव वध इतौ टी-तन्, चवाि इस्तः । चलागारि, (६८६) जागीऽणविति गुणनिवेषः, इद्धः । जो तु (७८८) जीसमीसु चंय नागुर्थित वा इस्ते पददयं । भाष्यम् ।

<sup>†</sup> नास्ति गिर्धियान् सोऽगिः, स चासौ लम्भ चिति चागलका। अन्त च चागिलका च तस्य। चन्योर्नस्य लोपः स्वादा इणि खिति च परे। चभाजीति भन्त भी मीटने टी तन्, इण्, नलोपः, ततः चल् चकारस्य बद्धिः। नलोपाभावपचे जल्भ चकाराभावात् न बद्धिः। एव लभौ क य प्राप्तौ टी तन्, इण्, (०४१) तृण् रख इति तृण्, चनेन नलोपपचे बद्धिः, चन्यत्र न बद्धिः। गौ तु इति उपस्भै छपपरे सतौत्ययेः। पाणिनिः ६।४।३३,०।१।६८।

### **८२७। ढवट् ढिवा ऽढे।** (डवन १२१, डघ: ११, घडे ७))

ढमेव घलं प्राप्तं ढघः, स चृढवत् स्थात् नतु ढे सित । \*
तथाच-कियमाणन्तु यत् कमं स्वयमेव प्रसिध्यति ।
सुकरैः स्वैर्गुणैः कर्त्तुः कमंकर्तेति तिहदुः ॥
स्वयमेव भिद्यते काष्ठं, श्रभेदि । क्ष

# टच तत् घथित टघः, भारी ढं पथात् घ इत्यथः। टघः कस्मैकतां द्वत् कस्मैवत् भवित, नत् दे कम्मीण सर्ति, दिकस्मैकस्थले एकस्य कम्मेणः कर्तृलवित्वचायां भन्यस्मिन् कस्मीण विद्यमाने न स्थादित्यथः। तेन याच्यते राजा स्वयमेत मृत्तिमिति न स्थात्। दयदित्यनेन कस्मैताच्यविद्यितं यक् इ.ण मिण् भात्मनेपदञ्च भितिद्यति, न तुकस्मैकर्तः कस्मैलं विधीयते। पाणिनिः श्राप्ट, वार्तिकञ्च।

धालयां: केचित् कर्मस्याः केचित् कर्मस्याय भविन । अत्र कर्मस्यायं धातृनाभिव कर्मयाः कर्मृत्विविचा, नत् कर्मृत्यायं धातृनां, तेन पच्यते चीटनः स्त्रथमेव, भिद्यतं काष्टं स्त्रयमेव इत्यादि स्वात्, खाद्यते चीदनः स्त्रयमेव, गम्यते थानः स्त्रयमेव इत्यादि स्वात्, खाद्यते चीदनः स्त्रयमेव, गम्यते थानः स्त्रयमेव इत्यादि त वीध्यं। तथाच प्राचः—कर्माष्टं प्रित्व धालयें कर्म्यकर्ता च कर्मृत्वत्॥ कर्मम्यः पचते भीवः कर्म्यत्रयः। कर्मृश्यो वृध्यतेभीवः कर्मृत्याय गमादयः इति॥ पचते-भिवस्युक्तादीनां विक्रित्तिस्यक्तुलादिष्येव भवित नत् पाककर्त्तिः, एवं भिदादि भावी भेदादिः काष्टादिष्येव न तु भेदादिक्तिरिः। वृध्यते भावी ज्ञानं प्रिष्यप्येव न तु यत्यादौ, एव गमादीनां भावः पादचालनादिः कर्मृष्येव नत् याभादावित्ययः। एवच— निर्व्यये च विकार्ये च कर्म्यव्यात इत्यते। भ तु प्राप्ये कर्म्यणीति सिद्यानां प्रयं व्यवस्थितः॥ किञ्च पक्तियाकर्मणः कर्मृत्वं विवद्यते इति वीध्यं, तेन पचलीदनं देवदनः, राध्यते प्रीदनः स्त्रयमेव इत्यव न स्थात्।

† एक कियायां एक स्व कर्षां कर्णु त्या कथं सभावती त्यत चाइ — कियमाण मिति। कियमाणं साध्यमा में यत कर्षाः कर्णुः सकरैः सखिनिषादौः, खेनिजेः कर्षास्वत्यिमि- रिति यावत् गृषैः, स्वयमेव प्रसिध्यति निषयते तत् कर्षाकर्णा इति विदुर्जानिन बुधा इति श्रेषः। चन्येन भिद्यमानं काष्ठं खयमेव नियतं, काष्ठस्याति भङ्गरत्व इपगुणेन कर्णुः सुकरेष ख्यमेव भेदी जायते इत्यर्थः। काष्ठमिति चाष्या तेनी क्षवात् प्रयमा। टौ तन् चमेदि।

## १२८। कुषि-रन्जः भ्यन्-पेवारे।

(कुवि-रन्जः ५।, ध्यन्-पे १॥, वा ११।, रे ७।)।

कुष्यति कुष्यते, रज्यति रज्यते। \*

**८२६ | वेगाज्युहः ।** (वा १२१, षण् १२१, पण्डुषः ४१) । अजन्तात् दुहस दण्स्यादा ठवे ।, अजादि अक्षत, अदीहि अदुग्ध । पं

### १३०। न तप-तघ-सद्पचदुइ:।

(न ।१।, तप-वध-संड-पचदुष्टः ५।) ।

तपो रुधः सटाभ्यां पचदुष्टाभ्याश्व इण्न स्यात् टघे। श्रतम, श्ररह। श्रपत्त श्राम्तः फलं, श्रदुष्य गौ र्नुष्यं। श्रतएवानयो-टेंऽपि टघलं। क्ष

<sup>\*&#</sup>x27;कुषिय रन्त्र च तत्त्रसात्। स्थन् च पञ्च ते। मान्यां रै विषये स्थन् परसौपदस्य स्थाद्या कर्माकर्त्तरि वाच्ये। कुष ग निष्कोधे, रेपरे पंस्थन् च, पचे संयक्। एतं रज्यतीति रन्जी ज रागे, (५६७) नलीपः। 'रे किं, मक्षीप, चुकुषे। मरिस्न, ररने ररत्ते। पंविति कते सिर्वेऽपि स्थन्विधानं, कुष्यत्ती रज्यन्ती इत्यच (२४५) निस्यनुष्ये। पाषिनिः श्राटः।

<sup>†</sup> भच्च दुइ च तत्तकात्। चजन्तभाती दृष्टभातीय तिन परे इय् वा स्थात् दुधे। वा-महणं वाधिकारनिवृत्त्यथे। चकारीति जन्तन्, इय्, (६४४) तन्-सीपः, (५००) वृद्धिः। पर्चे द्यां सिः, (६५८) से: किस्तं, (६६२) सेसेंगः। चदीहीति द्वि गुग्रः। पर्चे (६५०) सिनिषेधे सकोऽप्रातिपचे चदुन्थ। पाणिनिः श्राहिर, ६३।

<sup>्</sup>रेटन चड वर्सेते यो तो सदी, सदी च तो पचडुडी चेति, ततः तपथ रूपथ सहपचढुडी चेति तथात्। धातक्षेति इष्-निषेधे व्यां सिः, घोदिस्वात् नेम्, सिलीपः। प्रवं धकत् , घव से: कित्सभा। धपक्ष भास इत्यादि, कालेन फलं पच्चमान धासड्यः स्वयं फलं भपक्ष, एवं गोपन दुर्भ दुश्वमाना गौः स्वयं दुर्भ खुरुष। घत्र सकक्षकः

# ६३१। सन यन्य ग्रन्य ब्रुक् गृ दुह्न नस-भूषायात् यक् च जिसुत्यि-माढात्त्वमिण्।

(सन—स्वार्थात था, यक् १११, च १११, जि—माडात था, त १११, चिमक् १११)।
सनन्तादे-रिण् यक् च न स्यात् उघे, जान्तादेसु मिण्वर्जं। क्ष चिकीर्षते अचिकीर्षिष्ट। यथीते अवस्थिष्ट, यथीते अयस्थिष्ट। ब्रूते अवोचता किरते अकीर्ष्ट, गिरते अमीर्ष्ट। दुखे अदुखा। नमते अनंस्त। तंसते अतंसिष्ट। कारयते, अचीकरत अकारिष्ट अकार्थिष्ट। स्तृते अस्नाविष्ट अस्नोष्ट। ययते अधिस्थित अवायिष्ट अविष्ट। आहते आविष्ट

पचटुकाथ्यां इष्-निषेधे व्यां सिः, सिलीपः, खभयत श्रौदिचान्नेम् । श्वतएविति, स्त्रे सक्ष्यंक-पचटुक्यदृषात् श्रमथीः कर्ष्यान्तरशच्छेऽपि कर्ष्यकनृत्विभिति वीध्यं । पाणिनिः शाराहरु, द्यानिकश्च।

सन् सननः । भूषा चर्षे। यस्य स मूवार्थः । सन् च यस्यस्य यस्य त्रूष कृष गृष दुइस नमय भूषार्थसित तस्यात् । जि ज्यानः । में (चात्मनेपदे) चटः (चलक्षंकः) माटः । जिव सुष विष्य माटयेति तस्यात् । न मिण् भमिण् । एस्थे यस्, चनारात् इण् च, न स्यात्, इणोऽभिन्नं तेन मिण् भिष् न स्यात् उदे, जानादेसु निण् भिन्नः इण् यक् च न स्यात्, सिण् तुस्यादेवेल्यर्थः । दुइधातीः पूर्वेण इण्-निवेधे भन यहण्यं यक्-निवेधार्थे । ज्यानत्त्रवो विक्तं क्लेडिंगः चत्रप्यानयो टेंडिंगः टघलिनित बीध्यं । पाणिनः इ।१८०६, वार्त्तिकन्यस्य ।

<sup>1</sup> चिकी वैते इत्यादि, यं कर्त्तुमिच्छति स खयमेव विकी वैते इति विकी वै-धाती: यक्षिधे भाशिक कर्तृवाच्यत्वात् अप्। टी-तन् इत्य्-निवेधे (५५१) सिः, चिक्रक्त त्वात् मिणीऽपि निवेधे (५५४) इत्। सक्तदगती विव्रतियेधी यदवाधितं तदवाधितमेवेति न्यायात् सिवाधक स्थोऽपि निवेधे पुनः कथं सिरिति चेत् न्यायस्य सर्व्ववाद्यीकारादिति। यय ग मोचे कौ-ते यको निवेधे भाशिकर्तृवाच्यतात् (०१८) त्रा, (००१) त्राहेगादिति ई.ः, (५६०) नलीपः। टी-तन्, इत्य-निवेधे सिः इत् च। एवं ग्रयःग दर्भे इत्यसामा

# ८३२। न्यादि-अन्ताढगत्यर्था मुख्ये ढे ढत्यमाप्रयः। गौणे याचादयोऽन्ये, त यथेष्टं द्विढघुष्टिति॥\*

अभ्यते ग्रस्ते इति भीवादिकौ किवदुदाइरति । ब्रुते यक्निधेघे क्रप्, घदादिलात् भ्रपी सुक्। टी-तन्, इ.च निषेधे, चर-विषये (७२५) वचा देशे, (६१८) वका स्थिति डः, (६५२) बोचारिम:। कृम विचेषे ते यक्-निषेषे, तुदादिलात् (७३८) मः(६२८) ऋस्याने इर्। टी तन् रच्निवेधे, सिः, (७४७) स्वायृहदिति इमीऽभावपचे (६५८) से: किन्त, इर्, (२२८) दीर्घः । इमपचेतु भक्तरीष्ट भक्तरिष्ट इति च । एवं स्टूध निगर्णे इत्य-स्थापि। दुर्ग्धे इति दुइ ते, यक्निषेधे ग्रप्, प्रापी लुक्, (१७६) दादेवं:। टी तन्, पूर्णमृत्री व इय्निपेधे, (६५०) सकोऽप्राप्तिपचे सि-निधेधे:। नम-ते यक्निधेधे अप। टी तन्, रण्निवधे सिः, पौदिस्तात्रेम्। तस धातुर्भूत्रायः। कारयते इति कजिः कारिधाती: तं, यक्निवेधे भए। टीतन्, इण्निवेधे, (११३) अङ्, दिलादिकं, भचीकरतः । भडो नित्यत्वेऽपि भव मिण्वर्जभिति कष्टनेन निगः प्राप्तान्रीघात् ল্যাল-স্থিম্যা पचे व्यां सिरिति, अतः भिषि जेलेपि, अकारिष्ट, मिणीऽप्राप्तिपची इ.सि. जीलें।पोभावे भाकारियष्ट। णाुल प्रसुधां सुर्तयक्निविधे, प्राप्, प्रापी सुक्। टी-सन्. इण्निविधे, व्यांसिः, निष् बढाादि, श्रक्षाविष्ट। निषीऽपाप्तिपचे, (५८६) सुक्रमोऽभे इति नियमादिन्निधेषः । श्रिज सेवने ते, यक्नियेषे भ्रपः । टी तन् द्रव्निवेधे, चङ् दिलांदि, अधियियत। निष्पचे अयायिष्ट, इन्पचे अविथि। चाहते इति चाहन ते यक्निष्धे भप्, भपोलुक्, (६०६) ञम्लोपः। टी-तन्, इसी निवेधे, सि:, निष्, (६०८) वधादेश:, इदि (७४४) इस्तः, भावधिष्ट। वधा-देशाभाव-पचे (६९८) इ.स. घ:, इ.स. १६, आघानिष्ट । निर्णाऽभावपचे (८९८) में: किस्त्रं, तती जम्लीपः, ततः सिलीपः, चार्डतः। चार्ङ्पूर्व्वदन्तरकर्म्मकात् (८०८) चात्मनेपट्विधानान्, सक्तर्यकोऽष्ययं नाटः बोडव्यः चक्तर्यक्तरः कर्माकर्त्तृतासभावात् ।

\* दिकसंक्षधातुभ्यः कर्माण वाचि प्रत्यशंत्रपत्ती सुद्धः गौणसुभयं वा कर्म जलं भवतीति सन्देहं व्यवस्थाना — न्यादीति। भानित हं (कर्म) यस्य संऽद्धः। चहच गत्ययं घरणत्ययं। जान्ती च तौ घटगत्यर्थां चित जान्ताहगत्यर्थां। न्यादयय जान्ताहगत्यर्थं च ते। दिहधु दिकसंक्षधातु मध्ये, (२८४) न्यादयो — नी वह हृ दिख्य गह ता सन्य सुष पचाद्या नव, जान्ताकसंका जान्तगत्यर्थां घातवी सुद्धः हे कर्माण वाच्ये हत कर्माणत्ययं चापुयुः। (२८५) याचादयो — याच्यायं दु इ चि प्रच्य क्ष मू शास जि इत्यर्थं घात्रये। गौण कर्माण वाच्ये कर्माणत्ययमापुयुः। चन्ये तु दिकमंत्रा धातवः यथेष्ट सुद्धां गौणे वा कर्माण वाच्ये कर्माणत्यमापुयुः। चन्ये तु दिकमंत्रा धातवः यथेष्ट सुद्धां गौणे वा कर्माण वाच्ये कर्माणत्यमापुयुः। चन्ये तु विवस्ता पटितः। साचात् किया

### निन्धे विजनमजागरि रजनिमगिम मुद्मयाचि सभीगं। गोपी द्वावमकार्यत भावसैनामनलेन ॥ \*

इति द्वभाव-पाद:।

न्ययिलं सुष्यलं, व्यविहित कियान्वियलं गौषालिमिति। चन यथप्टमिति चनिर्षयाद्तं, सन्वेत ज्ञानाना प्रयोज्यं कभीने के भनतीति पाणिनि सन्वेनमं कमरीचराः। पाणिनिः यथा— "गौषे कम्मिष दुद्यादेः (दुह याच पच दण्ड क्ष प्रच्छ वि बू भास जि मन्य सुष) प्रधाने नी ह क्षय् वहानं, वृद्धिभैवार्थयोः भन्दकम्पंषाच निजेच्हेया, प्रयोज्यक्षमं प्रवासंग्रहेषां प्रकृतिकार्योः मताः।''

\* उदाइरणान्याइ निर्मे इत्यायार्थया। अननीन क्रणीन गोपी विजनं (वनं) निर्मे प्रापिता, अन गोपीति सुख्य कर्य उक्त । अननीन गोपी रणांनं अनागरि नागरिती, (२०२) देशास्त्रकालंत्यनेन कालाधिकरणस्य रजने क्र्यांत्वे सक्तर्यक्षयाप्, स्वभावा-दक्तर्यक्षस्य नाग्रधातीं ज्ञानकात्रा गोप्याः (२०४) क्रयांत्वे, तत्य प्रेरणिकथाया सुख्ये कर्यागोपीत्युकं। अननीन गोपी सुदं इधे अगि प्रापिता, अनापि गोपी सुख्ये कर्या ज्ञानि गोपी सुदं इधे अगि प्रापिता, अनापि गोपी सुख्ये कर्या ज्ञानि गोपी सुद्धे कर्या ज्ञानि श्रापिता, अनापी गोपा कर्या ज्ञाने। यथटमाइ—अननीन हावं (भावविश्वं) अकार्यत कारिता, अन गोपी सुद्धे कर्या ज्ञाने। अननीन एना गोपी भावय अकार्यतेति भेषः, अन भाव रित गीपा कर्या ज्ञाने। अकार्थत दित कारि इति ज्ञानक्षधातीः घीता।

#### च कर्मकाल ---

सत्ता-जीवन-दर्प-भीति-श्यन-कीडा-निवास-चया-ऽव्यक्तध्वान-मभीगर्ध-स्थिति-जरा-जज्ञा-प्रमादोदये। उन्यादं च प्रलायन-समण्यी: ख्यातौ चवे खोटने मोहे धावन-युड-ग्राज्ञ-दहने शानौ सुतौ मज्जने॥ दौतौ जागर-शोष-वक्तगमनीत्साह स्त्तौ संश्रये म्लानौ मन्दगतौ च नृत्य-पतने चेष्टा-कुधी रोदनी। बद्धौ हावकृती च सिश्च-विरतौ हथापविश्र बस्ले कस्पीहेग-निभेष-सङ्ग-यतन-स्त्रेटे धवीऽक्षकृता.॥

सक्तमंकाय कर्माविवचायामकर्मका भवन्ति, तथाच भाष्यम्— भातीरथांन्तरे हत्ते धालयेंनीपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरिविवचातः कर्मणोऽकार्म्मका निर्धेति॥ भालयेंत्र सङ्कर्मण उपसंग्रहादिखये, यथा, तपस्रति सुनिरित्यादि।

#### धर्ष पादः—क्तिः।

-cx200000--

# १ ३३ । भवद्भूतभव्ये निशः कादाः । (भवत्-मृत-मव्ये ७), निशः ।१॥, कावाः १॥)।

क्याद्याः त्राय स्तिस्तस्तिस्तः क्रमात् वर्त्तमानातीतभविष्यत्सु कालेषु स्युः। \*

> शेते स चित्त-ययने मम मीन-कूर्या-कोलोऽभवबृहरिवामनजामद्ग्नाः।

पार्व्यक्रियायाः समाप्तिपर्यनः काली वर्त्तमानः, यथा महाभारतं पठति । स चतुर्ळिम:--यया, प्रवृत्तीपरतयैव, वृत्ताविरत एव च ; नित्यप्रवृत्तः, सामीप्यो वर्त्तमान-श्रुतुर्व्विषः । क्रमेण यथा---मांसं न खादति, पादौ प्रवत्तं भांसभीजनं निवर्त्तयतीयर्थः । इ.इ. कुमारा: कीड्लि, तदानीं कीड्राभावेऽपि पूर्वकीड्राया बढी वर्त्तमानलात्। पर्व्यतासिष्ठन्ति, नित्यप्रवृत्ततान् । किश्व पर्व्यतानां नित्यप्रवृत्ताविष सम्बन्धविवश्वया भूतभविष्यतकालयोरपि प्रयोगी भविष्यति । सामीप्यी दिविध:--भूतसामीप्यी भविष्यत-सामीष्यय, यथा-चागमनानन्तरमपि एषीऽइमागक्तामि, एवं गमनातृ पूर्वमपि एवीऽष्टं गच्छामीति। पाणिनि: शशश्रश

यिमन् काले कियासमाप्ति भैवति स भूतः, सच विधा,-पदातनः, श्चलनः, परीचचेति । क्रमेण यथा — मः चयाभवत्, स स्त्रोऽद्राचीत्,स बहुदिनं नगाम । चयतने घी, इसलने टी, परोचे ठीति कथित तन्न, सर्व्यवेत व्यक्षिकारात्। पाणिनिस् "पनयतने लड्" (३।२।१११), "लुङ्" (३।२।११०), "परीचे लिट्" (३।२।११५)।

भविष्यत्रपि चिधा-- व्यद्यतनभविष्यन् व्यन्यतनभविष्यन् दूरभविष्यन् । यथा-- व्यद भविता, त्री भविष्यति, वलारान्ते भविष्यतीति। पाणिनिन्तु "पनयतने नुट्" (शशारध), "लूट भेने च" (शशारश)।

<sup>🐡</sup> भवंत्र भृत्य भव्यत्र तत्रस्थितः। की पाद्यायासां ताः। पत्र कालेद्रति भवन्निति वर्भमाने श्रतुर्विधानात वर्भमान:, भूत इति विश्रेष्यं पटमध्याद्वार्थे। श्रतीते क्षविधानादतीत:; भव्यो भविष्यनकाल:, सामान्यकाले तव्यादि-विधानादिप इह भविष्यतकाले यः। की खी गी-वर्त्तभाने, घी टी ठी-अतीते, डी टी की-भविष्यति, घो - सर्व्वकाले (१६३)।

योऽभूद्वभूव भरताग्रजक्षणाबुद्धः कल्की सताच भविता प्रहरिष्यतेऽरीन्॥ \*

८३८ । की स्मेनानीते। (की ।श, क्षेत्र का, कतीते ०)। स्मेन योगे अतीते काले की स्थात्। इन्ति स्म रावणं रामः। 🕆

१३५१ यावत्पुरास्यां भव्ये । (यावत-पुराभ्यां ३॥,भव्ये ७)। यावद् भवति कल्की, पुरा दृश्यते कल्की । इः

८३६ | कदाकहिंग्यां वा । (कदा-किंहिंगां रा, वा ।रा)। कदा प्रथामि गोविन्दं, किंहिं द्रच्यामि ग्रङ्गरं । §

८३७ | किसि लिप्सायां | (किसि: २॥, विभागं ०)। डतरडतमत्त्रयन्त-किमो रूपै गींगे भव्ये की वा स्थात् लिपायां। कतरः कतमः को वा भित्तां रास्रित राति वा। श

अ स्ती-गी ढी-पीनां विश्वषिविधं बस्यतीति ता विद्याय खदाइरित श्रेते इति । स सम चित्तअयि चित्तशय्यायां श्रेते, यः भीनक् संकीलोऽभवत, वृहरिवाननजामद्याः असूत्, सरतायज्ञक्षपञ्जो वसूत, कत्को भितता, सतां साधूनां अरीन् प्रहरिव्यते चेत्य-लयः । भीन-क्रुमांभ्यां कीलः सीनक्रमंकीलः, एवं सर्व्यव वियदः । कीली वराइः ।

<sup>†</sup> स्माद्रत्यव्ययं चतीतकालवाचि । यद्यपिभृतमाने स्मण्रच्दः प्रयुक्ती वैयाकरणेः, तथापि भृतकियाकमान्वियिते एव प्राय्यः श्रिष्टप्रयोगी दृश्यते । यथा ''पन्न्यति स्म जनता दिनास्यये'' इति रघुः । पाणिनिः ३।२।११८ ।

<sup>‡</sup> भाष्यां योगे भविष्यत्काक्षे की स्थात् । निकटागामिके पुरा, तत्साहचर्यात् यावदिख्यययं। भतप्त, यावद्दास्यति तावद्कीच्यते इत्यादी भव्ययभिन्ने न स्यात्। पाचिनि: ३।३।४।

<sup>§</sup> भाभ्यांयोगेभव्ये कौ वा स्थात्। पस्त्राभि द्रद्यामील्युदाष्टरण्डयेन विकल्पा दर्शित:। पाणिनि: ३।३।५ ।

<sup>¶</sup> किसिरित वह वचनेन सर्वविधानां किस्थव्दरुपाणां प्राप्तिः। जन्युनिच्छा

# १३८। लिप्यसिद्धी। (विश्वासिदी o)।

लिफेरनावादिना खर्गादेः सिष्ठै। सत्यां भव्ये की वा स्थात्। यो भिचां ददाति दास्यति वा स खर्गे याति यास्यति वा । \*

### ६३६। ग्यर्थाम्योः । (स्वर्षां पर्योः ७))।

ग्या प्रधे प्रियादी प्रामंसायात्व भन्ने की बा स्थात्। गुरुषेदा-याति प्रायास्यति वा, प्रय लं वेदमधीत्व वयं तर्कमधीमहे। पे

## ८४०। जात्विपिथ्यां सदा चीपे।

(जातुं अपिथां ३॥, सदा ठा, चेपे ठा) ।

जातु निन्दिस गोविन्द मिप निन्दिस शङ्करं। ई

# १८४। अधमा खीचवा।

(कथमा ३।, खी।१।, घ।१।, बा।१।)।

लिप्सातस्यांगस्यमानायानिकर्षः । (५१०) दयोर्क्यध्ये कः, वहनां सध्ये कः, को वादाता,भिवांपाति रास्यप्ति वा,पाल दाने । पाणिनिः १।३।६ ।

<sup>•</sup> लब्धु निष्यते यत् तत् लिस्त्रां (सम्रादिः) कर्माण यः, तेन सिहिसस्यां । प्रयक् योगात् किमिरिति नानुवर्भते । दातारं कथिन प्रीन्सः इयित यो भिचामित्यादि । प्ररोचनायामिति भौमराः । पाणिनिः शशि ।

<sup>†</sup> ग्या पर्थी ग्यर्थ: । इसी प्रिष्यादाविति कथनात्, (८५४) वत्यमाणेषु ग्यथेषु विध्यादिष्म मध्ये प्रेष्यप्राप्तकालातुमत्य एव ग्रह्मनी। पार्थेषा सम्भावना। गृहर्ये दायातीति पार्थसायां, तं वेदमधीषिति ग्या पर्धे पतुमती उदाहरणह्यं, पर्धीष हत्यस्य पर्चे प्रधीये इति की प्र्यामिहे इत्यस्य पर्चे प्रध्यामहे इति गी च भविता। प्राथंसायां श्रीप्रार्थे भंद्ये तौ नित्यमिति वक्तव्यं (संविष्तसारं, तिकन्तपादे प्रश्मन्मं), तेन इटियेदायास्यति श्रीघं धाम्यं वस्तामीलेव। पार्णिनः २१३ । ११ ।

<sup>‡</sup> जालपिश्यां योगे, चेपे गर्थायां, सदा सब्बेंषु कालेषु नित्यभ्य, क्यी स्थादिलार्थः। सदेलाधिकारः।. जालु कदाचित्। पाणिनिः ३।३।१४९।

क्यं निन्दस्यजं, निन्देः यभुं, देवी निनिन्दिय । \*

8२ | किसि: ख़ीत्यो | (किशः रण खी यो स्थ)।

८८३ | ऋन्ये आ अहा मर्जे । (भने: १॥, पारा, पत्रदामणें ها) ا किसिश्व (دوه) ا

> न यदधे मर्पये नी यत् स मिर्हिश्यते हिरा । हरं गर्हेत, की निन्देत् विष्णुं निन्दिश्यती खरं ॥ क्ष

## **८८८। निंनिनास्त्रधीयां ती।**

(किंकिल-भ्रस्यर्थाभ्यां ३॥, ती।१।)।

तं किंकिल द्वषीकेशं निन्दिष्यसि, न मंखसे। महादेवश्वास्तिनाम, श्रद्धे नो न मर्षये॥ §

कथम् प्रस्टेश योगे सर्वेषु कालेषु स्वीचकारात की चवास्थात् गर्हायां। भटा चिपे क्रस्यतुवर्ततः । कथं निन्दशीति कथंशब्दस्य तिषु वाक्षेषु सम्बन्धः। पाणि।नः स्वाश्यक्षः।

<sup>†</sup> उतरउतमञ्चल-किमी रूपै थेंगि सब्वेंदु कालीयु खी-त्यौ स्थातां गर्हायां। पारिपनि: १|१।१४४।

<sup>‡</sup> यादा सभावना, सर्वः समा। यादाण सभावः सयातं, सर्वस्थानाः समावै। समावद्य समर्वस्य तत्राक्षिन्। किलियिति हितः। उत्तर उत्तम काल-किमी रूपै-रूपैय सुद्दै थेंग्गे सब्बेष स्वी-त्यौ सः स्वयदामवेंद्यें, स्वय स्विपे द्वित नात्वतंति। स्व सनी यत् क्षरि गर्हियते इर गर्हेश तदइं न याद्ये नो सर्वसे, को जभी विण् निन्देत्, दंयर निन्द्यिति, तदहं न याद्ये नो सर्वये इत्यव्यः। पाणिनिः शशास्थ्यः।

# ८१५। जातु-यद्-यदा-यदिभि: खी।

(नातु-यद-यदा-यदिभि: ३॥, खी ।१।)।

न मर्षये यहधे नो जातु निन्देज्जनाईनम्। क

### १४६। यच-यनाभ्यां चेपचिते च।

(यस-यनाभ्यां ३॥, चैपचिने ७, च ।१।)।

यच निन्देत् विभुं, गर्हे चित्रं ऋदां न मर्पये । 🕆

# ८४७। चित्रे त्ययदिना।

(चित्रे अ, ती ।१।, भ यदिना ३।)।

यदि-वर्ज्जितेन ग्रब्दमानेण योगे चिने गम्ये सदा ती स्थात्। चित्रं द्रच्यति नामान्यः क्षणं, प्रस्थेत् यदीखरं। ध

# ८८८। वाढ़ेऽप्युताय्यां खी।

• (पार्द्ध ७।, भपि-चताम्यां ३॥, खी ।१।)।

समाव नायां सहाटेवच न संखसे, तदहं नो यद्वचे न मर्थयं इति श्लोकायः। पालिनि: इ। १४६।

<sup>\*</sup> जातुम यद च यदा च यदिय ते ते:। एभि योगे सब्बंध कालेषु खी स्या-दयदानर्थे। भवान जातु कदाचित् जनाई नं निन्दंत् तदहं न सब्ये ना यद्वि । एवं यद्विन्दंत् यदा निन्देत् यदि निन्दंदिति च। पाणिनिः शश्थित, वार्त्तिक्ष ।

<sup>ा</sup> यचय यचय ताभ्यां। भाभ्यां योगे चेपे चित्रे चकारात् भयकामधे प्रस्केषुं कालंषु खौ स्यात्। चेपो गर्का, चित्रसायर्थे। जनो यस विभुं निन्देत् तदहं गर्के, तिस्त्र, तनाइं युद्धांन कारोसि, तदइंन मर्थयं इत्ययं:। एवं यत्र निन्देदिति। पाणिनि: ३।३।१४८-१५०।

<sup>‡</sup> यदि विजितेन इति बीपदेवमतम् ; यद्य यत-यदि वर्जम् इति तु भद्दीजित-क्रमदीयगै। नाम सम्भावनाथां भन्यः क्रष्णं द्रस्यति तिवितं। भ्र-यदिना किं, भन्यः द्रंथरं यदि पत्थीत् तिचित्रं, भन खी पयोगं दर्भयता यदिना योगे चित्रं गम्ये सदा खी स्थादिति स्वितं। पाणिनिः ३।३।४५८।

त्रिप हन्यादघं मभ्-रत दुःखं जयेदजः। \*

१८१ प्रौक्या सस्मावन । (भौका रा, समावन का)।
प्रौढिः सामर्थ्यः। समावनं क्रियास योग्यताध्यवसायः।
प्रौढिन्देतुक-समावनोपाधिकेऽवै वर्त्तमानात् धीः सदा खीः
स्यात्। श्रपिहिंस्यात् जग्नाधी महापातकपञ्चकं । प्रैः

# ८५०। यहाधे वी ऽयदि।

(श्रज्ञार्थे: २॥, वा ।१।, श्र-यदि ७)।

अद्धे ऽजं भजे: प्राणै-भैच्यमेऽजं बभक्यं तं । 🕸

# ८५१। भव्ये वा फलहेलोः।

(भव्ये ७।, वा ।१।, फलहेली: ७॥)।

# र्यं यायाचे-वमेदीयं, श्रीयं नंखति याख्ति। §

अत्राटं चितिश्यः । चितिश्यार्थे वर्तमानाभ्यामप्यताभ्यां योगे सर्वेषु कालेषु स्वी स्थान् । श्रमुः अत्रं पापं चिप क्ष्यान् पापक्तने चितियोग्य इत्यर्थः । चातः क्रच्यः दुःखं उत जयेत् दुःखजये चितियोग्य इत्यर्थः । पाधिनिः ३।६।१५२ ।

<sup>†</sup> योग्यताध्यवभायः क्षेग्यतावलक्ष्वनं । सामर्थ्येन क्रियासुयोग्यतावलक्ष्वनं छपाछि-भेंदकं यस्य तस्त्रिवर्थे वर्तमानात् भोः सन्त्रेषु कालेषु स्वी स्थादित्ययः । ''सिद्धाप्रयोग'' इति च पाणिनिः । जगन्नायः सद्दापातकपञ्चकं भिष्कंसात् सामर्थ्यन सहापातकपञ्चक-इनने योग्य इत्यर्थः । पाणिनिः २। इ। १५४४ ।

<sup>‡</sup> न यद चयद तिकान्। ऋडायें योंगे प्रौका समावने सब्बेंद कालेंद खी स्थादा न तु यद्शब्द्धयोगे। त्वं प्राचै: सामयों: घजं भजे: घडं यद्धे। पर्च घजं भत्त्यसे तं वभक्ष, दति भविष्यदतीतयोक्दाइरणदयं। घयदि किं, यद्देऽजं भवान् प्राचै-भेजेत् यत् पुक्षोत्तमसिति पूबेण (८४८) नित्यं खी। पाणिनि: १।३।१५५।

<sup>§</sup> वाग्रहणं परच वाधिकारिनिबस्तयो । फलं कार्थ्य, हेतु: कारणं। फलिक्यायां फेतुकियायाञ्च वर्त्तमानात् भी: भव्ये खी वास्यात्। जन: ईश्चंनभेन्नेत् ग्रंयायात्

रपूर । कामोक्ते ऽकचिति । (कामीके थ, पकचिति थ)। कामं भजेत् भवान् भगें कचिदर्चिष्यते यिवं । \*

ध्यू ३ | गी चेच्छा थैं: | (गी।रा, च।रा, दक्का थैं: २॥)। दच्छामि, शर्व्वं सेवेत श्रीपतिं सेवतां भवान् । कामीक दति किं, दच्छन् करोति । पं

्रभूष्ठ । विधि-निमन्त्रणामन्त्रणाध्येषण-संप्रत्र-प्रार्थनाप्रेष्य-प्राप्तकालादौ । (विधि—प्राप्तकालादो ७)।

सदा। यागं कुर्यात्, इह भुक्षीत भवान्, इह प्रयीत भवान्, प्रत्नमध्याप्रयेत् भवान्, किंभो वेदमधीयीय उत तर्कमधीयीय, भी भी जनं लभेय, प्रेषितस्वं गङ्गां गच्छे:, प्राप्तस्ते कालस्तपः कुर्याः। एवंगी। कृ

क ल्याण प्राप्तयात् । द्रीय-नमस्तारी हेतुः, क ल्याणप्राप्तिः फ लं। पचे यौग्रं नेस्यति चेत् श्रायास्यति । पाणिनिः ३।३।१५६ ।

अ सब्दुक सुत्या सदेल नुवर्तते। कामोक्र निच्छा प्रकाश:, तिस्रवर्धे सब्वेषु कालेषु खीस्यात् न तुक्तिवित्र स्वयोगे। भवान् कामं यथेष्टं यथा स्थालया भगे थियं भजेत् इति वक्तुरिच्छया एतदान्यं। भवाविदिति किं, किंचित् प्रियं पर्विष्यते इति किंवित्र स्वयाद्या एतदान्यं। भवाविदिति किं, किंचित् प्रायं पर्विष्यते इति किंवित्र स्वयादः।) पाथिनिः श्रीश्यः । (क्षित् कामप्रवेदने द्रस्थमरः।) पाथिनिः श्रीश्यः ।

<sup>†</sup> इच्छा छें भें भिस्तें वृक्षाले वृक्षाने कि स्त्री गीच स्थान् । घडं इच्छानि — स्थान् प्रस्त्रं महादेवं से बेत, प्रोपितं से बतांवा। घव उच्छा प्रकाशे स्त्री गीच। इच्छन् लगः करोति इत्यव इच्छा प्रकाशीनास्त्रीति न स्त्री गीच। पाणिनः ३।३।१५०, वार्तिकच।

<sup>‡</sup> विधिय निमन्तवास भामन्तवास भध्येषणास संप्रत्य प्रार्थना चंप्रेयस प्राप्त-स्नालादियेति तिक्षन् । सदा इति इति:। एखर्येष् सम्बेषु सालेष् खोगीच स्यात्। स्वप्राप्तप्रापको विधिः, (विधिः प्रेरणं स्त्यादेनिक्रप्टस्य प्रवर्भनिमिति विदालकौसुदें)

### ध्रुप्। समर्थनाशिषो गी।

(समर्थन-पात्रिषी: ७॥, गी ।१।)।

सिन्धमपि शोषवाणि। \*

### ८५६। तस्रोस्तातङ् वाशिषि।

(রু-দ্রী: ৩॥, तातङ् । १।, वा । १।, স্ব।মি বি ৩।) ।

पातु पातादा शिवः, पाहि पातादा शिवः । 🕆

# ८५७। मुद्धभंशार्धे हि-त-ख-धं।

(सहर्भृषार्थे ७), हिन्त-खंध्वं ।१॥)।

पीन: पुन्धे ग्रतिग्रये चार्थे सदा काले ग्या हि-त-स्र-ध्वं स्यु:।

यथा, यागं क्यांत, एवं कस्यामुपाक्षीत। यस्याकरणे प्रत्यवाय: स्याक्षिमलणं, (निमलणं निधीगकरणं भाष्यकी याजभीजनादी दी हिचादे: प्रवर्षनिकिति मिडालकौ मुदी), यथा, इह मुझीत भवान् । यस्याकरणे प्रत्यवायां न,स्याकदामल्लणं (ज्ञामल्लणं कामचारकरणम् इति सिडालकौ मुदी), यथा, इह प्रयोत भवान् । सत्कारपूर्ण्यकी व्यापार: इति सिडालकौ मुदी), यथा, पुत्रक्यापण्येत् भवान् । संप्रयो जिज्ञाक्षा, (संप्रधारणमिति पाणिनिटीका), यथा, किं भी वेदमधी-यीय छत तर्कमधीयीय, अहमिति श्रेषः । प्रार्थना याच् जा, यथा, भी भीज कं लभेय, अहमिति श्रेषः । कर्माण्यक प्रेरणं प्रथ्यं यथा, प्रेषितक्षां गर्काः । त्रतिक्रयोचितकालामः प्राप्तकालः, यथा, प्राप्ति कालः तपः क्र्याः । आदिशब्दादतुमती च (ज्ञातकां कामचारानुज्ञा इति पाणिनः), यथा, याइमहं करिष्यं इति प्रयो, क्रष्यं इति । भन्तिसी ख्या न प्रयोगः । एवं गीति यागं करोतु इत्यादि । पाणिनः शश्रीहरूर-१६३।

- भाश्रक्षेऽध्यवसाय: समर्थना, (''समर्थनाशिषोय'' इति कातल्यम्), यथा सिन्धुमिप
   भोषयािषा। इष्टार्थस्थाविकरण्याश्रोः, यथा जीवतु भवान्। पाषिनिः ३।३।१०३।
- † तु-स्रो: स्थाने तातङ् वास्यादाधिकि गम्यमानायां। सर्व्वावयवादेशोऽयं, तेन ङिस्तेऽपि नान्यस्य स्थाने। डिस्तन्तु,भवान् राजलं कृषतादित्यादावगुणार्थे, वदा स्व कान्ती—भवान् स्वर्गसृष्टादित्वादी जिप्राश्येषः। पाणिनि: ७।१।३५।

मुहुर्भृषं वा लुनाति लुखाव खविष्यति वा—लुनीहि लुनीत लुनीष्व लुनीध्वं। \*

ध्यूट । मास्मेन घीट्यो । (मार्क्वन श, वी-खी १॥)। मास्मयन्देन योगे सदा घी-खी स्तः । मास्म भवत् दुःखं, मास्म भूत् योकः । प

ह्यूह। माटीवा। (माश, टी।श, वा।१।)। मां-योगे सदाटी स्थादा। माविरंसीत् सुखं, माविरमतु, माविरंस्रति। इ

६६०। क्याभिषि। (ही १११, पाक्षिष ध)। जीव्याचिरं सज्जनः। §

कं पीन:पुन्ये चिताये चार्ये, मर्ब्वेषु कालिपु, लिक्के युचिट चम्मदि च प्रयुज्यमाने, तेवासेकले दिले वहले च ग्या हित स्व ध्वं स्पृत्त्वर्थः। ततार्थं विभेषः—कर्लिर चार्च्य परसीपिट्नी हित इति इत्यं, कर्तिर कर्माण भावे च् चात्मनेपिट्नाः स्व ध्वमिति इयं, कर्त्तर जभयपिट्नाथ्यलागीति। कियासम्बर्धे सल्यल्यं विधिवा भावतीति वक्त्रम्। (पाचिनिः ३।८।३), यथा, पुरीमवस्कन्द लुगीहिनन्दर्भं सुषाण रवानि चरासराङ्गनाः इति साघः, चच चतीतकाले प्रयोगः, रावणः कर्ता। चच पुन. पुनचस्कन्दिल्यों सममूलक एव इति सिद्धान्तकीमृदी। पाचिनिः ३।८।२।

<sup>†</sup> माम्य-योगोऽच व्यवद्वितोऽव्यवहितो वा । माम्य योगेऽपि (५५०) प्रमागमनिषेधः । पाणिनिः ३।११९६ ।

<sup>🛨</sup> श्रवापि योगो व्यवहितोऽव्यविती वा। पाणिनि: ३।३।१०५।

# **१६१। सुर्वेखियदि खतीते।**

्य (स्पूर्वे: ३॥, ती । १।, भयदि ७।, तु । १।, भतीते ७।) ।

स्मरणार्थेयों गे श्रतीते काले ती स्थात्। यच्छव्दश्वेत्र प्रयुज्यते। ध्यपवादीऽयं। स्मरस्थेनं नंस्यसीयं, यत् स्मरस्थानमः थिवं।

**९६२ | वानेकसार्ये |** (वारा, पनेकवार्ये ७)।

श्रनेकसार्ये प्रयोक्तार सित स्मरणार्थेयोगे श्रतीते तो वा स्यात्। ध्यायसीदं यदीमानं द्रस्थति स्तोष्यते भवान्। 🌵

### १६४। लियुपादसादि त्यादि निषः।

(लि-युषाद-चामदि ७।, त्यादि ।१॥, तिम: ।१॥)।

<sup>#</sup> स्मृषातीरथं इव पर्यो थेषांते तैः। न यद प्रयह तस्तिन्। घ्यपवादोऽय-मिति घ्या पपवादी विशेषः, तेन यदः प्रयोगे पस्ताप्राप्ती घी एव, न तु टी-स्त्री। तं ई्यं नंस्त्रसि एनं खारसि पत्र तौ, यत् लं शिवं पानमः तत् स्वरसि, पत्र घी। पाणिनिः १।२।११२,११३।

<sup>†</sup> स्वर्धते यत् तत् धार्यमिति जानात् कर्षाप यः। भनेक-नेकभित्रं सायँ सारपीयं येन सीऽनेकसार्यसिक्षान्। भवान् यत् ईशानं द्रस्यति सीखते भ इटं स्वंध्यायिस स्वरसील्यंः। पत्ते ध्यायसीटं यददाचीदलावीत्र भिवं भवान् इत्यादि। सार्थस्य परस्यरसात्राङ्गले विधिरयं, तेन, सारसि यत् लं तर्कमपठः काशीमगच्छम् इत्यादी न स्वात्। पाणिनः १।२।११४।

<sup>‡</sup> परत्वात् सब्बेंबां वाधकोऽयं। ज्ञानचेदिति, ज्ञानस्यासकावात् सुखस्याप्यसकाव इति भ्यर्थोसकाव:। अविष्यति भूते च इति पाणिनीयाः। पाणिनिः २।२।११८,१४०।

ली युषादि श्रक्तदि च त्यस्यार्थे प्रयुज्यमाने त्यादीनि त्रीणि त्रीणि क्रमात्स्यः। अ

जानाति योऽखिलं, यश्च न जानीतः श्वतिसृती ।

प्रास्ताणि च न जानित, स मया सेव्यते थिवः ॥

भासि त्वमेको विष्वेष, भाषोऽचुतिष्यवी युवां ।

भाष यूयं इरिइरब्रह्मादाः, प्रश्चनिक्यः, ॥ पृं

एको भवानि स्न भवेऽसमादी, दारैरथोभी स्न भवाव श्रावां ।

वयं भवामी बहवः स्न पुत्रै-स्वनाययाद्यापि विभी प्रसीद ॥ \$

· इति ति-पाद: ।

#### द्ति त्याद्यन्ताध्यायः।

<sup>\*</sup> लिय'युमास पाक्ष सात्रात्मित गर्थे प्रत्य थें:। त्यसार्थे प्रति सर्मित समीपि पानाचे प्रत्यथें:। यथा (५११) ज्याः प्रमे प्रत्यादिना समीपि वाच्ये प्रत्यये समीची, लिक्के समीपि तिबादिनयं, युमादि समीपि ते-प्रादिनयं, प्रसादि समीपि ते-प्रादिनयं, युमादि समीपि ते-प्रादिनयं, युमादि समीपि ते-प्रादिनयं, प्रसादि समीपि ते-प्रादिनयं, युमादि समीपि ते-प्रादिनयं, प्रसादि समीपि ए-प्रादिनयमिति। तेषाभेकाल-दिल-वम्लेष् विभन्नीनामय्येकवचन-विवचन-वमुवचनानि स्युर्थियः। भावे माद्यामिति (८२५) पूर्वभेव भाववाच्ये व्यवस्था लता। पाणिनः १।४।१०९,१०२,१०५,१०७,१००।

<sup>†</sup> कानातीत्यादि। यः शिवः भिख्छं सकलं जानाति, युतिसृती च यं न जानीतः ज्ञापियतुं न सक्तुतः, भन्मभूतजार्थोऽयं, श्रास्तािष च यं न जानित जापियतुं न सक्तुवित, इति एकत्व-दित वहत्वेष कर्णार प्रत्ययः, स श्रिवः नया संव्यते इति कर्माणि प्रत्ययः। इ विश्वेश त्यं एकी आदि, इ भच्युतिस्तौ युवां आयः, इ इरिहर्नक्षायाः सनिक्षी युवं आय, इति युषदि कर्णार एकत-दित्व वहत्वेषूदाहरणानि। पाहि, सुद्ध्यं वा पायत्यवंः, भक्षान् इति श्रेवः, (८५०) सुदुर्ध्यार्थे इति हि।

<sup>‡</sup> भवे संसारे चादी उत्पत्तिकाले घडं एकी संशामि सा, प्रय दारे: सड धार्या छन्नी भवाव: सक, तथा प्रचे: सड वयं कड़ भी भवाम: सा, एतत् सब्बे लक्षायया, घतएव है दिनों घर्यापि लंगसीद मसबी भव, यथा न प्रकर्मतानीलिभिनाय:। घत प्रसाद

### १०मः। छदन्ताध्यायः।

----

#### १म पाद:- ल्य:।

**१६५ | झड़ी: क्र-भावे |** (क्रन्।१।, भी: प्रा, क-मावे ا

वच्चमाण-च्यः कत्मंत्रः स्यात्, सच घोः परः स्यात्, स च के भावे च स्थात्। \*

कर्त्तरि एकत्व दित-वहत्वेषूदाहरणानि । युग्नदश्चदो मृञ्जर्यारि ग्रहणं, गौणयीसु लिङ्गविदिताविभक्तिः । यथा, चतंभवित चनहंभवतीत्यादि । एवं

प्रक्रतेविंक ते श्रीप्रिय चीक्रतं दयो प्रि। वाचक: प्रक्रते: सक्कांग्टकाति विक्रते नंतु॥ द्रति प्राचः। ' यथा. एक्की इच: प्रकुनीका भवति: प्रच इचा एका नी फ्रेंबनील ग्रीट।

• वस्त्यमाणमत्यादिश्रणम् पर्यम् न्यः प्रत्ययसमू इः क्रत्मं जः स्यादिययः। कार्नेतिति क्रत्, वस्त्यमाणभत्ययानां मंज्ञाकारक इत्ययः। सच भावित्र्यणादिहितोऽिष प्रयोगानुसारादण्यसादिष भावोः स्यादित्य भाइ, सच भीः परः स्यादिति, भाभावित्रयादित्यथः, तेन (११५०) श्रीव्रजादिस्यो विहितः क्रय द्रेरधातीरिष स्थात्, यया द्रेर्या इत्यादि। एवं भर्षतिश्रेषे विहितोऽिष क्रत् प्रयोगानुसारादर्यन्तिऽिष स्थादित्त, तेन ढभान्याविहितस्त्रस्यो वसतेः स्थादित्त, तेन ढभान्याविहितस्त्रस्यो वसतेः स्थादित्त, सन ढभान्याविहितस्त्रस्यो वसतेः स्थादित्त, सन ढभान्याविहितस्त्रस्यो वसतेः स्थाद्रस्यत् स्थात् स्यात् स्थात् स्यात् स्थात् स्थात्

# **८६६। सक्पो बाध्यः।** (सब्पः ११, बाध्यः १।) ।

समानरूपस्यः कता बाध्यते, न ल्सरूपः। \*

# **१६७। तव्यानीयया ढ-भावे**।

(तव्य-भनीय-या: १॥, ढ सावे ७।)।

धोरेते स्युर्ड-भावे। चेतव्यं चयनीयं चेयं पुर्खाः भवितव्यं भवनीयं भव्यं त्वया। पं

भगिक्षि कारके वाची वाच्यलिकः: क्रदुच्यते।
भावे ल्यक्त-खलर्थांना भगटादा गपुंचके।
क्यादानाच स्त्रियां ज्ञीयाः, पुंखयु र्घञकौ तथा।
भन्भेषान्तु कतां लिक्नं वेदितस्यं प्रयोगतः॥ (परिशिष्टपत्रं द्रष्टस्यं)
पाणिनिः ३।१।८६,८०। एतन्यते तस्यत् द्रव्यधिकं हस्यते।

<sup>♦</sup> विश्वेषेण सामान्यस्य वाधनं नियमयित । विश्वेषेण कता सामान्यः कत् सदयएव वाध्यते इत्यर्थः । सदपलन्तु अनुवसं दिला स्थायिभागेन एकावयवलं । यथा,
विश्वेषेण ध्यणा सामान्यो य एव वाध्यते, न तु तत्यानीयौ । एवं एकार्थे एव
सद्यतं रह्मते न तु भिन्नार्थले, तेन पचादिलान् कर्त्तरि विद्वित विश्वेषेण अन्प्रत्ययेन सामान्यः सद्योऽपि घञ्न व वाध्यते, अत्रप्य पचतौति पचः, पचनं, पाकः
इत्यादि स्यादेव । एवं १११५५० जीषीत्यादिना स्त्रीविद्वितेन अन-प्रत्ययेन अनट् न
वाध्यते, तेन कारणा कारणमित्यादि । एवमन्यचापि । न त्यस्वपद्यनेन असद्यविश्वेष्यभेन अस्वप्यसामान्यो न वाध्यते इति । पाणिनिः इ।१।८४ । एतन्यते विभाषा
विश्वेष्यभेन अस्वप्यसानान्यो न वाध्यते इति । पाणिनिः इ।१।८४ । एतन्यते विभाषा

<sup>†</sup> तव्यस भगीयस यस ते। उद्य भाव्य तत्ताचान्। (८२२) भवदभ्तभर्य इत्यत्त भव्य इति भविष्यदाचिप्रयोगात् तव्यादयो भविष्यत्काले स्युरिति, भव विशेष कयनाभावात् भव्यक्षिन् कालेऽपि। चित्तव्य, एकाजिवणोन्तलात्र इस्, (५४२) गुणः एवं भनीये चयनीयं, ये चेयं। भव पुष्णभिति कर्मणः लीवलात् तहिशेषणान भेतव्यादीनामपि लीवलं। भावे तव्यादी भवितव्यमित्यादि। भव्यमिति यकारस् (४१२) भज्यस्वात् (३५) भोकारस्वाने भव्। एवं भाविष्यतव्यं, बुभृषितव्यं, बीभृयि तव्यं, पुत्रकास्थितव्यं ज्ञानीयितव्यं क्षभायितव्यं। भावप्रत्ययान्तवात् कीवलं। तथाय-

१६८। नो उचो उत्तरदुर्गेः प्रावसो उख्या-भाभूपञ्जकमगमप्यायवे,पानिजादीदितो जि-इसा-दीजुङस्त वा। (नः ६।, भणः ४।, भनरदुर्गेः ४।, प्राप्वत्।१।, णः १।, भव्या – भनिगादीदिनः ४।, जिहसादीजुङः ४।, तु।१।, ना ।१।)।

अन्तरो दुर्-वर्ज-गिय परस्य णविधिहेती सति नस्याचः परस्य णः स्यात्, न तु स्थादेः इजादिवर्जीदितयः, जान्ताहसादीजुङस्य वा। \*

श्रन्तर्याणीयं प्रयाणीयं । प्रयापणीयं प्रयापनीयं, प्रक्रोप-णीयं प्रकोपनीयं । ख्यादेनु—प्रख्यानीयं प्रख्यापनीयं, प्रभा-नीयं प्रभापनीयं, प्रभवनीयं प्रभावनीयं, प्रपवनीयं प्रपावनीयं, प्रक्रमनीयं प्रकामनीयं, प्रगमनीयं प्रप्यायनीयं प्रविपनीयं प्रक्रम्पनीयं । इजादेनु प्रेक्षणीयं । †

# **१६१ खनाट्टेर ये।** (खनात्टे: ६।, ए।१।, वे ७)।

<sup>\*</sup> नामि दुर्यंत्र सीऽदुः, षदुषाधौ गिश्चेति षद्गिः, षत्तर् च षदुर्गिय तत्तसात्। इच् षादि यस स इनादिः, न इनादिः धनिनादिः, षिनादिशसौ इदिवेति पिनादौदित्। स्थाय भाय भृय पूज् च कमय गमय प्यायय वेपय प्रनिनादौदि-वेति, पसान्नज्योगे तसात्। इसादियासौ इजुङ्चेति इसादौजुङ्, जिय इसा-दौनुङ्चेति तसात्। षत्तरदुर्गेः पराज्ञातोः परस्व कृत्सस्वस्थि-न-कारस्य षवः परस्वे सित षः स्थादिख्यः। स्थादौनां कविलानां ज्ञानानाञ्च निषेधः। पाणिनिः पाधार्थ- १२,१४,१४, वार्तिकञ्च।

<sup>†</sup> चन्तर्याचीयमित्यादि, एवं प्रपायिची प्रधाचं प्रहीच: प्रहाचित्त्यादि। विकल्प-माह जानस्य प्रयापचीयं प्रयापनीय, इसादीजुङ: प्रकीपचीयं प्रकीपनीयमित्यादि। प्रगमनीयमित्यादि, गमादीनां कोवलानां जानानाच चन तुल्यं दर्प। प्रेडचीयमिति नित्यं चलं। ज्रष: किं, प्रमग्न इत्यादि।

#### खन प्रादन्तस्य च टे-रे स्वात् ये परे। खेयं देयं। \*

#### ८७०। घ्यणो-रावर्यके।

(ध्यण् ।१।, भी: ५।, भावस्यके ७।)।

उवर्णान्तादवस्यभावेऽर्धे घ्यण् स्यात् ढभावे। विप्रेण ग्रुचिना भाव्यं। पं

# . १७१। हस्यासी:। (इस्-म्रःस-मा-सी: ४।)।

इसंन्तात् ऋवणीन्तात् यीते रासनोतेष घ्यण् स्यात् ढभावे । वाद्यं चात्यं जन्यं वध्यं, कार्यं, याव्यं, चासाव्यं । ‡

स्रत च चाद्य खनाती, खनातीष्ट: खनाहितस्य । प्रकरणवलात् ये इति स्थासंज्ञके यकारे परे इत्यर्थ: । खियमिति खनधाती व्यक्ति चनेन टेरेकार: । देयमिति दास्त्रदर्भत् १८६०) यः, टेरेकार: । स्थामंज्ञके किं, खन्यते, दीयते, प्रखन्य, प्रदाय इत्यादी न स्थात्। पाणिनि: ३।१।१११,६।४।६५ (एतकाते दें, ईत्) ।

<sup>†</sup> भवस्यस् भाव: भावस्यं, भावस्यभेव भावस्यकं तिस्यत् । कियाया भवस्यभावे इत्यर्थः । स्यभो घषावितौ य-स्थिति: । भाव्यमिति भूष्यम् (५००) इदि:, (४२१) यस्य भज्वहावे, (६५) भौस्याने भाव् । एवं तपस्विना विष्यः साव्य इत्यादि । भना-वस्यकेतु ये भव्यं, क्यपि सृत्यः । पाणिनि: ११११२५ (एतकाते स्वत) ।

<sup>्</sup>रै इस् च ऋष युख चा-सुष तकात्। प्रथमयोगादाव इसके इत्यस्य नातृहतिः। वाद्यसिति उद्यति यत् तत्, वष्ठ-ध्यण् (५७०) वृद्धिः। चात्यसिति इन्यते यत् तत्, इन ध्यण् (५७०) वृद्धिः। चात्यसिति इन्यते यत् तत्, इन ध्यण्, (६०६) स्ते इति इस्य घः, वृद्धिः, (८०१) इन-सद्धः। जायते इति क्रम्यं, (६६५) कसावे इत्युक्तः कर्णार ध्यण्, वध्यते यत् तत् वध्यं, उभयच वृद्धौ (७४४) अनवध इति इस्यदीर्थानाभ्यां ध्यणि वृद्धिः। याध्यसिति या-सु-ध्यण्, उभयच वृद्धौ (४२१) अनवद्यावः, वाय्

८७२ ! चजो: कगौ वित्यसम्क्त-यन्ताङ्गयज-गत्यथवन्नां । (प.जो: ६॥, कगौ, १॥, विति ७॥, घ-छेन्क-यज्ञाङ्गयज-

विति परे च-जोः क-गीस्तो न तुसेम् कारेः । पाक्यं रोग्यं। गतीतु, वश्चंग्र। फ्रन्यच वङ्गंगकाष्ठं। #

### ८७३। नावश्यके त्यज-यज-प्रवचाञ्च ध्यणि।

(म ।१।, भावस्य के ७।, त्यभ-यञ्ज-प्रवचां ६॥, च ।१।, ध्यक्ति ७।)।

त्रावस्यकेऽर्थे एवाच चर्जाः कगी न स्तो व्यणि । अवस्यं पाँचं, त्याच्यः याच्यः प्रवाच्यः । पं

# ८७४। भुज-वच-निप्रयुजा उन्नाग्रन्दग्क्ये।

(सुज-वच-निप्रयुज: ६।, भन्न-भग्रन्द-भक्ये ७।) ।

भुजो भच्चेऽर्घे, वचोऽयन्देऽर्घे, निष्ठपूर्व्वस्य युजः प्रक्येऽर्घे, चजोः कगौ न स्तो व्यणि । भोज्यं, वाचं, नियोज्यः प्रयोज्यः । एषु

सेन की यसात् स सेन्कः, यसात् की विद्तिः सेम् भवतीययः। यज्ञसाङ्गं यज्ञाङ्गं, यज्ञाङ्गं यकः यज्ञाङ्गयतः, गल्यध्यासौ वन्च चिति गल्यथ्यन्च। संम्कस्य यज्ञाङ्गयत्रय गल्यथ्यन्च चिति, तती नञ्योगे तेवां। पाकामिति पच-च्यण्, इडिः, चस्य कः! दल-च्यण्, गुषाः, जस्य गः। एवं घित्र पाकः रोगः। सेम्कान् याच-च्यण् याच्य दल्यादि। यज्ञाङ्गयलस्य घित्र प्रयाजः चनुयातः, च्यत्याजः, स्थत्याजः, स्थत्याजः, प्रयानयज्ञस्य चङ्गयत्रा एते। यज्ञाङ्गदिति निं, यागः प्रधानयज्ञ दल्यथः। वन्चु गल्यां वक्षाी यासः। वक्षीभावार्थे वद्धा काष्टं। पाणितः ७।३।५२,६२,६१, भाष्यस्य।

<sup>†</sup> क्रियाया चवस्त्रभावेऽथें सब्बेंबा धातूनां, त्यज्ञ यज-प्रवचाच चावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चन्नेक भोचः । चाचित्रके प्रशेषानुसारेच का निविधो वक्तस्यः । पाचितिः अश्वाद्वावि प्रथीगानुसारेच का निविधो वक्तस्यः । पाचितिः अश्वाद्वावि स्वजेदपस्त्रकान् इति वार्षिकच ।

किं, भोग्या भू:, वाक्यं पद समुदाय:, नियोक्तमर्हित नियोग्य: प्रभुः। 🗱

१७५। पाय घाय प्रणायानाय कुग्डपाय सञ्जाय राजसय सान्ताय निकाय परिचायोप-चाय चित्राग्निचत्या समह्यामावखामावाखा (पाय्य—याज्या: १॥) । याज्याः 🗄 एते घ्यणना निपालनी।

ंपायं मानं। द्धात्यग्निमिति धाया सामधेनी, धाया ऋत्विजः। प्रणाय्येश्यमातः प्रियो वा। श्रानाय्यो दिचणाग्निः। कुरुडै: पीयते श्रत्र सीम इति कुरुडपायः क्रतुः। सञ्चायः कृतुः। राज्ञा स्यते राजस्यः कृतुः। सावाय्यं इतिः। निकायो निवास:। परिचायोऽग्निः, उपचायोऽग्निः, चिल्ली-ऽग्नि:। त्रग्नेययनं त्रानिचित्या । समुद्योऽग्नि: संवाह्य द्रत्यर्थ:। श्रमाृसङ्घ वसतोऽस्यां चन्द्राकीवित्यमावस्या श्रमावास्या। यजन्यनया इति याज्या । निपाती भ्रार्थविभेषे । 🕆

भुजस वच्य निप्राभ्यां युज च तस्य । भज्ञच मंग्रन्दस प्रकाचिति तस्मिन्। भुज्यतेयत्तत्भीज्यं चद्रादिः। वाच्यं वचनीयमिल्यर्थः । नियोक्तं प्रयोक्तुच श्रक्यते-ऽसी नियोज्यः प्रयोज्यः सेवकः । भीग्या भूरिति उपभोग्या पालगीया वेस्पर्यः । वार्क्य पदममुदाय: परस्पराता छ्वायुक्तपदसमूह: निशीक्तमईति योग्यो भवती सर्थ:, घट (८६५) कभावे इत्युक्ती: कर्त्तरि व्यव्। पाणिनिः शहाइ ७-६८।

<sup>†</sup> पाञ्चण् पार्थं परिनाणं, पेयमन्यत् । मतान्तरे नाः च्यण्, नेयनन्यत् । धाः च्यण्, धाया सामधेनी प्रिज्ञालनमत्त्रः, एवं धायाः ऋतिनः ; धेयमन्यत् । प्रणीयतेऽसी प्रकायः ; चन्यत्र प्रकीयः । गार्डप्रसादग्रेरानीय यः प्रकीयते स भानायो दविणापिः ; षम्य चानिय:। कुण्डपायः क्रतः ; चन्यव कुण्डपेयं दुर्ग्धः । सीमी लताविशेषस्य रसः। स्वीयतेऽसी स्वाय्यः कतुः ; भन्यत्र सम्बयं प्रखं। राज्ञा स्यते सङ्गलपूर्व्यक् सायते

### ८७ई। पृशक सह तक चत यत शसीऽचम वप रप लप चप दभी यो भज जप यजानमस्तुवा।

(प्र-मसः प्रा, षचम - दसः प्रा, यः रा. सज - षानमः प्रा, तारा, वारा)। पवर्गान्तात् मकादेश चमादिवर्जात् यः स्थात् उभावे, भजादेश वा। रस्यं मक्यं सम्चं तक्यं चत्यं यत्यं मस्यं। भज्यं भाग्यं, जम्यं जाम्यं, यज्यं याज्यं, भानस्यं भानास्यं। चमादेशु भाचास्यं वाम्यं राम्यं लाम्यं नाम्यं नाम्

१९० । यत्रात्तभो मुण्। (विश, षा-वभः ६।, मुण्।१५)। श्राङ्पूर्वस्य तभो मुण्स्यात् यकारे परें। श्रात्तभगो गोः । क

ऽिखितिति राजस्यः कतः, ("राजयन्दः सीमवाणी, तेन सीतव्यं राजस्यं" इति तु कमदीचरः; भद्दोजिदी चितकु "राज्ञा भीतव्योऽभिषववारा निषाद्यितव्यः, यदा खतात्मकः सोमी राजा स स्यते कछातेऽनित अधिकरणे क्यप् निपातनात् दीर्घः), स-व्यण्; भन्यत्र सव्यं। समीयते इदं साम्रायं इतिः; भन्यत्र सत्रेयं। निचीयतेऽसी निकाय्यो निवासः; भन्यत्र निचेयं। परिचीयतेऽसी, परिक्रायः, उपजीयतेऽसी उपचायः भग्नः, चीयतेऽसी निवः; भन्यत्र परिचेयम्, उपचियम्, चेयम्। समुद्यतेऽसी समुद्यः, सं-वह-व्यण्, निपातनात् तिः, दीर्घयं, भन्यत्र संवाह्यः। यद्या कि अश्रे व्यण्या पदं सिव्यति, तथापि वहधाती व्यणि भनिष्टवारणार्थं निपातनं। भना (भव्ययं) चन्द्रस्य कला, तया सह वसतीऽस्यां तिको चन्द्राकों इत्यर्थं भनावस्या भनाव।स्या दति इयं। याच्या स्टक्ष् । एकमथंतिभवादः। पाणिनिः नृतु सर्वत्रेत्र । वहचननिर्देशात् भको व्यण् शिक्यं, चंव्यंण् चैत्यमित्यादः। पाणिनिः नृतु सर्वत्र । १२० स्१२। एतन्यते राजस्यपदं क्यन्ती निपातः।

\* पुत्र भक्ष सहस्र तक्ष चत्य यत्य भव चिति तक्षात्। चमय वप्य रपस्र सपस्य चपस्य दभ चते, न विद्यन्ते ते यच सी ऽचम-वप-दप-खप-चप-दभः, तस्मात्। भक्ष कपस्य यज्ञ स्र पा-नम चेति तक्षात्। (८०१) इसन्तलात् प्राप्तस्य व्यणो वाधकीऽयं। स्यमिति पवर्गान्तलात् यः, एवं तस्य सम्यमित्यादि । भक्ष इपिदंवादीरेव यहणं, चन्य सम्यमिति पवर्गान्तलात् यः, एवं तस्य सम्यमित्यादि । भक्ष इपिदंवादीरेव यहणं, चन्य सम्यमिति । भाषास्यमित्यादिषु व्यव् एव । दास्यमिति दन्सु न दभी इत्यस्य नकार-इदितपाठात् नकारकोपे,(५००) इदिः। पाणिनः ३।१ ८८,१२६, १२६, वार्तिके च।

† सुवाो ख इत् भन्याच: पर:। भालभागी नारवाय: सार्भगीयी वा इत्ययं:। पाविति: ०|१|६५। एतन्मते तुन्। १७८ । उपात् स्तृती । (उपान था, सुनी था)। उपपूर्व्य स्त्र सी मुण् स्थात् ये परे प्रशंसार्था। उपसम्भाः साधः। सुनी किं, उपसभ्यमसात् किञ्चित्। अ

# ८७८। गद-मद-यम-चराचरो ऽगे र्यः।

(गट सद यम चर भाचर: ५१, भगे: ५१, य: ११)।

श्रमिश्य एभ्यो यः स्थात् ढभावे । गद्यं मद्यं यस्यं चर्यं श्वाचर्यं । श्रमेः क्षिं, प्रगाद्यं श्वभिचार्ये । 🕆

हटः। पग्यावदावयरीचार्यत्र वहा जयत्र च्या जयत्र क्रयायरीपसयरीजर्थत् । (पण्य - पण्यं रा)। एतं यान्ता निपाल्यन्ते। पण्यं विक्रेयं। अवद्यमनिष्टं। वर्था कन्या; वर्थं श्रेष्ठं। आचार्थो गुरुः। उद्यातेऽनेनेति वद्यं अकटं। जेतं प्रकां जय्यं, एवं जय्यं। क्रयं इद्दे प्रसारितं। अर्थः स्वामी वैद्यो वा। उपस्थिते इत्युपसर्था ऋतुमती। न जीर्थतीति अजय्यं सङ्गतं। क्ष

चपलस्थाः सत्य इत्यर्थः। चपलस्यं प्राप्तव्यक्तिस्थयः। पाचिनिः ०।१।६६।

<sup>🕇</sup> च्रयमपि व्ययो नाधकः:। गिपूर्व्यकेथी व्यय् एव । पायिनि: ३।१।१००,वार्त्तिकच।

<sup>्</sup>रयण क व्यवहार स्तृती च, पत्यं; अन्यव पाण्यो विच्हः साध इत्यर्थः। नञ्पृथ्वंस्य वदतीः भवदां चिनष्टं निन्दनीयनिन्ध्येः, चन्यच चवादां वाद्यं। इन्प्रच्
वर्ष्यां वरणीया, वर्ष्यं पृत्रनीयं; चन्यव वार्षे। चा-चर-व्यक् चाचार्थः गृहः, चन्यव चाचर्ये। (८६६) सूर्वात-नियनेन (८०८) व्यक्षी वाधितत्वान् चच निपातः। उद्यति इनेनेति वद्यं; चन्यव वाद्यं। ति, जव्यं; चन्यव ज्यं। चेतुं प्रक्रां चर्यः; चन्यव चेयं। क्री, क्रव्यं; चन्यव क्रियं। चः, चर्यः; चन्यव चार्यः विप्रः। उप-स्तः, उपसर्या उपस्थानित्येः; चन्यव क्रियं। पावितिः हाराह्य स्त्राय्ये। न-जृच्यत्रर्थं सञ्चत निचन-नित्येः; चन्यव क्रवार्यः। पावितिः हाराह्य स्त्रायः। क्रिन्द्रः, पर्वः।

## ८८१। द स जुष स्विन्-गास्टुड्-प्टजो ऽक्तपचृतन्द्रच पाणिस्जुसमवस्जः स्वप्।

(ह — हजः ५।, चलप - समवस्त्रः ५।, काप् ।१।)।

द्रादे ऋकारोङो हजय कपादिवजीत् काम्स्यात् दभावे। अ

१८२ । ख्य तन् पिति । (श्वस रा, तन् ।रा, विति अ)।

स्वान्तस्य तन् स्यात् पिति । श्राष्टस्यः सत्यः जुथः सत्यः इत्यः ग्रिषः हस्यः हस्यः । क्षपादेनु कन्पा नर्त्ये श्रद्धा पाणिसर्धा समवसर्था रज्जुः । १

१८३। टा द्रष सज गुह दृह शन्स संस्ट प्रत्यिपगृहो वा । (क-यह था, वा ११)।

एभाः काप् स्थात् वा ढभावे। क्रत्यं कार्यं, इष्यं वर्षं, सज्यं मार्ग्यं, गुद्धं गोद्धं, दुद्धं दीद्धं, प्रस्यं प्रस्थं, संस्थतः संभार्यः, प्रतिग्रद्धं, प्रतिग्राद्धं, श्रिप्रद्धं श्रिप्राद्धं। क्षः

क स्त्उङ्यस्य स स्टइङ्. हय क्षय गुषय लुख इन् च भाग च स्टइङ् च इज् चिति तक्षात्। पार्ण स्टज् पाणिस्टन्, नमाऽवः समवः, समवात् स्टज् समबस्त्रः, क्षपय चृत्य स्टच्य पाणिस्टन् च समबस्त्रं च तत्, पथाव्रञ्गीने तथात्। व्यपः किस्तात् चगुणः। पाणिनिः ११:१०६,११०,११९, वार्मिकदय, भाष्यच।

<sup>+</sup> ऋखालस्य तन् स्यात् प इत् कृति परि, निह्नी । अन वेन कंनापि प्रकारिय स्वात्तस्य ग्रहणं, नत् स्वभाव-स्मलस्य ; तेन वितल्लेखादी अमलीपे भनेन तन् । भाहत्य स्वभादि, भा-ह-क्यप्, किस्वात् गृयाभावः, पित्वात् तन् । भिष्य इति शास-क्यप्, (७०५) भयौ इति छङ इ. (१९२) यखं । बच्च इति भन्मेत्रअाव्वात् सक्यमेत्व, कर्मां बक्यप्, वर्तनीय इत्यर्थः । बजी आनुमन्यत् बङ इत्यस्य वार्थ इत्येव । कत्याति कृत्यः स्वयं । एतिस्यां स्वयंति समवस्त्रविते इत्यर्थः । स्वयंति । पाणिस्यां स्वयंति समवस्त्रविते इति च वाक्ये घ्यणि, (१०२) अस्य गः । पाणिनिः ६।१।०१ ।

<sup>‡</sup> सभी भ्र संभ, प्रत्यिभयां यह प्रत्यिनियह, अधावत च सज च नुष्ठ च दुष्ठ च

### १८४। गृष्ण विनीय विपूय जित्या सूर्य रचाव्यय्य भिद्योद्ध पुष्य सिद्ध तियाज्य युग्य स्टप्य कुष्य भार्याः। (एष-भार्याः १॥)।

एते काबन्ता निपात्यन्ते।

प्रस्मं पदं, कण्यसः कण्यवर्थः, राष्ट्रोऽसैरी, यामराष्ट्रा यामवाष्ट्रां। विनीयः कल्कः। विप्यो मुद्धः। जित्या इतिः। सरतीति स्थाः, एवं कचः, श्रव्यथः। कूलं भिन-त्तीति भिद्यो नदः। वृदि उज्भतीति उद्यो नदः। कार्यः पुणातीति पुष्यो नद्धनं। कार्यः साध्यतीति सिद्धाः, सएव तिष्योऽपि। श्राच्यं प्रतं। युग्यं वाहनं। कष्टे स्वयं पचते द्रति कष्टपच्यो वीहिः। कुष्यं सुवर्णकृष्याभ्यामन्यत्। भार्था वधः चित्या च। ॥

भन्भ च्संध्य प्रत्यपियइ चेति तखात्। सर्व्वव विकल्पपचे (८०१) घाण्। कार्यः मित्यव (५००) इति:। मार्ग्यमित्यव (६८४) इति:, (८०२) अस्य गः। गोच्चमिति व्यणि, गुणे, (६५६) गुद्दी चोद्धरित्यव चिच परे विधानात् चव न कः। भस्यमित्यव (५६०) न-संपि:। पाणिनि: ३।१।११२,११३,११८,११०, वार्तिकं काश्विका च।

<sup>•</sup> पद-पत्त्य-परतन्त-विद्यम्तिषु (पाणिनिः ३।१।११८) यद्यां निपास्तते, यया, प्रयद्यां पदं ; क्रण्यवयः क्रणपत्त्यः पाण्डन इत्यवः ; भाविती भविनः ; पानवाद्या पानविद्यम्ति नदील्यः ; एथ्योऽन्यत्र याद्यां । कल्कोऽस्त्री समलैनसीरित्यमरः ; भन्यत्र विनेयः । सुञ्चः अरपुष्ट्यः ; भन्यत्र विषयः । इति मंदत् इतं ; भन्यत्र जेयः । मृत्योदयक्तिष्यान्ताः भष्टी कर्तरि क्यवनाः, भन्यत्र स्—सायः द्रत्यादि । रीचितं इति कच्यः । न व्यथते भव्यः । तोषयतीति तिष्यः, पृष्यनचनवाची । भज्यते सत्त्यते इनिनित भाज्यं । युज्यते यत् तत् युग्यं । कष्टपच्य इति कम्यंकत्तिरिक्यप्, "क्षष्टेन पच्यने" इति तु क्रमदौष्टः । गुप्यते यत् तत् कुष्यं । स्वर्ष-द्रष्यभोकु गोष्यं । सियते इसे भाव्या । (८६६) खद्यो वाध्य इति नियनात् (८८१) स्व घ्यो वाधितलात् भत्र निपातनं । पाणिनः ११।१।११४ - ११०,११६,१२१, वार्तिकानि च ।

## १८५ । ले वद: क्यपयो । (लं: ४१, वद: ४१, क्यप्योश) ।

से: परात् वदः काप्-यो स्त; ढभावे। ब्रह्मणा उद्यते इति ब्रह्मीद्या ब्रह्मवद्या, कथा। \*

### १८६। स्त्रोद्धं नित्यं। 🕆 (ध्योद्धं ११, नित्यं ११)।

# १८७। मू-इन: काप् भावे न तस्र।

(भू-इन: ४।, काप्।१।, भावे ७।, न ।१।, त: १।, च ।१।)।

लीः पराभ्यामाभ्यां काप्स्थात् भावे, इनो नस्य तस्र। ब्रह्मः भृयं ब्रह्मालं, ब्रह्महत्याः ॥

१८८ | घो: कोलिमो ढघे |(धी: धा, केलिम: ११, ढघे ०।)।

धीः परः केलिमः स्थात् उत्रे । स्वयमेव पचन्ते इति .पचेलिमा-स्तण्डुलाः । एवं भिदेलिमाः माषाः । १ •

क्यप्यौ इति इयं क्यपो विकल्पं स्वयित । ब्रह्मणा ब्राह्मणेन । ब्रह्मोद्या इति (६६१) जि: । यप्रलये ब्रह्मवया । भावे तु, ब्रह्मोद्यं ब्रह्मव्या एताट्य खलेषु स्यायकोपपदस्य क्रदलेन धातुना समासी वक्तव्यः । चतएव "प्रादिवर्जिते सुपि" इति क्रमस्त्रै वस्त्र स्वयाख्याने गोयीचन्द्रः । चनुद्यं चनुद्यं चनुवाद्यमिति तु पदानि भवन्ति । पाणिनः ११११०६ ।

<sup>†</sup> सृषा चदाते प्रति सर्वोद्यं, निर्श्यं क्यप्, जि:। निर्श्यमिति कथने न स्वावद्य-मितिन स्वात्। पाणिनिः ३।१।१९४।

<sup>‡</sup> त्रज्ञाणी भाव:, त्रज्ञभूयं त्रज्ञत्विसित्यर्थः । त्रज्ञाणी इननं त्रज्ञहत्या, (६०६) जस्-खोपे, (১.८२) तन्, प्रभिधानात् स्त्रीलिङ्गता । पाणिनि: ३।११९०७,१०८ ।

<sup>§</sup> दश्च तत् घर्षति द्रषः तिकान् । घोषपादानं सञ्जेषातुप्राप्तप्रथे । केलिमः कि स्वात् न गुषः । कालेन पच्चमानाकष्डुलाः खयमेव पच्चले इत्यर्थः । ग्टक्स्येन भिद्यमानाः माषाः खयमेव भिद्यले इति भिदेलिमाः । एवं भिदेलिमं काष्ठं । मेधेन सुच्चमानं

### १८६। ते ल्याः, श्वास्त्रिप्रेष्यानुद्गाप्राप्त-कालेवा। (तेरण, ल्याः रण, मक्य-प्राप्तकार्व अ, वा ररा)।

तव्यादयो स्य-संज्ञाः स्युः, ते च प्रकाद्ययेषु वा स्यः। \* वोढं प्रका वोढव्यः वहनीयः वाह्यः। स्तोतुमर्द्यः स्तोतव्यः स्तवनीयः सुत्यः। प्रेषितस्त्वं त्यागन्तव्यं गमनीयं गम्यं। चनुज्ञातस्त्वं त्या प्रध्येतव्यं प्रध्ययनीयं प्रध्येयं। प्राप्तस्ते कालः त्याध्यातव्यं ध्यानीयं ध्येयं। गं

इति ख्य-पाद:.।

वारि खबनेव मुच्चते इति मुचे लिनं। इत्यादि । भव उम्रे इति कथनं काशिकामतानु-सारि, वार्त्तिकभाष्ययोनुकर्वाणीति । ''केलिमर उपप्रस्थानम्" इति वार्त्तिकम् ।

मकाय प्रतिय प्रतिय प्रमुखा च प्राप्तकालय तत्ति विश्व । प्रकार डिमी मकाः कर्णाच यः । 'प्रकार योग्यः क्रियतेऽसाविति प्रकाः, प्रमान्तिकारं लात् कर्णाच यः । विश्वकार-पाठेतु कर्णाच प्रकार ते तव्यादयः — तव्य, प्रतीय, य, घ्यण्, व्याद्, किसि प्रति, पर्, 'ल्यः" संज्ञा येषां ताहणाः स्युः । ते च तव्यादयः मकाययेष वा स्युः । वा मकाययेष वा स्युः । वा मकाययेष ना स्याद्यक्ति व्यादिक्तवन- सन्दानां नामसंज्ञामारः —

खणादानं क्रदन्तश्च तिह्नतानं धमास्त्रं। नासस्त्रा भवेदेवां स्थास्त्रपत्तिस्तत.पर ॥

† भानवार्थे पूर्वे (दाइरणानि, शकादार्थे पुटाइरणाना ह ने दुनिलादि। बीद्रव्य-द्वित वह-तव्य, (१०५) इस्त ढ, (६५३) भकारस्य भोकार, (५०६) तव्याने घ, (४०) घस्य का, (००) ढली गः। बांद्रं शकाः स्वल्यो भार दित शेवः। बाह्य दित वह (८०१) घाष्, (५००) ढांद्वः। सीतृमक्तंः गुकिरिति शेवः। सुत्य दित (६८८१) क्राप्, (८८९) स्वस्य तन्। दत्युदाइरणद्वयं कार्याण वार्ष्य। प्रेथादीनासुदाइरणानि भाववार्ष्य। ध्यातव्यमिति क्येतव्य, (६०८) चा, ध्येयमिति (६११) ए। पाकिनिः शास्टर्भ, श्रार ६९,१६८। एतकाते क्रायाः।

#### २य पाद:- हनादि:।

#### **८६० | त्रस्को, दे।** (त्र-सको शा, वे ०)।

र्घोस्तृन्-णकौ घे स्त:। करोतीनि—कर्त्ता, कारकः, इरि-द्रायकः। \*

### ८१ । ∙गलेचीपक-पाद<del>हा</del>रकौ छे ।

(गलेचीपक पादचारकौ १॥, ढे ।।)।

एती निपात्या है। 🌣

### १६२। माईत क्रमो नेम तथः।

(माहीत् ४।, क्रम: ४।. न ११।, इम् ११।, व्या: ६।) ।

प्रकल्ता उपक्रम्ताः श्रन्यच क्रमिता श्रतिक्रमिताः 🏗

### ८१३। ग्रन्तन्दिपचादे र्शिननान् धे।

(यह-नन्दि-पच-चादे: प्रा, विन्-चन-भन् ।१।, घे ०।) ।

ग्रहादे चिन्, नन्धादेरनः, पचादेरन्, स्वात् घे । गाँही स्वायी

<sup>•</sup> तन् च पक्ष तो। तन् इति दन्य-नकार, चौचादिकतन्प्रव्ययानानां पित-चादि-प्रस्तानां विश्वेषार्थ। यकस्य चकारो (५००) वृह्यर्थः। तन् तच्छोलतदर्भाः तक्षाधकादिवर्थेव्वि (पाचिनि: शरारक्ष) स्वाटिति वीध्यं, चतपव ग्रन्यकरिण (२०५) श्रोकार्यत्व इति कथितं। दरिद्रायक इति (००२) दरिद्र चालीप इत्यच चक्षकानात् चालोपाशावे, (८२४) यन्। पाचिनि शरारक्ष। एतन्मते तन् तन् वन् च।

<sup>†</sup> एतौ कम्मंबि वाची सकप्रस्थयेन निपासी। गर्ले चुर्यतेऽसी गर्लेचीपकः। पादास्थां क्रियतेऽसी पादकारकः। भाष्यम्।

<sup>‡</sup> मं (चात्मनेपदं) चर्रतीति मार्डः। चात्मनेपदगित्योग्यात् कमः परस्य दय-इम् व स्वात्। प्रक्रभीत्यादि (८८४) चात्मनेपदयोग्यतं। नृकारस्य (५०,५१) चतुस्वार-नकारौ। चन्यत्र घात्मनेपदायोग्ये इत्ययः। वार्षिकम् ১

प्रपायिणी, नन्दनः विचचणः जनाईनः मधुस्रदनः लवणः, पचः देवः लेखाः लोलुवः रोक्यः । \*

### १८४। चिक्तिर चक्रम चराचर चलाचल पतापत वदावद घनाघन पाटपटा वा।

(चिक्तिद-पाटपटा: १॥, वा ।१।)।

एते अनन्तां निपालन्ते वा।

पर्व, क्रेंदः क्रसः चरः चलः पतः वदः इनः पाटः । 🌣

ग्रहश्च नित्य पचय ते आद्यो यस्य स तकात्। विन् च चनव भन् च तत्। णिनी पंदर् (४००) वृद्धार्थः। भैनः भकारान्तः। भन् इत्यस्य नद्दर भ-प्रत्ययात् विभेषायं:। यहादि:--गह स्थापा सहदास भास मल मदंरच युवप भी (भी) याच इत्रज बद वस क्राभी सुराध रुध । नन्द्रादि:—नन्दि वाश्रि सदि दूषि साधि वर्षि भौभि प्रोचि सक्तिपि दिन कि परि एसि दिपे क्रिन्ट कर्षि इर्षि महिं यु सूदि भौषि लून।शि चिवि। पचादि.—पच वच वप वद चल पत गद भव श्रुचर स्टप गम डग्र चप<sup>े</sup>चम निष त्रण क्रिट स्टलिख क्रम इन पट भूभ खगुजुभाृतृगाइ दिव पुर भीव दुनो ज्वल सा एवमपर्ऽपि प्रयोगतो ज्ञयाः। (३०५) ढचे क्रतीत्वच स्तथं कथ-नात् कदाचिद भविष्यत्क ले च्हणार्थं च णिन् स्वादिति (पाणिनि: ३।३।१००)। एवं (६६०) स्त्रमुक्कनात् विषानि-प्रत्ययाऽपि वक्तव्यः ; घ इत्, चन्यस्य इकारस्य च इत्, य इ.च., इ.न्स्थिति: (पाणिनः १।२।१४१-१४५)। ग्रक्कातीति णिच्वात् वृद्धिः। तिष्ठ-तीति (६२४) यन् । प्रणिवतः यौ, (८६८) चल, चलप्रदर्भनाधिनेव दिवचनानं पटं। नन्दयतीति चन:, (६४१) जेलीप:। विचष्ट इति (७०६) चन वर्जनात् न चच: समाज-ख्याजी, (१०७) यतः। नर्भद्यतीति, मधुं स्दयतीति, जन-मधू पसुरिक्षिधी। लुनातीति सवणः राचसः, खभावान् गलं। पचतीति पचः, दीव्यतीति देवः, भन भन् (८८६) क-प्रत्ययस्य वाधकः। लेलीयतं इति भन्, (८३६) भनि तु नित्यं यस्त् कृ, (८४१) गुपनिवेध, (५८८) ई.स्थाने यः। लील्यते इति मनि यङ्लुकि छस्याने उत्। रीक्यते इति पनि, उदनात् पनि यङ्लुक्निविधः। (५४३) यङीऽकारसीयः। 

<sup>†</sup> कियु इर् केंद्रे, क्रस्युं म उड़ती, घर गती, घल ज गती, पत ख ज गलां, वरे वाचि, इन ख वधे गती, पट क लिबि, इत्यष्टभ्यः पचादिलादिन एते वा निपालने । पाटपट इत्यच पाट्पट इति चान्दाः । ,पाट्पट इति पाचिनोधाः । पचे क्रेंद्र इत्यादि, पाट इति चुरादिलान् औं, इक्षिः । वार्तिकचयम् ।

### १८५। राचे मन् वा क्रति।

(रावे: ६।, मन्।१।, वा।१।, क्रति ७।)।

राचेभेन् खादा क्षति। रांचिचरः राचिचरः। \*

# ८८६। कृगृ ज्ञा प्रीजुङ: को — दुको घङ्च।

(कृ गृ-जा-प्री-इजुङ: ५।, क: १।, दुह: ६।, घङ्।१।, च।१।)।

क्रारेरिजुङ्य कः स्थात्, तिस्नंय दुद्दो घङ् स्थात् र्घे । किरः गिरः च्नः प्रियः चिपः भूतहः कामदुघा गौः । 🕆

### १९७। इनजनाद्गमादे र्डः।

(इन-जन-चात्-गमादेः ५।, उ: १।)।

हनो जन श्राद्तात् गमादेश डः स्थात् घे। श्रोकापहः वराहः सरिसजं पङ्कजं श्रजः गोदः दिपः प्रहः श्राश्चगः नगः गिरिशः, वारि चरतीति वार्षो हंसः। क्ष

कति क्रदने घातौ परे इत्थर्थः । मनोऽनावितौ, निचादने । रेपने निपरतिति पचादितादनि, भनेन मन्, (५०,५१) मखानुखारः, भनुखारस्य ज । पचे राविचरः । भगदद्वारः सत्यद्वारः (पाणिनिः ६।३।७०) (१००८) षण्, तिमिङ्गिलः (''गिर्जऽगिलस्य'' इति वार्त्तिकम्) (१८६) कां, इत्यादौ मन् वक्तव्यः । पाणिनिः ६।३।७२ ।

<sup>†</sup> इत् उल्यस्य स इजुङ्, कृय गृय जाय प्रीय इजुङ् चिति तस्नात्। दुधी घङ् चिति चकारात् इजुङ्लात् की सतीलर्थः। परस्वेण उप्रश्चयेन सिविऽपि अव जान्यहणं, परस्वं उपपदपूर्वादेव उः स्थात्, इह तु केवलात् जानातेः क इति ज्ञाप-नार्थम्। अव इजुङ्नावनिभित्तकतया विश्ववेश्व कप्रश्चयेन, सर्वधातु-निभित्तकतया सामान्यो ढात् प्रस् (१००८) बाध्यते। किरतीति किरः, (६२०) इर्। एवं गिरतीति गिरः। जानात्रोति जः, (६१०) बाधीपः। प्रीवातीति प्रियः (५००) इस्त्राने इय । विपतीति विषः, सुवि रोहतीति भू-कहः, उभयव इजुङ्लात् कः। कामं दोग्धीति, कप्रश्चये, इस्त्र घष्टि, स्त्रीलात् (२४८) बाष्ट्र। पाविनिः ११११६५, ११२।००।

<sup>‡</sup> इन च जन च भाव गमादिय तक्षात्। उदा इरच-दर्भनेनं, उपपदपूर्वकादेवे-

### १८८। घेट-दश-पा-घा-ध्म: शः।

(धेट--भा: ५।, म: १।)।

एभ्यः मः स्थात् वे। उद्दमः उत्पन्धः उत्पिवः उक्तिन्नः उद्दमः। क

### ह्ह। साहि साति चेति वेदोिन धारि पारि लिम्प विन्दो ऽगे: ا (साहि—विन्दः धा, अगेः धा)।

श्रामिश्य एभ्यः यः स्थात् घे। साष्ट्रयः सातयः चेतयः वेदयः एजयः धारयः पारयः, लिम्पः विन्दः गोविन्दः । †

# १०००। दुनीभूञ्चलाद्यासुसंस्रो गाँ।

(दु—संसी. ४।, ष: १।, वा ।१।) ।

त्यर्थः । श्रोकृमपहिना, वरमाहिना, सरिध जायते (विभन्नेरलुक्), पङ्गाज्यायते, न जायते, गा दर्शात, हाथ्यां पित्रति, प्र-ह्रयति, चाग्र गच्छिति, न गच्छिति, गिरी श्रीते, इति क्रमेण वाक्यानि । एवं तर्मापदः, दुःखापदः, दिजः चतुजः सहजः इत्यादयः। गमादिन्, प्रथीगती ज्ञेषः। पाणिनिः ३।२।४८,४०; ३।२।८७-१०१; ३।१।१३६, ३।२।३ स्त्रर्थीः कः।

<sup>•</sup> शस्य प्रदूत् रमंत्र', चकारस्थिति: । ल्द्घयतौति शः, चे अप् रे प्रप्, (५४१) चकारलीपः । एवं उत्पय्यनौत्यादि वाकाणि । सर्व्यंत्र ने परे प्रप्, (५८०) हमादेः स्थाने पद्मायादियः । साइचर्याद्य पाद्मित भौवादिक एव । उदाहरणज्ञापकात् प्रायतः सापसर्गाणानेवायं विकिरिति ; (चत्यव "प्रादेघोदेः शङ्" "चप्रादेशेलेके" इति कमदीयरः) । व्याप्त दत्यत्र संज्ञानुगोधात् उ एव ("जिन्न संज्ञायात् प्रतिषेषः इति वार्तिकन्) । पाणिनः १।१।१२०।

<sup>†</sup> सह ज ड शती, सात क सुर्ख, चिती संशाने, विद ल्मती, एजृ कम्पे, धृश ड स्थिती, ए खि पालनं, एते जानाः। जि लिपी श प ज खेपने, विद लृ श प जी लाभे. इत्युभयोः (७४१) सुवादिलान् चन्। साइयतीत्यादि वाक्यानि। श्र-प्रम्थे, रेपरे प्रप्, गुषादि। लिम्पः विन्दः इत्युभयव तुदादिलान् शः। च देक्यः इत्यव तु च दश्यस्य उपस्मंप्रतिकपकलिन भनुपसुग्लान् शः इति भाष्यम्। कसदीश्वरस्य छपसम्बत् ('एज्देदः'' इति प्यक् सूर्वं कतम्। पाविनः ११११६९८।

म्रागिभ्य एभ्यो णः स्थात् घे वा । दावः दवः, नायः नयः, भावः भवः, ज्यालः ज्वलः, चालः चलः, ग्रास्नावः मास्रवः, संस्रावः संस्रवः । \*

१००१ । खस व्यधेन तन दावहृसः । (वम-मः प्रा)।
प्रियो णः स्थात् वे । खासः व्याधः श्रत्यायः श्रवतानः दायः
धायः श्रवहारः श्रवंसायः । प

१००२। नृत्खनरन्जः प्रकः । (वत् खनः रन्जः प्रा, पकः रा।। एस्यः प्रकः स्यात् घे। नत्तेकी खनकी रजकी । क्ष

१००३ | गो गानट्यको | (गः ५१, पनट् थको १॥)। गायर्तरेती चे स्तः । गायनी, गायकः । §

<sup>•</sup> पा प्रत्ययस पा इत् बदार्थ: घकारस्थित:। दृनीतीति दावः, गाम्यथे, (बिडिः), पचे पचादिलादन् दवः। एवं नयित, भविते, ज्वलित, चलित, घासवित, संस्वति, इति वाक्यानि। घासुसंस्र दत्यादी। व्यतिकरसन्दिहनिरासार्थे समास् न क्षतं। एवं यादः यहः (पाधिनिः ३।१।१४३)। क-प्रत्ये यहसित्योपे (पाधिनिः ३।१।१४४)। ज्वलादिय — ज्वल चल यल खल इत मल पत्त वत यल पत क्षय वम भन चर सह रम प्रद कुच कम। पाधिनिः ३।१।१४० — १४२, काशिका च।

<sup>†</sup> इस साय इसी, भवीत् इसी भवइसी । यस यस्य यापय इत च तन च दास्य भवइसी चिति तक्षात्। एयक्ष्मवकरणं निलाये, भगिरित्यस्य निवृच्ययेच । दा इति दासंजकः। यिति, विभ्यति, प्रत्येति, भवतनीति, ददाति, दधाति, भवद्यति, भवस्यति, इति क्रमेण वाक्यानि । दायः भायः भवसायः एतेषु चादलत्यात् (८२८) यन् । पाणिनिः ३।१।८३८,१४८, वार्तिकच । भवस्याय-प्रतिस्थायौ च णप्रत्ययानौ इति वक्तव्यम् ।

<sup>‡</sup> षकाः ष इत् (२५०) द्वेवर्थः चक-स्थितिः । नृत्यिति, खनिति, रजिति या सा, इति सक्तानि । रजकीस्यत्त (६६०) षकी परेन-खीपः । पाणिनिः ३।१।१४५, वार्क्तिकः ।

<sup>§</sup> चनटो चिच्चात् वृद्धिः, टिल्लादीप् चन-स्थितिः। गायिति या सा गायिनी, (६२४) यन्, (२५७) ईष्। वाचिनिः ३।१ १४ ६,१४७।

#### १००४। हायनः। (कायनः १।)।

त्रयं निपालते। भावं जहातीति हायनी वर्षः, श्रम्बु जहा-तीति हायनी वीहिः। \*

१००५ । प्रद्रस्य स्व को ऽकाः । (मु-कः ४।,पकः १।)।
एभ्योऽकः स्रात् वे । प्रवकः द्रवकः स्रवकः सरकः लवकः । १

१००६। ऋषिष। (वाधिष का)।

जीवतादिति जीवकः। क्ष

#### १००७। नाम्त्रन्ये तिक् च।

(मास्ति ७।, प्रन्ये १॥, तिक्।१।, च ।१।) ।

धीराशिषि श्रन्थेऽपि कतः स्युः, तिक् च, संज्ञायां। देवरातः, रिक्तः। §

क काल-नोडिस्थानस्व र्णातः, (८०५) निपातो द्यर्थविशेषे दल्कोः। "जिडीते प्राप्नोतीति वा" दति सहीजिदीचितः। पाणिनिः ३।१।१४८।

<sup>†</sup> चें। केंगिंदिणि कत्तंदीति वक्तव्यं, यतः ''समिनिहारे'' इति पाणिनिना प्रीक्तम्। ''साधकारिख्युपसंख्यानम्" इति वार्तिकीक्तियः। ''समिनिहारयहणेन साधकारिलं सन्द्यते'' इति भट्टीनिद्दीचितः। साधकारिणि किं, प्रीता। पाणिनिः ३।१।१४८। सन् वृन्। साधकाः।

<sup>‡</sup> पाधिवि गस्त्रमाने सर्वेधातुम्यो ऽकः स्वात् घे। कीवतादिति (८५६) तातङ् । एवं नन्दकः, वर्डकः इत्यादि । स्त्रियां जीविका । पाणिनिः ३।१।१५० ।

<sup>§</sup> चामिति संज्ञायाच गत्यमानायां कर्णार वाच्ये कियतादन्येऽपि (उणादयः) जत-प्रत्ययाः स्यः, तिक् च स्थादित्ययः । देवाय रायान् देवरातः, कर्णार ज्ञः । एवं देवाय देयात् देवदत्तः, यजाय देयान् यजदत्तः । एवच वौरी भूयात् वौरभूः, निम्नं भूयात् निषभूः, दृत्यादो किए। रमतां रन्तिः, (६०६) तिकि-वर्ज्ञनात् न अम्लोपः । (परि-जिष्टपणं द्रष्टव्यम्) । इदमेव सूर्षं ''उचादयो वच्छक्त्'' (पाचिनिः ३।३।१) इति ज्व-स्थानीयम् । पादिनिः ३।३।१०४।

१००८ । सति-साती वा । (विति-साती १॥, वा ११))। सन्तिस । \*

१००**६ | ढात् घर्ण् |** (डात् था, षण् ।२।)। ढात् परात् धीः षण् स्थात् चे । कुश्वकारः, श्रघटं घटं करी-तीति घटीकारः ।†

**१०१० | इनचरग-ष्टक |** (इन-चर-गः प्रा. टक् ।१।) । ढात् परेभ्यः एभ्यः टक् स्थात् चे । पापन्नः कुरुचरः सामगः । क्ष

**१०११ । स्कुष्ट: ।** (स-कः था, टः श)। ढात् पराभ्यामाभ्यां टः स्थात् चे । पुर:सरी, यशस्करी विद्या। भास्करः चपाकरः, कर्मंकरी दासी । §

 <sup>\*</sup> सितय सातिय तो । सनीतेरात्रिति तिगन्तस्य एतो वा निपाली । पचे सितः,
 सनुतादिति वाक्ये तिक्, (१०३३) इम् निवेधः, (६०६) ञम्लोपामादः अ अपाणिनिः
 ६१४५।

<sup>ां</sup> पणी च इत् इडार्यः य इत् ईबर्यः, चकारस्थितिः । टार्टिति निष्यं च्यांदि-कार्माण एव, तेन सटुकार इति न स्थात् । कुमं कारीतीति कुम्प्रकारः । यथिप नित्य-समासे वाकारचना नास्ति, तथापि शिष्यवीधार्थमिति वीध्यम् । (११८३) कत्ति उत्ति-समासानामभिधानं नियासकसिति कथनेन नतु सञ्चेव षण् । पाणिनिः ३।२√१।

<sup>‡</sup> इनव चरव गाय तक्तवात्। टकः कित्तवादगुणः, टिक्वादीप्, त्रकारिस्थितिः । वक्षोऽपवादोऽयं। पापं इन्तीति पापन्नः, टकः कित्तवात् त्रगुणलं, (१६०) छङ्कीपः, (१८८) प्रस्थाने न्नः। कुद्दन् चरतीति कुद्दन्रः (कुद्दन् चरतीति पाणिनः)। साम गायतीति सामगः, (६१०) भाक्षीपः। एवं सहचरः चनुचरः इत्यादि वक्तव्यम्। पाणिनः १।२।८,१६,५२—५४।

<sup>§</sup> पुरोऽयं सरतौति, टः, (५४२) गुणः. (२५७) टिच्वादीप् । यशः करोति, आसं करोति, चपां करोति, कर्म्यं करोति, इति वाकानि । (१००७) कुसकार इत्युदा-

### १०१२ । शक्तत्स्तम्बात् दृति-नायात् फले-रजो-मलात् देववातात् क्ष-ह्न-ग्रहाप दः ।

(श्रकत् स्तम्बात् ५।, डिति-नाथात् ५।, फली-रजस्-मलात् ५।, देव-वातात् ५।, क्रष्ट ग्रह भाष: ५।, इ. १।)।

एभ्यः परेभ्यः क्रमादेतेभ्य इः स्यात् घे। यक्तलारि वैताः, स्तम्बकारि ब्रीहिः, दृतिहरिः खा, नायहरिः, पग्रः, फलेयहिः रजीयहिः मलयहिः, देवापिः वातापिः।

### १०१३। कुच्चात्मोदराद् भुः खिः।

ৃ (कुचि-चाकान् उदरात् ५।, सुः ५।, खि: १।)।

एभ्यः परात् भुजः खिः स्थात् घे । ф

### १३१८ | वित्यव्याजनको मन्स्वौ दीकान्तत्वं त्वेकाजिन:।

(खिति था, चन्या गर्वः ६।, मन् स्त्री १॥, दोक्रान्तलं १।, तृ ।१।, एका जिचः ६।)।

इरता यसकारेष भनिधानान कवित् षण्, कचित् टय स्यादिति स्वितं। एवं भनिसर-इत्यादि वक्तस्यम् । पाणिनिः ३।२।१८ — २२ । '

<sup>\*</sup> पृथक् पदकरणं यथासक्षायं। तेन, प्रक्रत्स्वाथ्यां क्रजः, हिन्नायाथां इजः, फिलरजो सभियो यहः, देव-वाताथ्या भाषः, दः स्थादिश्यः। प्रक्रत् भव्ययग्रव्दः ताल्य्याद् विष्ठावाचकः, प्रकृत् करोतीति इः, गुणः। सन्त्रं गुच्छं करोतीति सन्त्रकारिः। हितं चर्म्मं इरतीति, नायं प्रभुं इरति वहतीति। फले ग्रक्षातीति एका-रान्यस्थात् भिक्षकर्षाविवया, भानुक्च। फल्यास्क इत्ययः। रजी ग्रक्षातीति रजीयिहः धूलियास्को वायुरित्ययः। मलं ग्रक्षातीति मल्यहः, इङ्डिक इत्ययः। देवं भाग्नोति देवापि देवयाजकः (देवयाविक इति कमदीयरः)। वातमाग्नोति वातापि-रसुरविश्वषः। पाथिनः इ। स्वर्थः। सर्ववर्याः कमदीयरः।

<sup>+</sup> कृषिय भातमः च उदस्य तत्तवात्। विप्रत्ययस्य ख इत् इकारिख्तिः। पाणिनः ३।२।२६, कालापाः भान्दायः।

व्यवर्जस्थाजन्तस्थाकषय मन् स्थात् स्वयः, एकाजिचसु दीकान्तत्वं स्थात् खिदन्ते धी परे । कुचिश्वरिः ग्रासम्बर्धाः उदरश्वरिः । \*

१०१५ | खग्नी: | (खग्।श, एकी: ४।)। डात् परात् एजयते: खग्नस्यात् चि । जनमेजय: । ११

१०१६ | · मन्यात् खार्थे | <sup>(मयात् प</sup>्रवार्थे ०)। श्राकानंगां मन्यते गांमन्यः, श्रियंमन्या । ध

१०१७। मुञ्जकूंलास्यपुष्पात् घेट:।
(मृज्जकूंलास्यपुष्पात् घेट: प्रा)।

एभ्यः परात् घेटः खग्र् स्यात् चे । मुझन्धयः कूलन्धयः श्रास्य-न्धयः पुष्पन्धयः । मुझन्धयी, घेटष्टित्वादीप् (२५०) । §

<sup>•</sup> नासि व्यं यत सोऽव्यः, षव्यथासी षच् चित प्रव्याच् । (प्रच्-प्रजनः)। प्रव्याच षक्स् च तत्तस्य । हो दिनीया, तस्याः क्षं (एकवचनं) होक्षं, होकं अन्तं। यस्य स होक्षानः, तस्य भावः होक्षान्त्वं। एकाधासो हच् चिति एकाजिच् तस्य । इच् इक्तः । सनी न इत् प्रनं, म-स्थितः, प्रकार उचारणार्थः । कुचि विभित्तं, खिः, युषः, कुविश्रस्य प्रजन्तवात् मन् । प्रात्यानं विभित्तं, (११८) क्षेतुंकि, (११८) विदासे परे नस्य लुपि, (१५) नत्रा निर्देष्टमनित्यमिति न्यायात् तदादिविधिनिवेध-स्थानित्यत्वे प्रनेन सन् । एवं उदर विभक्तं उदरक्षिरः । पाणिनिः दाश्वद्द, ६०, ६०।

<sup>†</sup> एजेरिति एकृकमेप इत्यस्य व्यानस्य यद्यं। खशः खशाबितौ त्रकारस्थितिः। जनं एजयतीति खग्, (५४१) चे सप्रेद्दित सप्, (५४२) गुपादिः, (५४३) प्रकार-स्रोपः, पूर्श्वस्य मन्। पाणिनिः ३।२।२८।

<sup>‡</sup> डात् परात् सन्यते: खण्स्यात् घे स्वार्थे, स्वः निसित्तकः घालवें इत्यर्थः । गांसन्य इति (७६८) दिवादिलात् स्यन्, (५४३) चकारखोपः । गाभिति एकाजिजनलात् दितीयैकावचनान्तलं । एकं त्रियंगन्या (भाष्यनते त्रिभन्या) । पाषिनिः ३।९।८३ ।

<sup>§</sup> सुद्धां (त्याविभेषं) धयतीत्यादि वार्चा। खिदना धाती परे पूर्वस्य नन्।

# १०१८। नाड़ी शुनी स्तन कर मुष्टि पाणि नासिकात् ध्मञ्च । (नाडी-नातिकात् ४।, भः ४।, च।१।)।

एभ्यः परात् भी घेटख खग्र्स्थात् घे। नाडिन्थमः नाडिन्थयः 🗱

१०१८। वटी-खारी-वाताट् विध्वरुस्तिला-द्मूर्योग्राञ्चलाटा-त्मित-नख-मानात् ध्मा-तुद्-दृशतप-पचः। (घटी-खागी-वातात् धा, विध-भवस्-तिलात् धा, अमूर्य-छयात् तप-पचः।

५।, जलाटात् ५।, सित-नख-मानात् ५ ५ भा-तृद-दृत्र-तप-पचः ५।) ।

एभ्यं: परेभ्यः क्रमादेतेभ्यः खम् स्थात् घे। घटिन्धमः खारि-स्थमः वातस्थमः, विधुन्तुदः ग्रहन्तुदः तित्तन्तुदः, श्रम्र्थस्यस्यः जग्रम्यख्यः, ललाटन्तपः, मितम्पचः नखम्पचः द्रोणम्पचः ।†

# १०२० | कूलादुद्रजदृहः । ' (ज्ञृंबात् ४।, उद-वज-घद-वहः ४।)।

भेटधातीष्टिच्लात (२५७) ईप्। यत्र भेटधाती-रेकारस्थाने श्रयादेश: स्थात् त<sup>3</sup>व टिस्त्राहीप् इति वक्षयं, तेन घेट-तय्य = धातयां इत्यादी न देप्। कातस्त्रम्।

<sup>🔋</sup> नाडी च ग़नी च सन्य करव सुष्टिय पाणिय नांसिका चेति तस्यात्। नाड़ीं भनतीति खण्. (५८०) धनादेणः, पूर्वपदस्य मन् इस्तयः । एवं नाङ्ग्सयः इत्यादि । पाणिनि: १।२।२६,३∙,३७, वार्त्तिकं कातन्त्रच।

<sup>†</sup> पृष्टक् पदकर्णं यथासङ्घार्थं, तेन, घटौ-खारौ-वातेभ्यः भ्रः, विभ्वक्सिलेभ्यः कदः, चन्योगायां दशः ललाटात् तपः, मित-नख-मान-वाचकेसः पचः, खश्र स्वात् र्घ दूल्यथं:। घटौं धमतौलादि वाकां (१०१४) घटौ-खागै-ग्रब्द्यो मंन् क्रस्तसः। स्वारी यरिमाणविर्मव:। खरौति च वार्तिके, खरी गर्गरी (गईभीति सिद्धान्तकीसुदी)। चरः सम्भ तृदतीति चवलुदः, चवसी सन्, (२१३) सलीपः । न सूर्यो पछातीनि चस्यांपछाः। द्रीयन्यच: इति द्रोच: परिमाचिविभेष:। एवं चाटकम्पच: इत्यादि। पाचिनिः शराहर---१७, वार्त्तिकच ।

कूलात् घाभ्यां खग्सात् घे। कूलमुद्दजा नदी, कूलमुदहः समुद्रः। क्ष

१०२१। प्रियवशाद् भयित्तमेद्वात् सर्व्वकूला-भकरोषात् वद-क्त-कपः खः। (भिय-वशात् ॥), भय-कःति-भेवात् ॥), धर्व-कृत-पम-करीवात् ॥, वद-क्त-कपः ॥), खः १।)।

एभ्यः परिभ्यः क्रमार्टतेभ्यः खः स्थात् वे। प्रियंवदः वर्णवदः, भयद्भरः ऋतिङ्करः मेघङ्करः, सर्वेङ्गषः क्र्लङ्कषः अभ्यङ्गषः करी-

# १०२२। चेम-प्रिय-मद्रात् कुर्वो।

(चिम-भिय-मद्रात् ४।, कु: ४।, वा ।१।)।

एभ्यः क्षञः खी वास्यात् घे। चेमङ्गरः प्रियङ्गरः मद्रङ्गरः। पचेचेमकारः । ः

# १०२३। भावधे त्वाधितात् भुवः। \* • •

(भाव-घे ७), तु ।१।, भाग्रितात् ५।, सुवः ५।) ।

प्राधितात् भुवः खः स्थात् भावे घेवा।

 <sup>\*</sup> छभयच उदी यहणं साटाधें । कूल सुदुत्रति, क्ल सुद्दति इति वाकादयं ।
 ऽभयच खम्, क्लमच्स्य मन्। पाणिनिः ३।२।११।

<sup>†</sup> प्रथकपदकरणं वदादिभि र्यथासङ्गार्थे, तेन प्रिय-वयास्यां वदः, भय-च्छति-ंषेस्यः क्रजः, सर्ध्वकुलासकरीवेस्यः कवः, खः स्थात् । प्रियं बदतीत्यादि वाक्यानि । ज्वंत्र पूर्व्वपदस्य मन् । स्यजीयामिपि निन्दाया-मग्रमे गमने स्वियां, कल्याप-वर्मनी-रंग च्यतिरिव्यभिषीयते । करीषः ग्रक्त-गोमयं । पाणिनिः शराश्र-,४२,४३ ।

<sup>🗜</sup> चेनं करोतीत्यादि वाक्यानि । पत्ते (१.००६) ढात् वर्ष् । पार्थिनिः ३।२।४४ ।

श्रागितस्रवं वर्त्तते, श्रागितं भवत्यनेनेति श्रागितस्रव श्रोदनः।

१०२४। तृ स्ट ट दृ जि ध तप यम दम मद लिइ गम सहाजो नामि। (१-४७:४१, नामि ७)।

एभ्यः खः स्यात् संज्ञायां । रथेन तरतीति रथन्तरः, विख्यसरः, पितंवरा, पुरन्दरः, धनद्धयः, वसुन्धरा, यतुन्तपः परन्तपः, वाचंयमः, अरिन्दमः, द्ररया माद्यतीति द्ररम्पदो हस्ती, वहं- विहः, सुजङ्गमः (पतङ्गमः प्रवङ्गमः), सर्वेसहः, वातमजः । पं

१०२५ । मधुंजहीरङ्गमोरग तुरग तुरङ्गम विह्नग विहङ्गम (भुजग)भुजङ्ग (पतग)पतङ्ग (स्रवग) स्रवङ्गाः । (मर्डनह—स्रवङ्गाः १॥)।

धे करेखे। ऋशिसं तृतिः। भाशितस्य भवनं भाशितस्य नं साथि खः। खः पत्ये परे गुणः पूर्वस्य मन्। "भाशितस्य भवनम् भाशितस्य नः" इति तु सिद्धान्तकी भृदी। पाणिनिः ३।२।४५।

<sup>†</sup> तूर्वरं, स्र लि स्वित्रिष्ट्योः, व न ज ग वती, दृय गि विदारे, नि कथे, स्र अस्थां, तथी सन्तिथं, श्री यस उपरमं, दम्स दर् ग्रमें, मदी भि थे जि हथें, लिइ ल स्वादे, श्री गम ल गत्थां, सह ज ङ गक्ती, श्रज गती चिपणे, दित चत्र्द्रं गस्थी धात्मः नास्त्र वार्ष्ट्य स्थात्। विश्वं विमर्त्ति। पतिं वणिति या सा। पुरं दौष्यित (दारयतीति पाणिनः) पुरन्दरः, एवं भगन्दरः ("भगे च दारेः" दित काशिका)। धरं क्यति धनस्त्रः, एवं रिषुस्रयः। वक्ति धरित (धारयतीति पाणिनः)। शत्रं तपित, परं तपित (तापयतीति पाणिनः, एवं दिवनपः)। वाचां यक्ति, स्व मन् भाषी इस्त्रः। शर्रं दास्थित। दरा जलं, इरस्यत दत्यव मन् इस्त्रस्य। वहं लेढि वहं लिइः, एवं सभं लिइः ; यस्त्रकता तृष्टवद्विष्ट दिवन गुणप्राप्तियोग्यधात्मां मध्य लिइधातीः सिवन्निश्चनं न कत्वा वहं लिइ दत्यव गुणी न स्थादित स्वितं। सुजन वक्तगमनेन गक्ति सुजक्तः, एवं पतद्वमः सवक्रमः। इद्यक्तमः इति भसं श्रामापिति वक्तव्यं। स्र स्वं सहते। वातमाजतीति वातमाजः वातस्याः, संश्वात्रोधात् न वी-भादिष्यः (५८६)। पाणिनिः १।२।२५,२,२०,२८,४०,४१,४६,४०,६।२।६६८, वार्तिकस्य।

एते खान्ता निपात्वन्ते। यहं जहातीति यहं जही माषः, उरसा गच्छतीति उरङ्गमः, उरगः, त्वरया गच्छतीति तुरगः तुरङ्गमः, विहायसा गच्छतीति विहगः विहङ्गमः, भुजेन गच्छतीति (भुजगः) भुजङ्गः, पतेन गच्छतीति (पतगः) पतङ्गः, प्रवेन गच्छतीति (प्रवगः) प्रवङ्गः। \*

# १०२६ । नग्नपितिप्रियान्यस्यूलसुभगास्यात् कु: खनट् घे च्यु घे । (नय-भाबात् ४०, कः ४१,खनट् १११, धे ७१, चूर्ये ७१)

एभ्यः परात् क्षञः खनट् स्थात् धे चुर्थे। अनम्नो नमः क्रियते उनेनेति नमङ्करणं चूतं, पित्तिङ्करणं, प्रियङ्करणं, अन्धङ्करणः योकः, स्थूलङ्करणं दिधि, सुभगङ्करणं रूपं, आव्यङ्करणं वित्तं । १

# १०२७। भवा वे खिष्णु-खुकजौ।

(सुव: ५१, घे ७), खिणाु खुकाजी १॥) ।

प्रकीः सम्मन्दः पपानवायुत्यागः । पत्यतेऽनेनिति पतः पत्तः । स्रवीऽव उल्लग्यनं । वहवत्तर्गीदन्यैऽपि, तेन त्वर्था गत्कतोति तुरङः, विद्यायसा गत्कतौति विद्यन्तः इत्यादि। भत्त सुनग-पत्तग-स्रवग पदानि उन्प्रत्यथेन साध्यान्यपि लिपिकार-प्रमादान् एतत्स्वे निविभितानि । वार्त्तिकानि ।

<sup>†</sup> नग्रसः पित्रस्य पियय प्रथमः स्यूल्यः सुभगसः प्राकाय तत्तस्मान् । खनटः खटावितौ, प्रन-स्थिति: । चुर्येश्वार्थः (४८५) प्रभृततद्वावः । धे करणवार्ष्यः । नग्रद्वरप्रमान् । क्ष्यातां भृणः । एवं प्रपत्ति । नग्रद्वर्षः मन् । क्ष्यातां भृणः । एवं प्रपत्ति विलितं क्रियतेऽनेनिति पत्तिवद्वर्षं वार्त्वर्षः । प्रयद्वर्षं स्वनं । चुर्ये खनट्विधानात् चिप्रस्ये न स्थान्, तेन नग्नीकारीस्थनिन इत्यव खनट् न स्थादिति पाणिनौयाः । काथिकासते प्रनट् प्रपि न स्थात्, भाष्यमते तु स्यादेव । पाणिनौः ३।२५६ ।

नग्नादिभ्यः परात् भुवश्वार्ये एती वे स्तः। नग्नश्मविष्णुः नग्नश्मावुकः। \*

# १०२८। ढात् भज-वह-सहो विण्।

(ढात् ५।, भज-वड-सडः ५।, विण् ११।)।

ढात् परेभ्यः एभ्येा विण् स्यात् । सुखभाक् प्रष्ठवाट् तुराषाट्।†

# १०२८। अनडुच्छेतवाचादिः। (१।)।

एते विणन्ता निपात्यन्ते । अनी वहतीति अनद्वान् व्रषः । खेतेरुद्धते इति खेतवाः इन्द्रः । अवयजतीति अवयाः, उक्-यानि ग्रंसतीति उक्षयाः यजमानः । पुरीडाः हविः, पुरी-डागः । ः

# १०३०। क्रम गम खन सन जंनो विट्।

(जम-जन: ५१, विट् १११) ।

<sup>\*</sup>भिक्यों. ख इत्, इणु-स्थिति:। खुक्जः खञाविती, उक्त-स्थिति:। अवाि दिप्रत्यथेन स्थात्। अन्यो भवतीित नग्रभविणः, भूषाती गृंधः, खिस्तात्नग्रभ्यस्य मन्। एवं नग्रभावुकः जिल्लात् विद्वः। एवं पिलतभविषुः पिलतभावुकः इत्यादि। पाणिनः शराप्रः।

<sup>†</sup> विण् इत्यस्य दकार छचारणार्थः, ण इत् (५००) वृद्धार्थः । भविष्ट-विकारस्य (४८६) त्यो वसान इति लीपः, सृतरां विणः सर्व्याभावः । सुखं भजतीति सुखभाक्, विलासी, (२११) कुङ्। प्रष्ठं भयगं वहतीति प्रष्ठवाट् भयः, तुरां विगं सहते दति तुराषाट् इन्दः, छभयन (१०५) हस्य ढ, तुराषाडिति (१११) घलं। पाणिनिः २।२। ६२—६४।

<sup>‡</sup> श्वेतवाह चादि र्यस्य सः। चनड्वानिति (१८१) चान्। श्वेतवाः इति कर्तः परात् वर्षः कर्माणि वाचे विष्। पुरः चादौ दास्रते दौयते इति पुरोडाः, एतेषु (१८४) उसङ्, (१८५) दौर्षः। पुरोडाम्र इति चकारान्तोऽपि निपाल्यते। पाणिनिः ३।२।२१,०२।

एम्यो विट् स्वात् वे। \*

१०३१ | विड्वनो ड्या | (विट्वनी: आ, डा ११) । धोरन्यस्य ड्या स्थात् विटि विन च । उद्धिकाः, अग्रेगाः, विसखाः, गोषाः, खजाः । प

१०३२ | नासुसिस् मन् क्वनिप् विच् किप: । ू (१॥)।

धोरते स्यु: के भावे च। नीयतेऽनेनेति नेतं दंशा नहीं योतं, उरुव्यचाः रुचचाः रजः, चचुः, सिषः, सुष्ठु ददातीति सुदामा गन्मा। \$

<sup>\*</sup> विट: इटाविती, (४९६) वमात्रस्थापि लोपः, सुतरां विटः सर्व्वाभावः। पाणिनिः ३।२।६०।

<sup>+</sup> तिट्-साइचर्यात् वन् इति गुणी गाद्यः, तेन न किनिषः प्रसङ्घः। ङा इत्यस्य ङ इत् भन्यस्य स्थाने, भत भाइ धोरन्यस्यिति। उद्धिं क्रामतीति उन्हिश्विकाः, एवं भर्य गफ्कति, विसं (स्थालं) खनिति, गां सनीति (ददाति), भ्रप्सु जायते इति वाक्यानि। सन्त्रेन पूर्वेष विट्, भनेन ङा, भाकारान्ताः भ्रन्दाः। गोषा इति सन धातोः सस्य (५००) क्रतत्वात् (१११) षत्वं। चदाहरस्य बापकात् अमन्तानामेव ङा, नावस्य। पाणिनिः ६।४।४१।

<sup>‡</sup> तथ अस् च उस् च इस् च सन् च किन् च विन् च विन् च किन् च ते। किन् किन् च ते। किन् किन् च ते। किन् किन् च ते। किन् किन् च किन् च किन् च किन् च किन् किन्। स्थाः। भागः। भोरिति सामार्थनोक्तावि प्रयोगानुसारात् अयं। द्रश्यंतऽन्येति देष्ट्रा दत्तः, (१५४) षड्। नद्यंतेऽन्येति नद्रो रज्यः. (१२०) इस्य घड्ः, (५०५) तस्य भ, (६४) पूर्वेषस्य द। उभयत भभिषानात् स्त्रीत्वं, नदादिलादीप्। यूयतेऽनेनिति योत्रं, दा ख त्यंगै दात्रं, पा पाने पात्रं, सु स्त्रीत्रं, निष्ठ मेद्रं, पत पत्रं, अस्य अस्त्रं, भस अस्त्रं, भस अस्त्रा इत्यादि। उक् सहानं विचिति सक्त्याचाः, (७५६) भम्वर्गनात् न जिः। नरं चष्टे त्याः।, (००६) भस्-

गस्यात् क्रव्यात्। अ

१०३३ | हब्नते नैंस् | (६व्-व-ते: ६), व ।११, ६व ।११)।
काती हबस्य वस्य तेस इम् न स्थात्। संगर्मा, सृपीवा प्रात-रिला सुला, भूरिदावा वारिजावा, सोमपाः रेट् रोट् क्रुङ्, युङ्प्रत्यङ् अच्चयूः मित्रगीः आभीः गीः बहुस्टट् एतस्टक्

# १०३४। छादे स्नुमन्कीस्वे खः।

(कार्दे: ६।, च-मन्-िक रम् घण, स्तः १🔊।

क्टादयृतीः स्वः स्थात् ने मृनि क्वाविधि घे च। कसं, कद्म, तनुच्छत्, कृदिः, उरम्कदः। १

वर्जनात् न क्मा-स्थादेश: । रज्यतेऽनेनिति रजः, (६६०) न-लीप: । एवं विधतीति विधा: । चष्टे (पद्यति) चनेन चत्तुः, (७०६) उत्तवर्जनात् न क्सा-स्थादेगः । एवं धन रवे धभतीति धनुः । सपंतीति सिपः । एवं इयते यत्तत् इतिः । गच्छतीति नन्मा (२०२) मस्य न । पाणिनिः शराहर, ७३ —७०, ८० —८६, उत्पादिश्व ।

<sup>\*</sup> इब् इति वयं वकारानः प्रत्याद्वारः । स-गू-मन्, धनेन इम्निवेधः, गुषः । स्पिवतीति स्पिता, स्पान्किन्प् कित्त्वादगुणे, (६१२) छी । प्रातरिति प्रातित्त्वा, स्पीवतीति स्वा, उभयव (६८२) तन् । भूरि दहातोत्वव वनिप् (१६४,११८) भ्िदावा, वारिषि जायते वारिणावा, इत्वव वनिप्, (१०३१) छा । सीसं पिवतीति सीमपाः, विच्, विचः च इत् प्राचीनानुवादाधः न लव्ययार्थः । (४८६) वमाच-लीपः । रेषति रीषति रीट् रीट्, विच्, गुणः । कुघतीति विच् कुडः । युनक्रीति युङ्, युन्ज-क्रिप्, (५६०) न-लीपः युज्यस्दः, सिः, (२१०) नुण् प्रत्यस्वतीति क्रिप् (५६०) पृजार्थस्य भन्यः न-लीपाभावे प्रत्यङ्, गत्यथस्य च नलीपेऽपि, प्रत्यच्यस्य (१८२) तुण् क्रते प्रत्यङ् । अवदीस्थिति चयद्वः, (८१४) जट् । निचं ग्रान्ति निवग्नीः, भाग्नानि भागीः, सभयव (७०५) छङः स्याने इत्, (२२०,२२८) रङ्, दीर्घः । (००५) क्रौ लाग्नासर्थति कथनात्, भन्यव प्रशान्तीति प्रशाः । रय्णातीति गीः, (६२८) इर् । वष्टु सञ्जतीति वहस्यत्, (६६१) जिः । घतं स्प्रतीति घतस्यक् । ससं चित्, क्रव्यं (मांसं) चित्त, प्रस्थात् कव्यात् । पाणिनः ७।२।८.८।

<sup>†</sup> कद कि संवर्षी । कायतेऽनेनित कसं, (१०११) इ.म्निषेधे, (६४१) जे-

### १०३५। दहज्जुह्न वाक् प्राट् स्त्री स्तू द्रू ज्वायतस्त्र कटप्रू परिवाट दिद्युज्जगत् दधक् सगु-ज्याहः। (वहत - विश्व कं रा)।

एते किवन्ता निपालन्ते । दीर्थंतीति दहत्, जुहोत्यनयेति जुहः, वत्त्यनयेति वाक्, पृच्छतीति प्राट्, अयत्येनां श्रीः, स्वन्तीति स्तूः, द्रवतींति द्रूः, जवतीति जूः, श्रायतं स्तौतीति श्रायतस्तुः, कटं प्रवते कटपूः, परिव्रजतीति परिवाट्, द्योतते द्रित दिद्युत्, गच्छतीति जगत्, धृणोतीति दृष्टक्, सैज्यते द्रित स्वक्, जर्षं सिद्यतीति उण्णिक्। \*

१०३६ । जि द्वाँऽन्यः। (जि: ११, र्घः ११, अन्यः १।)। अन्त्ये जिर्घः स्यात्। मित्रं ह्वयतीति मित्रहः। पै

१०३७। वेध्याप्यां को । (वेध्या यापां ६॥, को ०।)।

कः धीः ग्रापीः। ध्यायोरतएव जिः। 🕴 🕒 🗣

लोंप:, भनेन इस्तः, (६४) दस्त तं छ्दा इति मन्, 'क्रख्य । तनुं छादयतीति, तनुच्छत् किपि क्रस्य:। क्षेत्रवेति, क्षिः, इसि क्रस्य:। घ-प्रत्यये परं क्रस्य-विभागात् छादयतेः कर्त्तर नासि घ-प्रत्ययो वक्तव्य: (१०००), घ इत् भकारस्थितिः। तेन उर्म्हादयतीति उरम्कदः। एवं प्रश्वदः परिच्वदः दलच्चदः इत्यादि। पाणिनः ६।४।८६,८०। एतन्यति "भहुापसर्यस्य"। यथा समुपच्छादः।

 <sup>&</sup>quot;जुईतिक्वंयतेर्वा जुइः । द्रणातदीयंतेर्वा दहत्" इति भाष्यम् । पाणिनिः
 शराप्र, १००, १०८, वार्त्तिकपञ्चकम्, ज्यादिषः ।

<sup>†</sup> भान्य देति अत्प्रत्याय्यवितपूर्ववत्ती । सिनक्षरिति किप्, (६६१) जि:, दीर्घः । एवं इतः इतवान्, इतिः, इत्या । ज्या—जीनः, श्वि—ग्रनः । भन्यः किं, इषः प्रष्टः प्रष्टः । वार्तिकं, भाष्यभ्य ।

<sup>‡</sup> एषां जेर्घः स्थात् कौ। वे अं स्थूतो, वयतीति कः, निकापि (६६१) जिः,

### १०३८। जमुङो अस्यणौ चातिकि।

(जमुक्ट: ६।, भसि ७।, प्रयो ७।, च।१।, प्रतिकि ৩।) ।

जमन्तस्य उङोर्घः स्थात् श्रणौ भामे कौ च, न तुर्तिक । प्रयान्। क

१०३८ | स्तिवाव सव ज्वर त्वरी वड्डा जमेच। (स्व अव सव ज्वर स्वरी ह अमे थ, च ११)।

एषांव उड़ा सइ ऊट् स्थात् की भक्ति श्रणी जमेच । स्तूः जः सूः जः तृः। पे

१०८० | राच्छ्रो लाप:। (रात् ४।, क्वीः ६॥, कोपःश)
रात् परयो-श्ककार-वकारयो लीपः स्थात् की अस्यसी अमे
च। मुर्च्छा मूः, धुर्वी धूः। ईः

दीर्घ.। पूर्वत्वेष मिद्देशप जियमीऽयं, शक्स जीः कार्वेव दीर्घः, नान्यव, तेन खतः खला इत्यादि। ध्याययनया घीः, ("ध्यायतेर्द्धातेर्वा घीः" इति भाष्यम्), आष्यायते इति भाषीः, कर्षे यो एतयो जंरमभावेऽपि, जे दीर्विविधानादेव को जि वंक्रयः। वार्तिकं भाष्यस्थ ।

अन् अम् अमनी धातः, तस्य उङ्तस्य। प्रमास्यतीति प्रधान्, प्रमम-किप्, भनेन छडी दंघः, (२०२। सस्य न। अणौ भन्ने यया, धान्तः शान्तः भाग्ना इत्यादि! एतः इतिः इता इत्यादौतु (६०६) अमृ लीपे अमन्तवाभावात् न दीर्घः। भतिकौति किं, रिनः तनिः। पाणिनः ६।४।१५।

<sup>+</sup> सिव्यु शोषे गतौ, सीव्यतीति सः। पाव रचादौ, पावतीति जः। सव वसी, सवतीति सृ.। प्रथमादिव चनादौ, (१३५) छव, सुतौ. छवौ, सुतौ द्रव्यादि। ज्वर संगीगे, ज्वरतीति जूः, ("ज्वरते जीं थेतेवां ज्ः" दित साध्यम्), जिलरा पाक स्वदि, लरते दित तृः। पाणौ भने—सूतिः जतिः सृतिः ज्तिः। तृतिः। जिने च, सिव-सन् सोमा, पाव-सन् प्रोम् द्रव्यादि। पाणि निः ६।४।२०।

<sup>‡</sup> सुर्का भोड उक्कये, धर्वी डिंसे, उभी क्रस्तवनी। किपि प्रमेन कःव-लोपे, सुर्, धर् प्रदो, ततः प्रयमेकवचने, (२२८) दीर्घः । प्रयो अस्ते च सूर्त्तः पूर्णः इत्यादि ।

१०८१ । ऋाद्रहे। ब्रि: । (भात् ४।, जटः ६।, वि: १।)।

श्रवर्णात् परस्य जटो विः स्थात्। जनान् अवतीति जनीः।

### १०४२। यम मन तन गमाऽन्तलाप: कौ।

(यस-मन-तन-गम: ६।, भन्तर्लाप: १।, की ७।)।

एषामन्तस्य लोपः स्थात् क्षे । संयत् परिमत् परीतत् संगत्। १

# १०४३। सि-विष्यग्-देवस्य टेरद्यञ्ज्ञौ को । (सि-विषय्-देवस्य ६।, टे: ६।, पद्रि।१।, पदी ०।, को ०।)।

स्ने विषयो देवस्य च टेरद्रिः स्थात् क्षिबन्ते अञ्चती। सर्वा-नचतीति सर्वेयुङ, विषयुङ्, देवयुङ्। 🕸

भाव रिफगाइचर्यात् बकारी दन्यएव, तेन घर्वगती इत्यादी वर्ग्यवकारे न प्रसङ्घः । पाणिनि: ६।४।२१ ।

जनौरिति, जनान इति उपपदेन अव-धाती: समासे, ततः क्रिप, (१०३८) कट, जन-क, भनेन क इत्यस्य हिंद्र: भी, ततः सिन्धः। यवादी किंप् तेते: समास-स्तर्, व्यनस्य कः जनोरिति, एवं तत्र कः तनोरिलादि। एकपदेतु अपव-धाप्तीः किए, (६१४)वस्य कट्, भनेन विद्धः, भौरित्यादि । पाणिनिः ६।१।८८ ।

<sup>†</sup> संवच्छति,परिमन्दर्तै,परितनोति,सङ्ख्यते — इति वाक्यानि । सर्व्वत किपि, पत्याचरलोपे, (८८२) खस्य तन्। परीतदिति दीर्घनिद्देशात् क्रियने धातौ परे कविदुपसर्गस्य दीर्घी भवतीति स्चितं, "उपसर्गस्य दीर्घलं किपघजादी कविक्ववित्" तेन, विरोहति वीदन्, उपनद्यति उपानन्, उपवर्तते उपावन्, प्रवर्षति प्रावट् (मतान्तरें) इत्यादि । पाणिनि: ६।४।४०, वार्त्तिका । परिमत्स्याने "सुनत्" इति विद्वासकी मदी।

<sup>‡</sup> सिस विष्यक् च देवसेति तस्य । विष्यगिति मुईन्यमध्यं चान्तमव्यर्थ। विष्यक् समलात् अञ्चित विध्ययुङ, देवानञ्चति देवयुङ्। सर्वत्र टेः स्थाने अद्रि आदेश:। पतेषु पूनार्थस्य (५६८) नलीपनिविधे सम्बंध्य देवगृष् अस्दी, गतार्थस्य तु (५६०) ने लोपे विषयुच् अस्टः, ततः सिः, (१८२) तुच्। पाणिनिः ६।३।८२,।

### १०८४ । त्रम् द्युङ्त्त्रम् मृयङ् त्रद्युङ् त्रद्र-म्यङ् । (१॥)।

त्रमुमञ्चती खर्चे एते निपालन्ते। #

## १०८५। सह-सन्तिरः सिधु-सिम-तिरि।

(सक-सम्-तिर: ।६।, त्यभि-साम-तिरि ।१।) ।

एषां क्रमादेते खु: किबन्तेऽश्वतौ । सध्युङ् सम्यङ् तिर्थेङ् । १

# ृं १०४६ । बीरुहो धङ्कौ ।

" (वीक्ट: ६।, धङ्।१।, क्षी अ)।

वीरत्। #

### १,४७। त्यदादि-भवत्-समानान्योपमानात् दश्टक्-सक्-िकपो दे।

(त्यदारि-जिथमानात् प्रा, हमः प्रा, टक्-सक् किपः १॥, दे ०।)।

त्यदादेर्भवतः समानादन्यस्माच उपमानात् द्रग्र एते खुः है। §

### १०८८ | खेडी । (बें: ६), डा ।१।)।

<sup>\*</sup> पाणिनिः पाराप्त ।

<sup>🕇</sup> सङ्घाषात, सम्बाधित, तिरः बाखित, इति वाक्यानि । पाणिनिः ६।३।८३-८४।

<sup>‡</sup> विपूर्वस्य कहो थव्ह् स्थान् की। उट्टरत् भन्यस्य स्थाने। विरोह्नतीति वीकत्। वेदीर्घस्य वीजं (२०४२) स्वस्य टीकायांद्रष्टस्यं। पाणिनिमते विपूर्वकात् कथथाती: क्रिपि वीकष् इति सिक्तम्।

<sup>§</sup> त्यद् भादि र्यस्य स त्यदादिः, त्यदादिष भवांष समानश्च भवाव तत्, तम तत् उपमानश्चिति तसात्। भवा इत्येव श्रन्थः। उपमानभूतेभा एथाः परात् हशः टक् सक् किपः स्युः कक्षीण वाच्ये इत्यथः। टकः ट-कावितौ भकारस्थितिः, सकः क इत् सिस्तिः, किपः सन्दीभावः। पाकितिः १।१।६०, वार्तिकदयसः।

स्रे की स्थात् टगायन्ते हिथि। स इव हस्यते ताहमः ताहनः ताहन्। भवाहमः। अ

## १०४८। समानेदंकिमदः सेकाम्।

(समान-इटम्-किम्-भटः ।६॥, स-ई-कौ-भम् ।१॥)।

एकां स्थाने स ई की श्रमू एते क्रामात् स्युः टगाद्यन्ते दृशि । सदयः ईदयः कीद्यः श्रमूदयः । श्रन्याद्वयः । पर्

द्रति तृनादि-पादः ।

#### ३य पाद:--क्तादिः।

# १०५०। ता-तावतू भूते ढभावे घे।

(ऋ-ऋबत् १॥, भूते ७।, ढभाने ७।,,चे ०।)।

<sup>\*</sup> से: सर्व्यादिगणस्य स्थाने इत्यर्थः। जा इत्यस्य छ इत् घन्यस्य स्थाने। ताष्ट्रग-इति तद-द्रश-टक्, किस्तात् गुणाभागः, तदः स्थाने जा। टिस्तात् (२५०) देपि ताद्द्रशो इति च। तादच इति सक्, (१५४) षष्ट्, (६०२) षस्य क, (१११) कवर्गात् षत्तं। स्त्रियान्तु तादचा। किपि ताद्रश् शब्दः, (२११) कुङ्। भवानिव द्रस्यतेऽसी, टक् भवाद्द्रश्, स्त्रियां भवाद्द्रशी। एवं भवाद्वदः, भवादकः इति। पाणिनिः ६।३।८१।

<sup>†</sup> समान इव ट्रस्यते, भयमिव ट्रस्यते, का इव ट्रस्यते. भसाविव ट्रस्यते, भन्यहव ट्रस्यते — इति क्रमेण वाल्यानि । सर्व्यंत्र टक्। एवं सट्यः सटक् इत्यादि । भन्याटश-इति पूर्वेण खा । पाणिनिः ६।३।८८,८० । ८।२।८० ।

<sup>\*</sup> सुत इति ष्टुच ल सुतौ, कर्काण तः (६०६) वेमलेऽपि, (१०५३) इमो

# १०५१। चे वी उढे भावदैन्याक्रीशे तु वा।

(चे: ६।, र्घ: १।, भटे ७।, भावदैन्याकी में ७।, तु।१।, वा।१।)।

चे र्घः स्थात् न तु ढे, भाव-दैन्याक्रीये तु वा, तयोः परयोः।

१०५२। सूत्वाद्योदिह्न-चौ-यत्त्यातो न तो ऽप-मुक्क-स्था-ध्या-मदो दश्च । के (म-ल्-भादि-भोत्-इत-द-र-चौ-यत्-स-भातः ११, न ।११, तः ६१, षप्—मदः ११, दः ६१, पं ।१।)।

स्वादे र्लादे रोकारेती दान्तात् रेफात् चीयव्दात् यसस्ययुकाः कारान्तात् परयोस्तयोस्तस्य नः स्थात्, पूर्वस्य च दस्य नः,न तु प्रादिभ्यः । चीणः चीणवान् । अटे किं, चितः कामी मया । \$

# १०५३। वृदुश्चिजूणाः कितो नेम्।

(इ.च्छत् छ-थिञ्-कर्षो: ५।, कितः ६।, न ।१।, इ.म् ।१।)।

निष्येभे, कित्तात् गुणाभावः। 'णा ख श्रोधने, भावे कः, स्नातं। डुत अ द करणे क्षवतुः, कित्तात् गुणाभावे त्रतवत्शब्दः, प्रथमेकवचने, (१८२) चदिस्नात् तुण्, (१८५) देविः, (१८३) स्नान्तकोषः। पाणिनिः १।१।२६, १।२।१०२।

<sup>#</sup> भावस दैन्यस पात्रीशस तत्तिकान्। भावी धालयं, दैनं दौनता, पात्रीयः क्रीधीति:। चेरिति पविश्रेशात् सर्व्यंगवपठित विधाती सहयं। पायिनि: ६।४।६०,६१।

<sup>†</sup> स्थ लूथ स्लो, तौ भादी ययोकी स्लादी। भीत् इत् यस स भीदित्। यलः यलानः, स चासी स्थिति यलसः, तेन युक्त भात् यलसात्। ततः स्लादी प भीदिय दच रस चीय यलस्यावित तसात्। पृथ मुच्छं व्याय ध्याय मद चेति, न पृमुच्छं व्याध्यामद तसात्। चौ इति क्षतदीर्घस यहणं। स्वादयः—स्ट्दी डी धी सी तो लो ती। लादयः पृभिनाः पृद्यः, ४१० पृष्ठे द्रष्ट्याः। पाणिनः पाराधः २८६, ५०। एतमति स्वादयः श्रीदितः।

चीण इति चक्तसंकात् वच्यमाधेन (१०८३) कर्त्तरि तो, (१०५१) पूर्वेण दीचें,
चनेन तस्य न, (१००) णर्वे। एवं त्रवतु, चीणवान्। नया कान: चित: इंसितइत्यर्थ:। चव कर्मसंस्थात् (१०५१) चेर्च इति न दीर्घः, दीर्घाभावाद्य न क्रस्य न।
भाव वार्चतु चीण् चित्रितिति विकल्पेन दीर्घः।

हजी हक ऋदन्ता-दुवर्णान्तात् त्रिज जर्णीय कित इम्न स्थात्। अ

स्तः स्नवान् दीनः, 'लूनः जीनः, रुग्णः भुग्नः प्रहीणः, मित्रः निर्विषः, प्यानः ग्लानः श्राणः । प्रादेलु — पूर्तः मूर्तः स्थातः ध्यातः भक्तः । प

हतः शीर्षः भूतः जितः कर्णुतः । ह

१०५४। दिव्यञ्चायोऽजिगीषाजासभी न त-स्तयोः। (दिवि पष-ग्यः प्रा, पित्रगोषा-पज-प्रस्थां २०।, नारा, त ६।, तयाः है।)।

<sup>\*</sup> तथ सहय छथ यिज्ञच कर्णुय तत्तसात्। क इत्यस्य स कित्तसा । ह-स्तीः (७४०) स्वायृहदुरिति वेसत्वेन, यिधातीः (८१०) अम् जयीति वेसत्वेन च, (१००१) नेम् डीयोत्यादिना क्र-कावलोरिम्निषंभे, क्रि-भाटीनाच (१०३३) इव्वतंरित्यनेन इस्निषंधे पिद्वेऽपि इद्दोपादानं काच इम् निषेधायं। उपर्णातत्वेन धौषाविष कर्णेः पुनग्रंहर्षं, अस्नश्रीत्यनेन विकासितिमः कर्णेधातीः नैम् डीयोत्यव भनेकावयर्जनात् इम्प्रसक्तौ, पुनन्विधायं। भत्रदाव उपर्णात्त एकाच एव बीख्यः। पाणिनिः ०।२।११, वार्त्तिक्यः।

<sup>†</sup> खादिमाइ स्न इत्यादि—सृ यो ङ स्ती कस्यीण क्रः, चनेन इस्-निषेधे, पूर्वेण तस्य न। एवं कवतः स्नवान । ची दो ङ य चये, दौनः खादिलान तस्याने न। खादिमाइ—क् ज नि हिदि लून, ज्या नि जरायां जीनः, (६६१) जिः, (१०६६) दीर्घः। चीदितमाइ—द जी यो भक्तं क्रणः (१००) णलं। सुजी यो वक्षणे सुग्नः, चलारज्ञादादी (१११) चुिजित कुङ्, प्रयात् तस्याने न। चो इन कि लागे प्रधीणः, (६१२) छी, (८६०) णलं। दासमाइ—इर् मिद्या केहे नित्रः, (१००२) इस्-निषेधः। विद्यो ङ भावे निर्ल्विचः, चथ्यने जङ इत्यथः, चव चलं वक्तव्यं। रातस्य छदाइरचं न दत्तं, नुर—गूर्णः, चर—चूर्णः इत्यादि कक्तं। यल्युकादन्तमाइ—प्ये—प्यानः (६०८) ऐ स्थाने चा, खे—स्वानः, ग्रा—ग्राणः। पृ—पूर्णः, (६२८) चर्, (१२८) दोर्घः। सुर्कं - मूर्णः, (१००२) इस् निर्वधः, (१०४०) इ-लीपः, (२२८) दोर्घः। स्था—स्थातः, ध्ये—ध्यातः। मद—मतः।

<sup>‡</sup> त का इतः, (५५४) इ.स्पाधी चलेन निषिद्धः । ফু——शीर्थः, इत्यादि ।

दिवरिजगीषायां श्रञ्जतेरजे खायतेरस्पर्धे तयोस्तस्य नः स्यात्। श्राद्यनः समक्रः। \*

# १०५५। घनसर्गे खो जि:।

(घन-स्प्रमें ७।, म्यः ६।, जि: १।) ।

घने स्पर्भे चार्थे स्थी जिः स्थात् तयोः । सीनं घतं । जिगी-घादी तु. द्यूतं, उदत्तमुदकं कूपात्, भीतं जलं । घनस्पर्भे किं, संस्थानी दृश्विकः सीतात् सङ्गुचित इत्यर्थः । पं

ं १०५६ । प्रते:। (<sup>पतेः पूरा) ।</sup>

प्रतिपूर्वेस्य भ्या जिः स्यात्तयीः। प्रतिभीनः । क

१०५७। ऋथवाद्या। (भिभ-भवात् ४।, वा ११।)।

भ्रम्यवात् परस्य श्रो जिः स्यादा तयोः । श्रभियीनः श्रभि-श्यानः, श्रवशीनः श्रवश्यानः । §

क दिविय प्रस्य स्थाय तत्तस्थात्। न निगीवा प्रतिगीवा। जंपपादानं, न जंपनं । ने स्पर्धाः स्थानि । प्रतिगीवा प प्रत्य प्रस्थां तत्तस्थिन्। पा-दिवक्त, (८१४) वस्थाने कट, प्रनेन तस्थाने न। पाद्यूनः स्था-दीदिन्क द्रत्यम्गः। सम्पन्ष-क्त, (४६०) नशीपः, (२११) कुङ्, तस्थाने न, समक्रः सङ्गत द्रत्यवः। "समक्री
प्रकृतेः पादी" द्रति पाणिनिटीका। उभयन (१००१) द्रम्-निषेधः। पाणिनिः
प्रशिष्ठ—४६।

<sup>†</sup> घने द्रवद्रव्यस्य घनीभावे इत्यर्थः । शीनमिति श्री ङ गती, क्तः, घनेऽघें घनेन निः, (१०३६) दीर्वः, पूर्वेष तस्थाने न । पूर्वस्य प्रत्युटाइरणमाइ — यृतं, दिव-भावे क्तः, तिगीषार्थे न तस्थाने न । उदक्तं उद्गतमित्यर्थः, कूपादिति घपादानप्रयोग् गात् न तस्थाने न । शोतमिति श्री-क्तः, स्थार्थे घनेन जिः, पूर्वेष न तस्थाने न । संग्रान इति घनस्प्रशीमावे न जिः, पूर्वेष घस्प्रशीर्थे तस्थाने न । पाणिनिः ६।१।२४।

<sup>‡</sup> प्रयक्षीगात् घनस्पर्भयीनांतुहत्तिः। पाणिनिः ६।१।२५ ।

<sup>§ &</sup>quot;व्यवस्थितविभाषेत्रं, तेनेइ न समवद्यातः" इति सिञ्जानकौष्ठदी । पाणिनिः ६।१।२६ ।

### १०५८। षिञो ढघेन तो ग्रासे।

(विज: ५।, ढचे ७।, न । १।, त: ६।, गासे ७।) ।

षिजः परस्य तयोस्तस्य नः स्थात् ढघे, यामे वाचे। सिनो यासः स्वयमेव । \*

१०५१ पूजी नाम् । (पूजः प्रा, नामे ।)। पूनी नष्टः, श्रन्यचं पूतः । गं

१०६० | दुग्वो वश्व । (इ.म्बी: ६॥ र्घ: ११, घ ।११), । आभ्यां तयोस्तस्य नः स्थात् तयो र्घव । दूनः गूनः । क्षः

**१०६१ | त्रञ्चो: कंडः च |**  $(^{(\mathfrak{p})}\mathfrak{A}: \mathfrak{s}), \, \mathfrak{n} = (\mathfrak{r}), \, \mathfrak{l}, \, \mathfrak{n}}$  प्रशिक्षियो स्तस्य नः स्थात्, कङ् च । हक् $\mathfrak{m}: \{ \}$ 

मिश्र इति घोषदेश-निर्देश:। (५६८) षस्य साँ विश्व न वसे. कम्मकर्ति क्रः, टेवदनेन सौयमानी यास: स्वयंभेव सिनः वह इत्यर्थः, ग्रासः कृत्वलः। द्वे किं. सितो ग्रामी टेव्टनेन। ग्रामे .किं सित्यौरः स्वयंभेव। वा-इयमध्यवित्तं त्वा-देतदादीनां चत्र्यां नित्यता। "सिनोतेग्रोमकम्मकर्मकर्मकस्य इति वार्तिकम्।

<sup>†</sup> धातनासन्तिकार्थतात, नाजार्थ-पूज-धाती-सयीकस्य नः स्थात्। ''पूजां विनाग्ने'' इति वार्त्तिकस्।

<sup>‡</sup> दुगरी (दुद्वीत्नतापे इत्यस्य तुन, तच दृत इति परं), गुङ भ्वनी, गुणि तृ विट्सृजी, इत्यंतिषां यदणं। टूग् इति दीर्घानान्यां क्रप्रत्यवेन पदनिद्वाविपि एतत्-स्वकरणं इत्यानयीर्द्ग्वी: प्रयोगनिषेषाणे। "दृग्वीदीर्घणं" इति वार्तिकम्।

<sup>\$ (</sup>१५४) मक्नोजित घड्मानियारणार्थनिङ कड्विधानं। उट इत् भन्यस्य स्थाने। व्वक्ष इति, ब्रधू मा केंद्रे, क्षा, (१०७१) नेम् डीश्वीति इमी निवेथे. (६६१) जि:, भनेन कास्थाने न, पस्य का, निर्मत्तस्थापायं नैमित्तिकस्थाप्यायं इति न्यायेन तालन्यमस्य दन्यत्वे, (२१३) स्थादेः सी लीपः, (१०७) णत्वं। पाणिनि. ८।२।३६, वार्तिकस्थ।

# १०६२। स्तीघात्रोन्दनुदविन्दो वा।

(इही - विन्द: ५) वा ।१।)।

एभ्यस्तयो स्तस्य नः स्यादा । ज्ञीणः ज्ञीतः, घाणः घातः, वाणः

त्रातः, उदः उत्तः, नुदः नुत्तः, विदः वित्तः । अ

# १०६३। चैगुष्पचीमकव:।

(चै प्रय-पच पू।, स-का-व: १।)।

एभ्यम्तयो स्तस्य म क व एते क्रमात् स्युः। चामः ग्रुष्कः पकाः। 🕆

# ् १०६४। प्रस्यो स वा, जिञ्च। (प्र- ब्हार्स, मारा, वा रा, जि.स. च रा)।

प्रस्त्यस्तयो स्तस्य मः स्थादा, जिय। प्रस्तीमः प्रस्तीतः। प्रात् जिं, संस्थानः । क्ष

क्षीय ब्राय बाख उन्दय नृदय निन्द च तकात । क्षी लि लिक्की क्ष:, वा तस्यानेनः । णव घागन्धग्रहणे चै उहुपालने, क्तः । उन्दर्धी लेटे काः. (१००१) नेस डीम्बीति ईदिस्थान 'दम निर्मेधे, (५६०) नलीपः। नदी अर्थ प्रेरणे। धी विद इस्मीमार्स । अत्र सूर्वे विन्द इस्पनेन शैधादिकी विद्धातवीं ध्यते,—प्रमाणानि यथा -(१) पार्गिनि: (८।२।५६) ''न्दि दीन्दवाघाक्रीस्य'ऽन्यतरस्याम्''--विद विचारणे बौधादिक एव ग्रह्मते, द्रति भट्टीजिदीचित:। (२) भाष्य 'वेत्तेलु विदिती निष्ठा विद्यतिर्वित्र दृष्यते । विलेवित्रय वित्तय भीगै वित्तय विन्टते: ॥'' (३) कातलम् ''क्षीग्राबोन्सन्दर्शवन्दां वा।" कात्सु ५३८ सबस्। (४) संपन्नस ''न्टोन्टविन्दिबान्ना-क्रीश्यां वा।" 'विद विचारणे'। पू) संचित्रसार: "छन्दीक्रीघाचाविनतिन्दा था।'' क्रदनपादे ५०० सूर्वम्। 'विनन्ति निर्देशात् विद सत्तायामित्यस निर्य विव्रमिति' गांधी वन्दः।

<sup>+</sup> चैचिंच जामः, ग्रथौ ल्ट भीषे गुक्त, उभयव अप्तर्मक्तलात् (१०८३) कर्त्तरि क्षा । ड औष पथ पाके भन्तरङ्गताटाडी २११) कुङ्, ततः क्षस्य वः । पाणिनिः व्यारः प्रर — प्र ।

<sup>🛨</sup> अपत्र वा-प्रकट्स्य सकारंगैय सम्बन्धात जिलित्यः । स्ये संइती ध्वनी, श्रसीमः प्रस्तीतः, (१०३६) चल्य-जेर्दीर्घः। सस्यान इति (१०५२) ज्ञास्य नः। एवं स्थानः। पाणि नि: नारा प्रस्, दाश रहा।

१०६५ | निर्वाण भित्तण वित्त मुद्धोत्मुद्ध संमुद्ध प्रमुद्ध चीव द्या परिद्याग्रिष्ठाचाः । (१॥)। एते क्रान्ता निपालन्ते । निर्वाणः प्रान्तः निर्वाणं मुक्तिः, भित्तं खण्डं, ऋणं विशोध्यं, वित्तं धनं वित्तः प्रतीतः, प्रजी विकसितः उत्पुक्तः संपुक्तः प्रपुक्षय, चीवो मत्तः, क्रयस्तनः परिक्रयय, उक्षाघो नीरुजः । ॥

१०६६। जुध वस पूजार्थाञ्चागार्ध्यार्थ-लुभ: क्वस्यम्। (जुध-जुम: धा, कः स, चारा, इस ।रा)।

एभ्यः परयो स्तयोः त्वय इ.म् स्यात्। चुधितः उपितः अश्वितः सुरितः । सुभितः । गतौ तु स्रतः । गार्ध्याये तु लुब्धः । प

<sup>\*</sup> निपाती द्वार्थविषेषे दलाइ निर्व्वाण: माल दलादि। वा ल गुमनहिसयी: निर्व्वाण: मन्यव निर्व्वात:। भिदिर् घी ज भिदि भित्तं, भन्यव भिन्नं। स्व गती स्थां, भन्यव स्थतं। विद लृ म प जी लाभे विनं, भन्यव विनं, विद ल मती वित्तः, भन्यव विदितः। फुल विकसने फुलादि चतुष्ट्यं, कीवलस्य उत्तंप्रपूर्वंस्य च निपात-गात् भन्यव सुफुलित दलादि। पाणिनी चनुपसर्गात् जि फला विसरणे दित फेलंबाती: कामी निपातः, प्रमुल इति क्यं तु फुल विकसने दलस्य पचायि बोध्यम्। चीव इत्येचीवः, सोपसर्गात् प्रवोवितः। कामि के कासी क्याः, एवं परिक्रमः, भन्यव रिक्रियः। सोपसर्गात् क्या प्रवावितः। साच्याः क्याः स्वावितः। साच्याः स्वावितः स्वावितः। साच्याः स्वावितः स्वावितः स्वावितः। साच्याः स्वावितः स्वावित

<sup>†</sup> पूत्राधियासी षख चिति पूत्राधीख। गाध्यें (खिषा) षधीं यस स गाध्यों थै: न गाध्यों थै: स नाध्यों थै: स नाधी लुभ चिति षगाध्यों थे: लुभ । ततः चुपये लादि द ने ग्रियात्। क्वाः क्षां च्याः । चुप-वसी-रौदित्वात्, षद्यः उदित्वंन (११०२) काची वेसत्ते लुभख (६०६) वेसत्ते (१००१) नेम् डोयीति निवेधात्, इसीऽप्राप्तौ विधिरयं। उदित इति (६६१) जि:। पचित इति पूत्रायं लात् (५६८) न नलीपः। लुभित-इति लुभ विसो इने। षक्त इति (५६०) न न्लीपः, (२११) कुङ्। लुम्च इति लुभ्य इति लुभ्य इति लुभ्य ह्यां ध्यें, (५०५) त-स्थाने ध्र (६४) भ न्स्याने व। क्वाचलु चुपिता उदिता प्रस्तिता, क्यां क्विता लीभिता (८९८) वा किस्तं। पाणिनिः शरी ५२ ५४। "

१०६७ । प्रक्तिश वस जप व्याख्नस स्तयो-व्या । (प्र-वाषतः ४), वर्षाः ६॥, वा ।१॥)। एभ्यसायोरिम् स्थादा । \*

१०६८ । पू शी ध्रष्ठ मिद स्विद विद स्मार्थस्यां सेमा शु: । (प्-चर्चा ६॥, वेमी: ०॥, षः १।)। एषां शु: स्थात् तयी: वेमी: । पिततः पूतः, क्रिशितः क्रिष्टः, विमतः वान्तः, जिपतः जप्तः, विश्वसितः विश्वस्तः, श्राष्ट्रसितः श्राष्ट्रस्तः । श्रितं धिर्वतं मेहितं स्वेदितं स्वेदितं मिर्वतं। स्वमार्थः किं, श्रपस्ट्रषितं वाक्यं। पं

### १०६२। भावादिहे वादुङी अव्वतः।

(भाव-चादिढे ७।, वा ।१।, তন্-ভক্ত: ৫।, चप्-वत: ६।)।

विहिताप उदुको भावादिवयो गुँ व्या स्थात् तयोः सेमोः। योतितं युतितं तैन। जनपसु चुधितं। कः

क विश्व पाय ताथा वस व्यावस्त पृथ क्रियम वनय जपय व्यावस च तसात्। पृ. चाती-दवर्षान्तसात् (१०५१) निषेत्रे, क्रियमाती दिस्त्वादंसलेन (१००१) नेम्डी-वीति निषेत्रे, वसादीनां (५५४) निल्पाती विभाषेयं। पाणिनिः अश्यः ५,४१। वसजप्यावसानिम्विक्त्यः चन्द्रवर्षमानमतानुसरिषः; "पाणिनीयासु 'पूज्य' इति स्वे चकारस्थानुक्रससुव्यार्थलेन साध्यन्ति" इति गीथीचन्द्रः।

<sup>†</sup> चनार्थयासौ सव चेति चनार्थ-सव, ततः पूत्र श्रीय ध्वय निदय खिदय खिदय खनार्थ-सव व तेषां। इसा सच वर्षेते यो तौ सेनी तयो:। पवित इत्यादि, पूर्वेष इस्, भनेन सुष:। क्रिष्ट इति (१५४) वर्षः। वाल इति (१०३८) दीर्घः। शिवत- नित्यादीन ऋसोदाइरणानि। धव जि प्रागल्ये, जी-र्निया खेडे, खिद जि भीवे, खिदा जि सेदेने, एवां चतुर्षां (१०७३) इस्पचे, गुष:। मित्रां (५५४) इस्। यपस्वितं नित्दितसित्ययः। पाषिनिः १।२।१८,१०,१२।

<sup>‡</sup> भादिउ नियारमा:। भावस भादिउच तथिन्। उन् उक्यस स तस। भप् विद्यतेऽस्य मुक्तान् तस्य प्रति उद्युक्ति विश्विष्यं। इत्ती विश्विताप प्रति, विश्वितः

१०७० | लीपा जी: | (बीपः रा, जी: दा) । जी लीपः स्थात् तयोः सेमोः । भावितः भावितवान् । अ

१००१ | नेम् डीख्वीदिद्देमा ऽपत्यनेकान्-निष्कुष: | (नारा,इमारा,डी-चि-ईदित्-वेन: प्रा, प-पति-पनेकान् निष्कुप: प्रा)। डीन: ग्रून: दीप्त: गूढ़: कृत: तत: | पत्यादेसु पतित: दिर-द्वित: निष्कुषित: । ने

१०७२ । आदितः । (पारितः पा)।

कृतः अप् यसात् स तस्य, भादिरदादेशे व्यर्थः । भदादेः भपीऽस्थाधिवेऽपि (६७०) तिष्ठिधानमेतदर्थे । द्युत क वृत्त दीपी भावे काः, (५५४) इ.म्. भनेन या गुणः । भदादे भृ रोदितं कितिमिति । भादिदे तु, (१०१२) घेचादिदे क इति कर्भि की, योतितः युतित इत्यादि । भायदादिन्या-मन्यस्य तु चुध यौ चुध चुधितमित्यादि । सेमीः किं, दुग्धं गुप्तं । पाणिनिः १।२।२१, भाष्यभा ।

(६४१) इसि जिलीपनिवेधादिष्ठ विधानं। भौवित \* इति भू-जिन्न, भावि-त्तन,
 (५५४) इस्, जिलीप:। पाणिनि: ६।४।५२।

श्राकारितस्तयो रिम्न स्थात्। मित्रः, मित्रवान्। \*

१०७३ । भावादिहे वा । (भाव-भादिहे था, वा ११)) मिन्नं मेदितं तेन । प्रमिन्नः प्रमेदितः सः । 🕆

१०<u>98। शके हैं। (सकी प्रा, हे का)।</u> प्रक्रितां शिवस्तेन, शक्तः। इ

१०७५ । ज्ञुन्य वाढ् खान्त ध्वान्त फार्ग्ट कष्ट धुष्ट जम्न न्त्रिष्ट विरिक्त घृष्ट विश्वस्त परिष्टढ् दृढं शृत वृत्ताभ्यस्ताः ।

पते ज्ञान्ता निपात्यन्ते। चुन्धो मन्यः, वाढं स्थ्यं, स्वान्तं मनः, ध्वान्तं तमः, फाण्टं कषायभेदः, कष्टं कच्छं, घ्रष्टं प्रव्दितं, लग्नं सत्तं, न्तिष्टं घ्रस्पष्टं, विरिच्यः स्वरः, ध्रष्टः प्रगलःः, विश-स्त्यः, परिहदः प्रभः, र्दंदो बली, यतं पक्षं, द्वत्तो गुणम्कानेण, घ्रभ्यणें समीपं। §

अन्यात् इत्यस्य स्रतस्यात्। इर्मिया सिंहे, कर्त्तरिकाः, (१०५२) क्रास्थाने न, पूर्वस्य दस्य चन, मित्रः, एवं कवतुः निज्ञवान्। पाणिनिः ७।२।१६।

<sup>†</sup> चादिभृतं ढं, कियारश्च इति यावत्। भावय चादिद्वच तत्तिश्चन्। चाका-रैती घो भाव चादिकर्म्याच च विद्वितस्य कास्य इम् न स्याद्या। भावादिद्वयी: क्वावती-रसम्भवात् कीवलं क्राग्रैवेत्यर्थः। भिक्तमिति भावे कः, पचे इम्, (१०६८) पूर्वीति गुणः मेदितं।. एवं प्रमिन्नः इति (१०६२) कियारभे कर्त्तरे कः, प्रशब्देन चारभी द्यीत्यते। स्नेष्टं कर्त्तुमारस्ववानित्यर्थः। पाविनिः ७१।१७।

<sup>‡</sup> सक्त धानी: कर्माचि विकितस्य क्रस्य इ.म. न स्वादाः। दे इति किं, तेन शक्तं, स सक्तः, भच कदिस्विद्देसते, (१००१) नेम खोबीति इम्निवेधः। ''शक्तृ सकर्म्यकः'' इति क्रमदोयरः।

<sup>§</sup> चुम ७ च स्वतने, तः चुक्तः, मयो मयनद्षः, प्रवत् चुनितः। बाइ ७

## १०७६। नेम् संनिव्यहः।

(न ।१।, इस् ।१।, सं नि-वि-षर्द्दः ५।)।

संनिविपूर्वा-दर्दतेस्तयोरिम् न स्यात्। समर्सः न्यर्सः असीः।

### १०७७। वा रुषाम हृष त्वर संवुषाखन:।

(वा ।१।, रूष-चम-इष-लर-संघुष-चास्त्रमः ५ः)।

एभ्यस्तयोरिम् न स्थादा। रुष्टः रुषितः, त्रान्तः त्रमितः, हृष्टः हृषितः, तृर्णः लरितः, संघुष्टं संघुषितं, त्रास्नान्तं त्रास्न-नितं। पं

यवे, बाढं स्त्रां, भन्यत्र वाहितं। स्वन चा शब्दे स्वानं मनः, भन्यत्र स्वनितं। स्वन मि च रवे भ्यान्तं, मन्यव भ्यनितं। फण च निस्नेहे, ञि:, तत: क्त: फागटं कन्नाय-विशेष:. (फाग्ट्मनायास धाध्यमिति पाणिनिः), चन्यत्र फाणितं। काव वधे कष्टं क्रक्रं, (क्रच्छगइनियोः क्रष इति पाणिनिः), ऋत्यत्र क्रषित। पृष कि विश्रद्धे प्रस्टितं, (घुषिरविश्रव्यक्ति इति तुपाणिनि, घुषि: प्रतिज्ञाय। मिति तुलमदीश्वरः), अध्यत्र घुषितं। लगम सङ्गलयं सकं, प्रत्यव लगितं। संच्छ कि देश्योकौ स्त्रिष्टं प्रस्पष्टं, प्रत्यव रेभ्ट एक अर्व्ह विरिच्य: स्वरः, भन्यव विरेभितं। जिप्तपान प्रागल भ्ये धष्टः प्रगल्भः, अन्यत्र धर्षितं। (१००२) भादित इति इस्निवंधे पदसिज्ञाविष्, (१००३) भायादिट वेति पाचिकस इमी निविधार्थं निपातनं। अस छ वधे विश्वसः प्रगल्भः, चन्यत्र विश्वसितः। चत्र (१००१) नेम् डीवीति इम्निवेधेऽपि, प्रगलमादन्यत द्रम्पाप्तरणे निपातनं। हिंदि हिंदि च हत्ती, परिहदः प्रभुः, हदी बली, (हदः स्यूलवलयोरिति पाणिनिः), भन्यत्र परिवंहितं दृहितं। याल्भ पाकेकेवलस्य कानस्य च म्यतंपकः, एतच चीरे इविधि च वाच्ये विपातितं, ऋन्यत्र श्राणः यपितः । इत उटव स्टबर्सने इत्त: भधीत: गुणी गन्यविशेष:, (चिजन्तहतधानुरेवीक: पाणिनिना, णिलुक्च), चन्यच विभितः। चर्दं पीड़ायां, सभीपादन्यच अध्यद्दितः। पाणिनिः ७।२।१८—२१,२४,२६,२७ ।

- समर्थः इत्यादि, चई पौड़ावां, चनेन इम्निवेधः, (१०५२) तस्य दस्य चन,
   एवं समर्खवानित्यादि । एभ्यः कि, चिहैतः प्रार्हित इत्यादि । पाचिनिः ७।२।२४ ।
- † वषय भाग्य क्रवय त्वरथ संघुवय भास्तन् चतकात्। कृष्ट क्रवादि, क्योर्जि कृषि, भाग सरी अजने मध्दे भशक् रीगे, क्रयु दर्तृष्टी, जिल्दरा मार्ज्सादे, छव

## १०७८। दाना शाना पूर्ण दस्त स्पष्ट च्छन (दान्त-चप्ताः १⊪, वा ।१।) ।

एते जालाः क्राल्तानिपात्यन्ते वा। पत्ते दमितः ग्रमितः पूरितः दासितः स्पामितः क्वादितः चपितः। 🎏

१०७६ । स्फाय: स्फी वा । (स्काय: ६१, स्की ११),वा(१))। स्फीत: स्फीतवान्, स्फात: स्फातवान् । १

# १०८०। प्यायोऽगे: प्यस्वाङ्गे तु वा।

द्यगे: प्याय: पी स्थात्, स्वाङ्गादन्यचतु वा तयो:। पीनं मुखं, ष्यानः पीनः खेदः। #

क्ति इर इती,-स्वन साम्ब्हे, एभ्यः ज्ञा-क्रवतप्रस्थययी: वा इम्निवेध:। चाल्त इति, भास्तालं इति च (१०३८) असुङ इति दीर्घः। तूर्णं इति (१०३८) सिंबैति कट्, (१०५२) क्रास्ट्रेन. यालचा। भव रूप धातो: (६०६) वेससहित, इत धातो: (१९७२) पूक्तिभेति देम्रत्वे, (१००१) नेम् डीक्वीति निवेधादमाप्ती, चन्येवाञ्च (५५४) वसीऽरस्थेति नित्यप्राप्ती विभाषा । पाणिनि: ७।२।२८,२८ । "इन्टंइ वितंलीन'' इति पाणिनिः, "विक्रितपतिचातयोय" इति वात्तिकम् । इत्वन्तुष्टौ इट् । इति विद्यान्तकौमुदो ।

🔹 दसु-ग्रसु भिर्यं ग्रमे, प्रेरणार्थे, (৩৩৩) औ, कर्म्माणि के (१०३८) दान्त: शान्त: इति, पचे (७६८) ऋस्ते, (५५४) इमि, (१०७०) ऋेलेंपि दमितः शमित: इति च। एवं पूरी का पूर्ती -- पूर्ण:, पंचे (५५४) इ.स्. (१०७०) जेलेंगि, पूरित:। दस्यु इर् चत्चेपणे दत्तः, पचे दासितः। समान्न ग्रय-वाधयोः, स्पष्टः, पचे स्पाधितः। इट्ट कि संडती, खायंञी कतः, पक्षे कादितः। ऋप कातु ऋपी— ऋपः, पचे ऋापितः। पाणिनि: ७।२।२७।

+ स्क्रायते:स्कीवास्थात् तयी:। स्क्रायीखः इन्ही, ईदिस्वान (१०७१) इ.स. निवेधे, स्कौ - चादेशः, पर्चे (६४२) य-लोपः । पाबिनिः ६।१।२२, भाष्यसः ।

‡ पौननिति, भो प्यायी उर बद्धी, त्रः, (१००१) द्वेदिस्तादिशनिषेधे, भीदिस्तान् (१०५२) तस्य न। भगे: तिं, प्रव्याभे सुखं, (६४२) यलीप:। भस्ताक्रे तुव्यान: पीन: खोदः, खोदस्य खाक्षभित्रलं (२६५) सूत्रे द्रष्टव्यं। पाचिनिः ६।१।२८, भ।वाचा

१०८१ । श्राङोऽस्त्रुघसी: । (मारु: ४।, मसु समसी:०॥)।

षाङः परस्य प्यायः पी स्थात् तयोः,श्रन्थूधसोः । श्रापीनोऽन्युः, श्रापीनमूधः । #

# १०८२। ह्लादेः खः त्तौ च।

(ह्राटे: ६।, स्व: १।, क्रौ ७७, घ।१।)।

म्नादेः स्वः स्थात् तयोः त्तीच । प्रम्ननः । 🕆

## १०८३। दो-षो-मा-स्यां डिस्यगौ।

(दी - स्थां ६॥, डि: १।, ति ७। प्राणी ७।)। • •

एषां जिः स्थादणी तकारे। दितः सितः मितः स्थितः । धः

१०८४। ऋाशो वी। (का.मी: ६॥, वा ।१।)।

कितः कातः, गितः गातः। §

१०८५ । श्री वर्ते नित्यं। (मं ६१, वर्ते अह निर्वा १।)। संभितं वर्ते । श

<sup>•</sup> भन्यः कूपः, जघः गृवादेः सनः, एतगोरयंघोरित्ययः। (६।१।२८) सूर्वे वार्त्तिकमः । † प्रक्रवं इति, क्वादी खंसोदने, कर्त्तारे तः, (१०७१) इस्निवेषे, चनेन इस्ले दानालान (१०५२) तस्य दस्य चन। क्री प्रक्रतिरिति । पाणिनिः ६।४।६५ ।

<sup>‡</sup> दी य केंद्रे, षीय नाभी (धीपदेशनिर्देश:), मा इति मास्रक्षं, तेन में खण्मित्रानं, मा कि लि भव्दे, मा खचमाने, मा ख्याच माने क्लोतेषां यहणं। जि ष्ठागितिनित्रभी। एवं दितवान् दिति: दिखा। भणी किं, दाता दातुंदाव-मिलादि। पाणिनि: ७।४।४०।

<sup>§</sup> इटाशी र्रिं: स्थादा भाषी तकारे। की यल्नी, शीय निशाने, (∢०८) भीस्थाने भा,ततः डि:। भाषी किंकार्च। पाणिनि: ৩|৪।৪१।

<sup>¶</sup> भीय निशाने इत्यस्य नित्यं ङि:स्यात् भशी तकारी। व्रते वाची क्रस्थैव भयोग:। "स्यतेरित्वं व्रते नित्यम्" इति वार्तिकम्।

१०८६ | घाञा हि:। (भाजः सा, वि: १।)। धाजो हि: स्यादवी ते परे। हितः। \*

१०८७ | चरफलोऽदुः । (पर-पवः ६।, पत् ।१।, णः१।)। भनयोरकार ७: स्यादगो ते । प्रफुल्तः । वं

१०८८ | दह् दोऽधः । (दन ११, दः ६), पधः ६)। दासंज्ञकस्य धावर्जस्य दत् स्थात् ऋषी ते । दत्तः । ऋधः किं, धीतः । ः

१०८६ । <sup>\*</sup>ग्यचस्त वा । <sup>(ति-घचः प्रा, त</sup>ारा, वा ।रा)। गेरचः परस्याधी दासंज्ञकस्य वा तः स्यादणीते । प्रत्तः प्रदत्तः। §

इच्छाना सिकेऽपि घाली निवारणार्थ: । एवं दितवान्, दिति:, दिला,
 इिवर्स । चाल्र: विं, घेट-घीत: । पाणिन: ०।४।४१।

<sup>†</sup> चर गमने इत्यस्थात् का त्रावलीः क्याचयः, (५५४) वसीऽरस्थेतीनि चव्यवहित-तकाराभावादुकाराभावे चरितः चरितवान् चरित्वा इति भविता । क्रौतु (१०३३) इव्वतिरितीमनिषेधे चनेन चकारस्य चकारे, (२२८) दीवें चूर्तिरिति । जिफला भिदि, (१०७२) इम्निषेधे, चनेन चकारस्य चकारे प्रफुल्तः । एवं फुल्तवान्, फुल्तिः । पाणिनिः ७।४।८८ ।

<sup>‡</sup> दा ख खूनो, दा तुदाने, डुदा अ खि च, दे ड पालने इति चतुर्णां दत्तः, एवं दत्तवान् दत्तिः दस्या। डुदा अ खि दाने इत्यस्य दिश्वसमिति च। दासंज्ञकेति कथनात् दैपधातो: दातमिति। धोत इति घेट पाने इत्यस्य, (६१२) खी-चादेशः। पाणिनिः १०।४।४६।

<sup>§</sup> चध: किं, वे ट पाने इत्यस्य प्रधीत:। चच: किं, निर्देत इत्यादि। पाणिनिः ●।४।४।

१०६० | भें। दा-ते गौच: । (वं: ११, दा-ते थ, गौव: ६।)। नीत्तं । 'इच: किं, प्रत्तं । अ

### १०९१। जन्धाऽदी यपि च।

(जग्ध: १।, भदः ६।, यपि ७।, भारा)।

म्रदो जग्ध:स्थात् म्रणी तेयपि च। जग्दं। गै

१०८२ । मे चादिढे ता: । (च ला, च ।रा, मादिढे ला, ता: रा)।

भादि विहितः को घे स्थान् उभावयोख। प्रकातः कटं सः, प्रकातः कटस्तेन। (१०५१) चेघ द्रति प्रचीणः सः। प्रचीणं प्रचितं तेन, चोणः चितोऽयं तपस्ती, चीणायुः चितायुः प्रजः। ह

अ बाह्यमध्यवित्तेलात् एतदादोनामष्टानां नित्यत्वं। गेरिकी घं:स्थात् दा-स्थान-काति तकारे परे। नोक्तिमित पूर्वेण दास्थाने तकारे स्थलेन नि इत्यस्य दीर्घः। एवं नीत्तिः परीतं अन्त्रित्यादि। पाणिनिः ६। १११४४।

<sup>†</sup> कियापंदलेने व प्युज्यमानस्य भदधाती र्जन्यादेश इत्यं थंः, तेन पैकतच्छुलादी इद्धं भद्रमिति भविता। नग्द्रमिति भवित्तमित्यर्थः, नग्धादेशे, (५०५) तस्य घः, (६४) पूर्वधस्य द। यपि प्रनन्धां। [पाणिनिनते वत्त (पाडी ६५) भरोभरोति मृत्रेण धलीपे कादी नग्ध रैत्यादि रूपमा।] क्वाचि परे भादी नग्धादेशे पश्चात् यपि क्वते सिद्धेऽपि, भव यपौति यदणं, क्वाचः स्थाने यवादेशात् प्राक्त प्रकृतेः किमपि कार्यं न 'स्थादित मृत्वनायं, तेन विसुचित्यादी न कुङ् (२११), प्रविद्यात्यादी न षङ् (१५४), प्रवश्चित्यादी न धङ् (२३०), प्रक्षित्यादी न द (१०५), भाष्ट्रक्य प्रदीक्षित्य च न शक्टी (८१४)। पाणिनः १४।३६।

<sup>‡</sup> चादिभूतं ढं कर्म (किया), चादिढं चादिकिया, कियारभ इति यागत्। स कटं प्रक्रत कर्मसारभ्य वान्, तेन कटः प्रक्रतः कर्मसारभ्य इत्यर्थः। प्रचीच इति चनेन कर्मरिकः, चक्रममेकलात् तिस्यं दीर्घः, ची इति दीर्घानात् (१०५१) तस्याने नः, (१००) चलं। प्रचीचं प्रवितमित्यादि भावदैनाक्षीप्रेषु क्रमेचीदाइरणानि। पाचितिः १४।०१।

# १०६३। गत्मर्थाढ शी स्थास वस जन जू

एभ्यो चे जः स्थात् उभावयोषः। गङ्गां गतः क्वर्णं प्राप्तः, प्रयितः, प्रेषमधिप्रयितो विष्णुः, वैकुण्डमधिष्ठितः, प्रिवसुपा-सितः, हरिदिनसुपोषितः, राममनुजातोऽच्युतः, विष्वमनुजी-णीऽनन्तः, लक्ष्मीमाश्विष्टो सुकुन्दः, यरुड्मधिकंदो गोविन्दः । अ

# '१०६४। भीव्यगत्यदनायीत् डे च । '' अाव्यं-मित-मदनार्थात् ४।, डे थ, च।११)।

नियनार्थात् गत्यर्थात् भीजनार्थाच क्रो डे खात् टभावे घे च।

<sup>\*</sup> नास्ति ट येवां ते घटा: । नत्वर्षाय घटाय श्रीय स्थाय घासव विसंघ जनस जुर्यस्थिषय \kappa इ. च.तनमात् । घे, च, क्राः, इति वयमनुवर्णते । परस्वेणैव सिंदी भव गत्यर्थय इर्ण, गत्यर्थ-प्रान्नप्रवेधीरैक्यात् डाथ्यां कर्त्तरि क्राः स्थात्, परस्**वे** तु कैवलंगल्य शेदिव वतुप्राप्तार्थ। दिति चापवार्वे। ग्रीस्थादी वामकर्म्यकल। देव प्राप्ती पुव-र्वहणं, येन की नापि सक्तर्माक लंडिप कर्त्तार क्षानायोः। गत इति (६०६) सम्लोपः। सब्बें गम्बर्याः चानार्याः प्राप्तार्योसे ति वचनात् प्राप्त इति गत्वर्युत्वादेव कर्त्तरि ताः । एवं स्त्र-चरलपि। प्रयित इति भटलात् कर्त्तरि क्रः, (१०६⊏) गुगः। मधिप्रयित द्रत्यस्य श्रेषनिति, पणिडित दृश्यस्य वैकुष्टनिति च, पश्चिकरचे (२८१) कर्मालं। चिधिष्टत इति (१०८३) ङि:। उपाधित इति घाराधनार्थलात् सकर्माकलं, एवं घोषमध्यासित इत्यादावधिकरचस्य कर्म्यलेऽपि कर्तरिक्तः। उपीषित इत्यस्य इरि-दिनिविति (२८१) कर्यालेऽपि कर्त्तरि कः, (१०६६) इ.स., (६६१) ति:। अनुजातः भनुत्रीर्थः इति चनुपूर्वक्षयीरेतयोः सक्कंकलं, यस प्रसाज्यननादि तदेव कर्मः। जात इति (१०७१) इस्विभेषे, (६५५) इता। कीर्षकति (१०५३) इत्वविषेषे, (६२८) इर्. (२२८) दीर्घै:। माझिट: मधिडढ़ इति च सक्यमेकलेऽपि कर्भरि का:। डढ़ इति (१०५) इस्य टः, (५०५) बस्य च, (४०) क्षस्य ट, (००) ढलोपः पूर्वदीर्घय। पाणिनि: ३।४।७२ ]

#### मुकुन्दस्यासितमिद-मिदं यातं रमापते:। भुक्तमेतद्वन्तस्येत्युचुर्गीप्यो दिदृचव:॥ %

### १०८५। जार्चेच्छार्थ जीच्छीलादेः सित ।

([चा-चर्चा दक्ता]-चर्य-जि-इत्-ग्रीलादे: ५।, सति ६।)।

एभ्यो वर्त्तमाने क्षः स्थात् तेषु । विदितः, पूजितः, वाञ्चितः, इतः, श्रीलितः, —श्रिवोऽनुवर्त्तते । गं

<sup>\*</sup> अवी नियन्तः । भृतस्य भाषां भीत्यं, भैत्यस्य गतिष पदन्य ममाहारे कत् प्रधी यस्य स तकात् । के पित्रकर्ण, पैतारात् हे भावे में च । सुकृत्यस्य ति । सुकृत्यस्य हिष्यस्य हे (कृष्यः) यातं, या ल गतौ पित्रकर्णे कः. इद्मित्यधिकर्षमुक्तः । प्रनत्य कृष्णस्य एतत् (तक्तलं) भृतः भृतः भी वाण-भवयोः पित्रकर्णे कः, एतदिव्यधिकर्णसुक्तः । (सुकृत्यः) दिह्वा । गोष्यः इति कच्च । सर्वव (३०६) कासुकृति कर्त्तरि वष्ठौ । कर्त्ताण वार्चे यथा—सुकृत्येन पीठमध्यासितं, सपुरा यास्य व्याजिकातं सुकृते । भाववाष्यः सुकृत्येन पातितं, यातं, भृक्तमिति । कर्त्तरि वार्चे —सुकृत्येन पातितं, यातं, भृक्तमिति । कर्त्तरि वार्चे —सुकृत्यः पीठे प्रासितः, सपुरा यातः, वार्विकातं भृतं । स्ति । पार्वितिः वार्वे । स्ति वार्चे —सुकृत्यः पातिः, वार्विकातं भृतं । स्ति । पार्वितिः वार्वे । स्वति । पार्वितिः वार्वे । स्ति । स्ति । पार्वितिः वार्वे । स्ति । स्ति । पार्वितिः वार्वे । स्ति । स्त

<sup>†</sup> जा जानं, जायः चर्चा च क्रव्या च जायं क्याः चर्या येषां ते के जिल्लायाः । जिर्नि यस्य स जोत्। श्रील (धादः) चादि यस्य स श्रीलादिः। ततः जायं क्याः यां य जोष सीलादिश्चितं, तथात्। सितः वर्णमानकार्षे, चनीतेऽपि इति वक्तव्यम्। एतत् स्वं कालमानविधायकं, कन्धांदि-वाची तु यथासम्भवं स्थादित्ययः। विक स जाने विदितः जायते इत्ययंः। पृत्र क पृजी पृत्रितः (१०००) जिलीपः, पृत्र्यते इत्ययंः। वाहि काने वाञ्चितः वाञ्चाते इत्ययंः। एषु कर्षाणि कः। जि इत्यीः च क युती, चन्धमं काने वाञ्चितः वाञ्चाते इत्ययंः। एषु कर्षाणि कः। जि इत्यीः च क युती, चन्धमं काने (१०००) कर्नारि तः, (१०००) इन-निवेधः, (५६०) न-लीपः, (५००) तस्य स् , (६०) पृत्रं-धस्य द ;—इतः योततोः इत्ययंः। जिल्लां स्वानः स्वादिः। गवपाठं स्वीलतः, ध्यायते इत्ययंः। चादिवन्दान् जि रच्च पालने स्वितः इत्यादिः। गवपाठं स्वितः, ध्यायते इत्ययंः। तद्ययाः—सीलितो रचितः चानः स्वादिः। गवपाठं स्वितः। च्चयः विवतशोभावभिष्याञ्चत इत्यपि । इष्टनुष्टी तथाः कानकाशोभी संयतीयाती। कष्टसः विवतशोभावभिष्याञ्चत इत्यपि ॥ इष्टनुष्टी तथाः कानकाशोभी संयतीयाती। कष्टसं विवादतीत्याङ्ग्वताः पूर्ववत् स्वातः॥ पावितिः २।२।१००, १०००, च्वारान् स्वीलादि।

## १०६६। ठी-प-म-वत् क्षमु-कानौ।

(ठी-प-म-वत् ।१॥, कसु-कानी १॥)।

धीरेती क्रमात् ह्याः प म-वत् स्तः । बभज्वान्, जजागर्वान् जजारावान्, दुर्यूवान् दिदिवान्, विविध्वान् विविच्छान् । #

### १०६७। वसो ईसेकाज्जिनात इस्।

(वसी: ६।, घस-एकाच्-च्ट-इन-भात: ५।, इस् ।१।)

घस एकाची उत्ते रिन श्रादन्ताच वसी रिम् स्थात्, नान्यतः। जिच्वांन् श्रादिवान् श्रारिवान् ईयिवान् दिस्वान्। 🕆

<sup>\*</sup> ठी-पसे इव ठी-पसवत, तेन घतीते काले कर्तार वार्च परस्वैपदिश्यः क्षसः, धासानेपदिश्यः कानः, उभयपदिश्यो दय स्थातः, क्षसंणि मावे च वार्च कानः स्थादि-त्ययः। क्ष-कानयोः क इत् घगणार्थः, उकारः (२५०) ईवयः। वभज्वानिति भन्तनकाः, (५६०) न-जोपः, (५५८,५६४) दिवादि, वभज्वम् ग्रन्दः, ततः संः, (१८२) उदिचात् गुष्, नसन्तवात् (१६४) दीर्घः, (१८३) स्थानलुप्। एवं स्त्रियां (२५०) उदिचादोप्, (१२८) वस्य जः, वभज्ञपी। जायःकाः, दिलादि, (६८८) वा गुणः, धानार्यवित् कार्यवात्। दिव-कार्यः, (८१४) वस्याने जट्र दिलादि, उद्यूवान, पचे (६४२) वलोपे दिदिवान्। एवं विष्क-कार्यः, (८१४) कस्याने वा म, विविद्यान् विविद्यान्। पाणिनः ३।२।१०६,१०७।

<sup>• †</sup> घस च एका स स्थ इन च भा स तकात्। घस: प्रयक्ष यह पात् एका च इति विले कतेऽपि य एका च सएव या हा: । एतेभ्य एव धातुभ्यो वसु-स्थान इस् ना स्थतः इति नियमः । जिवानिति भद-क्रमः, (६०४) व्यां विति घ्रसारेशे, भनेन इसि, विलादी, (२१०) छङ्-सोपे, (६४) घस्य क, (१११) यलं। पचे भदी विले, (४६४) दस्य लोभे, सभौ, एका च्लादिम, भादिवान्। एवं यज-क्रमः, (६४१,६६१) स्त्रे में सक्षापि जिः, एका च्लादिम ई जिवान्, वस किषवान्। एवं (५०८) तुमसिति स्त्रे लोपे पेचिवान् भेनिवान् इत्यादि। स्र-क्रमः, विलं, (५५८) स्त्रे स्वं कार्यक्ष भ, (६१५) स्त्रस्त्र गुणः, ततः स्रत्यः, भादिवान्। इन गतौ, क्रमः, विलं, (६८१) स्त्रस्य यकारः ई गिवान्। इन गतौ, क्रमः, विलं, (७०१) प्राह्मोरिति भाषोप, दिवान्। पाणिनि, ७११६०।

#### १०६८। इन-गम-दृश-विग्र-विन्दो वा ।

(इन-विन्दः प्रा, वा ।१।)।

एभ्यो वसो रिम् स्यादा। 'जिध्नवान् जघन्वान्, जिम्बान् जगन्वान्, दृहिष्यवान् दृहस्वान्, विविधिवान् विविध्वानं, विवि-दिवान् विविद्यान् । अ

# १०८८। दाखान् साह्वान् मौद्वान्। (११॥)।

एते वस्त्रना निपालनी। 🌵

चक्राणः, जजाग्राणः जजाग्राणः, श्रनूचानः । 🕸

## १९००। की-प-स-वत् ग्रत्ट-ग्रानौ।

(की-प-स-वत्।१॥, भलः भानौ १॥)।

धोरेती क्रमात् क्याः प-म-वत् स्तः । पचन्। §

क्ष इन क्याः, इम्. दिलादि, (२३०) लक्ष्लोपः. (१८८) क्रयः घ, त्रवितान्। पत्ते, (६०८) इना इस्य घः, जघलान्। गमकामः, लङ्नोपे जिम्मिनान्, स्रेले (१०२) मस्याने न, जगलान्। हमःकाः, टहिम्बान, पत्ते दहस्रान्। एवं विग-काः प्रेले क्षयः प कौ लाभे विदक्तमः, वेले स्नुविविदान्। पाणिनिः ७।२।६८. वार्तिकेखाः

<sup>†</sup> दाग्रः ङ्दाने, प्रार्थं व्यानः: दल्यानः इति केचित्। सइ ज ख्यतौ । सिझौ सेचने । एतेम्यः क्यसः । पाणिनिः ६।१।१२ ।

<sup>्</sup>रकानसुदाइण्ति, क्रज धातोः कर्मित कर्माणि वा कानः । जाग्रधातोः कर्माख कानः, (६८८) वा गुणः । चनुत्रधातोः कर्मरि कानः, (७२५) वचारेग्रः, दिलादि, (६५१.६६१) खे भूलस्य च जिः । चनुचानः साङ्गवेदाध्यायौ । पाणिनिः श्रारुण्य ।

<sup>&#</sup>x27; ह की पमे इव की-पमनत्। एतेन वर्षमानकाले कत्तंदि वाच्यं परसीपदिश्यं: श्रहः, चात्रमनेपदिश्यः श्रानः, उभयपित्था इयं स्थात्, एवं कर्माण भावे च वाच्ये सर्वेश्यः श्रानः स्थादिन्यर्थः। श्रिस्तात् रमज्ञाः, पिस्ताभागाच डित्मंज्ञाः। श्रह इत्यस्य च सर इत् (२५७) ईवर्थः। एतयोः प्रयोगे किथाभमाप्ति नीभीति वीध्यः कियायाः प.इ. नाथके विक्र इती च च्यों ती भवतः। यद्या श्रशाना भुक्कैते ययनाः, इसिं

१९०१ । श्वाने ऽतो सन् । (शाने ७, घतः ६१, मन् १९१)। प्रकारस्य सन्स्यात् ग्राने । पचमानः । अ

११८२ | यासो ऽस्य । (ई ।११, पा ।११, पातः ४१, पस ४१)। भासः परस्यास्य भा ई स्थात् । भासीनः । ११

११०३। वेत्ती: श्रातु: क्षासु वीं।
(वेत्ती: श्रा, श्रतु: दा, क्षातु: श्रा, वा रश)।

विदं: परस्य मतुः कासुः स्थादा। विदान् विद्नु। क्ष

## ११०४। प्रितावयस्ताच्छीत्ये शतुः शानः।

(मित्रि-वयस्-ताच्छील्ये ।, मतु: ६।, मान: १।)।

यतुं निन्नानः, कवचं विश्वाणः, भोगं भुद्धानः। §

प्रधान सुचार्ते। पचन इति, जुजी स्पच पाके. श्राटः, (५४१) श्रपः, (५४१) मकार-क्षोपे पचनिर्वेद्दः, ततः सिः, ऋदिस्वान् (१८२) तुण्, (१८३) स्थानलुप्। स्त्रियां (२५०) द्रिप्, (२४५) तुच्, पचन्ती। पाणिनिः ३।२।१२४, १२६।

<sup>#</sup> सनी न इत् चनी। पचमान इति कर्मरि शानः, चनेन मन्। कर्माण विभेच पचमान घोदनः। पाणिनिः ७।२।०२।

<sup>†</sup> चस्र मानस्य। चासीन इति, चास क ल वपवेशने, कर्मरि मान:, (५४१) मप्, तस्य (६७०) लुक्, अनेन चाकारस्य के। पाबिनि: ७।२।८३।

<sup>‡</sup> क्रमुप्रव्ययस्य ब्रह-स्थानजातत्वेन दिलं चरीतत्वस्र न स्थान्। विदानिति विद स्न जाने, जह, तस्य स्थाने क्रमुः, विदम्बन्दः, ततः सिः. (१८२) तुण्, (१५४) दीर्षः, (१८१) स्थानस्तुप्। पत्री विदन्। पाचिनिः शारीहरू।

<sup>§</sup> शक्ति: सामध्ये, बयो यीवनादि, ताचकीत्यं सत्यत्वभावतः । एखयेषु श्रष्ट-स्थाने श्रान: स्थात् । श्रचुं निम्नान देति, इन-श्रद, श्रक्तये श्रष्टस्थाने श्रानः, (६७०) श्रपील्किः (२२०) चङ्-सोपः, (१८८) क्रस्थाने म्नः। कावचं (वन्सं) विभाच दति, स-ग्रद,

## ११०५। तौ-प-म-वत् खत्ट-खमानौ।

(ती-प-स-वत् ।१॥, खळ-स्यनानी १॥) ।

भोरेती क्रमात् त्याः प-म-वर्त्स्तः । करिष्यन् करिष्यमाणः । अ

. १४ घे पादः—द्रश्वादिः ।

### ११०६। जिमाज भूसह रच चर वध वत प्रजनापनपालंक निराक्रात्मद्रपतपच द्रज्यु म्रें।

(जि-पच: ४।, रणु: १।, घे ०।)

एभ्य द्रश्युः स्थात् घे। कारियशुः श्वाजिश्युः भविश्युः सिहश्युः रोचिश्युः चरिश्युः वर्षिश्युः वर्त्तिश्युः प्रजनिश्युः प्रपत्रपिश्युः प्रसङ्गरिश्याः निराकरिश्युः उत्मदिश्युः उत्पतिश्युः उत्पविश्युः। श

योवनश्यसि भर्षे ग्रत्स्थाने भागः, (७२६) द्वादी रे दिः, खे भंकारस्य (५५८) वकारे, (७२८) खे डिंः, (१००) पार्लं। भोगं सुझान दित सुज श्वतः, तत्स्सभावार्षे श्रतस्थाने श्वानः, दशदिवात् अप्,(७५८) नवां नकारे,तस्य (४६) अकारः। पाणिनिः शशशस्य।

<sup>#</sup> भविष्यत्काले कर्निष्परसीपदिभ्यः स्वतः भाकानेपरिभ्यः स्वनानः, सभवपदिभ्यो दयं स्वात्, एवं कर्माण भावे च वाची स्वनानः स्वादित्ययः। स्वतः इत्यस्य ऋ इत् (२५०) देवयः। करिष्यन् इत्यादि, (६१०) इत्। पाणिनः ३।३।१४।

<sup>\*</sup> प्रात् जन प्रजन, सपात चप सपत्रप्, सलम् क सलंक, निरः सा निरा तस्रात् क निराक्त, सद रूपत स्पर्स चितं सद्यतप्रच, उदी सद्यतप्रच उत्तरप्रच। ततः जिद्य आग्रसंख्यादि इन्हें तस्रात्। जिज्ञानः। स्व पूर्श्वस्चादनुवर्ष्यं किवलं तास्कील्यार्थं इन्हः स्थादिति वक्तव्यं। तास्कील्यार्थस्य च (११३२) स्वयंशिवसंप्रादिति पर्यानीव्यधिकारः। तेन, कारियत् ग्रीलसस्यैत्यादि वाक्ये कारियस्पृरित्यादि । भानिस्विरित काश्रिका वितः। पाणिनिः १।२।१३६ — १६८। एतन्प्रते तस्कीलतञ्चमंतत्साधु-कारिषु सर्थेषु ।

**११०७ । व्याक् भूजी:** । <sup>(चक् ११), भू जी: ५०) । श्राभ्यां प्याक् स्थात् चे। भूप्याः जिप्याः । ३०</sup>

१९०८ | ग्लाम्लास्याचि पच परिस्डा: सु:। (ला-परिस्नः प्रा. सु: १)।

ं एभ्यः स्नुः स्नात् घे। ग्लास्नुः स्वास्तुः स्थास्तुः चेणाः पच्णुः परिमार्च्णुः। 🕆

#### ् ११०८। चिप त्रस ग्रंघ ध्रषः क्रुः। (चिप-ध्यः प्रा, क्राः)।

एभ्यः कुः स्थात् घे। चिष्रः चस्नः ग्रन्नः प्रणाः । क

१११०। मृस्याभक्षमगम इन लघ टघ पत प्दो जुकः । (मृ-पदः प्रा, जुकः रा)।

एभ्यो जुका स्थात् चे। प्राक्तः स्थायुकाः भावुकाः कामुकाः गामुकाः चातुकाः लायुकाः वर्षुकाः पातुकाः पादुकाः। §

<sup>•</sup> णुक्तः कित्वात् (१०५३) वृद्यीति इम्निवंधः, गुणाभावधः। पाणिनिः शशास्त्रः, वार्तिकसः।

<sup>†</sup> चैचानिति गुणे, (१११) वलं। पच्चानिति (२११) कुङ् वलं। परिमार्क्युनिति किद्स्वादिनिम्पचे (६८४) वृत्तिः, (१५४) वृङ् (६०२) वस्य कः, वर्लं । अस्य इम्पचे न प्रयोगः। पाणिनिः ३।२।१३६। ''ज्यादेः खः'' इति संचित्रसारे क्रव्यकिपोधादिपारे १६ स्वं।

<sup>‡</sup> क्रुइत्यस्य किस्वात् न गुणः। पाणिनिः ३।२।१४०।

<sup>§</sup> সুকী সিহ্লাণ (५०७) तत्रि:। स्थायक इति (১२४) सन्। घातुक इति (६०१) इस्य घ:, (५०१) इनकाङ्। पाणिनि: १।२।१५४।

# ११११ । भिच-नल्य-क्कट्ट-लुग्ट-ष्टञ: पाक:।

एभ्यः षानाः स्यात् चे। भिचाकी जल्पानी कुटानी लुण्टानी वरानी। \*

# १११२। प्रति गृहि स्पृहि श्रीङ त्रालु:।

एभ्य चातुः स्थात् चे। पतयातुः ग्टहयातुः स्एहयातुः प्रयातुः। 🌵

१९१३। शत सद सि धे दो. तः । (भत-दः ४),कः २।)। एम्बो कः स्थात् वे। शतुः सहः सेकः धाकः दाकः। क्ष

१११८। इसस्दः कारः। (घस-स्ट-भरः ४।, कारः १।)।

एभ्यः ऋरः स्थात् घे। घस्ररः स्वमरः श्रद्धारः । §

# १९१५ । मिद-भास-भञ्जो घुर:।

(सिद-भास-भन्नः ५।, घुरः १।)।

<sup>\*</sup> वानस्य विस्तात् (२५७) ई.प्। पाविनि: ३।२।१५५ ।

<sup>†</sup> पत त् केथ्ये, रुष्ट त् क ख यहे, स्टह त् केप्से, "चयोऽदक्त पुरादयः, श्री क स्व श्यने, (६४१) भालु-वर्जनात् न जेलेंग्यः, गुणवा। पाणिनिः श्राश्यः, वार्तिकचः, पतकाते दय निद्रा तन्द्रा श्वा शति चतुष्टयादिष भानुष्। वीपदेवेन तु (४४६) निद्रादिलात् भालुः शति तिस्ति निवेशितम्।

<sup>‡</sup> घे इत्यस्य प्रथम्-बडणात् दा इति व दासंग्रः, तेन दैप श्रोधने इत्यक्षापि माप्तिः। अनुरिति स्चे ताला-निर्देशात् भदीदस्य त, मनीपादितः।दिति केचित्। पाणिनिः इ।९।१५८। एतन्मते ग्रदधातीः भदुः, श्रमुसुगातसतेरौषादिकः कृत्।

<sup>§</sup> क्षारः कद्रत् च बुखः, सरस्थितिः । पाचिनिः हाशार्द् । °

एभ्यो घरः स्थात् वे। मेदुरः भासुरः भङ्गरः। \*

### १११६। क्टिर-भिद-विद: कुर:।

(क्टिन्भिद-विद: ५।, कुर: १।) ।

एभ्यः कुरः स्थात् घे। किंदुरः भिदुरः विदुरः। १

#### १९१७ । जाग्र यङन्त-यजजपक्ददन्म जनः।

(नाग्र -- दन्भः ५।, ककः. १।)।

एभ्य' जकाः स्थात् घे । जागरूकाः, याृयजूकाः जस्नपूकाः वावदूकाः इन्दर्भूकाः । क्षे

### ११९८। यङम्त-चल पत सऋ वऋ: कि:।

(यङम-वहः ५।, किः १।) ।

एभ्यः किः स्थात् वे । चाचितः पापितः सासिष्टः व्यविष्टः । §

<sup>#</sup> षुर इत्यस्य घ इत् । मजुर इति (१०२) चिति जस्य गः, (५०) नस्यानुस्तारः, (५१) भनुस्तारस्य उट । पाणिनः ३।२।१६१ ।

<sup>†</sup> करका किस्तान गुष:। भव विद: ज्ञानार्थ:। पाणिनिः शशाहर ।

<sup>‡</sup> यजस जपस वटस दन्म च तत्, यङनास तत् यजजपवददन्म चिति, ततः जाग्यस यङन्त-यजजपवददन्भं च तकात्। पुन. पुन. संजतीति यायज्य-धानीः जकः, (७०५) यलीपः। एवं गिर्दतं जपित जञ्जस्यते इति जञ्जपूकः। वाबस्यते वावद्कः। इन्द्रस्तते दन्दम्भकः। एवं भक्त बन्ध मण्ड बल सम धानुभ्यः जकः वक्तस्यः (उचादिषु द्रष्टस्यः)। पाधिनिः ३।२।१६५, १६६। एतन्मते वावद्कः चौद्यादिषः।

<sup>\$</sup> चल काती, पत्न केसी, सक्त किसक ज क च सक्ती इति दर्ग, वह बी प्रापकी, यक्तनेश्य एथ्य इत्यर्थः। चाचल्यतं इत्यादि वाक्यानि। पापितिरिति, (८२६) नीन् वस्त्रेश्यच पत्त्वज गत्यामित्यस्य यक्त्यात्। पत्य केस्ये इत्यस्य नीनीऽकावे पापत्य-धातः, तक्यात् किः, '(२०५) कसाक्षीप इति चक्तार-यक्तारयो खेंगः। वार्तिकम्।

### ११६८। दि आद्रङलीिषनः।

(दि. १।, च ।१।, चात्-ऋ-चङ् लीपिन: ५०)।

भ्रादलात् ऋवणीलात् उङ्कोषिनय किः स्थात् घे, तेषाभ्र दिलं। ददिः चिक्रः जिताः। क

# ११२०। यायाय भास कस स्थेश पिश प्रमदो

वर: । (यायाय-प्रमदः ५।, वर: १।)।

एभ्यो वरः स्थात् घे। यायावरः भास्तरः अस्वरः स्थावरः ईस्तरः पेखरः प्रमदरः। १०

# ११२१। चुरप् सृजीत्रग्रगम सामञ्च।

(चरप् ।१।, सः जि-इन्-नश्-गमः ५।, त ।१।, मः ६।, च ।१।)।

एभ्यः च्हरप् स्थात् वे, मस्य तय। स्वरी जिलरी इतरी नम्बरी गतंरी। इ

अषात् च स्त्य च क्लोपी चिति तमात् । च ङ्लोपिनस (२३०) स्त्रुं दर्भिताः । ददातीति दिदः, तिः, दिलं, (६१०) च संचीति चालीपः । एवं दिभि. जिलंति किरित दितः, विलं, (६१०) च संचीति चालीपः । एवं सितः । एवं सितः । लायते द्वित जिक्कः, दिलं, (२२०) च ङ्लीपः, (४६) नस्य ज । एवं इन - मिनः, गम-मिनः, खन—मिलः, घ म—जितः । पाणितः । ११२१०१, वार्तिकञ्च ।

<sup>†</sup> वक्त यातीति यिङ यायाय घातः, साम्र ङ न दीप्ती, काम न गती, जि हा स्थानि, द्वेश ङ ल ऐयथ्ये, पिश श्रापावयित, प्रपूर्व-सदो भिये जि इवें—एथ्य धलायेः। सायाय घातोः वरः (१.०२१) इम्निविचे, (००५) भकारलीये, (६४२) यलोपः। द्वेषरः इति वरप्रत्ययस्य दन्यादिलान् (१५४) न वङ्। पाणिनिः ३।२।१०५,१०६। एतन्यते पिस दन्यानः। प्रमदर इति पदं कातन्तादर्ग्डीतम्।

<sup>‡</sup> जूरपः किस्तात् (५४२) भगुषः, विस्तात् (२५०) ईप्, विस्तात् (८८२) तन् । सरति भयति एति भक्षति गच्छतीति वाक्यानि । नयरीति (१०३३) इब्दितीरति इन्निवेशः । गखरीति भनेन मस्यतः । वाणिनि ३।२।१६६२,९६४।

नसः। %

### ११२२। हिंस दीप कम्पाजस सिङ कम नमो र:। (हिंस-नमः प्रा, रः १।)।

एस्योः रः स्यात् घे । हिंस्नः दीर्पः कमः अजसः स्नेरः कसः

# ११२३। सन्भिचाशंस उः।

(मन्-भिच-चार्धसः ५।, उः १।)१

एभ्यः उः स्थात् वे। रिप्सः भिचुः त्रायंसः। 🕆

## ् ११२४। विन्दिच्छू। (१॥)।

पतौ निपात्यौ। ंवेत्तीति विन्दुः, इच्छतीति इच्छुः । ‡

# ११२५। खप त्य धृषो ङ्ग्ज्।

(सप-त्व प- धवः ४।, उर्नन् ।१।)।

एभ्यो इन् स्यात् हे।, स्वप्नक् त्रणाक् प्रणक्। § 🐃

# ११२६ । श्वन्द आत: । (श्-वन्तः ४।, बाबः १।)।

श्राभ्यामारः स्थात् घे। यरारः वन्दारः। श

<sup>#</sup> इिनि दिष्यते कायते न जस्यति खयते कामयते नमतीति वाकानि। इसि इत्यादी (१०२२) इम्निषेष:। कास इति (५८२) वारे इति जिङ्गोऽप्राप्तिपचे। पाणिनि: ३।२।१६०।

<sup>†</sup> रत्नुनिच्छति, सन्, (८११) खिलोपः इम् च, (२११) खादैः स-लोपः, (६४) अस्य प, रिष्म इत्यक्षात् छः, (७०५) चकारकीपै रिष्मुः। अचिते अस्तुः, चार्यसर्ते चार्यसुः। पाणिनिः १।२।१६८।

<sup>‡</sup> पाणिनि: शश्रह ।

ई जुर्भा क इत् गुवाभावः, नज्-स्थितिः । स्विति, द्रष्यति, प्रचौति, इति वास्त्रानि, द्यपृथोः (१०३३) रम्मिवेधः, (२११) क्रक्यः पाविनिः ३।२।१०२, वार्त्तिस्यः ।

न प्रवाति वन्द्रते इति धाक्यवयं। पाचिनि, शशाहिक ।

११२७। ऋजुको भिय:। (जुलुको १॥, भियः ५॥)। भीरः भीलुकाः। \*

### ११२८। सृहि गृहि श्रु ह जे राय्य:। (सह - नी: प्रा, पाया १।)।

एभ्य त्रायः स्थात् वि । स्पृहयायः ग्रहयायः त्रवायः द्रायः । जयायः । 🅆

# ११२६। गाँखि माँखि जि जीन नन्दिथ्योऽन्तः।

एभ्योऽन्तः स्थात् घे। गण्डयन्तः मण्डयन्तः जयन्तः जनयन्तः नन्दयन्तः । ‡

# ११३०। स्तनि गदि मदि हृदि दूषे रिह्नु: । (स्ति-द्वे: ४।, रवु: १।)।।

एभ्य इतुः स्यात् घे। स्तनयितुः गदयितुः मदयितुः हृद-यितुः दूषयितुः। §

भीषाता रेती स्थातां चे । उभयोः किल्वात् गुणाभावः । विभेतीति वाक्यं । क्रुकत्रिपि वक्तव्यम् । भीषकः । पाणिनिः श्राश्७४ ।

<sup>†</sup> सप्डत् कीप्से, स्टइत् क उन्यहे, दी भदन पुरादी; सु सुती, ह उन्धादरे, जि नये — एथ्य इत्ययं:। भायीदाङ रणहये,(६४१) भाया-वर्जनात् न कीलाप:। उचादि:।

<sup>‡</sup> गडिंग खें, मडिंक भूषे, जिलये, जनी स्थङ् प्राद्वभावे, टुर्निट संबंधि । चप्र जिवजो: सब्वें ञ्राला: । गण्डयल इत्यादौ, (६४१), चन्त-वर्जनात् न ञेलींप:। गण्यल इति तुपदंसं विप्तसारे हस्यते । खबादि:।

<sup>\$</sup> स्तनत् का गदत् का चाक्रध्यनी, दायदन चुरादी। मदी भिर्य जि इषें, आज्ञाः, घटादिल।त् प्रश्ली मदिः। इत्करीति चाचष्टे वा (५५५) जिः इदिः। इर्द्ध्यी

१९३१ । कृगृजागु: कि: । (कृग्-जागु: ६।, कि: १।) । एभ्य: क्षि: स्थात् घे। कीर्बि: गीर्बि: जाग्टवि: । \*

# १९३२। ख्यं ग्रं वि सं प्राट् भुवी डु:।

ं एभ्यो भुवो हु: स्यात् घे। स्वयमु: यमु: विभु: समु: प्रभु: । 🕆

११३३। त्नुध्यन सुचर पुसह वह दुनो भे।. (ब्-म प्रवन-म्चर-प्-सकः वहः ५१, इतः ११, भे ०१)। एभ्य दत्रः स्थात् भे। स्वित्रं श्रास्त्रं भवित्रं खनित्रं स्वित्रं

चरिचं पवित्रं सहितं वहित्रं । धः
११३४ । वञलनटो ऽघे । (घञ-घन-घनटः १॥, घवे ७।)।

११३८ | घञलनटो ऽघे | (धञ्चन्यन्यः १॥, पवे १॥)। धोरते खुर्नतु वि। प्राकारः, पादः, दासः, उपाध्यायः,

वैज्ञते, जि., गुणे, (৩১৩) भीस्याने ज ज्ञते दृषिः। सन्यित्रिस्यादौ (६४१) धनुः वर्जनात् न जोर्जोपः। चयादिः। तव तु इदिस्थले ছবিঠৃষ্ফते।

<sup>\*</sup> कुग्न विधेषे, गुग्न निगरणे गृगि शब्दे इति इथं, जाय खुलु जागरे। किरतौति कीर्विः, (१०३३) इब्बतेरिति इसिंग्षेष्ठे, (६२८) इर्, (२२८) दीर्घः। एवं गिरति स्टणाति वा गीर्व्वः। जागर्गीति जायविः (६८८) वि-वर्जनात् न गृणः। उषादिः। क्रविः जागविंरिति तु संविष्ठसारः।

<sup>†</sup> डुद्रव्यस डिच्चात् (१२६) टिलोपः । एतत्-पर्यानेषु ताच्छी उद्यार्थाधिकारः । पाणिनिः १।२।१८०, वार्त्तिकचः ।

<sup>‡</sup> लूज गि किदि, ऋ प्रापे, धूज गि कम्पे, खतुज विदारे, तू उन्त स्ती, चर गती भदने भाषारे, पूज गि श्रीभे, सहा कि सह ज उन्ह आती, वहें औं प्रापणे। धे करणवार्षा स्त्यतेऽनेन, भय्येतेऽनेन इत्यादि वाक्यांगि। पाणिनिः १।१।१८४ — १८६। पतकाते विद्यम् तथादिसिद्यम्। देयतायां कर्तार पिवित्रं।

प्रासादः । समाजः, ग्रमः, कामः वामः त्राचामः, त्रमः त्रामः यमः यामः वित्रमः वित्रामः । अ

११३५ | कामावे 5 मी | (क मावे ण, प्रमी १॥)। †

प्रवसः, वधः, करः निलयः समजः मयः लयः। ज्ञानं मानं दानं प्रवेषेनं, वयनं अजनं, दरिद्राणं ग्रयनं । क्ष

# घस्य वर्जनात् संमादि-कारके भावे च वाच्चे इत्यर्थः। 'भावी घालयैः, तियामाचवाचीति यावत्। तियायाच चवस्याइष्टं भवति, तथाच-चवस्य दे तियायाः सः सांध्यता सिद्धता पि । साध्यता त्यादि-वाच्या स्थात् सिद्धता द्रव्यवत् भवेत्। द्रव्यवत्त्वं घञादिः स्थात् योगी लिङ्केन सङ्घया इति। तेन पाकः पाकौ पाकाः इत्यादि। पाणिनः ३।३।१८,१८,५६-८०,११५,१९०। एतन्प्रते चच्, व्यप् = चल। त्युट = चनट।

घञी घकारः (८०२) घजी कार्यः, अकारः (५००) ब्रह्मयः । यथा पाकः भाग इत्यादि । भाकी खकारः कातत्वादानुयाथी । भनटष्टकार (२५०) इंबर्धः । प्राकार इत्यादि, प्रकर्षेण कियते ऽसी, क्यांण घञ, ब्रह्मः । प्रस्य दीर्घविधानात् घञतान्धातौ परे कचिद्रपसगस्य दीर्घवं स्थादिति स्चितं । तथाच — चपसगस्य दीर्घवं किप्चारः वै कंचित् भवेदिति प्राचः, ("उपसगस्य घञि भमनुष्ये बहुलम्" इति पाणिनिः (६।३।१२२), सनुष्यभिन्नं इति किं, निषादः ।) यथा—प्राद्धः नीहारः भौवारः प्रतीकारः प्रतीकारः प्रतीकारः स्वीसारः, किंपि परीतत् नैकन् (१०४२,१०४६ स्वटीका द्रष्ट्या) इत्यादि ।

पद्यते ऽनेनिति पादः, दाखते ऽष्मै दासः, छपेत्य भधीयते उद्यान् छपाध्यायः, प्रसीदिन्त (मनांभि) भक्षिन् प्रासादः इति कारकीदाइरणानि । भावे यथा, समक्षनं समाजः समुदः, (५८६) घज वर्जनात् न वी-भादेशः । श्रमनं श्रमः, घिज हसी, (७४४) जनविति इस्तः । काम इति (५८२) वारे इति जिडोऽपाति-पचे घिज हसी, जनवित्याय वर्जनात् न इस्तः, एवं वामः भाचामः । भाग यम विश्वमां वा इस्ति भागः स्थादि ।

† पूर्व्यम् व चलादयः कर्गरि न स्युरित्युकापि, चन स्वे चनी सर्व्यकारकेषु भावे च स्युरित्युक्तवता, प्रयोगानुसारेच कचिन् कर्मर्याप स्युरिति स्चितं। यथाः चिक्र कन्नतीति रोगः, चितसरतीति चतीसार इत्यादि । चन्यम पूर्व्यन्वे संप्रायां, चन चसंज्ञायानिति । पाचिनिः शशरुरु ।

‡ चिल चदाघरित, प्रात्तीति प्रघस:, (६०३) चदी घसादेश:। इनमं वध:, (६०८) इनी वधादेश:। क्रियते ऽनेन कर:। निलीयते ऽक्षिम् निलयः, (७४५)

१९३६ | ष्ठीवन-सीवने वा । (शीवन-सीवने १॥, वा ।१।)। एते निपात्ये वा । पत्ते शेवनं सेवनं । \*

# ११३७। मुण् लभो ऽनंकदु:सार्गे: खल्घञो:।

(सुण्।१ः, लभः ६।, भन्-एक-दुः-धोः ५।, गेः ५।, खल्-घञोः ৩॥) ।

. केवल दु:सुवर्जात् गेः परस्य सभो सुण् स्यात् खिल घिज च। प्रतस्य:। यन्यच दुर्जाभः। एकेति किं, य्रतिदुर्लभः। 🕆

## . ११३८। खदैधावीद हिमस्रय प्रस्रय स्मार स्माल राग काय निकायाकायाः। (१॥)।

एते घञन्ता निपात्यन्ते । स्यदी वेगः । एध इर्धाः । अवोद अवक्कोदः । हिमययः हिमयस्यनं । प्रययः प्रयत्यनं । स्फारः

भाववर्जनातुन ङा। सलजनं धमजः, (५८६) भाववर्जनात्न वी-भादेशः। डुनि छन चेपे मी जगवधे इति द्वास्यां भावे भाव सयः, (०४५) भाववर्जनात ङा। एवं ली ङ्य भी • स्थिति, लयनं लयः। भाग्य्या, जायते इति भावं ऽन्य्यानं सा-स्वरूपाणां तिस्यो थ (०४५) ङादेशे मानं। दा-स्वरूपाणां दीडस्य (०४६) ङादेशे दानं। प्रविपनसिति (८६८) विपवर्जनात् न भावं। भाज-भन्य् (५८६) विकल्पेन वी-भादेशे वयवं भजनं। दिन्द्राणिनति (००२) भानभजनात् भालोपः। भी ङ साम्यने भ्रयनं। कारके भन्य् यथा — कियते ६नेनेति केदनः खदः, वस्त्रीरस्थादि।

ष्टिनु निरसने, किया तसुसन्तभी एतयी भावि ज्ञिट दीवी वा निपास्तते, पवे गुण:। "छित्तिवीदीविध" इति चन्द्रस्त्रम्। एषीदशदिवादिति पाणिनीयाः।

<sup>†</sup> एकी (पश्चितीथी) चती दुःस् चित एकदुस्, न विद्यते एकदुःस् यच सीऽनेक-दुसुसस्थात् । सुची च इत् पत्थाचः परः छकारधिक्राधेः, मृन्छितिः । प्रलचः इति चित्र चनेन सुष्। केवल-दुःसुवर्जनात् दुर्लामः, एवं सुलाभः । चितदुर्लभः इत्यचन केवलदुः । (७४१) तुष्रघद्वयनेन सिद्वेऽपि एतदिथानं विवसाये । पारिपनिः भाराह्म, ६०।

स्कीरणं। स्काल: स्कीलनं। रज्यतेऽनेनेति राग:। कायी टेह:। निकायी निवास:। श्राकायियति:। \*

### ११३६। खनो डं-डरेक्नेकवकाः।

(खन: ५१, ड-डर-द्रक-द्रकवका: १॥)।

भाख: ग्राखर: ग्राखनिक: श्राखनिकवक: । 🌵

### ११४०। व्याप्ती भावे णिन:।

(व्याप्तौ ७।, भावे ७।, विनः १।)।

धोर्भावे णिनः स्थात् व्याप्तौ सत्यां। णिनाक्तात् सार्थे णैः। साराविणं वर्त्तते। अ

# ११८१। व्यती हारे गन्स्ती।

(व्यतीहारे ७।, षन् ।१।, स्त्री ।१।)।

<sup>\*</sup> सम्दृष्ड व्ल चरणे स्वदः, विगादन्यन सम्दः। जि इत्वीष्ट युती चिशः काष्ठं, भन्यन इत्वः। भनपूत्रं उन्द्धी क्षेत्रे भनोदः, भनादन्यन उन्दः प्रीन्दः। यस्य गमीने, हिमस्य यस्य नं हिमयथः प्रयस्य गम्य प्रयस्य माने, हिमस्य यस्य नं हिमयथः प्रयस्य गम्य प्रयस्य प्रयस्य । स्कृर स्कृतः चिम्रस्य स्वारः, स्कृतः । स्कृतः प्रयस्य माने प्रयस्य स्वारः, स्कृतः । स्कृतः स्कृतः प्रयाने स्वारः स्कृतः । स्वारः स्कृतः स्कृतः स्कृतः । स्वारः स्वारः स्कृतः । स्वारः स्कृतः । स्वारः स्वारः । स्वारः स्वारः । स्वारः स्वारः । स्वारः निवारः स्वारः । स्वारः । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । । स्वारः । । स्वारः । । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । स्वारः । । स्वरः । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । स्वारः । । स्वरः । । । स्वरः । । स्वरः । । । । स्वरः ।

<sup>†</sup> खान धातीः उडर इका इकावका एते स्युकाभावे इत्यर्थः । उडरशी डिलात् टिलोपः । वार्त्तिकामः।

<sup>‡ ि</sup>षनस्य गइत् इन्हार्थः। संपूर्वकल ध्वनीभावे चिने, इन्हीं, संराविण इति स्थिते, (४३३)स्वार्थेची, (४१६) चित्ते विरिति चाटाचो इन्हीं, (२५८) ययो लें।प इत्य-कार-सोपे, सांराविषं, वक्षनां समवेतशस्ट इत्यथे:। पाणिनिः ३। इपे १५, ५,।४।१५,।

धोर्भावे चन् स्थात् व्यती हारे, चनन्तात् खार्थे चाः, तदन्तय स्तियां। व्यावहारी। \*

# १९८२ । दिताऽयुभी व । (द्वितः था, षष्टाः ११, भावे कृ)।

. टुकारेती घोरघुः स्यात् भावे। वेषयुः । 🕂

# १९४३ । डितस्तज्जे निमक । व (ड्वितः ४।, तळी २), विमक् १।)।

डुकारेत स्त्रिमक् स्यात्ध्वर्धातिष्यत्रे। करणाज्ञातं क्रतिमं।\$

### १९४४। स्वप रच्चयत प्रच्छ विच्छ याच यजो नङ्भावे न जि:।

(खप- यजः, धा, नङ् ।१।, भावे था, न ।१।, निः १।) ।

णनी णकारी तदार्थ:, दल्यनकारसु (१०००) दुनीमृज्यलाहीति चप्रत्ययेन सह प्रभेदार्थ: तत्पत्तच (४२०) श्रीर्यमदानीत्यव ध्यतः। भकार-स्थित:। परस्परः व्यवद्वरणं दति वाकी व्यावहारी, व्यव-इट-णन्, (५००) वर्षत्रः, व्यवहार दति स्थिते, (४३३) खार्थे था:, (४१०) शीर्धन इत्यत्र शननतवर्जनात् यकारस्य न इम, (४१६) भादाची वृद्धिः, (२५८) अफारलीपः, (२५७) विस्तादीप्, पुनः भकारसीपः। एवं यरस्यर-व्याक्रीशमं व्याक्रीशीयादि। पाणिनिः शश्वाश्व ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

<sup>†</sup> टुप्रत्यस्य सर्दिन् तस्त्रात्। प्रथम् योगात् स्थतीहारस्य स्त्री प्रतस्य प नानुवृत्ति:। वेपनं वेपणु:। एवं वसधु: दवधु: साजधुरिखादि। पाचिनि: ३।३।८८

<sup>‡</sup> डुद्रत्यस्य स ड्वित्तसात्। तसात् (धालर्थान्) नातं तस्त्रं (೭೭७) उपस्थर्यः सिसं, तिसिन्। डुक अ इस्यक्षान् तिमक्, किस्वादगुणे क्रथिमं, एवं डुढाड दिविमं (१०८८) दास्थाने दन्, जुधा अ (१०८६) दिविमं, खुपच व पिकानं, खुवर छप्तिमं, दुभः ज्यन्तिममित्यादि । पाषिनिः ३११/८८, ४।४।२० ।

एभ्यो नङ्स्यात् भावे, न च जि:। स्तप्नः रक्ताः यतः प्रश्नः विश्नः याज्ञा यज्ञः। ॥

११८५ | किहैं। दिनारों: । (कि: १), द ५।, पन्तर्नी: ५।)। अन्तरों गेव परात् छा-संज्ञकात् कि: स्थात् भाते । अन्तर्किः आदि: । १

१९८६ | ढाड्डे | (डाग प्रा, डिंश)। ढात् परात् दः किः स्थात् डे। वारिधिः पयोनिधिः । ही

११४७ | ति: स्व्यव् । (कि रा, खी । रा, अवे ०।)। धी: ति: स्थात् न तु चे, तदन्तय खित्यां। किति: बुढि: मिति: स्मृति: प्रकृति:। (१०८२) द्वादे: स्वः तौ चेति। प्रद्वत्तिः, स्रृति: फुल्ति:। §

<sup>•</sup> नकी डिचात् गुणाभावः, निस्थितः। निर्मिति निर्धयात् हिंदशे पह-स्वपायीरिति प्राप्तस्य नेनिषेषः। प्रत्रा, विद्यः सभयव (८१४) की. प्रदाविति सन्य प्राः। याच्ञा इति (४६) नस्य जः, घिभधानान् स्वीतं, (२४९) त्राप्। यज्ञ इति (४६) नस्य जः। एषुः (१०३३) इव्वतेनिति इस्निष्धः। पाणिनिः ३।३।८०,८१।

<sup>+</sup> भन्तर्डानं भन्तर्डिः, भादानं भादिः, वित्यध्दगुणे, (६१०) उसैचीति त्रालीपः। पाणिनिः ३।३।६२, वार्त्तिस्य ।

<sup>‡</sup> उद्भिधकरणवार्ष्यः। वारिधीयतेऽिकान्, पयोः निधीयतेऽिकान् इति वाक्यद्वयं। पाणिनि: ३।३।८३।

<sup>§</sup> घः कर्चा, तस्त्र वर्जनात् कर्चृभितः कारके भावे च वाच्ये दल्यं। क्रियनेऽसी द्रति कर्म्माय, करणमिति भावे वा क्रितिः । बुध्यते इतया इति कर्णे, वीधननिति भावे वा बुद्धिः, (५७५) तस्त्र धः, (६७) धस्य द । मननं मनिः, (६०६) जम्लीपः । क्यरचंक्यृतिः । प्रक्रियते इतया करणे प्रक्रतिः । प्रद्वादनं प्रव्वतिः, (१०१३) इत्र्वते-

# ११8८। कृ गृ ज्याग्लाहालादेनि:।

(कु--- खादे: ४।, नि: १।) ।

एभ्य: परस्याः क्ते निः स्थात् । कीणिः गीणिः ज्यानिः ग्लानिः हानिः लूनिः पूर्षिः । \*

११८ । साति हिति यूति जूति। (१००)। स्यति-हिनोति-यौति-जवतीना-मेते स्वन्ता निपात्यन्ते। पे

### ्११५०। शौ वज यज विद खास मन चर भ्राट्येन समज निपत निषदः क्यप्।

(भी---निषद: ५), काप्।१।)।

एभ्यो भावे काप् स्थात् तदन्तय स्त्रियां। यया व्रज्या इच्या िया सुला त्रास्था मन्या चर्या भत्या त्रटाव्या इत्या समज्या निपत्या√निषद्या।'ं ं '

रितोम्निवेधैं: (प्रह्नितितिति सिडान्तकौसुदी) । भूयते ऽनया भूतिः संन्यक्तिः, भवन-मिति वा, (१०५३) वृद्यीति इम्निवेधः । फलनं फुल्तिः, (१०८०) चरफलाऽदुरिति सकारस्य छः । पाबिनिः ६।३।८७ ।

<sup>•</sup> सूचादि यस स लादिः, कृष गृष ज्याय ग्लाय हाय लादिष, समाहारे तसात्। लादिष (७६६) सृष्टोकायां द्रष्टव्यः। कीर्णिरित, कीः स्थाने निः (१०५१) द्रम्निषेषः, (६२८) ऋष्याने दर्, (१२८) दोषः। एवं गीर्णः। ज्यानिरित्यत्र कीः स्थानिवस्तास्त्रीकारात् (६६१) न निः। हानिरिति हा-ङ धातोः कीः स्थानि निः, (६१२) दामागैहाक दित हान-यहणात् न छो। ("चो हान् हानिरपचयः" दित त संवितसारः)। लूनिरिति (१०५३) द्रम्निषेषः। पूर्णिरिति पृधातोः। पूर्णिरिति त पुप्र-धातोरेन। सुपर्य संवितसारे च तु पृथातोः पूर्णिरित । उपादिः, वार्णिकषः।

<sup>†</sup> सीय नाशं, हिन वर्डने गती, यु ल नियणे, जु गती, एवानेते प्रयोगा इथ्यथं:। साति स्थित, (१०८५) दोषोमास्थां किरितिन जि:। पाणिनि: १।३।८०।

<sup>।</sup> भव, सूर्व भावे इति नीका बत्ती भावे इति व्याख्यानात् प्रयोगानुसारिस

#### ११५१ | कु: श्या (कु: धा, य: १।, च ।१।)।

करोतेः गःस्यात् काप्च, भावे, सच स्त्रियां। क्रिया, क्रत्या। अ

१९५२ | सृ-जागुर्धः । (स्-जागुः प्रा, यः रे।)। श्राभ्यां यः स्थात् भावे, सच स्त्रियां । परिसर्था जागर्था । क

११५३। ग्रंस्याद:। (शंम् लात् ४।, भ: १।)।

त्राभ्यामः स्थात् भावे, सच्•ित्वां। प्रग्रंसा, दिहचा त्रटाटा कण्डूया | ः • • • •

कर्नुभिन्ने कारकेऽपि स्यात्, यथा, भिनेऽस्यामिति अधिकारणे भ्रत्या खुट्टादिः, भ्रायनिमिति भावे वा, क्यप्, (८१५) भ्रोडिंगे उत्यः, स्त्रीलात् (१४८) आप् । तज्ञनं त्रत्या । ध्वनां इत्या, (६६१) जि । विटत्यनया इति करणवार्चे विद्या, विदनं (ज्ञानं) इति वा । भवनं (यज्ञनं) मृत्या, (६८२) तन् । भागेनं आस्या अन्यते ऽनया सन्या (पथाद्यीवाभिरा), मननिमिति वा । चरणं (आचरणं) चर्या । भरणं (पीषणं) भत्या । चट-यंङ्, घटाद्यभातोः काप् (९०५) इमालोप इति क्रमञ्चः अकौर-यकारयी-र्णेषः प्रदाद्या मृह्मं नर्षे । एति भन्या, भयनं वा, इत्या । समजन्ति (मङ्क्ति) भस्यामिति समज्या, सभा, समजनिति वा । (५८६) कैयप्वर्जनात् न वी-भादिशः । निपतत्त्यस्यामिति निपत्यां, पिक्तिला भूमिः । भिवीदन्यस्यामिति निषद्या, क्रयविकास-भूमिः । पाणिनिः इ। इ।६८८,६८ वार्त्तिकञ्च ।

<sup>\*</sup> म इत् र-संज्ञः, अकार-स्थितिः । जःमः, (भाववाकः) (८२१) र-तनोरितिः यक्, (६२०) चत् रिः, स्तियामाप्, किया । कापि च, गुणाभावे, (८८२) तन्, क्रत्या । अत्र चकारेण कोरपि ससुद्ययात् कृतिः इति च । पाणिनिः ३।३।२००।

<sup>+</sup> परिसरणं परिसर्थां, परिपूर्वसैव प्रयोगः । जागरणं जागर्या । वार्त्तिकस् | ‡ श्रन्स च त्ययेति श्रंत्यं तथात् । त्यः प्रत्ययानः । प्रशंसनं प्रशंसाः । हशःसन्, (१५४) षङ् (६०२) षस्र कः, दिहत धातीः च प्रत्ययः, (५४३) पूर्वाकार-लोपः, दिहत्या । एवं चिकित्सा इत्यादि । श्रटाटा इति श्रटश्यङ्, श्रटाख्यकातोः

१९५८। सेम्कात् सरोः। (क्षेमकात् ४), करोः ४।।।
यस्मात् को विह्नितः सेम् स सेम्कः, तस्मात् कमतो भीः श्रः
स्थात् भावे, सच स्त्रियां। ईक्षां जागरा। सेम्क्षात् िकं,
नीतिः राद्धः। कमतः किं, पत्तिः। अ

११५५ । तुलेच्छारा तारा अारा कारा हारा गीधा लेखा रेखा चूड़ा:। (१॥) । एते क्रान्ता निपालनी । चोदना चूड़ा । ११

११५६। भौषि चिन्ति पूजि कथि कुम्बि चर्चि स्पृह्ति तोलि दोलि षिट् भिदाद्यात्वर्घटादे क्ः । (भौष - भावर्षटादः ४।, ७ः १।)।

मः, (७०५) प्रकार यकार्यो लेंग्यः । कल्डूया इति कल्डूग्रन्दात् (८५४) क्यः, कल्डूय घातीः मः । मनः परत्वात् (७०५) न भकार-यकार-जीपः । एवं च्यतीया गीपाया इत्यादि । पाणिनिः ३।३।१०२ । ''श्रंक्षिप्रत्ययदः" इति कातन्त्रे कृत्सुपभ्रमे पादे ।

इसा सड वर्तते यः स सेम्, सेम् क्ती यक्षात् स संम्कलस्यात्। सेमक्रात् गुर्वचरयुक्तात् घातीः त्रः स्थादित्ययेः। देउनं ईद्वा, जागरणं जागरा। कि कृते ईदितं जागरितं। नयनं, नीयते उनया इति वा, नीतिः; राघनं राडिः। की कृति नीतं राष्ट्रं। पत्तिरिति पत-क्तिः, क्रं पतिर्तामति। पाणिनिः ३।३।१०३, वार्तिकेषाः।

<sup>+</sup> तुल घाताः, तीलयत्वनया तुला परिभाषदण्डः । इय घाती-रिच्छा । इर— घारा कुरिका । तू—तारा नचत्रं, छञ्जारकारियो भगक्ती च । ध—घारा द्रवद्रव्यपतनं, ब्रह्मादिपतनं, खड्गादि निधितस्यलं, समृहः. प्रकारय । कू—कारा वस्त्रनालयः । इर—इरा इर्षां, हारय । गुध—गोधा अङ्गुलिनं, गोधिका च । लिख—लेखा लिखनं, लकारस्य रेफे रेखा च भैगो । स्ट-सृष्टा, चोटना प्रेरणा इत्यर्थः । पाणिनिः ३।३।१०१,१०४ । तुखाश्रद्रसृष्ट्यक् सिद्धः ।

एभ्यो भावे: ङ: स्थात्, सच स्त्रियां। भीषा चिन्ता पूजा कथा कुम्बा चर्ची स्पृहा तीला दीला, पचा, भिदा किदा गुचा विदा चिपा जना पीड़ा सरा वसा रुजा, घटा व्यथा लगा 🕸

# ११५७। चाता ऽन्तः खर्गे: । (भातः ४।, भन्तर्यत्गे: ४।)।

णभ्यः परादादन्तात् ङः स्थात्, सच स्त्रियां । अन्तर्दा अदा. संज्ञा प्रमाः। 🕆

### ११५८। ञी-िष स्रन्यि ग्रन्थि वेत्ति वन्हासी

ऽनः। (জি- श्रासः ५।, श्रनः १।)।

एभ्यो इनः स्थात् सच स्त्रियां।

<sup>\*</sup> ष इत् यस्य स षित्। भिद भादि र्यस्य स भिदादि:। भावर तरपर्यनः, स चासी घटादिशति त्रालरघटादि:। ततः, भीषिय चिलियेणादि इन्हें तस्मात्। भीष्यादि दीलि-पर्यन्ता नव त्रान्ता:। वितृगणपाठ मूर्जन्यवकारत् धातु:। भिदादि र्गणः । उत्तरस्य उत्तरं, भकारस्थिति । भी जि, भी वि— उत्तः, (६४१) जेलीपः, (२४८) भाष, भीवा। एवं चिना इलादि। पचा इति जुजी वृपच पाने, विस्तात् छ:। एवं सञा समा क्यादि। भिटादि यंथा, भिटा किटा गुडा विदा चिपा एषु जिल्लात् न गुण:। जना इति (२३०) इनगर्भत्यत्र ज्वर्जनात् न छङ्-स्रोप:। सरा इति (६१८) दशीरिति गुण:। भालर्घटादि र्यथा, घटा व्यथा लारा। एवं जुलरा, भय भया, चप चपा, खज्जा खज्जा, नंध मेधा, वप वपा, कप क्तपा इत्यादय:। पाचिनि: १।१।१०४,१०५। भीषि इत्यारभ्य दोलि इत्यत: सब्दे क्रसिकं कातन्त्रम्।

<sup>🕇</sup> चलर्धानं चलर्जा, एवं अद्धा, अत् इत्यव्यर्थ। संज्ञायतेऽनया संज्ञा नाम। प्रभीयतेऽनया प्रमाणमिति वा प्रमा। एषु (६१०) उन्सेचीति आः-सोपे, स्त्रोलादापः। पाणिनः ३।३।१०६, वार्त्तिकच ।

कारणा ईषणा यत्यना ग्रत्यना वेट्ना वन्दना घासना। 🕸

१९५६ । प्रश्नाख्याने िषः । (प्रय-माख्याने ०।, षिः १।)।
प्रश्ने भाख्याने च धी िषः स्थात्, सच स्त्रियां। कां कारिमकार्षीः, सर्वीं कारिमकार्षे। पं (

# ११६०। नजो ज्याक्रोगे स्ती।

्नञ: प्रा, व्यनि ।१।, व्याक्षीधे ७।, स्त्री ।१।) ।

नजः.परात् धी रनिः स्यात्, त्राक्षीमे, सच स्तियां। श्रजीवनिस्तवं भूयात्, अप्रयाणिः। 🕸

# ११६१। ईषत्-दु:सा: खल् भावे हे।

(देवत्-दुर्-सी: ५।, खल् ।१।, भाव ७।, दे ०।)।

एभ्यः परात् भीः खल् स्थात् भावे ढे च । ईषदाकाभृवं भवता, दुराकाभृवं भवता । ईषत्करः कट-स्वया, दुष्करः सुकरः । §

<sup>\* ि</sup>ज्ञ जीतः, जिय देषिथेत्यादि इन्दः। कारि—चनः कारणा इत्यादि। एषु (६४१) ञेखेँ।पः। पाणिनिः, ३।३१००, वार्त्तिकचः। ''द्रपेरनिच्छार्थस्य'' इति वार्त्तिकी तु इषघातीः चन्त्रपणा। कातन्त्रे तु देषिधातुर्त्तिखतः।

<sup>†</sup> चि इत्यस्य च इत् बद्धार्थः, इ-स्थितिः। क-चिः, (५००) वृद्धिः, कारिः कार्यः भित्यर्थः, चकार्थः लक्षिति प्रत्रः, चकार्यं चहमिति श्रेषः। प्रत्रे, चाव्यभि (उत्तरदाने) च उदाहरणदयं। पाणिनिः ३।३।४१०। एतव्यति विभाषा। विभाषायहणात् पर्च यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति, क्षियां क्षत्यां क्षतिं वा।

<sup>‡</sup> भ-जीव-भनि: भजीविन:, भ-प-या भनि: भप्रयापि: (८६८) नीऽच इति खलं। स्यधिकारिऽपि स्त्रीय इषं स्यधिकारिन वृत्त्ययं। भाकीशे कि, भक्रतिसस्य घटस्य। पाणिनि: ३।३।११२।

<sup>§</sup> खलः खःली इती, चनारस्थितिः। एवामव्ययलान् (१०१४) खिन्कार्याः भावेऽपि, ईपन्दुःसीः परान् धातीः खल्विधानसामर्थान् चाक्यादिश्रव्यवधानेऽपि

### ११६२। आतो उनो उदिरद्र:।

(भात: ५।, भन: १।, भदरिद्र: ५।)।

दरिद्रावर्जादादन्ता-दीषष्टुःस्गेः परात् श्रनः स्थात् भावे टे च। ईषत्पानः दुष्पानः सुपानः। श्रदरिद्रः किं, ईषहरिद्रः। \*

# ११६३। देश शास युध धष स्वाे वा।

(हम---स्षः ५१, वा ।१।)।

र्देषत् दुः सोः परेभ्य एस्यो ऽनः स्यात् भावे दे च वा । सुदर्शनः सुदर्भः, दुःयासनः दुःयासः, दुर्योधनः दुर्योधः, सुधर्षणः सुधर्षः, देवसमर्षणः देवसमर्थः । १०

### ११६४ । तादथ्य चतुम्। (नादधं ७।, चतुम् ।१।)।

#### भी- बतुम् स्थात् तादर्थें। क्रणां द्रष्टुं याति । 🕸

स्थादिति, तेन, ईषदाकान भूयते इति वाकी ईषदाकाभव्दात् भूषाती भवि खल्, गुणः, खिल्लात् भाकास्य मन् ईषदाकाभवं, एवं दुराकाभवं। ईषद्वार्शीकायतेऽसी ईषत्कारः, एवं दुःखेन क्रियतेऽसी, सुखेन क्षियतेऽसी, एव भव्ययलात् न मन्। पाणिनिः ३।३।१२६।

- ईषत् पौयते ऽसी, दुःखेन पौथते ऽसी, सुखेन पौयते ऽसी, एषु कर्माण चन: ।
   ईषत् दिस्द्रायते इति पुर्व्वेण भावे खल, (७०२) दिस्द्र चालीप:। पाणिनः शशास्त्र ।
- † सुखेन दृष्यते ऽसी, भन: सुदर्भन:, पर्च खल सुदर्भ:। दुःखेन भिष्यतेऽसी दुःश्वासन: दुःशास:। दुःखेन युष्यते ऽसी, दुंधासन: दुर्थोधः। एवं सुखेन ध्र्यते ऽसी, दूंधत् सृद्यते ऽसी,
- ‡ स घालयं:, स चासी चर्यः प्रयोजनश्वित तदर्थः, तस्य भावसादय्ये तिवान्।
  यस्य धातीरर्थः चन-धालर्थस्य प्रयोजनं भवित तस्यात् धातोः चतुम् स्यान्, च इत्
  चस्ययं, तुम्-स्थितिः। चन भवि वाची भविष्यत्वत्तत्वे चित बीष्यं। द्रष्टुनिति
  हय-तुम्, (६०४) च्हकारस्य र, (१५३) वक्, (४०) तस्थाने ट। चन हम धातोर्थः
  या-धालर्थस्य प्रयोजनं। क्रिययोरिककर्नृत्वे सस्येव चतुम् स्थात्, तेन विग्नं भोक्तं
  निम नायते इति न स्थात्, भोजनाय निमन्तयते इत्येव स्थात्। प्राणिनः श्रारप्रप्रा

### ११६५। क्ताच्वा निषेधे ऽलं-खलुना।

(क्वाच् ।१।, वा ।१।, निषेधे ७।, भलं-खलुना ३।) ।

निषेधार्थयोरलं खल्बोर्योगे घोः क्वाच् स्यादा भावे। अलं दल्वा अलं दानेन, खलु पीला खलु पानेन। \*

# ११६६। पूर्वकाले। (का)

पूर्विस्मिन् काले स्थितात् धीः क्वाच् स्थात्। विशां नला स्तीति। १

# '११६७। न नित् स्वन्दसन्दः।

(न । १।, कित्। १।, स्कन्द-स्थन्द: ५।)।

#### कान्वा स्थन्वा । 🕸

क्षाच यकारोऽव्ययार्थः, फ इत गुणाभावः, ला-स्थितः। . चलं दत्ता दानं निषिद्वित्तर्यर्थः, (१०८८) दास्थाने दत-चार्दभः, पत्ते दानेन (२८८) सहवारणंनित त्वतीया। खलुपौला, पानं निषिद्वित्तर्यथः (६१२) दामा इति ङौ। पाणिनिः ३।४।१८८।

<sup>†</sup> यदा कत्ती कियाइयं कियात्रयं वा करीति तदा परिक्रयिपेत्रया पूर्विसिन् काले वर्त्तमानात् धातीः भावे क्वाच् स्यादिर्स्थयः। विश्वं नता सौतीति स्ति-क्रियायाः पूर्व्यकालं वर्त्तमानात् नमःधातोः क्वाच् (६०६) जन्लोपः। नमति च स्वौति च द्रत्यादौ समकाललात् न स्थात्। भ्रचापि क्रियाधाःमेकक भृत्वे एव क्वाच् स्थादिति। पुत्रं टहास्यं भवतीत्यादौ तु स्थितस्थेत्यध्याद्वादारेक कर्त्त्वं। भनन-क्रत्य पतित्, सुखं व्यादाय खपिति द्रत्यादौ तु पूर्वकाल विवचयेति वक्तव्यं। पाणिनिः १।४।११।

<sup>‡</sup> आध्यां परः काच् किक्र स्थान् । काचः कित्त्वनिषेधसः फर्लं (५६०) इसुड्न इति नजीपाभावः । स्कल्वा इति भौदित्वादिम् निषेधः, स्थन्वा इति किट्न्लादिमी विकल्पपथे उदाइरणं । अभयन चथी यवैक्षवर्गीया भध्यमक्षत्र कृष्यते इति दःलीपः । एताध्यां काष् एव कित्त्वनिषेधः, काष-स्थानजातस्य यपसु कित्त्वनिषेति, तेन प्रस्तय प्रस्यय । पाणिनिः दाध। इरे ।

### ११६८। सेमऽत्तुघ कुष क्रिय गुघ खड़ स्टर वट वस ग्रहः। (निम्।१५ प्रतुष न्यहः ॥)।

धोः पर इम्सहितः क्वाच् किन्नस्यात्, नतु चुधादेः।. ग्रायित्वा। सेम् किं, युत्वा। चुधादेः किं, चुधित्वा। अ

# ११६८। हष स्व स्व वज्य जुज्जुतो वा । ·

एभ्यः सेम् क्वाच् कित्र स्थादा। तर्षिला मर्षिला कर्षिला विचला लुचिला अर्त्तिला। पत्ते त्रिषला द्रलास्यः । 🏰

११७०। यफान्तुङ:। (य फान ४१, नुङ: ४।)।

नकारोङस्थान्तात् फान्ताच सेम् क्वाच् कित्र स्थादा । यत्थिता यथिता, ग्रन्थिता यथिता, गुम्फिला गुफित्वा । तुङः किं, कोथिता रिफिला । ः

<sup>ः</sup> सह इसा वर्तते थीऽभी सेम्, क्वाच् द्रवस्य विभेषणं। श्रायता हैति शी ला, (५५४) वसीरस्थेतीम्, किच्चित्रिष्ठात् (५४२) गुणः, (१५) एस्थाने अय । चुधिलां हित्, एवं कुषिला क्विशिला गुधिला सहिला सहिला चित्रिला चीत्रता रहीला।एषु चुधिला चिप्रता क्रियला चमयव (१०६६) चुधिवसेतीम्। क्विशिला हित कहिच्चात् (५०३) इस्पचे प्रयोगः। श्रभेष (५५४) वसीरस्थेतीम्। चहिला चिप्रता रहीला हित (६६१) जि:। रहीला हित (७०१) इसोदीर्थः। पाणिनिः १।२।१८,७,८। घोधिलापीति सहीनि दीचितः।

<sup>+</sup> स्टन इति स्टत धातुः । तर्षिता इत्यादिषु (५५४) वकीऽनस्यंतीम्, किस्ता-भाष-पचे यद्यासभावं गुणः गलीपाभावष, किस्तपचे तुगुणाभावी गर्णीपय । पाणिनिः १।२।२५,२५ । एतन्प्रकंक्षप्रः तालव्यान्तः ।

<sup>‡</sup> येन विधिस्नद्रन्तस्येति कायात् धानात् फान्तादिति। श्रविलेयादि सर्वव (१५४) वनीऽरस्थेतीम् । किल्लाभात्र-पत्ते नलीपाभावः, कितपत्तं (५६०) नलीपः । कोचिन्नारिकता इति (११६०) सेमऽलुधेति किल्लिनियेष, गुणः । पाणिनः १।२।२२।

# ११७१ | नश्-जोऽनिसः | (नम्-जः ६।, धनिनः ६।)।

नशी जानतात्र तुङोऽनिमः परः क्वाच् कित स्थादा। नष्टानंष्टाभक्वा भङ्का। प्रनिमः किं, प्रस्निला। \*

(८१८) ब्युड़ी इसारेरिति। युतिला योतिला, लिखिला लेखिला। करारेस करिला विदिला मुण्लि। अवः निं, रेविला। इसारेः निं, एपिला प्रोपिला। प

११७२ । पूक्तिशुदित दम् । (प्-क्रिय-चिंदतः ४।, रम ।१।)।
एभ्यः क्राच 'दम् स्थादा । पविला पूला, क्रिशिता क्रिष्टा,
शमिला शान्ता । ध

# ११७३। क्रामा चें वा। (क्रम: ६।, र्च: १।, वा।१।)।

<sup>\*</sup> नश्च च ज चिति तस्कात्। नहा इति, नश स्त यू नाशे कदिस्तात् (५०६) इ.सीऽभावपर्ते (०४१) तृष् रघ इति तृष्, कित्पचि (५६०) न-सीपे, (१५४) षष्, (४७) तस्य किट। प्रकित्पचि नस्थानुस्तार: नंहा इति। भक्ता इति, भन्न घी सीटने, पौदिलादिसीऽभावे, कित्पचे न-सीपे, (२११) कुड्, प्रकित्पचे (५०,५१) नस्थानुस्तार:, तस्य च ष्। प्रक्षिला इति कदिस्थात् (५०३) इस्, (११६८) सेमऽचुधेति किस्यनिष्धे, नस्थानुस्तार, तस्य च अ। प्रनिभ्पचे तु प्रक्षा प्रकृता इति। पाणिनीः ६।४१२।

<sup>†</sup> व्युक्तीऽवी इसादेरित्यंसीदाइरणमाइ, ब्रुतिलेखादि (५५४) वसीऽरखेतीस्। टेविला इति दिव्यु क्रीडायां उदिस्वात् (११७२) पुक्तिग्रदित इति वा इस्, (११६८) नित्यक्तिस्तामावे ग्रणः। सनिम्पचे (८१४) यूला इति। एषिला सीविला इति क्रिटिस्वाइनग्रीरिप वेमलादिस्पचे नित्य-किस्ताभावः। पाणिनिः १।२।२६।

<sup>‡ (</sup>१०५३) बृद्योत्यनेन कित इम्-निवेधादमाप्ती विकल्पार्थे पू इत्यस्य वहणं, पविला (११६८) सेमऽलुधित किल्बनिवेधात् गुणः। तत्रैव क्रियवर्जनात् क्रिमिलेखन न गुणः। शान्ता इति (१०३८) असुङ इति दीर्घः, मस्यानुस्वारसस्य च नकारः। पाणिनः अ२।५०,५०१,५६।

क्रमिला, क्रान्वा क्रन्वा। #

११०८ । जुबस्या न जि: । (मृत्वयः ४१, म १२१, जिः २१)। प्राभ्यां ज्ञाच इम् स्थात्, नतु बसे जिं: । जरिला बसिला । पं

११७५। 'हाको हि:। (हाक: ६।, हि: १।)।

हिला। 🏗

# १९७६। व्यादनञः क्वो यप् से।

(व्यात् पा, चनजः पा, कः हा, यप् । १।, से ७।)।

नञ्वर्जात् व्यात् परात् घीः क्वीयप् स्यात् से सिति। प्रकर्षेण कला प्रकल्य, प्रवल्य प्रतल्य प्रहल्य, उद्ज्य, प्रदाय प्रमाय प्रगाय प्रहाय प्रपाय प्रस्थाय । §

क्रमी घं: स्वादा क्वाचि । क्रमिला इति चुदिच्यात् पूक्तिग्रदित् इति इस्,
 विकल्पपचे चनेन वादीर्घः । पाणिनिः ६।।।१८०।

<sup>†</sup> विभाषाद्यसध्यवर्तिलादस्य निल्यता । जरिला इति (१०५१) वृद्धीति द्रम्-निषेपेऽपि, चनेन इस्, (११६८) सेसऽच्धेति कित्त्वनिवेधात् गुणः । (६२७) वृती वेसीर्घद्रित वा इसी दीर्घले जरौलौ इल्पि। व्रस्थित इति क्टिलेन वेसलेऽपि चनेन निल्यसिम् । सेस्क्वाचः कित्त्वनिवेधादेव जेरमासौ चव जेनिवेधः प्रव्रस्था इति क्वाचो यपि जिनिवेधायः । पाणिनः ७।२।५५ ।

<sup>‡</sup> डाकी हि: स्यात्। डाक: किं, डाङ इत्यस्य डांला। पाणिनि: ७।४।४३।

<sup>§</sup> नामि नञ्यम सीरनञ्तसात्, व्यात् इत्यस्य विशेषणं। प्रकर्षेण क्रता इति (५४८) व्यस्य ग्यत्कारिति समासे, भनेन क्राची यित, क्राच: स्थानिवस्तेन किस्तात् गुणाभावे, (८८२) स्वस्य तन्, प्रक्रत्य। प्र-वन प्रवस्य, प्र-तन प्रतस्य, प्र-इत्य, एषु (६०६) जम्सीपे, स्वस्य तन्। उद-भन्न (५६०) इस्ङ्न इति न-सोपे अद्या ता इत्यस्य प्रदाय, सा इत्यस्य प्रमाय, गैप्रगाय, इन्क प्रहाय, पा पाने प्रपाय, स्था प्रस्थाय, एषु (६१२) दामागै इत्यच यप्वर्जनात् न ङौ। पाणिनिः श्रीह्य।

(७४३) दीङष्ठामिति यपि ङा, प्रदाय। (७४५) मिन्यी-रिति ङा, प्रमाय, प्रलाय प्रलीय। \*

# ११७७। म्होपो वानिमः।

(स्-लोप: १।, वा ।१।, चनिम: ६।)।

चनिमो मस्य लोपः स्यादा यि। प्रमत्य प्रमस्य । चनिमः निं, प्रथम्य । पे

११७८। वो जेरयः। (वी: ४१, जे: ६१, अय: १।)।

षु-पूर्वस्य जेरय: स्यात् यवि । विगणय्य । घोः निः, सम्प्रधार्यः ।

·११७६ । वाप:। (वा । ११, आपः ५१)।

श्राप: परस्य जेरय: स्यादा यपि। प्रापय प्राप्य । §

## १९८०। वा मेच्यो मिच्यो ।

(वा ।१।, भ-च्छी, ६॥, मि च्यी १॥) ।

मेङो मि: चे: ची स्यादा यि। अपमित्य अपमार्थ, प्रचीय प्रचित्य रेप

श्रीदो डिय चर्य, ङा प्रदाय । डुनिज न चंपे, मी ङ्य तृ, मी जग बधे एषां डा प्रमाय । ली इत्यस्य विकल्पे डा पृलाय प्रलीय इति । अन्जः किं, न क्रता अक्रता। से किं, सर्पेट क्रता इत्यादी न यप्।

<sup>†</sup> प्र-नम् क्वाची यपि भनेन मलीपे, स्वस्य तन् प्रणत्य, पत्ते प्रणस्य, (५४६) णत्यं। एथं भागत्य भागस्य भ्रथादि । प्रश्नस्य दति सेमलात् न मलीपः, एवं विकस्य भाचस्य भ्रत्यादि । निर्जित्य भाइत्य विश्वत्य स्थादी भागमविधिवंशवस्वात् भादी स्वस्य तन्, स्तरां (५८०) घाँऽजय्यरे दति न दीर्घावकाशः । पाणिनिः ६।४।३६ ।

<sup>‡</sup> लघीरव्यविद्यास्थातस्य जिरसभावात् इस्व्यवधाने इत्यदेः। वि-गणि इति आक्तात् क्वाचीयपि, भनेन जैः स्थाने भय, विगणव्य, एवं विषटव्य इत्यादि। सं-प्र-धारि इति आक्तात् यपि, धा इति गुर्व्यवसपूर्व्यतात् अरयाभावे, जलेंग्पे संप्रधार्य, एवं विभाव्य विनाश्य इत्यादि। पाणिनिः ६।॥५६।

<sup>§</sup> प्र-मापि-यप्,पापया प्राप्त इति, गुरुपूर्व्यतादप्राप्ती, विभावा। पाणिनिः ६।॥५०। পু पुनर्वाग्रहणं व्याधिकार निक्ष्यये। भपनित्य इति से स्थाने नि भारिणे, स्वस

## ११८१। न वे-ज्या-व्यो जि:।

(म ।११, वे-ज्या-व्यः ६१, जिः १।)।

एषां जिनेस्यात् यपि । प्रवाय प्रज्याय प्रव्याय । 🕸

११८२ । सं-परि-व्यो वा। (मं-परि-व्यः ६), वा।१।)। श्राभ्यां व्येजो जिर्वास्यात् यपि। संवीय संव्याय, परिवीयः परिवायः। परिवायः

# ११८३। चणम् वाभीच्णित्र पूर्वकाले। . (चणम् ११), वा ११। बागीच्या ०, पूर्वकाले ॥।

धोः पूर्वेकाले चणम् स्थादा पीनःपुन्धे। स्नृत्वा स्नृत्वा नमसि, स्नारं स्नारं नमसि। #

तन्; पर्च (६०८) ण्चोऽशिया इति ऋषमाय । दिधाती: ची इति दीर्धानादेशी प्रचीय, पर्चस्वस्य तनि प्रतिस्य । पाणिनिः ६।४।४६,७० ।

७ वे जे म्यृती, ज्यागि जरायां, व्यं जे इती, एषां (६६१) ग्र≰स्वपाद्योगिति प्राप्तीनिनंस्थान् यपि । पाणिनिः ६।२।४१-४३।

<sup>†</sup> सं-परि-पूर्वस्य व्ये जैहती देखस्य जिवां स्थान यपि। संबीय परिवीय सभयव जीकते, (१०३६) जिबें।ऽन्य इति दीवे:। पाणिनि:६।२।४४।

<sup>‡</sup> भभी च्लां सुद्र्यं-सव्यं, तस्य भाव. भाभी च्लां तस्यन्। ज्ञवापि किय्योरेक-कभृकले सतीति बीध्यं। स्मृत्वा स्मृता नर्भास, पर्ने स्मारं नर्भस। स्मृत्वास्य क्ष्यं च दत् (५००) वृद्धिः, ज्ञम् द्रत्यस्य स्थितिः। ज्ञाभी च्लाग्यें दिलं क्ष्यत्य (पा. ८।१।४)। किविदाभी च्लाभिनेऽपि चणम् भवति यथा. चौर दति कला दर्त चौरद्वारमाक्षी शति (पा. ३।४।२५), स्वाद्वारं भृद्त्ते (पा ३।४।२६), सूलका पदंश भुद्धिः (पा. ३।४।२०); यथा कारं, तथा कारं (पा. ३।४।२०); यथा कारं, तथा कारं (पा. ३।४।२०)। क्षांच्य च्यामनस्था यंभांची भवति यथा, सम्भवातं इति जीवया इं रिक्साति (पा. ३।४।३६), चूर्णपेवं पिनिष्ट (पा. ३।४।३५), विद्युत्पृणां स्थिति (पा. ३।४।४५) द्रत्याति (पा. ३।४।३५) द्रत्याति (पा. ३।४।३५) द्रत्याति । पाणिनिः ३।४।२२ – ६४।

क्कतो ये यत्र विश्वितास्तत्र नृतं भवन्ति ते। कडोः कभाव इत्युक्ते-रन्यत्रापि प्रयोगतः॥ तथाच । कत्तदितसमासाना-मभिधानं नियामकम्। स्वणस्वनभिज्ञानां तदभिज्ञानस्वकम्॥ \*

११८४। बद्धलं ब्रह्मिण्। ' (बहुलं १।, ब्रह्मिण ७)।

यदिदं लीकिकप्रयोगव्युत्पत्तये लचणमुक्तं तत् वैदिकप्रयोग-व्युत्पत्ती बहुलं ज्ञेयं। कवित् विहितं न स्थात् (१), कवित् निषिंदं स्थात् (२), कवित् वा स्थात्, कवित् ततोऽन्यद्पि स्यादित्यंर्थः। यथा,—पूर्वेभिः (१), ब्राह्मणाम् (२), द्रत्यादी वेदसिद्धेः। पं विद्यार्थे प्रव्होऽत्र मङ्गलार्थः।

इति इण्वादि पाद:।

क्षदन्ताध्यायः।

. समाप्तम्।

<sup>#</sup> क्रद्रली प्रकरणं समाप्य ययक्त न्यूनता-पिरहारार्थमा ह — क्रती ये इति। ये क्रतः यत्र विष्येषु विदिताः, ते तत्र तेष्येषु नूनं निष्यितं भवितः । प्रयोगतः महाकि प्रियोगानुसारेण प्रत्यवादि स्पः। तत्र हेतसाह (८६५) क्रहीः कभावे इत्युक्तिरिति । तथाव, प्राष्टः इति क्रेषः। क्रतां तिज्ञितानां समासानाचः, प्राभिधानं प्राचीनः प्रन्दकोष- एव निगासकं, यिखान्ये यिखान् लिङ्गंच यत्र भवित तिन्नयमकारकं। व्याकरण्यव्यापन्त प्रसिद्धाना प्रसिद्धाना प्रसिद्धाना प्रसिद्धाना स्वतं तिन्नयमकारकं। व्याकरण्यव्यापन्त प्रसिद्धाना स्वतं प्रसिद्धाना स्वता प्रसिद्धाना प्रसिद्धाना प्रसिद्धाना प्रसिद्धाना स्वता प्रसिद्धाना प्रसिद्धाना स्वता स्

<sup>†</sup> ब्रह्माण वेदे, बहुलं → बहुव: (प्रकाराः) सन्यस्य. चूडादिलात (४४६) ल:. घणवा बहुन् प्रकारान् लाति रुद्धातीति वहुलं, भादमालात् (८६०) ज:। सामान्यलात् बृद्धकं। एतत् त्याकारणं ली किनप्रयोग-साधनाय, वैदिकप्रयोग-साधनायेन प्रकारा-नरमिष स्यादिलयः, तथा हि किचिदिलादि । पूर्वेभिरित्यन, भिसः स्थानं ऐम् (१०६) विदित्तमिष न नातं। ब्राह्मणास् इत्यन, सम्यानं विसर्गः (१०२) विदितोऽपि निविज्दित। वेद्सिक्दिति हितौ पश्चमी । पाणिनिः २।४।३६, ७३, ७६; ३।२।८८; ध्रारा १२२; ६।१।३४; ७।२।८, १०३; ७।३।८०; ७।४।०८।

# परिश्रिष्ट-पचम्।

#### ---

## लिङ्गानुशासनम्।

(१९४७) स्वीतः स्त्रीलिङ्गस्यगामवलस्याः यत्र प्रचलितानां कतिषय-क्रत्ति ततः समास-प्रत्ययान्तानामेव लिङ्गनिर्देशः क्रियते ।

• (८६७ मूचसा टीका द्रष्ट्या।)

## क्षदन्त-पुंलिङ्गाः—

(११६४) घञला: \*, (११६४) श्रावला: \*, (११४४) नङ्ना: †, (११४५-११४६) कि-प्रत्ययाना: ‡, (१११३) क-प्रत्ययाना: §, (११४२) श्रयु-प्रत्य-याना:, (१०००-१००१) या-प्रत्य-याना: ।

## त्रित-पुंलिङ्गाः—

(४७५) इमन्-प्रत्ययान्ताः ¶।

## समास-पुंलिङ्गाः---

(३६२) रात्रानाः, (१५३) **महानाः** ॥, (१५४) महानाः।

- अ घञनाः पलनाय भावार्थे एव पुं-लिङ्काः, त्रन्यार्थे तु विश्रेष्यलिङ्का प्रिपि भवनि। प्राथनिष्ठ---भर्य वर्षे पटं सुखं नपुंसकम् ।
  - † याज्ञा—स्त्री।
  - ‡ इषुधिः युमान्, स्त्रीच।
  - § दाक (काष्ठं), अनु नपंसक्स्।
  - ¶ प्रेम—नपुंचकनपि।
  - । पुरवाएं -- नपुंसकम्।

### कदन्त-स्त्रीलिङ्गाः---

(११४०-११४८) कि-प्रत्ययान्ताः, (११५०)
भावविहितक्यप्रत्ययान्ताः \*,(११५२)
भावविहितक्यप्रत्ययान्ताः \*, (११५२११५५) जपत्ययान्ताः,(११५६-११५०)
छ-प्रत्ययान्ताः, (११४१) णन्प्रत्ययान्ताः, (११५०) जन-प्रत्ययान्ताः ‡,
(११५८) णि-प्रत्ययान्ताः, (११६०)
जन-प्रत्ययान्ताः ।

### त्रश्वित-स्त्रीलिङ्गा;---

(४३८) तन्त्रस्ययान्ताः, (१४८) स्वीकाः कतिपये — (तज्ञित-न्यपुंसक-लिङ्गाः द्रष्टव्याः) ।

## समास-स्तीलिङ्गाः—

(३८६) अप्रत्ययाम-धर्मब्दानाः।

- (टॅ॰१-८००) स्वीक्त व्यवनाः प्रायेण कर्म्यविदिताः कर्मृविदिता वा दृष्यने, भावविदितान् नप्सक्तिन्तः।
- † (८६०-८६८,८०६-८८०) स्पीत-यान्ताः प्रायेण कारक-विद्विताः, भाव-विद्वतासु नपुंसकलिङ्गाः।
- ‡ (११६२-११६२) कुर्म्मविहितान-प्रत्ययात्तासु विभेषान्तिकाः।

## कदमा नपुंसक लिङ्गाः —

(११६४-११३६) भनट्-प्रत्ययान्ताः \*, (११३१) इच-प्रत्ययान्ताः, (१८६०) भावविद्यत-क्रप्रत्ययान्ताः।

## तिहत नपुंसक लिक्षाः—

(४३१) भावार्थ-समूहार्थ-प्रव्यानाः †, (४३८) स्त-प्रव्यानाः,(४६०-४६१)

\* भावविदिता एव बीध्याः। कारक-विदितानुपायेण विशेष्यलिङाः। + (४४८) जनता, बसुता. खलिभी, इसिनी, गीवा, त्यक्षा-------------। वात्लकुपुलिङः। तग्रट्-प्रयट्-प्रतयानाः \*, (४८२) तेज-काकानाः, (४८३) माकट-माकिन-प्रत्ययानाः।

## · समास-नपुंसकलिङ्गाः---

(६२२) समाधार-इन्हिन्यद्वा:, (६२२) समाधार-इगुनिथन्ना: t, (६२२) अध्ययीभावनिधन्ना:, (६८५) अप्रत्य-यान-पुर्श्वस्थाना:।

 स्त्रीलिङा चिप भविता।
 १६६८) चकारान-भिन्नाः, पात्रा-दौर्नित नपुंसकानि एवः। (१००,१७२) स्वयोस्न स्त्रीलिङा नपुंसकलिङाषः।

## उणादय: ।

(१०००) स्रोतः सङ्गतमात्रिय कतिपर्ये प्रचलिताः छवादि-प्रवयानाः निष्यने ।

#### श्र

भाज्ञच्— क्रान्त्रसः, तृ-तरसः, स्ट-स्टणः, ल्-लवजः, स्ट-सारजः। भाटन्— कन्क-कडटः, कप-कपटः, का-सरटः, कज्ञं-कक्टः, कप-कपटः, सर्क-सर्कटः, ज्ञा भावटः, स्ट-सरटः। भाव--क्ष-कसटः, जृ-नरटः। भाव--प्य-प्यत्, सह-सहत्, इष्ट-ष्टः। भात--यस-वस्तिः, ष्ट-भंहतिः। भाव-- भार्यस्तं, त्र-क्षवं, नच-नचनं, प्य-प्यंनं, त-स्या।

वज्ञ वज्ञभः, इष-त्रवसः, मृश्यरभः, मल-मलभः।

षम-- षष- षधमः, वर्षः कर्षः, कल-कलमः, षर-षरमः, प्रष-प्रथमः।, ष्रक्षप् - कड़-कड़म्बः, कर-कदम्बः, स्था-सम्बः।

षयु, षयू--स-सरयु:, सरयू: ।

भरन् — ग्रंट-भररं, कु-कवरः, चन-चनरः, जन-जटरं, जर्ज-जर्जरः, सर्स-सर्सरः, दिव-देवरः, सन्स्मानरः, वस-जि-वासरः।

**वर--**ऋ-वरतः।

मल---तृ-तरकः, मन्ग-मङ्गलं, छ सरलः। मल---मन्त्र-मञ्जलः।

षानक--स्या-नतकः।

चसच्--चम-चससः, तम-तमसं, नभ-नभसं, .पन-पनसः, यु-यवसः, रभ-रभसः, वि-वेतसः।

#### ग्रा

षा — नि कष-निकषा, सस्-द्र-समया ।

षाक — तड्-तड़ाक:,तड़ागः, पत-पताका,

पा-पिनाक:,वल-वलाका,यल-यलाका।

षानक — भी-भयानक:।

षानक — क्य-कथानुः।,

षान्य — वद-वदान्यः।

षार — षडु-षड्वारः, सड्-कड़ारः स्व
भङ्गारः,मन्द-मन्दारः, सन्-मार्जारः।

षालञ् — पत-पानालं, चन्ड-चख्वातः।

द्रज्—पण-विजि । इतन् — दष-रोडित:, फ्र-ष्ठरिव:। इत्—तक्-तड़ित्, युष-योवित, स्ट-सरित, फ्र-ष्ठरित्। 

#### ह

र्ष्- भव-भवीः, तन्त-तन्तीः, तृ-तरीः, स्थ-लच्चीः, वात-प्र-मा-वावप्रमीः। र्ष्कन्-भव-भवीकः, भल-भवीकः, इव ह्वीकः। र्ष्वा-ध्र-मरीखः, वे-वीविः। र्प्प-ध्र-मरीखः, वे-वीविः। र्प्प-ध्र-मरीखः, वे-वीविः। र्प्प-ध्र-मरीखः, वे-वीविः। र्प्प-ध्र-भरीषः, वृ-करीयः, पट-ध्रीरं, श्र-धरीरं, शौट श्रीटीरः। र्प्प-ध्रीरं, श्र-धरीयं, तृ-करीयं, प्-पुरीषं, श्र-धरीयं।

#### ਰ 🔸

चत-ग्र-गवत्, स-मवत्।

ভন, ভনি, ভনা, ভনি—মন-মারুন: शकुनिः, शकुन्तः, शकुन्तिः । **७**नन्—सः घरणः, फर्ज-घर्जुनः, .कृ-करणः, टू-तरणः, हू-जि-दारणः, पिश्व-पिश्वनः, सिथ-सिथुनं, वृ-वर्षाः। **उ**नम् — कुस-कुसुनम् । उमाक् — कुस-कुसमाम्। **उर--- भन्क-भ**डुर:, कर्ब-कर्बुर:, चत-चतुरः, दृ-दर्हरः, बस्य-बस्युरः, सन्ध-मथुरा, सद-सदगुर:, सन्द-सन्द्रा, मन्क-सुकुर:, श्राग्र-श्रग-श्रगुर:। **एख---**न्घट-चटुन्नः, तन्ड-तखुनः । **ए लि--- मन्ग- पहुर्ल:** । **उग--- घन्क- घडुगः**। चषन्—कल-कलुषं, नइ-नह्षः, परुषः।

#### জ

क-चम-चम्;, जन-जन्ः, तन-तन्ः,
दिद्रा-दर्द्रः, बस्य-वधुः, वद्य-वधुः ।
कक-वर्ण-वर्ण-वर्ण्यः, भद्य-भद्यकः, मन्डसञ्ज्ञः, श्रम-श्रम्युकः, बस्य-वस्युकं ।
कख-मय-स्युद्धः ।
कथ-ग-वर्ण-वर्ण्यः ।
कर-ग्रप-गोधृमः ।
कर-जप-कर्ष्यं, खर्ज-खर्ज्युरः, सि स्यूरः,
स्यन्-धिन्द्रं ।
कल-चन्-गङ्-गङ्कः ।
कल-गड्नगङ्कः ।

#### 77

T

एनु --- क्र करेणु: । एन्य--- हःवरेष्यः । एरक्— काठ-काठेर:। भौरन्— कठ्कठोरः, किस्-गृकिशोरः, चक्त-चकोर:। चील — मप मपोलः, पट पटीलः। क---वाल-कल्कः, जै-काकः,नि-सद-निकाः, रा-राका, वल-वर्ष्कं, ग्रल-ऋल्कं। काक्-छष-उल्का, सुष-सुकः, ग्रुभ ग्रुकः। कन्— इ.एक:,भीभेक:। काण — चित-चिक्कण:। कातु — क्राकितुः । कान — कृ-किर्णः, धृष धिषणः । कनम्---वश-उशनाः। कनिन्—तच-तचा, यु-युवा, राज-राजा। कन्यन्— इन्हिरएःं। कपन् -- उत्तरं, विट-विटपः, कप-कयन्—तन-तनयः, भल-मलयः, वल-वलायं, च-इदयं। करन्—पुष-पुष्करं, गृ-शकरा। कल-कम-कम्बज, कु,कम-कोमलः, चुप-

विकालः, विश्व-विश्वालः । कितन्—सुष-सृषिकः, त्रष-वृषिकः । कित —वष-उचितः ।

चपलः, इरीइरग्लः,

सुष-सुषलं, लन्ग-लाङ्गलं,वल-वल्कलं,

व्रष-वृष्णः, शक-शक्ताः, भ्रप-भ्रवेणः ।

तमालः, पन्च-पञ्चालः, पल-पलालः, पौय पियालः, स्ण-स्णालः, विङ्-

कालन् --- कप-कपालः, कुल-कुलालः, तम-

पल-पललं,

बिन्द - पुल-पुलिन्दः । किर—मन-पनिरं, इष-इषिरः, खद-खदिर:, खिद-खिदिर:, क्रिद-क्रिदिर: तिम-तिमिरं, बन्ध-बिदः, भिदिरं, मद-मदिरा, मन्द-मन्दिरं, मिइ-मिदिर:, सुद-सुदिर:, यच-कचिर:, कथ-कथिरं, भी भिविरं, भम-भिभिरः, ग्रष-ग्रविरः, स्था-स्थविरः, स्था-स्थिरः, स्प्राय-स्पिरः। किष्यन्-सूज-सुजिष्यः। कौटन्---क्-किरीटं, क्रप-क्रपीटं। कु---चन-पन्:, तर्ष्-उद:,जर:, सूज-ऋजु:, क्त-कुरु:,खन-खरु:,गृ-गुरु:,दृश-पश्च:, पन्भ-पांशः, पृ-पुरुः, प्रथ-पृथः, बन्ह-बहु:, अस्ज-धगु:, सद-सदु:, रन्घ रघु:, लन्घ लघु:, व्यथ-विधु:। कुषम्--पुर्पुरुषः। क् — भन्द भन्दूः, जन,जन-जन्मूः, दिधि-सी (६ धिष्:, हम-हन्म: । न्न-चि-चित्रं, मिद-मित्रं। काभ-काष्ठं, कथन् --- षव-भ-षवस्यः, कुष-कुषं, रस-रथः। क्थिन्— त्रस-चस्थि, सन्त्र-सक्थि । क्र — त ६ - त र्ष । भारतन्---कुट-कुझलं। कर्ग्--कु-कुर्रः । कि-भू-भूरिः, स्-स्रिः। म् -- व-ववः। क्कन्-लिइ-जिहा, विश्वःविश्वं। क्सि--- कुष-कुदि:। क्मु---इष इनुः। कस — क्रत-क्रतसं,तिन-तीच्यः,श्लिष-श्लच्यः।

ख---सुइ-सूर्खः, श्रम-श्रञ्जः, शौ-शिखा।

#### ग

गक् — की-कागः, पूप्ताः, ध धङः, सद-सुद्गः, मृष्यङ्गं, सिट-पिड्गः। गन्—खड-खडः, गम-गङ्गा, गृगर्गः।

#### च

चट्—सिव म्ची।

#### অ

जुष्— किं-मृ किमादः, , कक वर्ष कक्ष-वाकः, चटचाट्र, चर चारू, जरा-इ-अरायुः, जम-जातः, तृ-तालु, दृ-दाद, सन-सातः।

#### 2

टिषच् — अस-श्रामिषं, किल-किलिषं, सह-महिष:।

#### ス

ठ -- क्य-क्युः ।

#### ₹

ड—भन-भार्छः, प्रस्य कार्ष्टः, रहन-खर्ष्टः, पण पर्छः, सन-सण्डः, दस-दर्णः, सन-पर्छः, भन-सण्डः, भ डड—तन-तितः। डक्-त-नितः। डक्-प-पतिः। डक्त-पा-पतिः। डक्त-भा-सवान्। डिम्-कि-किम्। डुत-भत-भू-भार्तः। डक्-भ-प्र-भार्तः। डम्-पापुमान्।

डेस-- छद् वि उत्ते: , नि वि नीचै: ।

डो -- गम-गी:, युत-यी:। डोस् -- दम-दी:। डौ -- ग्ले-ग्ली:, तुद-गी:। डुट् - इये-ग्ली। डुट् -- तृ-वय:।

G

ड --सन -षण्डः।

ण विषम् — चर-चारितं । ष — चज-वेष:, स्था-स्थापः । स्थ--- ध्व-शिष्णः।

तकन-- भंग-मध्या। तकक् -- इष-इष्टका। तन्-भन-भनः, द एतः, गृ-गर्तः, तूस-नूस्तं, दस-दन्तः, धुर्व-धूर्तः, पूपीतः, मृ-मर्भः, इस-इसः। त्तनम्---पत्त-पत्तनं, चन-वेतनं । ति-प्रग्रम्स प्रगत्तिः, •ग-भर्त गभत्तिः, पद-पत्तिः, वस-वितः, वि-तम-वितन्तिः, मान-मानिः, सु-चस-खति। सिका- - क्रान्-क्रत्तिका, इत-वर्त्तिका। तुक् — च्ट-च्टतुः । नुष--वस-वास्तुः। सुन्--- घव-कीतु:, चाब-कीतुः, कुश-क्रीष्टा, जन-कन्तुः, जै जातु, तन'-तन्तु<sup>-</sup>, धा-धातु:, मन-मन्तु:, सस-मस्तु या-यातः, वस-वस्तु, शच-श्रक्तुः, सि-चेतुः, क्ति-हेतु:।

ष्टच्—जाया-मा-जामाता, दुइ-दुक्तिता, पापिता,भाज-भाता, मान-माता। खुक्—स-म्रल्पुः। विप—भद-पैतिः,पु-रातिः। घ

यक् — मच चक्यं. उदगै- उदगैकं, गू-गृथं, नृ-तीयं:, तुदतुत्यं, निभी-" निभीयः, पृष पृष्ठं, युयूषं, रिच-रिक्यं, सिच-सिक्यं।

षष्--सः सार्थः।

थन्—स्ट-चर्थः, उव-चोष्ठः, जुव-कोष्ठः, गै-गाथा, मु-मोषः, ग्र-भोषः।

द

इ. — भव-भव्दः, कम कम्दं, कुक्तन्दं, वृष-वृन्दं, शोःभादः ।

ध

धुक्-—श्री∗शीधु।

न

न—च्टचर्णः, हा,कृ-कर्णः, दुद्रीणः, धा-धानः, रमञिरतं, स्स्ना, सि-सेना, स्थास्थ्रणा।

नक्— इ.-इ.न:, छघ-छण्डः, कृष कण्डः, निनिनं, तृष तृष्णा, स्काय-फेन:, क्य-बुभ:,क्रभ:, सीसीन:,वी-बीणा, सिर्मिन:।

नण्---रस-रास्ना, सस-सास्ना।

नि-भग,भन्ग-भग्निः, द्र-द्रीणिः, सम-पृत्रिः,य-यौनिः,वष्ठ-विज्ञः, यि संणिः।

निक्-वृष वृष्णिः, स्टस्पिः।

तु — का-जङ्गः, धे-धेनुः, भा-भातुः । नुक्--विष विश्वः, स्-स्तुः ।

**प** े

प---तत्त्व-तत्त्वं. पा-पापं, वाध,वा-वाषः, वास्तः, वस श्रयः, शृ श्र्यः। पक्---कु-कृपः, शी नौपः, पू-पूपः, यु-यूपः, शिल-शिल्पं, सु-पूपः, सु-सूपः।

पाय-- क कपांस:।

फ

पक्-गल-गल्फ:।

भ

#### स

म--- भव-भीन्, वि-चेनं, 'यस-यानः, प्र-वर्षाः, हा-जिद्धः, प्र-धर्मः, नी-नेनः, पद-पद्गः, भा-मानः, या-यानः, वा-वानः, न्सीनः, चु-होनः।

मम् – इन्ध-६थां, ईर-ईसीं, चुलुमा, यम-यीमाः, तिज-तिसाः, घृ-घृमाः, भी-भीमः, भीषाः, युज-युग्मं, दच-दक्तंः स्वै-स्वामः ।

सद— चस-चर्षः, युव⊹लं, ग्रुव⊹सुग्रं। सि — चर-जिम्बं', नी-नेभिः, घश-रक्षिः। सिक् — भू-भूमिः। सुक्र — चव-चल्रुकं।

#### ग

य — जन-जन्या, की-काया, जन-जाया, जन्यं, पूपुरुषं, मा-माया, सस-सस्यं। यु — जन-जन्युः, दस-दस्युः, मन-मन्युः।

#### ₹

र— भस-भसः, भस-अखं, भई-भाई: इन्द-इन्द्रः, तस-तासं, दस-दक्षी भी-भेखः, सद-सदः, सन्द-सन्द्रः, वज-वजं, वप-वप्रः, विष्रः, भज-वीरं, शक-शकः, स्काय-स्कारः।

रक्— भन्न-भर्ग, र-इरा, उच-उचः, छन्द-छट्टः, वस-उचः, क्रा-कचः, क्रूरः, चिप-चिप्रः, जुद-चुद्रः, सुर-चुरः, खुर-खुरः, ग्टथ ग्टथः, चन्द-चन्द्रः, चि-चौरं, द्विद द्विद्रं, तक- तकं, दन्भ-दक्षः, दुर्ष-दूरं, नी-नीरं, भन्द भद्रः, सुदःसुद्रा, ६द-जि-कदः, वन्क-वकः,, इत-वृत्रः, ग्रष-ग्रकः, ग्रदः, ग्रभ-ग्रभः, त्रित-त्रित्रं, सि-सीरः, सु-सुरः, मू-सुरः। रि—षन्ध-पद्धः, श्रद-षद्रः, भी-भेरिः। ६—षध-प्रसु, जन-जन्नु, सि-भेकः।

#### ल

लक्— भी भीलं, ग्रच∗ग्रक्तै:। व

व—षग-षयः, खट-खट्टा, कष-कखः, ग गीवा, नी-निन्दः, प्र-हाँ प्रहः, शीध्विन्नं, शी-शिवः, इस-इखः। वल-इल-इल्लें, एल-पल्लः। वलज्, वालज्—शी-शैवलं, शैवालं। वालन्—चत-चतालः। वि—ट्-ट्विः।

#### য

ग्रन, यन्-सृग-पर्शः, पार्यः।

#### Ī

विवन्-प्रयः पृथिवी । , इन्-छप-छष्टः, वृध-वङ्गे, ग्रस-ग्रस्तं,। ष्यरच्-गाइ-गाइनं, चत-घत्वरं, दि-भीवरं, तृतीवरः, धा-धीवरः, ग्रे-पीवरः, इ-वर्ष्वरः, ग्रू-ग्रस्तंरो ।

#### स

स— चन्द-उत्सः, कम-कंसः, कप-क्षः; मन-मास, वद-वत्सः, इन-इंसः। सक्— कथ-स्रयः, व्रव-व्यः, सु सुवा। सरक्— कृ-कसरः, पू-पूसरः। सरक्— मद-मत्सरः, वस-वत्सरः। स्वन्— स्व-स्यः। स्वन्— मद-मत्सः।

# सूचीपचाणि।

# सुचसुची

सूचाइः ।

स्वाद्धः ।

#### श्र

ं च इ. उ. च. च. क्र, ए भी ङ,-चंघ: नुवी १८ प्रचारिवव्धि ३८३ भगेकां ६८४ चध्यच्ताचीपृपि≀ १०० भाच भारालीज वि: भाषीऽस्त्रीपी र्घत्र २२४ षदात् ८०४, ८८० श्रतोऽडवाः ६८ चलबीडवी: सी घाँडवी १८५ **प्रदसः सेरीः'** २३४ चाधिकेश धर्योपाधिश्यां ३१० <sup>६</sup> मधे: मनी दिद्य चन: ३८१ भन ब्यत्रोऽणाची घिष्योः १८१ मनडुक्तेतवाद्वादिः १०२८ भगाद: १८० षानुस सिद्देरसुव: ५६३ भनीरहात् ८०१ श्रम् ज: सेरिस् पे ७६२ षमीऽदृ है: (८७ षत्वाजादिष्टिः ६२ भन्यारभ्यार्थारात्वधिर्वनर्ते ३०० भन्येयायज्ञानमें ८४३ च्यपयनीनित्यं २४५ यभोभगी यधीम्योऽने लुप

षभवादा १०५७
षसुद्राव् षसुसुराकः षदद्राङः १०४४
षयां योज्नेवा ३७
षर्व्वणीऽनञसुङ्खेऽसी तु १८५
षवाद्गिरः ८०४
षर्सं प्रजायाः ३४२
षक्षां प्रजीवाः ४३२

#### ग्रा

भा अन्यमी: १४६ भातिःसभवि १०⊂ था-गमे: चान्ती ८६४ षाङोऽस्घसोः १०८१ चाङी भाइगमे प्टर भातोऽनाऽदरिद्र: ११६२ षातीऽनः यद्गेः ११५० म्बीताइडा-इडामा-इनयम: ८०८ भात् सुमामः '११३ षा-वाञोऽखप्रसारे ८५३ प्रादिगेचीर्यक्री २३ चादित: १०७२ भादिन: ५२७ चादीपी: २४४ चादूटी त्रि: १०४१ भाबीव्भसात् सेलें।प: १४८ चाक्त्सवर्धस् ५ भागिषि १००€

स्वादः ।

सुवादः ।

報

द्र् इ.गुड्यंडीस्थनिम् किदगमस्तु वा ६५८ इ.डोऽरक्षेङ् सः प्र इ.सक्तव्योग्यः ६४८

इतोऽस्य जाते ४८४ इत् क्रते ४ इत्कारियमियं पुंस्तियो: सी २०३

द्ररगाउनायन पुर≪ा द्रन्दद्दिका: ६८५

द्

र्द्रप् चामवस्थात् २५३ ईषत्-दु:धी: खलभावे ढे ११६१

उ

चचरः सटात् ६०६
चन्न् यपान्तिष व वा ४३
चनाऽगुङ् रञ्चादे नृंपाणि- २००
चदः सः स्थानन्योः २४०
चदीऽनृद्धं ६ ४००
चप-यमी विवाहे ६०६
चपात् सुतौ ८०८ र
चस्रोचीयणसाचि लोपः ६१०
चष्रसङः २४०

জ

कर्वक्षीयं पदशीयं धंस्वनदुदी- ३२४ ऋट

महकाक् ४५ महचः ३८० महच्चीग्रष्ठां ७५२ महचाग्रवसन वस्तर वस्ततर दश- ३० महतीङातत्पुचेसगीचविद्यंचे ३२१ महतीखीडुः १४१ महतीखीडुः १४१ महद्रः श्रयक्-दीपे ६२० चटतौं गः: कित्-व्यां €२६ चटदिरकाबुलें। हप्रात् ६२८

Ų

एकोऽतः ३८
एक्टाञ्चानि ११८
एको युव्सं १७३
एकोऽभियाः ६०८
एरी स्वे २३६
एवेऽनियोगे २०

प्रो.

चों नम: शिवाध १ चोदौतोऽज्वन् तक्तदय-काद्या: ४१ चोदौ चौ १४५ चोर्सोपोऽकटुपास्कोरेथे ४२०

क

सवाद: । कासुकसण्डायंत्रीन ३०६ कामांकंऽकविति ८५२ कालग्रीयच्योः सम्पद्मजादी-कालभाउडेवा २८० काल भावाधारं उदं प्री कि कि लास्यर्थाभ्यांती १४४ ्किंग्रच देका न्यात दिवह्न गागेक - पूर्व कित ठी डीपं ५३३ कित्तिजगुप: सम्म सान भान-किमः कानात् विचनी प्रद किंस: चेपे ४०५ किनव्ययत्त्दीर्हियं प्रश्र किमेव्याचाद्रव्ये चतरां घर्तमा ४६५ कि भि: स्त्रीयी ८४२ किभिलिपायां ८३० किटें।ऽलगें: ११४५ की खोगी घीटी ठी डो डो टी- ५,२८ की-प-स-वत् भ्रत्भावी ११०० कीर्त्तः , ७०४ की योगाती से ११४ ११५१ कुर्त्वासीदराइ सुः खिः १०१३ कुञ्जादेगांयन्यो ऽस्त्री व्ये ४२७ कुटांण्जीञ्चिति ०५५ कुत: का कुए कुचेती इती इच्रेड- ४,२४ कुमादेरीयि १४८ क्षुबन्नीयी तथे ०६५ कुषि-रन्त्र: ऋग्न-षे वारे ८९८ बूबाद्द्रज़्दर: क्षजी इदबी दे क्रजी: क-भावे क्रपः क्रुपी उक्रपादी (४८. क्रविधिव्यी: क्रथी और ०४ 🖰

त्र विष स्**न गृह दृह प्रन्स** संस्ट - ६८३ क्रवसम्भस्मग्रहपद्वपस्पः सिद्धां वा ६०३ कगजानुः किः ११३१ क्गृतापीनुङः को -- दुष्ठी- ८८६ कर्गज्याम्बाहाल्बादेनि: ११४८ कंडक:स्वी इत्वा ४३० कोडलदि: प्वत्यभातीय- ३५० कोरीषटधें ४११ को सुवी ८२५ कौटवामात् तत्ताः १५६ क्त-कृतवतू भूते उभावे वे १०५० कादल्पे १६० ति: स्ववी ११४० र्तनाटि ३१२ तीर्जुक्त्येच ११८ क्यनाम्बीदली १४ क्वाच्यानिषेधेऽलं-खल्ना ११६५ काद्यची चानाव्यपत्यकास क्योऽभव्याद् यस ६४३ क्रम: पेऽपि र्घः ग्रह्म क्रम क्रम भ्रम भास भास चस- ५८४ क्रम गम खन सन कवी विट् १०५० क्रमोर्घीया ११०१ क्रक्रको भिय: १११० क्षीऽपाद्धर्षात्रवासेच्छे- ८६७ को छो सबस्टबधी घो स्त्रियाच १३८ क्रीवात् स्यमीऽविर्माऽतः १६० ज्ञीवादयी: १८१ क्तीबाद्या ३८३ क्रीवे नी लुब्बाधी २४२ क्रदश्यान्येकदिवषुष्येकशः १३

स्पादः ।

तिलात् कतीऽसात् सः घोऽदाने- १११
विप वस ग्रथ ध्यः कः ११०८
च्यद्रागीधास्यो वैरारी ४२२
च्यस वस पूजायांचागार्थाय- १०६६
च्यस वाद स्थास प्याना पागर- १०७६
चेवे प्राकटणा किनी ४८३
चेवे प्रावदेना कांची १०२२
चेवें प्रावदेना कांची तुःवा १०५२
चेष्रयची मक्षवः १०६३
च्यर्ष स्थीज्ञश्रमस्य स्थः

ख

खनसनननां जा भासे ये तुवा ६५५ स्थान हिरे ये ६६८ खनी उ-डरेने नवनाः ११३८ खिप वा ७४ खे भे ने १०१४ खे में १०१४ खे में १०१४ खे में में

ग

गिष्ड मिष्ड नि जनि गन्दिभीऽतः ११२८ गत्यवंत्रमदि चेटावजे उनध्याकाकः १८८ गत्यचंदिमौद्यास वस जनः १०८१ गत्यचंदि मृत्युप सद चर जपः ८२१ गद्रमद्रम-च्यास्यो इने वं१ ८७८ स्वादः ।

गभीनिको: ८०६ गमी≱ने स दम मार्शात्त वाः ६२४ गगंयस्कविदादिभग्ववि- ४२८ गर्भे चीपक-पाइहारकी दे ८८१ गवाबादे: खोडले गौर्खडनीयस: ३३० गास्त्रां ६८२ गीकः सुस्म सी सुवास्थानः सुवां- ५०२. गीउक्टीध्योर्वा ७१२ • गीचेच्छार्थे: ८५३ गुणादिमन् भावे ४०५ गणाडेक्षेयम् ४६६ गुवादीबीऽखबस्थीड: १६४ गुह दुइ दिन्ह लिए। टीमदन्ये- ६५७ गहो गोइ: ६५६ ग्टह्म विनीय विषुव जिल्या मूर्यं- ८६४ गेरध्वन: ३८८ मॅक्ड: खोर्य ५७० गेधीं स्नेधिन एङ-ऋकी: गेव्यास्थी हो दे च ८०६ गैक्यादती ऽपाचादेरीप ३६६ गोः चनटयकौ १००३ मीत्रण मेधादन्तकाण्ड- ४४% मीरतार्थे ३६३ गोर्व्या ३८ ग्यचसत्वा १०८६ ग्यर्थाशंसयी: ६३६ ग्रहनन्दिपचारे चिननान घे १८३ यहस्वपप्रकां जि: ८०८ ग्रइस्वपाद्यो:काङित-कितीर्जिः ६६१ यहेरिमी घें। ऽखां: ७०१ गोरल: ८२४ म्बास्वास्थाचि पच पश्चित्रः सः: ११०८

स्वादः ।

स्वादश

₹

घ

चलनटी उचे ११३४ घटादि जनी जुष क्रस रजाम- 🖦 🗠 घटी खारी वाताद विध्ववित्ताः १०१८ धनस्पर्णे स्थी जि: १०५५ घससद: कार: १११४ 'घस्त्रामुर्तरात् ८८० वसलद: सन्द्यल्घिन 📢 ै चान राजी सखीपय वा- ८४८ घावखसृहणीः १४३ चीटीयोषम् धीरमा ५५० चे चार्दिंढे ता: १०८२ , विपंपरातुःक्त-प्रत्यभ्यति-चिप- ८६० विश्रप्र ५४१ घीऽजी जी: शब्दाधनगतिश्वार्थाट- १८४ घो जें रय: ११७<sup>८</sup> घो ब्रि: १२८ घ्यची-राव्यक ८७०, धां ७१०। घ्यांदीत सः ७०१ ध्यां सौर वादधी: ६८० घाषोङीं ८१8 म्रोवा **७**८६

दः

इण्झोडो लीप: १२४ इला तो वा २०१ इलाम् वा व्यांग्यान्त कनु ६०७ इलांयम् १५१ जिल्हिपद्र: ५३२ इलिंदम् बीणें: ७२१ इल्डोमें: -२१६ चक्रतस्वारे ४८४ चत्र:क्राञ्खाञ्ऽरे- ७०६ चगैकावंक्षीवं ३२२ चजी: वगौ घित्यसेम्त्र- ८०२ चर्णम् वाभी खारी पूर्व्यकाले ११८३ चतु:बड्-डित-कतिपयात घट ४५५ चपोदिताकानिता णः े चपी ऽवे अपक् भूप चरट् भूतपूर्वे ४८० चरफंजीऽदुः १०८७ चर्पाली बची जी गणुः ८२६ चादिगिंनिः चाय: की ८१३ विक्तिद चक्रस चराचर चलाचल- ८८४ चित्रे त्ययदिना ६४० चिदिकारे वा ७८७ चुर्ग्याजिया ७०३ 🕟 चे: किर्बासन्धी: ७४६ चिनसिवा प्य चैक्याचुदषष्ठी ऽः १२१ चुङ्कुङ्युङ्सग्- २११ चृत्सास्ये ४४० चि: क्रभूस्छभूततद्भावे-

Œ

कार्टस्त्रमम् झीस्-वे ख: १०१४ काग्रीका १०८४ व्हिट्-भिद-विद: कुर: ११९६ को ऽच: ६१ को: ग्रुटावणा अस्को- ८१४

मधो ऽदी यपि च १०८६

जन-खलादि गीरथ-वातात्-जनवधः सेमगी (कमवसाचसी- ०४४ जयत्यो: खोर्थे ८१६ मरस जराचितु ११५ मरातीऽस्वा १६६ नराया नरस च ३०८ जस्मसी: मि: १६२ मधीधमाधि इत्यसि- ६०० ' वार्ययङन्त-यज्ञजपवददनम्- १९१७ जायो (पाव वीण जिति ससुकाने- ६८६ कातमदद्दादुक्यः १५७ कार्तरतो ऽस्त्री-युखः सत्काखः - २**८**३ नातु-यद-यदा-यदिभि: खी ८४५ कालपिभ्यां सदा चीपे ६४० जिंवान्य: किति ६६६ जिघें। दस्य: १०३६ त्रिनं वा ८३८ कृत्रयो नृजि: ११०४ निर्गि: सन्द्यो: च्चपद्यीपामीर्थः ८१२ चानयवप्रजीभे वद: ६०० द्यानार्वात् चेपोपनयन- प्रद्र ज्ञाचेंक्हार्थ जीकीलादे: सति १० थ५ चीऽचाने घे ३०३ ज्योति र्जनपद राघि नाभि वर्ष्ः ज्यो बहुर्ययस्त्राः ४०२ ज्वल द्वल द्वाल ग्लासाय**न र**म- ७८८

भाप्भाधी: खस्भावी वप्नवावनी च ६४ भवनदीपौर्यमास्यायदायसीगिरेळा ३८४ भभखयद्वं कृषां जब्चप्-भभानस्यादिनवां भभाः फी, धीसु- १७७ भाससात् भासीम देमि से लापः ५६२

स्वाद: 1

অ

जपे जम नी: अपंडिक समीर्ण च्यक् च ६ ञन कप जभ दह दनग्रभन्ज ८२७ अमुकी भाषायी चाति कि १०३८ ञने ञन्या पृष्ट ञि:काल्यादे: ८५८ नि: प्रंचे ००० जिञ् जान-पिब-धे नृहद्दं वस- ११९ ञिभाजभूसइ दचचर बध- ११०€ जि यि संदुत्तमो ऽङ्घिकां .∢≀३ সিদ্রী: र्ख: स: ष: षः षः प्रस्तित्- ८ । ৪ जीमंच डिन्नैकाच: ४६० जी-वि यस्य ग्रस्थ वित्ति वन्दासी- ११५८ . જેટેંડ જો ઘે દ્રશ્ ञे लीपोऽनाल्विणायानी- ६४१ जिंगसम्बेजुङतो: ५०० ञाञ्जङः खोऽनग्लोपि शाख्दितः ६३५

टादसयास्त्रियान्तुना १२३ टाभिस के कसि कसीसा- १०६ टौ ठौ ढी घी ढिच: संमसु- ५५% टेरासी १८७ टे लोंपी डिति विंगते-सेखडी १२६ टौसीदमांऽनको उन: २०५ ट्यासि: **५५**१ द्वितीऽयुभावि

ठौ-प-<del>म</del>ःवत् क्रमुकानौ क्यांगाञ्च अङ्ग्रनी खुवा क्यांव वे-प्रच्छां ६६२ व्यावा ६०४,०००

सूचाइ: ।

ਢ

डितसङ्घाणी नस्मधीर्लक् १३१ , डस्डीधीवा १८६ डाज्सीडितादेः पद्य ८५० डियसकी विसक् ११४३

₹

हिषे कात् भौतक सम्योनिया- ४२६ दिवे त्राय स्वयुक्त त्रवत् स्वयं - १०५ दिवे त्राय स्वयं क्या प्रथे प्रथे दिवे त्रियं प्रथे दिवे दिवे हिष्टे स्वयं क्या प्रथे हिला स्वयं दिवे हिष्टे हिला स्वयं १००६ दिवा स्वयं १००६ द्वी दिवे स्वयं स

गा

षचस्यसाहनी रहीप्वात हे २६१
षायन्त्रं वा ५०८
षावाती डी: ६०८
षानितीऽन्याचीऽनीऽन्यस्यादी १०
थिने तिराद्यच: सुभग-सुपद्याखायील-४१६
षहस्यकां ६८६
पार्वुकचाकङिति ५४१
पार्विकसाकङिति ५४२
पार्विकसाकङित्स १२२
पार्विकसाक्ष्याः १७०
पार्वानिनि ६०४
च्वात्रिद्याः ०१८

स्वादः ।

ਕ त-तन-खादीयी कोबी: ११८ तदो दानीं वा प्र१६ तद्यीगेवा ८०€ तन्थः ग्रप्रेचे ्दद तन्वादेवी १७६ त्रपीढात्यक्चरे ८८२ सप्तान्ववाद्रवसः १८७ तमट् षखादेः ४५२ तरतमी दिवहनामेकोत्कर्षे ४६२ त सं। यं। ८० टिस्सिती देखनां वा ५०२ तव्यानीयया द-भावे ८६७ तस्ती: ५११ तादर्घें चतुम् ११६४ तार्थं मानात् कास्डास्त्र विषे ३०१ तिर्य्यगमुसुयगदसुयगुदचा तिरया- २२५ ती प-म-वत्स्यत-स्थमानी ११०५ तीय सम्ब वीज सङ्गादिगुणात् , ५०३ तीयो ङिति ६० तुलेच्छाराताराधाराकारा- ११५५ तुद्योसातङ्वाभिषि ८५६ त्रवनी में ६६० हन्**रांन-लुक्**वा प्र−**वौ** ७५४ हन लीय: ४६८

त्रप्राचीनां वा २०४
त्व सव क्रष वन्च लुन्चृती वा ११६८
त्र फल भज चप ऋष यथ दभाय - ५७६
त्र भल क्रज चप ऋष यथ दभाय - ५७६
त्र भत्र दृति इत्त यम दम- १०२४
त ख्वाः, श्रक्य। क्रोंगे व्यासुक्ता - ८८८
तीऽन्यादिमीऽनेकतरात् १६५

त्वत्राद्य चिर दक्षिणाद्या देखाः ५२५

त्यदांटेर:क्षी १३३

सुवाङ्गः ।

खदांतदो: स:भी २१४ खदादि भवत्-समानान्योपमानात्- १०४७ स्यादि-व्यासभीस्तिसिसं- २०८ स्यादेश कपः ४६४ त्यादिश्रीने कल्पदेश्यदेशीयाः स्ये ∢० स्योवनात्रीलीम्य: चवत्थाच् प्रकारे ५२३ चासुसिस्मन् कानिप्वनिप्- १०३२ विम: प्री दी नी ची पी घो प्रा: चीप्रशिर्वा ३०५ **चीसे ल**ती क्रिं २ ट वेरयङ्गामि १३२ प्राद्याऽर्घार्षैकक्षे: सेस् सर्वाः लती भावे ४३८

ग्र

यफाबुङ: ११७०

द

दिविणोत्तराहा है। ५२०
दम्भावद्यस्ट्माने ५०६
दहः जह बाक् पाट्यी सूदू-१०३५
दह दीऽधः १०८८
दश्यास्यसक्यच्योऽनङ् १९०२
दश्या न-लीपी वा ८३८
दश्या न-लीपी वा ८३८
दश्या कार्या कार्या वाम् व्याद०७
दिश्चा का्य कार्या वाम् व्याद०७
दश्यो डिल्डंसंऽची हारमील् वा ०००
दश्यो डिल्डंसंऽची हारमील् वा

सूत्राजः।

दान्तवत्.सभि ८३ दाना शाल पूर्ण दक्त स्पष्ट च्छन्न- १०७८ दान्तं मोऽसमाजो इसे नु: ५३ दामागै इतक पिव की क्यो∞ ६१२ दाक्स्यङ्गले: ३३५ दायान् साहान् मीद्रान् १०९९ .दिक भव्दात् दिग्देशकाले सात्- ५१८ दिव भी ङ्सी २३८° दिव-स-तुद-कध-न्यादे यंग्न- ०३८ दिवो घंवा २८० दिव्यवस्यो ऽजिगीषाजास्यभै- १०५४ दिस्थोरमवा इटह ' दी इन्ह्रांयन् यश्णी उद्यासनि- ०४३ दौषीविस्री न गः ७१४ दुग्वीर्घम १०६० द्नीभुज्यलाद्यासमसी गींवा १००० दुर्षरोद्रः ७८६ ह भ जुष्टस्तिन शास्ट्रहर-हजो- ८८१ दश कास युध छव सन्दो छ। ११६३ दयीर्षु: ६१८ देथे पाच ५०० देवादे बीम्गोस्त्राच् पूरर र्दशात् ब्रह्मण: क्स इद्वान्तुवा ३६० देशाध्वकालभावं वादै: २८२ दैकां शंऽज्ञवे ३१० दोमोऽदस्य तौ २०४ दी-बी-मा-स्थां ङिस्यणी १०८३ द्या कितामम् १५६ द्युत-स्वायो: खेर्जि: 🔏४७ द्यृत: का: ३३२ द्वार खार ख: खिसा खाडु च दु- ४१८ दितीय हतीय तुर्यं तुरीयाः ४५०

स्वादः। विवेर्भूतः ३३६ विवेद्याञ्चलेरः ३७३ विवेद्याञ्चलेरः ३७३ विवेद्याञ्चलेरः ३७३ विवेद्याञ्चलेरः ४६१ विवेद्याञ्चलेरा वावधी ऽष्टा- ३५१ विवेद्याञ्चललेपिनः १९१८ विविवेदाती ऽन्म् वा ६७५ वीचीघीषां की वैंद्यां से भी वां-नी- २२० वीटीसिटेतचीरिनोऽन्क्रो २०८ विः पिवः पीष्यो जाङ ७८३ विः पुरुष्टं खिः पुरुष्टं

हिंदें की दिगिष्ठां ६४६ '
हैर्ध हेथा वैध वेषा षीढ़े क्रप्यं वा ४५८ हैर्यस्तपुत्रबन्दारस्त्रज्ञानभस्ता- २५५ हान्तर्गेशेंद्रपोदनात् ३८६ हा दों घी दें घे हो ७३५ ' धा धनोदसायस्त-वसायस्त्री ग्रेडपानाव्र<sup>4</sup>्र८६

द्वे: शतुर्नुगुभी १४३

धान की तात् १६६
धान की तात् १६६
धान की तात् १६६
धिन समय। निकषा हान्तरात्तरे २८६
धिटी सेः १५०
धरीऽन वस्याः ३८८
धिर्ष छा छा ५५०
धरेऽन वस्याः ३८८
धिर्ज छा १५०
धेर्य डक्ष-पा-घा-धः मः १८८८
धेर्य डकी वी मनसः १३३
धिमाच्छा सामः सेः पे जुन्ता ६१४
धे सखीपी वा ५५६
धी: के लिसी उचे १८८८
धी:— तिप्तस् मनि सिप्यस्य-५२६

धी द धीऽनलीपे तथि ०३०

सवादः ।

घोरालोगीऽच्यवी १२० घोरियुविच १३५ घोर्गेगः फम्बि २०२ फ्रीच्यगत्यदगर्थात् उंच १०८४ घ्यांसम्बवेयी ८६३ न न कित्रस्तर्दस्यन्दः ११६०

न िकतस्त्रस्यन्दः ११६० न गौष्यार्व्यायत्रीसासे प्रथ न प्रपत्तितिप्रयासस्यूच- १०२६ न जोऽनौ वाज्ञभसीः ३१५ न जोऽहवे ४०६ न जाऽहवे ४०६ न ज दुःसीः सक्षी वा ३४१ न ज स्विच्युपाचत्रीऽः ३४५

नज्मानव्यपाचतुराऽ २४५ न साटनङस्कन् ग्राम् सामस्य प्रसि वा ५० नयान कीष्यः ०६१ नयौ नृऽयौ ०५८ . ' न तपक्ष सटपचटुइः ८१०

न दंतसी लक्ष्यों च ४३१ न दुख्डोऽचि ०३४ नन् पुंस्त्रियो: ४२६ न मन्-सङ्गासस्त्रनादे: २०६

नमसपोवरियःसाष्ट्वादिश्यः काः- ८५,४ न-सोपः काद्ये ८४४

न वश: ८३२ जनगः एमे जिल्ली

नवन्न: पर्नेजितीऽन्यज्जिद्वांचे ५.३१ नवे-क्या-व्योजि: ११८१

नग्र नीग्र वा उटे ७४२ नग्र नीऽनिम: ११०१

नसम्मद्भीऽघोर्घेरधौषी १६४ नदोधङ्भी २३७

नका घड्ना २३७ नाजनादेगदि हैं: ७१९ सुवादः ।

ना जीयकी (नाङ नि: सम ४० नाड़ी ग्रनी सन कर सृष्टि- १०१८ नाप सम्बार्थवदैकाजतः प्रभु नाभेनांसि ३३८ नास्त्रान्येतिकच १००७ नास्त्रास्ययेंऽचीर्षः ४४० मारी सखी यवानी यवनानी- , २०४ नार्चीयां स्वते: सस्वादेर: ४०४ मावश्यको त्यज-यज-प्रवचाच ध्यवि ८०३ माविशेषान्यायामन्त्रात् नावीऽर्ज्ञात् गेच ३६४ नाव्येष्ठां ६६५ नास्त्रीयुवः ८७ न।क्रीरकती ०५ निजांखेर ग्रः ०३३ निर्द्वारेऽधिकेन कियाल: ११३ निवंत्ते भावादिम: ४८८ निर्वाण भित्तण वित्त पुत्नीत्पुत्न- १०६५ नि विपरि खन्ज सुसुमादेः सः - ६३३ निसव्यपहः प्रप्र निस: श्रतो ड: ४०२ निक्रवे जः ५८€ नीन् वन्च सन्स ध्वन्स अन्य-नुष्जभीऽचि ६३५ नुखयमादी भागन्तरकादी तुवा १६३ नुसिकांऽचनानि १६८ नुष्रधीमुचां नश्मस्जी रमलभी- ७४१ नुमामः खदाप्रङ्गाणः नुर्व्वानामि घैः न्पीऽस्यस्योक्षीपी वृति वा ६२२ वृत्कत् चृत्कृत् हदी ऽरसी- ७३८ मृत्यानरन्जः घकः १००२

सभाजः ।

नेण तकी इनुतावे ८२३ नेदिनपूजार्थाची: ५५८ निंगऽसुन्त सृह य स्ट्रय्सी- ५५४ नेसुगुहराह: ८०७ नेसतस्यपोऽवस्कः ६१६ नेमंका जाब्हतो ऽश्वित्रिडी- ५८० .नेम् डौ यौ दिदेमी ऽपत्यनेकाज-नेस पे द्या: ६५० नेम संनिव्यई: १०७६ नैकाचो ऽव्यक्तानुकरणात् डाच्-**नैकाजादिन्**वा ४४४ नी ऽचीऽन्तरदुर्गे: प्राग्वसी ऽख्यास्त्र- ८६८ नी नामि घं: १८६ नोप्तामकोङ्पूरस्याख्यायुसक्त- ३२८ नोष्यको सर्वातृत: ०६४ नोऽप्रणामऋते ५५ नो लुप्फेऽधी ११८ नो ऽसङ्गादेर्मट् ४५१ यादि आनाढगवर्षा ८३२ न्याप्दीभ्यो खेराम् न्वीर्लीपौतौ तेऽची

#### प

पञ्च तिप् पञ्च श्वना इय ०२३
पञ्च र: शिच ५३०
पश्चावया वर्षा वार्य वज्ञा वयः ६८०
पति स्टिइ स्टिइ शोक भानुः १११२
पत्यामपानकानात् २००
पत्थ प्रसे १२०
पिथपुस्ते वा ४१०
पिथम स्थूमुनां सितो नेभी सौ १८६
पयी वा ४००

सूचाइ: ।

षच्यपपुर: से इद्यू पदसनीण चै प्याय ताय दीप- ६४३ पक्षती प्रक्ती युवल्यन दुग्दी खन्ये भी- २०५ प•स्यः १८ पिक्रियोधीवा २८७ पर्यन्ववाङः क्रीडः ८६५ प्रशास्याभी-को सदी छ। ७२८ पश्चभ्यः स्थानदिषटःको गोष्ठः ४८० पाच्छीगादिम्बाङ्गेतीऽक्रेर्वा २६५ याग्ड्डकक्रष्टात् भूने: ४०० पाति स्कायी लंन् वङ्गै औं ०८० पात्पत्पौ २२०१ पाइ दम ग्रंघ निशा पृतना ११६ पाध्य भाष्य प्रवायानाय कुल्डपाय- ८०५ पाम: क्वत्सायां ४०६ पिडसस्यम् ब्रवी यङ्लुग्रत्- ७२२ घीनुतिलीमाकर्षांदे: कुणतेल- ४८२ पुंवत स्त्रात्तपुंस्कं: स्त्रियां द्यमा- ३२० पंतर् से: 🗣 ३२० यंवदाधीं ऋपंस्तं दायचि १७१ पुंम. सन् खर्धम्परेऽच्ये ५४ पृंसितु अस्न १०५ पुंसीऽसङ्घी २३१ पुरुषाका ३७२ पुर्वी वा ७३० पुत्रकासक तक चत्रयत प्रभी- ८०६ पूक्ति ग्रवम जप व्यायस सयीची १०६० पूक्तिग्रदित इ.स. ११७२ पूजाभिभवेच लापेः ८१४ पूजीनाधे १०५८ पूरवी शिया मनीश्रा सुभगा-पूर्वकाले ११६६ पूर्वादे: स्नात्सिनी वर ११४

पूर्वा राष्ट्र प्रथम चरम तथायार्च-वुर्व्वाधरावराः पुराशावाः स्नाद्धीः ५१२ पूर्वाचाचतरेतरापराधरीत्तरी-पूर्वीत्तरसगाचानते: सक्यः ३५८ पृब्वीऽन्यादुङ् ८१ पू भी ध्व निद सिद सिद समार्थ १०६८ पूर्वास्टिकिया १८० पृथं सदु लांग भागः हट परिइट्खरें: 8% प्रभादे र्डि: खेरे •१६ ष्याय: पी यंड ्यां: ६४५ प्याची ऽगे: प्यस्ताङ्गेतुवा १०८० प्रकारिकातीय: ४८% प्रतारे विश्वगर्हे: ८११ प्रतिज्ञा-निर्णय-प्रकाभी संप्रव्यवाच-८६९ प्रस्ववात् सामलीयः ३८२ प्रत्युपीपात् **जा: सुम् इिसाच्छे दे ०५**३ प्रखुरसावगवे ३८८ ' प्रपरापसंन्यवानुनिर्धृर्याधिस्त्प्रिः प्रभास्य: य: ४०१ प्रश्नाच्याने णि: ११५६ प्रस्था**स वा, जिय १०**∢४ प्रसादीकाहाः १२ प्रागच्कार्थादचि हि: ५३० प्राग्वत् नी भीऽतीऽइस्य ३५५ प्राग्वभी थी ऽन्तरदुर्गे र्यादि इन-पादगींक: सः वीऽच्ये ६८३ भियवशाद भयर्षिनेचात् सर्वः-प्रीधूजी नेन्या ७८८ पुदुस्सः स्वोऽकः: १००५ प्रीपादा**रक्षे** प्रश प्रौक्यासमावने ८४८ प्रादे: सी ने ब्रादिस वा ०६८

त्याइ:।

ĸ

बहु-गच-पूग-घडातो शिष्यट्- ४५६ बहुलं ब्रह्मिच ११८४ बहुलां बास्यास्या ४८१ बाह्माचातीऽत्रागं विदेशियों के ११५ ब्रह्मा कह भव सन्त्रं स्टब्स्ट वक्ष्या- २०१ ब्रह्मा कि राज पर्य्या व्यवस्य १८४ व्यवे इसीये ४१

भगवद्घवद्भवतां भगोऽघी भी वा धी २२६ भनजागिलको वेलामी नंसीप: ६२६० भवद्रभूतभव्ये विश्वः क्याद्याः १३३ भव्यो वाफल हेली: ८५१ भान्नेतु: ३४६ भावधेलाणितात् भुवः १०२३ भावादिहेवा १००३ भावादिद्वं वीदुको ऽव्वतः १०६८ भावे माद्यं ८२५ भिष-जला-अह-लुग्छ-इज: वाक: भित्रान्येकार्थद्यादिसङ्गाव्यादीनां-भिस् भिसीऽदस्य २०७ भी भींच या ०८५ भौषि चिनि पूजि अर्थि हान्वि ११५६ भुज वच-निषयुकी ऽज्ञाशब्दशकी भुकोऽग्रने ८१० भुव: बानी वा मं ५४% भुवी घे स्त्रिण-सुक्र औं १०२० भुषोऽक द्यांट भावेत्वा ५६० भुवी वन् टीक्यचि ५५३ भूबोभूमभूविष्ठाः स्योऽमनादेः ५०१

भूषरं ६८२

भू स्वापित देनी लक्ष् पे ५५१ भू-इन. केय् भावेन तस ८४७ भ्रमादे यूथि वा जन्म लीप स च ८४ भी सिष्यो संस्कारिके च च ८ भ्रमाति क्यू के भर हरिद्रा - प्रश् भम् ति क्यू के भर्म के वि क्यू किया हिया हिया के स्थित के स्थाप के स्थित के स्थाप के स्था के स्थाप के स्थाप के स्थाप के स्थाप के स्थाप के स्थाप के स्थाप

मधीनसङ्बा क्रियो: १८१ मतुरस्यर्थे ४४१ मनयत्त्र्यतोऽकरभोरहो ऽसा- ४८८ मनीवा: ३८ मनो खाप २५१ मलेगीपात् ८०१ मन्दाल्याश्वतु सेधायाः १४२, मनात स्वार्थे १०१६ 🖊 मन्वर्जान्यर्घोषस्थेनीऽभी- •४२४: मयट तट्रपे ४८६ मइर्सकार्थं जातीयघासकर- ३२६ माठीवा ८५८ मातुलोपाध्यायचिषयाचार्थ- २०२ मात्स्वर्षायुक २३५ मानादी सायां ढे २८१ मानोऽदनतः ५५५ मान्तीरम् विद्रम् वा ७११ मार्जात् क्रामी नेम् तथः १८२ म।स्रोग घोष्ठौ ८५८ भिष्याकारे-रभ्यामे ८१५ निद्रभास-अन्जो पुर: १४१५

नि भी नादारभ लभ शकापत-मिस्यो र्यवणी ङा दखललि ७४५ त मखार्थीरसः ३५८ सुञ्जकूलास्यपुषात् घेटः १०१७ मचीऽढे देशींच वा सनि ८१५ मण लभी ऽनिकदःसीर्गैः खल- ११३० मुडांचङ वासी १७५ . महर्स्यार्थे हितस्त्रध्यं ८५० मूच स्व न्वाटमर्च्य हसादी- ८२० मृङ्षीको मं ७५० स्जीऽकाङिति विवां लच्यगी स्षीयं नित्यं ६५€ मैत्राध्वसङ्गाराधि ८०२ मोङम-भूपात् वतुः स्रोर्नर्भसदान्ते स्त्रीपो वानिमः ११००

यङन्त-चल पत सइ वइ: वि: १११८ यङखको 🛛 द्री ४८० 🕐 यङलक्कालीपे ५रेन गुत्री ८४१ यङो लुग्वापीके लुक्त प विर- ८३€ यञ्च-यत्राभ्यां तेपचित्रे च ६४६ यती ऽपायभी मुगुप्तापरा नय- । १८८ यन् जिपत्कदिखातः ८२४ यन्यीश्रमादिनिदी खीपर्षण ७४० यम: स्थने वा त्दा हे प्रा यम मन तन गमी ऽन्तर्लाप: स्ती १०४२ यमरमनमातः पे सीरिम् सन्- ५६५ ययो लों पी ऽयुक्ती भी २५५ यनायवायाबीऽचीच: यलीऽचेक् जि: ५३५ यव: किति ६६४ य वाचि ०१

सूत्रादः ।

यस्रौ दिक्सास्याकोधिर्योक्चि-याच आर्थे दुइ चि प्रच्छ - २८५ यायातीऽत: ५४५ यायाय भास कस स्योगः पिश्च- ११२० यावत्पुराभ्यां अच्ये ८३५ यासी ऽस्य ५१०२ थि: सन् वेष्यां दि: ८०२ यिनो ऽच्यणी 🐠 १ युजिर छद्ग्यची ऽयज्ञपाने ८१२ युजिरीऽसे नुग घी २१० युद्धां छे-डों: १२५ युद्ध्यां-सीयू १२१ युषादबादी-स्वाधी युवाबी युववयी- २१५ युषादधादलनादां युषाकासाका- ४३६ युवाल्पीकन्या ४०४ यतोऽम्यसी मांवदीधोः १३४ यम रूथेव दी ८६ यौराप: १४८ यालभी मुख् १०० यो र्युम् दान्ते ऽस्तद्भ व्यद्भ व्यक्- ४१७ योर्जीपी इसये ६४२ रक्षी वि: सुपि १८७ र-तनी यंगिषौ ' ८२१ रन्जी ऽपषकानास्च िंगनी न-जीपी- ६६० रपिज्ञस्युत्ती ऽदेतिः ६५० राच्छ्रीलीप: १०४० रात्रर्भन्याक्तति ८८५ विचीऽवे ७२ रीवृत्वत: ८१० रीनो रिन्रनीवा ८४० बदाय सिसे दिंखोरी सु ५६१

बह्मी ऽथी इसस्येम् ६८५

सूचाङ्गः ।

कड़: पड़्वा ७८८ क प क व्यं प् सं वा तित् पं ४६३ क प नाम गीव स्थान वर्ष वधी- ४१४ दे रा स्मि १४७ रोऽव: ७३ रोम या च व्यं प् प् १ चीं ऽज्भानिकामां प०५ चीं ऽज्भानिकामां प०५ चीं ऽज्यारे ५८० चीं दाति गीव: १०८० चीं इनित: पर्ह विजादि-द्याया स्थानिकाची- ५८२ व्यं न्यूत्योको घोचीं इक्ष रक्तुरी- २२५

खाल्यो र्जमननौ स्नेहद्रवे वा ७८१ लिधोयं येष्टं हि:, कण्डायनायां सु- ८५१ लिघोर्वा २५ लिफ्सायां वा ⊏०३ विसामिही १३८ लियुपदकादि त्यादि विग्र: १६४ सीकोऽर्घात सः पति ४३८ ल्किन तत्र ∙ ८३ लुक् परात् ३७६ लगङ्गाऽप: ६७० लुङ मद्वद्विनां ४६८. लुपिन सन्ध्याद्यविधी १५ ल: काम्यक खेकायां ८४२ ले: सवाव्याने जि: प्रभू ले:--सि भी जस भम् भी मस-सेर्वद: स्वप्यौ ८८५ खेर्बहु: प्राक्त ४७८ लेल जी: कीपीऽचाची १८८ લીયો અં: ૧૦૭૦

स्वादः ।

सीपीऽतीऽदेशी: ५४६ सीपोऽतोमं डिंद्रसीरघ्यां ६८१ सोपोऽष्योमाडी: २६ सीप्योऽन्ते थी: ७१५ सीसोऽन्तर्वहिंथीं ३४० स्वमावतास्त्राणकसदे घेवा ३०७ स्वथंसम्बुतुातार्थे थी २८० स्वृध्दान स्चर पूस्द वह ११३६

वत्तस्य ख्यालिप सिच ही ङी वर्षाऽरे ७२५ वच्चस्य त्रियतां शोच स्थात्र पता उन्हे ५५२ वनतनांद्यनिमां अमुलीपी- ६७६ वर्दङीधु: ७८० वर्द्रोऽकिजभसे हमस्त्रजीस्तु नित्यं वसीऽरस्थमनौदित: ५५४ वसीर्घर्सकाजिनात इस १०८७ वर्सार्वः सेमण्र्मतुष्योः २९८ वाचक्रमार्थतच:•सुर्धेरे ६०१० वाऽगे: ८१५ वास्मि वाचाट वाचाला: ५४५ वाचापीऽनुऋष्ंस्वस्य २५६ वाक्तः बाज्यालेः २६८ वाच्यघी १४० वाड़ान्तिक स्थूल टूर युव चिप्र- ४०० वाढेऽप्युताभ्यां खी १४८ वातीऽवाची: २४८ वात् त्रोची ऽती ऽप्या: ३०४ वालास्यपेऽस्यम् ५२ वाधराचात्ताः ५२१ वानाप: ३७० वानेकस्मार्थे ८६२

वाप: ११७६

वामि धप

वास्याङ २३८

वारादर्थें: ३०१

वाव गीदांनी ३%

विंग्रसादे जी ४५४

विच्छामतिपणी वाय:

विजेर्गेनेंसि ७५८

विडवनीर्ङा १०३१

विभी चुझुचयौ ४८८

विन्दिच्छू ११२४४

,वारे प्रधर

वान खचण ग्रफ सह संहित-

वाद्याम ऋष लार संघ्याखनः

वा श्रम यम फण गिच्छदां

वाष्ट्रनी समाभी डी: २००

वाषीषिकवध्सादुद्वानी ८५२

बाड़ी बर मी चितामुवा १०८ प

विकारसङ्गावेदं हितस्वार्थादी ४३३

विधि-निमैत्रवामत्ववाध्येषंय- रप्र

विस्तभा निर्व-वि-सु-निर्दःस्वप:- ६२५

हच्युत्थाइतायने क्रमः परीपक्रमः प्रध् इक्क्ष्रों नेम् पे स्वसनी वांत्वसे ६४८

डवाकष्ययिमनुपूतकतुकुधितः २०३

नृती वेसीचा ऽठीठीपमे: ६२०

बुद्शिष्ठ्रणी: किता नेस् १०५३

व: पश्चि: प्रश्

वे: संडियसन्ते इते 📢

विमति व्यक्तसद्दीक्यो: ८०२

विश्वराजीऽदा २१२

वीव दे। घट की १०४६

वामेच्यी मिंच्यी ११८०

वैदेखी १३ विपरा-मि परिव्यव-क्षी नि-विशा- ५६२ व्यामप: बद१ व्यंखपश्चमी आरः प्रश स्वादः ।

वेक स्वयार्थेऽसे ४४ वेड्गणकथ: खंड्यांहर ७७६ वेज़ीवयवा €€₹ वेषज्दहः ६२६ वेत्ते: कीपंठीपंवा ६८६ र्वत्ते: भतु: कॉनुर्वा ११०३ वेध्यायाको १०३० वेमूदित स्वर चाय स्काय प्याय- ५०३ वंग्सहल्भ स्मृगुच वस लग- ६०६ वैकोनस्येकाद्रैकाका अङ्गायां १५२ वैशोऽनी प्रश्ट वाजन्धृतौ ०१२ वार्षाः विश्वस्ते गः ७१६ बीष्ठाली: से २८ व्य पूर्वं ३६६ व्यवीतिरञ्गिदसि ७५६ व्यजीऽरं वा त्वनवस्य-घञक्ताःपि ५५६ चटेलें।पीऽनाराच्छत्रतीऽचीऽयी ४३० व्यतीहारे गतिहिंसाभव्दायं-इसान्य ८१६ व्यतीहारं चि: पूर्वी घी उनचा वा ३४८ व्यतीहार गन्स्त्रो ११४१ व्यथाग्रह च्या वयं व्यथं वयं व्यच- ६५१ व्यस्य ग्यनुकार खाच्चिकर्ण ८ लं- ५४ प व्याच्छस्य गत्यये ४ देस: ५०१ व्यादनञः क्वीयपृषे ११०६ व्याप्तीभावेषिनः ११४० व्याझुक्ति: २४६ व्यासादेर्ङक्णी ४१६ न्युडीऽवी इसादे: सेन: जाब निदा- पश्य सवादः ।

व्रजनदरस्जनिमी ऽञिश्विजागु वि:- ५०४ व्रश्वे: कडः च विदचीऽदेनीय घी र्ण-कंक्यांय∗यु-त तु-ति-व **भा**: श्रंगव्दै: २ र्व्याद: ११५३ शक्त सम्बात द्वि-नायात फर्ले-प्राचे हैं १००४ ज्ञतार्थ वत्रङ हित-सुख खाहा- २८५ क्राकित्वयस्ताच्छीलये भतुः द्यानः ११०४ भ क्। ज भाग यन वन स्त्र स्त्र-१५ँ३ भात सद नि घे दे। व: १११३ भ्रतादि-साम संवत्सरात् इ।दे।ऽगतीतङ् ७८० प्रदेग इपि मं ६५४ अरपदाभीर्गत्यनुकारे भप-नाय-क्षत्रः प्रद श्च्दढाढाई: म्प्य भ्रब्दभुखकरादेः क्रतिवैदपापे ब्याः ५५१ भ्रार्डिपाडयश्चेतीसनीविड्पाम्डिः प्रहें महारक्षमीरग तुरग तुरक्षम- १०२५ शसिश्रस ६० भ्रमगमिर्घ: १०४ भ्रम्-स्यम्-ङ नि·स्यम्-ङ स्-सामां न- २१८८ श्रद्धायपात् वासि क्सभी ६१ प्राच्छासाक्षाञ्चे वे पांकौ य**न्** ७८२ प्राने इती मन् ११०१ भासक्ति इसके ऽयो को लागासय ००५ शासु जिद्दातपुषा दे उर्देशी पे ज्- ५६५ ब्रि:क्रीवे पर शीकी क्य येऽची प्रश मीङोरेष: ०१०

भी ब्रज यज विद खास मन चर- ११५०

मनाइ: ।

गुम्छ। चभ्छोऽपकर्षे रष्टरी ४८१ युनीरुत्यप्राग्यपमानातः १५८ **मृ**पुदांस्तीवाक्तिट्यां ७७२ भ बन्द आहः ११२६ गस्याभ्रकस गमाइन लघ इष- १११० भी ब्रते नित्यं १०८५ म्नाद्यीरा लीच्यी ऽगौ ४ में लाइ: ७०% मुध्वेरिखचीयुवयी व्यक्तिसात्री- भूप्प यज्ञार्थे वी ऽयदि ८५० यन्य ग्रस्थ दनभां चिप न-स्रोपी वा ७५० यास्स द्रुप्रसुभुङावा ६१० यो: प्रुधिरे जिय ६९१ 📭 श्वयुवसधीनाम् वैदिते पौ १८४ यस व्यर्धन तन दाव इ.स. १००१ र्वितवाहवयाज्ञक्यशाम्प्रीडाशां- १८४ त्रतात्रात्रसरगासीडिताहरसस्या- ८५६ श्वेतिर्वायङ - खो अंग्रङ्भनीः

Ħ

पदी: सा से ६०२
वसा वसर्गत वस्त्रार्थः ४८
वसा वसर्गत वस्त्रार्थः ४८
वन्त्र दन्ग्र स्वन्भीऽपि नलीपः ६२८
विज्ञा द्ये न ती यासे १०५८
वीडः फे १५५
ष्ठितः प्रवादीन्तिः ४०
दिन्नच्चा इनदादरीप् २५०
विवनायीः खेडक्को ना ५८८
विवनस्वीवने वा ११२६
याक् भूजेः ११००
या कप्पच ४८९
व वांऽदासे नी ऽवक्वपून्तरे- १००

स वाजः:

संच्यी: ८११ संजा: कं ३१६ संजीऽस्मृती ' २८२ संटानी भेऽधर्ये निर्ध २८३ संपि∢िव्यीवा ११८२ श्वंप्रतेरसाती पटप सक्तन, दिस्त्वा ५१६ सकीऽस्रोपीऽचाववे ६५८ सक्ष्यक्षाः षः खाङ्गे ३१४ सल्ब है। राज: ष: षगीच १५३ सळ्छाडिता-माएउससी, १२६ सख्दा सेडांचे: १२० सक्राया भवयवे तथट ४६० सक्ष्याया उट्पूरणे ४५० सङ्ग्राया डीऽवही: १३८ सङ्गायाधाच्यकारे ४५⊂ सङ्गाया नृदीगोदावरीभ्यात्र ४०१ सङ्घावत् उत्यक्तहगणा निपि १०१ सञ्ज्ञा-वि-साहाहाक्री ऽइन् की ११८ सङ्गाव्याद्राचाङ्गुलिभ्यामः ३६७ सङ्घाशन्यतो डिन् ५०० । सङ्ग्रासंभद्रान्यातुर्ङ्ग् भो ४२५ सङ्गास्यमानात् पात् पादोऽहस्यादेः ३४० सङ्ग्रेकार्थात् वीप्सायां ४८३ । सतिसातीवा १००८ सत्सरे ६६८ सन्खद्मीष्ठ्यां नाखेः ६३४ सदाध्वादि व्याप्ती सम्बैं: सिक्के तु धं २८३ सदानुत्रीऽसादिष्राः २२१ सदानीऽज्ञीपीऽस्वस्थात् पौवा- ११७ सध्वे रस्रेम् जनीडीम्: ७०८

स्वादः।

सन: पभी घी वी लायात् ६३६ सन् यन्य ग्रस् ब्रुकृगृ दुइ नन- ८३१ सभ्जादि र्घः ६३१ सन्निच्छायां ८०३ सन्भिचार्यम् उ: ११२३ सन्यङनी दि: ६३२ सपन-निष्यात प्रियसुखात् सद्र- ५०५ स्भमीचाङ २१७ सम: प्रतिज्ञायां ट०५ समय निष्त्रल दु:ख श्ल सत्याद्- ५०४ समक्रमाभिषी गीं स्पूप् समवास्थात् तमसः ३८५ समस्या २०७ समाभेदिकिनद: सेक्यमू १०४८ समापानुयौ ३८७ समार्थेनार्थससाडितसुखै निर्डार- ३०२ समी ऽक्जने ८६६ समी गमक्कप्रक्रास्त्रयुवेश्यतिंद्यः: ८०५ सम्तुम् मन -कार्म, भवश्यं ख्ये,- १८८ सम्पर:प्रत्यनुभ्योऽत्त्यः १८१ सन्परे: सुमुपान् भूषा-सङ्घ प्रति- ०६६ सम्बुद्धी सिर्धि: ५० सरजसीपग्रने १८० सद्भाषाध्यः ८६६ चरीऽनीऽघीऽफानः संज्ञानात्योः १६१ सर्व्व विश्व उभ उभय भवत् लत् - ८६ मर्व्वे क देशसङ्गातपुग्यवर्षा हीर्घा- ३५२ सर्वेकिटेशसङ्गातसङ्गाव्यात्रैका- ५५४ सर्व्वेकान् कालेदा ५१४ सर्वे सुस्सञ्चक्षां रङ्फेऽच: २२० मइ: चीऽकाले ३०० सइ: सीवा ३३३

स्वादः । सह वें वं: २२ सफ-वहीदी दि ६५३ सहवारणसमीनार्थार्थविनापृथङ-संब-सन्तरः सिध-सिम-तिरि साति हिति युति ज्ति ११४८ साधन हैत विश्रीषण भेदकं धं कर्ता-साहि साति चेति वैद्येकि धारि-333 सिव्यादिः क्तिः 8.5 सीमान्तकांगांत् प्रीचान्ते ३१४ सुच चतुर्दिने: ,४८५ सुभदीहानम्बार्थानां धीस्तः समधी: सेरिम्पे ६२३ सूचनावचेपणसेवासाइसप्रतिग्रव- ८८४ स्तेन सार्यां ०० ट स्तस्रिभिपूते मैन्यादि वीतूपमानात् ४०३ मूर्यागस्वस्य तिष्यपुष्पस्य ग्रामत्यः २६० म्लाबोदिइ-ची-यलस्यातो न ती- १०५२ स्कुष्टः • १०१,१ स्रजः याद्यात् तनीण्च ८८३ स्जदभचपाठालतो निलानिमतु-स्ट-नागुर्ध: ११५२ सेक सीक स्टप स्टस्ज- ५०० सेतुक-ख-प-फेवा ६६ सेनक्षात् सरीः ११५४° सेमऽच्च क्रव क्रिय गुच मङ् मद- ११६८ से डॉंग्रनसप्रदंशीऽने इसीऽधि: 7 5 5 सेलुक त-यासी सन्यो ऽकुर्वा सीवा ७०४ स्तु स्तन्भ स्तुन्भ सन्भ सन्भयः- ०६८ सानि गदि सदि इदि दूवे रिवु: ११३० सुयुभि:यूगात् ४६ स्त्रियां चिचतुरी सिस्टचतस्य ऋवत्- १५०

िक्रायानत चाप्

समाजः । स्त्री सुर्ध: १५८ स्त्रीयुचंडिस्ति ८८ स्त्रीवासभासी: स्यादान पाजा घाषास्त्रार्सः - ५१० स्यादो र्ङिष्टीमेन ग्रु: ७३६ स्थोजी जाङी: ७८५ समीध:सख्यादिदासवयीऽर्थ- २६२ म्-ज्ञमीऽमेऽरवस इ.म् ५.८६ स्पर्जायामाङ: ८८५ सृहि यहि युद्द जेराया: ११२८ स्कायः स्कीवा 3009 क्षिङ पूङ रन्ज्ञ श्रुकर गिर द्विय- ८०८ क्षिभ्यो र्घात ध्वर्ये मञ्च ०८४ स्म हय(S) ननुजानाप्रतियो: सन: १९८ स्ट्वरप्रथमदल्सभीऽङ खे- ७०८ मधैंस्ययदि लतौते ८६१ खदैधायोद हिमयय प्रयय•स्कार- ११३८ स्यभीर्खक 205 स्यमौजस घि: ८१ खखडं न: €80 स्यात् व्यपित् किंदा ५६६ स्यादे: सो सीप: कीऽवटवरच: स्वादे ङें ऽस्थो वा काणी ६११ स्यादी नवद्रोऽये ७२० स्याद्यच्येती • स र्थं इत्यम् ठीका भी - ६१५ स्याद्यहर्नु-रस्तुव्वेन् सन्मढीसे: ७४७ स्थानस्थाराझुप फे \$39 स्यानादादादायत्री: खेरान् क्यां- ५५० स्योदेती ४२ सङ्मेधास्मायात् विन्वा ४४३ सम्ध्यस्यस्यत्रहुद्वांदङ्की १८३

सिवहीस्त्रोऽद्यादेः मुगः ५१३

सवादः । सिवाय मन ज्वर तारी व्युक्ता-सि-विष्या-देवस्य टेरद्राश्ची की १०४६ से:स्यमस्य १५२ सेर्ड १०४८ संजंस जेंड कि कीना मि से बगत- ११२ स्ती-वि:फी १०२ स्व:स्वेद: ५४० . स्वटीभ्यांध्यमत्रसारेखें।पः १०६ स्वप ऋष ध्वी ङ्ज् ११२५ स्तप रची यत प्रच्छ विच्छ धाच- ११४४ क्वपीधि: ७८१ स्वयं शंवि संप्रादः भूवी डु: ११३२ खरादि नि चित्रां व्यं ६४ स्वधीं वर्ष प्रश्ट खस्य तन् पिति धप्र खाचबीरौरीहिखा ३१ स्वाङाङ्के २६८ खासंडी ऽचि हि: ६२ खामीयराधिपतिदायादसीचि- ं ३०८

सवादः । क्रमासयीक्षां है ८४५ इसार्ट: मेभी उद्वीदिनचणश्रसवधी- ५०६ इसाहा दिसे जापामी ८०२ दमाहा २५० इसामानी श्री ७७० द्ममाञ्चोपोऽभित्यस्यो: ७०५ इसको लोपी ऽगौ ५६० इस्यासी: ८०१ इसोऽननरः स्यः ८५ इसीऽन्तः फः प्य इसिधि ७२४ इस्ते पाणी प्राध्वं जीविकीपनिषदी- ७६७ इस्रोतत्तरीऽनजकः सेलीपः ०६ डाका: खेर्न र्घ: ८३० काकोऽनालोप:स्यां ७३१ क्राकी हि: ११०५ सायन: १००४ हिंस दीप कम्पाजन सिङ्कमः ११२२ इक्समी देधिः ६०१ क्षे: खेरनकि चि: ७४८ र्इंडन: २५१ हेप्रचीप्रमाचीभ्याम: ३३१ क्तें हो पोडिस्टोप्रीय ५४० की असस २१० इरो हो है। हान:सैा १८२ हाइसेरित ८१० द्वी उत्तावा ७३२ क्रीघाचान्द्रगृद्धिनो वा १०६२ की बीरी क्याचायातां पच्- ७८४ क्वादे: खः क्री च १०८२ द्वादी रे दि: ७२६

क्वी देजिं: ६६०

ही वचाची ७२०

## संज्ञासूची।

मुचाडः । खस चक् विव पूरुष प्रट, हर्र, हर्र हर्र हर्र, हर्पू, भव **१४६, १४**८−१५४ षम् ग ३१⊏ श्रव १ गि ٠ ۶ पादिढ १०६६, १०७३, १०८१ प्रस्, हर्र, हप्रर-हप्रप्र इ क १८८, ३१६ र ङ चि ,८१, ८२ प्रट, है३३, ८५८ द्रच द्रत् ४ 352 इन्तत् ६८५ खित् ५३२, ७२१ दुल् ₹ **उ**ड 93 चक ٠, चप् मर क ०६, २६४-२६८, ३१५ एङ एच कत् ३ ₹ २१६, ३३६ एइ ऐच् ३ अब् গি प्रप्, प्रद, ६२१, ६४७, ६५१, 38€ कित प्रव, प्रद, र्प्ट, ८१८, ८१८, ८०८, **६६१, ६६२, ६६६, ६६०, ६६८,** EE0, ११६0-११08 ७५६, ७८१, ८०८, ८३१, ८३२, की प्रस्, हर्रस्थर च्ह्ह, १०५√-१०५७, १०€४, ११४४, ११७४, ११८१, ११८२. क्रत १६५ भ प् क्ति १२, (सि-सुप्) ७८, (तिप्-स्थामहि) भाग भूरद, हर्ष भभ् क्रीव १२२ भास १३ ञप् खथ् ञम् खप

व्यस इ टि ६२ टी प्रस् ६६३, ६५८, ६५६ ठी ५२८, ५८३३ ड ३०६, ३१६ खित ४६७ धी प्रस्ट, दर्र ढ २८१-२८४, ३१६, ६₹र ढभ ३ ढवत , ६२७ ठी पूरुट, ६३३, ६६० बाउट हैं याप ३ चम ३ चु ⊂, २३-२५, १२२, १४२, १४३, १७०, ५४२, ६१५, ६१६, ६२६, € 25. € 28, 90E, 980, 988, N ७१६५७१⊏, ७३३,,७३४, ७४°, ७५२. ७४%, ७५८, ७६४, ७८४, ८.४, ८२२, ८२६, ८३६, ८४१, 8065. 8062 त ५२० ती प्रह, ६३२, ६४२,६४४, ८४७, **६६१, ६६**२ त्य १८ . ची ७६ २८८ २६३, ३१५ शी प्रस्. टर्डर ट १४, ४३१ टा ५३४ टान्तवत <sup>द</sup>रै

हो १६-६६

इ. १३

त्रकारः । हि ६२. ६३. १७४, ५०१, ५३६, ५३७. प्रयूट, ६३२, ७१६, ७२०, ७२६. ् ८०२ ८३६ ८५६, १११८ बिढ २८५ ही ७८. १८१-२८७, ३१५ दीक्कान्तल १०१४ ध २८३, २८८, ३१६ ধি দ म ११, १५८, १५८, ६३१, ७८० नि १६,३४,४८, ५६, २०४, २०५, न्द्रस, इद०, इद०, ३६६, ३६८, ४४८, ४५०, ४५१, ४०६. ५०८, प्रथ, २०५, १८०, १८४, १६९, ८६४, १००४, १००८, १०२५, १०२८, १०३४, १०४४, १०६५, १०७५, १०७८, १०६६, ११९४, ११३६, ११७८, ११४८, ११५५ नी २० 39 % प प्रत्र, ६३६, ६४८, ६५०, ८३६, द्यू ०, द्द् ०, द्दृ १, ८२६ पि ' १०० पी ७६, २८८-३०१, ३१३, ३१५ पंवत् १७१, ३२०, ३२७-३२८,३५०,४६३ ती ७६. ३० ८-३१५ भी ७६, २८०, ३१४, ३१५ स् ५ क ८४ बहुल ११८४ ब्द १३ म २८४, ३१६

भि ५४

सपाङ:। म ५३१. ५४४, ६५६, ६५४, ०५०, 988. E8E, E65-E96. EOE, दयर दे१६, ह१द, ह१हं, ह२० माद्य १२५ म २० य अश्य यप 3 यस य ल ₹ 49° क ५३६, ५8• र्भ ५, २२, ७७, १०४, १४४, रॅं६४, १८५, १८६, १८८, १८८, २२४, ₹₹ , ₹8£ , 889 , 8£4 , ¥£0. ¥€₹, ¥€¥, €₹७, €₹٤, €¤₹, € E8, 9₹0, 080, 901, 9EE. でoy, でマキ, できの, १・き€---१・きに, १०११, १७६०, १०८०, ११७३ ť €. ७ सि १४ लुक ८२, १६१, १६८, ५४६-२४८, ३१८, ३०६, ४२८, ४६८, ४१८, प्रथर, ६१४, ६७०, ७५४, ७६३. लाप १५, ३०, ३८, ७०, ११८, १८३. २४२ सीप २६-२८, ७६, ७०, १०३, ११७, १२०, १२४, १२६, १४८, १८८, २११, २२४, २१०, २५५-२६०. **११७, २८८, ४२०, ४२४, ४१०,** 

४६५. ४८८, ५४२, ५४०, ५५६,

**प्रदे**र, प्रदे**ं**, प्रदें, प्रवें, हर्रे,

६२२, ६२८, ६४१, ६४२, ६५८, । इस

इल

,

सवाङः । €€0, €07, €0€, €£1. 007. · ७३१, ७४०, ७५०, ७६५, ७७५, ८११, ८३८, ८४४, ८४५, ८४८, ८४६, ८४६, ८२६, १०४०, १०४२. १०००, ११०० ला وتتو 3 9 5 वस 3 f4 ع 9 व्य 83 ति ६, २३-२५, २६ ३३, १२८, ४१६. \$08, 40€-40E, 6E8, 6E8. ७१८, ०५५, ८४१, १०४१ श्र स ष ३१८ षी ७६, ३०२ ३०८, ३१५ ●स ११०, ५४८, ५०१, ७६७ सङ्गावतः १५१ सिंख १६-४५ मन्त्र (३८ स्त्रीलिङ्ग ११४७-११६० स्य ८५. सि ८६-२० ख ४, ४४, ४४, १५२, १५३, १६७, १७२, इ३०, ४३७, ४६३, ५५६, €₹5, 088, 0€€, 00₹, 00€, ७६८-८००, ८००, १०१४, १०३४, ३१५ इष

## ' सुन्धबोधं व्याकरणम्।

सुवादः। भाक् २०५ पहर ६१३ भाग १८१ थम १५६, ५५०, ५०१, ६०२, ६६६ श्वस ५०३ . चारत ८४६ न्याण १८१ स्राम् । प्रदर् ६०० प्रमा ६४२, ७६०, ८८२, ६२१, ६२३, 193,393 द्रम् ४१७, ४१८, ५५४, ५७३, ५८४, विण् ७८४ भूद्रक, भूद्रह, भूद्रद, ५०६, प्रशाम ७२८ ६१६, ६१७, ६२३. ६२४, ६३०, | भू प्रत् ६४८, ६५०, ६६५, ७०८, ०३८, म ६२ '७४७, ७६२, ८०७, ८०६, ८१०, मन् ६८५, १०१४, ११०१ टट₹, १०३३, १०५३, १०६६, मिण् टरर, ८३१ १०६०, ११००१-१००४, १००६, मण् ८००, १००८, ११३० १०७0; १०६७, १०६८, ११७२, 8099 र्भूम ५६१, ७२२ खम ४१७, ४१८ कान ५० क्ष भूट३, ६८०. **ष्ट** €२, ४६४, €१<sup>८</sup> द्धाम् €८० चन् ५७ **छ** ६३ जन् ७६२

· सवादः । नन् ४२६१ ७८८, ७६१ नम् १८६ नाप् ८५७ नुष् १६२, १६८, १६२, २१०, २४३, २४५, ५६८, ६३५, ०४१ नुन् ८२०, ८२६ नुम् ११० यक् प्रत्, प्रत्, हक्ष, हक्ष यन् ७४३, ७८२, ६२४ रिन् ८४० ऋष ५४१, €७०

स्वाङ:।
या ७३८, ०६८
य ६०१, ६२१,०३८, ७६८
यम ५८१, ०३८, ८२८ '

मवाद: ।

सन् ५४, ५५, ५८८, ८४६ सि ५५१, ६०३, ६५० सम् ११३, ०५३, ०६६, ८६० सम् १५२

# म्रादेश-सूची।

सूत्राङ:। च १३३, २०६, ३२५, ५५०, ६८६ अपनी २२६ **प**ङ् ५६०,००८ चन प्रमू, ६८७ षतुम् ६८६, ७२३ षध्म ६८६, ७२३ षदसुर्च २२५ पद्रि १०४३ पाथ प्रश्र . चन् ३२५ षान २०५ षगङ १७२ चम् १६६ चसुमुर्द्रच् २२५ षम् १०४८ चय ३५ चय १०६, ११७८, ११७६ षायङ १३२ चयम् २०३ षर प पल ८ भव् ३५ चव १६, ५२२ चषा ३५१

स्नाइ:।

वसन् ११६ प्रमुङ् २३१ मस्य ६५२ चयाक धर् मह २१५ भहन् ११६ भक्र ३५४, ४३२ चा ६, १०८, १२६, १३०, १४६, १६६, १६७, २१२, .२५६, ३२६, **२४७, ४०२, ६०८, ६६४, ७८२, पाकम्** २१८ षाङ् २१७, २१६ चात् १०६, २५६ थान ५⊏० भान ७७० मानङ २०१, २०२ चाम १३०

भाग ३५

चार ४२२

খাল ೭

चार्

भाव

सचाडः!। संवादः । भासन ११६ कट ८१४, १०३८ बाह्र ७२३ ऋ प्रवृष् ७३५ क्रफ प्र ११२. १२१, १०३, २५४-२५६, ख्ट प्रश्र पुरुषु, . ७८४, ७८६, ८१३, ८१६, ए द. १०६, १२६, १३०, १४०, ५०६, C ? 2 હપૂર, દેલ્દ ८३५ का एकाट, ३५२ द्भत १७३, २५४-२५६, ६४०, ७०५ . एकात्र ३५२ -इन १०६ एङ २१८ द्रनेय ४२१ एधि ६७७ द्रश्च १३५, ५८५, ५८८ एन २०८ इयम '२०३ एर ४२२ द्रह इत्ह 3 9 द्रस ८११ ऐङ् २०३ र्षे १४८, १६१, २३६, ३८६, ४८५, ऐस १०६ प्रथ, प्रद. ७०१, ८१२, ८१३, भी ५,६५३ F099, 3809, 582 **र्र**ङ *७*०६ भीत् ३३० भी ह. १२८. १३०, १४५, १०८, २३४ र्ष्यम् ५४६ र्युम ५४६ भौड़ः २३८ र्दूर् ८१२ का ६४, ४५६, ६०२, ६०२ ६०४, च ६६, १२१, १३८, १७३, १६४, १०€३ काउट २११, १०€१ २२८, २३५, ५३५, ६८८, ८२८, 620 कत ४०८ ४१२ चङ् २४० कन ४०४ **चत् १७३**, ८१६ काव ४१२ घदन् ११६ का ४०६-४१२ कि ७४€ खदीच २२५ की ८३३, १०४८ **छर्** ६२८ की सं कश्र सर् १३५, ५८५, ५८८, ७१८ उस १२८, १३०, ५६३, ६७५, ६८६. क्रप ६४६ घी क १८०, ५१४, ६४६, ७६६, ७६७

#### चुचाइ: ।

स्पादः ।

चेप ४७० चोद ४०० कसाञ ००६, ००७ खङ २११ ख्याञ ००६,००० ग प्र. ६४, प्रम. ६०२-६७४ गङः २११ गच्छ ५६० गमि ⊏०६ गा ६८२, ७१३ गि ६०० गी ७१२ 30 € ₹, ₹9€, ₹99, €9€ चक्र १७८, २११, ८८६ घस्न ६७३, ६७४ বি ৭৪দ उर्ध प्र घी ८२८ **७** प्र, प्र, प्र, ६० ङक ४१६ **ख**ःख् २११ ख्य ८३५ • **छ**। २०१, ३२१, ६५५, ७३२, ७४३, ७४५, ८४६, १०३१, १०४८ **ङ** ७००, ७२६, ७३**६**, १०⊏३-१०⊏५ ख्डी ६१२,६३०, ⊏५४ खुर ४२५ र्छ ६११, ६१२ च ४६, ६४, ५५९ ७५५ फ़ुत्र

च ८१५

क ४६. ६१. ५५ ह जै ४६, ५८, ६४, ५५५ नाम १०६१ अरस ११५, ३७८ नहि ६०० ला ५६७ निघ ५६७ न्य ४७२ म ४६, ६१, १७७, ५५६ ज ४६, ५१, ५२, ५८, ६०, ५५€ ट ४७, ६४, ५५६ ड ४७, ४८,६४,१४४,२१८,२३३,४५८ डन २३३ डनङ ८४६ डभ्यम् २१८ डसङ् १८४ डा १२०, २३२ डि १६० ड १४१ डी १२५, २००, ६०८ ४७, ६१, १७४, १७७, ५५७ ष ४७, ५१, ५२, ५८, ६०, १०७, १८६, ३५५, ५४६, ५००, ६६८ चप ६८६, ७२३ त ६४, १६४, २१८, ५४८, ५८८, ६६८, ७०३, ७०४, ७२४, ६५७, ६८७, १०८६, ११२१ तक ७६०, ८०१

सवाङः । सवादः। तिरच २२५ नम् ११६, २२०-२२२ तिर्दि १०४५ ना १२३ िउष्ट पुरु नि ११४८ निशे ११६ तिस्र १५० ની (*m*) હવ तुङ १८१, १८४ तुभ्य २१५ नु () ५०,५३ त्न १३६ १४० नंद ४७० र्ते २२०-२२२ नेग्रा ७४२ नौ २२०-२२२ च्य ४०० प ६४. ५५.६ चग: ३५१ पङः ७८६ त्व २१५ पद्ये ११६, २२३ लद २१५ त्वा २२०-२२२ पप्त ६५२ पश्य ५१० थप ६८६. ७२३ द्य भूद, ६४, २०६, ५५६ पाद ३४०, ३४८ पिव ५६० दङ १८३, २४१ भी ६४५. १०८०, १०८१ दम ११६, १०८८ दव ४७० पीष्य ७८३ दिगि ६५६ पुर पुरुर दे ७३५ ' प्रत ११६ दोषन ११६ о С в Ц •७४ • छाडू व ५८, ६४, ५५६ बंड ४०० द्वा ३५१ म ६१, १७०, ५७५, ७३७ म ६१, १७० भ मगी २२६ भड़ २३०, १०४६ मर्ज ७५१ धम ५६७ . भिम २०७ f⊌ €9१, 9°€ भीष ७८५ में ७३५ ध्यम ६५० मू ६८२ म ५१,५२,५६, ६०, १०५, १३४, भी २२६ १८२, २०२, २१८, २६२, ५६८, म ५१, ५२, ५८, ६०, १३४, १६०, ७५६, १०५२, १०५४, १०५८--२०४, २१६, १०४, १०५, ६८६, १०६२ १०६२, १८६४

म्बाङः ।	स्वाइ:।
मद् २१५	वध ६७८
मन ५९७	वक् ६६३
मम २१५	वय २१५
मसक ४३६	वर् ४७० .
मह्य २१५	दर्ख ४७०
मा २२० २२२	वम् २२०-२२२
माम् ११६ .	, वां २२० २२२
मि ११ <sup>८</sup> ० '	वि (') १०२, १८ <b>७</b> °
म् (×)     ६⊏	वी ५८६
र्म २२०-२२१	शन्द ४००
भीव ८१५	वीच ६५२
य १५,५२,७१,१३४,५८८, ६८१	ग ४६, ६०, ⊏१७ •
यकन् ११६	भक्तन ११६
यच्छ ५८७	माधि ६ <i>७७</i>
यप् ११७६	मि १६२
यव ४००	भीय ५६०
युव २१५	भीषन् ११६
युषाका ४३६	य ४०१
यूग २१५	य ६५२
यूपन् ११६	ष ४७, ६७, ७३, ११२, ४३६, ५७०,
योम् १०६	५०२, ६२५, ६३३, ६३४, ६६३,
₹ इ.४, ०२-०४, ४३४, ४०३, ६०४,	८१६, ८४६
€€."	षङ् १५४
रष्टः, २२७, २६१	म ६५-६०; २०४, ३१३, १००, ४१३,
889	ક≀કુ. પ્દદ, ૧૦૪૨
रि ६२०	मधि १०४५
રી ૪૮૦	समि १०४५
मा ३५, ४६, ५२ ८२४	साध ४००
व ३५, ४३, ५२, १३६, ५००, ६६४,	भीद ५६०
६८६, ७२७, १०६३	<b>₹</b> ₹ 8 <i>0</i> ~
बङ् ७८७	स्थ्व ४५०
वच ७२५	म् ११६

### मुखबीधं व्याकरणम्।

4 . 8

स्त ४७० स्ती १०७६ . स्नात् ११२,११४ स्ति ११२ स्ते ११२ स्वादः।
स्व १५०
हि. १५०, १०८६, ११०५
हि. १९६
इ.स. १९०

# शन्द-सूची।

--

पृष्ठाङः ।

9818: 1

षका ७५ ' षवि ८५ ऋग्नि €२ भगणी ६८ चवत् ११३ चाजर ⊏३ षतिषम् ७० चतियुचाद १०६ श्रतिलची ६६ चितिसर्वे ५५ भाषांद १०६ त्रदसुयच् ११२ षदम् ११८, १२३, १२६ चनडुह पर चनादि प्पू चने इस् ११८ मन्च् १०२ चालार ५४ चनरा ७४ चन्यतर पर

चप १२२ श्रविधान १२८ चसुसुयच् ११२ षम्बाला ७५ श्रम्बिका ७४,७५ अस्य ८६ ष्रर्थमन् ८३ मर्जन ८५ पद्मा ७५ ऋवगाह १२८ षवयाज् १०३ चवी ७८ षष्टन् ६७ षस्ज १२४ चरिय ८५ चसाइ १०४-११● चह्न १२४ षानन्द प्र चाशिस् १२३

पृष्ठादः ।

प्रषादः ।

षासन ८३ ददम ८८, १२२, १२४ द्रमका १०० उक्षशास् ११० **उ**चकीस १२० उच्चैम् १२७ **उ**त्तमा १२० उत्यान १२० **खदक** ⊏३ सदच ११२ ' **ड**दन्च १११ खपानह ११० उभ ५३ खमा ७३ उभनम ११८ उधिह १२० जर्ञा १०३, १२४ महत्विज् १०५ ऋभुचिन् ८६ एकतर ८३ एतद १०४, १२२, १२५ कटप्रू ७० काति ६४ कार्भ प्रद काली ७८ किम् १०१, १२२, १२४ क्रता १२० क्रान्च १०२, १११ क्रीष्ट्र ६१ खन्ज १०२ खसप् ७०

गवाच १२५

गिर १०१ भी ° ७२ गोपा ७६ गीरच ११६ गीविन्द ५१ गौरी ७७ **म्लौ** ७२ च १२७ चतुर् ८१, १२२ चमू ८० चिकीर्षं ११५ जचत् ११३, १२५ जगन्तम ११७ निगिवस ११७ जरा ७५ नायत् ११३, १२५ नामाह ७१ भार द€ जान ८१ तति ६४ तद १०४, १२२, १२५ तनू ८० तन्वी ७८ तिर्थ्यच् ११२, १२५ तिर्यंन्च, १११ तुदत् १२५ तुरासाह ८१ त्रतीय ५५ त्रशीया ७४ त्यद १०४, १२२, १२५ वि ६५,०० त्विष् १२३

पृष्ठादः ।

4812: I

ददत् ११३, १२५ दिधि ५५ -द्रध्य ११४ दस ५७. दिधच् ११६ दिव १२१ दिश १२३ दीधी ६७ ′ दीव्यत् १२६ दुर्गा ७४ दुह् दद हन्मू ७० द्रश्र दंवेज् १०२ द्योष ११६ द्या ८० द्रह ८८ द्दि ६५, ७० दितीय प्रम दितीया ०४ द्वाप्त प्रह धिकार्द १२० धन ८२ धनुस् १२६ धार ००, ८६ धिक १२० धंन ७६ ध्वस ११७ नदो ७८ লমূ ৩০ मञ्च ८८,११४ भासिका ०५

मिर्जर ५५ निमा ०५ नी, ६० न् ०१ नेम ५४ मी ८० पचन १२५ पञ्चन ८६ पति ६३ षदृ ५ू८ पथिन हइ पथम १२६ पर ५,४ परा १२० परिसज १०२ परिवाज १०१ पाद ५० पित्र ७० पिधान १२८ पिपच १२६ पिपठिष ११५ पील, ८1 पुनर्भू ८० , पुसस् ११८ पुर १२१ पुकदंशस् ११८ पुरीजाम , ११४ -पूर्व ५४ पूषन् ८३ पृतना ०५ पेचित्रम् ११० पीत ७०

पृष्ठाङ्गः ।

पृष्ठाद्वः ।

८५१ प प्रथाच १११ प्रथम ५५ प्रद्यो ८६ प्रधी ६६, ७१, ⊏६ ८३ मार्र प्रातर १२० प्रान्च् १११ प्रियचतु**र्** ८२ मुद्धि ७६ बुध १०१ बह्मन् ८२, १२३ भगवत् ११३ भवत् ११३ भात् १२५ मानु ६६ भूवाह ८१ भस्त् १०३ भार ७५ . भू ८० मघवत् ८४ सघवन् १४ मति ७६ मिथन् ८६ मधु ८६ महत् ११२ मात ८० माया ७४ मास् ५८ स्कृत्द ५१ 44 cc

यक्तत् १२५ यज्वैन ८२ यति ६४ यद १२२, १२५ यवकी ६६,६० यभस्वत् ११३ न्यम्बिन् ८३ युज्ञ १०२ धवन् ६५ युक्तद १०४११० যুগ ५८ रवि '६२ राज १०२ राजन् ८२ राम ४५.५१ रे ७२ लच्ची ७८ लिह ५०, ल्नी ६८ वगाह १२८ वधू ८० वन दर, वा १२० वाच् १२२ वाणी छद वातप्रमी ६५ वायु 🚓 ध वारि ८४ विद्यम् ११६ विभाज् १०२ विविच ११६

विम ११४

### प्रशादाः ।

विश्वाहर:

विश्व पूरु विश्वपा पूट विश्वराज् १०३ विश्ववाह् ८९ विश्वसृज् १०२ বিশ্বা ৩৪ 'विणु ६ ट इनहर् ६२ वेधस् ११६ व्यक्त ५१ मज़न् १२५ भक्षा<sup>°</sup> ५६ श्रु ६८ प्राक्तिंन् ८३ क्योर्घ ८३ ग्रडघी ६० श्री. ७१ श्रीपति ् ६२, ६३ यीपा ८४ , श्रीमन् ११३ শুবি, ৩€ यन् ८५ श्वेतवाह १० वद ११४ सक्षि ८५ सखि ६२ सञ्जब १२१ सम ५४ सर्व ५३ सर्चा ७४ साध्यन्य ५५

सानु ८६

सायाक्र ५८ सुखी ६८ स्ती ≰⊏ सृत्स ११६ सुधी ६६, ७६, ८६ सुनौ ८६ सुपाद १११ सुविस् ११६ सुभू ७०, ८० मुभू ८० सुयुन् १०३ सुरै ८०, ८६ मुख् ७० सुवल्ग् १२४ सुवस् ११८ सुबय् ११२ सुयो ६६ संहिन्स् ११७ स्त्री ७८ स्त्रिष्ट् पद सुह् ८८ स्पृष् ११४ सृति ०६ सम् १२२ स्रम् ११७ स्व ५४ खगडुह १२३ खप् १२६ स्तयम् ७० खर् १२७ लस ८. इरि ४८

# स्रीत्य-स्वी—समासान्त-स्वी।

इंग्वित १२० इविस १२६ हा १२० द्वाहा पृष्ट

वृष्ठादः ।

मुवादः ।

र्द्रप् २५३, २५०, २६१-२०१, २०६,

स्वादः ।

स्वादः।

च दरह, हरह, हरध, हर्स, हर्स्, इ.स. ४०३ ३६८, ३०३, ३०८, ३०६, ३८१- व ३३२ ३८५, ३८८-३८५, ३८०, ३८८, चि ३४८ ८०७, ४०१, ४०४-४०७

चन् ३४४

षस् ३४२, ३४३

उ ३३८-३४१, ४०१ ष १३४-३३६, ३५३, ३५६-३६५

वोपदेवमते समासान्ताः तिख्तानर्गता एव, (५२०) स्त्रं द्रष्टयम् ।

## तिङ्गत-सूची।

----

स्वाइः.।

ं सूचाइः:।

ष ४१५, ४२६, ४३३ ४४६ भयट ४६१ श्रम ५२२ च्या ५२० चाल पुरुष् चायन ४१५, ४२६, ४३३ भारक ४४६ माल् '४४६ श्राहि सू२० ' **४** ४१५, ४२६, ४३३ ° इक ४१५, ४२६, ४३३ इत ४८४ इन् ४४४, ४४१ इन ४४६ द्रभ ४४६ इस ४८.६ इसन् ४०५ **४य** ४२८, ४३३ **दर** ' ४४६ प्रस्त ४४६ इष्ठ ४६६ र्द्रक ४२८, ४३३ र्द्रम ४२६, ४३३ र्देग अ१५, ४२६, ४३६ द्यसु ४६६ र्दूर ४४६ सर ४४६ कल ४४६, ४४६ एदाम् ५६० पन ५१६

कें ४२६, ४३३ 828 किट किए ४२६, ४२३ कल्प ४०० किन् ४४६ क्ष ४६२ गोयुग ४८० गाप्त ४६० चक्कलम ४८४ व्रशा ४८८ चतमां ४६५ चतरां ४६५ वन प्रह वरट् ४८०, ४८१ **धशम् ४८२,** ४८३ चमात् ४२२,५०• चित् प्रस् चुन्न ४८८ भृत् 880 चि ४१५ नाइ ४८२ उ०५ ह डट् ४५० डतम ५१० डतर ५१० ন্ত নি

डाच् ५०१, ५०१ – ५०५

एय ४१५, ४२६, ४३३

	स्वाद्धः ।	(बाह:।
ভিৰু ৭০৩	,	म ् ४४४, ५२५
या ४४६		सट्) ४५१
गायन्य ४२०	•	मतु ४४१
यीन ४२६, ४३३		मयट् ४८६
चीय ४१५,४३३		<b>भावट् ५</b> ०६
त ४३८, ४४५, ४४६, ४४६		मिन् ४४६
तम ४६२		्य ४१५. ४२१, ४३३, ४४५
तमट् ४५२, ४५३, ४५%	•	यु ४४५, ४४६
		₹ 884, 888
तयट् ४६०		इप ४६४
तर ४६२		रूप ४८१
तम् ५११	•	हिं ५१५
ति ४४५		ल ४४६
तिषट् ४५६		व ४४५, ४४६
तु ४४५		वतु ४४२, ५०८
तैल ४८२		, સ∾ા
व ५२५		तह ४७८
त्य ५२५		विन् ४४३
त्यग् ५२५		म अध्ये
च ४४६, ५१३		माक्ट ४६३
वाच् ५००,५१२		ंशािकान ४८.₹
ল ধৰ্ম		षडगव ४८०
बर् ६४४	,	्रम प्रमू
धाच् ५२३ .		ष्टर ४८१
दन्नरं ५०६		था। ४१५,४३३,११४०,११४१
दा प्रश्व, प्रश्		शास्त्रिन ४१५, ४३३
दानीं ५१६		थित ४२५,४३३
देशीय ४००		र्गाका ४१५,४३३
देश्य ४७०		'पाोका ४२६,४३३
दयसट् ५०€		क्यांश्व ४१५,४३३
धाच् ४५८		काा, ४१५,४३३
न ४४६		• 4 885
पाक्ष ४०६ .		सच् ४८५
भाग ४८५ भ ४४५		म्नात् ५१८, ५२२
,		

पृष्ठाङः:

पृष्ठादः ।	1
भव १२१	काम ३४२
भन ३१६	काश ३४६
<b>भ</b> द ३६१	कास १४६
चन ३०१	कित ३३८
भन्च ३१५	कुट ४०३ '
भन्ज ३०५	कुन्य (कृषि) ३०६
चय ३४४	कुष ४१२
षर्द ५१३	क्त ४०७
चार्य ३१.८, ३१२	क्रत ३८८
षस १६६, १६१	कृत ४१३
चान्छ (पाछि) ३१६	क्र न्व (क्र वि) ३८७
षास ३०६	क्रप १४८
द्र(न)३६५, चिंधि-द्र(क) ३६६, चिंध द्र(ङ)	क्रव १२४
100	क् ४००, ४१०
द्रन्द (इदि) ३१३	क्रम ३२०
द्रस्य ४०६	की ४०६
द्वप ४०२	क्रम ३८३
र्दुड़ ३ <i>०</i> ५	चष ४०७
र्द्रम ३०५	वि ३१८
देच ३४६	चिष ४०७
च्य ११५	चु ३८१
चष १२६	च्या ६६५
<b>जर्ण ३</b> ७६ —	खद ३१०
चर १२२, ६८५	खन ३५२
माक् ४००	खा ३६०
भष्टज ३४०	गण ४१३
स्य ४० <u>०</u>	गद ३११
एष १३१	गम ३३५
काट ३१८.	गुप ३१६, ३४०
काथ ४१४	गुष्ठ ३५३

	वेशाद्धः ।   वेशाद्धः ।
नै ३२⊏	त्जि '३४०
	तु •ै ३⊏१
ग्रन्थ ४१२	त्र ३६६
ग्रह ४१०	वद ४०५
गुत २१६	<b>हन्प</b> ४००
ग्लृन्च ३१६	हप ३८२
≢लै ३२०	् छह ४०५
च्चा ३३० ,	
चकास ३ <sup>०४</sup>	त ३३६
चच ३०५	चप ३४१
चम ३२०	चम ३८१
चह ३२०	च्छ ४०३
चाय २५३	लर '३४६ ,
चि ३८६	लिय ३५६
चित ३०१	न्सर ३२३
चुर ४१२	दद ३३६
चृत ४०१	दन्भ ३६८
च्युत , <b>३</b> ०४ ,	दन्भ १३८
कृद ४०५	द्य ३४४ ,
हे` की ३६०	दिग्द्रा १७३
जच ३७१	दल ३२२
कान ३८५, ३६४	दह १२०
क्रम ₹४१	दा (न) , १३१, दा ३८६
काग्ट ३०२	दान ३५५
	दिव १८८
जि ३२३	दिह १.७६
ज् ३८०	दी ३९४
च्चा ४११	दीभी ४० <sup>८</sup>
न्या ४११	दीय ३८५
<b>खी</b> १४०	द ३३४
तच १२४	द
तन ४०€	टप ३६२
तप ३२०	हम ३३० ,
साय ३४५	= " ' '

	<b>ब्रह्माद्ध</b> : । ]
<del>-</del>	1
<b>इ</b> ४११ ≘	ुष ३६१
दें ३४६	पू ४१०
दें (प) १२६	पूर- श्ट्य
दी ३८१	प्र ३८४
द्य ३६४	प ४११
चुत ३४०	प्याय ३४४
र्द्री ३६७	प्रक्र ४०१
द्रं ६३४	मा ३६२
दिष १७८	फण ३५१
धा ३८० .	फल १२२
<b>धिन्व</b> (धिवि)	बद . ३११
म <i>६६०</i>	वध ३४०
A 860	बुध इंडपू
भूप १२०	म १८२
र्घ (ट) १२६	भज ३५५
भा ६३०	भी इष्ट
नद् (पदः ११२	1
नम (गम) ३२२	म १४४, २००
नग्र(पाग्र) ३८:	भाग ३५२
नम इत्पू	भस ३५०
निर्मा(बिन्:) ३२४	समज ३१८
निम ३८६	स्ताम ३५२
निन्द (गिदि) ३१५	गन्य ३०५
निनम (निसि) हठ≰	समज ४०१
<b>Γ</b> (¶) εξγ .	मा ३६०, ३८८
\$ · 8 · 5	मान ३४०
स इदह	सि ३८६
या ३५१	मिट इस्ड
त ३५०	सिह उर्
द ३१५	मी ४०३
म ३५२	मुच ३ <i>६६</i>
[ <b>#</b> # o	मुह इटर
•	1 30 401

बहादः ।

### 9815. 1 1

4812: I

**3** 3 0 स्व ३१५ माप ३१६ શાત્રા રૂપ્રદ્ यम ३२१ यस १८३ था ३€६ ય રદય बधी ३२३ बध ३८१ बन्ज ३५६ बाज ३५१ राध ३८१ क् ३४६, ३८१ श्रम १०१ क्ष ३२५ लष ३५३ सिप इटह लुभ १८३ वस ३०० वज ३१६ वद ३५६ वप ३५० वस ३५० वभ्र ३६३ वस ३५६, ३०६ वह ३५७

वध् ३६६ विक ४०२ विज ३८६, ४०४ विद ३६० विष ३८६ ु ३६७, ४१३ ०४६ मध वे ३५० नवो ३०८ व्यच ४०२ व्यय ३४६ व्यघं ३८.१ वे। ३५८ ब्रज ३१६ র্ম ৪০০ ब्री ४११ भद ३५१ ज्ञ रेड्र • शाला ३४५ भ्रम ३२६ शान ३५५ भास *३,*98 शी ३०६ गुच १२० म ४१**९** भी ३६० श्रय ४११ यि ३५५ ञ्चित ३८१ श्रुष ३०१ ষি ২4•

## मुग्धबीधं व्याकरणम्।

	व्हादः।	
ष्ये १२६	r	स्त्रा(क्षां) ५३०
क्षिव ३२३	À	स्तु (चाु) ३६५
षक ३३८		स्पृत्र ४०१
मद (षद) ३५१		स्फाय ३४४
सन (षन) ४०७		स्पुर ४०३
सन्ज (ष्न्ज) १३०		स्फुल ४०३
सह ३५०		स्यन्द '३४८
निष (षिच) ३८६' °		सु ३३४ '
सिंध (विध) ३०६, ५०८		खन (घन) ३५२
िंग्ब (िषव) <b>३</b> ⊏९		स्वन्ज (ष्वन्ज) ३४० '
<b>સ</b>		स्वपु(त्र्वप) ३०१
म् ३०६, १६३, (पू) ३६६	.	स्तृ १३२
<b>स</b> ११२ °	ļ	इन १६३
सृत ४०१		इय ३२२
स्टप ११५		हा (क) ३८४, (ङ) ३८८
सेव (षेव) ३४६		हि ३८०
सो (षो) ३८०		हिन्स (हिसि) ४०५
स्तन्द ३३५		£ 5 = 5
स्तु ४०६		इ. ३५४
सु(ष्टु) ३८१		क्री ३८४
मुभ (हुभ) े३४१		ड २५४ की २८४ कृ २२१ क्षे २५८
मृ १८६	ļ	ह्रे ३५६
		•

## **ब**दन्त-सूची ।

### ---

स्वादः।

प ११५६, ११५४

पक १००५, १००६

प्रष्यु ११४२

पन् ८८२

पन् ८८२, ११५८, ११६२, ११६६

स्पादः ।

पृष्ठादः ।

मनट् ११३४, ११३५ मनि ११६० मनीय ८६७ मन ११२८ मल् ११३४, ११३५

### स्वाद:।

स्वाइ: ।

श्रम १०३२ च्याय्य (१२८ चाद ११२६ चाल १११२ इ १०१२ इक ११३८ द्रकावका ११३८ इत् ११३० द्रच ११३३. इ.सा ११०६ इस १०३२ छ ११२३ उस १०३२ कका ११२० क हर ६ कान १०८६ कि १२१८, १११६, ११४५, रू. ४६४६ कर १११€ र्कलिम रूप्प क्त १००७, १०५०, १०६२ — १०६५ न्नावत् १०५० क्ति ११४० क्वाच ११६४, ११६६ क्रा ११०८ कार १११४ काष् ६८१, ६८३, ६८५, ६८६, ६८७, ११५०, ११५१ क्रा ११२० इन्न ११२० क्तनिप १०३२ कमु १०८६, ११०३

कि ११३१

-हिस् १०३२, १०४० च्चरप् ११२१ ख १०२१—१०२४ खनट १०२६ खल् ११६१ खभ १०१५---१०२० विव १०१३ ु विषा १०२७ ख्काञ १०२० ঘ १०३৪ घञा ११३४, ११३५ घुर १११५, घिवानि ६६० ध्यम ६००, ६०१ ङ ११५६, ११५७ ङ्ज ११२५ चणम् ११८३ चतुम् ११६४ ञ्क १११० १९०१ उ टक् १०१०, १०४७ उ ११३, ११३३ डर ११३६ ड ११३२ ग १०४०, १००१. णुक ११० गम ११४१ णनट् १००३ विष ११५६ षिन् ६६३ णिन ११४० तव्य ८६०

### मुग्धवीधं व्याकरणम्।

स्वादा: ।

तिक् १००७

त्व १८०

प १०२२

विसक् ११४३

बिक ११४८

बि ११४८

सम् १०६२

य १८५२

य १८५६

द ११२५

द ११२५

क १११६

स्थाइ: 1
विच् १०६२
विट् १०६०
विण् १०२८
श्र ११००
श्राम ११००, ११०४
विज् १००२
विण् १००६
विज् १००६
विज् ११०७
सक् १०४०
सक् १०४०

# स्त्रीत्य-सरासान्त-तिदत-कदन्तेतर-प्रत्यय-(घात्ववयव)-सूची ।

स्वादः । स्वादः । स्वादः । स्वादः । स्वादः । स्वादः । स्वादः । का प्रध्नः प्रदेश, प्रदेश का प्रधनः प्रदेश, प्रदेश का प्रधनः प्रदेश, प्रदेश का प्रधनः, प्रधनः विकार प्रदेश, प्रदेश का प्रधनः, प्रधनः विकार प्रदेश, प्रदेश का प्रधनः, प्रधनः विकार प्रदेश, प्रदेश का प्रधनः प्रदेश, प्रदेश का प्रधनः प्रदेश, प्रदेश का प्रधनः प्रदेश, प्रदेश का प्रधनः प्रदेश, प्रदेश